आचार्य बुद्धघोष

[एक समीक्षात्मक अध्ययन]

लेखक

भिक्षु धर्मरक्षित

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ, वाराणसी

प्रथम संस्करण
५००

बुद्धाब्द २५००

ईस्वी सन् १९५६

प्रकाशक—भिक्षु एम संघरत्न मन्त्री महाबोधि सभा सारनाथ वाराणसी (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय वाराणसी (बनारस) ५ १ -१६

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

आचार्य बुद्धघोष

'विशुद्धिमार्ग' पालि-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ-रत्न है। इसमें बौद्ध-दर्शन की विवेचनात्मक गवेषणा के साथ योगाभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सिद्धि तक की सारी विधियाँ सुन्दर ढग से समझाई गई हैं। इस ग्रन्थ में बौद्ध धर्म का कोई भी ऐसा अग नहीं है जो अछूता हो। एक प्रकार से इसे बौद्ध धर्म का विश्वकोश कहा जा सकता है। यद्यपि विशुद्धिमार्ग प्रधानत. योग-ग्रन्थ है, तथापि बौद्धधर्म का जैसा सुन्दर निरूपण इसमें किया गया है, वैसा अन्य किसी भी ग्रन्थ मे प्राप्त नहीं है। योगियों के लिए तो यह गुरु के समान निर्देश करने वाला महोपकारी ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य बुद्धघोष हैं, जो ससार भर के बौद्ध-दार्शनिकों एवं ग्रन्थकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। स्थविरवाद के मूल-सिद्धान्तों को अक्षुण्ण बनाये रखने और पालि साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए उन्होंने जो कार्य किया, वह स्थविरवादी-जगत् तथा पालि-साहित्य का जीवन-वर्द्धक बन गया। उन्होंने त्रिपिटक साहित्य की विशद रूप से व्याख्या कर वास्तविक भाव को लुप्त होने से बचा लिया। यदि आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठकथा-ग्रन्थों को लिख कर गूढ़ अर्थों एव भावों की व्याख्या न की होती, तो सम्प्रति पिटक-ग्रन्थों का समझना सरल न होता। आचार्य बुद्धघोष के समान अन्य कोई भाष्यकार भी नहीं हुआ है। पालि-साहित्य के ग्रन्थ-निर्माताओं मे त्रिपिटक-वाङ्मय के पश्चात् महान् पालि-ग्रन्थ-निर्माता आचार्य बुद्धघोष ही हुए हैं। उन्होंने अट्ठकथाओं में जिन दार्शनिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक एव सामाजिक विषयों का विवेचनात्मक वर्णन किया है, उनसे आचार्य बुद्धघोष का पाण्डित्य पूर्णरूप से प्रकट होता है।

बुद्धघोष का जीवन-चरित

आचार्य बुद्धघोष के जीवन-चरित के सम्बन्ध मे हमें निम्नलिखित ग्रन्थों से जानकारी प्राप्त होती है —

(१) महावंश के अन्तिम भाग चूलवंश के सैंतीसवें परिच्छेद में गाथा सख्या २१५ से २४६ तक।

(२) बुद्धघोसुप्पत्ति इस ग्रन्थ में आठ परिच्छेदों में आचार्य बुद्धघोष के जीवन-चरित का वर्णन है।

(३) शासन वंश इस ग्रन्थ के "सीहलदीपिक-सासनवस-कथामग्ग" नामक परिच्छेद में पृष्ठ २२-से २४ तक चूलवश तथा बुद्धघोसुप्पत्ति में आए हुए क्रम के अनुसार दोनों ग्रन्थों का उद्धरण देकर अलग-अलग वर्णन किया गया है।

(४) गन्धवंस इस ग्रन्थ में ग्रन्थ-समूह के वर्णन के साथ चूलवंश के आधार पर ही लिखा गया है।

(५) सद्धम्म सगह इसमें भी चूलवंश के आधार पर ही वर्णन किया गया है, जो बहुत ही सक्षिप्त है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ मे आचार्य बुद्धघोष के जीवन-चरित के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता है। पीछे के अट्ठकथाचार्योंने केवल उनके नाम का उल्लेख किया

है। आचार्य बुद्धघोष ने स्वयं अपने सम्बन्ध में बहुत कुछ नहीं लिखा है। उन्होंने इसकी आवश्यकता नहीं समझी। उनकी रचनाओं में जो थोड़ा-सा उनके सम्बन्ध में प्रकाश मिलता है वह भी उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए स्थविरों को धन्यवाद देते हुए अथवा उनका स्मरण करते हुए लिखा है। यही कारण है कि पालि-साहित्य के इतने बड़े महान् लेखक दार्शनिक एवं विद्वान् का जीवन-चरित आजतक विवाद का विषय बना हुआ है। चूळवंस तथा बुद्धघोसुप्पत्ति में से चूळवंस ही अधिक प्रामाणिक माना जाता है। बुद्धघोसुप्पत्ति एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी रचना भाषा आदि की दृष्टि से मधुर तो है ही उसमें अनेक चमत्कारिक बातों का उल्लेख करके उसके महत्त्व को घटा दिया गया है। इन दोनों ग्रन्थों में आए हुए कुछ वर्णन समान ही हैं। हम यहाँ दोनों ग्रन्थों में आए हुए उनके जीवन चरित को अलग-अलग देकर विचार करेंगे।

चूळवंस में आचार्य बुद्धघोष का वर्णन इस प्रकार आया है :—

"जिस समय लंका में महानाम नाम का राजा राज्य कर रहा था उस समय भारतवर्ष में बोधि-वृक्ष (=बोधिमण्ड) के समीप ही एक ग्राम में आचार्य बुद्धघोष का जन्म हुआ था। वे विद्यार्थीकाल से ही सर्व-शास्त्र-निष्णात त्रिवेद पारंगत तथा स्वधर्म में सुशिक्षित हो गए थे। उस समय वे एक ब्राह्मण छात्र (=ब्राह्मण माणवक) मात्र थे। सम्पूर्ण शास्त्रों में विशारद और शास्त्रार्थ करने में निपुण वह छात्र वाद विवाद करता हुआ भारतवर्ष में विचरण करने लगा। एक दिन वह एक विहार में गया और रात्रि में वहीं रह गया। उसने रात्रि में पातञ्जल मत पर सुन्दर पाठ किया तथा प्रकाश डाला। उसकी बुद्धि-कुशलता को देख उस विहार के रेवत स्थविर ने उससे पूछा—"यह कौन गर्दभ-स्वर से पाठ कर रहा है?" छात्र ने उत्तर देते हुए कहा—'क्या आप इसका अर्थ जानते हैं?"

"हाँ मैं जानता हूँ।"

तदुपरान्त छात्र ने पातञ्जल मत से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछे। स्थविर ने सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। जब स्थविर ने बुद्धधर्म सम्बन्धी प्रश्नों को पूछा तो छात्र कुछ उत्तर न दे सका। उसने पूछा—"यह कौन-सा मन्त्र है?"

"यह बुद्ध मन्त्र है।"

"इसे मुझे भी दीजिए।

"प्रव्रजित होकर ही इसे सीख सकते हो।

छात्र (= माणवक) ने माता-पिता से आज्ञा ले प्रव्रजित हो रेवत स्थविर के पास ही सम्पूर्ण त्रिपिटक का अध्ययन किया। भली प्रकार बुद्धधर्म का जानकारी हो जाने पर उसने देखा कि यह *मुक्ति प्राप्त करने के लिए अद्वितीय मार्ग है (एकायनो अयं मग्गो)*। उसका शब्द भगवान् बुद्ध के समान मधुर एवं गम्भीर था इसलिए वह 'बुद्धघोष' नाम से ही व्यवहृत हुआ।[1]

भारतवर्ष में रहते हुए ही बुद्धघोष ने 'ञाणोदय' (=ज्ञानोदय) नामक एक ग्रन्थ लिखा और धम्मसंगणी के ऊपर अट्ठसालिनी नामक अट्ठकथा भी संक्षेप में लिख दी। इस संक्षेप में अट्ठकथा-ग्रन्थ की रचना को देखकर रेवत स्थविर ने कहा—'यहाँ केवल पालि (=मूल त्रिपिटक)

---

१ बुद्धस्स विय गम्भीरघोसत्ता नं वियाकरुं।
बुद्धघोसोति सो आसि बुद्धो विय महीतले॥

मात्र है। यहाँ अट्ठकथाएँ नहीं हैं। वैसे ही परम्परागत आचार्य-मत भी यहाँ विद्यमान नहीं हैं। किन्तु, सिंहली भाषा में महामहेन्द्र स्थविर द्वारा लिखी गई अट्ठकथाएँ, जो तीनों संगीतियों में विद्यमान थीं, शुद्ध रूप में लंका में हैं, तुम वहाँ जाकर, उन्हें सुनकर मागधी (=पालि) भाषा में उनका अनुवाद कर डालो, वह सारे संसार के लिए कल्याणकारी होगी।"[1] इस प्रकार अपने आचार्य रेवत स्थविर से आज्ञा पाकर बुद्धघोष लंका गए। उस समय लंका में महानाम का शासन-काल था। अनुराधपुर के महाविहार में जाकर उन्होंने महाप्रधान नामक भवन में संघपाल स्थविर द्वारा सम्पूर्ण सिंहली अट्ठकथा-ग्रन्थ तथा स्थविरवाद का श्रवण किया। जब बुद्धघोष को निश्चय हो गया कि भगवान् बुद्ध का यही आशय है (धम्मसामिस्स एसो 'व अधिप्पायो'ति निच्छिय), तब उन्होंने सम्पूर्ण भिक्षु-संघ को एकत्र कर प्रार्थना की—"भन्ते! तीनों पिटकों की अट्ठकथाएँ मागधी में लिखना चाहता हूँ। कृपापूर्वक मुझे सब ग्रन्थ प्रदान किये जायँ।" भिक्षुसंघ ने बुद्धघोष के ज्ञान की परीक्षा के हेतु—"तुम अपना सामर्थ्य दिखलाओ, तदुपरान्त तुम्हें सम्पूर्ण ग्रन्थ दिए जायँगे।" कहते हुए इन दो गाथाओं को दिया—

"सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो,
चित्तं पञ्ञञ्च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु,
सो इमं विजटये जटं॥ १॥

अन्तो जटा बहि जटा,
जटाय जटिता पजा।
तं तं गोतम पुच्छामि,
को इमं विजटये जटं?"[2] ॥ २॥

बुद्धघोष ने इन दोनों गाथाओं की व्याख्या करते हुए 'विशुद्धिमार्ग' (विसुद्धिमग्ग) ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में प्रदर्शित विद्वत्ता को देखकर महाविहारवासी भिक्षुसंघ ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और उन्हें सिंहली अट्ठकथाओं के साथ सब ग्रन्थों को प्रदान कर दिया। भिक्षुओं

---

१ तत्थ ञाणोदयं नाम कत्वा पकरणं तदा।
धम्मसङ्गणियाकासि कण्डं सो अट्ठसालिनिं॥
परित्तट्ठकथं चेव कातुं आरभि बुद्धिमा।
तं दिस्वा रेवतत्थेरो इदं वचनं अब्रवि॥
पालिमत्तं इधानीतं नत्थि अट्ठकथा इध।
तथाचरियवादा च भिन्नरूपा न विज्जरे॥
सीहलट्ठकथा सुद्धा महिन्देन मतीमता।
संगीतित्तयं आरुल्हं सम्मासम्बुद्धदेसितं॥
कता सीहलभासाय सीहलेसु पवत्तति।
तं तत्थ गन्त्वा सुत्वा त्वं मागधानं निरुत्तिया।
परिवत्तेहि सा होति सब्बलोकहितावहा॥

२. इन गाथाओं का अर्थ देखिये, विशुद्धिमार्ग पृष्ठ १।

को विश्वास हो गया कि बुद्धघोष मैत्रेय बोधिसत्व ही हैं।[1] बुद्धघोष ने ग्रन्थों को प्राप्त कर महाविहार के ग्रन्थाकर परिवेण में रहकर सभी सिंहली अट्ठकथाओं का पालि में अनुवाद किया। इस कार्य के समाप्त होने पर बुद्धघोष ने भारतवर्ष के लिए प्रस्थान किया और जाकर बोधिवृक्ष की पूजा की।[2]

बुद्धघोसुप्पत्ति में आचार्य बुद्धघोष का जीवन-चरित इस प्रकार वर्णित है :—

"बोधिवृक्ष के समीप घोष नामक एक ग्राम था। बहुत से ग्वालों के निवास करने के ही कारण उस ग्राम का नाम घोष पड़ा था। वहाँ एक राजा राज्य करता था। केशी नामक ब्राह्मण उसका बहुत ही प्रिय पुरोहित था। उस ब्राह्मण की स्त्री का नाम केशिनी था।

जब पर्यप्ति-शासन (त्रिपिटक-ग्रन्थ) के सिंहली भाषा में होने के कारण अन्य लोग उसे नहीं जानते थे तब किसी अर्हत् भिक्षु ने विचार किया—"कौन महास्थविर पर्यप्ति-शासन का भाषान्तर सिंहली भाषा से मागधी में करेगा?" उन्होंने तावतिंस भवन में घोषदेवपुत्र को इसके योग्य समझा और जाकर उससे मर्त्यलोक में जन्म लेकर इस कार्य को करने की प्रार्थना की। सातवें दिन घोष-देवपुत्र ने संकल्प करके च्युत हो केशिनी ब्राह्मणी के गर्भ में प्रवेश किया। दस मास व्यतीत होने पर उसका जन्म हुआ।[3] जन्म के समय नौकर-चाकर, ब्राह्मण आदि ने परस्पर "खाइये पीजिये" कहकर सुन्दर घोष किया। इसलिए उस बच्चे का नाम घोषकुमार रखा गया।

वह घोषकुमार सात वर्ष की अवस्था में ही वेदों का अध्ययन कर तीनों वेदों में निष्णात हो गया। वह बड़ा बुद्धिमान् एवं शास्त्र-कुशल था।

एक दिन केशी ब्राह्मण के साथी एक महास्थविर उससे मिलने आए। केशी ने घोषकुमार के आसन को उनके बैठने के लिए बिछा दिया। घोष ने अपने आसन पर महास्थविर को बैठा देख क्रुद्ध सर्प की भाँति भुनभुनाते हुए महास्थविर का आक्रोश किया "यह मुण्डा श्रमण अथवा प्रमाण नहीं जानता है। क्यों पिता जी ने इसे भोजन दिलाया? क्या यह वेदों को जानता है अथवा अन्य मन्त्र को?"

"तात घोष! मैं तुम्हारे वेदों को जानता हूँ और अन्य मन्त्र को भी जानता हूँ।" स्थविर ने हँसते हुए कहा—

"यदि वेदों को जानते हैं तो जरा पाठ कीजिए।

महास्थविर ने तीनों वेदों का पाठ किया। घोष ने लज्जित होकर कहा— 'भन्ते! मैं आपके मन्त्र को जानना चाहता हूँ। अपने मन्त्र का पाठ कीजिए।" महास्थविर ने उसे प्रसन्न करने के लिए अभिधर्म की मातिका का पाठ किया—"कुसला धम्मा अकुसला धम्मा अब्याकता धम्मा।"

घोष ने प्रमुदित हो पूछा—"भन्ते! आप के मन्त्र का क्या नाम है?'

"यह बुद्ध मन्त्र है।

१ निस्सन्देहं न मेत्तेय्योति कत्वा पुनप्पुनं।
नन्दि अन्तकमानसा पाणघाते निरक्खतं॥
२. वन्दित्वा महाबोधिं जम्बुदीपं उपागमि।
३ सत्तमे दिवसे घोसदेवपुत्तो चवित्वा केसिनिया ब्राह्मणिया कुच्छिम्हि पटिसन्धिं गण्हि। दस मासच्चयेन गब्भतो निक्खमि।
४ तेनस्स घोसकुमारोति नामं अकंसु।

"क्या बुद्ध मन्त्र को मेरे जैसे गृहस्थ सीख सकते हैं ?"

"बुद्ध मन्त्र मेरे समान प्रव्रजित द्वारा सीखा जा सकता है, क्योंकि गृहस्थों को बहुत झंझटें होती हैं।"

घोष ने बुद्ध मन्त्र सीखने के लिए माता-पिता से आज्ञा ले स्थविर के पास जा प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और क्रमश तीनों पिटकों का अध्ययन किया। उसने तीनों पिटकों को समाप्त कर बीस वर्ष का हो, उपसम्पदा प्राप्त की। तब से वह सम्पूर्ण भारतवर्ष में 'बुद्धघोष' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[१]

एक दिन एकान्त में बैठे हुए भिक्षु बुद्धघोष के मन में ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—"मेरा ज्ञान अधिक है अथवा मेरे आचार्य का ?" इस बात को आचार्य ने जानकर कहा—"बुद्धघोष ! तुम्हारा ऐसा विचार उचित नहीं है। शीघ्र इसके लिए क्षमा माँगो।"

"भन्ते ! मेरे अपराध के लिए क्षमा कीजिए।" बुद्धघोष ने भयभीत होकर कहा।

"यदि तुम क्षमा चाहते हो तो लंकाद्वीप जाकर बुद्धवचन को सिंहली भाषा से मागधी भाषा में करो।"

बुद्धघोष ने माता-पिता से भेंटकर उन्हें भी बुद्ध धर्म में प्रतिष्ठित किया और गुरु को प्रणाम कर लङ्का के लिए प्रस्थान कर दिया। व्यापारियों के साथ नौका पर चढ़े। बुद्धघोष के निकलने के दिन ही बुद्धदत्त महास्थविर ने भी लङ्काद्वीप से भारतवर्ष आने के लिए व्यापारियों के साथ प्रस्थान किया था।[२] दोनों स्थविरों की नौकायें समुद्र में आमने-सामने मिलीं। बुद्धदत्त ने बुद्धघोष को देखकर पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"बुद्धघोष।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

"लंकाद्वीप जा रहा हूँ।"

"किसलिए ?"

"बुद्धशासन सिंहली भाषा में है, उसे मागधी में भाषान्तर करने के लिए।"

"बुद्ध-शासन को मागधी भाषा में करने के लिए मैं भी भेजा गया था। मैंने जिनालङ्कार, दन्तधातु और बोधिवंश को ही लिखा है, अट्ठकथा और टीकाग्रन्थों को नहीं। यदि तुम सिंहली भाषा से बुद्धशासन को मागधी में करना चाहते हो तो तीनों पिटकों की अट्ठकथाएँ और टीकायें लिखो।" बुद्धदत्त ने ऐसा कह कर हर्रे, लौह-लेखनी तथा शिला देकर बुद्धघोषका अनुमोदन कर विदा किया और जाते समय कहा—"आवुस बुद्धघोष ! मै अल्पायु हूँ, बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहूँगा, इसलिए शासन का भाषान्तर नहीं कर सकता हूँ। तुम्हीं भली प्रकार करो।"[३]

बुद्धदत्त व्यापारियों के साथ भारत आए और कुछ ही दिन के पश्चात् मर कर तुषित-भवन में उत्पन्न हुए। बुद्धघोष भी व्यापारियों के साथ लङ्काद्वीप गए और द्विजस्थान नामक बन्दरगाह के पास नौका से उतर रहने लगे।

---

१ सो च सकलजम्बुदीपे बुद्धघोसोति नामेन पाकटो होति।

२ तस्स च निक्खमनदिवसे येव बुद्धदत्तमहाथेरोपि लङ्कादीपतो निक्खमन्तो पुन जम्बुदीप आगमामाति चिन्तेत्वा सह वाणिजेहि नाव आरुहित्वा आगतो व होति।

३ आवुसो बुद्धघोस, अह अप्पायुको, न चिर जीवामि। तस्मा न सक्कोमि सासन कातु। त्व येव साधु करोहीति आह।

लंका के राजा ने बुद्धघोष की कीर्ति सुनी और उन्हें अपने यहाँ बुलाया। एक दिन वे महास्थविर को प्रणाम करने गए। महास्थविर ने उनकी विद्वता पर प्रसन्न होकर उन्हें अध्यापन-कार्य करने के लिए कहा। तब उन्होंने निवेदन करते हुए अपने उद्देश्य को बतलाया कि मैं भारत से यहाँ सिंहली अट्ठकथाओं को मागधी में भाषान्तर करने के लिए आया हूँ।

महास्थविर ने उनकी बात सुन प्रसन्न हो कहा "यदि तुम सिंहली अट्ठकथाओं को मागधी में करना चाहते हो तो पहले इन दो गाथाओं को लेकर त्रिपिटक-ज्ञान को दिखलाओ।" और 'सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो' गाथा-द्वय को दिया। बुद्धघोष ने इन्हीं दोनों गाथाओं को लेकर "विसुद्धि मार्ग" जैसे महाग्रन्थ की रचना की।

तब महास्थविर ने उन्हें रहने के लिए लोह-प्रासाद की निचली मंजिल में स्थान दिया और वहाँ रह कर उन्होंने सभी सिंहली अट्ठकथाओं को मागधी में किया। महास्थविर ने मागधी में लिखे गए इन ग्रन्थों को परम उपयोगी देखकर महामहेन्द्र स्थविर द्वारा लिखे गए सिंहली ग्रन्थों को महाचैत्य (सुवर्णमाली) के पास परिशुद्ध स्थान में रखवा कर जलवा दिया।

उसके पश्चात् बुद्धघोष भिक्षुसंघ से आज्ञा ले भारत लौट आए।

बोधिवृक्ष के पास ही उनकी मृत्यु हुई और वहीं पर उनकी अस्थियों को लेकर एक स्तूप बनाया गया।[४]

चूलवंश तथा बुद्धघोसुप्पत्ति—दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि बुद्धघोष का जन्म बुद्धगया के पास हुआ था। उन्होंने संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया था और प्रव्रजित होकर अपने आचार्य के आदेश से लंका गए थे। लंका में रहकर उन्होंने सिंहली अट्ठकथा ग्रन्थों का श्रवण किया तथा आचार्य-परम्परा को सुना। तदुपरान्त विसुद्धिमार्ग की रचना की और उसके पश्चात् सिंहली अट्ठकथाओं का पालि में भाषान्तर किया। इस कार्य को समाप्त कर वे पुनः भारत लौट आए। उनका देहान्त भी बुद्धगया में ही हुआ। बुद्धघोसुप्पत्ति का यह कथन सर्वथा अशुद्ध है कि बुद्धघोष का बचपन से ही घोषकुमार नाम था क्योंकि विसुद्धिमार्ग के अन्त में आया है— 'बुद्धघोसोति गरूहि गहितनामधेय्येन थेरेन मोरण्डखेटक वत्तब्बेन कतो विसुद्धिमग्गो नाम।' इससे स्पष्ट है कि 'बुद्धघोष' उनके गुरु द्वारा प्रदत्त नाम था जो उन्हें प्रव्रज्या के पश्चात् प्राप्त हुआ था।

चूलवंस के अनुसार बुद्धघोष महानाम के समय में लंका गये थे। महानाम बुद्धाब्द ९७५ (ई० सन् ४१२) में राजसिंहासन पर बैठा था और बुद्धाब्द ९९० (ई० सन् ४२७) तक राज्य किया था। बुद्धघोष उपसम्पन्न होकर लंका गए थे अर्थात् उनकी लंकायात्रा बीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् हुई थी क्योंकि उपसम्पदा बीस वर्ष से कम की अवस्था में नहीं होती है। यदि हम मान लें कि बुद्धघोष २५ वर्ष की अवस्था में लंका गए, उस समय वहाँ महानाम राज्य कर रहा था और उसी के राज्य-काल में अपना कार्य-समाप्त कर भारत लौट भी आए, तो कम से कम पन्द्रह वर्ष अवश्य ही उन्हें लंका में रहना पड़ा होगा और इस प्रकार उनका जन्म लगभग ई० सन् ३८० (बुद्धाब्द ९४३) में हुआ होगा। इस प्रकार प्रगट है कि बुद्धघोष भारत के गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के समय में हुए[५]।

[illegible] धातुयो गहेत्वा महाबोधिसमीपे [illegible] निदहित्वा थूपं कारेसुं।

५ अथ 'गुरुओं द्वारा बुद्धघोष' [illegible] मोरण्डखेटक के निवासी स्थविर ने इस विसुद्धिमार्ग को लिखा।

डा० विंटरनित्स ने महानाम का समय ई० सन् ४१२ से ४२५ तक निर्धारित किया है। उन्होंने अपने पक्ष के प्रमाण में लिखा है कि बुद्धघोष का समकालीन महानाम पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राज्य करता था। ४२८ ई० में चीन देश के राजा ने उसके पास अपना दूत भेजा था। इसलिए महानाम का समय ४१२ से ४२५ ई० तक माना जाता है। बुद्धघोष का भी यही समय है। इसकी पुष्टि इस घटना से होती है कि बुद्धघोष द्वारा लिखित विनयपिटक की अट्ठकथा 'समन्तपासादिका' का चीनी भाषा में अनुवाद ४८९ ई० में हुआ था।[1]

यदि इस पक्ष को भी मान लें, तो भी बुद्धघोष का जन्म चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में ही हुआ था और वे ई० सन् की पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे। फिर भी, लंका के इतिहासज्ञ महानाम का समय ई० सन् ४०२ से ४२४ ही मानते हैं।[2] भिक्षु-परम्परागत इतिहास और आचार्य-परम्परा से भी पूर्व-पक्ष ही स्थिर होता है, अतः बुद्धघोष का जन्म ३८० ई० के आसपास मानना ही समुचित है। यदि हम उन्हें ६० वर्ष की अवस्था तक जीवित रहना मान लें, तो उनकी मृत्यु लगभग ४४० ई० के आसपास अर्थात् कुमारगुप्त प्रथम (ई० सन् ४१३–४५५) के समय में हुई। इस प्रकार बुद्धघोष का जीवन काल ई० सन् ३८० से ४४० तक माना जाना चाहिए।

विनयपिटक की अट्ठकथा "समन्तपासादिका" के अन्त में बुद्धघोष ने लिखा है —

"पालयन्तस्स सकलं लंकादीपं निरब्बुदं।
रञ्ञो सिरिनिवासस्स सिरिपाल यसस्सिनो॥
समवीसतिमे खेमे जयसंवच्छरे अयं।
आरद्धा एकवीसम्हि सम्पत्ते परिनिट्ठिता॥"

यह श्रीनिवास कौन था? चूलवंश आदि ग्रन्थों में कोई वर्णन उपलब्ध नहीं। सम्भव है यह भी महानाम का ही नाम हो। यदि श्रीनिवास महानाम ही है, तो बुद्धघोष ने उसके सिंहासन पर बैठने के बीसवें वर्ष में समन्तपासादिका को लिखना प्रारम्भ किया था। अर्थात् ४२२ में उन्होंने इस ग्रन्थ को लिखना आरम्भ कर ४२३ में समाप्त किया। इससे ज्ञात होता है कि बुद्धघोष ४२३ तक लंका में ही थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि बुद्धघोष ने समन्तपासादिका को सर्वप्रथम लिखा, यदि यह बात ठीक हो, तो बुद्धघोष लंका में ४३५ ई० के आसपास तक अवश्य ही रहे होंगे और उन्हीं के समय में तामिलों ने लंका पर अधिकार किया होगा।

'बुद्धघोष कहाँ के रहने वाले थे?' इस प्रश्न को लेकर स्वर्गीय आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी ने अपने द्वारा सम्पादित 'विसुद्धिमग्ग' की भूमिका में लिखा है कि बुद्धघोष उत्तर भारत के नहीं हो सकते। उन्होंने यह भी लिखा है कि वे तेलगू प्रदेश के तैलंग ब्राह्मण थे और उनका उत्पत्ति-ग्राम मोरण्डखेड़ा था।[3] उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किए हैं —

(१) बुद्धघोष की रचनाओं में उत्तर भारत का आँखो देखा कोई वर्णन नहीं है, उन्हें उत्तर भारत की गर्मी का भी अनुभव नहीं था। उन्होंने मगध और विदेह के मध्य गंगा में बालू

---

१ डा० विंटरनित्स हिस्ट्री भाग २, पृष्ठ १९०।

२ देखिये, श्री डी० एच० एस० अबयरत्न द्वारा सम्पादित 'सिंहल महावंशय' पृष्ठ १५७ ५८ तथा भूमिका पृष्ठ ६।

३. देखिये, भूमिका, पृष्ठ १५।

के दोषों का होना लिखा है, और ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने लंका की परिचित नदी "महावली गंगा' का ही वर्णन किया है भारत की गंगा का नहीं।

(२) बुद्धघोष ब्राह्मण भी नहीं थे क्योंकि उन्हें ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का भी ज्ञान नहीं था। तत्कालीन प्रत्येक ब्राह्मण के लिए जिस ज्ञान का अपेक्षित था।

(३) संस्कृत साहित्य के 'मूगता' शब्द का भी उन्हें ज्ञान नहीं था क्योंकि उन्होंने मूगतुर्गो' शब्द का अर्थ अशुद्ध किया है।

(४) बुद्धघोष को पतञ्जलि-दर्शन आदि का ज्ञान भी बहुत थोड़ा था।

(५) रामायण तथा महाभारत से भी परिचय नहीं था क्योंकि उन्होंने इनका केवल उल्लेख मात्र किया है।

(६) विसुद्धिमग्ग के अन्त में "मोरण्डखेटक वत्तब्बेन' आए हुए वचन से भी यही प्रमाणित होता है कि बुद्धघोष दक्षिण भारत के रहने वाले थे।

(७) मनोरथपूरणी पपञ्चसूदनी आदि अट्ठकथाओं में लिखे गए निदान एवं निगमन गाथाओं से भी बुद्धघोष का सम्बन्ध दक्षिण भारत से ही था—ऐसा ज्ञात होता है।

कौसाम्बी जी ने जिन बातों का उल्लेख करते हुए बुद्धघोष के सम्बन्ध में अपने मत की पुष्टि की है उनपर क्रमशः हम यहाँ विचार करेंगे।

बुद्धघोष को उत्तर भारत का पूर्ण ज्ञान था इस बात को उनकी अट्ठकथाओं से ही जाना जा सकता है। उनकी अट्ठकथाएँ उत्तर भारत का भौगोलिक दिग्दर्शन हैं। उन्होंने श्रावस्ती ऋषिपतन मृगदाय कुसीनगर राजगृह बुद्धगया आदि प्रायः सभी स्थानों का सुन्दर वर्णन किया है और दिशा तथा दूरी का भी उल्लेख किया है। विशाख स्थविर[1] की कथा का उल्लेख कौसाम्बी जी ने जो किया है उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं जिससे बुद्धघोष का उत्तर भारत के प्रति अज्ञानता प्रदर्शित हो। गंगा नदी में मगध और विदेह के मध्य बुद्धघोष ने जो बालू का ढेर होने की बात लिखी है उसे केवल अर्थ को स्पष्ट करने के लिए लिखा है यहाँ भौगोलिक दिग्दर्शन की कोई आवश्यकता नहीं।

कौसाम्बी जी ने "उण्हसमाभितत्तभिसन्तापरम। तस्स वनतराणादिसु सम्मवो वेदितब्बो" विसुद्धिमग्ग[4] में आये इस वाक्य को लेकर कहा है कि बुद्धघोष को उत्तर भारत की गर्मी का भी अनुभव नहीं था। हमने इसका विस्तार पूर्वक उत्तर विसुद्धिमग्ग की पादटिप्पणी में दे दिया है और लिखा है कि यदि कौसाम्बी जी ने 'आतप' और 'वात' शब्दों पर ध्यान दिया होता तो ऐसी असाधारण त्रुटि न हो पाती।

'बुद्धघोष ब्राह्मण नहीं थे। इसकी पुष्टि के लिए कौसाम्बी जी ने दो बातों का उल्लेख किया है—(१) उन्हें ऋग्वेद के पुरुषसूक्त का ज्ञान नहीं था और (२) उन्होंने गृहपति का इतर-वर्गों की प्रशंसा की है।

---

१ देखिए विसुद्धिमार्ग पृष्ठ २७८-७।

२ तन् हि गोतमस्सेम' 'ममा मग्गाप गुण्णं विस्सन्दानत्थं है धीनि मानिकवत्थानि सम्मवन्ते भवानि अम्मु। पपञ्चसूदनी १ ४ ४।

३ देखिए पृष्ठ १२।

४ देखिए विसुद्धिमार्ग पृष्ठ ११ की पादटिप्पणी संख्या २।

हम देखते हैं कि कौशाम्बी जी द्वारा उदाहृत ऋचा ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में चारों वर्णों के निर्माण के सम्बन्ध में मिलती है, जो इस प्रकार है :—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥[1]

अर्थ—ब्राह्मण उसका मुख था, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा और शूद्र पैर से उत्पन्न हुआ था।

मूल त्रिपिटक-पालि से विदित है कि बुद्धकाल मे ऐसी मान्यता थी कि ब्राह्मणो की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई है, क्षत्रियो की कर से, वैश्यो की नाभी से, शूद्रो की घुटने से और श्रमणो की पैर से। दीघनिकाय के अम्बट्ठसुत्त मे अम्बष्ठ ब्राह्मण-युवक द्वारा कहा गया है—"हे गौतम! जो ये मुण्डे, श्रमण, काले, ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हैं, उनकी बातचीत मेरे साथ ऐसे ही होती है।[2]

और भी —

" ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, दूसरे वर्ण छोटे होते हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण है, दूसरे वर्ण कृष्ण है। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अ-ब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्मनिर्मित और ब्रह्मा के दायाद (=उत्तराधिकारी) हैं। ऐसे तुम लोग श्रेष्ठ वर्ण को त्याग कर नीच वर्ण वाले हो गए, ऐसा ठीक नहीं, उचित नहीं।"[3]

ऐसे पाठों के रहते हुए बुद्धघोष इनके विपरीत तत्कालीन ब्राह्मण-ग्रन्थो का अवलम्बन नहीं कर सकते थे। बुद्धकालीन बात को ही उन्होंने अंगीकार किया। यह भी सम्भव है कि उक्त ऋचा का स्वरूप पीछे ब्राह्मण-पण्डितों ने ही परिवर्तित कर दिया हो। यदि ऐसी बात न होती तो बुद्धकाल के ब्राह्मणो के मुख से भी पुरुषसूक्तके विपरीत वर्णन नहीं होता। जो भी हो, बुद्धघोष का यह वर्णन सर्वथा उचित एवं शास्त्रानुमोदित है —

"तेस किर अय लद्धि, ब्राह्मणा ब्रह्मुनो मुखतो निक्खन्ता, खत्तिया उरतो, वेस्सा नाभितो, सुद्दा जानुतो, समणा पिट्ठिपादतोति।"[4]

बुद्धघोष ने गृहपति की जो प्रशंसा की है, उसका भी कारण है। भगवान् बुद्ध ने जहाँ-कहीं भी शील, समाधि एव प्रज्ञा की भावना-विधि दतलाई है, प्राय गृहपति या गृहपति-पुत्र से ही प्रारम्भ की है। जैसे —

"भगवान् ने कहा—"महाराज! जब संसार में तथागत अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या-आचरण से युक्त, सुगत, लोकविद्, अनुत्तर, पुरुषों को दमन करने के लिए अनुपम चाबुक सवार, देव-मनुष्यों के शास्ता, और बुद्ध उत्पन्न होते हैं, वह देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ तथा देवताओं और मनुष्यों के साथ, इस लोक को स्वयं जाने, साक्षात् किए धर्म को उपदेश

१ देखिये, ऋग्वेद १०, ९०, १२, अथर्ववेद १९, ६, ६ और यजुर्वेद ३१, ११।

२ ये च खो ते भो गोतम, मुण्डका समणका इब्भा कण्हा बन्धुपादपच्चा, तेहिपि मे सद्धिं एव कथासल्लापो होति। अम्बट्ठसुत्त, दीघ नि० १, ३।

३. दीघनि० ३, ४ और मज्झिम नि० २, ५, ३।

४ सुमङ्गल विलासिनी १, ३

करते हैं। वह आदि-कल्याण मध्य-कल्याण अन्त-कल्याण धर्म का उपदेश करते हैं। सार्थक स्पष्ट बिल्कुल पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य को बतलाते हैं। उस धर्म को गृहपति या गृहपति का पुत्र या किसी दूसरे कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष सुनता है। वह उस धर्म को सुनकर तथागत के प्रति श्रद्धालु हो जाता है।[1]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि बुद्धघोष ने जो कुछ लिखा है यथार्थ लिखा है और उससे वे ब्राह्मण नहीं थे—ऐसा कदापि सिद्ध नहीं होता।

बुद्धघोष का संस्कृत साहित्य का पूर्ण ज्ञान था। बुद्धघोसुप्पत्ति से विदित है कि लंका के भिक्षु-संघ ने उनके संस्कृत ज्ञान की भी परीक्षा ली थी जिसमें बुद्धघोष निपुण पाये गए।[2] कौसाम्बी जी ने 'भ्रूणहा' शब्द की अनभिज्ञता दिखलाने के लिए 'भूनहुनो' को उद्धृत किया है।

हम देखते हैं कि जो बातें संस्कृत-साहित्य में दूसरे अर्थ में प्रयुक्त हुई हैं वही त्रिपिटक में अन्य अर्थ में हैं। वैसे स्थलों पर बुद्धघोष ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया है। वहाँ उनकी प्रतिभा का ज्ञान किसी भी चिन्तनशील पाठक को हो सकता है। ऐसे स्थलों पर उन्होंने अपने समसामयिक संस्कृत-साहित्य की अपेक्षा कर बुद्धकालीन ब्राह्मण-साहित्य पर ही ध्यान दिया है। उदाहरणार्थ बुद्धघोष के समय में महाभारत में 'भ्रूणहा' शब्द "ब्रह्मभ्रूण हन्तेषु" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था। यथा :—

'ऋतुं वै याचमानाया न ददाति पुमान् वृतः।
भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स इह ब्रह्मवादिभिः॥
अभिकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।
नोपैति स च धर्मेषु भ्रूणहेत्युच्यते बुधैः॥'[3]

मनु ने भी इस शब्द का प्रयोग दूसरे ही अर्थ में किया था :—

"अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी।"[4]

यही शब्द पालि साहित्य में दूसरे अर्थ में प्रयुक्त था। सम्भवतः तत्कालीन वैदिक और ब्राह्मण साहित्य में पालि में आये हुए अर्थ में ही 'भ्रूणहा' शब्द का व्यवहार था जो इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है :—

'एक समय भगवान् कुरुदेश के कम्मासदम्म नामक कुरुओं के निगम में भारद्वाज-गोत्र वाले ब्राह्मण की अग्निशाला में तृणासन पर विहार कर रहे थे। तब भगवान् ने पूर्वाह्न के समय पात्र चीवर ले कम्मासदम्म में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। कम्मासदम्म में भिक्षाटन कर भोजन से निवृत्त हो दिन के विहार के लिए वे एक वन में गए। जाकर एक पेड़ के नीचे बैठे।

उस समय मागन्दिय परिव्राजक घूमता-घामता जहाँ भारद्वाज-गोत्र वाले ब्राह्मण की अग्निशाला थी वहाँ गया। उसने अग्निशाला में तृण का आसन बिछा देख भारद्वाज गोत्र वाले ब्राह्मण से कहा—

---

१ देखिये, हिन्दी दीघ नि० पृष्ठ २१।
२. बुद्धघोसुप्पत्ति छट्ठमो परिच्छेदो पृष्ठ ५४।
३ महाभारत आदि पर्व १ ८३ ३४।
४ मनु० ८. ३१७।

"आप भारद्वाज की अग्निशाला में किसका तृणासन बिछा हुआ है, श्रमण का जैसा जान पड़ता है ?"

"हे मागन्दिय ! शाक्य-पुत्र, शाक्य-कुल से प्रव्रजित जो श्रमण गौतम है, उन्हीं के लिए यह शय्या बिछी है।"

"हे भारद्वाज ! यह बुरा देखना हुआ, जो हमने भ्रूणहा (भूनहू) गौतम की शय्या को देखा।"

"रोको इस वचन को मागन्दिय ! रोको इस वचन को मागन्दिय ! उन गौतम के ऊपर क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य सभी पण्डित श्रद्धावान् हैं।"

"हे भारद्वाज ! यदि मैं गौतम को सामने भी देखता तो उनके सामने भी उन्हें भ्रूणहा (भूनहू) ही कहता। सो किस कारण ? ऐसा ही हमारे सूत्रों में आता है।"[1]

"यदि मागन्दिय ! आपको बुरा न लगे तो इस बात को मैं श्रमण गौतम से कहूँ ?"

"बे-खटके आप भारद्वाज ! मेरी कही बात उनसे कहें।"

तब भारद्वाज जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और समोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण से भगवान् ने यह कहा—"भारद्वाज ! तृणासन के सम्बन्ध में मागन्दिय परिव्राजक के साथ क्या कुछ बातचीत हुई ?"

ऐसा कहने पर भारद्वाज ब्राह्मण ने सविघ्न और रोमांचित हो भगवान् से कहा—"यही हम आपसे कहनेवाले थे, जो कि आपने स्वयं कह दिया।"

दोनों में ऐसे ही बातचीत हो रही थी कि इतने में मागन्दिय परिव्राजक भी वहाँ आ पहुँचा और सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उससे भगवान् ने यह कहा—"मागन्दिय ! चक्षु अच्छे रूपों को देखकर आनन्दित होनेवाला है, रूप में मुदित रहनेवाला है, वह तथागत का संयत, गुप्त और रक्षित है। तथागत उसके संयम के लिए धर्म का उपदेश करते हैं। मागन्दिय ! यही सोचकर तूने कहा—"श्रमण गौतम भ्रूणहा (भूनहू) है ?"

"हे गौतम ! यही सोचकर मैंने कहा। सो किस हेतु ? ऐसा ही हमारे सूत्रों में आता है।"[2]

इस वार्ता से ज्ञात होता है कि 'भ्रूणहा' शब्द भगवान् के समय में ब्राह्मण-साहित्य में उक्त अर्थ में ही प्रयुक्त था, न कि महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में आये हुए अर्थ में। मागन्दिय सुत्त की अट्ठकथा में बुद्धघोष ने ठीक वही बात कही, जो बुद्ध-कालीन ब्राह्मण-वाङ्मय में व्यवहृत थी। उन्होंने 'भूनहू' शब्द की व्याख्या इस प्रकार लिखी है —

"भूनहुनोति हतवड्ढिनो, मरियादकारकस्स। कस्मा एवमाहु ? छसु द्वारेसु वड्ढिपञ्ञापन-लद्धिकत्ता। अय हि तस्स लद्धि—चक्खु ब्रूहेतब्ब वड्ढेतब्ब अदिट्ठ दक्खितब्ब दिट्ठ समतिक्कमितब्बं। सोत ब्रूहेतब्ब वड्ढेतब्ब अस्सुत सोतब्ब सुत समतिक्कमितब्ब। घान ब्रूहेतब्ब वड्ढेतब्ब अघायित घायितब्ब घायितं समतिक्कमितब्ब। जिह्वा ब्रूहेतब्बा वड्ढेतब्बा असायितं सायितब्ब सायित समतिक्कमितब्ब। कायो ब्रूहेतब्बो वड्ढेतब्बो अफुट्ठ फुसितब्बं फुट्ठं समतिक्कमितब्ब। मनो ब्रूहेतब्बो वड्ढेतब्बो अविञ्ञात विजानितब्ब विञ्ञात समतिक्कमितब्ब। एव सो छसु द्वारेसु वड्ढि पञ्ञापेति।"[3]

---

१ एव हि नो सुत्ते ओचरतीति।
२ मज्झिम नि० २, ३, ५।
३ पपञ्चसूदनी २, ३, ५।

'भूणहा' शब्द त्रिपिटक में अनेक स्थलों पर आया है और सर्वत्र इसी अर्थ में आया है। यथा :—

(१) 'एते पतन्ति निरये उद्धपादा अवंसिरा ।
इसीनं अतिवत्तारो सञ्ञतानं तपस्सिनं ॥
ते भूनहुनो पच्चन्ति मच्छा बिलकता यथा ।
संवच्छरे असङ्ख्येय्ये नरा किब्बिसकारिनो ॥'[1]

(२) 'उम्मत्तिका भविस्सामि
भूनहता पंसुना च परिकिण्णा ।'[2]

(३) 'येवा न ताणाय भवन्तिरस्स ।
मित्तद्दुनो भूनहुनो नरस्स ॥'[3]

(४) पुत्तस्स हि मो पुत्त !
भूनहच्चं कतं मया ॥[4]

पतञ्जलि आदि दर्शन-ग्रन्थों का ज्ञान बुद्धघोष को था। उन्होंने ब्रह्मजाल आदि सूत्रों की अट्ठकथा में उनके मतों पर अच्छा प्रकाश डाला है। अणिमा लघिमा का उल्लेख तो साधारण बात है। रामायण[5] तथा महाभारत का बुद्धघोष ने जहाँ वर्णन किया है वहाँ उससे अधिक वे लिख नहीं सकते थे। वहाँ उनके कथन का भाव केवल इतना ही है कि रामायण तथा महाभारत की कथायें आसक्ति की ओर ले जाने वाली हैं उनमें अहिंसा के स्थान पर हिंसा और वैराग्य के स्थान पर भोग-विलास का वर्णन अधिक है अतः भिक्षुओं को उनके श्रवण-अवलोकन से वंचित रहना उत्तम है। जो भिक्षु घर-बार छोड़ कर अनासक्ति-पथ पर चल रहे हैं उनके लिए बुद्धघोष का कथन अनुकूल ही है। और केवल इतने से ही नहीं कहा जा सकता कि उन्हें रामायण-महाभारत का ज्ञान नहीं था।

'मोरण्डखेटक' शब्द से यह सिद्ध करना कि बुद्धघोष दक्षिण भारतीय थे समुचित नहीं। इस शब्द का अर्थ उत्तर भारत के शब्दों से भी लग सकता है।

हम देखते हैं कि 'मोरण्डखेटक वण्णेन' विसुद्धिमार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी भी अट्ठकथा में नहीं आया है। अन्य सारा पाठ सब ग्रन्थों में समान है। विसुद्धिमार्ग में भी सिंहली संस्करण में 'मोरण्डखेटक वण्णेन' पाठ है और बर्मी संस्करण में "मुदन्त खेटक वण्णेन"। कौसाम्बी जी के देवनागरी संस्करण में 'मोरण्डखेटक वण्णेन' पाठ है। वास्तव में यह अन्तिम पाठ—जो बुद्धघोष की प्रशंसा में लिखा गया है पीछे के किसी आचार्य द्वारा लिखा गया है। जिस बुद्धघोष ने अपने सम्बन्ध में कुछ भी लिखना उचित नहीं समझा और नहीं लिखा वे स्वयं अपने गुरुओं. श्री. धर्मसेन. मे. बुद्ध भी. भदन्त न. ..., भद. मस्मान नहीं। ¹. मोरण्डखेटक, मोरण्डखेटक थ.

---

१ संकिच्च जातक ११ २।

२. लम्पदास जातक २२ ५।

३ भूरिदत्त जातक २२ ६।

४ महावेस्सन्तर जातक २२ १ ।

५. अस्मानन्ति भारतरामायणादि। स यस्मिं ठाने कथियति, तत्थ गन्तुं न वट्टति—सुमंगल विलासिनी १ १।

मुदन्तखेदक शब्द से बुद्धघोष के उत्तर भारतीय नहीं होने का सन्देह करना समुचित नहीं, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं है और दीघनिकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अगुत्तर निकाय, खुद्दक निकाय आदि ग्रन्थों की किसी भी अट्ठकथा में यह शब्द उपलब्ध नहीं है।

बुद्धघोष ने मज्झिम निकाय की अट्ठकथा में लिखा है —

"आयाचितो सुमतिना थेरेन भदन्त बुद्धमित्तेन।
पुब्बे मयूरसुत्तपट्टनम्हि सद्धिं वसन्तेन॥
परवादिवादविद्धंसनस्स मज्झिमनिकायसेट्ठस्स।
यमहं पपञ्चसूदनियट्ठकथं कातुमारद्धो॥"

इससे प्रकट होता है कि बुद्धघोष लंका जाने से पूर्व मयूरसुत्त बन्दरगाह पर भदन्त बुद्धमित्र के साथ कुछ दिन रहे थे और उनकी प्रार्थना पर ही उन्होंने मज्झिम निकाय की अट्ठकथा लिखी।

अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा से प्रगट है कि पहले बुद्धघोष काञ्जीवरम् में भदन्त ज्योतिपाल के साथ रहे थे और उन्हीं की प्रार्थना पर उन्होंने मनोरथपूरणी को लिखा।

"आयाचितो सुमतिना थेरेन भदन्त जोतिपालेन।
कञ्चीपुरादिसु मया पुब्बे सद्धिं वसन्तेन॥
वर तम्बपण्णिदीपे महाविहारम्हि वसनकालेपि।
वाताहते विय दुमे पलुज्जमानम्हि सद्धम्मे॥
पारं पिटकत्तयसागरस्स गन्त्वा ठितेन सुब्बतिना।
परिसुद्धाजीवेनाभियाचितो जीवकेनापि॥
धम्मकथानयनिपुणेहि धम्मकथिकेहि अपरिमाणेहि।
परिकीळितस्स पटिपज्जितस्स सकसमयचित्रस्स॥
अट्ठकथं अगुत्तर निकायस्स कातुमारद्धो।
यमहं चिरकालट्ठितिमिच्छन्तो सासनवरस्स॥"

ऐसा जान पड़ता है कि बुद्धघोष बुद्धगया से प्रस्थान कर दक्षिण भारत होते हुए लंका गए थे और मार्ग में अनेक विहारों में उन्होंने निवास किया था तथा अपने लंका जाने का उद्देश्य भी वहाँ के भिक्षुओं से कहा था। उन भिक्षुओं ने उनके उद्देश्य को जानकर उनकी प्रशंसा की थी और अट्ठकथाओं को लिखने की भी प्रार्थना की थी। बुद्धघोष ने काञ्जीवरम्, मयूरसुत्त बन्दरगाह के विहार आदि में कुछ दिन व्यतीत किया था। वहीं पर उन्हें भिक्षु बुद्धमित्र तथा भदन्त ज्योतिपाल से लंका जाने से पूर्व ही भेंट हुई थी।

आचार्य-परम्परा और लंका का इतिहास भी इसी बात की पुष्टि करता है। बुद्धघोसुप्पत्ति नामक ग्रन्थ में लिखा है—"पुब्बाचरियान सन्तिका यथापरियत्तिं पञ्जाय" अर्थात् पूर्व के आचार्यों के पास पर्य्याप्ति-धर्म को भली प्रकार जानकर इस ग्रन्थ को लिखा गया है। तात्पर्य, जितने भी ऐतिहासिक अथवा परम्परागत सूत्र हैं, सभी बुद्धघोष को उत्तर भारतीय ही मानते हैं।

बर्मा के आचार्यों का कथन है कि बुद्धघोष सिंहली अट्ठकथाओं को लिखने के पश्चात् धर्म-प्रचारार्थ बर्मा गये और वहाँ बहुत दिनों तक रहे। किन्तु, इस बात का उल्लेख किसी इतिहास-ग्रन्थ में नहीं मिलता और न तो जनश्रुति के अतिरिक्त दूसरा ही कोई प्रमाण इस सम्बन्ध में प्राप्त

है। कम्बोडिया के बौद्धों का कहना है कि बुद्धघोष कम्बोडिया गये थे और वहीं पर उनका परिनिर्वाण हुआ था। डा० विमलाचरण लाहा ने लिखा है कि कम्बोडिया में 'बुद्धघोष विहार' नामक एक अत्यन्त प्राचीन विहार है जिसमें बुद्धघोष ने वास किया था और वहीं उनके अन्तिम दिन व्यतीत हुए थे।[१]

बुद्धघोष की रचनायें

आचार्य बुद्धघोष ने जिन ग्रन्थों की रचनाएँ कीं उनमें से 'ञाणोदय' और 'विसुद्धिमार्ग' के अतिरिक्त शेष सभी अट्ठकथाएँ थीं। विसुद्धिमार्ग को भी 'विसुद्धिमग्गट्ठकथा' ही कहते हैं किन्तु यह दीघनिकाय की अट्ठकथा सुमङ्गल विलासिनी आदि के समान कोई भिन्न अट्ठकथा-ग्रन्थ नहीं है। इसकी वर्णन-शैली में अट्ठकथा-ग्रन्थों की विधि का अनुसरण किया गया है। कहा जाता है कि बुद्धघोष ने अपने सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ विसुद्धिमार्ग की रचना में 'विमुक्ति-मार्ग' नामक ग्रन्थ को आधार बनाया था जिसके लेखक उपतिष्य स्थविर थे और जो प्रथम शताब्दी ईस्वी में लिखा गया था। वह अब केवल चीनी अनुवाद के रूप में ही उपलब्ध है जो कि पाँचवीं शताब्दी का है। बुद्धघोष के सभी ग्रन्थ चीन में पहुँचे थे और उनका चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। चीनी भाषा का ग्रन्थ 'सुदर्शन विभाषा' उनकी समन्तपासादिका का ही अनुवाद है। 'शासन वंस' के अनुसार बुद्धघोष ने 'पिटकत्तयलक्खण' नामक भी एक ग्रन्थ लिखा था जो सम्प्रति प्राप्य नहीं है। कुप्पूस्वामी शास्त्री ने लिखा है कि 'पदयूड़ा-मणि' नामक ग्रन्थ भी बुद्धघोष की ही रचना है किन्तु विद्वानों ने अनेक अकाट्य प्रमाणों से उसे बुद्धघोष की रचना नहीं माना है।[२] बुद्धघोष की रचनाओं की तालिका इस प्रकार है[३]—

प्रकरण ग्रन्थ

१ ञाणोदय — अप्राप्य

स्वतन्त्र-अट्ठकथा-ग्रन्थ

२ विसुद्धिमग्ग

विनयपिटक की अट्ठकथाएँ

मूल-पालि ग्रन्थ	अट्ठकथा का नाम
३ पाराजिका पालि पाचित्तिय पालि चुल्लवग्ग महावग्ग परिवार	समन्तपासादिका (विनय-महा-अट्ठकथा)
४ पातिमोक्ख	कङ्खावितरणी

सुत्तपिटक की अट्ठकथायें

५ दीघनिकाय	सुमङ्गलविलासिनी
६ मज्झिम निकाय	पपञ्चसूदनी

---

१ दि लाइफ एण्ड वर्क आफ बुद्धघोष पृष्ठ ४२ पादटिप्पणी २।

२ त्रिपिटक परीक्षण पृष्ठ १ २।

३ देखिये 'दि लाइफ एण्ड वर्क आफ बुद्धघोष', पृष्ठ ८५–९१।

७. संयुत्त निकाय	सारत्थप्पकासिनी
८. अंगुत्तर निकाय	मनोरथपूरणी
९ खुद्दकपाठ	परमत्थजोतिका
१० सुत्तनिपात	"
११ धम्मपद	"
१२ जातक	"
	(इसे 'जातकट्ठवण्णना' भी कहते हैं)

अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाएँ

१३ धम्मसङ्गणी	अट्ठसालिनी
१४. विभङ्ग	सम्मोहविनोदनी
१५ कथावत्थु पुग्गलपञ्ञत्ति धातुकथा यमक पट्ठान	परमत्थदीपनी (पञ्चप्पकरणट्ठकथा

बुद्धघोष की अट्ठकथाओं का महत्त्व

त्रिपिटक पालि का भलीभाँति अर्थ और कथान्तर जानने के लिए अट्ठकथाओं के अतिरिक्त दूसरा कोई साधन नहीं है। यदि अट्ठकथाएँ न होतीं तो त्रिपिटक के अर्थ का अनर्थ हो गया होता। कथान्तर तो सारे भूल ही गए होते। जातक, धम्मपद आदि की अट्ठकथाएँ कैसे कण्ठस्थ होकर भाणक-परम्परा से भी आ सकतीं"? सम्प्रति स्थविरवादी बौद्ध देशों में अट्ठकथाओं को उसी गौरव और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, जिससे कि पालि त्रिपिटक को। अट्ठकथाओं की भाषा बहुत ही सुन्दर तथा सरल है। अट्ठकथाओं में बुद्ध-कालीन भारत की संस्कृति, राजनीति, कला-कौशल, समाज तथा इतिहास की जानकारी के लिए पर्याप्त सामग्री है। बौद्ध धर्म की उन्नति-अवनति आदि के ज्ञान के लिए तो अट्ठकथाएँ आदर्श हैं।

ये अट्ठकथाएँ, चूँकि महामहेन्द्र द्वारा लिखी गई अट्ठकथाओं के आधार पर लिखी गई थीं, अत इनमें आई सामग्री प्रामाणिक और परम्परागत है। इनकी प्रामाणिकताके कारण ही (१) महा अट्ठकथा, (२) पच्चरिय अट्ठकथा, (३) कुरुन्दि अट्ठकथा, (४) अन्धक अट्ठकथा और (५) सखेप अट्ठकथा—इन पाँचों प्राचीन अट्ठकथाओं की आवश्यकता नहीं रह गई और वे धीरे-धीरे लुप्त हो गईं। बुद्धघोसुप्पत्ति के अनुसार फूँक दी गईं[१] अथवा किसी एक चैत्य में निधान कर दी गईं।[२] बुद्धघोष ने इन अट्ठकथाओं के महत्त्व को बतलाते हुए स्वय लिखा है —

"परम्परा से लाया गया उसका सुन्दर वर्णन जो ताम्रपर्णी (=लंका) द्वीप मे उस द्वीप की भाषा में लिखा गया है, वह शेष प्राणियों के हितार्थ नहीं होता, शायद वह सारे लोकवासियों के

१ ततो पट्ठाय सोपि महिन्दत्थेरेन लिखापितानि गन्थानि रासि कारापेत्वा महाचेतियस्स समीपे परिसुद्धट्ठाने झापेसि —सातवाँ परिच्छेद, पृ० २३।

२. त्रिपिटक परीक्षणय, पृ० १०३।

हितार्थ हो (ऐसी आराधना करने पर) सिंहली भाषा से मनोरम पालि भाषा में भाषान्तर कर, पण्डितों के मन में प्रीति और आनन्द को उत्पन्न करते हुए, अर्थ-धर्म के साथ कहूँगा।"[1]

अट्ठकथाओं की सम्पादन-विधि

बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में चार बातों का क्रम विशेष रूप से अपनाया—(१) सूत्र (२) सूत्रानुलोम (३) आचार्यवाद और (४) अपना मत। चार महाप्रदेशों[2] का भी अतिक्रमण नहीं किया। जो बातें सूत्रों में आई हुई थीं सूत्र के अनुसार हो सकती थीं उस विषय में आचार्यों का जो कुछ वाद-विवाद हुआ था तथा जो अपनी राय होती सबको दिखलाते हुए, निर्णय के साथ अट्ठकथाओं का सम्पादन किया।

'बुद्धघोष ने सिंहली अट्ठकथाओं का पालि भाषा में अनुवाद मात्र किया था'—ऐसा कुछ लोग मानते हैं किन्तु जब हम इस पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि सिंहली अट्ठकथा का अवलम्ब अवश्य लिया गया है उसका अनुवाद मात्र नहीं। यदि अनुवाद मात्र किया गया होता तो नाना मत-मतान्तर नहीं आए होते। जैसे—"विनय अट्ठकथा में यह कहा गया है कि दीघनिकाय-अट्ठकथा में तो।" बुद्धघोष ने अट्ठकथाओं के सम्पादन में महाअट्ठकथा आदि का केवल अनुसरण किया बल्कि कठिन शब्दों और अवर्णित स्थानों की व्याख्या भी की। ऐसा करने में भी विशेषकर त्रिपिटक के सूत्रों का ही अवलम्बन किया। सूत्रों के विरुद्ध किसी भी बात को अट्ठकथा में स्थान नहीं दिया। प्राचीन अट्ठकथाओं में जो महाअट्ठकथा सुत्तपिटक की, पच्चरि अभिधम्मपिटक की और कुरुन्दि विनयपिटक की अट्ठकथाएँ थीं नवीन-सम्पादन में भी क्रमानुसार भाग लिया गया।

एक ताड़पत्र पर लिखित ग्रन्थ 'सद्धम्मसङ्गह' में अट्ठकथाओं के विषय में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है—"आयुष्मान् बुद्धघोष ने सिंहली भाषा से भाषान्तर कर मागधी भाषा में समन्तपासादिका नामक विनय की अट्ठकथा बनाई। उसके बाद सुत्तपिटक में महाअट्ठकथा का अनुवाद कर 'सुमङ्गलविलासिनी' नामक दीघनिकाय की अट्ठकथा, पपञ्चसूदनी नामक मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा, सारत्थप्पकासिनी नामक संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा और मनोरथपूरणी नामक अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा लिखी। तदनन्तर अभिधम्मपिटक में महापच्चरि का अनुवाद करके अट्ठसालिनी नामक धम्मसंगणी की अट्ठकथा, सम्मोहविनोदनी नामक विभङ्ग की अट्ठकथा और परमत्थदीपनी नामक पाँच प्रकरणों की अट्ठकथा बनाई, जिन्हें 'पञ्चप्पकरणट्ठकथा' कहते हैं।"

---

१ परम्पराभता एसा निपुणा अत्थवण्णना ।
या तम्बपण्णिदीपम्हि दीपभासाय सण्ठिता ॥
न साधयति सेसानं सत्तानं हितसम्पदं ।
अप्पेव नाम साधेय्य सब्बलोकस्स सा हितं ॥
पहाय रोपयित्वान तन्तिभासं मनोरमं ।
भासन्तरेन भासिस्सं आवहन्तो विभाविनं ।
मनसो पीतिपामोज्जं अत्थधम्मूपनिस्सितं ति ॥ —धम्मपदट्ठकथा ।

२ महाप्रदेश चार हैं। देखिये, हिन्दी दीघनिकाय पृष्ठ ११५।

बुद्धघोष ने आचार्यवाद के साथ-साथ 'मिलिन्द पञ्ह' से भी बड़ी सहायता ली है। जहाँ-जहाँ आवश्यकता जान पड़ी है, वहाँ-वहाँ मिलिन्द पञ्ह का उद्धरण देकर अपने कथन की पुष्टि की है। पीछे के अट्ठकथा लेखकों ने भी बुद्धघोष के इस क्रम को अपनाया है।

महावंश से भी ऐतिहासिक बातों की पुष्टि के लिए उद्धरण देकर बुद्धघोष ने ऐतिहासिक सत्य की मर्यादा कायम रखी है।

बुद्धघोष को सिंहली अट्ठकथाओं की जो बातें सूत्रानुकूल नहीं जान पड़ीं, उन्होंने उनका सर्वदा त्याग कर दिया है। बुद्धघोष ने स्वयं बहुत से स्थानों पर पुरातन अट्ठकथाओं का दोष दिखलाया है और यह भी कहा है कि ऐसी अशुद्धियाँ पीछे के लेखकों द्वारा हुई हैं—"महाअट्ठकथा में सत्य में भी, झूठ में भी दुष्कृत (= दुक्कट) ही मात्र कहा गया है, वह प्रमादवश लिखा गया है—ऐसा जानना चाहिए।"[१] "किन्तु अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा में पहले वैरी व्यक्ति पर करुणा करनी चाहिए, उस पर चित्त को मृदु करके, निर्धन पर, तत्पश्चात् प्रिय व्यक्ति पर, उसके बाद अपने पर—यह क्रम वर्णित है।"[२]

बुद्धघोष ने कुछ ऐसी बातों को भी अट्ठकथा में स्थान दिया, जो न सूत्रों में ही आई हुई थीं और न तो प्राचीन अट्ठकथाओं में ही। राग आदि चर्या का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—"चूँकि यह चर्या का सब प्रकार से विभावन-विधान न तो पालि में आया हुआ है और न अट्ठकथा में ही, केवल आचार्यों के मतानुसार मैंने कहा है, इसलिए इसे ठीक रूप में नहीं ग्रहण करना चाहिए।"[३] ऐसे ही "यह पुराने लोगों द्वारा विचारा नहीं गया है।"[४] आदि।

प्राचीन अट्ठकथाओं के पाठों में जहाँ बहुत मतभेद दीख पड़ा है, वहाँ उन्होंने—"हमें यह नहीं जँचता, हमारा कथन यह है" लिखा है। बहुत से स्थलों पर बिल्कुल मौन धारण कर लिया है। मूल-पालि-पाठों के सम्बन्ध में भी और अशुद्धपाठों के सम्बन्ध में भी अशुद्ध उल्लेखों को बतलाते गए हैं—"ऐसा भी पाठ है अथवा यही पाठ शुद्ध है यह भी पुराना पाठ है।" इत्यादि।

हम देखते हैं कि बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में बहुत से आचार्यों के मत संगृहीत हैं, जो पुरानी अट्ठकथाओं के समय के नहीं, प्रत्युत बुद्धघोष के समकालीन अथवा कुछ पूर्व काल के थे। उनमें से कुछ के नाम ये हैं —

(१) चूळसीव, इसिदत्त, महासोण आदि स्थविरों के मतभेद और निर्णय[५], (२) निग्रोध-स्थविर[६], (३) चूळ सुधम्म स्थविर[७], (४) त्रैपिटक चूळनाग स्थविर[८], (५) अन्यतम स्थविर[८],

---

१ समन्त पासादिका।

२ विशुद्धिमार्ग, ब्रह्मविहार-निर्देश, पृष्ठ २८१।

३. विशुद्धिमार्ग, पृष्ठ १००।

४ 'अविचारित पोराणेहि'—पपञ्चसूदनी पृष्ठ २४।

५ सम्मोह विनोदनी पृष्ठ ३१४।

६ सम्मोह विनोदनी पृष्ठ ३१७।

७. सम्मोह विनोदनी पृष्ठ ३१९।

८ विशुद्धिमार्ग, पृष्ठ ५०।

(६) महाशीव स्थविर[१] (७) मल्लियदेव स्थविर[२] (८) तिष्यभूति[३] (९) अन्यतम श्रामणेर[४] (१०) महातिष्य[५] (११) दूमातिक स्थविर (१२) अन्यतम स्थविर[६] (१३) तिष्य स्थविर[७] (१४) अन्यतर तरुण भिक्षु[८] (१५) तलङ्गरवासी धम्मदिन्न[९] (१६) फुस्सदेव[१०] (१७) अन्यतर महास्थविर (१८) चूलाभय वा महाभय[१०] (१९) कुम्भतिष्य[११] (२०) महातिष्यभूति (२१) दीघभाणक अभय स्थविर[१२] (२२) पधानिय स्थविर[१३] (२३) महापुस्स स्थविर[१४] (२४) चूलसुम स्थविर[१५] (२५) अन्यतर श्रामणेर।

इनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्होंने स्वयं बुद्धघोष से तद्विषयक वाद-विवाद किया था अथवा बुद्धघोष ने उनके पास जाकर अपने सन्देह दूर किए थे।

अट्ठकथाओं में विशुद्धिमार्ग का स्थान

बुद्धघोष ने विशुद्धिमार्ग को लिखने में ऐसी विद्वता से काम लिया है कि अट्ठकथाओं के पढ़ने में उससे बड़ी सहायता मिलती है। उन्होंने अपनी अट्ठकथाओं में जहाँ कहीं विस्तार करने की बात आई है और यदि उसकी विस्तार-कथा विशुद्धिमार्ग में रही है तो वहाँ यह कह दिया है कि विशुद्धिमार्ग में इसका पर्याप्त वर्णन किया है अतः इसे वहीं देखें। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा के प्रारम्भ में ही विशुद्धिमार्ग का स्थान-निर्देश करते हुए बुद्धघोष ने लिखा है— 'शील-कथा धुताङ्ग-धर्म और सब कर्मस्थान चर्या-विधान के साथ ध्यान-समापत्ति का विस्तार सब अभिज्ञाएँ और प्रज्ञा-संकलन विनय स्कन्ध धातु आयतन इन्द्रिय चार आर्य सत्य प्रत्ययों के आकार की देशना (=प्रतीत्य-समुत्पाद) और पालि के अनुसार ही विपश्यना-भावना—सभी चूँकि परिशुद्ध रूप से मैंने विशुद्धिमार्ग में कह दिया है इसलिए उनका प्रायः यहाँ विचार नहीं करूँगा। यह विशुद्धिमार्ग चारों आगमों (=निकायों) के मध्य रहकर यथोक्त अर्थ को प्रकाशित

---

१ मनोरथपूरणी पृष्ठ २४।

२ मनोरथपूरणी पृष्ठ २२।

३ सम्मोह विनोदनी पृष्ठ २०४।

४ मनोरथपूरणी पृष्ठ ७४।

५. सम्मोह विनोदनी पृष्ठ २८६।

६ पपञ्चसूदनी पृष्ठ ११२।

७ परमत्थदीपनी पृष्ठ १५१।

८ विशुद्धिमार्ग पृष्ठ २०७।

९ पपञ्चसूदनी, पृ. ५,४९, १

१० सारत्थप्पकासिनी पृष्ठ १६५।

११ मनोरथपूरणी पृष्ठ १८४।

१२ पपञ्चसूदनी, पृष्ठ ५५।

१३ पपञ्चसूदनी पृष्ठ ६५।

१४ पपञ्चसूदनी पृष्ठ १४।

१५. विशुद्धिमार्ग, दूसरा भाग, पृष्ठ २७।

करेगा, वह इसीलिए लिखा भी गया है, अत: उसे भी इस अट्ठकथा के साथ लेकर दीघनिकाय के सहारे अर्थ को जानिए।"[1]

मनोरथपूरणी के अन्त में भी—"चूँकि आगमों के अर्थ को प्रकाशित करने के लिए उनसठ (५९) भाणवारों[2] द्वारा 'विशुद्धिमार्ग' को भी लिखा गया है, इसलिए उसके साथ यह अट्ठकथा गाथा की गणना के अनुसार एक सौ तिरपन (१५३) भाणवारोंकी जाननी चाहिए।"[3] यही पाठ थोड़े-बहुत अन्तर से पपञ्चसूदनी आदि अट्ठकथा-ग्रन्थों के प्रारम्भ और अन्त में आए हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि विना विशुद्धिमार्ग के आगम की अट्ठकथाएँ पूर्ण नहीं होतीं। आगम की अट्ठकथाओं में ही इसकी भी गणना होती है, उन्हें पढ़ते समय इसे उनके बीच रखकर पढ़ना उचित है।

विशुद्धिमार्ग की विषय-भूमि

विशुद्धिमार्ग तीन भागों और तेईस परिच्छेदों में विभक्त है। पहला भाग शीलनिर्देश है, जिसमें शील और धुताङ्गों का विशद वर्णन है। दूसरा भाग समाधिनिर्देश है, जिसमें कुल ग्यारह परिच्छेद हैं और क्रमश: कर्मस्थानों के ग्रहण करने की विधि, पृथ्वी कसिण, शेष कसिण, अशुभ कर्मस्थान, छ अनुस्मृति, अनुस्मृति कर्मस्थान, ब्रह्मविहार, आरुप्य, समाधि, ऋद्धिविध और अभिज्ञाओं का वर्णन है। तीसरा भाग प्रज्ञा निर्देश है, जिसमें दस परिच्छेदों का समावेश है और क्रमश: स्कन्ध, आयतन-धातु, इन्द्रिय-सत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद (=प्रज्ञाभूमि निर्देश), दृष्टि-विशुद्धि, कांक्षा-वितरण-विशुद्धि, मार्गामार्गज्ञान-दर्शन-विशुद्धि, प्रतिपदा ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि, ज्ञानदर्शन-विशुद्धि और प्रज्ञा-भावना का आनृशंस (=गुण) वर्णित है।

ग्रन्थ का प्रधान विषय योग है। शीलनिर्देश के प्रारम्भ में लिखा है—"बुद्धधर्म में अत्यन्त दुर्लभ-प्रव्रज्या को पाकर, विशुद्धि (=निर्वाण) के लिए कल्याणकर सीधे मार्ग, और शील आदि के संग्रह को ठीक-ठीक नहीं जाननेवाले, शुद्धि को चाहने वाले भी योगी, बहुत उद्योग करने पर भी उसे नहीं पाते हैं। उनके प्रमोद के लिए बिल्कुल परिशुद्ध महाविहार वासी (भिक्षुओं) के निर्णय के साथ, धर्म के आश्रित हो विशुद्धिमार्ग को कहूँगा।" आचार्य बुद्धघोष ने योगी के मनकी सारी प्रवृत्तियों और अवस्थाओं का ध्यान रखते हुए इस ग्रन्थ को लिखा है। प्रत्येक परिच्छेद के

---

१ इति पन सब्बं यस्मा विसुद्धिमग्गे मया सुपरिसुद्धं।
वुत्तं तस्मा भिय्यो न तं इध विचारयिस्सामि॥
मज्झे विसुद्धिमग्गो एस चतुन्नम्पि आगमानं हि।
ठत्वा पकासयिस्सति तत्थ यथाभासितं अत्थं॥
इच्चेव कतो तस्मा तम्पि गहेत्वान सद्धिमेताय।
अट्ठकथा विजानाथ दीघागमनिस्सितं अत्थन्ति॥

—मनोरथपूरणी, पृष्ठ २।

२ एकूनसट्ठिमत्तो विसुद्धिमग्गोपि भाणवारेहि।
अत्थप्पकासनत्थाय आगमानं कतो यस्मा॥

किन्तु, 'विशुद्धिमार्ग' के अन्त की गाथा में "अंठावन (५८) भाणवार" (निट्ठितो अट्ठपञ्ञास भाणवाराय पालिया) कहा गया है।

३ देखिये, पृष्ठ ८५५।

अन्त में "सज्जनों के प्रमोद के लिए लिखे गए विसुद्धिमार्ग में' कहकर उस परिच्छेद को समा
किया है।

इस ग्रन्थ का विषय प्रधानतः योग होते हुए भी बुद्ध-वचन का गवेषणा-पूर्ण प्रतिपादन और अन्य दर्शनों की बुद्ध-दर्शन से विभिन्नता का दिग्दर्शन किया है। पातञ्जलि सांख्य आदि मतों का भी तुलनात्मक अध्ययन अनेक स्थलों पर प्रस्तुत किया है।[1] पतञ्जलि ऋषि ने अपने योग-दर्शन को (१) समाधिपाद (२) साधनपाद (३) विभूतिपाद और (४) कैवल्यपाद—इन चार भा में विभक्त करके क्रमशः ५१, ५५, ५४ और ३४ सूत्रों को दे दिया है किन्तु योगी को किन-कि अवस्थाओं में क्या-क्या करना चाहिए आदि का वर्णन नहीं किया है जिससे कि योगी ग्रन्थ पढ़कर योग[2] में लग सके। विसुद्धिमार्ग में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक-एक बात को खो कर समझाया गया है जिससे कि योगी को किसी बात में कठिनाई न उत्पन्न हो। सत्रहवें परिच्छे में बुद्धघोष को अपनी योग्यता पर भी शंका उत्पन्न हो गई है तथापि बुद्धवचन के सहारे उन्हों योगी की भावना को उत्कर्ष की ओर ही खींचा है। वहाँ उन्होंने कहा है— "मैं आज यहीं प सद् त्पाद का वर्णन करना चाहते, महासागर में पैठने के समान सहारा नहीं पा रहा हूँ। चूँकि य शासन (बुद्धधर्म) नाना देशना के नयों से प्रतिमण्डित है और पहले के आचार्यों का मार्ग अटू चला आ रहा है इसलिए उन दोनों के सहारे इसका अर्थ-वर्णन करूँगा।"[3]

ग्रन्थ के अन्त में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है— "चूँकि यह 'विसुद्धिमार्ग' सब संकर-दोषों से रहित प्रकाशित किया गया है, इसलिए विशुद्धि को चाहने वाले शुद्धप्रज्ञ योगियों को इसका आदर करना चाहिए।"[4]

विसुद्धिमार्ग की विषय-भूमि को भली प्रकार समझने के लिए प्रत्येक निर्देश में कथि विषय को जानना परम आवश्यक है, अतः हम यहाँ संक्षेप में प्रत्येक निर्देश का सारांश रहे हैं :—

शील निर्देश

एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में विहार करते थे। एक दिन रात्रि

---

१ देखिये, विसुद्धिमार्ग के सत्रहवें परिच्छेद में— 'क्या प्रकृतिवादियों के समान अविद्या अकारण रूप से लोक का मूल कारण है?' और 'लोक में बन्धन-मोक्षण हेतु कहा जाता है।'— यहाँ सांख्य दर्शन के सिद्धान्त का उल्लेख किया है।

२. 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' —योगदर्शन १, २।

३ वत्तुकामो अहं मम पञ्ञाकारणप्पन्नं।
पतिट्ठं नाधिगच्छामि अज्झोगाळ्हो व सागरं॥
सासनं पनिदं नाना-देसना-नयमण्डितं।
पुब्बाचरियमग्गो च अब्बोच्छिन्नो पवत्तति॥
यस्मा तस्मा तदुभयं सन्निस्सायत्थवण्णनं।
आरभिस्सामि एतस्स तं सुणाथ समाहिता॥

४ सब्बसङ्करदोसेहि मुत्तो यस्मा पकासितो।
तस्मा विसुद्धिकामेहि सुद्धपञ्ञेहि योगिहि।
विसुद्धिमग्गो एतस्मि करणीयो व आदरोति॥

में किसी देवपुत्रने भगवान् के पास आकर पूछा—"भीतर जटा है, बाहर जटा है, जटा से प्रजा (=प्राणी) जकड़ी हुई है, इसलिए हे गौतम! मैं आप से पूछता हूँ कि कौन इस जटा को काट सकता है?"

भगवान् ने उसको उत्तर देते हुए कहा—"जो नर प्रज्ञावान् है, वीर्यवान् है, पण्डित है, (ससार में भय ही भय देखने वाला) भिक्षु है, वह शील पर प्रतिष्ठित हो चित्त (=समाधि) और प्रज्ञा की भावना करते हुए इस जटा को काट सकता है।"

भगवान् ने अपने छोटे से उत्तर मे शील, समाधि और प्रज्ञा की भावना करने का उपदेश दिया। जो व्यक्ति परिशुद्धशील से युक्त होकर समाधि और प्रज्ञा की भावना करेगा, वही निर्वाण को पा सकता है। वही ससार में घुमाने वाली जटा रूपी तृष्णा का अन्त कर सकता है और यही विशुद्धि अर्थात् निर्वाण का मार्ग है, इसलिए निर्वाण के मार्ग को ही 'विशुद्धि-मार्ग' कहते है। इस मार्ग के तीन भाग हैं—(१) शील (२) समाधि (३) प्रज्ञा। सर्व-प्रथम शील के सम्बन्ध में प्रश्न होते हैं :—

(१) शील क्या है?
(२) किस अर्थ मे शील है?
(३) शील के लक्षण, कार्य, जानने के आकार और प्रत्यय क्या है?
(४) शील का गुण क्या है?
(५) शील कितने प्रकार का है?
(६) शील का मल क्या है?
(७) शील की विशुद्धि क्या है?

जीवहिंसा आदि करने से विरत रहने वाले या उपाध्याय आदि की सेवा-टहल करने वाले के चेतना आदि धर्म शील है। प्रतिसम्भिदा मार्ग में कहा गया है—"शील क्या है? चेतना शील है, सवर शील है, अनुल्लघन शील है।

जीवहिंसा आदि से विरत रहनेवाले या व्रत-प्रतिपत्ति (=व्रताचार) पूर्ण करने वाले की चेतना ही चेतनाशील है। जीवहिंसा आदि से विरत रहनेवाले की विरति चैतसिक शील है।

सवर पाँच प्रकार का होता है—प्रातिमोक्ष सवर, स्मृति संवर, ज्ञान सवर, क्षान्ति संवर और वीर्य सवर। सक्षेप में, इन पाँच प्रकारके संवरों के साथ जो पापसे भय खाने वाले कुलपुत्रों के सम्मुख आई हुई पाप की चीजों से विरति है, वह सभी सवरशील है।

ग्रहण किए हुए शील का काय और वाणी द्वारा उल्लघन न करना ही अनुल्लघनशील है।

शीलन (=आधार, ठहराव) के अर्थ मे शील होता है। काय-कर्म आदि का सयम अर्थात् सुशीलता द्वारा एक जैसे बने रहना या ठहरने के लिए आधार की भाँति कुशल-धर्मों को धारण करना इसका तात्पर्य है।

पश्चात्ताप न करना आदि शील के अनेक गुण हैं। भगवान् ने कहा है—"आनन्द! सुन्दर शील (=सदाचार) पश्चात्तापन करने के लिए है। पश्चात्ताप न करना इसका गुण है।" दूसरा भी कहा है—

"गृहपतियो! शीलवान् के शील पालन करने के पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) यहाँ गृहपतियो! शीलवान्, शील-युक्त व्यक्ति प्रमाद में न पड़ने के कारण बहुत-सी धन-सम्पत्ति को प्राप्त करता है। (२) शीलवान् की ख्याति, नेकनामी फैलती है। (३) वह जिस सभा में जाता

है चाहे क्षत्रियों की सभा हो चाहे ब्राह्मणों की सभा हो चाहे वैश्यों की सभा हो चाहे श्रमणों की सभा हो निर्भीक-निःसंकोच जाता है। (४) बिना बेहोशी को प्राप्त हुए मरता है। (५) मरने के बाद सुगति को प्राप्त होकर स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है।

भगवान् ने और भी कहा है—"भिक्षुओ! यदि भिक्षु चाहे कि मैं सब्रह्मचारियों (=गुरु-भाइयों) का प्रिय मनाप और इज्जत की नजर से देखा जाने वाला होऊँ तो उसे शीलों का ही पालन करना चाहिये।

इस तरह पश्चात्ताप न करना आदि अनेक प्रकार के गुणों की प्राप्ति शील का गुण है।

शील नाना प्रकार का होता है। संक्षेप में कहें तो चार पारिशुद्धि शील में ही सब आ जाते हैं प्रातिमोक्ष संवर शील इन्द्रिय संवर शील आजीव पारिशुद्धि शील और प्रत्यय सन्निश्रित शील—ये चार पारिशुद्धि शील हैं।

प्रातिमोक्ष कहते हैं शिक्षापद शील को। उसके संवर से संवृत रहना आचार-गोचरसे सम्पन्न अणुमात्र भी दोष में भय खाना ही—प्रातिमोक्ष संवरशील कहा जाता है। संवर का अर्थ है रोकना। मन वाणी द्वारा शीलों का उल्लंघन न करने का यह नाम है। आँख से रूप को देखकर, कान से शब्द को सुनकर नाक से गन्ध को सूँघकर जीभ से रस को चखकर, काय से स्पर्श करके, मन से धर्म को जानकर निमित्त और अनुव्यञ्जनों को न ग्रहण करना जिससे कि उन-उन इन्द्रियों में संवर रहित होने पर लोभ-दौर्मनस्य आदि बुरे धर्म उत्पन्न होते हैं उनके संवर के लिए उनका सुरक्षा करना ही इन्द्रिय संवरशील है।

आजीविकाके कारण कहे गए छः शिक्षापदों से आश्रममें डालना रंगबाजी अपने को बढ़ा-चढ़ा कर कहना जिससे कि वह कुछ दे, निमित्त करना अपने लाभ के लिए दूसरोंको बुरा-भला कहना लाभ से लाभ ढूँढ़ना इत्यादि इस प्रकार के बुरे धर्मों के अनुसार होने वाली मिथ्या आजीविका से विरत रहना—आजीव पारिशुद्धि शील है।

चीवर पिण्डपात (=भिक्षान्न) शयनासन ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य—ये चार प्रत्यय कहे जाते हैं। संक्षेप में प्रज्ञा से ठीक-ठीक जानकर सेवन करने को ही प्रत्यय सन्निश्रित शील कहते हैं। चूँकि इनके सहारे परिभोग करते हुए प्राणी चलते हैं प्रवर्तित होते हैं जीवित रहते हैं इसलिए ये प्रत्यय कहे जाते हैं। इन प्रत्ययों के सन्निश्रित होना ही प्रत्यय सन्निश्रित शील है।

इन इन चारों प्रकार के शीलों में जैसे शिक्षापद बतलाए गए हैं वैसे श्रद्धापूर्वक प्राति-मोक्ष संवर को अपने जीवन की चाह न करते हुए भलीभाँति पूर्ण करना चाहिए। कहा है:—

किकी व अण्डं चमरी व वालधिं
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका
सुपेसला होथ सदा सगारवा॥

[जैसे टिटहरी अपने अण्डे की चमरी अपनी पूँछ की माँ इकलौते प्रिय पुत्र की काना अपनी इकली आँख की रक्षा करता है वैसे ही शील की भली-भाँति रक्षा करते हुए शील के प्रति सर्वदा प्रेम और गौरव करने वाले होओ।]

जिस प्रकार प्रातिमोक्ष संवर श्रद्धा से उसी प्रकार स्मृति से इन्द्रिय संवर को पूर्ण करना चाहिए। चूँकि स्मृति से बचाई गई इन्द्रियाँ लोभ आदि से नहीं पकड़ी जाती हैं अतः यह स्मृति

से पूर्ण किया जाने वाला है। आजीव-पारिशुद्धि को वीर्य से पूर्ण करना चाहिए तथा प्रत्यय सन्नि-श्रित शील को प्रज्ञा से।

इस प्रकार जानकर आदर के साथ शील को परिशुद्ध करना चाहिए। जिन अल्पेच्छ, सन्तोष आदि गुणों से उक्त प्रकार के शील की पारिशुद्धि होती है, उन गुणों को पूर्ण करने के लिए योगी को चाहिए कि तेरह धुताङ्गों में से अपने अनुकूल धुताङ्ग का पालन करे।

धुताङ्ग-निर्देश

जिन कुलपुत्रों ने लाभ-सत्कार आदि का त्याग कर दिया है, शरीर और जीवन के प्रति ममता-रहित हैं, उन अनुलोम प्रतिपद् को पूर्ण करने की इच्छा वालों के लिए भगवान् ने तेरह धुताङ्ग बतलाए हैं —

(१) पांशुकूलिकाङ्ग, (२) त्रैचीवरिकाङ्ग, (३) पिण्डपातिकाङ्ग, (४) सापदान-चारिकाङ्ग, (५) एकासनिकाङ्ग, (६) पात्र-पिण्डिकाङ्ग, (७) खलुपच्छाभत्तिकाङ्ग, (८) आरण्यकाङ्ग, (९) वृक्ष-मूलिकाङ्ग, (१०) अभ्यवकाशिकाङ्ग, (११) श्मशानिकाङ्ग, (१२) यथा-सस्थरिकाङ्ग, (१३) नैसद्यकाङ्ग।

ये सभी ग्रहण करने से क्लेशों को नष्ट कर देने के कारण धुत (=परिशुद्ध) भिक्षु के अग हैं। या क्लेशों को धुन डालने से 'धुत' नाम से कहा जानेवाला ज्ञानांग इन्हे है, इसलिए ये धुताग हैं। अथवा अपने प्रतिपक्षी (=वैरी) को धुनने से ये धुत और प्रतिपत्ति के अग होने से भी धुताग हैं।

इन्हे भगवान् के जीते समय उन्हीं के पास ग्रहण करना चाहिए। उनके परिनिर्वाण के उपरान्त महाश्रावक के पास, उनके न होने पर क्षीणाश्रव, अनागामी, सकृदागामी, स्रोतापन्न, त्रिपिटकधारी, दो-पिटकधारी, एक-पिटकधारी, एक-सगीति (=निकाय) को धारण करनेवाले, अर्थकथाचार्य के पास। उनके नहीं होने पर धुतागधारी के पास। उसके भी नहीं होने पर चैत्य का आँगन झाड़-बुहार कर उकडूँ बैठ, सम्यक् सम्बुद्ध के पास कहने के समान ग्रहण करना चाहिए। स्वय भी ग्रहण करना उचित है।

पांशु का अर्थ धूल है। सड़क, श्मशान, कूड़ा-करकट के ढेर अथवा जहाँ-कहीं पर भी धूल के ऊपर पड़े हुए वस्त्र को पांशुकूल कहते हैं। जो उसे धारण करता है उसे पांशुकूलिक कहा जाता है। पांशुकूलिक का अग ही पांशुकूलिकाग है।

जो भिक्षु पांशुकूलिकाग का व्रत ग्रहण करता है, वह—"गृहस्थों द्वारा दिए गए चीवर को त्यागता हूँ, अथवा पांशुकूलिकाग ग्रहण करता हूँ।" इन दोनों वाक्यों में से किसी एक का अधिष्ठान करता है।

सघाटी, उत्तरासग और अन्तरवासक—भिक्षु के ये तीन वस्त्र हैं। जो भिक्षु केवल इन्हीं को धारण करता है, इनसे अधिक वस्त्र नहीं ग्रहण करता, उसे त्रैचीवरिक कहते हैं और उसका वह धुताग-व्रत त्रैचीवरिकाग कहा जाता है।

भिक्षा के रूप में जो अन्न प्राप्त होता है, उसे पिण्डपात कहते हैं। दूसरों द्वारा दिए गए पिण्डों का पात्र में गिरना ही पिण्डपात है। जो पिण्डपात के लिए घर-घर घूमता है, उसे पिण्ड-पातिक कहते हैं। पिण्डपातिक का अग ही पिण्डपातिकाग है।

गाँव में भिक्षाटन करते समय बिना अन्तर डाले प्रत्येक घर से भिक्षान्न ग्रहण करने को सापदानचारिकांग कहते हैं।

एक ही आसन पर बैठकर भोजन करने को एकासनिक कहते हैं। जो भिक्षु नाना प्रकार के भोजन का त्याग कर एक आसन पर के भोजन को ग्रहण करता है उसका वह व्रत एकासनिकांग कहलाता है। ऐसा भिक्षु जब भोजन करना आरम्भ कर देता है तब उसके पश्चात् दी गई भिक्षा को नहीं ग्रहण करता है।

भिक्षु के पास भोजन करने के लिए केवल पात्र होता है उस पात्र में पड़ा भिक्षान्न पात्र पिण्ड कहलाता है। जो पात्र पिण्ड मात्र से जीवन-यापन करता है उसे पात्र-पिण्डिक कहते हैं। इस धुतांग का पालन ही पात्रपिण्डिकांग कहलाता है।

'खलु' इन्कार करने के अर्थ में निपात है। खा चुकने पर पीछे मिले भात का ही नाम पच्छाभत्त है। उस पीछे पाये भात का खाना पच्छाभत्त भोजन है। अट्ठकथा-ग्रन्थों में कहा गया है— खलु एक पक्षी है। वह मुँह में लिए फल के गिर जाने पर फिर दूसरा नहीं खाता है। वैसा ही खलुपच्छाभत्तिकांग को धारण करनेवाला भिक्षु होता है।'

अरण्य में रहना ही आरण्यकांग है। जो गाँव के शयनासन को छोड़कर जंगलों में रहता है। वह आरण्यक कहा जाता है। उसी के धुतांग का नाम आरण्यकांग है।

वृक्ष के नीचे रहना ही वृक्षमूल है। जो भिक्षु इस व्रत को ग्रहण करता है वह वृक्षमूलिक कहा जाता है। वृक्षमूलिक का अंग ही वृक्षमूलिकांग है। वृक्षमूलिक भिक्षु छाए हुए गृह आदि को त्यागकर केवल वृक्षों के नीचे ही रहता है।

छाए हुए स्थान तथा वृक्ष-मूल को छोड़कर खुले मैदान में रहने के व्रत को अभ्यवकाशिकांग कहते हैं। श्मशान में रहने को ही श्माशानिकांग कहा जाता है।

यह आसन तेरे लिए है इस प्रकार पहले से बिछाये गए आसन को ही यथासंस्तरिक कहते हैं। जो भिक्षु इस धुतांग का पालन करता है वह जो आसन पाता है उसी से सन्तुष्ट रहता है।

लेटने का त्याग कर बैठे रहने को ही नैषद्यकांग कहते हैं। नैषद्यक भिक्षु रात्रि के तीन पहरों में से एक पहर चंक्रमण करता है। चार ईर्यापथों (= सोना, चलना, खड़ा होना और बैठना) में से केवल सोना (= लेटना) ही नहीं है।

कर्मस्थान-ग्रहण-निर्देश

धुतांग का पूर्ण रूप से पालन कर शील में प्रतिष्ठित हुए योगी को समाधि की भावना करनी चाहिए। समाधि-भावना की विधि को दिखाने के लिए ये प्रश्न होते हैं:—

(१) समाधि क्या है?

(२) किस अर्थ में समाधि है?

(३) समाधि का लक्षण, कार्य, जानने का आकार और प्रत्यय क्या है?

(४) समाधि कितने प्रकार की है?

(५) इसका संक्लेश और व्यवदान (= परिशुद्धि) क्या है?

(६) कैसे भावना करनी चाहिए?

कुशल-चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। एक आलम्बन में चित्त-चैतसिकों के बराबर और भली भाँति प्रतिष्ठित होने के अर्थ में समाधि होती है। विक्षेप न होना समाधि का लक्षण है। विक्षेप को मिटाना इसका कार्य है। विकम्पित न होना जानने का आकार है। सुख इसका प्रत्यय है।

समाधि नाना प्रकार की होती है—विक्षेप न होने के लक्षण से तो एक ही प्रकार की है। उपचार-अर्पणा के अनुसार तीन प्रकार की। वैसे ही लौकिक-लोकोत्तर, सप्रीतिक-निष्प्रीतिक और सुख सहगत, उपेक्षा सहगत के अनुसार। तीन प्रकार की होती है हीन, मध्यम, प्रणीत (=उत्तम) के अनुसार। वैसे ही सवितर्क, सविचार आदि, प्रीतिसहगत आदि और परित्र, महद्गत, अप्रमाण के अनुसार। चार प्रकार की दु:खप्रतिपदा-दन्धअभिज्ञा आदि के अनुसार और परित्र, परित्र-आलम्बन आदि, चार ध्यानांग, हानभागीय आदि, कामावचर आदि और अधिपति के अनुसार पाँच प्रकार की पाँच ध्यान के अंगों के अनुसार।

काम-सहगत सञ्ज्ञा का मनस्कार समाधि का संक्लेश और इन अकुशल मनस्कारों का न उत्पन्न होना समाधि का व्यवदान है।

योगी पूर्वोक्त प्रकार से शीलों को शुद्ध करके, अच्छी तरह से परिशुद्ध शील में प्रतिष्ठित होकर, जो उसे दस परिबोधों (= विघ्नों) में से परिबोध हैं, उसे दूर करके, कर्मस्थान देने वाले कल्याण मित्र के पास जाकर, अपनी चर्य्या के अनुकूल चालीस कर्मस्थानों में से किसी एक कर्मस्थान को ग्रहण कर समाधि-भावना के अयोग्य विहार को त्याग कर, योग्य विहार में रहते हुए, छोटे परिबोधों को दूर करके, भावना करने के सम्पूर्ण विधान का पालन करते हुए, समाधि की भावना करनी चाहिए।

आवास, कुल, लाभ, गण, काम, मार्ग, ज्ञाति, रोग, ग्रन्थ और ऋद्धि—ये दस समाधि के परिबोध हैं।

प्रिय, गौरवणीय, आदरणीय, वक्ता, बात सहने वाला, गम्भीर बातोंको बतलाने वाला और अनुचित कामों में नहीं लगाने वाला—इस प्रकारके गुणों से युक्त एकदम हितैषी, उन्नति की ओर ले जाने वाला कर्मस्थान देनेवाला कल्याण मित्र होता है।

चर्य्याएँ छ हैं—(१) राग चर्य्या (२) द्वेष चर्य्या (३) मोह चर्य्या (४) श्रद्धा चर्य्या (५) बुद्धि चर्य्या और (६) वितर्क चर्य्या। इन्हें ईर्य्यापथ (=चालढाल), काम, भोजन, देखने आदि और धर्म की प्रवृत्ति से जानना चाहिए।

चालीस कर्मस्थान ये हैं—(१) दस कसिण (=कृत्स्न) (२) दस अशुभ (३) दस अनुस्मृतियाँ (४) चार ब्रह्मविहार (५) चार आरूप्य (६) एक सञ्ज्ञा और (७) एक व्यवस्थान।

रागचरित वाले के लिए दस अशुभ और कायगतास्मृति—ये ग्यारह कर्मस्थान अनुकूल हैं। द्वेष चरित वाले के लिए चार ब्रह्मविहार और चार वर्णकसिण (नील, पीत, लोहित, अवदात)—ये आठ। मोहचरित और वितर्क चरित वाले के लिए एक अनापान-स्मृति कर्मस्थान ही। श्रद्धाचरित वाले के लिए पहले की छ अनुस्मृतियाँ। उपशमानुस्मृति, चार धातुओं का व्यवस्थान और आहार में प्रतिकूलता की सञ्ज्ञा—ये चार। शेष कसिण और चार आरूप्य सब चरित वालों के लिए अनुकूल हैं। कसिणों में जो कोई छोटा आलम्बन वितर्क चरित वाले और अप्रमाण मोहचरित वाले के लिए।

योगी को अपनी चर्य्या के अनुकूल चालीस कर्मस्थानों में से जिस किसी को ग्रहण करते

गमन करने को भगवान् बुद्ध या आचार्य को सौंप कर विचार और प्रबल श्रद्धा से युक्त होकर कल्याण मित्र से कर्मस्थान माँगना चाहिए।

पृथ्वीकसिण-निर्देश

कल्याण मित्र के पास कर्मस्थान ग्रहण कर, उसकी सारी विधियों को भलीभाँति समझ कर अत्यन्त परिशुद्ध मन द्वारा ही सब दिखाई देने वाले कर्मस्थान को ग्रहण कर समाधि-भावना के अयोग्य विहार को छोड़ योग्य विहार में रहना चाहिए।

अयोग्य विहार कहते हैं—अठारह दोषों में से किसी एक से युक्त विहार को। ये अठारह दोष हैं—(१) बड़ा होना (२) नया होना (३) पुराना होना (४) मार्ग के किनारे होना (५) पानी पीने का स्थान (प्याऊ) (६) पत्ते का होना (७) फूल का होना (८) फल का होना (९) पूजनीय स्थान (१) शहर से मिला हुआ होना (११) लकड़ी का स्थान होना (१२) खेतों से युक्त होना (१३) असमान व्यक्तियों का होना (१४) बन्दरगाह के पास होना (१५) निर्जन प्रदेश में होना (१६) राज्य की सीमा पर होना (१७) अनुकूल न होना (१८) कल्याण मित्रों का न मिलना। इन अयोग्य विहारों में नहीं रहना चाहिए।

भिक्षाटन करने वाले ग्राम से न बहुत दूर न बहुत पास होना आदि पाँच अंगों से युक्त जो विहार होता है वह योग्य विहार है।

योग्य विहार में रहते हुए योगी को दिन के भोजन के पश्चात् एकान्त स्थान में जाकर 'पृथ्वी-कसिण-मण्डल' बनाना चाहिए और जहाँ निमित्त ग्रहण करना हो वहाँ उसे ले जाकर भूमि पर रखना चाहिए। उस स्थान को साफ कर स्नान करके कसिण-मण्डल से ढाई हाथ की दूरी पर बिछी, एक बालिश्त चार अंगुल पायदार चौकी पर बैठना चाहिए।

उक्त प्रकार से बैठकर सांसारिक आसक्ति एवं काम भोगों के दोषों को देख कर उनसे मुक्ति पाने का अभिलाषी हो त्रिरत्न के गुणों का स्मरण करते— 'मैं इस साधना से अवश्य ही ध्यान-सुख को प्राप्त कर लूँगा' संकल्प कर सम आकार से आँखों को उघाड़ कसिण-मण्डल को देखते हुए निमित्त का ग्रहण करना चाहिए। न तो रंग को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए और न लक्षण को ही मन में करना चाहिए, प्रत्युत रंग को बिना त्यागे रंग के साथ ही पृथ्वी है, ऐसे पृथ्वी धातु के आधिक्य के अनुसार प्रज्ञप्ति धर्म में चित्त को लगा कर मनन करना चाहिए। तत्पश्चात् योगी को पृथ्वी मही मेदिनी भूमि वसुधा वसुन्धरा आदि पृथ्वी के नामों में से जो अनुकूल हो उसे बोलना चाहिए। चूँकि 'पृथ्वी' नाम ही स्पष्ट है इसलिए स्पष्टता के अनुसार 'पृथ्वी' 'पृथ्वी' कह कर भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करते काल को आँख मूँद कर आवर्जन करते हुए आँख उघाड़ कर देखने के समय जैसा दिखाई देता है तब उसे उद्ग्रह निमित्त कहते हैं। जब उद्ग्रह निमित्त उत्पन्न हो जाये तब उस स्थान पर नहीं बैठना चाहिए। अपने वासस्थान में जाकर ही भावना करनी चाहिए। भावना करते हुए नीवरण दब जाते हैं। क्लेश बैठ जाते हैं। उपचार समाधि से चित्त एकाग्र हो जाता है। प्रतिभाग निमित्त उत्पन्न होता है। प्रतिभाग निमित्त उद्ग्रह निमित्त से सैकड़ों गुना परिशुद्ध होकर दिखाई देता है। प्रतिभाग-निमित्त के उत्पन्न होने के समय से उसके नीवरण दबे हुए ही होते हैं, क्लेश बैठे हुए ही और उपचार समाधि से चित्त एकाग्र हुआ ही।

समाधि दो प्रकार की होती है—उपचार समाधि और अर्पणा समाधि। इन समाधियों को प्राप्त कर योगी को आवास, गोचर, बातचीत, व्यक्ति, भोजन, ऋतु, ईर्य्यापथ—इन सात विपरीत बातों का त्याग कर, सात अनुकूल बातों का सेवन करते, इन्द्रियों की समता का प्रतिपादन कर क्रमश, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर लेता है।

प्रथम ध्यान की अवस्था मे कामों और अकुशल धर्मों से अलग होकर वितर्क-विचार सहित विवेक से उत्पन्न प्रीति और सुख से युक्त होता है। तदुपरान्त वह वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने से भीतरी प्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त, वितर्क और विचार से रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर विहरता है। उसके पश्चात् यत्न करके तृतीय ध्यान प्राप्त करता है। उस अवस्था मे प्रीति और विराग से उपेक्षक हो, स्मृति और सम्प्रजन्य युक्त हो, काया से सुख को अनुभव करता हुआ विहरता है। जिसको आर्यजन उपेक्षक, स्मृतिमान, सुख-विहारी कहते हैं। तृतीय ध्यान के बाद सुख और दु:ख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व ही अस्त हो जाने से, दु ख सुख से रहित, उपेक्षा से उत्पन्न स्मृति की पारिशुद्धि स्वरूप चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर विहरने लगता है।

शेष-कसिण-निर्देश

कसिण दस होते हैं—(१) पृथ्वी कसिण (२) आप् कसिण (३) तेज कसिण (४) वायु कसिण (५) नील कसिण (६) पीत कसिण (७) लोहित कसिण (८) अवदात कसिण (९) आलोक कसिण (१०) परिच्छिन्नाकाश कसिण। इनमें पृथ्वी कसिण का वर्णन और भावना-विधि चौथे निर्देश में दिए ही गए हैं। आप् कसिण मे जल में निमित्त ग्रहण कर भावना करते हैं, तेज कसिण मे अग्नि में और वायु कसिण मे हवा में। शेष नील, पीत, लोहित (लाल) तथा अवदात (श्वेत) में उन्हीं रंगों मे निमित्त ग्रहण करते हैं तथा परिच्छिन्नाकाश मे आकाश में निमित्त ग्रहण करते हैं।

अशुभ-कर्मस्थान-निर्देश

अशुभ दस हैं—(१) ऊर्ध्वमातक (२) विनीलक (३) विपुब्बक (४) विच्छिद्दक (५) विक्खायितक (६) विक्षिप्तक (७) हतविक्षिप्तक (८) लोहितक (९) पुलुवक (१०) अस्थिक।

मृत्यु के बाद वायु के फूले हुए शरीर को ऊर्ध्वमातक कहते हैं। नीले-पीले पड़ गए मृत-शरीर को विनीलक कहते हैं। पीब बहते शरीर को विपुब्बक कहते हैं। कटने से दो भागों में अलग हो गया मृत शरीर विच्छिद्दक है। नाना प्रकार से कुत्ते-सियार आदि से खाया गया विक्खायितक है। विविध प्रकार से कुत्ते सियारों द्वारा फेंका हुआ विक्षिप्तक है। हथियार आदि के मर कर इधर-उधर बिखरा हतविक्षिप्तक है। लोहू से सने हुए मृत शरीर को लोहितक कहते हैं। पुलुवा कीड़ों को कहते हैं, जो मृत-शरीर कीड़ों से भर जाता है, उसे पुलुवक कहते हैं। हड्डी ही अस्थिक है।

इन दस अशुभों की भावना से केवल एक एक ध्यान की ही प्राप्ति होती है। सभी ये प्रथम ध्यान वाले ही हैं। प्रज्ञावान् भिक्षु को जीवित शरीर हो या मृत शरीर, जहाँ-जहाँ अशुभ का आकार जान पड़े, वहाँ-वहाँ ही निमित्त को ग्रहण करके कर्मस्थान को अर्पणा तक पहुँचाना चाहिए।

छः अनुस्मृति निर्देश

बार-बार उत्पन्न होने से स्मृति ही अनुस्मृति कही जाती है। यह दस प्रकार की है—(१) बुद्धानुस्मृति (२) धर्मानुस्मृति (३) संघानुस्मृति (४) शीलानुस्मृति (५) त्यागानुस्मृति (६) देवतानुस्मृति (७) मरणानुस्मृति (८) कायगतास्मृति (९) आनापानस्मृति (१०) उपशमानुस्मृति।

'वह भगवान् ऐसे अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध विद्याचरणसम्पन्न सुगत लोकविद् अनुपम पुरुष-दम्य सारथी देवमनुष्यों के शास्ता हैं।—इस प्रकार भगवान् बुद्ध के गुणों का अनुस्मरण करना ही बुद्धानुस्मृति है।

"भगवान् का धर्म स्वाख्यात है, तत्काल फलदायक है, समयान्तर में नहीं, यहीं दिखाई देने वाला निर्वाण तक पहुँचाने वाला और विज्ञों से अपने आप ही जानने योग्य है। ऐसे पर्याप्ति-धर्म और नव प्रकार से लोकोत्तर धर्म के गुणों का अनुस्मरण करना धर्मानुस्मृति है।

'भगवान् का श्रावक-संघ सुमार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक-संघ न्याय-मार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक-संघ उचित मार्ग पर चल रहा है, जो कि यह चार-युगल और आठ-पुरुष-पुद्गल हैं, यही भगवान् का श्रावक-संघ है, यह आह्वान करने के योग्य है, पाहुन बनाने के योग्य है, दान देने के योग्य है, हाथ जोड़ने के योग्य है और लोक के लिए पुण्य बोने का सर्वोत्तम क्षेत्र है। ऐसे आर्यसंघ के गुणों का अनुस्मरण करना संघानुस्मृति है।

"अहा! मेरे शील अखण्डित निर्दोष निर्मल निष्कल्मष भुजिस्स (=स्वाधीन) विज्ञों से प्रशंसित, तृष्णा से अन्-अभिभूत समाधि दिलाने वाले हैं।—ऐसे अखण्डित होने आदि के गुणों के अनुसार अपने शीलों का अनुस्मरण करना शीलानुस्मृति है। हाँ, गृहस्थ को गृहस्थ-शील का और प्रव्रजित को प्रव्रजित-शील का अनुस्मरण करना चाहिए।

'मुझे लाभ है, मुझे सुन्दर मिला, जो कि मैं कंजूसी के मल से लिप्त प्रजा (=लोग) में मात्सर्य-मल से रहित चित्तवाला हो मुक्त-त्यागी, खुले हाथ दान देनेवाला, दान देने में रत, याचना करने के योग्य हुआ, दान और संविभाग में लीन विहर रहा हूँ।—ऐसे कंजूसी के मल से रहित होने आदि के अनुसार अपने त्याग (=दान) का अनुस्मरण करना त्यागानुस्मृति है।

'चातुर्महाराजिक देवलोक के देवता हैं, त्रायस्त्रिंश के देवता हैं, याम, तुषित, निर्माणरति, परनिर्मित वशवर्ती और ब्रह्मकायिक देवता हैं तथा उनसे ऊपर के भी देवता हैं, जिस प्रकार की श्रद्धा से युक्त वे देवता यहाँ से च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हैं, मुझ में भी उस प्रकार की श्रद्धा है, जिस प्रकार के शील, श्रुत, त्याग, प्रज्ञा से युक्त वे देवता यहाँ से च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हैं, मुझे भी उस प्रकार की प्रज्ञा है।—ऐसे देवताओं को साक्षी करके अपने श्रद्धा आदि गुणों का अनुस्मरण करना देवतानुस्मृति है।

ये छः अनुस्मृतियाँ आर्य-श्रावकों को ही प्राप्त होती हैं, क्योंकि उन्हें बुद्ध, धर्म, संघ के गुण प्रकट होते हैं और वे अखण्डित आदि गुण-वाले शीलों में मल-मात्सर्य रहित त्याग से महा अनुभाव वाले देवताओं के गुणों के समान श्रद्धा आदि गुणों से युक्त होते हैं। ऐसा होने पर भी परिशुद्ध शील आदि गुणों से युक्त पृथग्जन को भी मन में करना चाहिए। अनुश्रव से भी बुद्ध आदि के गुणों का अनुस्मरण करते हुए चित्त प्रसन्न होता ही है, जिसके अनुभाव से नीवरणों को दबा करके अधिक प्रमुदित होकर विपश्यना को आरम्भ करके अर्हत्व का साक्षात्कार किया जाता है।

इन छः अनुस्मृतियों की भावना में श्रद्धा आदि गुणों की गम्भीरता या नाना प्रकार के गुणों को अनुस्मरण करने में लग होने से अर्पणा को न पाकर उपचार-मात्र ही ध्यान होता है।

अनुस्मृति-कर्मस्थान-निर्देश

शेष चार अनुस्मृतियों का वर्णन 'अनुस्मृति कर्मस्थान-निर्देश में है। वे हैं (१) मरणानुस्मृति (२) कायगतास्मृति (३) आनापान-स्मृति (४) उपशमानुस्मृति ।

एक भव में रहनेवाली जीवितेन्द्रिय का उपच्छेद मरण कहा जाता है। वह काल-मरण, अकाल-मरण—दो प्रकार का होता है। काल-मरण पुण्य के क्षय हो जाने से, आयु के क्षय हो जाने से या दोनों के क्षय हो जाने से होता है। अकाल-मरण कर्मोपच्छेदक कर्म से। अत. जीवितेन्द्रिय का उपच्छेद कहे जाने वाले मरण का स्मरण मरणानुस्मृति है।

मरण की भावना करने की इच्छावाले योगी को एकान्त में जाकर, चित्त को अन्य आलम्बनों से खींचकर 'मरण होगा', 'जीवितेन्द्रिय का उपच्छेद होगा' या 'मरण, मरण' कह कर भली प्रकार मनन करना चाहिए।

शरीर के बत्तीस भागों को मनन करने को ही कायगतास्मृति कहते हैं। इसकी भावना करनेवाला योगी इसी शरीर को पैर के तलवे से ऊपर और मस्तक के केश से नीचे, चमड़े से घिरे, नाना प्रकार की गन्दगियों से भरे हुए देखता है। वह इस प्रकार विचार करता है—"इस शरीर में हैं केश, लोम, नख, दाँत, त्वक्, मास, स्नायु, हड्डी, हड्डी के भीतर की मज्जा, वृक्क, हृदय (=कलेजा), यकृत, क्लोमक, प्लीहा (=तिल्ली), फुफ्फुस, आँत, पतली आँत, उदरस्थ (वस्तुएँ), पाखाना, मस्तिष्क, पित्त, कफ, पीब, लोहू, पसीना, मेद (=वर), आँसू, वसा (=चर्बी), थूक, पोंटा, लसिका (=केहुनी आदि जोड़ो मे स्थित तरल पदार्थ) और मूत्र।" इनका बार-बार विचार करते हुए क्रम से अर्पणा उत्पन्न होती है। योगी इस कर्मस्थान की भावना कर चारों ध्यानों तथा छ अभिज्ञाओं को प्राप्त करता है। इसीलिए तथागत ने कहा है—"वे अमृत का परिभोग करते हैं, जो कायगतास्मृति का परिभोग करते हैं।"

आनापान कहते हैं आश्वास-प्रश्वास को। साँस लेने और छोड़ने की स्मृति को ही अनापान-स्मृति कहते हैं। इसकी भावना अरण्य, वृक्ष-मूल अथवा शून्य-गृह में जाकर प्रारम्भ करनी चाहिए। पालथी लगाकर रीढ़ के अठारह काँटों को सीधा कर स्मृति को सामने करके बैठना चाहिए। तत्पश्चात साँस लेने और छोड़ने पर ध्यान देना चाहिए। स्मृति को आश्वास-प्रश्वास के साथ लगाकर चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिए। साँस लेने और छोड़ने की गणना भी करते जानी चाहिए। ऐसा करने से चित्त इधर-उधर नहीं भागता है। इस प्रकार अनापान-स्मृति की भावना मे लगे हुए थोड़े ही दिनों मे प्रतिभाग-निमित्त उत्पन्न हो जाता है और शेप ध्यानागों से युक्त अर्पणा प्राप्त होती है। वह क्रमश अभ्यास कर 'नाम' और 'रूप' का मनन करते विपश्यना द्वारा निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

उपशम कहते हैं निर्वाण को। निर्वाण की स्मृति उपशमानुस्मृति कही जाती है। योगी को इसकी भावना करने के लिए एकान्त मे जाकर एकाग्र-चित्त हो इस प्रकार सारे दु खो के उपशमन निर्वाण के गुणों का अनुस्मरण करना चाहिए—"जहाँ तक संस्कृतधर्म या असंस्कृत धर्म हैं, उन धर्मों मे विराग (=निर्वाण) अग्र कहा जाता है, जो कि मद को निर्मद करनेवाला है, प्यास (=तृष्णा) को बुझाने वाला है, आसक्तिको नष्ट करनेवाला है, संसार-चक्र का उपच्छेद करनेवाला है, तृष्णा का क्षय, विराग, निरोध, निर्वाण है।" ऐसे अनुस्मरण करनेवाले योगी का चित्त राग में लिप्त नहीं होता, न द्वेष और न मोह मे। उसका चित्त उपशम (=निर्वाण) के प्रति

ही स्पष्ट होता है। उसके नीवरण दब जाते हैं और एक क्षण में ही ध्यान के अंग उत्पन्न हो जाते हैं। इसकी भावना में अर्पणा को नहीं प्राप्त कर उपचार प्राप्त ही ध्यान होता है।

ब्रह्मविहार-निर्देश

ब्रह्मविहार चार हैं[1] (१) मैत्री (२) करुणा (३) मुदिता (४) उपेक्षा।

मैत्री ब्रह्मविहार की भावना करनेवाले प्रारम्भिक योगी को विघ्नों को दूर करके कर्मस्थान का ग्रहण कर एकान्त स्थान में या आसन पर बैठ कर प्रारम्भ से द्वेष में अवगुण और क्षान्ति में गुण का अवलोकन करना चाहिए। उसे सबसे पहले "मैं सुखी हूँ, मैं दुःख रहित हूँ या मैं वैर रहित हूँ, व्यापाद रहित हूँ, उपद्रव रहित हूँ, सुखपूर्वक अपना परिहरण कर रहा हूँ।" ऐसे बार-बार अपने में ही भावना करनी चाहिए। किन्तु स्मरण रहे इस भावना को अपनी भावना कहते हैं और अपनी भावना यदि सौ वर्ष भी की जाय तो अर्पणा नहीं प्राप्त हो सकती। इसलिए पहले अपने को मैत्री से पूर्ण कर अपने प्रिय मनाप सम्माननीय आचार्य या आचार्य-तुल्य को अनुस्मरण करके "वह सत्पुरुष सुखी हों दुःख रहित हों" कहकर भावना करनी चाहिए। इस प्रकार के व्यक्ति पर मैत्री करने से अवश्य अर्पणा प्राप्त होती है। योगी को उतने से ही सन्तोष न करके सीमा को पार करने की इच्छा से उसके बाद अत्यन्त प्रिय सहायक पर मैत्री करनी चाहिए। तदुपरान्त मध्यस्थ एवं वैरी व्यक्ति पर। तीनों प्रकार के व्यक्तियों पर क्रमशः भावना करे एक साथ ही नहीं। इस मैत्री-भावना में अर्पणा के बाद चारों ध्यान भी प्राप्त होते हैं। वह प्रथम ध्यान आदि में से किसी एक से—"मैत्री युक्त चित्त से एक दिशा को परिपूर्णकर विहरता है। वैसे ही दूसरी दिशा को। इस प्रकार ऊपर नीचे तिरछे सब जगह सबात्म के लिए सारे प्राणी वाले लोक को विपुल महान्, प्रमाण रहित वैर रहित व्यापाद रहित मैत्री-युक्त चित्त से पूर्ण कर विहरता है।[2] प्रथम ध्यान आदि के अनुसार अर्पणा-चित्त को ही यह विविध-क्रिया सिद्ध होती है।

मैत्री ब्रह्मविहार की भावना में योगी को पाँच आकार की सीमा-रहित स्फरण-मैत्री-चित्त की विमुक्ति, सात आकार की सीमा-सहित मैत्री-चित्त की विमुक्ति और दस आकार की दिशा में स्फरण करने वाली मैत्री-चित्त की विमुक्ति को भली प्रकार जानकर भावना करनी चाहिए। मैत्री-भावना के भगवान् ने ग्यारह गुण बतलाये हैं उन्हें वह योगी प्राप्त कर लेता है।

करुणा-ब्रह्मविहार की भावना करने वाले योगी को करुणा-रहित होने के दोष और करुणा के गुण का मनन करके करुणा भावना का आरम्भ करना चाहिए। सर्वप्रथम किसी करुणा करने के योग्य अत्यन्त दुःखी विपत्ति बुरी अवस्था को प्राप्त हाथ-पैर कटे, कपाली का हाथ में लेकर अनाथालय की शरण ग्रहण करने वाले सड़े हाथ-पैर वाले दुःख के मारे चिल्लाते हुए पुरुष को देखकर "यह व्यक्ति कैसी बुरी अवस्था को प्राप्त है! अच्छा होता कि यह इस दुःख से छुटकारा पा जाता!" इस प्रकार करुणा करनी चाहिए। इसी प्रकार पापी के भविष्य-दुःख का विचार कर और फाँसी पर लटकाए जाने वालों को नाना-पीड़ा देखकर करुणा करनी चाहिए। ऐसे करुणा करके उसके बाद क्रमशः प्रिय मध्यस्थ और वैरी पर करुणा करनी चाहिए।

१ योगदर्शन में आया है— मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥

—समाधि पाद १ । ३३।

२ दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद) पहला भाग पृष्ठ १०१।

मुदिता-ब्रह्म-विहार की भावना में किसी अपने प्रिय व्यक्ति को सुखी और प्रमुदित देख कर या सुनकर "क्या ही यह आनन्द कर रहा है! बहुत ही अच्छा है, बहुत ही सुन्दर है!" ऐसे मुदिता उत्पन्न करनी चाहिए।

उपेक्षा ब्रह्मविहार की भावना में मध्यस्थ व्यक्ति के प्रति इस प्रकार उपेक्षा-भावना करे जिस प्रकार कि कोई एक अप्रिय और प्रिय व्यक्ति को देखकर उपेक्षक हो विहार करे। उपेक्षा विहारी साधक को थोड़े ही प्रयत्न में चतुर्थ ध्यान प्राप्त हो जाता है। मैत्री, करुणा और मुदिता में आलम्बन के अनुकूल होने के कारण तृतीय ध्यानतक ही सरलतापूर्वक प्राप्त होते हैं। चतुर्थ ध्यान के लिए उपेक्षक होना ही पड़ता है। अतः उपेक्षा ब्रह्मविहार में चतुर्थ ध्यान की प्राप्ति सहज-साध्य होती है।

आरुप्य-निर्देश

आरुप्य चार हैं—(१) आकाशानन्त्यायतन, (२) विज्ञानानन्त्यायतन, (३) आकिंचन्यायतन, (४) नैवसंज्ञानासंज्ञायतन। इनको आरुप-समापत्ति भी कहते हैं।

आकाशानन्त्यायतन की भावना करनेवाला योगी शरीर के कारण नाना प्रकार की बाधाओं को देख कलह, विवाद, रोग-भय आदि का अवलोकन कर रूपों से मुक्त होने का प्रयत्न करता है। रूपों के प्रति उसे विरक्ति उत्पन्न होती है। वह दस कसिणों में से आकाश-कसिण को छोड़ शेष में से किसी में चतुर्थ ध्यान को उत्पन्न करता है और उसे इच्छानुसार बढ़ाता है। जहाँ तक वह उस कसिण को बढ़ाता है, वहाँ तक उसके द्वारा स्पर्श किए हुए अंग में रूप का ध्यान सर्वथा छोड़कर "आकाश अनन्त है, आकाश अनन्त है" विचार करते हुए आकाशानन्त्यायतन को शान्त रूपसे मनन करता है। बार-बार 'आकाश' का मनन करते, सोचते-विचारते उसके नीवरण दब जाते हैं, स्मृति स्थिर हो जाती है, उपचार से चित्त समाधिस्थ हो जाता है। वह उस निमित्त का बार-बार सेवन करता है, उसे बढ़ाता है, ऐसा करते हुए उसे उसी प्रकार आकाशानन्त्यायतन-चित्त उत्पन्न होता है, जिस प्रकार पृथ्वी-कसिण आदि की भावना में ध्यान चित्त।

आकाशानन्त्यायतन का अभ्यास करके उसमें भी दोष देखता हुआ विज्ञानन्त्यायतन को शान्त रूप से मनन करके उस आकाश की भावना में उत्पन्न विज्ञान का बार-बार विचार करता है। मन में लाता है। तर्क-वितर्क करता है। उसके इस प्रकार भावना करने पर नीवरण दब जाते हैं। उपचार समाधि प्राप्त होती है। वह उस निमित्त की बार-बार भावना करता है, तब वह ऐसा करते हुए सर्वथा आकाशानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है' की भावना से विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त होकर विहार करने लगता है।

विज्ञानन्त्यायतन में भी दोष देखकर आकिंचन्यायतन को शान्त रूप से मनन करके उसी विज्ञानन्त्यायतन के आलम्बन स्वरूप आकाशानन्त्यायतन के विज्ञान के अभाव, शून्यता, रिक्तता का विचार करता है। वह विज्ञान का मनन करके 'नहीं है, नहीं है', 'शून्य है, शून्य है', ऐसा बार-बार विचार करता है। ऐसा करते हुए उसे आकिंचन्यायतन-चित्त उत्पन्न होता है। उस समय वह सर्वथा विज्ञानन्त्यायतन का अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' का मनन करता हुआ आकिंचन्यायतन को प्राप्त होकर विहरता है।

'संज्ञा रोग है, संज्ञा फोड़ा है, संज्ञा काँटा है, केवल यही शान्त है, यही उत्तम है जो कि यह नैवसंज्ञानासंज्ञा है।' इस प्रकार विचार करते हुए सर्वथा आकिंचन्यायतन का अतिक्रमण कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो विहरने लगता है।

इन चारों अरूप समापत्तियों में क्रमशः एक-दूसरे से बढ़कर शान्त और सूक्ष्म हैं। अन्तिम समापत्ति सर्वश्रेष्ठ तथा शान्ततम है। नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को भव का अग्र (श्रेष्ठ) माना जाता है।

समाधि-निर्देश

इस निर्देश में (१) आहार में प्रतिकूल संज्ञा और (२) चतुर्धातु व्यवस्थान का वर्णन है।

आहार चार प्रकार का होता है—(१) कबलीकार (=कौर करके खाने योग्य) आहार (२) स्पर्शाहार, (३) मनोसंचेतना आहार (४) विज्ञानाहार। कबलीकार आहार ओजाष्टमक को लाता है। स्पर्शाहार तीनों वेदनाओं को लाता है। मनोसंचेतनाहार तीनों भवों में प्रतिसन्धि को लाता है। विज्ञानाहार प्रतिसन्धि के क्षण नामरूप को लाता है।

आहार में प्रतिकूल-संज्ञा की भावना करने की इच्छा वाले का कर्मस्थान को सीख कर, सीखे हुए से एक पद को भी भ्रमित नहीं करते एकान्त में जाकर एकाग्र-चित्त हो भोजन किए, पिए, खाए, चाटे प्रभेद वाले कबलीकार आहार में दस प्रकार से प्रतिकूल होने का प्रत्यवेक्षण करना चाहिए। जैसे—गमन से, पर्येषण से, परिभोग से, आशय से, निधान से, अपरिपक्व से, परिपक्व से, फल से, निष्यन्द (= इधर-उधर बहना) से, संम्रक्षण (= लिपटना) से। ऐसे दस प्रकार से प्रतिकूलता का प्रत्यवेक्षण तर्क-वितर्क करने वाले को प्रतिकूल के आकार से कबलीकार-आहार प्रगट होता है। वह उस निमित्त को पुनः पुनः आसेवन करता है बढ़ाता है बहुल करता है। तब नीवरण दब जाते हैं। कबलीकार-आहार के स्वभाव की धर्मता के गम्भीर होने से अर्पणा को नहीं पाकर उपचार समाधि से चित्त समाधिस्थ होता है। प्रतिकूल के रूप से संज्ञा प्रगट होती है इसलिए यह कर्मस्थान 'आहार में प्रतिकूल संज्ञा' ही कहा जाता है।

'एक व्यवस्थान' को ही चतुर्धातु व्यवस्थान कहते हैं। चार धातुएँ ये हैं—(१) पृथ्वी (२) आप् (= जल) (३) तेज् (= अग्नि) (४) वायु।

चतुर्धातु-कर्मस्थान में लगने वाला योगी भली प्रकार इस काया की स्थिति और रचना के अनुसार देखता है कि इस शरीर में पृथ्वी-धातु, जल-धातु, अग्नि-धातु और वायु-धातु हैं। वह देखता है कि इस शरीर में जो कुछ कर्कश कड़ा और स्थूल है वह सब पृथ्वी धातु है। जैसे केश लोम नख दाँत चमड़ा मांस नस हड्डी हड्डी की गुद्दी वृक्क कलेजा यकृत क्लोमक, तिल्ली फुफ्फुस आँत छोटी आँत पेट की वस्तुएँ पाखाना अथवा और भी जो कुछ कर्कश कड़ा और स्थूल है वह सब पृथ्वी-धातु है।

जल-धातु का विचार करते हुए देखता है कि इस शरीर में जो कुछ जल अथवा जलीय है वह सब जल-धातु है। जैसे कि पित्त श्लेष्मा (= कफ) पीब लोहू, पसीना मेद (= चर्बी), आँसू, चर्बी लार नासा-मल (= पोंटा) लसिका और मूत्र।

अग्नि-धातु का विचार करते हुए देखता है कि इस शरीर में जो कुछ अग्नि अथवा अग्नि स्वभाव का है वह सब अग्निधातु है। जैसे कि जिससे गर्म होता है और जिससे खाया-पिया हुआ भली प्रकार हजम होता है।

वायुधातु का विचार करते हुए देखता है कि इस शरीर में जो कुछ वायु अथवा वायु स्वभाव का है वह सब वायु-धातु है जैसे कि ऊपर जाने वाली वायु, नीचे जाने वाली वायु, पेट

में रहने वाली वायु, कोष्ट में रहने वाली वायु, अंग-प्रत्यंग में चलने वाली वायु, आश्वास और प्रश्वास।

भावना करते समय इन धातुओं को निर्जीव एवं सत्व-रहित मनन करना चाहिए। इस प्रकार लगे रहने से शीघ्र ही धातुओं के भेद को प्रगट करने वाले ज्ञान के रूप में उपचार समाधि उत्पन्न होती है। इसीलिए कहा गया है—"ऐसे महा-अनुभाव वाले हजारों श्रेष्ठ योगियों द्वारा (ध्यान के खेल के रूप में) खेले गए, इस चतुर्धातु व्यवस्थान को नित्य प्रज्ञावान् सेवे।"

ऋद्धिविध-निर्देश

भगवान् ने पाँच लौकिक अभिज्ञाएँ कही हैं—(१) ऋद्धिविध (२) दिव्यश्रोत्र (३) चैतोपर्यज्ञान (४) पूर्वेनिवासानुस्मृति ज्ञान (५) च्युत्योत्पाद ज्ञान।

ऋद्धिविध को प्राप्त करने की इच्छा वाले प्रारम्भिक योगी को अवदात कसिण तक आठों कसिणों में आठ-आठ समापत्तियों को उत्पन्न करके कसिण के अनुलोम से, कसिण के प्रतिलोम से, कसिण के अनुलोम और प्रतिलोम से, ध्यान के अनुलोम से, ध्यान के प्रतिलोम से, ध्यान के अनुलोम और प्रतिलोम से, ध्यान को लाँघने से, कसिण को लाँघने से, ध्यान और कसिण को लाँघने से, अङ्ग के व्यवस्थापन से, आलम्बन के व्यवस्थापन से—इन चौदह आकारों से चित्त का भली प्रकार दमन करना चाहिए। चित्त के दमन हो जाने पर जब चतुर्थ ध्यान प्राप्त करने के पश्चात् योगी एकाग्र, शुद्ध, निर्मल, क्लेशों से रहित, मृदु, मनोरम, और निश्चल चित्तवाला हो जाता है, तब वह ऋद्धिविध को प्राप्त करता है और अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करने लगता है। ऋद्धियाँ दस हैं—(१) अधिष्ठान ऋद्धि (२) विकुर्वण ऋद्धि (३) मनोमय ऋद्धि (४) ज्ञानविस्फार ऋद्धि (६) आर्य ऋद्धि (७) कर्म विपाकज ऋद्धि (८) पुण्यवान् की ऋद्धि (९) विद्यामय ऋद्धि (१०) उन-उन स्थानों पर सम्यक् प्रयोग के कारण सिद्ध होने के अर्थ में ऋद्धि। इन ऋद्धियों को प्राप्त योगी एक से अनेक होता है, प्रकट और अदृश्य होता है, आरपार बिना लगे जाता है, पृथ्वी मे जल की भाँति गोता लगाता है, जल पर पैदल चलता है, आकाश मे पालथी मारकर बैठता है, चाँद-सूरज को हाथ से स्पर्श करता है, दूर को पास कर देता है, मनोमय शरीर का निर्माण करता है।

अभिज्ञा-निर्देश

शेष अभिज्ञाओं में दिव्य-श्रोत्र-ज्ञान एक स्थान पर बैठकर मनमें विचारे हुए स्थानों के शब्दों को सुनने को कहते हैं। चतुर्थ ध्यान से उठकर जब योगी दिव्य-श्रोत्र ज्ञान की प्राप्ति के लिए अपने चित्त को लगाता है, तब वह अपने अलौकिक शुद्ध दिव्य-श्रोत्र से दोनों प्रकार के शब्द सुनने लगता है मनुष्यों और देवताओं के भी।

अपने चित्त से दूसरे व्यक्ति के चित्त को जानने के ज्ञान को चैतोपर्य ज्ञान कहते हैं। इसे प्राप्त करने वाले योगी को दिव्य-चक्षुवाला भी होना चाहिए। उस योगी को आलोक की वृद्धि करके दिव्य-चक्षु से दूसरे के कलेजे के सहारे विद्यमान् रुधिर के रंग को देखकर चित्त को ढूँढ़ना चाहिए। जब सौमनस्य चित्त होता है, तब रुधिर पके हुए बरगद के समान लाल होता है। जब दौर्मनस्य चित्त होता है, तब पके हुए जामुन के समान काला होता है। जब उपेक्षा चित्त होता है, तब परिशुद्ध तिल के तेल के समान स्वच्छ होता है। इसलिये योगी को कलेजे के सहारे रहने

वाले रुधिर में रंग को देखकर चित्त को ढूँढ़ते हुए चेतोपर्य ज्ञान को शक्ति-सम्पन्न बनाना चाहिए। इस प्रकार शक्ति-सम्पन्न होने पर वह क्रमशः सभी कामावचर रूपावचर और अरूपावचर चित्तों को अपने चित्त से जान लेता है तब उसे कलेजे के रुधिर के परीक्षण में जाने की आवश्यकता नहीं होती है। वह जब अपने चित्त से दूसरे के चित्त की बातों को जानना चाहता है तब वह दूसरे सत्वों के दूसरे लोगों के चित्त को अपने चित्त से जान लेता है—राग सहित चित्त को राग सहित जान लेता है वैराग्य सहित चित्त को वैराग्य सहित जान लेता है। इसी प्रकार वह द्वेष मोह आदि से युक्त या रहित चित्तों को भी जान लेता है। जैसे कोई स्त्री या पुरुष अपने को सजधज कर दर्पण में देखते हुए स्पष्ट रूप से देखे उसी प्रकार वह दूसरे के चित्त को अपने चित्त से जान लेता है।

पूर्वजन्मों की बातों के स्मरण को पूर्वेनिवासानुस्मृति ज्ञान कहते हैं। इसे प्राप्त करने के लिए चतुर्थ ध्यान से उठ सब से अन्तिम बैठने का स्मरण करना चाहिए। तत्पश्चात् आसन बिछाने से लेकर प्रातःकाल तक के प्रत्येक कार्य का स्मरण करना चाहिए। इस प्रकार उल्टे ढंग से सम्पूर्ण रात और दिन के किए हुए कार्यों का स्मरण करना चाहिये। यदि इनमें से कुछ प्रकट न हो तो पुनः चतुर्थध्यान को प्राप्त कर उससे उठ इन्हें स्मरण करना चाहिए। ऐसे क्रमशः दूसरे तीसरे चौथे पाँचवें, दसवें पन्द्रहवें, तीसवें दिन के कार्यों का स्मरण करना चाहिए। यही नहीं, महीने से लेकर वर्ष भर के किए हुए कार्यों का स्मरण करना चाहिए। इसी प्रकार दस वर्ष, बीस वर्ष तक के कार्यों का स्मरण करना चाहिए। तदुपरान्त इस जन्म में जन्म-ग्रहण से लेकर पूर्व जन्म की मृत्यु के समय तक का स्मरण करना चाहिए तथा उस जन्म के अपने रूप को देखना चाहिए। जब योगी इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब वह नाना पूर्वजन्मों की बातों को स्मरण करता है। जैसे एक जन्म से लेकर हजार लाख, अनेक संवर्त-कल्पों अनेक विवर्त कल्पों को जानता है—"मैं वहाँ था इस नाम वाला इस गोत्र वाला इस रंग का इस आहार को खाने वाला इतनी आयु वाला मैंने इस प्रकार के सुख-दुःख का अनुभव किया। सो मैं वहाँ से मरकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ।" इस तरह आकार-प्रकार के साथ वह अनेक पूर्व-जन्मों को स्मरण करता है।

दिव्य-चक्षु के ज्ञान को ही च्युत्योत्पाद ज्ञान कहते हैं। जो योगी इसे प्राप्त करना चाहता है उसे चतुर्थ ध्यान से उठकर प्राणियों की च्युति एवं उत्पत्ति को जानने के लिए विचार करने पर दिव्य चक्षु उत्पन्न हो जाता है। इसके लिए किसी विशेष साधन की आवश्यकता नहीं। योगी आलोक फैलाकर नरक एवं स्वर्ग के सभी जीवों के कर्मों तथा उनके विपाकों को जान सकता है। उसे यथाकर्मोपग-ज्ञान और अनागतांश ज्ञान सिद्ध हो जाते हैं। यह च्युत्योत्पाद-ज्ञान कहा जाता है।

ऋद्धिविध दिव्यश्रोत्र चेतोपर्यज्ञान पूर्वेनिवासानुस्मृति ज्ञान और च्युत्योत्पाद ज्ञान—ये पाँचों अभिज्ञाएँ लौकिक हैं किन्तु जब कोई अर्हत् इन्हें प्राप्त करता है तब ये ही लोकोत्तर कही जाती हैं और इनके साथ आस्रव क्षयज्ञान की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार लौकिक अभिज्ञाएँ पाँच और लोकोत्तर अभिज्ञाएँ छः हैं।

स्कन्ध-निर्देश

इस निर्देश से पूर्व समाधि-भावना समाप्त हो जाती है और यहाँ से प्रज्ञा-भावना प्रारम्भ होती है। इसलिए प्रारम्भ में ये प्रश्न किए गए हैं :—

(१) प्रज्ञा क्या है ?

(२) किस अर्थ में प्रज्ञा है ?

(३) प्रज्ञा का लक्षण, कार्य, जानने का आकार, प्रत्यय क्या है ?

(४) प्रज्ञा कितने प्रकार की होती है ?

(५) कैसे प्रज्ञा-भावना करनी चाहिए ?

(६) प्रज्ञा की भावना करने का कौन-सा गुण है ?

कुशल-चित्त से युक्त विपश्यना-ज्ञान प्रज्ञा है। यह भली प्रकार जानने के अर्थ में प्रज्ञा है। धर्म के स्वभाव को जानने के लक्षण वाली प्रज्ञा है। वह धर्मों के स्वभाव को ढँकने वाले मोह के अन्धकार का नाश करने के कार्यवाली है। अ-समोह इसके जानने का आकार है। समाधि प्रज्ञा का प्रत्यय है। धर्म के स्वभाव के प्रतिवेध के लक्षण से प्रज्ञा एक प्रकार की होती है। लौकिक और लोकोत्तर से दो प्रकार की। वैसे ही साश्रव, अनाश्रव आदि से, नामरूप के व्यवस्थापन से, सौमनस्य-उपेक्षा से युक्त होने से और दर्शन-भावना की भूमि से। चिन्ता, श्रुत, भावनामय से तीन प्रकार की होती है। वैसे ही परित्र, महद्गत, अप्रमाण से, आय, अपाय, उपाय-कौशल्य से और आध्यात्म-अभिनिवेश आदि से। चार सत्यों के ज्ञान और चार प्रतिसम्भिदा से प्रज्ञा चार प्रकार की होती है। चूँकि इस प्रज्ञा की स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय, सत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि धर्म भूमि है। शीलविशुद्धि और चित्तविशुद्धि—ये दो विशुद्धियाँ मूल हैं। दृष्टि-विशुद्धि, कांक्षा-वितरण विशुद्धि, मार्गामार्गदर्शन विशुद्धि, प्रतिपदा ज्ञानदर्शन विशुद्धि, ज्ञानदर्शन विशुद्धि—ये पाँच विशुद्धियाँ शरीर हैं। इसलिए उन भूमि हुए धर्मों में अभ्यास, परिपृच्छा (= प्रश्नोत्तर) के अनुसार ज्ञान का परिचय करके मूल हुई दो विशुद्धियों का सम्पादन कर, शरीर हुई पाँच विशुद्धियों का सम्पादन करते हुए भावना करनी चाहिए। इस निर्देश में 'प्रज्ञा की भूमि' हुए धर्मों में से प्रथम 'स्कन्ध' का वर्णन किया गया है।

स्कन्ध पाँच हैं—(१) रूप-स्कन्ध (२) वेदना-स्कन्ध (३) संज्ञा-स्कन्ध (४) संस्कार-स्कन्ध (५) विज्ञान-स्कन्ध। जो कुछ शीत आदि से विकार प्राप्त होने के स्वभाव वाला धर्म है, वह सब एक में करके रूप-स्कन्ध जानना चाहिए। वह विकार प्राप्त होने के स्वभाव से एक प्रकार का भी, भूत और उपादा के भेद से दो प्रकार का होता है। भूत-रूप चार हैं—पृथ्वी-धातु, जलधातु, तेजधातु और वायु-धातु। उपादा-रूप चौबीस प्रकार का होता है—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्त्री-इन्द्रिय, पुरुषेन्द्रिय, जीवितेन्द्रिय, हृदयवस्तु, काय-विज्ञप्ति, वची विज्ञप्ति, आकाश-धातु, रूप की लघुता, रूप की मृदुता, रूप की कर्मण्यता, रूप का उपचय, रूप की सन्तति, रूप की जरता, रूप की अनित्यता, कवलिंकार आहार।

जो अनुभव करने के लक्षण वाला है, वह सब एक में करके वेदना स्कन्ध है। जो कुछ पहचानने के लक्षण वाला है, वह सब एक में करके संज्ञा-स्कन्ध है। जो कुछ राशि करने के लक्षण वाला है वह सब एक में करके संस्कार स्कन्ध है।

विज्ञान, चित्त, मन—अर्थ में एक है। इक्कीस कुशल, बारह अकुशल, छत्तिस विपाक, बीस क्रिया—सभी नवासी (८९) प्रकार के विज्ञान होते हैं, जो प्रतिसन्धि, भवाग, आवर्जन, देखना, सुनना, सूँघना, चाटना, स्पर्श करना, स्वीकार करना, निश्चय करना, व्यवस्थापन, जवन, तदालम्बन, च्युति के अनुसार प्रवर्तित होते हैं। च्युति से पुन प्रतिसन्धि, प्रतिसन्धि से पुन भवाग—इस प्रकार भव, गति, स्थिति, निवास में चक्र काटते हुए प्राणियों की—अटूट चित्त-धारा

जारी रहती है। जो अर्हत्व को प्राप्त कर लेता है उसके च्युति-चित्त के निरुद्ध होने पर निरुद्ध ही हो जाता है।

स्वभाव से वेदना पाँच प्रकार की होती है—सुख, दुःख, सौमनस्य, दौर्मनस्य और उपेक्षा। उत्पत्ति के अनुसार तीन प्रकार की होती है—कुशल, अकुशल और अव्याकृत। इस प्रकार वेदना नाना होती है जो अनुभव करने के लक्षण वाली है। संज्ञा की उत्पत्ति के अनुसार तीन प्रकार की होती है—कुशल, अकुशल और अव्याकृत। ऐसा विज्ञान नहीं है जो संज्ञा से रहित हो, इसलिए जितना विज्ञान का भेद है उतना संज्ञा का भी।

संस्करण करने के कारण संस्कार कहा जाता है। कायिक कुशल और अकुशल चेतना ही संस्कार है। पुण्य-पाप कर्मों का राशिकरण इसका अर्थ है। *जितने भी संस्कार हैं वे सब संस्कार* स्कन्ध के अन्तर्गत हैं चाहे वे भूत-कालीन हों, वर्तमान कालीन हों या भविष्यत् कालीन। वे आध्यात्मिक हों या बाह्य। वे कुशल हों या अकुशल। स्पर्श, मनस्कार, जीवित, समाधि, वितर्क, विचार, वीर्य, प्रीति, छन्द, अधिमोक्ष, श्रद्धा, स्मृति, ह्री, अपत्रपा, अलोभ, अव्यापाद, मध्य उपेक्षा, कायप्रश्रब्धि-चित्त-प्रश्रब्धि, काय की लघुता, चित्त की लघुता, काय-मृदुता, चित्त-मृदुता, काय-कर्मण्यता, चित्त-कर्मण्यता, काय-प्रागुण्यता, चित्त-प्रागुण्यता, काय-ऋजुकता, ऋजुता, मृदुता, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, लोभ, द्वेष, मोह, दृष्टि, औद्धत्य, अन्-ह्री, अन्-अपत्रपा, विचिकित्सा, मान, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, स्त्यानमृद्ध—ये सभी धर्म चेतना के साथ पचास पुण्यार्थ रूप में संस्कार-स्कन्ध कहलाते हैं। ये काय, वाक् और मन द्वारा ही साध्य हैं। संस्कार का विभाजन दो प्रकार से होता है—(१) काय-संस्कार, वाक्-संस्कार, चित्त-संस्कार। (२) पुण्य-संस्कार, अपुण्य-संस्कार, आनेञ्ज संस्कार। आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं। वितर्क-विचार वाक् संस्कार हैं और संज्ञा तथा वेदना चित्त-संस्कार। काय, चित्त और वाक्—इन्हीं के द्वारा व्यक्ति पुण्य-पाप का संचय करता है जिससे सुगति-दुर्गति होती है। इन्हीं संस्कारों से व्यक्ति का संसार भ्रमण लगा रहता है।

आयतन धातु-निर्देश

आयतन शब्द निवास, आकर, समोसरण, उत्पत्ति-स्थान और कारण के अर्थ में प्रयुक्त है। आयतन बारह हैं। छः भीतरी और छः बाहरी। भीतरी आयतन हैं—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन। बाहरी आयतन हैं—रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श और धर्म।

धातुएँ अठारह हैं—चक्षु-धातु, रूप धातु, चक्षु-विज्ञान-धातु, श्रोत्र-धातु, शब्द धातु, श्रोत्र विज्ञान-धातु, घ्राण-धातु, गन्ध-धातु, घ्राण-विज्ञान-धातु, जिह्वा-धातु, रस-धातु, जिह्वा-विज्ञान-धातु, काय-धातु, स्पर्श-धातु, काय-विज्ञान धातु, मनो धातु, धर्म-धातु और मनोविज्ञान-धातु।

इन्द्रिय-सत्य निर्देश

इन्द्रियाँ बाइस हैं—चक्षु-इन्द्रिय, श्रोत्र-इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वा-इन्द्रिय, काय-इन्द्रिय, मनेन्द्रिय, स्त्री-इन्द्रिय, पुरुष-इन्द्रिय, जीवितेन्द्रिय, सुखेन्द्रिय, दुःखेन्द्रिय, सौमनस्येन्द्रिय, दौर्मनस्येन्द्रिय, उपेक्षेन्द्रिय, श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृति-इन्द्रिय, समाधि-इन्द्रिय, प्रज्ञेन्द्रिय, अन-ज्ञातञ्ञस्सामि-इन्द्रिय, आज्ञेन्द्रिय, आज्ञातावी-इन्द्रिय।

चार आर्यसत्य हैं—दुःख-आर्यसत्य, दुःख-समुदय आर्यसत्य, दुःख-निरोध आर्यसत्य, दुःख निरोध-गामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य।

चार आर्यसत्यों में पहला दु ख आर्यसत्य है। संसार मे पैदा होना दु ख है, बूढ़ा होना
। है, मरना दु ख है, शोक करना दु ख है, रोना-पीटना दुःख है, पीड़ित होना दुःख है, इच्छा
पूर्ति न होना भी दु ख है, प्रिय व्यक्तियों से वियोग और अप्रिय व्यक्तियो से सयोग दु.ख है,
प में पञ्चस्कन्ध भी दु ख है—इस प्रकार के ज्ञान को ही दुःख आर्यसत्य कहते है।

ससार में बार-बार जन्म दिलाने वाली तृष्णा तीन प्रकार की होती है—भोग-विलास-
बन्धी तृष्णा (= काम-तृष्णा), ससार में बार-बार जन्म लेकर आनन्द उठाने की तृष्णा (=भव
णा) और इन सबसे वचित रहकर सर्वथा विलीन हो जाने की नास्तिक-भाववाली तृष्णा
= विभव तृष्णा)। इन्हीं तृष्णाओं के ज्ञान को दु ख-समुदय आर्यसत्य कहते हैं।

दु ख की उत्पत्ति के रुक जाने को ही दु ख-निरोध आर्यसत्य कहते हैं। सभी दु खों की
त्पत्ति का मूल कारण तृष्णा है, अत तृष्णा का सर्वथा निरोध ही दु ख निरोध आर्यसत्य है।
ख-निरोध का ही दूसरा नाम निर्वाण है। निर्वाण को प्राप्त कर ससार-चक्र रुक जाता है।

दु ख-निरोध-गामिनी-प्रतिपदा आर्यसत्य को ही मध्यम मार्ग कहते है। यह आठ भागों
विभक्त है—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाणी (४) सम्यक् कर्मान्त
(५) सम्यक् आजीविका (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि। दु ख
से मुक्ति के लिए यह अकेला मार्ग है। इसी पर चलकर सारे दु खों का क्षय होता है।

प्रज्ञाभूमि (प्रतीत्य समुत्पाद)-निर्देश

कार्य-कारण के सिद्धान्त को प्रतीत्य-समुत्पाद कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने उसे इस प्रकार बतलाया है—"अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, सस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नाम और रूप, नाम और रूप के प्रत्यय से छ आयतन, छ आयतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (=जन्म), जाति के प्रत्यय से बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, दु ख उठाना, बेचैनी और परेशानी होती है। इस तरह सारा दु खसमुदाय उठ खड़ा होता है।"

प्रत्यय चौबीस हैं—हेतु प्रत्यय, आलम्बन प्रत्यय, अधिपति प्रत्यय, अन्तर प्रत्यय, समानान्तर प्रत्यय, सहजात प्रत्यय, निश्रय प्रत्यय, उपनिश्रय प्रत्यय, पुरेजात प्रत्यय, पश्चात्-जात प्रत्यय, आसेवन प्रत्यय, कर्म प्रत्यय, विपाक प्रत्यय, आहार प्रत्यय, इन्द्रिय प्रत्यय, ध्यान प्रत्यय, मार्ग प्रत्यय, सम्प्रयुक्त प्रत्यय, विप्रयुक्त प्रत्यय, अस्ति प्रत्यय, नास्ति प्रत्यय, विगत प्रत्यय, अविगत प्रत्यय।

इन प्रत्ययों में अविद्या पुण्य-संस्कारों का आलम्बन और उपनिश्रय—इन दो प्रत्ययों से प्रत्यय होती है, अपुण्य-सस्कारोंका अनेक प्रकार से प्रत्यय होती है और आनेञ्ज-संस्कारों का केवल उपनिश्रय प्रत्यय से ही प्रत्यय होती है। प्रतीत्य समुत्पाद के सम्बन्ध में तथागत ने कहा था—"आनन्द! यह प्रतीत्य समुत्पाद गम्भीर है और गम्भीर-सा दीखता भी है। आनन्द! इस धर्म के न जानने से ही यह प्रजा उलझे सूत सी, गाँठ पड़ी रस्सी-सी, मूँज-बल्वज (भाभड़) सी, अपाय, दुर्गति, विनिपात को प्राप्त हो, ससार से नहीं पार हो सकती।"

जिस प्रकार अविद्या अनेक प्रत्ययों से संस्कारों का प्रत्यय होती है वैसे ही संस्कार भी विज्ञान के प्रत्यय होते हैं और ऐसे ही क्रमशः शेष भी भव के प्रत्यय होते हैं और भव चक्र चलता रहता है। च्युति के पश्चात् प्रतिसन्धि और प्रतिसन्धि के बाद पुन च्युति का क्रम उस समय तक जारी रहता है जब तक कि सभी दुःखों का निरोध निर्वाण प्राप्त नहीं हो जाता।

दृष्टिविशुद्धि-निर्देश

विशुद्धियाँ सात हैं—(१) शील-विशुद्धि (२) चित्त-विशुद्धि (३) दृष्टि-विशुद्धि (४) कांक्षा वितरण विशुद्धि (५) मार्गामार्ग ज्ञान-दर्शन विशुद्धि (६) प्रतिपदा ज्ञान-दर्शन विशुद्धि (७) ज्ञान-दर्शन विशुद्धि। शील-विशुद्धि सुपरिशुद्ध प्रातिमोक्ष-संवर आदि चार प्रकार के शील को कहते हैं और चित्त-विशुद्धि उपचार-सहित आठ समापत्तियाँ हैं। इनका वर्णन शील-निर्देश तथा समाधि निर्देश में सब प्रकार से किया गया है।

पंचस्कन्ध (=रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान) को यथार्थ रूप से देखने को दृष्टि विशुद्धि कहते हैं। जो योगी पंचस्कन्ध को भली प्रकार देखता है वह जानता है कि इस शरीर में कोई 'मनुष्य' या 'सत्व' नहीं है केवल नामरूप मात्र है। यह यन्त्र के समान शून्य है तथा नाना प्रकार के दुःखों का घर है। नाम और रूप भी परस्पर आश्रित हैं। एक के नष्ट होने पर दूसरा भी नष्ट हो जाता है। जैसे डण्डे से मारने पर नगाड़ा बजता है। नगाड़े से निकला हुआ शब्द दूसरा ही होता है और नगाड़ा तथा शब्द मिले हुए नहीं रहते। नगाड़ा भी शब्द से शून्य होता है और शब्द नगाड़ा से शून्य। ऐसे ही नाम और रूप के संयोग से यह शरीर चल रहा है किन्तु दोनों ही निर्जीव हैं। इस प्रकार नाना ढंग से नाम और रूप को निर्जीव रूप में यथार्थ-देखना दृष्टि-विशुद्धि है।

कांक्षा वितरण-विशुद्धि-निर्देश

नाम और रूप के प्रति तीनों कालों में उत्पन्न होनेवाले सन्देह को मिटाने वाला ज्ञान ही कांक्षा-वितरण-विशुद्धि कहलाता है। योगी जानता है कि कर्म और फल मात्र विद्यमान हैं। फल भी कर्म से उत्पन्न है। कर्म से पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार संसार चल रहा है।

कर्म चार प्रकार के हैं—दृष्टधर्म वेदनीय उपपद्य वेदनीय अपरापर्य वेदनीय अहोसि कर्म। अन्य भी चार प्रकार के कर्म हैं—गरुक, बहुल, यदासन्न कटत्ता। जनक, उपत्थम्भक, उपपीड़क उपघातक—ये भी चार प्रकार के कर्म हैं। इन बारह प्रकार के कर्मों और उनके पश्चात् उनके विपाकों को जानकर ज्ञानी नाम और रूप के प्रत्यय का विचार करता है। और तब वह जानता है—"कर्म का करने वाला कोई नहीं है और न तो फल को भोगने वाला ही। केवल शुद्ध धर्म मात्र प्रवर्तित होते हैं। यहाँ संसार को चलाने वाला न तो कोई देवता है और न तो ब्रह्मा ही। केवल कार्य और कारण से शुद्ध धर्म प्रवर्तित होते हैं।"

मार्गामार्ग-ज्ञान-दर्शन-विशुद्धि निर्देश

उचित और अनुचित मार्ग को जानने वाला ज्ञान ही मार्गामार्ग-ज्ञान-दर्शन विशुद्धि है। लौकिक परिज्ञाएँ हैं—ज्ञातपरिज्ञा तीरणपरिज्ञा प्रहाणपरिज्ञा। रूप आदि के लक्षण को जानने का जानने की प्रज्ञा ज्ञातपरिज्ञा है। रूप वेदना आदि की अनित्यता को जानने की प्रज्ञा तीरण-परिज्ञा है और उन्हीं में नित्य संज्ञा आदि के विचार का त्यागने की प्रज्ञा प्रहाणपरिज्ञा है। इन

तीनों परिज्ञाओं से योगी पञ्चस्कन्ध का विचार करता है और देखता है कि पञ्चस्कन्ध अनित्य, दु ख, रोग, फोड़ा, काँटा, अघ, आबाधा आदि हैं। वह कर्म, कर्मसमुत्थान, कर्म-प्रत्यय, चित्त, चित्तसमुत्थान, चित्त प्रत्यय और आहार, ऋतु के अनुसार भी पञ्चस्कन्ध का मनन करके इनकी प्रवृत्ति को देखता है, तब उसे स्पष्ट रूप में जान पड़ता है कि जीवन, आत्मभाव और सुख-दु ख एक चित्त के साथ ही लगे रहते हैं। क्षण बहुत ही लघु है। वह यह जानता है कि अवभास आदि धर्म मार्ग नहीं है, जिससे कि निर्वाण-लाभ हो सके, प्रत्युत उपक्लेशों से विमुक्त विपश्यना-ज्ञान ही यथार्थ मार्ग है। इस प्रकार मार्ग और अ-मार्ग को जाननेवाला ज्ञान मार्गामार्ग-ज्ञान-दर्शन विशुद्धि है।

प्रतिपदाज्ञान-दर्शन-विशुद्धि-निर्देश

आठ ज्ञानों के अनुसार श्रेष्ठत्व-प्राप्त विपश्यना और सत्यानुलोमिक ज्ञान—इन्हें ही प्रतिपदाज्ञान-दर्शन-विशुद्धि कहते हैं। आठ विपश्यना-ज्ञान ये हैं—(१) उदयव्ययानुपश्यना ज्ञान (२) भङ्गानुपश्यना ज्ञान (३) भयतो-उपस्थान ज्ञान (४) आदीनवानुपश्यना ज्ञान (५) निर्विदानुपश्यना ज्ञान (६) मुञ्चितुकम्यता ज्ञान (७) प्रतिसंख्यानुपश्यना ज्ञान (८) संस्कार-उपेक्षा ज्ञान। इन ज्ञानों द्वारा अनित्य, दु ख और अनात्म के रूप में भावना करनी चाहिए। इस भावना को उत्थान-गामिनी परिशुद्ध विपश्यना भी कहते हैं। इस भावना को करने वाला व्यक्ति जानता है कि सारा संसार क्षणिक, दु खमय और अनात्म है और वह इसी भावना में मनोयोग कर शान्त एवं परिशुद्ध विपश्यना में सदा लगा हुआ महाभयानक संसार-दु ख से मुक्त हो जाता है।

ज्ञानदर्शन-विशुद्धि-निर्देश

स्रोतापत्ति मार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामी मार्ग और अर्हत् मार्ग—इन चारों मार्गों का ज्ञान ज्ञानदर्शन-विशुद्धि कहलाता है। स्रोतापत्ति-मार्ग-ज्ञान की प्राप्ति के लिए अन्य कुछ करना नहीं है। जो कुछ करना था, उसे अनुलोम की अन्तिम विपश्यना उत्पन्न करते हुए किया ही है। वह उसी की भावना करते हुए सभी निमित्त-आलम्बनों को विघ्न के रूप में देखकर अनिमित्त अर्थात् निर्वाण का आलम्बन करते, निर्वाण-भूमि में उतरते हुए स्रोतापत्ति मार्ग ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

इस ज्ञान के पश्चात् उसके ही प्रगट हुए दो-तीन फल चित्त उत्पन्न होते हैं, तब वह स्रोतापन्न हो जाता है, वह देव-लोक तथा मनुष्य लोक में सात बार ही उत्पन्न होकर दु ख का अन्त करने में समर्थ हो जाता है, उसका आठवाँ जन्म नहीं होता।

फल के अन्त में उसका चित्त भवाङ्ग में उतर जाता है और फिर भवाङ्ग को काटकर मार्ग का प्रत्यवेक्षण करने के लिए मनोद्वारावर्जन उत्पन्न होता है। उसके विरुद्ध होने पर मार्ग-प्रत्यवेक्षण करने वाले जवन उत्पन्न होते हैं। पुन भवाङ्ग में उतर कर उसी प्रकार फल आदि के प्रत्यवेक्षण के लिए जवन आदि उत्पन्न होते हैं। वह मार्ग, फल आदि का प्रत्यवेक्षण करते, निर्वाण का भी प्रत्यवेक्षण करने लगता है, तब उसे क्रमश प्रत्यवेक्षण करते सकृदागामी-मार्ग-ज्ञान उत्पन्न होता है।

तदुपरान्त उक्त प्रकार से ही फल-चित्तों को जानना चाहिए। अब वह सकृदागामी हो जाता है। उसके राग, द्वेष और मोह दुर्बल हो जाते हैं। वह फिर केवल एक ही बार इस लोक में आता है और आकर निर्वाण का साक्षात्कार करता है। वह सकृदागामी आर्यश्रावक उक्त प्रकार से ही प्रत्यवेक्षण करके उसी आसन पर बैठे कामराग और व्यापाद के सर्वथा प्रहाण के लिए प्रयत्न करता है और अनागामी-मार्ग-ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

तदनन्तर उक्त प्रकार से ही फल-चित्तों को जानना चाहिए। अब वह अनागामी हो जाता है। उसके कामराग, प्रतिहिंसा, आत्मदृष्टि, मिथ्या व्रतादि और विचिकित्सा के भाव सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति मरकर साक्षात् ब्रह्मलोक की शुद्धावास भूमि में उत्पन्न होता है और वहीं निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है। वह शुद्धावास ब्रह्मलोक से फिर इस लोक में जन्म ग्रहण नहीं करता।

अनागामी आर्यश्रावक अपने द्वारा प्राप्त मार्ग-फल का प्रत्यवेक्षण करते हुए उसी आसन पर बैठे रूप-अरूप-राग, मान, औद्धत्य और अविद्या के प्रहाण के लिए समायोग करता है। वह इन्द्रिय, बल और बोध्यङ्ग का योग प्रतिपादन कर उन संस्कारों को अनित्य, दुःख और अनात्म के रूप में ज्ञान से देखता है, तब उसे अर्हत् मार्ग-ज्ञान उत्पन्न होता है। इस ज्ञान के पश्चात् फल-चित्त उत्पन्न होते हैं, तब वह अर्हत् हो जाता है। उसके सभी प्रकार के चित्त-मल क्षय हो जाते हैं। वह इसी जन्म में चित्त और प्रज्ञा की विमुक्ति का स्वयं साक्षात्कार कर विहरता है। वह लोक का अग्र-दाक्षिणेय हो जाता है।

प्रज्ञा भावनानृशंस-निर्देश

प्रज्ञा-भावना के अनन्त गुण (=आनृशंस) हैं। दीर्घकाल तक भी उसके गुणों को विस्तारपूर्वक नहीं कहा जा सकता। संक्षेप में नाना प्रकार के क्लेशों का विध्वंस करना, आर्य फल के रस का अनुभव करना, निरोध-समापत्ति को प्राप्त कर विहरने का सामर्थ्य और आह्वानीय भाव आदि की सिद्धि प्रज्ञा के गुण जानने चाहिए। चूँकि आर्यप्रज्ञा की भावना अनेक गुणवाली है, इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति को उसमें मन लगाना चाहिए।

विशुद्धिमार्ग की विषय भूमि के ज्ञान के लिए जो प्रत्येक निर्देश का परिचय दिया गया है वह बहुत ही संक्षिप्त है और सब विषयों का उल्लेख भी नहीं किया जा सका है, केवल प्रधान विषय मात्र लिखा दिए गए हैं। अतः विषयों का पूर्ण ज्ञान विशुद्धिमार्ग के अध्ययन से ही हो सकेगा, फिर भी इस संक्षिप्त परिचय से विशुद्धिमार्ग की विषय-भूमि का कुछ अनुमान हो सकेगा।

विशुद्धिमार्ग की भाषा

विशुद्धिमार्ग की भाषा उन स्थलों पर सरल, सुबोध एवं सरस है जहाँ कि बुद्धघोष ने साधारण रूप से वर्णन किया है। वहाँ भी विशुद्धिमार्ग की भाषा माधुर्य एवं प्रसादगुण-सम्पन्न है जहाँ कि विषय से सम्बन्धित कथाओं को देकर वर्णन में रोचकता ला दी गई है, किन्तु उन स्थलों पर भाषा अत्यन्त गम्भीर और कठिन हो गई है जहाँ कि त्रिपिटक के अंशों को उद्धृत कर प्रत्येक शब्द की टीका की गई है। हम कह सकते हैं कि उन स्थलों पर इस ग्रन्थ की भाषा कर्कश और सौन्दर्य-रहित हो गई है। विशुद्धिमार्ग साधारण पाठक के लिए नहीं लिखा गया था, प्रत्युत भिक्षु-संघ के आदेश पर पाण्डित्य-प्रदर्शन हेतु बौद्ध शास्त्रों में प्रवेश-प्राप्त भिक्षुओं के लिए एक असाधारण प्रज्ञा-बल-सम्पन्न पण्डित द्वारा लिखा गया था, इसलिए साधारण पाठक के लिए भाषागम्य और रोचक नहीं है।

विषय की गम्भीरता के कारण भी भाषा जटिल हो गई है, किन्तु पालि में गति रखने वाले व्यक्ति के लिए इसकी भाषा आनन्ददायक एवं चित्त को प्रसन्न करनेवाली है। योगियों के लिए तो इससे बढ़कर दूसरा कोई अभिरुचि उत्पन्न करनेवाला ग्रन्थ हो नहीं है। बुद्धघोष ने उन्हीं के प्रमोद के लिए इसकी रचना भी की है। उन्होंने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही लिखा है :—

पूछनेपर उत्तर देना होता है, वैसे ही इस प्रकारकी सभामें तीन वार तक पुकारा जाता है। किन्तु, जो भिक्षुणी तीन वार पुकारनेपर याद रहते हुए भी, विद्यमान दोषको प्रकट नहीं करती, वह जान बूझकर झूठ बोलनेकी दोषी होती है। आर्याओ! भगवान्ने जान-बूझ कर झूठ बोलनेको *अन्तरायिक* (=विघ्नकारक) कर्म कहा है, इसलिये याद रखते हुए दोष युक्त भिक्षुणीको शुद्ध होनेकी कामनासे (अपनेमें) विद्यमान दोषको प्रकट करना चाहिये, (दोषोंका) प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।

आर्याओ! *निदान* कह दिया गया। अब मैं आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप सब) इन (निदानमें कही बातों)से शुद्ध हैं? दूसरी वार भी पूछती हूँ—क्या इनसे शुद्ध हैं? तीसरी वार भी पूछती हूँ, क्या इनसे शुद्ध हैं? आर्या परिशुद्ध ही हैं, इसीलिए चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ, इति।

निदान समाप्त

§११—पाराजिक (१-८)

(१) मैथुन

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* धर्म कहे जाते हैं।

१—जो कोई भिक्षुणी कामासक्त हो अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्म सेवन करे वह *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(२) चोरी

२—जो कोई भिक्षुणी चोरी समझी जाने वाली किसी वस्तुको ग्राम या अरण्यसे बिना दिये हुए ही ग्रहण करे, जिसे (मालिकके) बिना दिये हुए लेनेसे राजा उस व्यक्तिको चोर = स्तेन, मूर्ख, मूढ़ कहकर बाँधता मारता या देश-निकाला देता है, तो वह भिक्षुणी पाराजिका होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(३) मनुष्य हत्या

३—जो भिक्षुणी जानकर मनुष्यको प्राणसे मारे या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लावे, या मरनेकी तारीफ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे ! क्या तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके विचारसे, इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे। वह भी *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(४) दिव्य शक्तिका दावा

४—जो भिक्षुणी न विद्यमान, दिव्य-शक्ति (= उत्तर-मनुष्य-धर्म) = अलम् आर्य ज्ञान-दर्शनको अपनेमें विद्यमान बतलाती है—'ऐसा जानती हूँ, ऐसा देखती हूँ।" तब दूसरे समय पूछे जाने या न पूछे जानेपर पछतावेसे, या आश्रम छोड़ जानेकी इच्छासे (कहे)—'आर्ये' ! न जानते हुए मैंने 'जानती हूँ' कहा, न देखते हुए मैंने 'देखती हूँ' कहा मैंने झूठ—तुच्छ कहा। वह *पाराजिका* होती है। यदि अधिमान(=अभिमान)से न कहा हो।

(५) कामासक्तिके काय

५—जो कोई भिक्षुणी कामुकी हो, कामुक पुरुषके जानुसे ऊपरके निचले शरीरको सहराने पकड़े, ग्रहण करे, छुवे, या दबानेको स्वीकार करे तो वह *ऊर्ध्वजानु-मण्डलिका* (भिक्षुणी) *पाराजिका* होती है।

६—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए पाराजिक दोषवाली भिक्षुणीको न स्वयं टोके, न गणको ही सूचित करे और जब (उस भिक्षुणी भिक्षुणी-वेषमें) स्थित या च्युत या निकाल दी जाय, या मतान्तरमें चली जाय तो ऐसा कहे—'आर्ये ! मैं पहले हीसे यह जानती थी—यह भगिनी ऐसी वैसी है, किन्तु न मैंने स्वयं टोका, न (भिक्षुणी) गणको

सूचित किया। यह दोष छिपानेवाली (भिक्षुणी) भी *पाराजिका* होती है ०।

(६) संघसे निकालेका अनुगमन

७—जो भिक्षुणी *समग्र* संघ द्वारा अलग किये गये *धर्म—विनय—और—बुद्धोपदेशमें* आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और अकेले भिक्षुका अनुगमन करे तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्ये! (= अम्मा!) यह भिक्षु सारे संघ द्वारा अलग किया गया और धर्म, विनय, तथा बुद्धोपदेशमें आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और सहायता रहित है। आर्ये! मत (इस) भिक्षुका अनुगमन करो।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कही जानेपर यदि वह भिक्षुणी वैसे ही जिद पकड़े रहे तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे तीन बार तक उसके छोड़नेके लिये कहना चाहिये। तीन बार कही जानेपर यदि वह उसे छोड़ दे तो अच्छा, यदि न छोड़े तो यह *उत्क्षिप्तानुवर्तिका* (= अलग किये हुएका अनुगमन करनेवाली) *पाराजिका* होती है ०।

(७) कामासक्तिसे पुरुषका स्पर्श

८—जो कोई भिक्षुणी आसक्त हो, रागातुर पुरुषके हाथ पकड़ने या चद्दरके कोनेके पकड़नेका आस्वाद ले, या (उसके साथ) खड़ी रहे, या भाषण करे, या संकेत की ओर जाय या पुरुषका अनुगमन करे, या छिपे (स्थान)में प्रवेश करे, या शरीरको उसपर छोड़े, तो यह आठ बातोंवाली भिक्षुणी भी *पाराजिका* होती है।

आर्याओ! यह आठ *पाराजिक* दोष कहे गये। इनमेंसे किसी एकके करनेसे भिक्षुणी भिक्षुणियोंके साथ वास नहीं करने पाती। जैसे पहिले वैसे ही पीछे *पाराजिका* होकर साथ रहने योग्य नहीं रहती। क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

पाराजिका समाप्त ॥ १ ॥

११—पाराजिक (१-८)

(१) मैथुन

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* धर्म कहे जाते हैं।

१—जो कोई भिक्षुणी कामासक्त हो अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्म सेवन करे वह पाराजिका होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(२) चोरी

२—जो कोई भिक्षुणी चोरी समझी जाने वाली किसी वस्तुको ग्राम या अरण्यसे बिना दिये हुए ही ग्रहण करे, जिस (मालिकके) बिना दिये हुए लेनेसे राजा उस व्यक्तिको चोर = स्तेन, मूर्ख, मूढ़ कहकर बाँधता, मारता या देश-निकाला देता है, तो वह भिक्षुणी पाराजिका होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(३) मनुष्य हत्या

३—जो भिक्षुणी जानकर मनुष्यको प्राणसे मारे या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लावे, या मरनेकी तारीफ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे ! स्त्री तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके विचारसे, इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे। वह भी *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(४) दिव्य शक्तिका दावा

४—जो भिक्षुणी न विद्यमान, दिव्य शक्ति (= उत्तर-मनुष्य-धर्म) = अलम् आर्य ज्ञान-दर्शनको अपनेमें विद्यमान बतलाती है—"ऐसा जानती हूँ, ऐसा देखती हूँ।" तब दूसरे समय पूछे जाने या न पूछे जानेपर पश्चात्ताप, या आपत्तिसे छूट जानेकी इच्छासे (कहे)—"आर्ये ! न जानते हुए मैंने 'जानती हूँ' कहा, न देखते हुए मैंने 'देखती हूँ' कहा मैंने झूठ तुच्छ कहा। वह *पाराजिका* होती है। यदि अधिमान(=अभिमान)से न कहा हो।

(५) कामासक्तिसे काम

५—जो कोई भिक्षुणी कामुकी हो, कामुक पुरुषके जानुसे ऊपरके निचले शरीरको सहलाये, पकड़ा करे, मर्दन करे, छुये, या दबानेका स्वाद ले तो वह *उब्भजानु-मंडलिका* (भिक्षुणी) *पाराजिका* होती है।

६—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए पाराजिक दोषवाली भिक्षुणीको न स्वयं टोके, न गणको ही सूचित करे और जब (उस भिक्षुणी भिक्षुणी-वर्गसे) चली जाय या मर जाय या निकाल दी जाय, या साम्प्रदायिक गयी जान तो ऐसा कहे—'आर्ये ! मैं पहले होसे यह जानती थी—यह भगिनी ऐसी वैसी है, किन्तु न मैंने स्वयं टोका, न (भिक्षुणी) गणको

(६) पाराजिकका दोषारोपण

८—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराजगीसे दूसरी भिक्षुणीपर निर्मूल *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमे कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जावे, (=भिक्षुणी न रह जावे) फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगडा निर्मूल (मालूम) हो, और उस (दोष लगाने वाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो, तो वह भी० ।

९—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराज़गीसे, अन्य प्रकारके झगडे की कोई बात लेकर दूसरी भिक्षुणीको पाराजिक दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय, और फिर पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी असलियत मालूम हो और उस (दोष लगानेवाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो, तो वह भी० ।

(७) धर्मका प्रत्याख्यान

१०—यदि कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो यह कहे—"मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, सघका प्रत्याख्यान करती हूँ, *शाक्यपुत्रीय* श्रमणियों (=साधुनियों) से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं । मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी ।" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये ! मत कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहो,—'मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, सघका प्रत्याख्यान करती हूँ । शाक्यपुत्रीय श्रमणियों से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, सकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं, मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी'—आर्ये ! यह धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है । इसमे श्रद्धालु वन दु:खके अच्छी तरह नाशके लिये ब्रह्मचर्य-वास करो !" भिक्षुणियो द्वारा ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी वैसेही जिद पकडे रहे तो भिक्षुणियोंको तीन बार तक उससे उस जिद्को छोडनेके लिये कहना चाहिये । तीन बार तक कही जानेपर यदि वह उस ज़िद्को छोड दे तो उसके लिये अच्छा है, यदि न छोडे तो वह भी० ।

(८) भिक्षुणियोंका निन्दना

११—जो कोई भिक्षुणी किसी अभियोगमे हार जानेपर कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहे—"रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।" तो उस भिक्षुणीको और भिक्षुणियाँ ऐसे कहें—"आर्ये ! किसी झगडेमें हार जानेसे कुपित और असतुष्ट हो मत ऐसा कहो—'रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेपके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।' आर्या ही राग, द्वेष, मोह, भयके पीछे जा सकती हैं ।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कही जाने पर यदि वह भिक्षुणी वैसेही ज़िद पकडे रहे तो भिक्षुणियाँ तीन बार तक उससे वह ज़िद् छोड़नेके लिये कहें । तीन बार तक कहे जानेपर यदि वह उस ज़िद्को छोड दे तो यह उसके लिये अच्छा है नहीं तो वह भिक्षुणी भी० ।

(९) बुरा संसर्ग

१२—भिक्षुणियाँ यदि दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-सघके प्रति द्रोह करती और एक दूसरेके दोषोंको ढाँकती (बुरे) संसर्गमे रहती हों, तो (दूसरी) भिक्षुणियाँ उन भिक्षुणियोंको ऐसा कहें—"भगिनियो ! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन,

§२—संघादिसेस (९-२५)

आर्याओ! यह सत्रह दोष संघादिसेस कहे जाते हैं—

(१) पुरुषोंके साथ विहरना

१—जो भिक्षुणी कुपित होकर गृहस्थ, गृहस्थके पुत्र, दास या मजदूरके साथ अन्ततः श्रमण परिव्राजकके साथ भी विहरे तो यह भिक्षुणी भी प्रथम (श्रेणीके) दोष की अपराधिनी है। और (उसके लिये) संघादिसेस है निकाल देना।

(२) चोरनी या वध्याको भिक्षुणी बनाना

२—जो भिक्षुणी राजा, संघ[1], गण[2] पूग[3], श्रेणी[4] को बिना सूचित किये—जानकर प्रकट चोरनी या वध्याको—(दूसरे मतमें) साधुनी बनी हुईको छोड़—साधुनी बनाये, वह भिक्षुणी भी०।

(३) अकेले घूमना

३—जो भिक्षुणी अकेली ग्रामान्तरको जाये, अकेली नदी पार जाये, अकेली रात को प्रवास करे, (या) गणसे अलग चली जाये वह भिक्षुणी भी०।

(४) संघसे निकालीको साथिन बनाना

४—जो भिक्षुणी सारे संघद्वारा धर्म, विनय और बुद्धोपदेशसे अलग की गई भिक्षुणीको *कारक-संघ (= संघकी कार्यकारिणी सभा)* को *बिना पूछे*, और *गणकी* रुचि को बिना जाने, साथी बनाती है वह भिक्षुणी भी०।

(५) कामासक्तिके काम

५—जो भिक्षुणी आसक्त हो, आसक्त पुरुषके हाथसे खाद्य, भोज्य अपने हाथसे लेकर खाये, भोजन करे, वह भिक्षुणी भी०।

६—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—'आर्ये! चाहे आसक्त हो या अनासक्त यह पुरुष तेरा क्या करेगा क्योंकि तू तो अनासक्त है? हाँ! तो आर्ये! जो कुछ खाद्य भोज्य यह पुरुष तुझे देता है उसे तू अपने हाथसे लेकर खा, भोजन कर', वह भिक्षुणी भी०।

७—किसी भिक्षुणीका किसी ... किसी पुरुषसे या किसी पुरुषकी बात को बिना माने कहना—'तू जाग चल, या पत्नी बन, या अन्यत्र कुछ ही करोके लिये (जगह बन)', वह भिक्षुणी भी०।

[1] भिक्षुणी-संघ। [2] प्रजातंत्र। [3] = पूग सामूहिक शासन। [4] श्रेणीका शासन।

(६) पाराजिकका दोषारोपण

८—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराजगीसे दूसरी भिक्षुणीपर निर्मूल *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमे कि वह इस ब्रह्मचर्यमे च्युत हो जावे, (=भिक्षुणी न रह जावे) फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगडा निर्मूल (मालूम) हो, और उस (दोष लगाने वाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो, तो वह भी० ।

९—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराजगीसे, अन्य प्रकारके झगडे की कोई बात लेकर दूसरी भिक्षुणीको पाराजिक दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय, और फिर पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी असलियत मालूम हो और उस (दोष लगानेवाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो, तो वह भी० ।

(७) धर्मका प्रत्याख्यान

१०—यदि कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो यह कहे—"मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, सघका प्रत्याख्यान करती हूँ, *शाक्यपुत्रीय* श्रमणियों (=साधुनियों) से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, सकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं । मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी ।" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये ! मत कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहो,—'मैं बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, संघका प्रत्याख्यान करती हूँ । शाक्यपुत्रीय श्रमणियो से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ हैं, मैं उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी'—आर्ये ! यह धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है । इसमें श्रद्धालु बन दु:खके अच्छी तरह नाशके लिये ब्रह्मचर्य-वास करो !" भिक्षुणियों द्वारा ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी वैसेही जिद पकडे रहे तो भिक्षुणियोंको तीन बार तक उससे उस जिद्को छोडनेके लिये कहना चाहिये । तीन बार तक कही जानेपर यदि वह उस जिद्को छोड़ दे तो उसके लिये अच्छा है, यदि न छोड़े तो वह भी० ।

(८) भिक्षुणियोंका निन्दना

११—जो कोई भिक्षुणी किसी अभियोगमें हार जानेपर कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहे—"रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।" तो उस भिक्षुणीको और भिक्षुणियाँ ऐसे कहें—"आर्ये ! किसी झगडेमें हार जानेसे कुपित और असतुष्ट हो मत ऐसा कहो—'रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ ।' आर्या ही राग, द्वेष, मोह, भयके पीछे जा सकती हैं ।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कही जाने पर यदि वह भिक्षुणी वैसेही जिद पकडे रहे तो भिक्षुणियाँ तीन बार तक उससे वह जिद् छोड़नेके लिये कहे । तीन बार तक कहे जानेपर यदि वह उस जिद्को छोड दे तो यह उसके लिये अच्छा है नहीं तो वह भिक्षुणी भी० ।

(९) बुरा संसर्ग

१२—भिक्षुणियाँ यदि दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती और एक दूसरेके दोषोंको ढाँकती (बुरे) संसर्गमें रहती हों, तो (दूसरी) भिक्षुणियाँ उन भिक्षुणियोंको ऐसा कहे—"भगिनियो ! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन,

भिक्षुणी संघके प्रति द्रोह करती हो और एक दूसरेके दोषोंको छिपाती (बुरे) संसर्गमें रहती हो। भगिनियोंका संघ तो एकान्त शील और विवेकका प्रशंसक है।" यदि उनके ऐसा कहनेपर वे भिक्षुणियाँ अपने दोषोंको छोड़ देनेके लिये न तैयार हो तो वे तीन बार तक उनसे उन्हें छोड़ देनेके लिये कहें। यदि तीन बार तक कहनेपर वे उन्हें छोड़ दें तो यह उनके लिये अच्छा है नहीं तो वे भिक्षुणियाँ भी०।

१३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणियोंको ऐसा कहे—"आर्याओ! तुम सब (बुरे) संसर्गमें रहो, मत अलग रहो! संघमें ऐसे आचार ऐसी बदनामी, ऐसी अपकीर्ति वाली भिक्षुणी-संघम द्रोह करनेवाली, एक दूसरेके दोषको छिपानेवाली, दूसरी भिक्षुणियाँ भी हैं। उनको संघ कुछ नहीं कहता, संघ दुर्बल और कमजोर होनेके कारण तुम्हाराही कोपमें अपमान करता है, परिभव करता है, और यह कहता है—'भगिनियो! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती हो, और अपने दोषोंको ढाँकनेवाली हो (बुरे) संसर्गमें रहती हो। भगिनियोंका संघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशंसक है?" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो—'आर्याओ! तुम सब० विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षुणियोंके कहे जाने पर०। यदि न माने तो वह भिक्षुणी भी०।

(१०) संघमें फूट डालना

१४—यदि कोई भिक्षुणी एकमत संघमें फूट डालनेका प्रयत्न करे, या फूट डालनेवाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहे, तो उसे और भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहें—'आर्ये! मत (आप) एकमत संघमें फूट डालनेका प्रयत्न करें, मत फूट डालनेवाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहें। आर्ये! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला विवाद न करनेवाला, एक उद्देश्यवाला, एकमत रहनेवाला संघ सुखपूर्वक रहता है।" उन भिक्षुणियों द्वारा ऐसा समझाये जानेपर भी यदि वह भिक्षुणी उसी प्रकार अपनी जिदपर कायम रहे तो दूसरी भिक्षुणियाँ उस० उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े, तो वह०।

१५—उस (संघ-भेदक) भिक्षुणीकी अनुयायी, पक्षपाती, एक दो या तीन भिक्षुणियाँ हों और वे यह कहें—"आर्याओ! मत इस भिक्षुणीको कुछ कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी है। नियमानुकूल (विनय) बोलने वाली है। हमारी भी राय और रुचिको लेकर यह कह रही है। हमारे मनकी (बातको) जानकर कहती है। हमको भी यह पसंद है। तब दूसरी भिक्षुणियोंको उन भिक्षुणियोंसे इस प्रकार कहना चाहिये—"मत आर्याओ! ऐसा कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी नहीं है और न यह नियमानुकूल बोलने वाली है। आर्याओंको भी संघमें फूट डालना न रुचना चाहिये। आर्याओ! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला विवाद न करनेवाला एक उद्देश्य वाला, एकमत रहने वाला संघ सुख-पूर्वक रहता है।" यदि भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर भी व भिक्षुणियाँ अपनी जिदको पकड़े रहें०। यदि न छोड़ें।

(११) बात न सुननेवाली बनना

१६—यदि कोई भिक्षुणी कटुभाषिणी है, विहित आचार नियमों (शिक्षा-पदों)के बारेमें उचित रीतिसे कहे जानेपर कहती है—"आर्यालोग अच्छा या बुरा मुझे कुछ मत कहें। मैं भी आर्याओंको अच्छा या बुरा कुछ न कहूँगी। आर्याओ! मुझसे बात करनेसे बाज आओ।' तो (अन्य) भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत

आर्या अपनेको अवचनीया (दूसरोंका उपदेश न सुनने वाली) बनावे। आर्या अपनेको वचनीया ही बनावे। आर्या भी भिक्षुणियोंको उचित बात कहे, भिक्षुणियाँ भी आर्याको उचित बात कहे। परस्पर कहने कहाने, परस्पर उत्साह दिलानेमे ही भगवानकी यह मडली (एक दूसरेसे) सबद्ध है। भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर भी ० यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोडे तो ०।

(१२) कुलोंका बिगाड़ना

१७—कोई भिक्षुणी किसी गॉव या कस्बेमे कुलदूषिका और दुराचारिणी होकर रहती है। उसके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। कुलोंको उसने दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। तो दूसरी भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्या कुलदूषिका और दुराचारिणी हैं। आर्याके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आर्याने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ, यहाँ (आपका) रहना ठीक नही है।" भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी ऐसा बोले—"भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली हैं, द्वेषके पीछे चलनेवाली हैं, मोहके पीछे चलनेवाली हैं, भयके पीछे चलने वाली हैं। उन्ही अपराधोंके कारण किसी किसीको दूर करती हैं और किसी किसीको दूर नही करती।" तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत आर्या ऐसा कहे—भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली नही हैं, द्वेषके पीछे चलनेवाली नही हैं, मोहके पीछे चलनेवाली नहीं हैं, भयके पीछे चलनेवाली नहीं हैं। आर्या कुलदूषिका और दुराचारिणी हैं। आर्याके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते हैं। आर्याने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ। यहाँ रहना ठीक नही है।" भिक्षुणियों द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी यदि ०। यदि न ०।

आर्याओ[1] यह सत्रह *संघादिसेस* कह दिये गये। नव प्रथम (बारहीमें) दोष (गिने जाने) वाले और आठ तीन बार तक (दोहरानेपर), इनमेसे यदि किसी एक अपराधको भिक्षुणी करे तो वह भिक्षुणी, (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघोंमें पक्ष भर *मानत्व*[1] करे। *मानत्व* पूरा हो जानेपर जहॉ बीस भिक्षुणियोंवाला भिक्षुणी-संघ हो उसके पास जावे। यदि बीस भिक्षुणियोंमेसे एक (भी) कम वाला भिक्षुणी-संघ हो और वह भिक्षुणीको (अपराध) मुक्त करे तो वह भिक्षुणी मुक्त नहीं होती और वह भिक्षुणियाँ निंदनीय हैं।—यह यहॉपर उचित (क्रिया) है।

आर्याओंसे पूछती हूँ, क्या (आप) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

संघादिसेस समाप्त ॥ २ ॥

---

[1] देखो चुल्लवग्ग पारिवासिक स्कंधक २§१, २

§३—निस्सग्गिय-पाचित्तिय (२५-५५)

आर्याओ ! यह तीस अपराध *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* कहे जाते हैं।

(१) पात्र

१—जो भिक्षुणी पात्रोंका संचय करे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२—जो भिक्षुणी असमयके चीवरको समयका चीवर मान बँटवाये तो ०।

(२) चीवर

३—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके साथ चीवरको बदलकर पीछे यह कहे—"हन्त ! आर्ये ! इस अपने चीवरको ले आओ। जो तुम्हारा है वह तुम्हारा हो, और जो मेरा है वह मेरा। उसे ले आओ, और अपना ले जाओ" (—यह कह) छीन ले या छिन वाले तो ०।

(३) चीजोंका चेताना (=माँगना)

४—जो भिक्षुणी एक (चीज)के लिये कह कर फिर दूसरीके लिए कहे तो ०।

५—जो भिक्षुणी एक (चीज)को चेताकर (=माँगकर) फिर दूसरीको चेतावे तो ०।

६—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले दूसरे प्रयोजनवाले संघके सामानसे (—के बदले) दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

७—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले संघके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

८—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजन (=जनसमूह) के सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

९—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजनके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

१०—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले दूसरे प्रयोजनवाले व्यक्ति (विशेष)के माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

(इति) पत्तवग्ग ॥१॥

(४) ओढ़नेको चेताना

११—जाड़के ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक चार *कंस* (—सोलह कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। यदि उससे अधिकका चेतावे तो ०।

१२—गर्मीके ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक ढाई *कंस* (—दस कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। उससे अधिक चेतावे तो ०।

(५) कठिन चीवर और चीवर

१३—चीवरके तैयार हो जानेपर, कठिन (चीवर)के मिल जानेपर अधिकसे अधिक दस दिन तक, अतिरिक्त (=पाँचसे अतिरिक्त) चीवरको रखना चाहिये। इस अवधिका अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

१४—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिनके* मिल जानेपर भिक्षुणियोंकी सम्मतिके बिना यदि भिक्षुणी एक रात भी पाचों चीवरोंसे रहित रहे तो ०।

१५—चीवरके तैयार हो जानेपर, *कठिनके* मिल जानेपर यदि भिक्षुणीको बिना समयका चीवर (का कपड़ा) *प्राप्त हो तो इच्छा होनेपर* भिक्षुणी *उसे ग्रहण कर सकती है।* ग्रहण करके शीघ्र ही दस दिन तक (चीवर) बना लेना चाहिये। यदि उसको पूरा नहीं करे तो प्रत्याशा होने पर कमीको पूर्तिके लिये एक मास भर भिक्षुणी उसे रख छोड़ सकती है। प्रत्याशा होनेपर उससे अधिक यदि रख छोड़े तो ०।

१६—जो कोई भिक्षुणी किसी *अज्ञातक गृहस्थ* या गृहस्थिनोंसे, खास अवस्थाके सिवाय, चीवर देनेके लिये कहे तो ०। खास अवस्था यह है—जब कि भिक्षुणीका चीवर छिन गया हो या नष्ट हो गया हो।

१७—उसी (भिक्षुणी)को यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियाँ यथेच्छ चीवर प्रदान करे तो उन चीवरोंमेंसे अपनी आवश्यकतासे एक चीवर कम लेना चाहिये। यदि अधिक ले तो ०।

१८—उसी भिक्षुणीके लिये ही यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर मैं अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करूँगा। वहाँ यदि वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिले ही जाकर अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मान् मुझे इस चीवरके धनसे ऐसा ऐसा चीवर बनवाकर प्रदान करे, तो०।

१९—उसी भिक्षुणीके लिये दो *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने एक एक चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—हम चीवरोंके इन धनोंसे एक एक चीवर बनवाकर अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करेंगे। वहाँ यदि वह भिक्षुणी *प्रदान* करनेसे पहिलेही अच्छे-की इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मानो! मुझे इन प्रत्येक चीवरके धनसे दोनों मिलाकर ऐसा (एक) चीवर बनवाकर प्रदान करे, तो ०।

२०—उसी भिक्षुणीके लिये राजा, राज-कर्मचारी, ब्राह्मण या गृहस्थ चीवरके लिये (यह कहकर) धनको दूत द्वारा भेजें—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर अमुक नामकी भिक्षुणीको प्रदान करो। और वह दूत उस भिक्षुणीके पास जाकर यह कहे—भगिनी! आर्याके लिये यह चीवरका धन आया है। इस चीवरके धनको आर्या स्वीकार करें। तो उस भिक्षुणीको उस दूतसे यह कहना चाहिये—आवुस! हम चीवरके धनको नहीं लेतीं। समयानुसार विहित चीवरहीको हम लेती हैं। यदि वह दूत उस भिक्षुणीको ऐसा कहे—क्या आर्याका कोई काम-काज करनेवाला है?—तो उस भिक्षुणीको आश्रम-सेवक या उपासक—किसी काम-काज करनेवालेको बतला देना चाहिये—आवुस! यह भिक्षुणियोंका कामकाज करनेवाला है। यदि वह दूत उस कामकाज करने वालेको समझाकर उस भिक्षुणीके पास आकर यह कहे—भगिनी! आर्याने जिस काम काज करनेवालेको बतलाया, उसे मैंने समझा दिया। आर्या समयपर जायें। वह आपको

चीवर प्रदान करेगा। चीवरकी आवश्यकता रखनेवाली भिक्षुणीको उस काम-काज करने वालेके पास जाकर दो तीन बार याद दिलानी चाहिये—आवुस ! मुझे चीवरकी आवश्यकता है। दो तीन बार प्रेरणा करनेपर, याद दिलानेपर यदि चीवरको प्रदान करे तो ठीक, न प्रदान करे तो चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक (उसके यहाँ जाकर) चुपचाप खड़ी रहना चाहिये। चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक चुपचाप खड़ी रहनेपर यदि चीवर प्रदान करे तो ठीक उससे अधिक कोशिश करने पर यदि उस चीवरको प्राप्त करे तो ०। यदि न प्रदान करे तो जहाँसे चीवरका धन आया है, वहाँ स्वयं जाकर या दूत भेज कर (कहना चाहिये)—आप आयुष्मानोंने जिस भिक्षुणीके लिये चीवरका धन भेजा था वह उस भिक्षुणीके कामका नहीं हुआ। आयुष्मानो ! अपने (धन) को देखो तुम्हारा (वह) धन नष्ट न हो जाय—यह वहाँ पर उचित कर्तव्य है।

(इति) चीवर वग्ग ॥२॥

(६) चाँदी सोने रुपये पैसेका व्यवहार

२१—जो कोई भिक्षुणी सोना या रजत (=चाँदी आदिके सिक्के)को ग्रहण करे या ग्रहण करवाये, रखे हुएका उपयोग करे, तो ०।

२२—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके रुपयों (=रुपिय = सिक्का)का व्यवहार करे तो ०।

(७) क्रय विक्रय

२३—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके खरीदने बेचनेके कामको करे, तो ०।

(८) पात्र

२४—जो कोई भिक्षुणी पाँचसे कम (जगह) टँके पात्रसे दूसरे नये पात्रको बदले तो ०। उस भिक्षुणीको वह पात्र भिक्षुणी-परिषद्को दे देना चाहिये और जो (पात्र) भिक्षुणी-परिषद्का अन्तिम पात्र है उस भिक्षुणीको (यह कहकर) देना चाहिये—भिक्षुणी ! यह तेरे लिये पात्र है। जब तक न टूटे तब तक (इसे) धारण करना।—यह यहाँ उचित (प्रतिकार) है।

(९) भैषज्य

२५—भिक्षुणीका घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़ (आदि) रोगी भिक्षुणियोंके सेवन करने लायक पथ्य (= भैषज्य)को ग्रहण कर अधिकसे अधिक सप्ताह भर रखकर भोग कर लेना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर ०।

(१०) चीवर

२६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको स्वयं चीवर देकर फिर कुपित और नाराज हो छीन या छिनवाए तो ०।

२७—जो कोई भिक्षुणी स्वयं सूत माँगकर कोरी (= जुलाहा)से चीवर बुनवाये तो ०।

२८—कोई भिक्षुणीके लिये अज्ञातक गृहस्थ या गृहस्थिनी कोरीसे चीवर बुनवायें और वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहले ही कोरीके पास जाकर (यह कहकर) चीवरमें

हेरफेर कराये—आवुस ! यह चीवर मेरे लिये बुना जा रहा है। इसे लंबा चौडा बनाओ, घना, अच्छी तरह तना, खूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छी तरह छटाँ हुआ बनाओ, तो हम भी आयुष्मानोंको कुछ दे देगी, और नही तो कुछ भिक्षा मेसे ही, तो ०।

२९—*कार्त्तिककी त्रैमासी पूर्णिमाके आनेसे दस दिन पहिले ही यदि भिक्षुणीको* फाजिल (पाँच से अधिक) चीवर प्राप्त हो तो फाजिल समझते हुए भिक्षुणीको उसे प्राप्त करना चाहिये। ग्रहणकर *चीवरकाल* तक रखना चाहिये। उसके बाद यदि रखे तो ०।

(११) संघके लाभमें भाँजी मारना

३०—जो कोई भिक्षुणी, संघके लिये प्राप्त वस्तु (=लाभ)को अपने लिये परिवर्तन करा ले तो ०।

(इति) जातरूप वग्ग ॥३॥

आर्याओ ! तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

निस्सग्गिय-पाचित्तिय समाप्त ॥३॥

§४—पाचित्तिय (५६-२२१)

आर्याओ! यह एकसौ छियासठ *पाचित्तिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) लहसुनका खाना

१—जो भिक्षुणी लहसुन खाय, उसे *पाचित्तिय* है।

(२) कामासक्तिके कार्य

२—जो भिक्षुणी गुह्यस्थानके लोमको बनवावे, उसे ०।

३—*तलघातक*[1]में *पाचित्तिय* है।

४—*जतुमट्ठक*[2]में पाचित्तिय है।

५—(स्त्री-इन्द्रिय)की जलसे शुद्धि करते वक्त, भिक्षुणीको अधिकसे अधिक दो अँगुलियोंके दो पोर तक लेना चाहिये; उसका अतिक्रमण करनेपर *पाचित्तिय* है।

(३) भिक्षुकी सेवा

६—जो भिक्षुणी, भोजन करते भिक्षुको जलसे या पंखेसे सेवा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(४) कच्चा अनाज

७—जो भिक्षुणी कच्चे अनाजको माँगकर या मँगवाकर, भूनकर या भुनवाकर, कूटकर या कुटवाकर, पकाकर या पकवाकर खाये उसे ०।

(५) पेशाब-पाखाना सम्बन्धी

८—जो भिक्षुणी, पेशाब या पाखानेको, कूड़ा या जूठेको दीवारके पीछे या प्राकारके पीछे फेंके, उसे ०।

९—जो भिक्षुणी पेशाब या पाखानेको कूड़ा या जूठेको हरियालीपर फेंके, उसे ०।

(६) नाच गान

१०—जो भिक्षुणी नृत्य गीत, वाद्यको देखने जाये, उसे ०।

(इति) लशुन-वर्ग ॥१॥

(७) पुरुषके साथ

११—जो भिक्षुणी प्रदीपरहित रात्रिके अंधकारमें अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

---

[1] कृत्रिम मैथुन। [2] लाखका बना मैथुन-साधन।

१२—जो भिक्षुणी, आडके स्थानमें अकेले पुरुपके साथ अकेली खडी रहे, या वातचीत करे, उसे ०।

१३—जो भिक्षुणी चोड़ेमें अकेले पुरुपके साथ अकेली खडी रहे, या वातचीत करे, उसे ०।

१४—जो भिक्षुणी, सडकपर, या व्यूह (= एक निकास) या चौरस्तेपर अकेले पुरुपके साथ अकेली खडी रहे या वातचीत करे, या कानमें वात करे, या दूसरी भिक्षुणीको (वैसा करनेके लिये) प्रेरित करे, उसे ०।

(८) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

१५—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल) के पूर्व गृहस्थोके घरोंमें जा आसनपर बैठे, (गृह-) स्वामियोंको विना पूछे चली आये, उसे ०।

१६—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल)के पश्चात् गृहस्थोंके घरोंमे जा, स्वामियोको विना पूछे आसनपर बैठ या लेटे, उसे ०।

१७—जो भिक्षुणी, मध्यान्हके वाद (= *विकालमें*) गृहस्थोके घरोंमें जा, स्वामियोको विना पूछे विस्तरा विछाकर या विछवाकर बैठे या लेटे, उसे ०।

(९) भिक्षुणीको दिक् करना

१८—जो भिक्षुणी, (वातको)उलटा समझ उलटा पकड़कर दूसरी (भिक्षुणी) को दिक् करे, उसे ०।

(१०) सरापना

१९—जो भिक्षुणी, अपनेको या दूसरेको नरक या ब्रह्मचर्यको ले कर शाप दे, उसे ०।

(११) देह पीटकर रोना

२०—जो भिक्षुणी, अपने (शरीर)को पीट पीटकर रोये, उसे ०।

(इति) रत्तन्धकार-वग्ग ॥२॥

(१२) स्नान

२१—जो भिक्षुणी, नगी होकर नहाये ०।

२२—वनवाते समय भिक्षुणीको प्रमाणके अनुसार नहानेकी साडी वनवानी चाहिये। प्रमाण यह है—बुद्धके वित्तेसे लम्बाई चार वित्ता, चौडाई दो वित्ता। इसका अतिक्रमण करे, तो उसे ०।

(१३) चीवर

२३—जो भिक्षुणी, (दूसरी) भिक्षुणीके चीवरको न सीने न सिलवाने देकर, पीछे कोई वाधा न होनेपर भी वह न सिये न सिलवानेके लिये प्रयत्न करे, तो चार पाँच दिन (की देर)को छोड, उसे ०।

२४—जो भिक्षुणी, पाँचवें दिन अवश्य *संघाटी* धारण करने (के नियम)का अतिक्रमण करे, उसे ०।

२५—जो भिक्षुणी, बिना पूछे (दूसरेके) चीवरको धारण करे, उसे ०।

२६—जो भिक्षुणी, (भिक्षुणी-) गणके चीवर-लाभमें विघ्न डाले, उसे ०।

२७—जो भिक्षुणी, धर्मानुसार चीवरके बँटवारेमें बाधा डाले, उसे ०।

§४–पाचित्तिय (५६-२२१)

आर्याओ! यह एकसौ छियासठ *पाचित्तिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) लहसुनका खाना

१—जो भिक्षुणी लहसुन खाय, उसे *पाचित्तिय* है।

(२) कामासक्तिके कार्य

२—जो भिक्षुणी गुह्यस्थानके लोमको बनवाय, उसे ०।

३—तलघातक[1] में *पाचित्तिय* है।

४—जतुमट्टक[2] में पाचित्तिय है।

५—(स्त्री-इन्द्रिय)की जलसे शुद्धि करते वक्त, भिक्षुणीको अधिकसे अधिक दो अँगुलियोंके दो पोर तक लेना चाहिये, उसका अतिक्रमण करनेपर *पाचित्तिय* है।

(३) भिक्षुकी सेवा

६—जो भिक्षुणी, भोजन करते भिक्षुको जलसे या पंखेसे सेवा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(४) कच्चा अनाज

७—जो भिक्षुणी कच्चे अनाजको माँगकर या मँगवाकर, भूनकर या भुनवाकर, कूटकर या कुटवाकर, पकाकर या पकवाकर खाये उसे ०।

(५) पेसाब-पाखाना सम्बन्धी

८—जो भिक्षुणी, पेसाब या पाखानेको, कूड़ा या जूठेको दीवारके पीछे या प्राकारके पीछे फेंके उसे ०।

९—जो भिक्षुणी पेसाब या पाखानेको, कूड़ा या जूठेको हरियालीपर फेंके, उसे ०।

(६) नाच गान

१०—जो भिक्षुणी नृत्य, गीत वाद्यको देखने जाये, उसे ०।

(इति) लशुन-वग्ग ॥१॥

(७) पुरुषके साथ

११—जो भिक्षुणी प्रदीपरहित रात्रिके अंधकारमें अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

---

[1] कृत्रिम मैथुन। [2] लाखका बना मैथुन-साधन।

(२०) तमाशा देखना

४१—जो भिक्षुणी राज-प्रासाद, चित्र-शाला, आराम, उद्यान, या पुष्करिणीको देखने जाये, उसे ०।

(२१) कुर्सी पलंगका इस्तेमाल

४२—जो भिक्षुणी कुर्सी या पलगका उपयोग करे, उसे ०।

(२२) सूत कातना

४३—जो भिक्षुणी सूत काते, उसे ०।

(२३) गृहस्थोंकेसे काम-काज करना

४४—जो भिक्षुणी गृहस्थकेसे काम-काजको करे, उसे ०।

(२४) झगड़ा न निबटाना

४५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके यह कहनेपर—"आओ आर्ये ! इस झगडेको निवटा दो", "अच्छा"—कह पीछे कोई हर्ज न होनेपर भी (उस झगडेको) न निवटावे, न निवटानेके लिये प्रयत्न करे, तो उसे ०।

(२५) भोजन देना

४६—जो भिक्षुणी गृहस्थ, परिव्राजक या परिव्राजिकाको अपने हाथसे खाद्य, भोज्य दे, उसे ०।

(२६) आश्रमके चीवरमें बेपर्वाही

४७—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोगकर (उसे) धोकर न रखदे, उसे ०।

४८—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोग करके विना धोये रख चारिका (= विचरण = रामत)के लिये चली जाय, उसे ०।

(२७) झूठी विद्याओंका पढना पढ़ाना

४९—जो कोई भिक्षुणी झूठी, विद्याओंको सीखे पढ़े, उसे ०।

५०—जो भिक्षुणी झूठी विद्याओंको पढाये, उसे ०।

(इति) चित्तागार-वग्ग ॥५॥

(२८) भिक्षुवाले आराममें प्रवेश

५१—जो भिक्षुणी जानत हुए जिस आराममें भिक्षु हों उसमें विना पूछे प्रवेश करे, उसे०।

(२९) निन्दना

५२—जो भिक्षुणी भिक्षुको दुर्वचन कहे या निंदा करे, उसे ०।

५३—जो भिक्षुणी क्रुद्ध हो (भिक्षुणी-) गणको निन्दा करे, उसे ०।

(३०) तृप्तिके बाद खाना

५४—जो भिक्षुणी निमंत्रित हो तृप्त होजानेपर खाद्य-भोज्यको (फिर) खाये, उसे ०।

(३१) गृहस्थोंसे डाह

५५—जो भिक्षुणी (गृहस्थ-)कुलसे मत्सर करे, उसे ०।

२८—जो भिक्षुणी, श्रमण (= भिक्षु)के चीवरको (किसी) गृही, परिव्राजक या परिव्राजिकाको दे, उस ०।

२९—जो भिक्षुणी, चीवरको कम आशासे चीवरकालकी अवधि[1] को बिता दे, उस ०।

३०—जो भिक्षुणी (भिक्षुणी-संघ द्वारा) धर्मानुसार किये जाते कठिन (चीवर) के लेने (= उद्धार)में रुकावट डाले, उस ०।

(इति) नग्ग वग्ग ।।३।।

(१४) साथ लेटना

३१—यदि दो भिक्षुणियाँ एक चारपाईपर लेटें तो उन्हें ०।

३२—यदि दो भिक्षुणियाँ एक बिछौने-ओढ़नेमें लेटें तो उन्हें ०।

(१५) हैरान करना

३३—जो भिक्षुणी जानबूझकर (दूसरी) भिक्षुणीको हैरान करे, उसे ०।

(१६) रोगी शिष्याकी सेवा न करना

३४—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को रोगी देख न सेवा करे न सेवा करानेके लिये उद्योग करे, उस ०।

(१७) उपाश्रय दे निकालना

३५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको आश्रय (= *उपाश्रय*) देकर पीछे कुपित और असंतुष्ट हो निकालद या निकलवावे, उस ०।

(१८) पुरुष संसर्ग

३६—जो भिक्षुणी गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके रहे उस भिक्षुणीको (दूसरी) भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहें—"आर्ये ! गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके मत रहो। भगिनियोंका संघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षुणियों द्वारा कहे जानेपर यदि वह जिद न छोड़े तो भिक्षुणियाँ उसे तीन बार तक समझावें। यदि तीन बार तक समझानेपर वह अपनी जिद छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है; यदि न छोड़े, तो उसे ०।

(१९) विचरना

३७—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण (स्व)देशमें साथियोंके बिना अकेली विचरण करे, उस ०।

३८—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण बाहरदेशमें साथियोंके बिना (अकेली) विचरण करे, उस ०।

३९—जो भिक्षुणी वर्षा कालके भीतर विचरण करे, उस ०।

४०—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके कमसेकम पाँच छ योजन भी विचरण करनेके लिये न चली जाय, उस ०।

(इति) तुवट्ट-वग्ग ।।४।।

---

[1] कार्तिक पूर्णिमासे फाल्गुन पूर्णिमा तकका समय।

७०—जो भिक्षुणी शिष्याको भिक्षुणी बनाकर कमसे कम पाँच छ योजन भी न ले लिवा जाये, उसे ०।

(इति) गाब्भिनी-वग्ग ॥७॥

७१—जो भिक्षुणी बीस वर्षसे कमकी कुमारीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

७२—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा बिना दिये भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

७३—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा देकर संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

७४—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कम उम्रवालीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

७५—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षवालीको संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

७६—जो भिक्षुणी—"आर्ये ! मत (इसे) भिक्षुणी बना"—कहे जानेपर "अच्छा" कह, पीछे बातसे हट जाय, उसे०।

७७—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! मुझे चीवर देगी तो मैं तुझे भिक्षुणी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे०।

७८—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! दो वर्ष तक मेरे साथ साथ रहेगी तो मैं तुझे साधुनी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे०।

७९—जो भिक्षुणी पुरुष या कुमारसे संसर्ग रखनेवाली चंडी दु:खदायिका, *शिक्षमाणा*-को भिक्षुणी बनावे, उसे०।

८०—जो भिक्षुणी माता, पिता या पतिकी आज्ञाके बिना *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे०।

८१—जो भिक्षुणी *परिवास*के सम्मति-दानसे, *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे०।

८२—जो भिक्षुणी प्रति वर्ष भिक्षुणी बनावे, उसे०।

८३—जो भिक्षुणी एक वर्षमें दोको भिक्षुणी बनावे, उसे०।

(इति) कुमारिभूत वग्ग ॥८॥

(३७) छाता-जूता, सवारी

८४—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए छाते, जूतेको धारण करे, उसे०।

८५—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए सवारीसे जाये, उसे०।

(३८) आभूषण आदिका श्रृङ्गार, सँवार

८६—जो कोई भिक्षुणी *संघाणी*[1]को धारण करे, उसे०।

८७—जो कोई भिक्षुणी स्त्रियोंके आभूषणको धारण करे, उसे०।

८८—जो भिक्षुणी सुगंधित चूर्णसे नहाये, उसे०।

---

[1] एक तरहकी माला।

(३२) भिक्षुओंरहित स्थानमें वर्षावास

५६—जो भिक्षुणी भिक्षुओं-रहित आवास (वास स्थान) में वर्षावास करे, उसे ०।

(३३) प्रवारणा

५७—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों संघोंके पास दृष्ट, श्रुत, परिशंकित इन तीनों प्रकारसे (जाने गये अपराधोंको) न स्वीकार करे, उसे ०।

(३४) उपदेश श्रवण और उपोसथ

५८—जो भिक्षुणी उपदेश और उपोसथके लिये न जाय, उसे ०।

५९—भिक्षुणीको प्रति पन्द्रहवें दिन भिक्षु-संघसे दो बातोंके पानेकी इच्छा रखनी चाहिये—(१) उपोसथमें पूछना, (२) उपदेश सुननेके लिये आना। इनका अतिक्रमण करनेसे उसे ०।

(३५) पुरुषसे फोड़ा चिरवाना

६०—जो भिक्षुणी गुह्यस्थानमें उत्पन्न फोड़े या व्रणको बिना (भिक्षुणियोंके) संघ या गणको पूछे अकेले पुरुषसे अकेलीही चिरवाये या धुलवाये या लेप कराये बँधवाये या छुड़वाये, उसे ०।

(इति) आराम-वग्ग ॥६॥

(३६) भिक्षुणी बनाना

६१—जो भिक्षुणी गर्भिणीको भिक्षुणी बनाये, उसे ०।

६२—जो भिक्षुणी दूध पीते बच्चेवालीको भिक्षुणी बनावे उसे ०।

६३—जो भिक्षुणी—जिसने दो वर्ष तक (हिंसा चोरी व्यभिचार झूठ मद्य-पान और मध्याह्नोपरान्त भोजन—इन छओंके परित्याग रूपी) छः धर्मोंको नहीं सीखा—ऐसी *शिक्षमाणा*[1] को भिक्षुणी बनाये उसे ०।

६४—जो भिक्षुणी दो वर्षों तक छओं धर्मोंको सीखे हुए *शिक्षमाणा*को संघकी सम्मतिके बिना भिक्षुणी बनावे उसे ०।

६५—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कमकी ब्याही स्त्रीको भिक्षुणी बनावे उसे ०।

६६—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी ब्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा बिना दिये भिक्षुणी बनावे उसे ०।

६७—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी ब्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा देकर संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनाये उसे ०।

६८—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को भिक्षुणी बनाकर दो वर्षों तक (शिक्षा दीक्षा आदिमें) न सहायता करे न करवाये उसे ०।

६९—जो भिक्षुणी उपसम्पन्न (=भिक्षुणी) हो (अपनी) उपाध्यायाके साथ दो वर्ष तक न रहे उसे ०।

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मीदवारामें जो नियमोंको सीख रही है।

(४६) जमीन खोदना

१०६—जो कोई भिक्षुणी जमीन खोदे या खुदवाये उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) मुसावाद-वग्ग ॥१०॥

(४७) वृक्ष काटना

१०७—भूत-ग्राम (=तृण वृक्ष आदि)के गिरानेमें *पाचित्तिय* है।

(४८) संघके पूछनेपर चुप रहना

१०८—(संघके पूछनेपर) उत्तर न दे हैरान करनेमे *पाचित्तिय* है।

(४९) निंदना

१०९—निंदा और बदनामी करनेमे *पाचित्तिय* है।

(५०) संघकी चीजमें बेपर्वाही

११०—जो कोई भिक्षुणी संघके मंच, पीढ़ा, बिस्तरा और गद्देको खुली जगहमें बिछा या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उन्हें न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१११—जो कोई भिक्षु, संघके विहार (=आश्रम)में बिछौना बिछाकर या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उसे न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

११२—जो कोई भिक्षुणी जानकर संघके *विहार*में पहिलेसे आई भिक्षुणीका बिना ख्याल किये, यही सोचकर कि दूसरा नहीं, (इस तरह) आसन लगाये जिससे कि (पहलेवाली भिक्षुणीको) दिक्कत हो, और वह चली जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११३—जो कोई भिक्षुणी कुपित और असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको संघके विहारसे निकाले या निकलवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११४—जो कोई भिक्षुणी संघके विहारमें ऊपरके कोठेपर पैर धबधबाते हुए मंच (=चारपाई) या पीठपर एकदमसे बैठे या लेटे उसे *पाचित्तिय* है।

११५—भिक्षुणीको स्वामीवाला (=महल्लक) विहार बनवाते समय, दरवाजे तक किवाड़ोंके बंद करने और जंगलोंके घुमानेके या लीपनेके समय हरियालीसे अलग खडी होकर करना चाहिये। उससे आगे यदि हरियालीपर खड़ी हो करे तो *पाचित्तिय* है।

(५१) बिना छना पानी पीना आदि

११६—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणी-सहित पानीसे तृण या मिट्टीको सींचे या सिंचवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भूत-गामवग्ग ॥११॥

(५२) भोजन सम्बन्धी

११७—नीरोग भिक्षुणीको (एक) निवास-स्थानमें एक ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। इससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है।

८९—जो भिक्षुणी वासे पानी (जिसको लगी)से नहाये, उसे० ।

९०—जो भिक्षुणी, भिक्षुणीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९१—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*से (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९२—जो भिक्षुणी श्रामणेरीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

९३—जो भिक्षुणी गृहस्थिनीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

(३९) भिक्षुके सामने आसनपर बैठना, प्रश्न पूछना

९४—जो भिक्षुणी भिक्षुके सामने बिना पूछे आसनपर बैठे, उसे० ।

९५—जो भिक्षुणी अवकाश माँगे बिना भिक्षुसे प्रश्न पूछे, उसे० ।

(४०) बिना कंचुक गाँवमें जाना

९६—जो भिक्षुणी कंचुकके बिना गाँवमें प्रवेश करे, उसे० ।

(इति) छत्त-वग्ग ।।९।।

(४१) मायाकी अनियमता

९७—जानबूझकर झूठ बोलनेमें *पाचित्तिय* है ।[1]

९८—*ओमसवाद* (—वचन मारनेमें) *पाचित्तिय* है ।

९९—भिक्षुणियोंकी चुगली करनेमें *पाचित्तिय* है ।

१००—भिक्षुणीका अन-भिक्षुणीको पदोंके क्रमसे *धर्म* (—बुद्धोपदेश) बँचवाना *पाचित्तिय* है ।

(४२) साथ लेटना

१०१—जो कोई भिक्षुणी अन् उपसंपन्नाके साथ दो तीन रातसे अधिक एक साथ सोये उसे *पाचित्तिय* है ।

१०२—जो भिक्षुणी पुरुषके साथ शयन करे, उसे *पाचित्तिय* है ।

(४३) धर्मोपदेश

१०३—पण्डिता (—विज्ञ)को छोड़ जो कोई भिक्षुणी पुरुषको पाँच छ वचनोंसे अधिक धर्मका उपदेश दे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४४) दिव्य शक्ति प्रदर्शन

१०४—जो कोई भिक्षुणी अनुपसंपन्नाको यथार्थ दिव्य-शक्तिके बारेमें भी कहे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४५) अपराध प्रकाशन

१०५—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षुणीके दुट्ठुल्ल अपराधको भिक्षुणियोंकी सम्मतिके बिना अन् उपसम्पन्ना (—अन-भिक्षुणी)से कहे, उसे *पाचित्तिय* है ।

---

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §५. १-६७ (पृष्ठ २२-२८) चार पाराजिका और तेरह संघादिसेस छोड़ बहुत कम आते हैं ।

१३१—दो तीन रात सेनामें वसते हुए (भी) यदि भिक्षुणी रण-क्षेत्र (=*उद्योधिका*), परेड (=*बलाग्र*), सेना-व्यूह या अनीक (=हाथी घोडा, आदिकी सेनाओंका क्रमसे स्थापना)को देखने जाये तो उसे *पाचित्तिय* है।

(५४) मद्य-पान

१३२—सुरा और कच्ची शराब पीनेमें *पाचित्तिय* है।

(५५) हँसी खेल

१३३—उँगलीसे गुदगुदानेमे *पाचित्तिय* है।

१३४—पानीमें खेल करनेमे *पाचित्तिय* है।

१३५—(व्यक्ति या वस्तुके) तिरस्कार करनेमे *पाचित्तिय* है।

१३६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको डरवाये तो *पाचित्तिय* है।

(इति) चरित्त-वग्ग ॥१३॥

(५६) आग तापना

१३७—वैसी जरूरत होनेके बिना जो कोई नीरोग भिक्षुणी तापनेकी इच्छासे आग जलाये या जलवाये तो *पाचित्तिय* है।

(५७) स्नान

१३८—जो कोई भिक्षुणी सिवाय विशेष अवस्थाके आध माससे पहले नहाये, उसे *पाचित्तिय* होता है। विशेष अवस्था यह है—ग्रीष्मके पीछेके डेढ मास और वर्षाका प्रथम मास, यह ढाई मास और गर्मीका समय, जलन होनेका समय, रोगका समय, काम (=लीपने पोतने आदिका समय), रास्ता चलनेका समय तथा आँधी-पानी का समय।

(५८) चीवर-पात्र

१३९—नया चीवर पानेपर नीला, काला या कीचड़ इन तीन दुर्वर्ण करनेवाले (पदार्थों)मेंसे किसी एकसे बदरंग (=दुर्वर्ण) करना चाहिये। यदि भिक्षुणी तीन बदरंग करने वाले (पदार्थों)मेंसे किसी एकसे नये चीवरको बिना बदरंग किये, उपभोग करे तो *पाचित्तिय* है।

१४०—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षु, भिक्षुणी, *शिक्षमाणा*,[1] श्रामणेर या श्रामणेरी को, स्वयं चीवर प्रदान कर बिना लौटाने (की सम्मति पाये) उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१४१—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके पात्र, चीवर, आसन, सुई रखनेकी फोंफी (सूचीघर) या कमरबन्दको हटाकर, चाहे परिहासके लिये ही क्यों न रक्खे, *पाचित्तिय* है।

(५९) प्राणिहिंसा

१४२—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणीके जीवको मारे तो *पाचित्तिय* है।

---

[1] जो भिक्षुणी होनेकी उम्मीदवारी कर रही हो।

११८—सिवाय विशेष अवस्थाके गणके साथ भोजन करनेमें *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्थाएँ ये हैं—रोगी होना, चीवर-दान, चीवर बनाना, यात्रा, नावपर चढ़ा होना, *महासमय* (=बुद्ध आदिके दर्शनके लिये जाना) और श्रमणों (=सभी मतके साधुओं)के भोजनका समय।

११९—घरपर जानेपर यदि (गृहस्थ) भिक्षुणीको आग्रहपूर्वक पूआ (=पाहुर), मंथ (=पाथय) यथेच्छ प्रदान करे तो इच्छा होनेपर पात्रके मेखला तक भर ग्रहण करे। उससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है। पात्रको मेखला तक भरकर ग्रहण कर वहाँसे निकल भिक्षुणियोंमें बाँटना चाहिये यह उस जगह उचित है।

१२०—जो कोई भिक्षुणी विकाल (=मध्याह्नके बाद)में खाद्य, भोज्य खाये तो *पाचित्तिय* है।

१२१—जो कोई भिक्षुणी रख-छोड़ खाद्य, भोज्यको खाये तो *पाचित्तिय* है।

१२२—जो कोई भिक्षुणी जल और दन्त धावन को छोड़कर बिना दिये मुखमें डाले लायक आहारको ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है।

१२३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—"आओ आर्ये! गाँव या कस्बेमें भिक्षान्नके लिये चलें।" फिर उसे दिलवाकर या न दिलवाकर प्रेरित करे—"आर्ये! जाओ, तुम्हारे साथ मुझे बात करना या बैठना अच्छा नहीं लगता, अकेले ही अच्छा लगता है।"—दूसरे नहीं, सिर्फ इतने ही कारणसे *पाचित्तिय* है।

१२४—जो कोई भिक्षुणी भोजनवाले कुलमें प्रविष्ट हो बैठकी करती है तो उसे *पाचित्तिय* है।

१२५—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ एकान्त पर्देवाले आसनमें बैठती है तो *पाचित्तिय* है।

१२६—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ अकेले एकान्तमें बैठे उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भोजन-वग्ग ॥१२॥

१२७—सिवाय विशेष अवस्थाके, निमंत्रित होनेपर जो भिक्षुणी भोजन रहनेपर भी विद्यमान भिक्षुणीसे बिना पूछे भोजनके पहिले या पीछे गृहस्थोंके घरमें गमन करे, उसे *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—चीवर बनाना और चीवर-दान।

१२८—नीरोग भिक्षुणीको *पुनः प्रवारणा*[1] और *नित्य*[1] *प्रवारणा*के सिवाय चातुर्मासिक भोजन आदि पदार्थ (=प्रत्यय)के दानको ग्रहण करना चाहिये। उससे बढ़कर यदि सेवन करे तो *पाचित्तिय* है।

(१३) सेनाका तमाशा

१२९—जो कोई भिक्षुणी बिना किसी कामके बिना लड़ी सेनाको देखने जाय उसे *पाचित्तिय* है।

१३०—यदि उस भिक्षुणीको सेनामें जानेका कोई काम हो तो उसे दो तीन रात सेनामें बसना चाहिये। उससे अधिक बसे तो *पाचित्तिय* है।

---

[1] रोगी होनेपर चातुर्मासिक बाद पुनः-प्रवारणा और नित्य प्रवारणा है।

(ख) जो कोई भिक्षुणी जानते हुये, इस प्रकार निकाली हुई श्रामणेरीको, सेवामें रक्खे, सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६३) धार्मिक बातका अस्वीकारना

१४९—जो कोई भिक्षुणी, भिक्षुणियोंके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आर्ये ! मैं तब तक इन भिक्षुणी-नियमों (=*शिक्षा-पदों*)को नही सीखूँगी जब तक कि दूसरी चतुर *विनय-धर*[1] भिक्षुणीको न पूछलूँ; उसे *पाचित्तिय* है। भिक्षुणियो ! सीखनेवाली भिक्षुणियोको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है।

(६४) प्रातिमोक्ष

१५०—जो कोई भिक्षुणी *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)की आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोंकी आवृत्तिसे क्या मतलब जो कि सन्देह, पीडा और क्षोभ पैदा करने वाले हैं—(इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमे *पाचित्तिय* है।

१५१—जो कोई भिक्षुणी प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"यह तो मैं आर्ये ! अब जानती हूँ, कि सूत्रोंमे आये, सूत्रों द्वारा अनुमोदित इस धर्मको भी प्रति पन्द्रहवें दिन आवृत्ति की जाती है। यदि दूसरी भिक्षुणियाँ उस भिक्षुणीको पूर्वसे बैठी जाने, (और) दो तीन या अधिक बार *पातिमोक्ख*की आवृत्तिकी जानेपर भी (उसको वैसेही पायें), तो बेसमझीके कारण वह भिक्षुणी मुक्त नही हो सकती। जो कुछ अपराध उसने किया है धर्मानुसार उसका प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आर्ये ! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमे धारण नहीं करती। उस मोहके करनेपर (=मूढताके लिये) *पाचित्तिय* है।

(६५) मारना, धमकाना

१५२—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको पीटती है, *पाचित्तिय* है।

१५३—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६६) संघादिसेसका दोषारोप

१५४—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीपर निर्मूल *सघादिसेस* (दोप)का लांछन लगाये, उसे पाचित्तिय है।

(६७) भिक्षुणीको दिक करना

१५५—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको, दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी, जान बूझकर सदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१५६—जो कोई भिक्षुणी दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि जो कुछ यह कहेगी उसे

---

[1] विनयपिटक जिसे कठस्थ हैं।

१४३—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणि-सहित जलको पीये, उसे *पाचित्तिय* है।

(६०) झगड़ा बढ़ाना

१४४—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए धर्मानुसार फैसला हो गये मामलेको फिर चलाने के लिये प्रेरणा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६१) यात्राके साथी

१४५—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए सलाह करके चोरोंके काफिलेके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गाँव ही तक जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) जोति वग्ग ॥१४॥

(६२) बुरी धारणा

१४६—जो कोई भिक्षुणी ऐसा कहे—मैं भगवान्‌के धर्मको ऐसा जानती हूँ, कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक कार्य कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते। तो दूसरी भिक्षुणियोंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो। मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोंको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियोंके कहनेपर वह भिक्षुणी यदि जिद् करे, तो भिक्षुणियोंको तीन बार तक उसे छोड़नेके लिये उस भिक्षुणीसे कहना चाहिये। यदि तीन बार तक कहे जानेपर उसे छोड़ दे, तो अच्छा। यदि न छोड़ तो पाचित्तिय है।

१४७—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए उक्त (प्रकारकी बुरी) धारणावाली (तथा) धर्मानुसार (मत) न परिवर्तन करनेवाली हो उस विचारको न छोड़नेवाली, भिक्षुणीके साथ (जो भिक्षुणी) सहभोज, सह-वास या सह-शय्या करती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१४८—(क) *श्रामणेरी*[1] भी यदि ऐसा कहे—मैं भगवान्‌के धर्मको ऐसे जानती हूँ कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक (=अन्तरायिक) काम कहे हैं उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नहीं कर सकते", तो (दूसरी) भिक्षुणियोंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! श्रामणेरी! मत ऐसा कहो! मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान् पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोंको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते हैं—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियों द्वारा कह जानेपर यदि वह श्रामणेरी जिद् कर तो भिक्षुणियाँ श्रामणेरीको ऐसा कहें—"आर्ये! श्रामणेरी! आजसे तुम उन भगवान्‌को अपना शास्ता (=उपदेशक—गुरु) न कहना, और जो दूसरी श्रामणेरियाँ दो रात तीन रात तक भिक्षुणियोंके साथ रह सकती हैं वह (साथ रहना) भी तुम्हारे लिये नहीं है। चलो, (यहाँसे) निकल जाओ।"

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मेदवार।

(ख) जो कोई भिक्षुणी जानते हुये, इस प्रकार निकाली हुई श्रामणेरीको, सेवामें रक्खे, सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है ।

(६३) धार्मिक बातका अस्वीकारना

१४९—जो कोई भिक्षुणी भिक्षुणियोंके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आर्ये ! मैं तब तक इन भिक्षुणी-नियमों (=*शिक्षा-पदा*)को नहीं सीखूँगी जब तक कि दूसरी चतुर *विनय-धर*[1] भिक्षुणीको न पूछलूँ; उसे *पाचित्तिय* है । भिक्षुणियो ! सीखनेवाली भिक्षुणियोंको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है ।

(६४) प्रातिमोक्ष

१५०—जो कोई भिक्षुणी *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)की आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोंकी आवृत्तिमें क्या मतलब जो कि सन्देह, पीड़ा और क्षोभ पैदा करने वाले हैं—(इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमें *पाचित्तिय* है ।

१५१—जो कोई भिक्षुणी प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"यह तो मैं आर्ये ! अब जानती हूँ, कि सूत्रोंमें आये, सूत्रो द्वारा अनुमोदित इस धर्मको भी प्रति पन्द्रहवे दिन आवृत्ति की जाती है । यदि दूसरी भिक्षुणियों उस भिक्षुणीको पूर्वसे बैठी जाने, (और) दो तीन या अधिक बार *पातिमोक्ख*की आवृत्तिको जानेपर भी (उसको वैसेही पायें); तो बेसमझीके कारण वह भिक्षुणी मुक्त नहीं हो सकती । जो कुछ अपराध उसने किया है धर्मानुसार उसका प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आर्ये ! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमें धारण नहीं करती । उस मोहके करनेपर (=मूढताके लिये) *पाचित्तिय* है ।

(६५) मारना, धमकाना

१५२—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको पीटती है, *पाचित्तिय* है ।

१५३—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है ।

(६६) संघादिसेसका दोषारोप

१५४—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीपर निर्मूल *संघादिसेस* (दोष)का लाछन लगाये, उसे पाचित्तिय है ।

(६७) भिक्षुणीको दिक करना

१५५—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको, दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी , जान बूझकर सदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है ।

१५६—जो कोई भिक्षुणी दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि जो कुछ यह कहेंगी उसे

---

[1] विनयपिटक जिसे कठस्थ है ।

सुनेंगी; कलह करती, विवाद करती, झगड़ती भिक्षुणियोंके (झगड़ेको सुननेके लिये) कान लगाती है, उसे पाचित्तिय है।

(इति) विट्ठि-वग्ग ॥१५॥

(६८) सम्मति दान

१५७—जो कोई भिक्षुणी धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी सम्मति (=छन्द) देकर पीछे हट जाती है, उसे पाचित्तिय है।

१५८—जो कोई भिक्षुणी संघके फैसला करनेकी बातमें लगे रहते वक्त बिना (अपना) छन्द (= सम्मति = vote) दियेही आसनसे उठकर चली जाय, उसे पाचित्तिय है।

१५९—जो कोई भिक्षुणी सारे संघके साथ (एकमत हो) चीवर देकर पीछे पलट जाती है—मुँह देखी करके (यह) भिक्षु लोग संघके धनको बाँटते हैं—उसे पाचित्तिय है।

(६९) सांघिक लाभमें भाँजी मारना

१६०—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए संघके लिये मिले हुए लाभको (एक) व्यक्ति (के लाभके रूपमें) परिणत करती है उसे यह पाचित्तिय है।

(७०) बहुमूल्य वस्तुका हटाना

१६१ —(क) जो कोई भिक्षुणी रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को आराम और सराय (=आवसथ)से दूसरी जगह ले या लिवा जाये, उसे पाचित्तिय है।

(ख) रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को आराम या आवसथमें लेकर या लिवाकर भिक्षुणीको उसे एक (जगह) रख देना चाहिये, (यह सोचकर) कि जिसका होगा वह ले जायगा।—यह यहाँ उचित है।

(७१) सूचीघर

१६२—जो कोई भिक्षुणी हड्डी, दन्त या सींगका सूचीघरको बनवाये, उसके लिये (उस सूचीघरको) तोड़ देना पाचित्तिय (=प्रायश्चित्त) है।

(७२) चौकी चारपाई

१६३—जो चारपाई या तख्त (=पीठ)को बनवाते वक्त भिक्षुणी उन्हें, निचली अटनी छोड़ सुगतके अंगुलसे आठ अंगुलवाले पावोंका बनवाये। इस अधिकमात्रा वालेको (पावोंको काट कर) कटवा देना पाचित्तिय है।

१६४—जो कोई भिक्षुणी चारपाई या तख्तको रूई भरकर बनवाये, उसके लिये उसे उधेड़ना पाचित्तिय है।

(७३) वस्त्र

१६५—गुप्तकी ढाँकनेके वस्त्र (संघाटी)को बनवाते समय (भिक्षुणी) प्रमाणके अनुसार बनवावे। प्रमाण इस प्रकार है—सुगतके बित्तेसे चार बित्ता लंबा दो बित्ता चौड़ा। इससे अधिकमात्रा वालेको काट कर कटवाना पाचित्तिय (=प्रायश्चित्त) है।

१६६—जो कोई भिक्षुणी सुगतके चीवरके बराबर या उससे बड़ा चीवर बनवाये तो काट

डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है । बुद्धके चीवरका प्रमाण इस प्रकार है—सुगत (=बुद्ध)के बित्तेसे लंबाई नौ बित्ता और चौड़ाई छ बित्ता । .. ।

(इति) धम्मिक-वग्ग ॥१६॥

आर्याओ ! यह एकसौ छाछठ *पाचित्तिय* दोष कहे गये । आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

पाचित्तिय समाप्त ॥४॥

६५—पाटिदेसनिय[1] (२२२-२६)

आर्याओ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) खानेकी चीज़को खास तौरसे माँगकर खाना

१—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए माँगकर घी खाये उसे *प्रतिदेशना* करनी चाहिये—"आर्ये! मैंने निन्दनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया। सो मैं उसकी प्रतिदेशना करती हूँ।"

२—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दहीको माँगकर खाये, उसे०।

३—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए तेलको माँगकर खाय, उसे०।

४—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मधुको माँगकर खाये, उसे०।

५—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मक्खनको माँगकर खाये, उसे०।

६—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मछलीको माँगकर खाये, उसे०।

७—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मांसको माँगकर खाय, उसे०।

८—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दूधको माँगकर खाय, उसे०।

आर्याओ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कह गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

पाटिदेसनिय समाप्त ॥५॥

---

[1] तुलना करो भिक्खु पातिमोक्ख पाटिदेसनिय §५।१९ (पृष्ठ ११)। अपराध स्वीकार पूर्वक क्षमायाचना पाटिदेसनिय कहा जाता है।

§६—सेखिय[1]

आर्याओ ! यह (पचहत्तर) *सेखिय* (= सीखने योग्य) बातें कही जाती हैं—

(१) चीवर पहिनना

१—*परिमडल* (चारों ओरसे ढाँककर) वस्त्र पहिनूँगी—यह शिक्षा (ग्रहण) करनी चाहिये।

२—*परिमडल* ओढूँगी।

(२) गृहस्थोंके घरमे जाना, बैठना

३—(गृहस्थोंके) घरमे अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके जाऊँगी—०।

४—घरमें अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके बैठूँगी—०।

५—घरमे अच्छी तरह सयमके साथ जाऊँगी—०।

६—घरमे अच्छी तरह सयमके साथ बैठूँगी—०।

७—घरमे नीची आँखकर जाऊँगी—०।

८—घरमें नीची आँखकर बैठूँगी—०।

९—घरमें शरीरको बिना उतान किये जाऊँगी—०।

१०—घरमें शरीरको बिना उतान किये बैठूँगी—०।

(इति) परिमंडल वग्ग ॥ १ ॥

११—(गृहस्थोंके) घरमें न कहकहा लगाते जाऊँगी—०।

१२—(गृहस्थोंके) घरमें न कहकहा लगाते बैठूँगी—०।

१३—घरमे चुपचाप जाऊँगी—०।

१४—घरमे चुपचाप बैठूँगी—०।

१५—घरमे देहको न भाँजते हुए जाऊँगी—०।

१६—घरमें देहको न भाँजते हुए बैठूँगी—०।

१७—घरमें बाँहको न भाँजते हुए जाऊँगी—०।

१८—घरमें बाँहको न भाँजते हुए बैठूँगी—०।

१९—घरमें सिरको न हिलाते हुए जाऊँगी—०।

२०—घरमें सिरको न हिलाते हुए बैठूँगी—०।

(इति) उज्जग्घिक वग्ग ॥२॥

---

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §७ (पृष्ठ २३-२५)

२१—घरमें न कमरपर हाथ रखकर जाऊँगी—०।
२२—घरमें न कमरपर हाथ रखकर बैठूँगी—०।
२३—घरमें न अवगुंठित हो (सिर ढाँके) जाऊँगी—०।
२४—घरमें न अवगुंठित हो (सिर ढाँक) बैठूँगी—०।
२५—घरमें न पंजोंके बल जाऊँगी—०।
२६—घरमें न पालथी मारकर बैठूँगी—०।

(३) भिक्षान्न ग्रहण और भोजन

२७—भिक्षान्नको सत्कार पूर्वक ग्रहण करूँगी—०।
२८—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।
२९—(अधिक नहीं) मात्राके अनुसार सूप (= तेमन)वाले भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।
३०—(पात्रसे उभरे नहीं) समतल भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—०।

(इति) सम्मान वर्ग ॥३॥

३१—सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३२—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३३—एक ओरसे भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३४—मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—०।
३५—पिंड (स्तूप)को बीच मीजकर नहीं भोजन करूँगी—०।
३६—अधिक दाल या भाजीकी इच्छासे (व्यंजन)को भातसे नहीं ढाँकूगी—०।
३७—नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नहीं भोजन करूँगी—०।
३८—न अवज्ञाके ख्यालसे दूसरोंके पात्रको देखूँगी—०।
३९—न बहुत बड़ा ग्रास बनाऊँगी— ।
४०—ग्रासको गोल बनाऊँगी—०।

(इति) सक्कच्च-वर्ग ॥४॥

४१—ग्रासको बिना मुँह तक आये मुखके द्वारको न खोलूँगी—०।
४२—भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें न डालूँगी—०।
४३—ग्रास पड़े हुए मुखसे बात नहीं करूँगी—०।
४४—ग्रास उछाल उछालकर नहीं खाऊँगी—०।
४५—ग्रासको काट काटकर नहीं खाऊँगी—०।
४६—न गाल फुला फुलाकर खाऊँगी—०।
४७—न हाथ झाड़ झाड़कर खाऊँगी—०।
४८—न जूठ बिखेर बिखेरकर खाऊँगी—०।
४९—न जीभ चटकार चटकार कर खाऊँगी—०।
५०—न चपचप करके खाऊँगी—०।

(इति) कबळ-वर्ग ॥५॥

५१—न सुड़सुड़कर खाऊँगी—०।
५२—न हाथ चाट चाटकर खाऊँगी—०।

५३—न पात्र चाट चाटकर खाऊँगी—० ।
५४—न ओठ चाट चाटकर खाऊँगी—० ।
५५—न जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन पकड़ूँगी—० ।
५६—न जूठ लगे पात्रके धोवनको घरमे छोड़ूँगी—० ।

(४) कैसेको उपदेश न करना

५७—हाथमें छाता धारण किये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
५८—हाथमें दंड लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
५९—हाथमे शस्त्र लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।
६०—हाथमे आयुध लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।

(इति) सुरुसुरु वग्ग ॥६॥

६१—खडाऊँपर चढे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
६२—जूता पहने निरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।
६३—सवारीमें बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
६४—शय्यामे लेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
६५—पालथी मारकर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
६६—सिर लपेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।
६७—ढँके शिरवाले नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
६८—न (स्वय) भूमिपर बैठकर, आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—० ।
६९—न नीचे आसनपर बैठकर ऊँचे आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—० ।
७०—खडे हो, बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—० ।
७१—(अपने) पीछे पीछे चलते आगे आगे जाते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।
७२—(अपने) रास्तेसे हटकर चलते हुए, रास्ते से चलते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—० ।

(५) पिसाव-पाखाना

७३—नीरोग रहते खडे खडे पिसाव-पाखाना नहीं करूँगी—० ।
७४—नीरोग रहते हरियालीमें पिसाव-पाखाना नही करूँगी—० ।
७५—नीरोग रहते पानीमें पिसाव-पाखाना नहीं करूँगी—० ।

(इति) पादुका-वग्ग ॥७॥

आर्याओ ! यह (पचहत्तर) *सेखिय* बातें कह दी गईं । आर्याओंसे मैं पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार फिर पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग इनसे शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

सेखिय समाप्त ॥६॥

§७—अधिकरण-समथ (३०५-११)

आर्याओ ! (समय समयपर) उत्पन्न हुए अधिकरणों (=झगड़ों) के शमनके लिये यह सात *अधिकरण-समथ* कहे जाते हैं—

(१) झगड़ा मिटानेके तरीके

१—सम्मुख-विनय देना चाहिये।
२—स्मृति-विनय देना चाहिये।
३—अमूढ़-विनय देना चाहिये।
४—प्रतिज्ञात-करण (=स्वीकार) कराना चाहिये।
५—यद्भूयसिक।
६—तत्पापीयसिक।
७—तिणवत्थारक।

आर्याओ! यह सात *अधिकरण समथ* कहे गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या आप लोग इनसे शुद्ध हैं? दूसरी बार पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं? आर्या लोग इनसे शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

अधिकरण समथ समाप्त ॥७॥

आर्याओ ! *निदान* कह दिया गया। (१-८) आठ *पाराजिक* दोष कह दिये गये। (९-२५) सत्तरह *सघादिसेस* दोष कह दिये गये। (२६-५५) तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (५६-२२१) एक सौ छाछठ *पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (२२२ २२९) आठ *पाटिदेसनिय* दोष कह दिये गये। (२३०-३०४) पचहत्तर *सेखिय* बातें कह दी गईं। (३०५-३११) सात *अधिकरण-समथ* कह दिये गये। इतनाही उन भगवानके सुत्तों (=सूक्तों—कथनों) में आये सुत्तों द्वारा अनुमोदित (नियम हैं जिनकी कि) प्रत्येक पन्द्रहवें दिन आवृत्ति की जाती है। (हम) सबको एकमत हो परस्पर अनुमोदन करते, विवाद न करते उन्हें सीखना चाहिये।

इति

भिक्खुनी-पातिमोक्ख समाप्त

पातिमोक्ख समाप्त

ख–खन्धक

३—महावग्ग

३–महावग्ग

१–महास्कन्धक[1]

१—बुद्धत्त्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा। २—शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्तव्य। ३—उपसपदा और प्रव्रज्या। ४—उपसपदाकी विधि।

§१–बुद्धत्त्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा

१—उरुवेला

(१) बोधि-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् उ रु वे ला में[2] ने र ज रा नदीके तीर बोधि-वृक्षके नीचे, प्रथम बुद्धपद (=अभिसबोधि)को प्राप्त हुए थे। भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे मोक्षका आनद लेते हुए बैठे रहे। उन्होने रातके प्रथम याममे प्रतीत्य-समुत्पादका अनुलोम (=आदिसे अन्तकी ओर) और प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया।—"अविद्याके कारण सस्कार होता है, सस्कारके कारण वि ज्ञा न होता है, विज्ञानके कारण ना म - रू प, नाम-रूपके कारण छ आ य त न, छ आयतनोंके कारण स्प र्श, स्पर्शके कारण वे द ना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भ व, भवके कारण जा ति, जाति (=जन्म)के कारण जरा (=बुढापा), मरण, शोक, रोना पीटना, दु ख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते है। इस तरह इस (ससार)की—जो केवल दु खोका पुज है—उत्पत्ति होती है। अविद्याके बिल्कुल विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेसे, सस्कारका विनाश होता है। सस्कार-नाशसे विज्ञानका नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूपके नाशसे छ आयतनोका नाश होता है। छ आयतनोंके नाशसे स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श-नाशसे वेदना का नाश होता है। वेदना-नाशसे तृष्णा का नाश होता है। तृष्णा-नाशसे उपादान का नाश होता है। उपादान-नाशसे भव का नाश होता है। भव-नाशसे जाति का नाश होता है। जाति-नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दु ख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते है। इस प्रकार इस केवल दु:ख-पुन्जका नाश होता है। भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उ दा न कहा—

---

[1] भोट-भाषामें अनुवादित मूल सर्वास्तिवादके विनय-वस्तुमें इसे ही प्रव्रज्या-वस्तु कहा गया है।

[2] बोधगया, जि० गया (बिहार)।

"जब धर्म होते जब प्रकट सोत्साह ध्यानी विप्र (=ब्राह्मण)को।
तब शांत हों कांक्षा सभी देखे स-हेतु धर्मको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके मध्यम-याममें प्रतीत्य समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया।—'अविद्याके कारण संस्कार होता है ... दुःख पुंजका नाश होता है'। भगवान्‌ने इस अर्थको जान कर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जब प्रकट सोत्साह ध्यानी विप्रको।
तब शांत हों कांक्षा सभीही जान कर क्षय-कारणको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके अन्तिम-याममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम प्रतिलोम करके मनन किया।—'अविद्या ... दुःख-पुंजका नाश होता है'। भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जब प्रकट सोत्साह ध्यानी विप्रको।
ठहरे कँपाता मार-सेना रवि प्रकाशे गगन ज्यों॥

बोधिकथा समाप्त।

( ) अजपाल कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर बोधि वृक्षके नीचेसे जहाँ गये जहाँ अजपाल नामक बर्गदका वृक्ष था वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए, एक आसनसे बैठे रहे। उस समय कोई अभिमानी ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। पास आकर भगवान्‌के साथ (कुशलक्षेम पूछ) एक ओर खड़ा होगया। एक ओर खड़े हुए उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यो कहा—"हे गौतम! ब्राह्मण कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौनसे धर्म हैं"? भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"जो विप्र वाहित-पाप मल-अभिमान-बिनु संयत रहे।
वेदान्त-पारग; ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहिं कोई जिसका जगत् (में)।"

(२) मुचलिन्द कथा

फिर सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठ अजपाल बर्गदके नीचेसे जहाँ गये जहाँ मुचलिन्द (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर मुचलिन्दके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ (और) ठंडी हवा-वाली बदली पड़ी। तब मुचलिन्द नाग राज अपने भवसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, सिरपर बड़ा फन तानकर खड़ा हो गया जिसमें कि भगवान्‌को शीत उष्ण दँस मच्छर वात धूप तथा रेंगनेवाले जन्तु न छूवें। सप्ताह बाद मुचलिन्द नागराज आकाशको मेघ रहित देख भगवान्‌के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्‌के सामने खड़ा हुआ। भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"सन्तुष्ट, देखनहार श्रुतधर्मा सुखी एकान्तमें।
निर्द्रोह सुख है लोकमें संयम जो प्राणी मात्रमें॥
सब कामनामें छोड़ना वैराग्य है सुख लोक में।
है परम सुख निश्चय यही जो त्यागना अभिमानका॥

(४) राजायतन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मुचलिन्दके नीचेसे जहाँ राजायतन (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर राजायतनके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय तपस्सु और भल्लिक, (दो) बनजारे उत्कल देशसे उस स्थानपर पहुँचे। उनकी जात-बिरादरीके देवताने तपस्सु भल्लिक बनजारोंसे कहा—"मार्ष (मित्र)! बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् राजायतनके नीचे विहार कर रहे हैं। जाओ उन भगवान्को मट्ठे (=मन्थ) और लड्डू (=मधु-पिंड)से सम्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकाल तक हित और सुखका देनेवाला होगा। तब तपस्सु और भल्लिक बनजारे मट्ठा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक तरफ खड़े हो गये। एक तरफ खड़े हुए तपस्सु और भल्लिक बनजारोंने यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! हमारे मट्ठे और लड्डुओंको स्वीकार कीजिये, जिससे कि चिरकाल तक हमारा हित और सुख हो।"

उस समय भगवान्ने सोचा—"तथागत (भिक्षाको) हाथमें नहीं ग्रहण किया करते, मैं मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) में ग्रहण करूँ।" तब चारों महाराजा भगवान्के मनकी बात जान, चारों दिशाओंसे चार पत्थरके (भिक्षा-)पात्र भगवान्के पास ले गये—"भन्ते! भगवान्! इसमें मट्ठा और लड्डू ग्रहण कीजिये।" भगवान्ने उस अभिनव शिलामय पात्रमें मट्ठा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया। उस समय तपस्सु, भल्लिक बनजारोंने भगवान्से कहा—"भन्ते! हम दोनों भगवान् तथा धर्मकी शरण जाते हैं। आजसे भगवान् हम दोनोंको अंजलिबद्ध शरणागत उपासक जानें।"

संसारमें वही दोनों (बुद्ध और धर्म) दो वचनोंसे प्रथम उपासक हुए।[1]

(५) ब्रह्मयाचन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, राजायतनके नीचेसे जहाँ अजपाल बर्गद था, वहाँ गये। वहाँ अजपाल बगदके नीचे भगवान् विहार करने लगे। तब एकान्तमें ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमें वितर्क पैदा हुआ—"मैंने गंभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शांत, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण, पण्डितों द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा (=आलयमें) रमण करने

---

[1]इस प्रकार (वैशाख पूर्णिमाके दूसरे दिन) प्रतिपद्की रातको यह मनमें कर (१) बोधि वृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे बैठे। तब भगवान्ने आठवें दिन समाधिसे उठ (२) (वज्र-)आसनसे थोडा पूर्वलिये उत्तर दिशामें खडे हो (वज्र-)आसन और बोधि वृक्षको, विना पलक गिराये (=अनिमेष) नेत्रोसे देखते सप्ताह विताया। वह स्थान अनिमेष चैत्य नामवाला हुआ। फिर (३) (वज्र-)आसन और खडे होने (अनिमेष चैत्य)के स्थानके बीच, पूर्वसे पश्चिम लम्वे रत्न-चक्रम (=रत्नमय टहलनेके स्थान)पर टहलते सप्ताह विताया, वह रत्न-चक्रम चैत्य नामवाला हुआ। उसके पश्चिम-दिशामें देवताओने रत्नघर वनाया। वहाँ आसन मार बैठ अभिधर्म-पिटक पर विचार करते सप्ताह विताया। वह स्थान रत्नघर-चैत्य नामवाला हुआ। इस प्रकार वोधिके पास चार सप्ताह विता, पाँचवें सप्ताह वोधिवृक्षसे जहाँ (५) अजपाल न्यग्रोध था, (भगवान्) वहाँ गये। उस न्यग्रोध (वर्गद)के नीचे वकरी चरानेवाले (=अजपाल) जाकर वैठते थे, इसलिये उसका अजपाल न्यग्रोध नाम हुआ। वोधिसे पूर्वदिशामें यह वृक्ष था। (६) मुचलिन्द वृक्षके पास वाली पुष्करिणीमें उत्पन्न यह दिव्य शक्तिधारी नागराज था। महावोधिके पूर्वकोणमें स्थित (उस) मुचलिन्द वृक्षसे (७) दक्षिण दिशामें स्थित राजायतन वृक्षके पास गए। (—अट्ठकथा)

वाली काम रत काममें प्रसन्न है। काममें रमण करनेवाली इस जनताके लिये यह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य समुत्पाद है, यह दुर्दर्शनीय है; और यह भी दुर्दर्शनीय है जो कि यह सभी संस्कारोंका शमन, सभी मलोंका परित्याग, तृष्णाका क्षय, विराग, निरोध (=दुःख-निरोध) और निर्वाण है। मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावें, तो मेरे लिये यह तरद्दुद और पीड़ा (मात्र) होगी। उसी समय भगवान्‌को पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत गाथायें सूझ पड़ीं—

"यह धर्म पाया कष्टसे इसका न युक्त प्रकाशना।
नहिं राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना।
गंभीर उलटी-धारयुत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुंज-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना ॥"

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया। तब सहापति ब्रह्माने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर ख्याल किया—'लोक नाश हो जायगा रे! जब तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक अल्प उत्सुकता (=उदासीनता)की ओर झुक जाये।

(ऐसा ख्यालकर) सहापति ब्रह्मा जैसे बलवान् पुरुष (बिना परिश्रम) फैली बाँहको समेट ले, समेटी बाँहको फैलादे ऐसे ही ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो भगवान्‌के सामने प्रकट हुए। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (=चद्दर) एक कंधेपर करके दाहिने जानुको पृथिवीपर रख जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड़ भगवान्‌से कहा—'भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें, सुगत! धर्मोपदेश करें। अल्प-मलवाले प्राणी भी हैं, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करें) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)। सहापति ब्रह्माने यह कहा और यह कहकर यह भी कहा—

'मगधमें मलिन चित्तवालोंसे चिन्तित पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ।
(अब दुनिया) अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुष)से जाने गये इस धर्मको सुने।
पथरीले पर्वतके शिखरपर खड़ा (पुरुष) जैसे चारों ओर जनताको देखे। उसी तरह हे सुमेध!
हे सर्वत्र नेत्रवाले! धर्मरूपी महलपर चढ़ सब जनताको देखो॥

'हे शोक-रहित! शोक-निमग्न जन्म-जरासे पीड़ित जनताकी ओर देखो। उठो वीर! हे संग्राम-विजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋण! जगमें विचरो धर्मप्रचार करो भगवान्! जाननेवाले भी मिलेंगे।

तब भगवान्‌ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर और प्राणियोंपर दया करके बुद्ध-नेत्रसे लोकका अवलोकन किया। बुद्ध चक्षुसे लोकको देखते हुए भगवान्‌ने जीवोंको देखा, उनमें कितने ही अल्प-मल तीक्ष्ण-बुद्धि सुन्दर-स्वभाव समझानेमें सुगम प्राणियोंको भी देखा। उनमें कोई कोई परलोक और दोषसे भय करते विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी पद्मिनी (=पद्मसमुदाय) या पुंडरीकिनीमें से कितने ही उत्पल पद्म या पुंडरीक उदकमें पैदा हुए उदकमें बँधे उदकसे बाहर न निकल (उदकके) भीतर ही डूबकर पोषित होते हैं। कोई कोई उत्पल (नीलकमल) पद्म (रक्तकमल) या पुंडरीक (श्वेतकमल) उदकमें उत्पन्न उदकमें बँधे (भी) उदकके बराबर ही खड़े होते हैं। कोई कोई उत्पल पद्म या पुंडरीक उदकमें उत्पन्न उदकमें बँधे (भी) उदकसे बहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) खड़े होते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने बुद्ध चक्षुसे लोकको देखा—अल्पमल तीक्ष्णबुद्धि सुस्वभाव सुबोध्य प्राणियोंको देखा जो परलोक तथा बुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर सहापति ब्रह्मासे गाथाद्वारा कहा—

'उनके लिये अमृतका द्वार बंद होगया जो कानवाले होनेपर भी श्रद्धाको छोड़ देते हैं।
हे ब्रह्मा! (वृथा) पीड़ाका ख्यालकर मैं मनुष्योंको निपुण उत्तम धर्मको नहीं कहता था।

(६) धर्म चक्र प्रवर्तन

तव ब्रह्मा महापति—'भगवान्‌ने धर्मोपदेशके लिये मेरी वात मानली' यह जान, भगवान्‌को, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान होगये।

उस समय भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"मै पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा?" फिर भगवान्‌के (मनमे) हुआ—"यह आ ला र - का ला म पण्डित, चतुर मेधावी चिरकालसे निर्मल-चित्त है, मै पहिले क्यो न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश दूं? वह इस धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तव (गुप्त) देवताने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—"आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" तव भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"आलार-कालाम महा-आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्र ही जान लेता।" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह उ द्द क-रा म पु त्त पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे निर्मल चित्त है, क्यो न मैं पहिले उद्दक-रामपुत्तको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्म-को शीघ्र ही जान लेगा।" तव (गुप्त=अन्तर्धान) देवताने आकर कहा—"भन्ते! रात ही उद्दक-रामपुत्त मर गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ। । फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"प ञ्च - व र्गी य भिक्षु मेरे वहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवा की थी। क्यो न मै पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओको ही धर्मोपदेश दूँ।" भगवान्‌ने सोचा—"इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे है?" भगवान्‌ने अ-मानुप विशुद्ध दिव्य नेत्रोंसे देखा—"पञ्चवर्गीय भिक्षु वा रा ण सी के[1] ऋ षि-प त न मृगदावमे विहारकर रहे है।"

तव भगवान् उ रु वे ला में इच्छानुसार विहारकर, जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत)के लिये निकल पडे। उ प क आ जी व क[2]ने भगवान् को वो धि (=वोध गया) और गयाके वीचमें जाते देखा। देखकर भगवान्‌से वोला—"आयुष्मान् (आवुस)! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी काति परिशुद्ध तथा उज्वल है। किसको (गुरु) मानकर, हे आवुस! तू प्रव्रजित हुआ है? तेरा गुरु कौन है? तू किसके धर्मको मानता है?"

यह कहनेपर भगवान्‌ने उपक आजीवकसे गाथामें कहा—

"मै सवको पराजित करनेवाला, सवको जाननेवाला हूँ,
सभी धर्मोमें निर्लेप हूँ।
सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे मुक्त हूँ, मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।
मेरा आचार्य नही है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नही।
देवताओ सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नही।
मै ससारमें अर्हत् हूँ, अपूर्व उपदेशक हूँ।
मैं एक सम्यक् सवुद्ध, शान्ति तथा निर्वाणको प्राप्त हूँ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये का शि यो के नगरको जा रहा हूँ।
(वहाँ) अन्धे हुए लोकमें अमृत-दुन्दुभी वजाऊँगा॥"

"आयुष्मान्! तू जैसा दावा करता है उससे तो अनन्त जि न हो सकता है।"
"मेरे ऐसे ही आदमी जिन होते है, जिनके कि चित्तमल (=आस्रव) नष्ट हो गये है।
मैंने वुराइयोको जीत लिया है, इसलिये हे उपक! मै जिन हूँ।"
ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—"होवोगे आवुस!" कह, शिर हिला, वेरास्ते चला गया।

---

[1] वर्तमान सारनाथ, वनारस। [2] उस समयके नगे साधुओंका एक सम्प्रदाय था। मक्खली-गोसाल इनका एक प्रधान आचार्य था।

२—वाराणसी

तब भगवान् क्रमश यात्रा करते हुए जहाँ वाराणसीमें ऋषि पतन मृगदाव था जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे वहाँ पहुँचे। पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌को दूरसे आते हुए देखा। देखतेही आपसमें पक्का किया—

'आवुसो! साधना भ्रष्ट जोडू बटोरू श्रमण गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नही करना चाहिये और न प्रत्युत्थान (=सत्कारार्थ खळा होना) करना चाहिये। न इसका पात्र-चीवर (आगे बढकर) लेना चाहिये। केवल आसन रख देना चाहिये यदि इच्छा होगी तो बैठेगा।"

जैसे जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंके समीप आते गये वैसेही वैसे वह अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके। (अन्तमें) भगवान्‌के पास आनेपर एकने भगवान्‌का पात्र चीवर लिया एकने आसन बिछाया एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल) पादपीठ (=पैरका पीढा) और पादकठलिका (=पैर रगळनेकी लकळी) ला पास रक्खी। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने पैर धोये। (उस समय) वह (लोग) भगवान्‌के लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे। ऐसा करनेपर भगवान्‌ने कहा—

भिक्षुओ! तथागतको नाम लेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध है। इधर कान दो मैंने जिस अमृतको पाया है उसका तुम्हे उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करनेपर जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो सन्यासी होते है उस अनुपम ब्रह्मचर्यफलको इसी जन्ममें शीघ्र ही स्वय जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विचरोगे।

'ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—'आवुस! गौतम! उस साधना- में उस धारणामें और उस दुष्कर तपस्यामे भी तुम आर्योंके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विशेषता उत्तरमनुष्य धर्म (=दिव्य शक्ति)को नही पा सके फिर अब साधनाभ्रष्ट, जोडू-बटोरू हो तुम आर्य ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे।

यह कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ! तथागत जोडू-बटोरू नही है और न साधनासे भ्रष्ट है। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध है। जानकर विहार करोगे।

दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—'आवुस! गौतम दूसरी बार भी भगवान्‌ने फिर (वही) कहा। तीसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भगवान्‌से (वही) कहा। ऐसा कहनेपर भगवान्‌ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार बात की है?

"भन्ते! नही"

'भिक्षुओ! तथागत अर्हत् विहार करोगे।

तब भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओंको समझानेमें समर्थ हुए और पञ्चवर्गीय भिक्षुओंने भग- वान्‌के (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान दिया चित्त उधर किया।

[1] 'भिक्षुओ! साधुको यह दो अतियां सेवन नही करनी चाहिये। कौनसी दो? (१) जो यह हीन ग्राम्य अनाळी मनुष्योंके (योग्य) अनार्य(-सेवित) अनर्थोंसे युक्त कामवासनाओंमें लिप्त होना है और (२) जो दुःख (-मय) अनार्य(-सेवित) अनर्थोंसे युक्त आत्म-पीळामें लगना है। भिक्षुओ! इन दोनो ही अतियोंमें न जाकर, तथागतने मध्यम-मार्ग खोज निकाला है (जोकि)

---

[1] देखो, संयुत्त नि ५५:२:१

आँख-देनेवाला, ज्ञान-करानेवाला शातिके लिये, अभिज्ञाके लिये, परिपूर्ण-ज्ञानके लिये और निर्वाणके लिये है। वह कौनसा मध्यम-मार्ग (=मध्यम-प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है, (जोकि) ०? वह यही [1]आर्य-अष्टागिक मार्ग है, जैसे कि—ठीक-दृष्टि, ठीक-सकल्प, ठीक-वचन, ठीक-कर्म, ठीक-जीविका, ठीक-प्रयत्न, ठीक-स्मृति, ठीक-समाधि। यह है भिक्षुओ! मध्यम-मार्ग (जिसको)०।

यह भिक्षुओ! दुख आर्य (=उत्तम) सत्य (=सच्चाई) है।—जन्म भी दुख है, जरा भी दुख है, व्याधि भी दुख है, मरण भी दुख है, अप्रियोका सयोग दुख है, प्रियोका वियोग भी दुख है, इच्छा करनेपर किसी (चीज़)का नही मिलना भी दुख है। सक्षेपमें सारे भौतिक अभौतिक पदार्थ (=पाँच[1] उपादानस्कन्ध) ही दुख है। भिक्षुओ! दुख-समुदय (=दुख-कारण) आर्य सत्य है। यह जो तृष्णा है—फिर जन्मनेकी, खुश होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होनेकी—। जैसे कि—काम-तृष्णा, भव (=जन्म) तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ! यह है दुख-निरोध आर्य-सत्य, जोकि उसी तृष्णाका सर्वथा विरक्त हो, निरोध = त्याग= प्रतिनिस्सर्ग = मुक्ति = निलीन होना। भिक्षुओ! यह है दुख-निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (दुख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्) आर्य सत्य। यही आर्य अष्टागिक मार्ग है।

"यह दुख आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे न-सुने धर्मोमें, आँख उत्पन्न हुई = ज्ञान उत्पन्न हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुख आर्य-सत्य परिज्ञेय है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न-सुने धर्मोमे०। (सो यह दुख-सत्य) परि-ज्ञात है।' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें०।

"यह दुख-समुदय आर्य-सत्य है' भिक्षुओ, यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दुख-समुदय आर्य-सत्य त्याज्य है", भिक्षुओ! यह मुझे०।' ०प्रहीण (छूट गया)' यह भिक्षुओ मुझे०।

"यह दुख-निरोध आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमें आँख उत्पन्न हुई० "सो यह दुख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात् (=प्रत्यक्ष) करना चाहिये" भिक्षुओ! यह मुझे०। 'यह दुख-निरोध-सत्य साक्षात् किया' भिक्षुओ! यह मुझे०।

"यह दुख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य है' भिक्षुओ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमे, आँख उत्पन्न हुई०। यह दुख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करनी चाहिये, भिक्षुओ! यह मुझे०। "यह दुख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् भावना की" भिक्षुओ! यह मुझे०।

"भिक्षुओ! जवतक कि इन चार आर्यसत्योका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) वारह आकारका—यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन न हुआ, तवतक भिक्षुओ! मैंने यह दावा नही किया—देवो सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमें, देव-मनुष्य-सहित, साधु-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्राणियोमें, अनुपम परम ज्ञानको मैंने जान लिया' भिक्षुओ! (जव) इन चार आर्य-सत्योका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) वारह आकारका यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन हो गया, तव मैंने भिक्षुओ! यह दावा किया—'देवो सहित० मैंने जान लिया। मैंने ज्ञानको देखा। मेरी मुक्ति अचल है। यह अतिम जन्म है। फिर अव आवागमन नही।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो पचवर्गीय भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया। इस व्याख्यानके कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौण्डिन्य को—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह

---

[1] विस्तारके लिये दीघनिकायके "सतिपट्ठानसुत्त" को देखो।

सब नाशमान् है' यह विरज-विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। इस उपदेशके कहे जानेके समय आयुष्मान् कौण्डिन्यको—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब नाशमान् है'—यह विरज-निर्मल धर्मका नेत्र उत्पन्न हुआ।

(इस प्रकार) भगवान्‌के धर्मके चक्केके घुमाने (=धर्म चक्रके प्रवर्तन करने)पर भूमिके देवताओंने शब्द किया—'भगवान्‌ने यह वा रा ण सी के ऋ षि प त न मृ ग दा व में उस अनुपम धर्मके चक्केको घुमाया जोकि किसीभी साधु, ब्राह्मण, देवता, मा र, ब्रह्मा या संसारके किसी व्यक्तिसे रोका नहीं जा सकता।' भूमिके देवताओंके शब्दको सुनकर चा तु र्म हा रा जि क देवताओंने शब्द सुनाया— ०। चा तु र्म हा रा जि क देवताओंके शब्दको सुनकर त्र य स्त्रिं श देवताओंने ०। या म देवताओंने ०। तु षि त देवताओंने ०। नि र्मा ण र ति देवताओंने ०। व श व र्ती देवताओंने ०। ब्र ह्म का यि क देवताओंने ०। इस प्रकार उसी क्षणमें उसी मुहूर्तमें यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँच गया और यह दस हजार ब्रह्माण्ड कंपित संप्रकंपित=संवेपित हुआ। देवताओंके तेजसे भी बढ़कर बहुत भारी विशाल प्रकाश लोकमें उत्पन्न हुआ।

तब भगवान्‌ने उदान कहा—"ओहो! कौण्डिन्यने जान लिया (=आज्ञात)। ओहो! कौण्डिन्यने जान लिया। इसीलिये आयुष्मान् कौण्डिन्यका आ ज्ञा त कौ ण्डि न्य नाम पड़ा।

(७) पंच वर्गीयोंकी प्रव्रज्या

तब धर्मको साक्षात्कारकर प्राप्तकर=विदितकर, अवगाहनकर संशय रहित विवाद रहित बुद्धके धर्ममें विशारद (और) स्वतंत्र हो आयुष्मान् आज्ञात कौण्डिन्यने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास मुझे प्र व्र ज्या[1] मिले उ प स म्प दा[2] मिले।

भगवान्‌ने कहा—'भिक्षु! आओ (यह) धर्म सुंदर प्रकारसे व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके नाशके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो।"

यही उन आयुष्मान्‌की उ प स म्प दा हुई।

भगवान्‌ने उसके पीछे भिक्षुओंको फिर धर्म-संबंधी कथाओंका उपदेश किया। भगवान्‌के धार्मिक उपदेश करते=अनुशासन करते आयुष्मान् व प्प और आयुष्मान् भ द्दि य को भी—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब नाशमान् है'—यह विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। तब धर्मको साक्षात्कार कर उन्होंने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्‌के पास हमें प्रव्रज्या मिले उपसम्पदा मिले।

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (पालन) करो।"

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओं द्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे)। तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते थे उसीसे छओ जने निर्वाह करते थे। भगवान्‌के धार्मिक कथाका उपदेश करते=अनुशासन करते आयुष्मान् म हा ना म और आयुष्मान् अ श्व जि त्‌को भी 'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब नाशमान् है'—०। यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

तब भगवान्‌ने पंचवर्गीय भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

---

[1] श्रामणेर होनेका संन्यास। [2] भिक्षु होनेका संन्यास।

"भिक्षुओ ! रूप (=भौतिक पदार्थ) अन्-आत्मा है। यदि रूप (पुरुप)का आत्मा होता तो यह रूप पीळादायक न वनता, और रूपमे—'मेरा रूप ऐसा होता' मेरा रूप ऐसा न होता, यह पाया जाता। चूंकि भिक्षुओ ! रूप अनात्मा है इसलिये रूप पीळादायक होता है, और रूपमें—मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता—यह नही पाया जाता।

"भिक्षुओ ! वेदना अनात्मा है०।० सज्ञा०।०सस्कार०। "भिक्षुओ ! विज्ञान अनात्मा है। यदि भिक्षुओ ! विज्ञान (=अभौतिक पदार्थ) आत्मा होता तो विज्ञान पीळादायक न वनता, और विज्ञानमें—मेरा विज्ञान ऐसा होता, मेरा विज्ञान ऐसा न होता—यह नही पाया जाता।

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य है या अनित्य" ?

"अनित्य, भन्ते !"

"जो अनित्य है वह दुख है या सुख ?"

"दुख, भन्ते !"

"जो अनित्य दुख, और विकारको प्रप्त होनेवाला है, क्या उसके लिये यह समझना उचित है—यह (=अनित्य पदार्थ) मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है ?"

'नही, भन्ते !"

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! वेदना नित्य है या अनित्य ? ०।० सज्ञा०।०सस्कार०।० विज्ञान० ।"

"तो भिक्षुओ ! जो कुछ भी भूत, भविष्य, वर्तमान सवधी, भीतरी या वाहरी, स्थूल या सूक्ष्म, अच्छा या वुरा, दूर या नजदीकका रूप है, सभी रूप न मेरा है, न मैं हूँ, न वह मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार ठीक तौरसे समझकर देखना चाहिये०।० वेदना०।०सज्ञा०।० सस्कार०।०विज्ञान० ।

"भिक्षुओ ! ऐसा देखते हुए, विद्वान्, आर्य-शिष्य रूपसे उदास होता है, वेदनासे उदास होता है, सज्ञासे उदास होता है, सस्कारसे उदास होता है, विज्ञानसे उदास होता है। उदास होनेपर (उनसे) विरागको प्राप्त होता है। विरागके कारण मुक्त होता है। मुक्त होनेपर 'मुक्त हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। और वह जानता है—आवागमन नष्ट हो गया, व्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अव यहाँ कुछ करनेको (वाकी) नही है[1] ।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो पचवर्गीय भिक्षुओने भगवान्के भापणका अभिनदन किया।

इस उपदेशके कहते समय पचवर्गीय भिक्षुओका चित्त आस्रवो (=मलो)से विलग हो मुक्त हो गया ।

उस समय तक लोकमें छ अर्हत् थे।

प्रथम भाणवार ॥ १ ॥

---

[1] चराचर जगत्का उपादान कारण, रूप आदि पाँच स्कन्धो (=समूहो)में वँटा है। सारे भौतिक पदार्थ रूप स्कन्धमें है। साधारणत· रूप वह है जिसमें भारीपन और स्थान घेरनेकी योग्यता हो। जिसमें न भारीपन है, और न जो जगहको घेरता है वह विज्ञान स्कन्ध है ! रूपके सवधसे विज्ञानकी तीन अवस्थाएँ है—वेदना, (=अनुभव करना), सज्ञा (=जानकारी प्राप्त करना), और सस्कार (=चित्तमें उक्त जानकारी और अनुभवका असर रह जाना) है।

(८) यशकी प्रव्रज्या

उस समय यश नामक कुलपुत्र वाराणसीके श्रेष्ठीका [1] सुकुमार लड़का था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारों महीने वर्षा-कालिक प्रासादमें अ-पुरुषों (=स्त्रियों)के बाजोंसे सेवित हो प्रासादसे नीचे न उतरता था। (एक दिन) यश कुल-पुत्रकी निद्रा खुली। सारी रात वहाँ तेलका दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने... अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमें वीणा है, किसीके गलेमें मृदंग है। किसीके केश-बिखरे, किसीके लार-गिरते, किसीको बर्राते। साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—'हा! सन्तप्त!! हा! पीड़ित!!'

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन घरके फाटककी ओर गया। फिर नगर द्वारकी ओर। तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया जहाँ ऋषिपतन मृगदाव था। उस समय भगवान् रातके भिनुसार को उठकर खुले (स्थान)में टहल रहे थे। भगवान्ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टह-लनेकी जगहसे उतरकर बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्के समीप (पहुँच) उदान कहा—'हा! सन्तप्त!! हा! पीड़ित!!'।

भगवान्ने यश कुलपुत्रसे कहा—'यश! यह है अ-सन्तप्त। यश! यह है अ-पीड़ित। यश! आ बैठ तुझे धर्म बतलाता हूँ।'

तब यशकुल-पुत्र "यह अ-सन्तप्त है, यह अ-पीड़ित है"—(सुन) आह्लादित प्रसन्न हो सुनहले जूतेको उतार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको भगवान्ने आनुपूर्वी कथा, जैसे—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओंका दुष्परिणाम, अपकार, दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने यशको भव्य-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त और प्रसन्न-चित्त देखा, तब जो बुद्धोंकी उठानेवाली देशना (=उपदेश) है—दुःख, समुदय (=दुःखका कारण), निरोध (=दुःख-नाश) और मार्ग (=दुःख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, वैसेही यश कुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ उत्पन्न होनेवाला धर्म है, वह नाशमान् है"—यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।

(९) श्रेष्ठी गृहपतिकी दीक्षा

यश कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़ यशकुल-पुत्रको न देख जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और) बोली—"गृहपति! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है"?

तब श्रेष्ठी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़ स्वयं जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोंका चिन्ह देख उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यों न मैं ऐसा योगबल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृह-पति यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान्से कहा—'भन्ते! क्या भगवान्ने यश कुल-पुत्रको देखा है?'

"गृहपति! बैठ। यहीं बैठा तू यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यहीं बैठा मैं यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" (सुन) आह्लादित—

---

[1] श्रेष्ठी नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोंमेंसे बनाया जाता था।

प्रसन्न हो, भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। भगवान्‌ने आनुपूर्वी[1] कथा, जैसे—'दान-कथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

भगवान्‌के धर्ममें स्वतन्त्र हो, वह भगवान्‌से बोला—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अन्धकारमें तेलका प्रदीप रख दे, जिसमें कि आँखवाले रूप देखें, ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक ग्रहण करें।"

वह (गृहपति) ही संसारमें [2]तीन-वचनोंवाला प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय (उसके) पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार गंभीर चिन्तन करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवों (=दोषों=मलों)से मुक्त होगया। तब भगवान्‌को (मनमें) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश किये जाते समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया। (अब) यश कुल-पुत्र पहिली-गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)मे रह, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य नहीं है, क्यों न मैं योग-बलके प्रभावको हटा लूँ।" तब भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया। श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुल-पुत्रको बैठे देखा। देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात! यश! तेरी माँ रोतीपीटती और शोकमें पड़ी है, माताको जीवन दान दे।"

यश कुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिसे कहा—

"सो गृहपति! क्या समझता है, जैसे तुमने अपूर्ण ज्ञानसे, अपूर्ण साक्षात्कारसे धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा)? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, उसका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोंसे मुक्त हो गया है। अब क्या वह पहिली गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)मे रहकर, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य है?"

"नहीं, भन्ते!"

"गृहपति! (पहिले) अपूर्ण ज्ञानसे, और अपूर्ण दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने। फिर देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। गृहपति! अब यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)में रह गृहस्थ-सुख भोगने योग्य नहीं है।"

"लाभ है भन्ते! यश कुल-पुत्रको, सुलाभ किया भन्ते! यश कुल-पुत्रने, जो कि यश कुलपुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोंसे मुक्त हो गया। भन्ते! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु बना, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, चला गया। फिर यश कुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोळीही देर बाद भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु! आओ धर्म सु-व्याख्यात है अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही इस आयुष्मान्‌की उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमें सात अर्हत् थे।

यश-प्रव्रज्या समाप्त।

---

[1]देखो पृष्ठ ८४। [2]बुद्ध, धर्म और संघ तीनोंकी शरणागत होनेका वचन।

भगवान् पूर्वाह्न समय वस्त्र पहिन (भिक्षा-)पात्र और चीवर ले आयुष्मान् यशको अनुगामी भिक्षु बना जहाँ श्रेष्ठी गृहपतिका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्के पास आईं। आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गईं। उनसे भगवान्ने आनुपूर्वी कथा कही। जब भगवान्ने उन्हें भव्यचित्त देखा तब जो बुद्धोंकी उठाने वाली देशना है—दुःख समुदाय निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है वैसेही उन (दोनों) को उसी आसनपर—"जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है"—यह विरज—निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। धर्मको साक्षात्कार कर सन्देह-रहित कथोपकथन-रहित भगवान्के धर्ममें विशारद और स्वतन्त्र हो उन्होंने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य भन्ते!! आजसे हमें भगवान् अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासिकायें जानें।" लोकमें वही तीन वचनों वाली प्रथम उपासिकायें हुईं।

आयुष्मान् यशके माता पिता और पुरानी पत्नीने भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य भोजनसे संतृप्त किया—सम्प्रवारित किया। जब भोजनकर, भगवान्ने पात्रसे हाथ खींच लिया तब वह भगवान्की एक ओर बैठ गये। तब भगवान् आयुष्मान् यशकी माता पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन=समादापन=समुत्तेजन=सम्प्रहर्षण कर आसनसे उठकर चल दिये।

(१०) यशके गृहस्थ मित्रोंकी प्रव्रज्या

आयुष्मान् यशके चार गृही मित्र वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़के—विमल, सुबाहु, पूर्णजित् और गवाम्पतिने सुना कि यश कुल-पुत्र सिर-दाढ़ी मुँडा काषायवस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—'वह [1]धर्मविनय छोटा न होगा वह संन्यास (=प्रव्रज्या) छोटा न होगा जिसमें यश कुलपुत्र सिर-दाढ़ी मुँडा काषाय-वस्त्र पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया।'

वह जहाँ आयुष्मान् यश थे वहाँ आये। आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खड़े हो गये। तब आयुष्मान् यश उन चारों गृही मित्रों सहित जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान्से कहा—"भन्ते! यह मेरे चार गृही मित्र वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोंके कुलके लड़के—विमल, सुबाहु, पूर्णजित् और गवाम्पति—हैं। इन्हें भगवान् उपदेश करें—अनुशासन करें।"

उनसे भगवान्ने [2]आनुपूर्वी कथा कही ...। वह भगवान्के धर्ममें विशारद=स्वतन्त्र हो, भगवान्से बोले—"भन्ते! भगवान् हमें प्रव्रज्या दें उपसम्पदा दें।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है। अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई। तब भगवान्ने उन भिक्षुओंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया—अनुशासना की। (जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोंसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (जानपद देहाती) पुराने गृहस्थोंके पुत्र पचास गृही मित्रोंने सुना कि यश कुलपुत्र साधु हो गया। सुनकर उनके चित्तमें हुआ—"वह धर्मविनय छोटा न होगा ... जिसमें यश कुल-पुत्र प्रव्रजित हो गया।" वह आयुष्मान् यशके पास आये। आयुष्मान् यश उन पचास गृही मित्रों सहित भगवान्के पास गये। भगवान्ने निरामिष धार्मिक कथा द्वारा संदर्शन किया ...। वह विशारद हो भगवान्से बोले—"हमें उपसम्पदा मिले" ...। उन

[1] धार्मिक सम्प्रदाय। [2] देखो पृष्ठ ८८

आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई। तव भगवान्ने उपदेश दिया। (जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमे एकसठ अर्हत् थे।

भगवान्ने भिक्षुओको सम्वोधित किया—

"भिक्षुओ! जितने (भी) दिव्य और मानुप वन्धन है, मै (उन सवो)से मुक्त हूँ, तुम भी दिव्य और मानुप वधनोंसे मुक्त हो। भिक्षुओ! वहुत जनोके हितके लिये, वहुत जनोके सुखके लिये, लोकपर दया करनेके लिये, देवताओ और मनुष्योके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये विचरण करो। एकसाथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ! आदिमें कल्याण-(कारक) मध्यमे कल्याण (-कारक) अन्तमें कल्याण(-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्थ सहित=व्यजन-सहित, केवल (=अमिश्र)=परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाले प्राणी (भी) है, धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी। (सुननेसे वह) धर्मके जाननेवाले वनेंगे। भिक्षुओ! मै भी जहाँ उ रु वे ला है, जहाँ से ना नी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा"

(११) मार कथा

तव पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से गाथाओमें वोला—

"जितने दिव्य और मानुप वन्धन है, उनसे तुम वँधे हो।
हे श्रमण! मेरे इन महावन्धनोसे वँधे तुम नही छूट सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"जितने दिव्य मानुप वन्धन है उनसे मै मुक्त हूँ।
हे अन्तक! महावन्धनोंसे मै मुक्त हूँ, तू ही वरवाद है॥"

(मारने कहा)—,

"(राग रूपी) आकाशचारी मनका जो वन्धन है।
हे श्रमण! मै तुम्हे उससे वाँधूँगा, मुझसे तुम छूट नही सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"(जो) मनोरम रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श (है)।
उनसे मेरा राग दूर हो गया, इसलिये अन्तक! तुम वरवाद हुए॥"

तव पापी मारने कहा—मुझे भगवान् जानते है, मुझे सुगत पहचानते है—(कह) दुखी=दुर्मना हो वही अन्तर्धान हो गया।

मार-कथा समाप्त ॥११॥

(१२) उपसम्पदा-कथा

उस समय भिक्षु नाना दिशाओंसे नाना देशोसे प्रव्रज्याकी इच्छावाले, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदमियोको) लाते थे, कि भगवान् उन्हे प्रव्रजित करें, उपसम्पन्न करें। इससे भिक्षु भी परेशान होते थे, प्रव्रज्या-उपसम्पदा चाहनेवाले भी। एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमें (विचार) हुआ—"क्यो न भिक्षुओको ही अनुमति दे दूँ, कि भिक्षुओ! तुम्ही उन उन दिशाओमें, उन उन देशोमें (जाकर) प्रव्रज्या दो, उपसम्पदा करो।"

तव भगवान्ने सन्ध्या समय भिक्षु-सघको एकत्रितकर धर्मकथा कह, सम्वोधित किया—"भिक्षुओ! एकान्तमें स्थित, ध्यानावस्थित०।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तुम्हे ही उन उन दिशाओमें, उन उन देशोमें प्रव्रज्या देनेकी, उपसम्पदा देनेकी। I

"और उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले सिर दाढ़ी मुँळवा काषाय-वस्त्र पहना उप-रना एक कन्धेपर करा भिक्षुओंकी पाद-वंदना करा उकळूँ बैठा हाथ जोळवाकर 'ऐसा बोलो' कहना चाहिये— 'बुद्धकी शरण जाता हूँ धर्मकी शरण जाता हूँ संघकी शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी बुद्ध॰ धर्म संघकी शरण जाता हूँ। तीसरी बार भी बुद्ध धर्म संघकी शरण जाता हूँ। इन तीन शरण गमनोंसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुमति देता हूँ।

तब भगवान्ने वर्षावास कर भिक्षुओंको सम्बोधित किया—भिक्षुओ ! मैंने मुक्त मनमें (विचार) करके मुक्तसे ठीक प्र धा न (=मोक्षकी साधना) करके अनुपम मुक्तिको पाया अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया। तुमने भी भिक्षुओ ! मुक्त मनमें (विचार) करके मुक्तसे ठीक प्र धा न करके अनुपम मुक्तिको पाया अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया।

तब पापी मार, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से गाथाओंमें बोला—

'जो दिव्य और मानुष मारके बंधन हैं उनसे (तुम) बँधे हो।

श्रमण मारके बन्धनसे बँधे हो मुझसे मुक्त नहीं हो सकते ॥

(भगवान्ने कहा)—

'जो दिव्य और मानुष मारके बंधन हैं उनसे मैं मुक्त हूँ।

मैं मारके बन्धनसे मुक्त हूँ अन्तक ! तुम बरबाद हो ॥

तब पापी मार— 'मुझे भगवान् जानते हैं मुझे सुगत पहचानते हैं'—(यह) दुःखी-दुर्मना हो वहीं अन्तर्धान हो गया।

(१३) भद्रवर्गीय कथा

भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर, (साठ भिक्षुओंको भिन्न भिन्न दिशाओंमें भेज) जिधर उ रु वे ला है उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल दिये। भगवान् मार्गसे हटकर एक वन खण्डमें पहुँच वन-खण्डके भीतर एक वृक्षके नीचे जा बैठे। उस समय भ द्र व र्गी य (नामक) तीस मित्र अपनी स्त्रियों सहित उसी वन-खण्डमें विनोद करते थे। (उनमें) एककी पत्नी न थी। उसके लिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उनके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई। तब (सब) मित्रोंने (अपने) मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते उस वन-खण्डको हीळते वृक्षके नीचे बैठे भगवान्को देखा। (फिर) जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्से बोले— 'भन्ते ! भगवान्ने (किसी) स्त्रीको तो नहीं देखा ?

'कुमारो ! तुम्हें स्त्रीसे क्या है ?

"भन्ते ! हम भद्रवर्गीय तीस मित्र (अपनी अपनी) पत्नियों सहित इस वन-खण्डमें सैर विनोद कर रहे थे। एककी पत्नी न थी उसके लिये वेश्या लाई गई थी। भन्ते ! वह वेश्या हमलोगोंके नशामें हो घूमते वक्त आभूषण आदि लेकर भाग गई। सो भन्ते ! हमलोग मित्रकी मददमें उस स्त्रीको खोजते हुए, इस वन-खण्डको हीळ रहे हैं।

"तो कुमारो ! क्या समझते हो तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा यदि तुम स्त्रीको ढूँढो या तुम अपने (=आत्मा)को ढूँढो।

"भन्ते ! हमारे लिये यही उत्तम है यदि हम अपने को ढूँढें।

"तो कुमारो ! बैठो मैं तुम्हें धर्म-उपदेश करता हूँ।

"अच्छा भन्ते ! कह, वह भ द्र व र्गी य मित्र भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठगये।

उन्होंने भगवान्‌से [illegible] भगवान्‌के पासमें [illegible] भगवान् बोले—
[illegible] भगवान्‌के [illegible] । वही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥ २ ॥

३—उरुवेला

(१४) उरुवेलामें चमत्कार प्रदर्शन

तब भगवान् क्रमशः विचरते हुए उरुवेला पहुँचे। उस समय उरुवेलामें तीन जटिल (जटाधारी)—उरुवेल-काश्यप, नदी-काश्यप और गया-काश्यप—वास करते थे। इनमें उरुवेल-काश्यप जटिल पाँच सौ जटिलोंका नायक=विनायक अग्र=प्रमुख=प्रामुख्य था। नदी-काश्यप जटिल तीन सौ जटिलोंका नायक०। गया-काश्यप जटिल दो सौ जटिलोंका नायक०। तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"हे काश्यप! यदि तुझे भारी न हो, तो मैं एक रात (तेरी) अग्निशालामें वास करूँ।"

"महाश्रमण! मुझे भारी नहीं है (किन्तु), यहाँ एक बड़ाही चंड, दिव्य-शक्तिधारी, आशी-विष=घोर-विष नागराज है। वह (कहीं) तुम्हें हानि न पहुँचावे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—" ।"

तीसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—" ।"

"काश्यप! नाग मुझे हानि न पहुँचायेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण! सुखसे विहार करो।"

१—प्रथम प्रातिहार्य—तब भगवान् अग्निशालामें प्रविष्ट हो तृण बिछा, आसन बाँध, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको स्थिर कर बैठ गये। भगवान्‌को भीतर आया देख, नाग क्रुद्ध हो धुआँ देने लगा। भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"क्यों न मैं इस नागके छाल, चर्म, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसके) तेजको खींच लूँ।" फिर भगवान् भी वैसेही योगबलसे धुँआ देने लगे। तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा। भगवान् भी तेज-महाभूत(=तेजो धातु) में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे। उन दोनोंके ज्योतिरूप होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई=प्रज्वलित-सी जान पड़ने लगी। तब वह जटिल अग्निशालाको चारों ओरसे घेरे, यों कहने लगे—"हाय! परम-सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा मारा जा रहा है।" भगवान्‌ने उस रातके बीत जानेपर, उस नागके छाल, चम, मांस, नस, हड्डी, मज्जाको बिना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खींचकर, पात्रमें रख (उसे) उरुवेल काश्यप जटिलको दिखाया—"हे काश्यप! यह तेरा नाग है, (अपने) तेजसे (मैंने) इसका तेज खींच लिया है।"

तब उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—महादिव्यशक्तिवाला=महा-आनुभाव-वाला महाश्रमण है, जिसने कि दिव्यशक्ति-सम्पन्न आशी-विष=घोर-विष चण्ड नागराजके तेजको (अपने) तेजसे खींच लिया। किन्तु मेरे जैसा अर्हत नहीं । तब भगवान्‌के इस चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य) से उरुवेल काश्यप जटिलने प्रसन्न हो भगवान्‌से यह कहा—"महाश्रमण! यहीं विहार करो, मैं नित्य भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा)।"

२—द्वितीय प्रातिहार्य—तब भगवान् जटाधारी उरुवेल-काश्यपके आश्रमके पास एक वन-खण्डमें[2] विहार करते थे। एक प्रकाशमान रात्रिको अतिप्रकाशमय चारों महाराज (देवता),

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] कप्पासिय वन-संड।

उस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करते जहाँ भगवान् थे वहाँ आये। आकर भगवान्‌को अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारो दिशाओंमें खळे हो गये। तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। आकर भगवान्‌से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान रात्रिको खळे ही प्रकाशमान् यह कौन थे जोकि इस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित कर जहाँ तुम थे वहाँ आये। आकर तुम्हें अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारो दिशाओंमें खळे हो गये?

"काश्यप! यह चारो म हा रा जा थे जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आये थे।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—'महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है जिसके पास कि चारो महाराजा धर्म सुननेके लिये आते हैं। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खण्डमें विहार करने लगे।

३—तृ ती य प्रा ति हा र्य—तब एक प्रकाशमान् रात्रिको पहलोंके प्रकाशसे (भी) अधिक प्रकाशमान् अधिक उत्तम अति दीप्तिमान् देवोंका इन्द्र श क्र उस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करता जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खळा हो गया। तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको पहलोंके प्रकाशसे अधिक प्रकाशमान् अधिक उत्तम अति प्रकाशमान् कौन इस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करते आकर तुम्हें अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खळा हुआ था?

"काश्यप! वह देवोंका इन्द्र शक्र था जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है जिसके पास कि देवोंका इन्द्र शक्र धर्म सुननेके लिये आता है तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

४—च तु र्थ प्रा ति हा र्य—तब एक प्रकाशमान् रात्रिको अति प्रकाशमय स हा (लोक समूह)का पति ब्रह्मा उस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करता जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ।

तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको बळी प्रकाशमान् यह कौन था जोकि इस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशितकर जहाँ तुम थे वहाँ आकर तुम्हें अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खळा हुआ?"

"काश्यप! वह सहापति ब्रह्मा था जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है जिसके पास कि सहापति ब्रह्मा धर्म सुननेके लिये आता है। तोभी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

भगवान् उरुवेलकाश्यप जटिलके आश्रमके समीपवर्ती एक वन-खडमे उरुवेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए, विहार करने लगे।

५—पंचम प्रातिहार्य—उस समय उरुवेल-काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आ उपस्थित हुआ, जिसमे सारेके सारे अंग-मगध-निवासी वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आनेवाले थे। तव उरुवेल काश्यपके चित्तमे (विचार) हुआ—"इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है, सारे अंग-मगधवाले वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आयेंगे। यदि महाश्रमणने जन-समुदायमें चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार वढेगा मेरा लाभ सत्कार घटेगा। अच्छा होता यदि महाश्रमण कल(मे) न आता।"

भगवान्ने उरुवेल-काश्यप जटिलके चित्तका वितर्क (अपने) चित्तमे जान, [1]उत्तर कुरु जा, वहाँसे भिक्षान्न ले अनवतप्त [2]सरोवरपर भोजनकर, वही दिनको विहार किया। उरुवेल-काश्यप जटिल उस रातके वीत जानेपर, भगवान्के पास जा वोला—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया। महाश्रमण! कल क्यो नहीं आये? हम लोग आपको याद करते थे—क्यो नही आये? आपके खाद्य-भोज्यका भाग रक्खा है।"

"काश्यप! क्यो? क्या तेरे मनमें (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है० महाश्रमणका लाभसत्कार वढेगा०? इसीलिये काश्यप! तेरे चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तमे जान, मैंने उत्तरकुरु जा, अनवतप्त सरोवरपर० वही दिनको विहार किया।"

तव उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण महानुभाव दिव्य-शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जान लेता है। तो भी यह (वैसा) अर्हत् नही है, जैसा कि मैं।"

तव भगवान्ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर उसी वन-खडमे (जा) विहार किया।

६—षष्ठ प्रातिहार्य—एक समय भगवान्को पासुकूल[3] (=पुराने चीथडे) प्राप्त हुए। भगवान्के दिल में हुआ,—"मैं पासु-कूलोको कहाँ धोऊँ।" तव देवोके इन्द्र शक्रने, भगवान्के चित्तकी वात जान हाथसे पुष्करिणी खोदकर, भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान्! (यहाँ) पासुकूल धोवे।"

तव भगवान्को हुआ—"मै पाँसुकूलोको कहाँ उपछूँ।"

इन्द्रने (वहाँ) वळी भारी शिला डाल दी ।

तव भगवान्को हुआ—"मै किसका आलम्व ले (नीचे) उतरूँ?" इन्द्रने शाखा लटका दी ।

मैं पासुकलोको कहाँ फैलाऊँ? इन्द्रने एक वळी भारी शिला डालदी ।

उस रातके वीत जानेपर, उरुवेल-काश्यप जटिलने, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँच, भगवान्से कहा—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया है। महाश्रमण! यह क्या? यह पुष्करिणी पहिले यहाँ न थी! । पहिले यह शिला (भी) यहाँ न थी, यहाँपर शिला किसने डाली? इस ककुध (वृक्ष)की शाखा (भी) पहिले लटकी न थी, सो यह लटकी है।"

"मुझे काश्यप! पासुकूल प्राप्त हुआ० ।" उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमें) हुआ—"महाश्रमण

---

[1] मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें अवस्थित द्वीप। [2] मानसरोवर झील।
[3] रास्ता या कूळोंपर फेंके चीथळे।

१२—द्वा द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल (=जटाधारी वाणप्रस्थ साधु) अग्निहोत्र के लिये लकळी (फाळने वास्ते) फाळ न सकते थे। तब उन जटिलोंके (मनमें) यह हुआ—"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है, जोकि हम काठ नही फाळ सकते है।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपसे यह बोले—

"काश्यप! फाळी जायें लकळियां ?"

"महाश्रमण! फाळी जायें लकळियां।"

और एक ही बार पांच सौ लकळियां फाळदी गईं।

तब जटिल उरुवेल काश्यपके मनमें यह हुआ—"महाश्रमण दिव्यशक्तिवाला=महानुभाव है जोकि लकळियां फाळी नही जा सकती थी। तो भी यह वैसा अर्हत् नही है जैसा कि मैं।"

१३—त्र यो द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल अग्नि-परिचर्याके लिये (जलाते वक्त) आगको न जला सकते थे। तब उन जटिलोंके (मनमें) यह हुआ—

"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है जो हम आग नही जला सकते हैं।"

तब भगवान्ने जटिल उरुवेल काश्यपसे यह कहा—

"काश्यप! जल जावे अग्नि ?"

"महाश्रमण! जल जावे अग्नि।"

और एक ही बार पांच सौ अग्नि जल उठी०।

१४—च तु र्द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल परिचर्या करके आगको बुझा नही सकते थे०। उस समय वह जटिल हेमन्तकी हिम-पात वाली चार माघके अन्त और चार फाल्गुनके आरम्भकी रातोमे ने र ज रा नदीमे डूबते उतराते थे, उन्मज्जन, निमज्जन करते थे। तब भगवान्ने पांच सौ अंगीठियां (योगबलसे) तैयार कीं, जहां निकलकर वे जटिल तापे। तब उन जटिलोंके मनमें यह हुआ—"निस्संशय०।"

१५—प ञ्च द श म प्रा ति हा र्य—एक समय बळा भारी अकालमेघ बरसा। जलकी बळी बाढ आगई। जिस प्रदेशमे भगवान् विहार करते थे, वह पानीमे डूब गया। तब भगवान्को हुआ—"क्यो न मै चारो ओरसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चक्रमण करूँ (टहलूं) ?" भगवान् पानी हटाकर धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे। उरुवेल-काश्यप जटिल—"अरे! महाश्रमण जलमे डूब न गया होगा!!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोके साथ जिस प्रदेशमे भगवान् विहार करते थे, वहां गया। (उसने) भगवान्को धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा। देखकर भगवान्से बोला—"महाश्रमण! यह तुम हो?"

"यह मैं हूँ" कह भगवान् आकाशमे उळ, नावमे आकर खळे हो गये।

तब उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है, हो! किन्तु यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मैं।"

तब भगवान्को (विचार) हुआ—"चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष)को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य-शक्तिधारी है, किन्तु यह वैसा अर्हत् नही हे, जैसा कि मैं। क्यो न मैं इस जटिलको फटकारूँ?"

तब भगवान्ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"काश्यप! न तो तू अर्हत् है, न अर्हत्के मार्गपर आरूढ। वह सूझ भी तुझे नही है, जिससे अर्हत् होवे, या अर्हत्के मार्गपर आरूढ़ होवे।"

(१५) काश्यप-बन्धुओंकी प्रव्रज्या

(तब) उरुवेल-काश्यप जटिल भगवान्के पैरोपर शिर रख, भगवान्से बोला—"भन्ते!

दिव्य-शक्ति-धारी है! महा-प्रानुभाव-वाला है ... तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

भगवान्ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उसी वन-खंडमें विहार किया।

७—सप्तम प्रातिहार्य—तब जटिल उरुवेल-काश्यप उस रातके बीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—"महाश्रमण (भोजनका) काल है। भात तैयार है।

"काश्यप! चल मैं आता हूँ"—यह जटिल उरुवेल-काश्यपको भेजकर जिस जम्बू (=जामुन) के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है उससे फल लेकर (काश्यपसे) पहले ही आकर अग्निशालामें बैठे। जटिल उरुवेल-काश्यपने भगवान्‌को अग्निशालामें बैठे देखकर कहा—

महाश्रमण किस रास्तेसे तुम आये? मैं तुमसे पहिले ही चला था, लेकिन तुम मुझसे पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठे हो?"

"काश्यप! मैं तुझे भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है उससे फल ले पहिले ही आकर मैं अग्निशालामें बैठ गया। काश्यप यह वही (सुन्दर) वर्ण रस, गन्ध युक्त जम्बू फल है। यदि चाहता है तो खा।

"नहीं महाश्रमण! तुम्हीं इसे लाये तुम्हीं इसे खाओ।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके मनमें हुआ—"महाश्रमण बड़ी दिव्य-शक्ति-वाला—महानुभाव है, जोकि मुझे पहिले ही भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है उससे फल लेकर मुझसे पहिले ही (आकर) अग्निशालामें बैठा। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खंडमें विहार करने लगे।

८-१०—अष्टम्, नवम, दशम प्रातिहार्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतनेपर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।

"काश्यप चल! मैं आता हूँ।—(कहकर) जटिल उरुवेल-काश्यपको जिस जम्बूके कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है उसके समीपके आम ... आँवला ... हर्रे ...।

११—एकादशम प्रातिहार्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।

काश्यप! चल मैं आता हूँ।—(कहकर) उत्तरकुरु (उत्तर-ओर)में जाकर पारिजात पुष्पको ले (काश्यपसे) पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठे। जटिल उरुवेल काश्यपने भगवान्‌को अग्नि-शालामें (पहलेही) बैठे देखकर यह कहा—

"महाश्रमण! किस रास्तेसे तुम आये मैं तुमसे पहिले ही चला था लेकिन तुम मुझसे पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठे हो?

काश्यप! मैं तुझे भेजकर उत्तरकुरु (उत्तर-ओर)में जाकर पारिजात पुष्पको ले पहले ही आकर अग्निशालामें बैठा हूँ। काश्यप! यही वह (सुन्दर) वर्ण और गन्ध युक्त पारिजातका पुष्प है।

तब जटिल उरुवेल काश्यपने (मनमें) यह कहा—"महाश्रमण दिव्य शक्तिवाला महानुभाव है जो कि मुझे पहले भेजकर उत्तरकुरु (उत्तर ओर) जा पारिजात पुष्पको ले पहिले ही आकर अग्निशालामें बैठा है। तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं है जैसा कि मैं।

१२—द्वा द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल (=जटाधारी वाणप्रस्थ साधु) अग्निहोत्र के लिये लकळी (फाळते वक्त) फाळ न सकते थे। तव उन जटिलोके (मनमें) यह हुआ—"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है, जोकि हम काठ नही फाळ सकते है।"

तव भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपसे यह बोले—

"काश्यप! फाळी जायँ लकळियाँ ?"

"महाश्रमण! फाळी जायँ लकळियाँ।"

और एक ही वार पाँच सौ लकळियाँ फाळदी गईं।

तव जटिल उरुवेल काश्यपके मनमे यह हुआ—"महाश्रमण दिव्यशक्तिवाला=महानुभाव है जोकि लकळियाँ फाळी नही जा सकती थी। तो भी यह वैसा अर्हत् नही है जैसा कि मै।"

१३—त्र यो द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल अग्नि-परिचर्याके लिये (जलाते वक्त) आगको न जला सकते थे। तव उन जटिलोके (मनमें) यह हुआ—

"निस्संशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है जो हम आग नही जला सकते है।"

तव भगवान्ने जटिल उरुवेल काश्यपसे यह कहा—

"काश्यप! जल जावे अग्नि ?"

"महाश्रमण! जल जावे अग्नि।"

और एक ही वार पाँच सौ अग्नि जल उठी०।

१४—च तु र्द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल परिचर्या करके आगको बुझा नही सकते थे०। उस समय वह जटिल हेमन्तकी हिम-पात वाली चार माघके अन्त और चार फाल्गुनके आरम्भकी रातोमें ने र ज रा नदीमें डूवते उतराते थे, उन्मज्जन, निमज्जन करते थे। तव भगवान्ने पाँच सौ अँगीठियाँ (योगवलसे) तैयार की, जहाँ निकलकर वे जटिल तापे। तव उन जटिलोके मनमें यह हुआ—"निस्संशय०।"

१५—प च द श म प्रा ति हा र्य—एक समय वळा भारी अकालमेघ वरसा। जलकी वळी वाढ आगई। जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वह पानीसे डूब गया। तव भगवान्को हुआ—"क्यो न मै चारो ओरसे पानी हटाकर, बीचमें धूलियुक्त भूमिपर चक्रमण करूँ (टहलूँ) ?" भगवान् पानी हटाकर धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे। उरुवेल-काश्यप जटिल—"अरे! महाश्रमण जलमें डूव न गया होगा!!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोके साथ जिस प्रदेशमें भगवान् विहार करते थे, वहाँ गया। (उसने) भगवान्को धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा। देखकर भगवान्से बोला—"महाश्रमण! यह तुम हो ?"

"यह मैं हूँ" कह भगवान् आकाशमें उळ, नावमें आकर खळे हो गये।

तव उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है, हो! किन्तु यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मै।"

तव भगवान्को (विचार) हुआ—"चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष)को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य-शक्तिधारी है, किन्तु यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मैं। क्यो न मै इस जटिलको फटकारूँ ?"

तव भगवान्ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"काश्यप! न तो तू अर्हत् है, न अर्हत्के मार्गपर आरूढ़। वह सूझ भी तुझे नही है, जिससे अर्हत् होवे, या अर्हत्के मार्गपर आरूढ होवे।"

(१५) काश्यप-बन्धुओंकी प्रव्रज्या

(तव) उरुवेल-काश्यप जटिल भगवान्के पैरोपर शिर रख, भगवान्से बोला—"भन्ते!

भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले उपसम्पदा मिले।

'काश्यप ! तू पाँच सौ जटिलोंका नायक है। उनको भी देख ।

तब उरुवेल काश्यप अग्निने जाकर, उन जटिलोंसे कहा—"मैं महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य ग्रहण करना चाहता हूँ तुमलोगोंकी जो इच्छा हो सो करो।

'पहिलेहीसे ! हम महाश्रमणमें अनुरक्त हैं यदि आप महाश्रमणके शिष्य होंगे (तो) हम सभी महाश्रमणके शिष्य बनेंगे' ।

वह सभी जटिल केश-सामग्री जटा-सामग्री ¹खारी और कीकी सामग्री अग्निहोत्र-सामग्री (आदि अपने सामानको) जलमें प्रवाहितकर भगवान्‌के पास गये। जाकर भगवान्‌के चरणोंपर शिर झुका बोले—"भन्ते ! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावें उपसम्पदा पावें।

भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है भली प्रकार दुःखके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो।

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

न दी का श्य प जटिलने केश-सामग्री जटा-सामग्री खारी और कीकी सामग्री अग्निहोत्र-सामग्री नदीमें बहती हुई देखी। देखकर उसको हुआ—"अरे ! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ है (और) जटिलोंको— 'जाओ मेरे भाईको देखो तो' (कह) स्वयं भी तीन सौ जटिलोंको साथ ले जहाँ आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप थे वहाँ गया और जाकर बोला—"काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?

'हाँ आवुस ! यह अच्छा है ।

तब वह अग्नि भी केश-सामग्री जलमें प्रवाहितकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर बोले—"भन्ते ! उपसम्पदा पावें। यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

ग या का श्य प अग्निने केश-सामग्री नदीमें बहती देखी। "काश्यप ! क्या यह अच्छा है ?

'हाँ ! आवुस ! यह अच्छा है ।

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

४—गया

तब भगवान् उ रु वे ला में इच्छानुसार विहारकर, सभी एकसहस्र पुराने जटिल भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ ग या सी स गये ।

(१६) गयासीस पर आदीप्त पर्यायका उपदेश

वहाँ भगवान् एक हजार भिक्षुओंके साथ ग या ²ग या सी स प र विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! सभी जल (नष्ट हो) रहा है। क्या जल रहा है ? चक्षु जल रही है रूप जल रहा है चक्षुका विज्ञान³ जल रहा है, चक्षुका स स र्श जल रहा है और चक्षुके सस्पर्शके कारण जो वेदना—सुख दुःख न-सुख-न-दुःख—उत्पन्न होती है वह भी जल रही है ?—राग-अग्नि द्वेष-अग्नि मोह-अग्निसे जल रहा है। जन्म जरासे और मरणके शोकसे रोने पीटनेसे दुःखसे दुर्मनस्कतासे परेशानीसे जल रही है—यह मैं कहता हूँ।

श्रोत्र । शब्द । श्रोत्र-विज्ञान । श्रोत्रका-सम्पर्क । श्रोत्रके सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें । घ्राण (=नासिका इन्द्रिय) गन्ध घ्राण-विज्ञान जल रहे हैं। घ्राणका सस्पर्श

---

¹ खारिया झोली। ²गयासीस गयाका ब्रह्मयोनि पर्वत है।

³ इन्द्रिय और विषयके सम्पर्कसे जो ज्ञान होता है।

जल रहा है, यह मैं कहता हूँ। जिह्वा०। रस०। ०जिह्वा-विज्ञान०। ०जिह्वा-संस्पर्श०। ०जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनायें० ०जल रही हैं। यह मैं कहता हूँ। काय०-०स्पर्श० काय-विज्ञान० ०काय-संस्पर्श काय-संस्पर्शके (उत्पन्न) वेदनायें० ०जल रही हैं। ० मन० ०धर्म० ०मनो-विज्ञान० ० ०मन-संस्पर्श मन-संस्पर्शके (उत्पन्न) वेदनायें जल रही हैं। किससे जल रही हैं? राग-अग्निसे द्वेष-अग्निसे मोह-अग्निसे जल रही हैं। जन्म जरा और मरणके योगसे जल रही हैं। रोने-पीटनेसे, दुःखसे, दुर्मनस्कतासे जल रही हैं—यह मैं कहता हूँ।

"भिक्षुओ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाले आर्य[1]शिष्य चक्षुसे निर्वेद[2]-प्राप्त होता है, रूपसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-संस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना—सुख, दुःख, न सुख-न दुःख—उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है।

"श्रोत्र०। शब्द०। श्रोत्र-विज्ञान०। श्रोत्र-संस्पर्श०। श्रोत्र-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। घ्राण०। गंध०। घ्राण-विज्ञान०। घ्राण-संस्पर्श० घ्राण-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। जिह्वा०। रस०। जिह्वा-विज्ञान०। जिह्वा-संस्पर्श०। जिह्वा-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। काय०। स्पर्श[3]०। काय-विज्ञान०। काय-संस्पर्श०। काय-संस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०।

"मनसे निर्वेद-प्राप्त होता है। धर्मसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मनो-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-संस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-संस्पर्शके कारण जो यह वेदना—सुख, दुःख, न सुख-न दुःख—उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है।

उदास हो विराग होता है। विराग होनेसे मुक्त होता है। मुक्त होनेपर "मैं मुक्त हूँ" यह ज्ञान होता है। वह जानता है—"आवागमन खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो करचुका, और यहाँ कुछ (करनेको बाकी) नहीं है।" इस व्याख्यानके कहे जाते वक्त उन हजार भिक्षुओंके चित्त निर्लिप्त हो आवागमन देनेवाले चित्त-मलोंसे छूट गये।

उरुवेल प्रातिहार्य (नामक) तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

५—राजगृह

(१७) राजगृहमें बिंबिसारकी दीक्षा

भगवान् गयासीसमें इच्छानुसार विहारकर, (राजा बिंबिसारसे की हुई प्रतिज्ञा का स्मरणकर) सभी एक हजार पुराने जटिल भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ, चारिकाके लिये चल दिये। भगवान् क्रमशः चारिका करते, राजगृह पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें लट्ठि[4] (यट्ठि) वनके सुप्रतिष्ठित चौरे (=चैत्य) में ठहरे।

मगध-राज श्रेणिक बिंबिसारने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि शाक्यकुलसे साधु बने शाक्यपुत्र श्रमण गौतम राजगृहमें पहुँच गये हैं। राजगृहमें लट्ठि (=यट्ठि) वनके सुप्रतिष्ठित चैत्यमें विहार कर रहे हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल-यश फैला हुआ है—"वह भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक्-संबुद्ध हैं, विद्या और आचरणसे युक्त हैं, सुगत हैं, लोकोंके जानने वाले हैं, उनसे उत्तम कोई नहीं है ऐसे (वह) पुरुषोंके चाबुक-सवार हैं, देवताओं और मनुष्योंके उपदेशक हैं—(ऐसे वह) बुद्ध भगवान् हैं।" वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक, सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित

---

[1] स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अना-गामी, अर्हत्। [2] वैराग्यकी पूर्वावस्था।
[3] शीत, उष्णआदि। [4] राजगिरके पासका जठियाँव।

साधु-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको स्वयं समझ=साक्षात्कारकर जानते हैं। वह आदिमें कल्याण (-कारक) मध्यमें कल्याण(-कारक) अन्तमें कल्याण(-कारक) धर्मका अर्थ-सहित=व्यञ्जन-सहित उपदेश करते हैं। वह केवल पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हत् लोगोंका दर्शन करना उत्तम है।

मगध-राज श्रेणिक बिंबिसार बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। वह बारह लाख मगध निवासी ब्राह्मण गृहस्थ भी—कोई भगवान्को अभिवादनकर, कोई भगवान्से कुशल प्रश्न पूछकर, कोई भगवान्की ओर हाथ जोड़कर, कोई भगवान्को नाम-गोत्र सुनाकर कोई कोई चुप-चाप ही एक ओर बैठ गये। तब उन बारह लाख मगधके ब्राह्मणों गृहस्थोंके (चित्तमें) होने लगा—

"क्या जी! महाश्रमण (गौतम) उरुवेल काश्यपका शिष्य है अथवा उरुवेल-काश्यप महाश्रमणका शिष्य है?

तब भगवान्ने उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके चित्तके वितर्कको जान आयुष्मान् उरुवेल-काश्यपसे गाथामें कहा—

"हे उरुवेल-वासी! हे तप कृशोंके उपदेशक! क्या देखकर (तूने) आग छोड़ी?

काश्यप! तुमसे यह बात पूछता हूँ तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा?

(काश्यपने कहा)—"रूप शब्द और रसरूपी कामभोगोंम स्त्रियोंके रूप शब्द, और रसमें हवन करते हैं काम-भोगार्थ रूप शब्द और रसमें [1]कामेष्टि-यज्ञ करते हैं। यह रागादि उपाधियाँ मल हैं (मैंने) यह जान लिया इसलिये मैं यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।

भगवान्ने (कहा)—"हे काश्यप! रूप शब्द और रसमें तेरा मन नहीं रमा। तो देव-मनुष्य-लोकमें कहाँ तेरा मन रमा काश्यप! इसे मुझे कह।

'काम-भवमें अविद्यमान निर्लेप शान्त रागादि रहित (निर्वाण) पदको देखकर। निर्विकार, दूसरेसे महामनासे न पार होने लायक (निर्वाण)पदको देखकर (मैं) इष्ट और यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।"

तब आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप आसनसे उठ उपरने (=उत्तरासंग) को एक कंधेपर कर, भगवान्के पैरोंपर सिर रख भगवान्से बोले—"भन्ते! भगवान् मेरे गुरु हैं मैं शिष्य हूँ। भन्ते! भगवान् मेरे गुरु हैं मैं शिष्य हूँ। तब उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके (मनमें) हुआ—"उरुवेल-काश्यप महा-श्रमणका शिष्य है।

तब भगवान्ने उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंके चित्तकी बात जान आनुपूर्वी कथा कही। तब बिंबिसार आदि ग्यारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणों और गृहस्थोंको उसी आसनपर "जो कुछ पैदा होनेवाला है वह नाशमान है" यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ और एक लाख उपासक बने।

तब धर्मको जानकर, प्राप्तकर विदितकर अवगाहनकर सन्देह-रहित विवाद रहित बन भगवान्के धर्ममें विशारद और स्वतंत्र हो बिम्बिसारने भगवान्से कहा—"भन्ते! पहिले कुमार-अवस्थामें मेरी पाँच अभिलाषायें थीं वह अब पूरी हो गईं। भन्ते! पहिले कुमार अवस्थामें (चित्तमें) था होता था—(क्या ही अच्छा होता) यदि मुझे (राज्यपर) अभिषेक किया जाता। यह मेरी पहिली अभिलाषा थी जो अब पूरी हो गई है। 'मेरे राज्यमें अर्हत् यथार्थ बुद्ध आवें' यह मेरी दूसरी अभिलाषा

[1] किसी कामनासे किया जानेवाला यज्ञ।

थी, वह भी अव पूरी होगई । "उन भगवान्‌की मैं सेवा करता", यह मेरी तीसरी अभिलाषा थी, वह भी अव पूरी हो गई। "वह भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते" यह मेरी चौथी अभिलाषा थी, वह भी अव पूरी हो गई । "उन भगवान्‌को मैं जानता" यह पाँचवी अभिलाषा थी, वह भी अव पूरी होगई। आश्चर्य है ! भन्ते !! आश्चर्य है ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता वतला दे, अधकारमे तेलकी रोशनी रख दे, जिसमे आँखवाले रूप देखे, ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। इसलिये मैं भगवान्‌की शरण लेता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे हाथ-जोळ शरणमे आया उपासक जाने। भिक्षु-सघ-सहित कलके लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौन रह उसे स्वीकार किया। तव मगध-राज श्रेणिक विम्बिसार भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। मगध-राज श्रेणिक विम्बिसारने उस रातके वीतनेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी— भन्ते ! काल होगया, भोजन तैयार है। तव भगवान् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), (भिक्षा-) पात्र और चीवर ले, सभी एक सहस्र पुराने जटिल-भिक्षुओवाले महान् भिक्षुसघके साथ राजगृहमें प्रविष्ट हुए ।

उस समय देवोका इन्द्र शक्र ब्राह्मण-कुमारका रूप धारणकर बु द्ध स हि त भिक्षु-सघके आगे आगे यह गाथाएँ गाता हुआ चलता था—

"(भगवान् राजगृहमे प्रवेश कर रहे है)
पुराण जटिलोंके साथ (वह) सयमी,
मुक्तोके साथ वह मुक्त, कुदन जैसे वर्णवाले, भगवान् राजगृहमें ॥
पुराने शान्त जटिलोंके साथ (वह) शान्त, मुक्तोके साथ (वह) मुक्त । कुदन जैसे० ॥
पुराने मुक्त जटिलोके साथ (वह) मुक्त, विप्रमुक्तोके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुदन जैसे०॥
पुराने पार उतरे जटिलोके साथ (वह भव) पार उतरे विप्रमुक्तोंके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुदन जैसे०॥

दश (आर्य-) निवास, दश-बल, दश-धर्म (=कर्मपथ-) सहित, दशो (अशैक्ष्य अगो)से युक्त ।
दश सौ (पुरुषोंसे) युक्त (वह) भगवान् राजगृहमें प्रवेश करते है ।

लोग देवोके इन्द्र श क्र को देखकर ऐसा कहते थे—

"अहो ! यह ब्राह्मण-कुमार सुदर है । अहो ! यह कुमार दर्शनीय है। अहो ! यह कुमार चित्तको भला लगनेवाला है। किसका यह माणवक है ?"

ऐसा कहनेपर देवोका इन्द्र शक्र उन मनुष्योंसे गाथामें वोला—

"जो धीर, सवसे बुद्धिमान्, दान्त, शुद्ध (और) अनुपम पुरुष है।
लोकमें अर्हत्, सुगत है, उनका मैं परिचारक हूँ।।"

तव भगवान्, जहाँ मगध-राज श्रेणिक विम्बिसारका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघ-सहित विछे आसनपर वैठे। तव मगधराजने बुद्धसहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम भोजन कराया, सतृप्त कराया, पूर्ण कराया, और भगवान्‌के पात्रसे हाथ खींच लेनेपर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे मगध-राज के (चित्तमें) हुआ—"भगवान् कौनसी जगह विहार करें ? जो कि गाँवसे न वहुत दूर हो, न वहुत समीप हो, इच्छुकोंके आने जाने लायक हो, (जहाँ) दिनमें वहुत भीळ न हो (और) रातमें लोगोका हल्ला गुल्ला न हो, मनुष्यके लिये एकान्त स्थान हो, एकान्तवासके योग्य हो ?" तव मगध-राज को हुआ—"यह हमारा वे ळु (वे णु) व न उद्यान गाँवसे न वहुत दूर है, न वहुत समीप०,

एकान्तवासके योग्य है। क्यों न मैं वेणुवन-उद्यान बुद्ध सहित भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।"

तब मगध-राज ने भगवान्से निवेदन किया—"भन्ते! मैं वे णु व न उ द्या न बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको देता हूँ।

भगवान आराम स्वीकार किये और फिर मगध-राजको धर्म-संबंधी कथाओं द्वारा,—समुत्तेजितकर आसनसे उठकर चलेगये।

भगवान्ने इसीके सम्बन्धम धर्म-संबंधी कथा कह भिक्षुओंको सम्बोधित किया— भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरामके ग्रहण करनेकी। 2

(१८) सारिपुत्र और मोद्‌गल्यायनकी प्रव्रज्या

उस समय स ञ्ज य (नामक) परिव्राजक रा ज गृ ह मे ढाई सौ परिव्राजकोंकी बळी जमातके साथ निवास करता था। सा रि पु त्र और मौ द्‌ग ल्या य न सजय परिव्राजकके चेले थे। उन्होंने (आपसमे) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्त करे वह दूसरेसे कहे। उस समय आयुष्मान् अ श्व जि त् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित हो पात्र और चीवर ले अति सुन्दर=प्रतिनाद आलोकन=विलोकनके साथ सकोचन और प्रसारणके साथ नीची नजर रक्खे संयमी बने राजगृहमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌को अतिसुन्दर आलोकन=विलोकनके साथ नीची नजर रक्खे संयमी बनसे राजगृहम भिक्षाके लिये घूमते देखा। देख कर उनको हुआ—"लोकमें अर्हत या अर्हत्‌के मार्गपर जो आरूढ़ है यह भिक्षु उनमेंसे एक है। क्यों न मैं इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आवुस! तुम किसको (गुरु) करके साधु हुए हो कौन तुम्हारा गुरु है? तुम किसके धर्मको मानते हो? फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के चित्तमें) हुआ—यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नहीं है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है। क्यों न मैं इस भिक्षुके पीछे होलूँ।

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमें भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले चल दिये। तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान अश्वजित् थे वहाँ गया जाकर आयुष्मान् अश्वजित्‌के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खळा होगया। खळे होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्‌से कहा—

"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न हैं, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल है। आवुस! तुम किस-को (गुरु) करके साधु हुए हो तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसका धर्म मानते हो?

"आवुस! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य पु त्र (जो) महाश्रमण हैं उन्ही भगवान्‌को (गुरु) करके मैं साधु हुआ। वही भगवान् मेरे गुरु हैं। उन्ही भगवान्‌का धर्म मैं मानता हूँ।

'आयुष्मान्‌के गुरुका क्या मत है किस (सिद्धात)को वह मानते हैं?"

"आवुस! मैं नया हूँ इस धर्ममें अभी नया ही साधु हुआ हूँ विस्तारसे मैं तुम्हे नहीं बतला सकता इसलिए संक्षेपमें तुमसे धर्म कहता हूँ।

"तब सा रि पु त्र परिव्राजकने आयुष्मान् अ श्व जि त् से कहा—"अच्छा आवुस!

थोड़ा बहुत जो हो कहो सारहीको मुझे बतलाओ।

सारही से मुझे प्रयोजन है क्या करोगे बहुतसा विस्तार कहकर।"

तब आयुष्मान् अश्वजित्‌ने सारिपुत्र परिव्राजकसे यह ध र्म प र्या य (=उपदेश) कहा—

"हेतु (=कारण)से उत्पन्न होनेवाली जितनी वस्तुएं हैं उनका हेतु हे (वह) तथागत बतलाते है।

उनका जो निरोध है (उसको भी बतलाते है) यही महाश्रमणका वाद है।

तब सारिपुत्र परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब

नाशमान् है," यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। यही धर्म है, जिससे कि शोक-रहित पद, प्राप्त किया जा सकता है, और जिसे कि कल्पोसे लाखो विना देखे छोळ गये थे।

तव सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्गल्यायन परिव्राजक था, वहाँ गया। मौ द् ग ल्या य न परिव्राजकने दूरसे ही सारिपुत्र परिव्राजकको आते देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न है, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल है। तूने आवुस! अमृत तो नही पा लिया?"

"हाँ आवुस! अमृत पा लिया।"

"आवुस! कैसे तूने अमृत पाया?"

"आवुस! मैने आज रा ज गृ ह मे अश्वजित् भिक्षुको अति सुन्दर आलोकन=विलोकनसे भिक्षाके लिये घूमते देखकर (सोचा) 'लोकमें जो अर्हत् है यह भिक्षु उनमेंसे एक है।' मैंने अश्वजित् से पूछा तुम्हारा गुरु कौन है। अश्वजित्ने यह धर्मपर्याय कहा—हेतुमे उत्पन्न०।

तव मौद्गल्यायन परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सव नाशमान् है"—यह विमल=विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।

मौद्गल्यायन परिव्राजकने सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—"चलो चलें आवुस!! भगवान्के पास, वह हमारे गुरु है। और यह (जो) ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रयसे=हमे देखकर यहाँ विहार करते है, उन्हे भी वूझलें (और कहदें)—जैसी तुम लोगोकी राय हो वैसा करो—।"

तव सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे, वहाँ गये, जाकर उन परिव्राजकोसे वोले—"आवुसो! हम भगवान्के पास जाते है, वह हमारे गुरु है।"

"हम आयुष्मानोंके आश्रयसे—आयुष्मानोको देखकर, यहाँ विहार करते हैं। यदि आयुष्मान् महाश्रमणके शिष्य होगे, तो हम सवभी महाश्रमणके शिष्य होगे।"

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन स ज य परिव्राजकके पास गये। जाकर सजय परिव्राजकसे वोले—

"आवुस! हम भगवान्के पास जाते है, वह हमारे गुरु है।"

"नही, आवुसो! मत जाओ। हम तीनो (मिलकर) (इस जमातकी महन्थाई करेंगे।"

"दूसरी वार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने सजय परिव्राजकसे कहा—" हम भगवान्के पास जाते है।"

" मत जाओ! हम तीनो (मिलकर) इस जमातकी महन्थाई करेगे।"

तीसरी वार भी।

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकोको ले, वे णु व न चले गये। सजय परिव्राजकको वही मुँहसे गर्म खून निकल आया।

भगवान्ने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुए देख भिक्षुओको सम्वोधित किया—

"भिक्षुओ! यह दो मित्र को लि त (=मौद्गल्यायन) और उ प ति ष्य (=सारिपुत्र) आ रहे है। यह मेरे प्रधान शिष्य-युगल होगे, भद्र-युगल होगे।"

गम्भीर ज्ञान अनुपम, भवनाशक, मुक्त, (और) दुर्लभ (निर्वाण)के विषयमे वेणुवनमें वुद्धने हमारे लिये भविष्यद्वाणी की ॥—

को लि त और उ प ति ष्य यह दो मित्र आ रहे है।
यह मेरे दो मुख्य शिष्य उत्तम जोळी होगे॥"

तव सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्के चरणोमें शिर झुकाकर वोले—

"भन्ते ! हमें भगवान् प्रव्रज्या दें उपसम्पदा दें।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ ! आओ (यह) धर्म सुव्याख्यात है। अच्छी प्रकार दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य-पालन करो।

यही उन आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई।

उस समय म ग ध के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुल-पुत्र भगवान्‌के शिष्य होने थे। लोग (देखकर) हैरान होते निन्दा करते और दुःखी होते थे—'अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है विधवा बनानेको श्रमण गौ त म (उतरा) है कुल-नाशके लिये श्रमण गौतम (उतरा) है। अभी उसने एक सहस्र जटिलोंका साधु बनाया। इन ढाई सौ स ञ्ज य के परिव्राजकोंको भी साधु बनाया। अब म ग ध के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुल-पुत्र भी श्रमण गौतमके पास साधु बन रहे हैं।" वह भिक्षुओंको देख इस गाथाको कह ताना देते थे—

'महाश्रमण म ग धों के [1]गि रि व्र ज में आया है।

सञ्जयके सभी चेलोंको तो ले लिया अब किसको ले जानेवाला है?

भिक्षुओंने इस बातको भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—

"भिक्षुओ ! यह शब्द देर तक न रहेगा। एक सप्ताह बीतने लोप हो जायगा। जो तुम्हें उस गाथासे ताना देते हैं । उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर दो—

"महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते)से ले जाते हैं।

धर्मसे ले जाये जातोंके लिये बुद्धिमानोंको ईर्ष्या क्यों ?

लोगोंने कहा— शा क्य पु त्री य (=शाक्य-पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण धर्म (के रास्ते)से ले जाते हैं अधर्मसे नहीं।

सप्ताह भर ही वह शब्द रहा। सप्ताह बीतते-बीतते लोप होगया।

चतुर्थ भाणवार समाप्त ॥४॥

§२—शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्त्तव्य

(१) शिष्यका कर्त्तव्य

उस समय भिक्षु उ पा ध्या य के बिना रहते थे (इसलिये वह) उपदेश—अनुशासन न किये जानेसे बिना ठीकसे पहने बिना ठीकसे ढाँके बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे। खाते हुए मनुष्योंके भोजनके ऊपर खाद्यके ऊपर पेयके ऊपर जूठे पात्रको बढ़ा देते थे। स्वयं दाल भी भात भी माँगकर खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते धिक्कारते और दुःखी होते थे। क्यों शा क्य पु त्री य श्रमण बिना ठीकसे पहिने भोजनपर बैठे भी हल्ला मचाते रहते हैं जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मण-भोजमें। भिक्षुओंने लोगोंका हैरान होना सुना। जो भिक्षु निर्लोभी सन्तुष्ट, लज्जी संकोचशील शिक्षार्थी थे वह हैरान हुए धिक्कारने लगे दुःखी हुए । । तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा। । भगवान्‌ने धिक्कारा—'भिक्षुओ ! उन नालायकोंका (यह करना) अनुचित है अयोग्य है असाधुका आचार है अकल्प्य है अकरणीय है। भिक्षुओ ! कैसे वह

---

[1] राजगृह। जानकर अपराध नहीं करता अपराध हो जानेपर छिपाता नहीं। न जानेके रास्ते नहीं जाता ऐसा व्यक्ति लज्जी कहा जाता है।" (—अट्ठकथा)

नालायक विना ठीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं०। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नही है, और न प्रसन्नो (=श्रद्धालुओ)को अधिक प्रसन्न करनेके लिये, वल्कि अप्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोमेंसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है।" तव भगवान्‌ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपाध्याय (करने)की । उपाध्यायको शिष्य (=सद्धिविहारी) में पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमे पिता-बुद्धि ।

इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-सग)को एक कधेपर करवा, पाद-वदन करवा, उकळूँ वैठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहलवाना चाहिये—'भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय वनिये।'

"भिक्षुओ! शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये। अच्छा वर्ताव यह है—समयसे उठकर, जूता छोळ, उत्तरासगको एक कधेपर रख, दातुवन देनी चाहिये, मुख (धोनेको) जल देना चाहिये। आसन विछाना चाहिये । यदि खिचळी (कलेऊके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये। ।पानी देकर पात्र लेकर विना घसे धोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जानेपर, आसन उठाकर रख देना चाहिये । यदि वह स्थान मैला हो, तो झाळू देना चाहिये । यदि उपाध्याय गाँवमें जाना चाहते है, तो वस्त्र थमाना चाहिये, , कमर-वन्द देना चाहिये, चौपेतकर सघाटी[1] देनी चाहिये, धोकर पानी भर पात्रदेना चाहिये। यदि उपाध्याय अनुगामी-भिक्षु चाहते है, तो तीन स्थानोको ढाँकते हुए घेरादार (चीवर) पहन, कमर-वन्द वाँध चौपेती सघाटी पहिन, मुद्धी वाँध, धोकर पात्रले उपाध्यायका अनुचर (=पीछे चलनेवाला) भिक्षु वनना चाहिये। (साथमें) न वहुत दूर होकर चलना चाहिये, न वहुत समीप होकर चलना चाहिये। पात्रमे मिली (भिक्षा)को ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायके वात करते समय, वीच वीचमें वात न करना चाहिये। उपाध्याय (यदि) सदोप (वात)वोल रहे हो, तो मना करना चाहिये। लौटते समय पहिलेही आकर आसन विछा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोनेका जल), पाद-पीठ, पा द क ठ ली (=पैर घिसनेका साधन) रख देना चाहिये। आगे वढकर पात्र-चीवर (हाथसे) लेना चाहिये। दूसरा वस्त्र देना चाहिये। पहिला वस्त्र ले लेना चाहिये। यदि चीवरमें पसीना लगा हो, थोळी देर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें चीवरको डाहना न चाहिये। (फिर) चीवर वटोर लेना चाहिये। यदि भिक्षान्न है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते है, तो पानी देकर भिक्षा देनी चाहिये। उपाध्यायको पानीके लिये पूछना चाहिये। भोजन कर लेनेपर पानी देकर, पात्र ले, झुकाकर विना घिसे अच्छी तरह धो-पोछकर मुहूर्तभर धूपमें सुखा देना चाहिये। धूपमें पात्र डाहना न चाहिये। यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें, स्नान कराना चाहिये। यदि ज ता घ र (=स्नानागार)में जाना चाहे, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये । जताघरके पीढेको लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीढेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-)चूर्ण देना चाहिये। मिट्टी देनी चाहिये। उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये । (उपाध्यायके) नहा लेनेसे पूर्वही अपने देहको पोछ (सुखा), कपळा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोछना चाहिये। वस्त्र देना चाहिये। सघाटी देनी चाहिये। जताघरका पीढा ले पहिलेही आकर, आसन विछाना चाहिये०।

जिस विहारमें उपाध्याय विहार करते है, यदि वह विहार मैला हो, तो समर्थ होनेपर उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमें पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये।

---

[1] दोहरा चीवर।

गद्दा बाहर निकालकर एक ओर रखना चाहिये। तकिया रखनी चाहिये। चारपाई खड़ीकर केवाड़में बिना टकराये लेकर, एक ओर रख देना चाहिये। पीढ़ेको खड़ाकर केवाड़मे बिना टकराये। चारपाईके (पायेके) ओट। पीकदानको एक ओर। सिरहानेका पटरा एक ओर। फर्शको बिछावट के अनुसार हिफाजतसे ले जाकर। यदि विहारमें जाला हो तो उसको पहिले बहारना चाहिये। अँधेरे कोने साफ करने चाहिये। यदि भीत (दीवार) गेरूसे रंग की हुई हो तो लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये। यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो (तो भी) लत्ता भिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये। जिसमें धूलसे खराब न हो जाय। कूड़ेको ले जाकर एक तरफ फेंकना चाहिये। फर्शको धूपमें सुखा साफकर फटकारकर ले जाकर पहिलेकी भाँति बिछा देना चाहिये। चारपाईके ओटको धूपमें सुखा साफकर ले जाकर, उसके स्थानपर रख देना चाहिये। चारपाईको धूपमें सुखा साफ कर, फटकारकर नवाकर केवाड़को बिना टकराये ले जाकर। पीढ़ा। तकिया। गद्दा बाहर धूपमें सुखा साफकर फटकारकर ले जाकर बिछा देना चाहिये। पीकदान सुखा साफकर लेकर यथा स्थान रख देना चाहिये।

यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो पूर्वकी खिड़कियाँ बन्द कर देनी चाहिये। यदि जाड़ेके दिन हो दिनको जंगला खुला रखकर रातको बन्द कर देना चाहिये। यदि गर्मीका दिन हो तो दिनको जंगला बन्दकर रातको खोल देना चाहिये। यदि आंगन (परिवेण) मैला हो आंगन झाड़ना चाहिये। यदि कोठरी मैली हो। यदि बैठक मैली हो। यदि अग्निशाला (पानी गर्म करनेका घर) मैली। यदि पाखाना मैला हो। यदि पानी न हो पानी भरकर रखना चाहिये। यदि पीनेका जल न हो। यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो।

यदि उपाध्यायको उदासी हो तो शिष्यको (उसे) हटाना हटवाना चाहिये या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको शंका (=कौकृत्य) उत्पन्न हुई हो तो शिष्यको हटाना हटवाना चाहिये या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको (उल्टी) धारणा उत्पन्न हुई हो तो शिष्यको छुड़ाना छुड़वाना चाहिये या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायने परिवास[1] देने योग्य बड़ा अपराध किया हो तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये जिसमे कि संघ उपाध्यायको परिवास दे। यदि उपाध्याय (दोषके कारण) मूलाय प्रतिकर्षण[1] के योग्य हो तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये जिसमे कि संघ उपाध्यायका मूलाय प्रतिकर्षण करे। यदि उपाध्याय मानत्व[1] के योग्य हो। यदि उपाध्याय आह्वान[1] के योग्य हो। यदि (भिक्षु) संघ उपाध्यायको तर्जनीय[1] (=तर्जनीय) नियस्स[1] प्रव्राजनीय[1] प्रतिसारणीय[1] या उत्क्षेपणीय[1] कर्म (दंड) करना चाहे तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये जिसमें कि संघ उपाध्यायको दंड न करे या हल्का दंड करे। यदि संघने तर्जनीय नियस्स प्रव्राजनीय प्रतिसारणीय या उत्क्षेपणीय दंड कर दिया हो तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये कि उपाध्याय ठीकसे रहे लोम गिरावे निस्तारके अनुकूल बर्ताव करें जिसमें कि संघ उस दंडको मंसूख कर दे।

यदि उपाध्यायका चीवर धोने लायक हो तो शिष्यको धोना चाहिये या उत्सुकता करनी चाहिये जिसमें कि उपाध्यायका चीवर धोया जावे। यदि उपाध्यायको चीवर बनाने की जरूरत हो यदि उपाध्यायको रंग पकानेकी जरूरत हो यदि उपाध्यायका चीवर रँगने लायक हो। चीवरको रँगते वक्त अच्छी तरह उलट पलटकर रँगना चाहिये। गीली गाती न छोड़ना चाहिये। उपाध्यायको बिना पूछे न किसीको पात्र देना चाहिये न किसीसे पात्र ग्रहण करना चाहिये न किसीको चीवर देना

[1] देखो चुल्लवग्गके २ (पारिवासिक) स्कंधक और ३ (समुच्चय) स्कंधक।

नही रखता, ० (५) अधिक भावना नही करता०। 14

(ङ) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्य हटाने योग्य नही है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम रखता है, ० (५) अधिक भावना करता है०। 15

(च) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको न हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है, और हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम नही रखता, ० (५) अधिक भावना नही करता है०।16

(छ) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है और न हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम रखता है, ० (५) अधिक भावना करता है०।"17

(४) तीन शरणोंमे प्रव्रज्या

उस समय ब्राह्मण रा ध ने भिक्षुओके पास साधु बनना चाहा। भिक्षुओने (उसे) साधु न बनाना चाहा। वह प्रव्रज्या न पानेसे दुर्बल, रूखा, दुर्वर्ण, पीला हाळ-हाळ-निकला होगया। ।भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख भिक्षुओको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! इस ब्राह्मणका उपकार किसी को याद है ?"

ऐसे कहनेपर आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भगवान्से कहा—"भन्ते ! मै इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ।"

"सारिपुत्र ! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है ?"

"भन्ते ! मुझे रा ज गृ ह मे भिक्षाके लिये घूमते समय, इस ब्राह्मणने कलछीभर भात दिलवाया था। भन्ते मैं इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ।"

"साधु ! साधु ! सारिपुत्र ! सत्पुरुष कृतज्ञ=कृतवेदी (होते हैं)। तो सारिपुत्र ! तू (ही) इस ब्राह्मणको प्रव्रजित कर, उपसम्पादित कर।"

"भन्ते ! कैसे इस ब्राह्मणको प्रव्रजित करूँ, (कैसे) उपसम्पादित करूँ ?"

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमें=इसी प्रकरणमें धर्मसम्बन्धी कथा कह भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ ! मैंने जो तीन शरण-गमनसे उपसम्पदाकी अनुमति दी थी, आजसे उसे मन्सूख करता हूँ। (आजसे ती न अ नु श्रा व णो और) चौथी ज्ञ प्ति वाले क र्म के साथ उपसम्पदाकी अनुमति देता हूँ।18

इस तरह उपसम्पदा करनी चाहिये—योग्य समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! संघ मुझे सुने, [1]अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उम्मेदवार (=उपसंपदापेक्षी) है। यदि संघ उचित समझे, तो संघ अमुक नामकको, अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करे।—यह ज्ञप्ति है।

ख **अ नु श्रा व ण** (१) "भन्ते ! संघ मुझे सुने, अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उपसम्पदापेक्षी है। संघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्को अमुक नामककी उपसंपदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

---

[1] **यहाँ नाम लेना चाहिये।**

लिये तथा ग्रामग्रामसे भी किसी किसीको उल्टा देनेके लिये है।

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर, संबोधित किया—

'भिक्षुओ! शिष्योंको उपाध्यायके साथ बेठीक बर्ताव नहीं करना चाहिये। जो बठीक बर्ताव करे उसे दुक्कट (दुष्कृत)का दोष हो। 5

(ख) (तब भी) ठीकसे नहीं बर्तते थे। (भिक्षुओंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ! बठीक बर्ताव करनेवाले (शिष्यको) हटा देनेकी अनुमति देता हूँ। 6

"और इस प्रकार भिक्षुओ! हटाना चाहिये।—'तुझे हटाता हूँ' 'मत फिर तू यहाँ आना' या 'ले जा अपना पात्र-चीवर' या 'मत तू मेरी सुश्रूषा करना'—इस प्रकार शरीरसे या वचनसे सूचित करनेपर वह शिष्य हटा समझा जाता है। (यदि) न कायासे न वचनसे न काय-वचनसे सूचित करे तो शिष्य हटाया नहीं समझा जाता।

२—उस समय शिष्य हटाये जानेपर क्षमा-याचना नहीं करते थे। भगवान्‌से इस बातको (भिक्षुओंने) कहा। (भगवान्‌ने कहा)—

'भिक्षुओ! क्षमा करानेकी अनुमति देता हूँ। 7

(तो भी) नहीं क्षमा कराते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

'भिक्षुओ! हटाये हुए (शिष्यको) न क्षमा कराना योग्य नहीं। जो न क्षमा कराये उसे दुक्कटका दोष हो। 8

३—(क) उस समय क्षमा करानेपर भी उपाध्याय क्षमा नहीं करते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

'भिक्षुओ! क्षमा करनेकी अनुमति देता हूँ। 9

(ख) तो भी नहीं क्षमा करते थे (जिससे) शिष्य चले जाते थे या गृहस्थ हो जाते थे या अन्य मतवालोंके पास चले जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

'भिक्षुओ! क्षमा माँगनेपर न क्षमा करना उचित नहीं। जो न क्षमा करे उसको दुक्कटका दोष हो। 10

४—उस समय उपाध्याय ठीकसे बर्ताव करनेवाले (शिष्य)को हटाते थे और बेठीकसे बर्ताव करनेवालेको नहीं हटाते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

(क) "भिक्षुओ! ठीकसे बर्ताव करनेवालेको नहीं हटाना चाहिये। जो हटाये उसको दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! बेठीकसे बर्ताव करनेवालेको न हटाना योग्य नहीं जो न हटाये उसे दुक्कटका दोष हो। 11

(ख) 'भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम नहीं रखता (२) उपाध्यायमें अधिक श्रद्धा नहीं रखता (३) अधिक लज्जाशील (=लज्जी) नहीं होता (४) अधिक गौरव नहीं करता और (५) अधिक (ध्यान भाविकी) भावना नहीं करता। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये। 12

(ग) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको नहीं हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम रखता है (२) उपाध्यायमें अधिक श्रद्धा रखता है (३) अधिक लज्जाशील होता है (४) अधिक गौरव करता है और (५) अधिक (ध्यान भाविकी) भावना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको नहीं हटाना चाहिये। 13

(घ) 'भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त शिष्य हटाने योग्य है—(१) उपाध्यायमें अधिक प्रेम

रहने वाले है, सुदर भोजन करके शान्त शय्याओमे सोते है, क्यो न मै भी शाक्य-पुत्रीय साधुओमें साधु बनूं।' तब उस ब्राह्मणने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्याके लिये प्रार्थना की। भिक्षुओने उसे प्रव्रज्या और उपसपदा दी। उसके प्रव्रजित होनेपर (वह) भोजोका सिलसिला टूट गया। भिक्षुओने (उसने) यह कहा—

"आ आवुस! भिक्षाचारके लिये चले।"

उसने उत्तर दिया—"आवुसो! मै भिक्षाचार करनेके लिये प्रव्रजित नही हुआ हूँ। यदि मुझे दोगे तो खाऊँगा, यदि न दोगे तो लौट जाऊँगा।"

"क्या आवुस! तू उदरके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"हाँ आवुस!"

(तब) जो भिक्षु निर्लोभी, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोचशील और शिक्षा चाहनेवाले थे, वह हैरान हो धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे यह भिक्षु इस प्रकारके सुदर रूपसे व्याख्यात धर्ममें पेटके लिये प्रव्रज्या देते है!' (और) यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"सचमुच भिक्षु! तू पेटके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने निदा की—"नालायक कैसे तू पेटके लिए ऐसे सुदर रूपमे व्याख्यात धर्ममे प्रव्रजित होगा? नालायक! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

निदा करके धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ। उपसपदा करते वक्त चार निश्रयो (=जीविकाके जरियो)-को बतलानेकी—'(१) यह प्रव्रज्या, भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है, इसके (पालनमें) जिदगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—सघ-भोज, (तेरे) उद्देश्यसे बना भोजन, निमत्रण, शलाका भोजन[1], पाक्षिक (भोज), उपोसथके दिनका (भोज), प्रतिपद्‌का (भोज)।

'(२) पळे चीथळोके बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है, इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—क्षौम[2] (वस्त्र), कपासका (वस्त्र), कौशेय (-रेशमी वस्त्र), कम्बल (-ऊनी वस्त्र), सन (का वस्त्र), भाँगकी (छालका वस्त्र)।

'(३) वृक्षके नीचे निवास करनेके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है, इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—विहार, आढ्ययोग (=अटारी) ०, प्रासाद, हर्म्य, गुहा।

'(४) गोमूत्रकी औषधीके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित हैं)—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ। 20

उपाध्याय-व्रत पाँचवा भाणवार समाप्त ॥५॥

---

[1] कुछ परिमित व्यक्तियोंके लिये भोज देते वक्त गिनकर उतनेकी सूचना सघमें भेज दी जाती थी और सघ शलाका बाँटकर उन व्यक्तियोका निश्चय करता था।

[2] अलसीकी छालका बना हुआ कपळा।

(२) दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ— 'भन्ते ! संघ सुने यह अमुक नामक, अमुक नामक आयुष्मान्का उपसम्पदापेक्षी[1] है । जिसको स्वीकार न हो वह बोले।

(३) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ— 'भन्ते ! संघ सुने ।

धा र णा— 'संघको स्वीकार है इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।

(५) उपसम्पदा कर्म

१—उस समय कोई भिक्षु उपसम्पन्न होनेके बाद ही उल्टा आचरण करता था। भिक्षुओंने उससे यह कहा—"आवुस ! मत ऐसा कर यह युक्त नहीं है। उसने उत्तर दिया—"मैंने आयुष्मानोंसे या च ना (=प्रार्थना) नहीं की कि मुझे उपसम्पन्न (=भिक्षु) बनाओ। क्या मुझे बिना याचना किये तुमने उपसम्पन्न बनाया ?

भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! बिना याचना किये उपसम्पन्न नहीं बनाना चाहिये। जो उपसम्पन्न करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! याचना करनेपर उपसम्पन्न करनेकी अनुमति देता हूँ। 19

२—उ प स म्प दा या च ना— और भिक्षुओ ! इस प्रकार या च ना करनी चाहिये—वह उ प स म्प दा पे क्षी (=भिक्षु होनेकी इच्छावाला) संघके पास जाकर (दाहिने कंधेको खोल) एक कंधेपर उ त्त रा स ङ्ग (=उपरना)का करके भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळकर ऐसा कहे—'भन्ते ! संघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ भन्ते ! संघ दया करके मेरा उद्धार करे। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी 'भन्ते ! संघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ भन्ते ! संघ दया करके मेरा उद्धार करे ।

[1] (तब भिक्षुओ !) योग्य समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

ज्ञ प्ति— (१) भन्ते ! संघ मेरी सुने—अमुक[2] नामवाला (भिक्षुको) उपाध्याय बना अमुक नामवाले आयुष्मान्का (शिष्य) अमुक नामवाला यह (पुरुष) उ प स म्प दा चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक नामवालेको अमुक नामके उपाध्यायके उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा करे।—यह ज्ञ प्ति (=सूचना है।)

अ नु श्रा व ण— (१) भन्ते ! संघ मेरी सुने—अमुक नामवाला यह अमुक नामवाले आयुष्मान्का उपसम्पदा चाहनेवाला (शिष्य) है। संघ अमुक नामवालेको अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्को अमुक नामवालेकी उपसम्पदा अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्वमें स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोले।

(२) "दूसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने ।

(३) तीसरी बार भी इसी बातको बोलता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने ।

धा र णा—"संघको स्वीकार है इसीलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।

(६) भिक्षु-पनके चार निश्रय

उस समय रा ज गृ ह में उत्तम भोजोंका सिलसिला चल रहा था। तब एक ब्राह्मणके मनमें ऐसा हुआ—'यह शा क्य पु त्री य (=बौद्ध) श्र म ण (=साधु) शील और आचारमें आराससे

---

[1] भिक्षु-पन चाहनेवाला [2] अमुकके स्थानपर उपसम्पदापेक्षीका नाम लिया जाता है कहीं-कहीं एक काल्पनिक नाम "नाग" भी लिया जाता है।

उसे दुक्कट का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दस या दससे अधिक वर्षवाले (भिक्षु) द्वारा उपसपदा करनेकी।"23

उस समय भिक्षु अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते थे, और शिष्य पंडित (=होशियार) देखे जाते थे तथा उपाध्याय अवूझ, उपाध्याय विद्या-रहित (=अल्प-श्रुत) देखे जाते थे और शिष्य विद्वान् (=बहुश्रुत), उपाध्याय प्रज्ञारहित देखे जाते थे और शिष्य प्रज्ञावान्। (तव) एक पहले अन्य साधु-सप्रदायमें रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-सबधी बात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सप्रदाय (=तीर्थायतन)मे चला गया। तब जो वह भिक्षु निर्लोभी, सतुष्ट ० दुखी होते थे—कैसे अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमे चले जाते है!!" तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"सचमुच भिक्षुओ ! अचतुर और अजान होते हुए भी, 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच, (दूसरे-की) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमें चले जाते है ?"

"सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने निंदा—

"भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमें चले जाते है ? भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नो ०।"

निंदा करके भगवान्ने धर्म-सबधी कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अचतुर, अजान (पुरुष दूसरेकी) उपसपदा न करे। जो उपसपदा करे उसे दुक्कट-का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर और जानकार दस या दससे अधिक वर्षवाले भिक्षुको उपसपदा करने की।"24

(८) अन्तेवासीका कर्तव्य

उस समय शिष्य उपाध्यायके (भिक्षु-आश्रमसे) चले जानेपर, विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर, या दूसरे पक्षमें चले जानेपर भी विना आचार्यके ही उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे विना ठीकसे (चीवर) पहने, विना ठीकसे ढँके वेशहूरीके साथ भिक्षाके लिये चले जाते थे, खाते हुए मनुष्योंके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर पेयके ऊपर, जूठे पात्रको बढा देते थे। स्वय दाल भी भात भी माँगते थे, खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—क्यो शाक्यपुत्रीय श्रमण विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते हैं, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमें ? भिक्षुओने लोगोका हैरान होना, धिक्कारना और दुखी होना सुना। तब जो भिक्षु निर्लोभी, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोचशील, सीखकी चाह वाले थे, वह हैरान हुए, धिक्कारने लगे, दुखी हुए ०। तब उन भिक्षुओने भगवान्से इस बातको कहा। । भगवान्ने धिक्कारा

"भिक्षुओ ! उन नालायकोका यह करना अनुचित है ० अकरणीय है ० भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते है, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमें ? भिक्षुओ ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नही है ०।"

तब भगवान्ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! मै आचार्य (करने)की अनुमति देता हूँ। 25

आचार्यको शिष्यमें पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको आचार्यमें पिता-बुद्धि।

आचार्य ग्रहण करनेका यह प्रकार है—उपरनेको एक कंधेपर करवा चरणकी वदना

(७) उपसम्पादकके वर्ष आदिका नियम

उ प से न की क था—उस समय एक ब्राह्मण-कुमार (=माणवक)ने भिक्षुओंके पास आकर प्रव्रज्या पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओंने उसे तुरत ही (चारों) नि श्र य बतलाये। उसने यह कहा—

"भन्ते! यदि प्रव्रजित होनेके बाद (इन) निश्रयोंको बतलाये होते तो मैं (इन्हें) पसंद करता। अब मैं नहीं प्रव्रजित होऊँगा। यह निश्रय मुझे नापसन्द हैं, प्रतिकूल हैं।

भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! तुरत ही निश्रय नहीं बतला देना चाहिये। जो बतलाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसंपदा हो जानेके बाद निश्रयोंको बतलाने की। 21

उस समय भिक्षु दो पुरुष (=कोरम्) तीन पुरुष वाले (भिक्षु)गण से भी उपसंपदा देते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)— भिक्षुओ! दससे कम वर्ग (=कोरम्)वाले गणसे उपसंपदा न करानी चाहिये। जो कराये उसको दु क्क ट का दोष हो। अनुमति देता हूँ दस या दससे अधिक पुरुषवाले गण द्वारा उपसंपदा कराने की। 22

उस समय एक वर्ष या वर्षके (भिक्षु बने) भिक्षु भी शिष्योंकी उपसंपदा करते थे। आयुष्मान् उ प से न बं ग न्त पु त्त ने भी (भिक्षु बननेके) एक वर्ष बाद ही शिष्यको उपसंपादित किया। (दूसरे) वर्षावासको समाप्त करनेपर वह दो वर्षके (भिक्षु) हो एक वर्षके (भिक्षु बने अपने) शिष्यको लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। आगन्तुक भिक्षुओंके साथ कुशल-प्रश्न करना बुद्ध भगवानोंका स्वभाव है। तब भगवान्ने आयुष्मान् उ प से न बं ग न्त पु त्त से यह कहा—

"भिक्षु! ठीक तो रहा, अच्छा तो रहा, रास्तेमें तकलीफ तो नहीं पाये?

"ठीक रहा भगवान्! अच्छा रहा भगवान्! तकलीफ बिना हम रास्ते आये।

जानते हुए भी तथागत (किसी बातको) पूछते हैं। जानते हुए भी नहीं पूछते। (पूछनेका) काल जानकर पूछते हैं, (न पूछनेका) काल जानकर नहीं पूछते। तथागत सार्थक (बात)को पूछते हैं निरर्थकको नहीं पूछते। निरर्थक होनेपर तथागतोंकी मर्यादा भंग (=सेतु-घात) होती है। बुद्ध भगवान् दो प्रकारसे भिक्षुओंको पूछते हैं—(१) शिष्योंको धर्मोपदेश करनेके लिये और (२) (शिष्योंके लिये) भिक्षु-नियम (=शिक्षा-पद) बनानेके लिये।

तब भगवान्ने आयुष्मान् उ प से न बं ग न्त पु त्त से यह कहा—

"भिक्षु! तू कितने वर्षका (भिक्षु) है?

"मैं दो वर्षका हूँ भगवान्!

"और यह भिक्षु कितने वर्षका (भिक्षु) है?

"एक वर्षका है भगवान्!

"यह भिक्षु कौन है?

"यह मेरा शिष्य है भगवान्!

बुद्ध भगवान्ने—"नालायक! यह अनुचित है, अयोग्य है, साधुओंके आचारके विरुद्ध है, अश्रमणोचित है, अकरणीय है। कैसे तू नालायक! (स्वयं) दूसरों द्वारा उपदेश और अनुशासन किये जाने लायक हो, दूसरोंको उपदेश और अनुशासन करने वाला बनेगा? नालायक! तू बड़ी जल्दी जमातकी तरफ लौट पड़ा और बखान बन गया। नालायक! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।" फिर धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! दस वर्षसे कमवाले (भिक्षु)को उपसंपदा न करानी चाहिये। जो उपसंपदा कराये

२—"भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) सपूर्ण शील (=सदाचार)-पुजसे युक्त होता है ०, (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार-पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे ०। 29

३—"और भी भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसपदा करनी चाहिये, न निश्रय देना चाहिये, न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) स्वय सपूर्ण शीलपुजसे युक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण शील-पुजकी ओर प्रेरित करनेवाला होता है, (२) न स्वय सपूर्ण समाधि-पुजसे सयुक्त होता है, और न दूसरेको सपूर्ण समाधि-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (३) न स्वय सपूर्ण प्रज्ञापुजसे सयुक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण प्रज्ञा-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (४) न स्वय सपूर्ण वि मु क्ति-पुजसे युक्त होता है, और न दूसरेको सपूर्ण विमुक्ति-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (५) न स्वय सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे युक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजकी ओर प्रेरित करता है। 30

४—"भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है ०, (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे ०। 31

५—"और भी भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) अश्रद्धालु होता है, (२) लज्जा-रहित होता है, (३) सकोच-रहित होता है, (४) आलसी होता है, (५) भूल जानेवाला होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त। 32

६—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) श्रद्धालु होता है, (२) लज्जालु होता है, (३) सकोचशील होता है, (४) उद्योगी होता है, (५) याद रखने वाला होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 33

७—"और भी भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन होता है, (२) आचारसे हीन होता है, (३) बुरी धारणावाला होता है, (४) विद्या-हीन होता है, (५) प्रज्ञाहीन होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 34

८—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुकी उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन नही होता, (२) आचारसे हीन नही होता, (३) बुरी धारणावाला नही होता, (४) विद्यावान् होता है, (५) प्रज्ञावान् होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 35

९—"और भी भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ नही होता, (२) (मनके) उचाटको हटाने या हटवानेमें समर्थ (नही) होता, (३) (मनके) उत्पन्न खटकेको दूर करने करानेमें (नही) समर्थ होता, (४) दोष (=अपराध)को नही जानता, (५) दोषसे शुद्ध होनेको नही जानता। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 36

१०—"भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमें समर्थ होता है ० (५) दोषसे शुद्ध होना जानता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त ०। 37

११—"और भी भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—नही समर्थ होता (१) शिष्य या अन्तेवासीको आचार विषयक सीख सिखलानेमें, (२) शुद्ध ब्रह्मचर्यकी शिक्षामें ले जानेमें, (३) ध र्म की ओर (=अ भि ध म्मे) ले जानेमें, (४) वि न य की ओर (=

करवा उकड़ूँ बैठवा हाथ जोड़वा ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये। आयुष्मान्के आश्रयसे मैं रहूँगा भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये । यदि (आचार्य) वचनसे 'ठीक है' 'अच्छा है' 'युक्त है' 'उचित है' या 'सुन्दर रीतिसे करो' कहे या कायासे सूचित करे या काय-वचनसे सूचित करे तो वह आचार्यके तौरपर ग्रहण किया गया। यदि न कायासे सूचित करता है न वचनसे सूचित करता है न काय-वचनसे सूचित करता है तो उसका आचार्यके तौरपर ग्रहण नहीं होगा।

भिक्षुओ ! शिष्यको आचार्यके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये ।

(९) आचार्यका कर्तव्य

आचार्यको शिष्यके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये [1]।

छठा भाणवार (समाप्त) ॥ ६॥

(१०) निश्रय टूटनेके कारण

उस समय शिष्य आचार्यके साथ अच्छी तरह न बर्तते थे इससे जो अल्पेच्छ सन्तुष्ट लज्जी शील सकोची शिक्षा चाहने वाले ।[1] पाँच बातोंसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है और न हटानेपर निर्दोष होता है ।

उस समय भिक्षु अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके हैं' ऐसा सोच (दूसरेको) *उपसम्पदा करते थे और शिष्य पण्डित देख जाते थे और आचार्य अबूझ ।*[1]

उस समय शिष्य आचार्य और उपाध्यायके चले जानेपर विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर या दूसरे पक्षमें चले जानेपर भी नि श्र य (=शिष्यता)के खतम होनेकी बातको नहीं जानते थे। (भिक्षुओंने) यह बात भगवान्से कही। भगवान्ने कहा।—

१—"भिक्षुओ ! यह पाँच बातें हैं जिनसे उपाध्यायसे नि श्र य टूट जाता है—(१) उपाध्याय (भिक्षु आश्रमसे) चला गया हो (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो (३) मर गया हो (४) दूसरे पक्षमें चला गया हो (५) स्वीकृति दे गया हो। भिक्षुओ ! यह पाँच बातें हैं जिनसे उपाध्यायसे निश्रय टूट जाता है। 26

— भिक्षुओ ! यह छ बातें हैं जिनसे आचार्यसे निश्रय टूट जाता है—(१) आचार्य आश्रमसे चला गया हो (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो (३) मर गया हो (४)) दूसरे पक्षमें चला गया हो (५) स्वीकृति दे गया हो (६) उपाध्यायने समाधान कर लिया हो। भिक्षुओ ! यह छ ।27

§३—उपसम्पदा और प्रव्रज्या

(१) उपसम्पदा देने और न देने योग्य गुरु

१—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसम्पदा करानी चाहिये न निश्रय देना चाहिये न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) सम्पूर्ण शील (=सदाचार)—पुंजसे युक्त होता है (२) न सम्पूर्ण समाधि-पुंजसे युक्त होता है (३) न सम्पूर्ण प्रज्ञा-पुंजसे संयुक्त होता है (४) न सम्पूर्ण विमुक्ति (=राग द्वेषादिका परित्याग)-पुंजसे युक्त होता है (५) न सम्पूर्ण विमुक्तिमार्गके ज्ञान साक्षात्कारके पुंजसे संयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोंसे ।28

---

[1] देखो पृष्ठ १ ३-४।

"भिक्षुओ ! जो वह पहले दूसरे साधु-सम्प्रदायमें रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-सबधी बात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सम्प्रदायमे चला गया फिर आनेपर उसकी उपसपदा न करनी चाहिये, और भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा पहले दूसरे साधु-सम्प्रदायमें रहा (पुरुष) इस धर्ममे प्रव्रज्या या उपसपदा पानेकी प्रार्थना करता है, उसे चार महीनेका प रि वा स देना चाहिये। 59

"भिक्षुओ ! (परिवास) इस प्रकार देना चाहिये—पहिले दाढी, मूँछ मुळवाकर, कापाय वस्त्र पहना एक कधेपर उत्तरासघको करवा भिक्षुओंके चरणोकी वदना करवा, उकळूँ वैठवा, हाथ जोळवा 'ऐसा कहो' कहना चाहिये—बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ'। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी—'बुद्धकी शरण जाताहूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ।'

"भिक्षुओ ! उस पहले दूसरे सम्प्रदायमे रहे (पुरुष)को सघके पास जाकर एक कधेपर उपरना रख भिक्षुओके चरणोकी वदनाकर उकळूँ वैठ, हाथ जोळ ऐसे याचना करानी चाहिये—

या च ना—'भन्ते ! मै (इस नामवाला) पहले दूसरे साधु-सम्प्रदायमें रहा (अव) इस धर्ममें उपसपदा पाना चाहता हूँ, सो मै भन्ते ! सघके पास चार महीनोका प रि वा स चाहता हूँ। दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी—'भन्ते ! मै (इस नामवाला) पहले अन्य साधु-सम्प्रदायमें रहा (अव) इस धर्ममें उपसपदा पाना चाहता हूँ, सो मै भन्ते ! सघके पास चार महीनोका परिवास चाहता हूँ।'

"(तव) योग्य, समर्थ भिक्षु सघको ज्ञापित करे—

(क) ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने ! यह अमुक नामवाला, पहले अन्य साधु-सम्प्रदाय में रहा (अव) इस धर्ममें उपसपदा पाना चाहता है, और सघसे चार मासका परिवास चाहता है०।

ख अ नु श्रा व ण—(१) ० सघ इस नामवाले पहिले दूसरे साधु-सम्प्रदायमे रहे (इस पुरुष) को चार मासका परिवास देता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले पहले अन्य साधु-सम्प्रदायमें रहे, (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दिया जाना स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह वोले। (२) (दूसरी वार भी०)। (३) (तीसरी वार भी०)।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाले पहिले अन्य साधु-सम्प्रदायमें रहे (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दे दिया, सघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।'

(ख) ठीक न होने लायक

"भिक्षुओ ! इस प्रकारसे पहिले अन्य साधु-सम्प्रदायमें रहा (पुरुष) साध्य होता है, और इस प्रकार असाध्य।"

क कैसे भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधुसम्प्रदायमें रहा (पुरुष) अनाराधक होता है?—

(१) "भिक्षुओ ! जो पहिले-दूसरे-साधु-सम्प्रदायमें रहा (पुरुष) अतिकालमें गाँवमें जाता है, और वहुत दिन विताकर निकलता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधु-सम्प्रदायमें रहा (=अन्य-तीर्थिक-पूर्व) अनाराधक होता है।

(२) "और फिर भिक्षुओ ! वेश्याकी-आँख-पळेवाला होता है, विधवाकी-आँखपळेवाला होता है, वळी-उम्रकी-कुमारिकाकी आँख-पळेवाला होता है, नपुसककी-आँख-पळेवाला होता है, भिक्षुणीकी-आँख-पळेवाला होता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पूर्व, अनाराधक(=असाध्य)।

(३) "और फिर भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व, गुरु-भाइयोके छोटे-वळे जो काम है, उनके करनेमें दक्ष, आलसरहित नहीं होता। उनके विपयमें उपाय और सोच नही करता, न करनेमें समर्थ, न ठीकसे विधान करनेमें समर्थ होता है। ऐसे भी भिक्षुओ०।

अमि वि न ये) से जानेमें (५) उत्पन्न धारणाओंके विषयमें धर्मानुसार विवेचन करनेमें। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त । 38

१२—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये —समर्थ होता है (१) शिष्य या अन्तेवासीको आचार विषयक शील सिखलानेमें (५) उत्पन्न धारणाओंके विषयमें धर्मानुसार विवेचन करनेमें। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त । 39

१३— और भी भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये •—(१) न दोषको जानता है (२) न निर्दोषताको जानता है (३) न छोटे दोषको जानता है (४) न बड़े दोष (—आपत्ति)को जानता है (५) और (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोंके प्रा ति मो क्षों का विस्तारके साथ नही हृद्गत किये रहता सू क्त (—सूत्रोपदेश) और प्र मा ण से (प्रातिमोक्षको) न सुविभाजित किये रहता न सुप्रवर्तित न सुनिर्णीत किये रहता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त । 40

१४— भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये —(१) दोषको जानता है (५) प्रा ति मो क्षों को विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है । भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त ।

१५— और भी भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये •—(१) न दोषको जानता है (२) न निर्दोषताको जानता है (३) न छोटे दोषको जानता है (४) न बड़े दोषको जानता है (५) दस वर्षसे कमका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त । 41

१६— भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये •—(१) दोषको जानता है (५) दस वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त । 42

पंचकोंसे उपसपदा करणीय समाप्त ।

१—"भिक्षुओ! इन छ बातोंसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये •—(१) न सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है (२) न सपूर्ण समाधि-पुजसे (३) न सपूर्ण प्रज्ञा-पुजसे (४) न सपूर्ण विमुक्ति-पुजसे (५) न सपूर्ण विमुक्तिपाके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे (६) न दस वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे सयुक्त । 43

२—"भिक्षुओ! इन छ बातोंसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये —(१) सपूर्ण शील-पुजसे होता है (६) दस वर्षसे अधिकका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन छ बातो से युक्त । 44

३—•[1] । 45–58

छक्कोंसे उपसंपदा करणीय समाप्त ।

(७) अन्य संप्रदायी व्यक्तियोंके साथ

(क) तीर्थ व्यक्ति की उपसम्पदा

उस समय जो वह एक (पुरुष)[2] दूसरे साधु-सप्रदाय (—अन्यतीर्थ)में (शिष्य) रहा था उपाध्यायके धर्म-सबधी बात करनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सप्रदायमें चला गया उसने फिर आकर, भिक्षुओंके पास उपसपदा पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओंने भगवान्से इस बातको कहा। (भगवान्ने कहा)—

---

[1] तीनसे सोलहवें तकके नियम पिछले पचकके प्रकरणके तीसरेसे सोलहवेंकी तरह पाँच पाँच बातें और छठवीं बातें दस वर्षसे कम या अधिकका भिक्षु होना समझो ।

[2] देखो पृष्ठ १ ९

करनी चाहिये, उसे परिवास न देना चाहिये। भिक्षुओ! यह मैं (अपने) जातिवालोंको परम्परा तारके लिये उपहार देता हूँ।" 65

सप्तम भाणवार समाप्त ॥७॥

(४) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय मगधमें, कुष्ठ, फोळा, चम-रोग, सूजन और मृगी—यह पाँच बीमारियाँ उत्पन्न हुई थी। पाँचो बीमारियोंसे पीळित हो लोग जीवक कौमारभृत्यके पास आकर ऐसा कहते थे—"अच्छा हो आचार्य! हमारी चिकित्सा करो।'

आर्यो! मुझे बहुत काम है, बहुत करणीय है। मगधराज सेनिय बिम्बिसारकी सेवाम जाना पळता है। रनिवास और बुद्धप्रमुख[1] भिक्षु-संघकी भी (सेवा करनी होती है)। मैं (आप लोगोंकी) चिकित्सा करनेमें असमर्थ हूँ।"

तब उन मनुष्योंके मनमें यह हुआ—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण (=बौद्ध भिक्षु) आराम-पसन्द (=सुखशील) और सुखसमाचार (=आरामवाले काम करनेवाले) हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न हम भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें (जाकर) भिक्षु बन जायें। तब भिक्षु भी सेवा करेंगे और जीवक कौमारभृत्य भी चिकित्सा करेगा।

तब उन मनुष्योंने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या (=सन्यास) माँगी। भिक्षुओंने उन्हें प्रव्रज्या दी, उपसम्पदा दी। तब भिक्षु भी उनकी सेवा करते थे और जीवक कौमारभृत्य भी उनकी चिकित्सा करता था।

उस समय बहुतसे रोगी भिक्षुओंकी सेवा करते हुए बहुत याचना, माँगना किया करते थे—'रोगीके लिये पथ्य दीजिये, रोगीके सेवकके लिये भोजन दीजिये, रोगीके लिये ओषध दीजिये।' जीवक कौमारभृत्य भी बहुतसे रोगी भिक्षुओंकी चिकित्सामें लगे रहनेसे किसी राज-कार्यको छोळ बैठा। कोई पुरुष पाँच रोगोंसे पीळित हो जीवक कौमारभृत्यके पास आकर ऐसा बोला—"अच्छा हो आचार्य! मेरी चिकित्सा करें।

"आर्य! मेरे बहुतसे काम हैं, बहुत करणीय है। मगधराज सेनिय बिम्बिसारकी सेवामें जाना पळता है। रनिवास और बुद्धप्रमुख[1] भिक्षु-संघकी भी (सेवा करनी होती है)। मैं (आपकी) सेवा करनेमें असमर्थ हूँ।"

"आचार्य! मेरा सारा धन तुम्हारा होगा और मैं तुम्हारा दास हूँगा। अच्छा हो आचार्य मेरी चिकित्सा करें।"

"आर्य मेरे बहुतसे काम हैं०।"

तब उस मनुष्यके (मनमें) ऐसा हुआ—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण आराम-पसन्द (=सुख-शील) और सुख-समाचार (=आरामवाले काम करनेवाले) हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न मैं भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें (जाकर) भिक्षु बन जाऊँ। तब भिक्षु भी सेवा करेंगे और जीवक कौमारभृत्य भी चिकित्सा करेगा और नीरोग होनेपर मैं भिक्षु-आश्रम छोळ चला जाऊँगा।"

तब उस मनुष्यने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या (=सन्यास) माँगी। भिक्षुओंने उसे प्रव्रज्या दी, उपसम्पदा दी। तब भिक्षु भी उसकी सेवा करते थे और जीवक कौमारभृत्य भी उसकी चिकित्सा करते थे।

---

[1] जिसमें बुद्ध प्रमुख हैं।

(४) और फिर भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्व शील चित्त और प्रज्ञाके सबधमें पाठ करने तथा पूछनेमें तीव्र इच्छावाला नही होता। ऐसे भी भिक्षुओ! ।

(५) 'और फिर भिक्षुओ! अन्य-तीर्थिक-पूर्व जिस सम्प्रदायसे (पहिले) सक्रमण होता है उसके शास्ता (=उपदेष्टा) उसके वाद उसकी स्वीकृति उसकी रुचि उसके दानके सबधमें अप्रशसा करनेपर कुपित होता है असतुष्ट होता है नाराज होता है और बुद्ध या धर्म या सघकी अप्रशसा करने वक्त सतुष्ट होता है प्रसन्न होता है हृष्ट होता है। अथवा जिस संप्रदायसे (पहिले) सक्रमण था उसके शास्ता उसके वाद उसकी स्वीकृति उसकी रुचि उसके दानके सबधमें अप्रशसा करनेपर सतुष्ट होता है प्रसन्न होता है हृष्ट होता है।

भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्वके असाध्य होनेमें यह सबसे सबद्ध (बात) है। इस प्रकार भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्व अनाराधक होता है। 'भिक्षुओ! इस प्रकारके अनाराधक (=असाध्य) अन्यतीर्थिकपूर्वके आनेपर उपसपदा न करनी चाहिये। 60

(ग) ठीक होने लायक

'कैसे भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्व आराधक (=साध्य) होता है?—

(१) 'भिक्षुओ! जो अन्यतीर्थिकपूर्व अतिकालमें ग्राममें प्रवेश नही करता न बहुत दिन बिताकर निकलता है (वह पहिले-दूसरे-साथ-सम्प्रदायमें रहा) आराधक होता है।

(२) और फिर भिक्षुओ! वेश्याकी-ओर-न-देखनेवाला विधवाकी-ओर-न-देखनेवाला बडी-उमरकी-कुमारिकाकी-ओर-न-देखनेवाला नपुसककी-ओर-न-देखनेवाला भिक्षुणीकी-ओर-न-देखनेवाला अन्यतीर्थिकपूर्व आराधक होता है।

(३) 'और फिर भिक्षुओ! (जो) अन्यतीर्थिकपूर्व गुरु भाइयोके छोटे-बडे जो काम है उनके करनेमें दक्ष आलस्य-रहित होता है उनके विषयमें उपाय और सोच करता है करनेमें तथा ठीकसे विधान करनेमें समर्थ होता है (वह) आराधक होता है।

(४) 'और फिर भिक्षुओ! (जो) अन्यतीर्थिकपूर्व शील चित्त और प्रज्ञाके सबधमें पाठ करने तथा पूछनेमें तीव्र इच्छावाला होता है (वह) आराधक होता है।

(५) 'और फिर भिक्षुओ! (जो) अन्यतीर्थिकपूर्व जिस सम्प्रदायसे (पहिले) सक्रमण था उसके शास्ता उसके वाद उसकी स्वीकृति उसकी रुचि उसके दानके सबधमें अप्रशसा करनेपर सतुष्ट होता है प्रसन्न होता है हृष्ट होता है और बुद्ध धर्म या सघकी अप्रशसा करते वक्त कुपित होता है असतुष्ट होता है नाराज होता है। अथवा जिस सम्प्रदायसे (पहिले) सक्रमण था उसके शास्ता की प्रशसा करने पर कुपित होता है और बुद्ध धर्म या सघकी प्रशसा करनेपर सतुष्ट होता है भिक्षुओ! (उस) अन्यतीर्थिकपूर्वके साध्य होनेमें यह सबसे सबद्ध (बात) है। इस प्रकार भिक्षुओ! (वह) अन्यतीर्थिकपूर्व आराधक होता है। 'भिक्षुओ! इस प्रकारके आराधक अन्यतीर्थिकपूर्वके आनेपर उसे उपसपदा देनी चाहिये। 61

(३) पायाप्रस्थियोंके लिये विशेष ख्याल

"यदि भिक्षुओ! अन्यतीर्थिकपूर्व नगा आवे तो उपाध्यायका चीवर उसे ओढाना चाहिये। यदि बिना कटे केशोवाला आए, तो मुडन-कर्मके लिये सघसे पूछना चाहिये। भिक्षुओ! जो वह अग्नि होत्री जटाधारी (=अग्निक—वानप्रस्थी) हो तो आतेही उनकी उपसपदा करनी चाहिये उन्हे परिवास न देना चाहिये। सो क्यो? भिक्षुओ! वह कर्मवादी (=कर्मके फलको माननेवाले) और क्रिया-वादी होते है। 62

"भिक्षुओ! यदि शाक्य-जातिका अन्यतीर्थिकपूर्व आवे तो आते ही उसकी उपसपदा

भी भिक्षुओको पीळा दे सकते है। अच्छा हो भन्ते ! आर्य (=भिक्षु) लोग राजसैनिकको प्रव्रज्या न दें।"

तब भगवान्ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह सम्प्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्की धार्मिक कथासे सम्प्रहर्षित हो, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधर्मे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! राजसैनिकोको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 65

३—उस समय अ गु लि मा ल डाकू (आकर) भिक्षु बना था। लोग (उसे) देखकर उद्विग्न होते, त्रास खाते और भागते, दूसरी ओर चले जाते, दूसरी ओर मुँह कर लेते और दरवाजा बन्द कर लेते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण ध्व ज ब न्ध (=ध्वजा उळाकर डाका डालनेवाले) डाकूको प्रव्रज्या देगे !"

भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! ध्वजबन्ध डाकको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 66

४—उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र ने आज्ञा कर दी थी—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास जाकर प्रव्रजित होगे उनको (दड आदि) कुछ नही किया जा सकता। (भगवान्का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दु खके अच्छी प्रकार अन्त करनेके लिये (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करे।'

उस समय कोई पुरुष चोरी करके जेल (=कारा)में पळा था। वह जेलको तोळ भाग, कर भिक्षुओके पास प्रव्रजित हो गया। लोग (उसे) देखकर ऐसा कहते थे—'यह वह जेल तोळनेवाला चोर है। अहो ! इसे ले चलें।' कोई कोई ऐसा कहते थे—'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास जाकर प्रव्रजित होगें उनको (दड आदि) कुछ नही किया जा सकता। (भगवान्का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दु खके अच्छीप्रकार अन्त करनेके लिए (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करें।' (इससे) लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अभय चाहनेवाले है। इनका कुछ नही किया जा सकता। कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जेल तोळनेवाले चोरको प्रव्रज्या देंगे !'

भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! जेल तोळनेवाले चोरको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 67

५—उस समय कोई पुरुष चोरी करके भागकर भिक्षु बन गया था। वह राजाके अन्त पुर (=कचहरी)में लि खि त था—'(यह) जहाँ देखा जाय, वही मारा जाय।' लोग उसे देखकर ऐसा कहते थे—'यह वही लि खि त क चोर है। अहो इसे मार दें।' कोई कोई ऐसा कहते थे 'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास०।' (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! लि खि त क चोरको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये०।"68

६—उस समय कोळा मारनेका दड पाया हुआ एक पुरुष भिक्षुओके पास प्रव्रजित हुआ था। लोग हैरान होते०। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! कोळा मारनेका दड पाये हुएको नही प्रव्रजित करना चाहिये०।"69

७—उस समय एक पुरुष (राज-)दडसे लक्षणाहत (=आगमें लाल किये लोहे आदिसे दागा)

नीरोग होनेपर वह भिक्षुपन छोळ चला गया। जी व क कौमारभृत्यने भिक्षु-आश्रम छोळकर चले गये उस आदमीको देखा। देखकर उस पुरुषसे पूछा—"क्यों आर्य ! तुम तो भिक्षु बने थे ?

'हाँ आचार्य !

'तो आर्य ! तुमने क्यों ऐसा किया ?

तब उस पुरुषने जीवक कौमारभृत्यसे सब बात बतला दी। (उसे सुनकर) जीवक कौमारभृत्य हैरान होता धिक्कारता और दुखी होता था—कैसे भदन्त (लोग) पाँच रोगोंसे पीळित (पुरुष को) प्रव्रज्या देते हैं ! तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्‌के पास गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्‌से यह कहा—'अच्छा हो भन्ते ! आर्य (=भिक्षु) लोग पाँच रोगोंसे पीळितको प्रव्रज्या न दें।

तब भगवान्‌ने जी व क कौमारभृत्यको धार्मिक कथा कह समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित हो आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ ! (कुष्ठ आदि) पाँच रोगोंसे पीळितको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दु क्क ट का दोष हो। 64

२—उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र का सीमान्तमें विद्रोह हो गया था। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने (अपने) सेना-नायक महामात्योंको आज्ञा दी— 'जाओ रे ! सीमान्तको ठीक करो।

'अच्छा देव ! —(कह) सेना-नायक महामात्योंने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया।

तब अच्छे अच्छे योधाओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'हम युद्धको पसन्द करके जाकर पाप करेंगे और बहुत अ-पुण्य पैदा करेंगे। क्या उपाय है जिससे कि हम पापसे बचें अ-पुण्यको न पैदा करें ? तब उन योधाओंके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शा क्य पु त्री य श्र म ण धर्मचारी शमचारी ब्रह्मचारी सत्यवादी शीलवान धर्मात्मा हैं। यदि हम शा क्य पु त्री य श्र म णों के पास (जाकर) प्रव्रजित हो जायें तो हम पापसे बच जायेंगे अ-पुण्यको पैदा न करेंगे।

तब उन योधाओंने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी और भिक्षुओंने उन्हें प्रव्रज्या और उपसंपदा दी। सेना-नायक महामात्योंने उन राजसैनिकोंसे पूछा—

"क्यों रे ! इस इस नामवाले योधा नहीं दिखाई देते ?

'स्वामी ! इस इस नामवाले योधा भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हो गये।

तब वह सेना-नायक महामात्य हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे शा क्य पु त्री य श्र म ण राजसैनिकोंको प्रव्रज्या देते हैं ! तब सेना-नायक महामात्योंने यह बात मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे कही। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने व्या व हा रि क म हा मा त्यों (=न्यायाधीशों)से पूछा—

"क्यों जी ! जो राज-सैनिकको प्रव्रज्या दे उसको क्या होना चाहिये ?"

"देव ! उस (=उपाध्याय) का सिर काटना चाहिये अ नु शा स क (=उपदेश करने वाले)की जीभ निकालनी चाहिये और (=सन्यास देनेवाले) ग ण की पसली तोळ देनी चाहिये।

तब मगधराज सेनिय बि म्बि सा र, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! (बुद्ध धर्ममें भक्ति) श्रद्धा-भक्ति न रखनेवाले राजा भी हैं। वह थोळी बातके लिये

माँगी। भिक्षुओने उन्हे प्रव्रज्या और उपसपदा दी। तव रातके भिनसारको उठकर वह (यह कह) रोते थे—'खिचळी दो! भात दो! खाना दो!'

भिक्षु ऐसा कहते थे—'ठहरो आवुसो! जव तक कि विहान हो जाता है, यदि य वा गू (=पतली खिचळी) होगा तो पीना, यदि भात होगा तो खाना, यदि खाना होगा तो भोजन करना। यदि खिचळी, भात या खाना न होगा तो भिक्षा करके खाना।'

भिक्षुओके ऐसा कहनेपर भी वह रोते ही रहते थे—खिचळी दो! ०।' और विस्तरेपर लोटते-पोटते रहते थे। भगवान्ने रातके अन्तिम पहरमे उठकर वच्चोके शव्दको सुनकर आयुष्मान् आनन्दको सवोधित किया—

"आनन्द! कैसा यह वच्चोका शव्द है?"

आयुष्मान आनन्दने भगवान्से सव वात वतलाई। (भगवान्ने उन भिक्षुओसे पूछा)—

"भिक्षुओ! सचमुच जानवूझकर भिक्षु वीस वर्पसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है?"

"सचमुच भगवान्!"

वुद्ध भगवान्ने—"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुप (=निकम्मे आदमी) जानते हुए वीस वर्पसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है? भिक्षुओ! वीस वर्पसे कमका पुरुप सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मच्छर-मक्खी, धूप-हवा, सरीसृप (=साँप, विच्छू आदि रेंगनेवाले जीव)की पीळाके सहनेमें असमर्थ होता है। कठोर, दुरागतके वचनो (के सहनेमें), और दुखमय, तीव्र, खरी, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय प्राण हरनेवाली उत्पन्न हुई शारीरिक पीळाओको न स्वीकार करनेवाला होता है, भिक्षुओ! वीस वर्ष वाला पुरुष सर्दी-गर्मी ० के सहनेमें समर्थ होता है। ० स्वीकार करनेवाला होता है। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोके प्रसन्न करनेके लिये है०।[1] निन्दा करके भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ! जानते हुए वीस वर्पसे कमके व्यक्तिको नही उ प स प दा देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे धर्मानुसार (प्रतिकार) करना चाहिये।" 74

(७) पद्रह वर्पसे कमका श्रामणेर नही

१—उस समय एक खान्दान महामारीके रोगसे मर गया। उसमें पिता-पुत्र (दोही) वच रहे। वह भिक्षुओके पास जा प्रव्रजित हो एक साथही भिक्षाके लिये जाते थे। जव पिताको कोई भिक्षा देता था तो वह वच्चा दौळकर यह कहता था—'तात! मुझे भी दो, तात! मुझे भी दो।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण अ-व्रह्मचारी होते है। यह वच्चा भिक्षुणीसे उत्पन्न हुआ है।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने०। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! पन्द्रह वर्पसे कमके वच्चेको नही श्रामणेर वनाना (=प्रव्रज्या देना) चाहिये। जो श्रामणेर वनाये उसे दु क्क ट का दोष हो।" 75

२—उस समय आयुष्मान् आ न न्द का एक श्रद्धालु=प्रसन्न, सेवक-कुल महामारीसे मर गया। सिर्फ दो वच्चे बच रहे। वह (अपने घरकी) परिपाटीके अनुसार भिक्षुओको देखकर दौळकर पास आते थे। भिक्षु उन्हे फटकार देते थे। उन भिक्षुओके फटकारनेसे वह रोने लगते थे। तव आयुष्मान् आनन्दके मनमें ऐसा हुआ—'भगवान्की आज्ञा है कि पन्द्रह वर्पसे कमके वच्चेको श्रामणेर नही वनाना चाहिये, और यह वच्चे पन्द्रह वर्षसे कमके ही है। किस उपायसे यह वच्चे विनष्ट होनेसे वचाये जा सकते है।' तव आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने कहा)—

---

[1] देखो पृष्ठ १०३ [(३) १ क]।

हो भिक्षुओंमें आकर प्रव्रजित हुआ था। । (भगवान्‌ने कहा)—

'भिक्षुओ! (राज)दंडस लक्षणाहतको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये । 70

८—उस समय एक ऋणी पुरुष भागकर भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ था। धनिया (=ऋण देनेवालो)ने देखकर यह कहा—'यह हमारा ऋणी है। अहो! इसको ले चलें। दूसरोंने ऐसा कहा—'मत आर्यो! ऐसा कहा। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे रखी है । (भगवान्‌ने यह कहा)—

भिक्षुओ! ऋणीको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये । 71

९—उस समय एक दास (गुलाम) भागकर भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ था। मालिकोंने देखकर ऐसा कहा—'यह वह हमारा दास है। अहो! इस ले चलें । (भगवान्‌ने यह कहा)—

'भिक्षुओ! दासको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये । 72

(५) मुंडनके लिये संघकी सम्मति

उस समय एक स्वर्णकार (कम्मार)का पुत्र माता-पिताके साथ झगड़ाकर आराममें जा भिक्षुओंके साथ प्रव्रजित हो गया। तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताने उसे खोजते हुए आराममें जा भिक्षुओंसे पूछा—'क्या भन्ते! इस प्रकारके लड़केको देखा है? न जाननेके कारण भिक्षुओंने कहा—'हम नहीं जानते। न देखनेके कारण कहा—'हमने नहीं देखा। तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिता खोज करके उसे भिक्षुओंमें प्रव्रजित हुआ देख हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज दुःशील झूठ बोलनेवाले हैं जिन्होंने जानते हुए कहा हम नहीं जानते देखते हुए कहा हमने नहीं देखा। यह लड़का तो यहाँ भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ है। भिक्षुओंने उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताके हैरान होने धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन्होंने यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

'भिक्षुओ! मुंडन-कर्म करनेके लिये संघकी अनुमति लेनेकी आज्ञा देता हूँ। 73

(६) *दास वर्षसे कमकी उपसम्पदा नहीं*

उस समय राजगृहमें सप्तदश वर्गीय (=जिस समुदायमें सत्रह आदमी हों) लड़के एक दूसरेके मित्र थे। उपालि लड़का उनका मुखिया था। तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे हमारे मरनेके बाद उपालि सुखसे रह सकेगा दुःख नहीं पायेगा? तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि लेखा सीखे तो वह हमारे मरनेके बाद सुखसे रह सकेगा दुःख नहीं पायेगा। तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि लेखा सीखेगा तो उसकी अँगुलियाँ दुखेंगी। हाँ यदि उपालि गणना (=हिसाब) सीखे तो हमारे मरनेके बाद । तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि गणना सीखेगा तो उसकी छाती दुखेगी। हाँ यदि उपालि रूप (=सराफी) सीखे तो हमारे मरनेके बाद । तब उपालिके माता-पिताके (मनमें) ऐसा हुआ—'यदि उपालि रूप को सीखेगा तो उसकी आँखें दुखेंगी। हाँ यह शाक्यपुत्रीय श्रमण सुखशील और सुख-समाचार हैं। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमें सोते हैं। क्यों न उपालि भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोंमें जाकर भिक्षु बन जाय। इस प्रकार उपालि हमारे मरनेके बाद ।

उपालि लड़केने (अपने) माता-पिताके इस कथा-संलापको सुना। तब उपालि लड़का जहाँ उसके (साथी) लड़के थे वहाँ गया। जाकर उन लड़कोंसे बोला—'आओ आर्यो! हम सब शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास जाकर प्रव्रजित हों। तब उन लड़कोंने अपने अपने माँ-बापके पास जाकर यह कहा—'हमें घरसे-बेघर हो प्रव्रज्या लेनेकी आज्ञा दें। तब उन लड़कोंके माता-पिताने एक ही रुचि रखनेवाले लड़कोंके अभिप्रायको सुंदर जान अनुमति दे दी। उन्होंने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या

माँगी। भिक्षुओंने उन्हे प्रव्रज्या और उपसपदा दी। तब रातको भिनसारको उठकर वह (यह कह) रोते थे—'खिचळी दो! भात दो! खाना दो!'

भिक्षु ऐसा कहते थे—'ठहरो आवुसो! जब तक कि विहान हो जाता है, यदि यवागू (=पतली खिचळी) होगा तो पीना, यदि भात होगा तो खाना, यदि खाना होगा तो भोजन करना। यदि खिचळी, भात या खाना न होगा तो भिक्षा करके खाना।'

भिक्षुओंके ऐसा कहनेपर भी वह रोते ही रहते थे—खिचळी दो! ०।' और बिस्तरेपर लोटते-पोटते रहते थे। भगवान्‌ने रातके अन्तिम पहरमें उठकर बच्चोंके शब्दको सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! कैसा यह बच्चोंका शब्द है?"

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से सब बात बतलाई। (भगवान्‌ने उन भिक्षुओंसे पूछा)—

"भिक्षुओ! सचमुच जानबूझकर भिक्षु बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने—"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुष (=निकम्मे आदमी) जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है? भिक्षुओ! बीस वर्षसे कमका पुरुष सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मच्छर-मक्खी, धूप-हवा, सरीसृप (=साँप, बिच्छू आदि रेंगनेवाले जीव)की पीळाके सहनेमें असमर्थ होता है। कठोर, दुरागतके वचनों (के सहनेमे), और दु:खमय, तीव्र, खरी, कटु, प्रतिकूल, अमनाप, प्राण हरनेवाली उत्पन्न हुई शारीरिक पीळाओंको न स्वीकार करनेवाला होता है, भिक्षुओ! बीस वर्ष वाला पुरुष सर्दी-गर्मी ० के सहनेमे समर्थ होता है। ० स्वीकार करनेवाला होता है। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोंके प्रसन्न करनेके लिये है०।[1] निन्दा करके भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको नहीं उपसपदा देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे धर्मानुसार (प्रतिकार) करना चाहिये।" 74

(७) पद्रह वर्षसे कमका श्रामणेर नहीं

१—उस समय एक खान्दान महामारीके रोगसे मर गया ... वह भिक्षुओंके पास जा प्रव्रजित हो एक साथही भिक्षाके लिये जाते ... था तो वह बच्चा दौळकर यह कहता था—'तात! मुझे भी दो, तात ... धिक्कारते और दुखी होते थे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण अ-ब्रह्मचारी है ... हुआ है।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने०। (भगवान्‌ने ...

"भिक्षुओ! पन्द्रह वर्षसे कमके बच्चेको नहीं श्रामणेर ... जो श्रामणेर बनाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 75

२—उस समय आयुष्मान् आनन्दका एक ... गया। सिर्फ दो बच्चे बच रहे। वह (अपने घरकी) ... पास आते थे। भिक्षु उन्हे फटकार देते थे। उन ... ष्मान् आनन्दके मनमें ऐसा हुआ—'भगवान्‌की आज्ञा है ... बनाना चाहिये, और यह बच्चे पन्द्रह वर्षसे कमके हैं ... जा सकते हैं।' तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से ...

[1] देखो पृष्ठ १०३ [(३) २क]।

"आनन्द ! क्या यह बच्चे कौवा उड़ाने लायक हैं ?"

'हाँ हैं भगवान् !'

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! कौवा उड़ानेमें समर्थ पन्द्रह वर्षसे कम उम्रके बच्चेको श्रामणेर बनानेकी अनुमति देता हूँ। 76

(८) श्रामणेर शिष्योंकी संख्या

१—उस समय आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रके पास क ण्ट क और म ह क दो श्रामणेर थे। वह एक दूसरेको दुर्वचन कहते थे। भिक्षु (यह देख) हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—कैसे श्रामणेर इस प्रकारका अत्याचार करेंगे ! उन्होंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! एक (भिक्षु)के दो श्रामणेर नहीं रखना चाहिये। जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष हो। 77

(९) निश्रयकी अवधि

उस समय भगवान्ने रा ज गृ ह में ही वर्षा हेमन्त और ग्रीष्मको बिताया। लोग हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—'शा क्य पु त्री य श्रमणोंके लिये दिशाएँ अन्धकारमय हैं शून्य हैं। इन्हें दिशाएँ जान नहीं पड़ती। भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"जा आनन्द ! कुंजिका (=अवापुरण) ले एक ओरसे भिक्षुओंको कह—'आवुसो ! भगवान् द क्षि णा- गि रि में चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आवे।

"अच्छा भन्ते !" (कह) भगवान्को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्दने कुंजिका ले एक ओरसे भिक्षुओंको कहा—'आवुसो ! भगवान् दक्षिणागिरिमें चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आवे। भिक्षुओंने यह कहा—'आवुस आनन्द ! भगवान्ने आज्ञा दी है दस वर्ष तक नि श्र य लेकर बसनेकी दस वर्ष(के भिक्षु)को निश्रय देनेकी। उसके लिये हमें जाना होगा और निश्रय ग्रहण करना होगा। थोड़े दिनका निवास होगा और फिर लौटकर आना होगा और फिर दो-बारा निश्रय ग्रहण करना होगा। इसलिये यदि हमारे आचार्य और उपाध्याय चलेंगे तो हम भी चलेंगे। न चलेंगे तो हम भी नहीं चलेंगे। (अन्यथा) आवुस आनन्द ! हमारे चित्तका ओछापन समझा जायगा। तब भगवान् छोटेसे भिक्षु-संघके साथ द क्षि णा गि रि में विचरनेके लिये चले गये। तब भगवान् दक्षिणा-गिरिमें इच्छानुसार विहारकर राजगृहमें लौट आये। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"क्या था आनन्द ! जो तथागत छोटेसे भिक्षु-संघके साथ दक्षिणागिरिमें विचरनेके लिये गये ?

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को यह सब बात बतलाई। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चतुर और समर्थ भिक्षुको पाँच वर्ष तक निश्रय लेकर बसनेकी और अ-चतुरको जीवन भर तक (निश्रय लेकर बसने की)। 78

(१०) किसके लिये निश्चय आवश्यक है और किसके लिये नही है

क—भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास नही करना चाहिये—(१) न वह सपूर्णशील-पुंजसे युक्त होता है, ०[1] (५) न सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार-पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास नही करना चाहिये। 79

ख—भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास करना चाहिये—(१) वह सपूर्णशील-पुजसे युक्त होता है, ०[1] (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास करना चाहिये। 80

ग—और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास नही करना चाहिये—(१) अ-श्रद्धालु होता है, (२) लज्जा रहित होता है, (३) सकोच-रहित होता है, (४) आलसी होता है, (५) भूल जाने वाला होता है। ०। 81

घ—भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना वास करना चाहिये—
(१) श्रद्धालु होता है ०। (५) याद रखने वाला होता है। ०। 82

ङ—और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना नही रहना चाहिये—(१) शीलके विषयमे शील-हीन होता है, (२) आचारके विषयमे आचार-हीन होता है, (३) धारणाके विषयमे वुरी धारणावाला होता है, (४) विद्याहीन होता है, (५) प्रज्ञाहीन होता है। ०। 83

च—भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नही होता, (२) आचारहीन नही होता, (३) धारणाके विषयमें वुरी धारणावाला नही होता, (४) विद्यावान् होता है, (५) प्रज्ञावान् होता है। ०। 84

छ—और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना नही रहना चाहिये—(१) दोषको नही जानता, (२) न निर्दोषताको जानता है, (३) न छोटे दोषको जानता है, (४) न वळे दोषको जानता है, और (४) भिक्षु-भिक्षुणी दोनोके प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृद्गत किये रहता। सूक्त (=बुद्धोपदेश)से और प्रमाणसे प्रातिमोक्षको न सुविभाजित किये रहता, न सुप्रवर्तित, न सु-निर्णीत किये रहता है। ०। 85

ज—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है, ० (५) प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है। ०। 86

झ—और भी भिक्षुओ। पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना नही रहना चाहिये—(१) न दोषको जानता है, (२) न निर्दोषताको जानता है, (३) न छोटे दोषको जानता है, (४) न वळे दोषको जानता है, (५) और पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०। 87

ञ—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है, (२) निर्दोषताको जानता है, (३) छोटे दोषको जानता है, (४) वळे दोषको जानता है, (५) पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 88

ट—भिक्षुओ ! इन छ वातोंसे युक्त भिक्षुको निश्चयके विना नही रहना चाहिये—(१) न सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है, ०[2] (६) न पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 89

ठ—० निश्चयके विना रहना चाहिये—(१) सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है, ० (६) पाँच

---

[1] देखो पृष्ठ ११२-१३

[2] ड से द तक पिछले पचकके प्रकरणके ग से ञ तक की तरह पाँच पाँच वातें और छठी वात पाँच वर्षसे कम या अधिक का भिक्षु होना समझो।

'आनन्द ! क्या यह बच्चे कौवा उड़ाने लायक है ?"

'हाँ है भगवान् !'

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ ! कौवा उड़ानेमें समर्थ पन्द्रह वर्षसे कम उम्रके बच्चेको श्रामणेर बनानेकी अनुमति देता हूँ। 76

(८) श्रामणेर शिष्योंकी संख्या

१—उस समय आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रके पास कं ट क और म ह क दो श्रामणेर थे। वह एक दूसरेको दुर्वचन कहते थे। भिक्षु (यह देख) हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारका अत्याचार करेंगे !' उन्होंने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

'भिक्षुओ ! एक (भिक्षु)के दो श्रामणेर नहीं रखना चाहिये। जो रखे उसे दु क्क ट का दोष हो। 77

(९) निश्रयकी अवधि

उस समय भगवान्ने रा ज गृ ह में ही वर्षा हेमन्त और ग्रीष्मको बिताया। लोग हैरान होते धिक्कारते और दुखी होते थे—'शा क्य पु त्री य श्रमणोंके लिये दिशाएँ अन्धकारमय हैं शून्य हैं। इन्हें दिशाएँ जान नहीं पड़ती। भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होने धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"जा आनन्द ! ताली (=अपापुरण) ले एक ओरसे भिक्षुओंको कह—'आवुसो ! भगवान् द क्षि णा गि रि में चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये।

'अच्छा भन्ते !' (कह) भगवान्को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्दने ताली ले एक ओरसे भिक्षुओंको कहा—'आवुसो ! भगवान् दक्षिणागिरिमें चारिका करनेके लिये जाना चाहते हैं। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये। भिक्षुओंने यह कहा—'आवुस आनन्द ! भगवान्ने आज्ञा दी है दस वर्ष तक नि श्र य लेकर बसनेकी दस वर्ष(के भिक्षु)को निश्रय देनेकी। उसके लिये हमें जाना होगा और निश्रय ग्रहण करना होगा। थोड़े दिनका निवास होगा और फिर लौटकर आना होगा और फिर दो-बारा निश्रय ग्रहण करना होगा। इसलिये यदि हमारे आचार्य और उपाध्याय चलेंगे तो हम भी चलेंगे। न चलेंगे तो हम भी नहीं चलेंगे। (अन्यथा) आवुस आनन्द ! हमारे चित्तका ओछापन समझा जायगा। तब भगवान् थोड़ेसे भिक्षु-संघके साथ द क्षि णा गि रि में विचरनेके लिये चले गये। तब भगवान् दक्षिणा-गिरिमें इच्छानुसार विहारकर राजगृहमें लौट आये। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"क्या था आनन्द ! जो तथागत थोड़ेसे भिक्षु-संघके साथ दक्षिणागिरिमें विचरनेके लिये गये ?

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को यह सब बात बतलाई। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चतुर और समर्थ भिक्षुको पाँच वर्ष तक निश्रय लेकर बसने की और अ-चतुरको जीवन भर तक (निश्रय लेकर बसने की)। 78

की अनुज्ञा देता हूँ। इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये। पहिले शिर-दाढी मुँळवा काषाय-वस्त्र पहिना, एक कधेपर उपरना करवा, भिक्षुओकी पाद-वन्दना करवा, उकळँ वेंठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहो वोलना चाहिये—"वुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ। दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी वुद्धकी शरण०।" 97

तव आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुल-कुमारको प्रव्रजित किया। तव शु द्धो द न शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, और भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान्से मै एक वर चाहता हूँ।"

"गौतम! तथागत वरसे दूरहो चुके है।"

"भन्ते! जो उचित है, दोप-रहित है।"

"वोलो गौतम!"

"भगवान्के प्रव्रजित होनेपर मुझे वहुत दुख हुआ था, वैसेही नन्द (के प्रव्रजित) होनेपर भी। रा हु ल के (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक। भन्ते! पुत्र-प्रेम मेरी छाल छेद रहा है। छाल छेदकर०। चमडेको छेदकर मासको छेद रहा है। मासको छेदकर नसको छेद रहा है। नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है। हड्डीको छेदकर घायल कर दिया है। अच्छा हो, भन्ते! आर्य (=भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुमतिके विना (किसीको) प्रव्रजित न करें।"

(ग) मा ता - पि ता की आ ज्ञा से प्र व्र ज्या—भगवान्ने शुद्धोदन शाक्यसे धार्मिक कथा कही। तव शुद्धोदन शाक्य आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। भगवान्ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सवोधित किया—"भिक्षुओ! माता पिताकी अनुमतिके विना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये। जो प्रव्रजित करे, उसे दुक्कटका दोष है।" 98

(१२) श्रामणेरोंके विषयमें नियम

(क) श्रा म णे रो की स ख्या—तव भगवान् क पि ल व स्तु मे इच्छानुसार विहारकर श्रावस्तीमें विचरणके लिये चल दिये। क्रमश विचरण करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे और भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रके सेवक एक खान्दानने आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास (अपने) वच्चेको (यह कहकर) भेजा—'इस वच्चेको स्थविर प्रव्रज्या दें।' तव आयुष्मान् सारिपुत्रके (मनमें) ऐसा हुआ—भगवान्ने आज्ञा दी है कि एक (भिक्षु)को दो श्रामणेर न रखने चाहिये और मेरे पास यह राहुल श्रामणेर है ही। मुझे क्या करना चाहिये?'

उन्होने भगवान्से वात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर और समर्थ एक भिक्षुको भी दो श्रामणेर रखनेकी, या जितनोको वह उपदेश और अनुशासन कर सके उतनोके रखनेकी।" 99

(ख) श्रा म णे रो के शि क्षा प द—तव श्रामणेरोके (मनमें) यह हुआ—'हम लोगोंके कितने शि क्षा - प द (=आचार-नियम) हैं, हमें क्या क्या सीखना चाहिये।' (भिक्षुओने) भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोको दस शि क्षा - प दो की, जिन्हें श्रामणेर सीखें—(१) प्राण-हिंसासे वाज आना, (२) चोरी करनेमे वाज आना, (३) अ-ब्रह्मचर्यसे वाज आना, (४) झूठ वोलनेसे वाज आना, (५) मद्य, कच्ची शराव (आदि) वुद्धि-भ्रष्ट करने वाली (चीजो)से वाज आना, (६) दो पहर वाद भोजन करनेसे वाज़ आना, (७) नाच, गीत, वाजा, और चित्तको चचल

वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। । १०

ड—॰ नियमके बिना नहीं रहना चाहिये—(१) अ-श्रद्धालु होता है (२) लज्जा-रहित होता है (३) संकोच रहित होता है (४) आलसी होता है (५) भूल जानेवाला होता है (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। । ११

ढ— नियमके बिना रहना चाहिये—(१) श्रद्धालु होता है (२) लज्जालु होता है (३) संकोच-शील होता है (४) उद्योगी होता है (५) याद रखने वाला होता है (६) पाँच वर्षसे अधिक का भिक्षु होता है। । १२

ण— नियमके बिना नहीं रहना चाहिये—(१) शीलहीन होता है (२) आचारहीन होता है (३) धारणाके विषयमें बुरी धारणावाला होता है (४) विद्याहीन होता है (५) प्रज्ञाहीन होता है (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। । १३

त— नियमके बिना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नहीं (६) पाँच वर्षसे अधिक का भिक्षु होता है। ० । १४

थ—॰ नियमके बिना नहीं रहना चाहिये—(१) न दोषको जानता है (२) न निर्दोषता को जानता है (३) न छोटे दोषको जानता है (४) न बड़े दोषको जानता है (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोंके *प्रातिमोक्षोंको विस्तारके साथ नहीं हृदयंगम किये रहता सूत्र* (=बड़ागाथा) और प्रमाणसे प्रातिमोक्षको न सु-विभाजित किये रहता न सु-प्रवर्तित न सु-निर्णीत किये रहता (६) पाँचवर्षसे कमका भिक्षु होता है। । १५

द— नियमके बिना रहना चाहिये—(१) दोषको जानता है (६) पाँच वर्षसे अधिक का भिक्षु होता है। । १६

अष्टम भाणवार समाप्त ॥८॥

६—कपिलवस्तु

(११) प्रव्रज्याके लिये माता-पिताकी आज्ञा

(क) राहुलकी प्रव्रज्या—तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहार करके कपिलवस्तु की ओर विचरण करनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरण करते जहाँ कपिलवस्तु है वहाँ पहुँचे। और भगवान् वहाँ शाक्य(-देश)में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले जहाँ शुद्धोदन शाक्यका घर था वहाँ गये। जाकर बिछाये आसनपर बैठे। तब राहुल माता-देवीने राहुल कुमारको यों कहा—"राहुल! यह तेरे पिता हैं जा दायज (=बरासत) माँग।

तब राहुल-कुमार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के सामने खड़ा हो कहने लगा—श्रमण! तेरी छाया सुखमय है। तब भगवान् आसनसे उठकर चल दिये। राहुलकुमार भी भगवान्के पीछे पीछे लगा—

"श्रमण! मुझे दायज दे श्रमण! मुझे दायज दे।

तब भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे कहा

"तो सारिपुत्र! राहुल-कुमारको प्रव्रजित करो।

'भन्ते! किस प्रकार राहुल-कुमारको प्रव्रजित करूँ?

इसी मौकेपर इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर, भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(ख) श्रामणेर बनानेकी विधि—'भिक्षुओ! तीन शरण-गमनसे श्रामणेर प्रव्रज्या-

की अनुज्ञा देता हूँ। इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये। पहिले शिर-दाढी मुँळवा काषाय-वस्त्र पहिना, एक कंधेपर उपरना करवा, भिक्षुओंकी पाद-वन्दना करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहो बोलना चाहिये—"बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, संघकी शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी बुद्धकी शरण०।" 97

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुल-कुमारको प्रव्रजित किया। तब शु द्धो द न शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, और भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान्से मैं एक वर चाहता हूँ।"

"गौतम! तथागत वरसे दूरहो चुके हैं।"

"भन्ते! जो उचित है, दोष-रहित है।"

"बोलो गौतम!"

"भगवान्के प्रव्रजित होनेपर मुझे बहुत दुःख हुआ था, वैसेही न न्द (के प्रव्रजित) होनेपर भी। रा हु ल के (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक। भन्ते! पुत्र-प्रेम मेरी छाल छेद रहा है। छाल छेदकर०। चमडेको छेदकर मासको छेद रहा है। मासको छेदकर नसको छेद रहा है। नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है। हड्डीको छेदकर घायल कर दिया है। अच्छा हो, भन्ते! आर्य (=भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुमतिके विना (किसीको) प्रव्रजित न करें।"

(ग) मा ता - पि ता की आ ज्ञा से प्र व्र ज्या—भगवान्ने शुद्धोदन शाक्यसे धार्मिक कथा कही। तब शुद्धोदन शाक्य आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। भगवान्ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह, भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! माता पिताकी अनुमतिके विना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये। जो प्रव्रजित करे, उसे दुक्कटका दोष है।" 98

(१२) श्रामणेरोंके विषयमें नियम

(क) श्रा म णे रों की सं ख्या—तब भगवान् क पि ल व स्तु में इच्छानुसार विहारकर श्रावस्तीमें विचरणके लिये चल दिये। क्रमशः विचरण करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे और भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रके सेवक एक खान्दानने आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास (अपने) बच्चेको (यह कहकर) भेजा—'इस बच्चेको स्थविर प्रव्रज्या दें।' तब आयुष्मान् सारिपुत्रके (मनमें) ऐसा हुआ—भगवान्ने आज्ञा दी है कि एक (भिक्षु)को दो श्रामणेर न रखने चाहिये और मेरे पास यह राहुल श्रामणेर है ही। मुझे क्या करना चाहिये?'

उन्होंने भगवान्से बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर और समर्थ एक भिक्षुको भी दो श्रामणेर रखनेकी, या जितनोंको वह उपदेश और अनुशासन कर सके उतनोंके रखनेकी।" 99

(ख) श्रा म णे रों के शि क्षा प द—तब श्रामणेरोंके (मनमें) यह हुआ—'हम लोगोंके कितने शि क्षा - प द (=आचार-नियम) हैं, हमें क्या क्या सीखना चाहिये।' (भिक्षुओंने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोंको दस शि क्षा - प दों की, जिन्हें श्रामणेर सीखें—(१) प्राण-हिंसासे बाज आना, (२) चोरी करनेसे बाज आना, (३) अ-ब्रह्मचर्यसे बाज आना, (४) झूठ बोलनेसे बाज आना, (५) मद्य, कच्ची शराब (आदि) बुद्धि-भ्रष्ट करने वाली (चीजों)से बाज आना, (६) दो पहर बाद भोजन करनेसे बाज आना, (७) नाच, गीत, बाजा, और चित्तको चंचल

करनेवाला समागमसे बाद आना (८) माल्म गण और उसमन्न धारण महन भिक्षुणकारी बालम बाद आना। ( ) उसी दम्मा और महापे दम्याग बाद आना (९) माता-पीटा मरण करनेसे बाद आना। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ श्रामणेरोंको (इन) दस शिक्षापदोंकी, जिन्हें श्रामणेर सीखें। 100

(१३) दण्डनीय श्रामणेरोंका दंड

(क) दंडनीय—उस समय श्रामणेर भिक्षुओंके साथ गौरव और प्रतिष्ठासे रहित हो उनके प्रतिकूल हो रहे थे। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे—कैसे श्रामणेर भिक्षुओंके साथ गौरव और प्रतिष्ठासे रहित हो उनके प्रतिकूल हो रहे हैं? उन्होंने यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त श्रामणेरको दंड करनेकी—(१) भिक्षुओंके अ-लाभकी कोशिश करता है, (२) भिक्षुओंके अनर्थकी कोशिश करता है, (३) भिक्षुओंके वास न पानेकी कोशिश करता है, (४) भिक्षुओंकी निन्दा शिकायत करता है, (५) भिक्षुओंमें परस्पर बिगाड़ कराता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (इन) पाँच बातोंसे युक्त श्रामणेरको दंड करनेकी। 101

(ख) दंड—तब भिक्षुओंको (मनमें) ऐसा हुआ—क्या दंड करना चाहिये?

उन्होंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आवरण (=पहरा भीतर आना रोकना) करनेकी। 102

(ग) दंडमें नियम—(a) उस समय भिक्षु श्रामणेरोंके लिये सारे संघारामका आवरण करते थे, जिससे श्रामणेर आराममें भीतर प्रवेश न पानेसे चले जाते, गृहस्थाश्रममें लौट जाते या तीर्थिकोंमें मिल जाते थे। उन्होंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! सारे संघारामका आवरण नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष होता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जहाँ वह बसता हो या घूमता हो वहाँ आवरण करनेकी। 103

(b) उस समय भिक्षु श्रामणेरोंके मुखके आहारका आवरण (=रोक) करते थे। लोग खिचड़ी पान और संघ-भोजन तैयार करते वक्त श्रामणेरोंसे यह कहते थे—'आओ भन्ते! खिचड़ी पियो, आओ भन्ते! भात खाओ।' श्रामणेर ऐसा उत्तर देते थे—'आवुसो! वैसा नहीं कर सकते। भिक्षुओंने हमारा आवरण किया है।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे—'कैसे भदन्त लोग श्रामणेरोंके मुखके आहारका आवरण करेंगे!' लोगोंने भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मुखके आहारका आवरण नहीं करना चाहिये। जो करे उसको दुक्कटका दोष होता है। 104

दंड करनेका वर्णन समाप्त।

(c) उस समय षड्वर्गीय[1] (=छ पुरुषोंवाला समुदाय) भिक्षु उपाध्यायोंसे बिना पूछे ही श्रामणेरोंका आवरण करते थे। उपाध्याय खोजते थे—हमारे श्रामणेर क्यों नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं! (दूसरे) भिक्षुओंने यह कहा—आवुसो! षड्वर्गीय भिक्षुओंने आवरण कर दिया है। उन श्रामणेरोंके (उपाध्याय) हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे—कैसे षड्वर्गीय भिक्षु बिना हमसे पूछे ही हमारे श्रामणेरोंका आवरण करेंगे! (उन्होंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपाध्यायसे बिना पूछे आवरण नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। 105

---

[1]षड्वर्गीयोंके बारेमें देखो पातिमोक्ख पृष्ठ १४ टि०।

(d) उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके श्रामणेरोंको फुसला ले जाते थे। स्थविर लोग अपने ही दतौन और मुख धोनेके जलको लेते तकलीफ पाते थे। (लोगोंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! दूसरेकी परिषद् (=अनुचरगण)को नही फुसलाना चाहिये। जो फुसलाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्य-पुत्रके श्रामणेर क ट क ने क ट की नामक भिक्षुणीको दू षि त किया। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते, दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारके अनाचारको करेंगे!' भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

घ नि का ल ने का द ड—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दस बातोंसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी—(१) प्राणि-हिंसका दोषी होता है, (२) चोर होता है, (३) अ-ब्रह्मचारी होता है, (४) झूठ बोलने वाला होता है, (५) शराब पीनेवाला होता है, (६) बुद्धकी निंदा करता है, (७) धर्मकी निंदा करता है, , (८) संघकी निंदा करता है, (९) झूठी धारणावाला होता है, (१०) भिक्षुणी-दूषक होता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (इन) दस बातोंसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी।" 107

(१४) उपसंपदाके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय एक प ड क (=हिजळा) भिक्षुओंके पास आकर प्रव्रजित हुआ था। वह जवान-जवान भिक्षुओंके पास आकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो! मुझे दू षि त करो।' भिक्षु फटकारते थे—'भाग जा प ड क, हट जा पंडक, तुझसे क्या मतलब है?' भिक्षुओंके फटकारनेपर वह वडे वडे स्थूल शरीर वाले श्रामणेरोंके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो! मुझे दू षि त करो।' श्रामणेर फटकारते थे—'भाग जा पंडक, हट जा पंडक, तुझसे क्या मतलब है?' श्रामणेरोंके फटकारनेपर हाथीवानों और साईसोंके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आवुसो! मुझे दू षि त करो।' हाथीवानों और साईसोंने दूषित किया और वह हैरान होते, धिक्कारते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पंडक है। जो इनमें पंडक नही है वह पंडकोंको दूषित करते है। इस प्रकार यह सभी अब्रह्म-चारी है।' उन हाथीवानों और साईसोंके हैरान होने, धिक्कारने को भिक्षुओंने सुना। (उन्होंने) भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसंपदा न पाये पंडकको उपसंपदा नही देनी चाहिये, और उपसंपदा पायेको निकाल देना चाहिये।" 108

२—उस समय कुलीनतासे च्युत एक पुराने खान्दानका सुकुमार लळका था। तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार लळकेके (मनमें) यह हुआ—मैं सुकुमार हूँ (इसलिये) अप्राप्त भोगको न प्राप्त करनेमें समर्थ हूँ, न प्राप्त भोगके प्रतिकार करनेमे (समर्थ हूँ)। किस उपायसे मैं सुखसे जी सकता हूँ, कष्टको न प्राप्त हो सकता हूँ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार पुत्रके (मनमें) यह हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण सु ख शी ल और सु ख - आ चा र है। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासों और शय्याओंमे सोते है। क्यों न मैं स्वयं पा त्र - ची व र संपादितकर दाढी-मूँछ मुंळा, काषाय वस्त्र पहन आराममें जाकर भिक्षुओंके साथ वास करूँ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लळकेने स्वयं पा त्र - ची व र संपादितकर केश दाढी मुंळा, काषाय वस्त्र पहन आ रा म (=भिक्षु-निवास)में जा भिक्षुओंका अभिवादन किया। भिक्षुओंने पूछा—

"आवुस! कितने वर्षके (भिक्षु) हो?"

"आवुसो! कितने वर्षके होनेका क्या मतलब?"

"आवुस! कौन तेरा उपाध्याय है?"

"आवुसो ! उपाध्याय क्या चीज है ?

तब भिक्षुओंने आयुष्मान् उपालिसे यह कहा—

'आवुस उ पा लि इस प्रव्रजित (=साधु)की पूछताछ करो।

तब आयुष्मान् उ पा लि द्वारा पूछताछ करनेपर उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लड़केने सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने यह बात भिक्षुओंसे कह दी। भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

भिक्षुओ ! चोरीसे वस्त्र पहने उपसंपदा-रहित (पुरुष)को नहीं उपसंपदा देनी चाहिये। उपसंपदा प्राप्त कर लिये हो तो उसे निकाल देना चाहिये। भिक्षुओ ! तीर्थिकों (=अन्य पन्थके अनुयायियों)के पास चले गये उपसंपदा-रहित (पुरुष)को उपसंपदा न देनी चाहिये। यदि उपसंपदा पा गया हो तो उसे निकाल देना चाहिये। 109

३—उस समय एक नाग (सर्प) नाग-योनिसे घृणा करता खिन्न होता जुगुप्सा करता था। तब उस नागके (मनमें) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मैं नाग-योनिसे मुक्त होऊँ और जल्दी मनुष्यत्वको पाऊँ ?' तब उस नागके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी ब्रह्मचारी सत्य-वादी शीलवान और पुण्यात्मा हैं। यदि मैं शाक्यपुत्रीय श्रमणोंके पास प्रव्रज्या पा सकूँ तो इस प्रकार नाग योनिसे मुक्त हो सकता हूँ और शीघ्र ही मनुष्यत्वको प्राप्त हो सकता हूँ।' तब उस नाग ने तरुण ब्राह्मण (=माणवक)का रूप धारणकर भिक्षुओंके पास जा प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने उसे प्रव्रज्या और उप-संपदा प्रदानकी। उस समय वह नाग एक भिक्षुके साथ सीमान्तके विहारमें निवास करता था। एक दिन वह भिक्षु रातको भिनसारको उठकर टहलने लगा। तब वह नाग उस भिक्षुके बाहर निकलनेपर बेफिक्र हो सोने लगा और सारा विहार साँपसे भर गया तथा खिड़कियोंसे फण निकल रहे थे। तब उस भिक्षुने विहारमें प्रवेश करनेके लिये किवाड़को खोलते वक्त देखा कि सारा विहार साँपसे भर गया है और खिड़कियोंसे फण निकल रहे हैं। देखकर भयभीत हो चिल्ला उठा। (दूसरे) भिक्षु दौड़ आ उस भिक्षुसे बोले—आवुस ! किसलिये तू चिल्ला उठा ?

"आवुसो ! यह सारा विहार साँपसे भरा है और खिड़कियोंसे फण निकल रहे हैं।

तब वह नाग उस शब्दके कारण सिमिटकर अपने आसनपर बैठ गया। भिक्षुओंने उससे यह कहा—

"आवुस ! तू कौन है ?

"भन्ते ! मैं नाग हूँ।

"आवुस ! तूने क्यों ऐसा किया ?"

तब उस नागने भिक्षुओंसे यह सब बात कह दी। भिक्षुओंने उस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको जमाकर उस नागसे यह कहा—

'तुम इस ध र्म वि न य के योग्य नहीं क्योंकि तुम नाग हो। जाओ नाग ! वहीं अपने (लोकमें)। चतुर्दशी पूर्णमासी और अष्टमी और पक्षके उपोसथको उपवास करो। इस प्रकार तुम नागयोनिसे मुक्त हो जाओगे और जल्दी मनुष्यत्वको प्राप्त करोगे।"

तब वह नाग—'मैं इस धर्मके योग्य नहीं हूँ—' (सोच) दुःखी (=दुर्मना) आँसू बहाते हुए चीत्कार कर चला गया। तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ ! नागके स्वभावको प्रकट करनेके दो समय हैं—(१) जब अपने स्वजातीय स्त्रीसे मैथुन करता है (२) और जब निश्चिन्त हो निद्रा लेता है। भिक्षुओ ! यह दो नागके स्वभावको प्रकट करनेके समय हैं। भिक्षुओ ! तिर्यक् योनिवाले प्राणीको बिना उपसंपदाके होनेपर उपसंपदा न देनी

चाहिये और उपसम्पदा पाया हुआ होनेपर उसे निकाल देना चाहिये।" 110

४—उस समय एक ब्राह्मण-पुत्र (=माणवकने) माताको जानसे मार डाला। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमे) ऐसा हुआ—'किन उपायसे मै इस बुरे कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके मनमे ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तम-धर्मवाले है। यदि मै शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार मै इस बुरे काममे मुक्त हो जाऊँ। तब उस माणवकने भिक्षुओके पास जा प्रव्रज्या मॉगी। भिक्षुओने आयुष्मान् उपालिसे यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछ-ताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालि के पूछताछ करनेपर यह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओसे वह बात कही। भिक्षुओने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसपदा-रहित माताके हत्यारेको नही उपसपदा देनी चाहिये, और उपसपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 111

५—उस समय एक माणवकने पिताको मार डाला था। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमे) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मै इस बुरे कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके (मनमे) ऐसा हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तमधर्मवाले है। यदि मै शाक्य-पुत्रीय श्रमणोके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार मै इस बुरे कामसे मुक्ति पाऊँ।' तब उस माणवकने भिक्षुओके पास जा प्रव्रज्या मॉगी।

भिक्षुओने आयुष्मान उ पा लि से यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालिके पूछताछ करनेपर वह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओसे वह बात कही। भिक्षुओने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसपदा-रहित पिताके हत्यारेको नही उपसपदा देनी चाहिये, और उपसपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 112

६—उस समय सा के त (=अयोध्या)से श्रावस्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसे भिक्षु जा रहे थे। मार्गके बीचमे चोरोने निकलकर किन्ही किन्ही भिक्षुओको लूटा और किन्ही किन्हीको मार डाला। श्रावस्तीसे निकलकर राजसैनिकोने भी किन्ही किन्ही चोरोको पकळ लिया और कोई कोई चोर भाग गये। वह भागे हुए चोर भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रजित हो गये। जो पकळे गये थे वे वधके लिये ले जाये जाने लगे। उन प्रव्रजित (चोरो)ने उन चोरोको वधके लिये ले जाते देखा। देखकर उन्होने यह कहा—'अच्छा हुआ जो हम भाग गये। यदि पकळे जाते तो हम भी इसी प्रकार मारे जाते।' उन भिक्षुओने यह पूछा—'क्यो आवुसो! तुम क्या कहते हो?'

तब उन प्रव्रजितोने भिक्षुओसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! यह भिक्षु (लोग) अर्हत् है। भिक्षुओ! अर्हत्-घातकको यदि उपसपदा न मिली हो तो उपसपदा न देनी चाहिये, और उपसपदा मिली हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 113

७—उस समय सा के त से श्रा व स्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसी भिक्षुणियाँ जा रही थी।

मार्गके बीचमें चोरोंने निकलकर किन्हीं किन्हीं भिक्षुणियोंको लूटा और किन्हीं किन्हींको मार डाला। श्रावस्तीसे निकलकर राजसैनिकोंने भी किन्हीं किन्हीं चोरोंको पकड़ लिया और कोई कोई चोर भाग गये। वह भागे हुए चोर भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रजित हो गये। जो पकड़े गये वे वधके लिये ले जाये जाने लगे। उन प्रव्रजित (चोरोंने) उन चोरोंको वधके लिये ले जाते देखा। देखकर उन्होंने कहा—अच्छा हुआ जो हम भाग गये। यदि पकड़े जाते तो हम भी इसी प्रकार मारे जाते। उन भिक्षुओंने पूछा—'क्यों आवुसो! तुम क्या कहते हो?

तब उन प्रव्रजितोंने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह सब बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

'भिक्षुओ! यह भिक्षुणियाँ अर्हत् हैं। भिक्षुओ! अर्हद्‌घातकको उपसंपदा न पाये होनेपर उपसंपदा न देनी चाहिये और उपसंपदा पाये हो तो उसे निकाल देना चाहिये। 114

८—उस समय एक (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवाला व्यक्ति भिक्षुओंके पास प्रव्रजित हुआ था। वह (व्यभिचार) करता कराता था। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

'भिक्षुओ! उपसंपदा-रहित (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवाले व्यक्तिको उपसंपदा न देनी चाहिये। उपसंपदा पा गया हो तो उसे निकाल देना चाहिये। 115

—उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

भिक्षुओ! उपाध्यायके बिना उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो। 116

१०—उस समय भिक्षु संघको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! संघको उपाध्याय बना उपसंपदा नहीं देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो। 117

११—उस समय भिक्षु गणको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। —

"भिक्षुओ! गणको उपाध्याय बना नहीं उपसंपदा देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो। 118

१२—उस समय भिक्षु पंडकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे।०—

१३— चोरीसे वस्त्र पहनेका उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 119

१४— तीर्थिकोंके पास चले गयेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 120

१५— तिर्यक्-योनिवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 121

१६— मातृ-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 122

१७— पितृ-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 123

१८—० अर्हत्-घातकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 124

१९— भिक्षुणी-दूषकको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 125

२०— संघमें फूट डालनेवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे।

२१— (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। 126

२२— (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेको उपाध्याय बना उपसंपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—

भिक्षुओ! (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेको उपाध्याय बनाकर उपसंपदा न देनी चाहिये। जो उपसंपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो। 127

२३—उस समय भिक्षु पात्र-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा देते थे। वह पात्रके विना हाथोमें ही भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते थे—'कैसे यह पात्रके विना हाथोमें ही भीख माँगते है जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! पात्र-रहितको उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 128

२४—उस समय भिक्षु चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा देते थे और वह नगेही भिक्षाटन करते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे ये नगेही भिक्षाटन करते है जैसे कि तीर्थिक! भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कट का दोष हो।" 129

२५—उस समय भिक्षु पात्र-चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपमपदा देते थे। वह नगे हो हाथोमें ही भिक्षा माँगते थे०—

"भिक्षुओ! पात्र-चीवर-रहितको उपसपदा न देनी चाहिये, ०।" 130

२६—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्रके साथ उपमपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर पात्र ले लिया जाता था और वह हाथोमें भिक्षा माँगते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्रके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 131

२७—उस समय भिक्षु मँगनीके चीवरके साथ उपसपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर चीवर ले लिया जाता था, और वह नगेही भिक्षाटन करते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके चीवरके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 132

२८—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर पात्र-चीवर ले लिया जाता था और वह नगे हो हाथोमें भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, दुखी होते, धिक्कारते थे—'(कैसे यह नगे हो हाथोमें भिक्षा माँगते है) जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 133

(१५) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय भिक्षु कटे हाथवालेको प्रव्रज्या देते (=श्रामणेर वनाते) थे। मनुष्य देख कर हैरान होते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! कटे हाथवालेको प्रव्रज्या न देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दुक्कटका दोष हो।" 134

२—०—कटे पैरवालेको०। 135

३—०—कटे हाथ-पैरवालेको०। 136

४—०—कटे कानवालेको०। 137

५—०—कटी नाकवालेको०। 138

६—०—कटे नाक-कानवालेको०। 139

७—०—कटी अँगुलियोवालेको०। 140

८—०—नाक कटी (अँगुलियों)वालेको । 141
९— —पोर कटी (अंगुलियां)वालेको । 142
१०—०—(सभी अंगुलियोंके कट जानेसे) फन जैसे हाथवालेको । 143
११—०—कुबड़ेको । 144
१२— —बौनेको । 145
१३— —घेघेवालेको । 146
१४— —ल क्ष णा ह त (=जलते कोड़ेसे दागे हुए)को । 147
१५— —कोड़े मारे गयेको । 148
१६—लि खि त क को । 149
१७—श्लीपदि (=एक रोग)को । 150
१८—बुरे रोगवालेको । 151
१९—परिषद्-दूषकको । 152
२०—कानेको । 153
२१—लूलेको । 154
२२—लँगड़ेको । 155
२३—पक्षाघातवालेको । 156
२४—ईर्यापथ (=अच्छी रहन सहन) रहितको । 157
२५—बुढ़ापासे दुर्बलको । 158
२६—अंधेको । 159
२७—गूंगेको । 160
२८—बहिरेको । 161
२९—अंधे और गूंगेको । 162
३—अंधे और बहिरेको । 163
३१—गूंगे और बहिरेको । 164
३२—अंधे गूंगे बहरेको प्रव्रज्या देते थे भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! अंधे गूंगे बहरेको नहीं प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दुक्कटका दोष हो। 165

प्रव्रज्या-न-देने-योग्य (प्रकरण) समाप्त ॥

नवम भाणवार समाप्त ॥९॥

§४—उपसम्पन्नोंकी विधि

(१) निश्रयके नियम

१—उस समय प ड्व र्गी य भिक्षु लज्जाहीनों[1]को नि श्र य देते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

भिक्षुओ ! लज्जाहीनोंको निश्रय नहीं देना चाहिये जो दे उसे दुक्कटका दोष हो। 166

---

[1]देखो पृष्ठ १ १ टि ।

२—उस समय भिक्षु लज्जाहीनोका निश्रय लेकर वास करते थे, और वह भी जल्दी ही लज्जाहीन बुरे भिक्षु हो जाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! लज्जाहीनोका निश्रय लेकर वास नही करना चाहिये। जो वास करे उसे दुक्कटका दोप हो।" 167

३—तव भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि लज्जाहीनोको न निश्रय देना चाहिये न लज्जाहीनोका निश्रय ले वास करना चाहिये, लेकिन लज्जाशील (=लज्जी), लज्जाहीन (=अलज्जी)को कैसे हम जानेगे?' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच दिन तक प्रतीक्षा करनेकी जितनेमे कि भिक्षुके स्वभाव को जान जाय।" 168

४—उस समय एक भिक्षु को स ल देशमे रास्तेमें जा रहा था। उस समय उस भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये और मैं निश्रय लेने योग्य होते हुए रास्तेमे हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रास्तेमे जाते हुए भिक्षुको, निश्रय न पानेपर विना निश्रयहीके रहनेकी।" 169

५—उस समय दो भिक्षु को स ल देशमे रास्तेमें जा रहे थे। वह एक वास-स्थानमें गये। वहाँ एक भिक्षु वीमार पळ गया। तव उस वीमार भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये, मैं निश्रय लेने योग्य होते हुए रोगी हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको निश्रय न पानेपर विना निश्रयहीके रहनेकी।" 170

६—तव उस वीमारके परिचारक भिक्षुके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये और मैं निश्रय लेने योग्य हूँ और यह भिक्षु रोगी है, मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वीमारके परिचारक भिक्षुको इच्छा रखते भी निश्रय न पाने पर विना निश्रयके रहनेकी।' 171

७—उस समय एक भिक्षु जगलमे रहता था। उस निवास-स्थानपर उसे अच्छा था। तव उस भिक्षुके (मनमें) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये, और मैं निश्रय लेने योग्य होते हुये जगलमें हूँ, तथा मुझे इस वास-स्थानपर अच्छा है। मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जगलमें रहनेवाले भिक्षुको निवास अनुकूल मालूम होनेपर, निश्रयके न मिलनेपर विना निश्रयके ही रहनेकी, (यह सोचकर) जव अनुकूल निश्रयदायक आयेगा तो उसका निश्रय लेकर वास करूँगा।" 172

(२) बळोंको गोत्रके नामसे पुकारना

उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प के पास एक उपसपदा चाहनेवाला था। तव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दके पास (यह कहकर) दूत भेजा—'आनन्द! आओ और इस पुरुषके लिये अ नु श्रा व ण[1] करो।'

---

[1] उपसपदा देने (भिक्षु बनाने)के समय उपसपदा देनेकी स्वीकृति तथा उपाध्याय और आचार्यके नाम सघके सामने ऊँचे स्वरसे लिये जाते थे। इसीको अनुश्रावण कहते हैं।

आयुष्मान आनन्दने ऐसा कहा—'स्थविर (महाकाश्यप)का नाम भी लेनेमें मैं असमर्थ हूँ। स्थविर मेरे गुरु हैं।

—भगवान्‌से यह बात कही। (भगवानने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गोत्र (के नाम)से पुकारनेकी।" 173

(३) अनुश्रावणके नियम

१—उस समय आयुष्मान् महाकाश्यपके पास दो उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक साथ दोके अ नु श्रा व ण की।" 174

२—उस समय बहुतसे स्थविरोंके पास उपसंपदा चाहनेवाले थे। 'मैं पहले उपसंपदा लूँगा मैं पहले उपसंपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। तब स्थविरोंने कहा—'आवुसो! (आओ) हम सब एकही अ नु श्रा व ण करें। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो तीनके लिये एक अनुश्रावण करनेकी। लेकिन यदि उनका उपाध्याय एक हो अनेक न हो। 175

(४) गर्भसे बीस वर्षकी उपसम्पदा

उस समय आयुष्मान् कु मा र का श्य प ने गर्भ से बीस वर्ष गिनकर उपसंपदा पाई थी तब आयुष्मान् कु मा र का श्य प के (मनमें) ऐसा हुआ— भगवान्‌ने विधान किया है कि बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसंपदा न देनी चाहिये और मैंने गर्भमें (आने)से लेकर बीस वर्ष पीछे उपसंपदा पाई। क्या मेरी उपसंपदा ठीक है? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! जब माताकी कोखमें पहले पहल चि त्त उत्पन्न होता है पहले पहल वि ज्ञा न प्रादुर्भूत होता है उससे लेकर जन्म माननेकी है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गर्भसे बीस (वर्षवाले)को उपसंपदा करनेकी। 176

(५) उपसम्पदाके बाधक शारीरिक दोष

उस समय कोढी भी फोळेवाले भी (बुरे) चर्म-रोगवाले भी शोषवाले भी मृगीवाले भी उपसंपदा पाये देखे जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसंपदा करते वक्त तेरह प्रकारके (उपसंपदामें) अ न्त रा यि क (—बाधक) बातोंके पूछनेकी। और भिक्षुओ! इस प्रकार पूछना चाहिये—'क्या तुझे ऐसी बीमारी (जैसेकि) (१) कोढ (२) गंड (—एक प्रकारका बुरा फोळा) (३) किलास (—एक प्रकारका बुरा चर्म-रोग) (४) शोष (५) मृगी (६) तू मनुष्य है (७) तू पुरुष है? (८) तू स्वतंत्र (अदास) है? (९) तू उऋण है? (१०) तू राज-सैनिक तो नहीं है? (११) तुझे माता पिताने (भिक्षु बननेकी) अनुमति दी है? (१२) तू पूरे बीस वर्षका है? (१३) तेरे पास पात्र चीवर (संख्यामें) पूर्ण हैं? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है? 177

(६) उपसम्पदा कर्म

(क) १—अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसंपदा-चाहनेवालेसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसंपदा चाहनेवाले चुप हो जाते थे मूक हो जाते थे उत्तर नहीं दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (—शिक्षा) करके पीछे अन्तरायिक बाधक बातोंके पूछनेकी। 178

२—(भिक्षु लोग) वहीं संघके बीचमें अ नु शा स न करते थे। उपसंपदा चाहनेवाले (फिर) उसी तरह चुप रह जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंको अ नु शा स न करनेकी, और संघके बीचमें पूछनेकी। भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये। उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—यह तेरा पात्र है, यह संघाटी, यह उ त्त रा सं घ, यह अ न्त र वा स क। जा उस स्थानमें खड़ा हो।" 179

३—(उस समय) मूर्ख, अजान, अनुशासन करते थे। ठीकसे अनुशासन न होनेके कारण उपसंपदा चाहनेवाले चुप रह जाते, मूक हो जाते, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! मूर्ख, अजान अनुशासन न करे। जो अनुशासन करे तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर समर्थ भिक्षुको अनुशासन करनेकी। 180

(ख) अ नु शा स क का चु ना व—उस समय सम्मतिके बिना ही अनुशासन करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—भिक्षुओ! सम्मतिके बिना अनुशासन नहीं करना चाहिये। जो अनुशासन करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति प्राप्तको अनुशासन करनेकी। 181

"और भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मत्रण करना चाहिये—अपने ही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये या दूसरे का दूसरेके लिये सम्मत्रण करना चाहिये। कैसे अपने ही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये?—चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने, यह अमुक नामवाला अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो मैं अमुक नामवाले (इस पुरुष)को अनुशासन करूँ।—इस प्रकार अपनेही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये।

"कैसे दूसरेके लिये सम्मत्रण करना चाहिये?—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले (उपसंपदा चाहनेवाले)को अनुशासन करे।—इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मत्रणा करनी चाहिये।

तब उस सम्मति प्राप्त भिक्षुको उपसंपदा चाहनेवालेके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये—

ख अ नु शा स न—"अमुक नामवाले! सुनते हो? यह तुम्हारा सत्यका काल (=भूतका काल) है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये, 'नहीं' होनेपर नहीं कहना चाहिये। चुप मत हो जाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ, गंड, किलास, शोथ, मृगी? क्या तू मनुष्य है, पुरुष है, स्वतंत्र है, उऋण है, राज-सैनिक तो नहीं है, तुझे माता-पिताने (भिक्षु बनानेकी) अनुमति दी है, तू पूरे बीस वर्षका है, तेरे पास पात्र-चीवर (पूर्ण संख्यामें) है? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?"

(उस समय अनुशासक और उपसंपदा चाहनेवाले दोनों) एक साथ (संघमें) आते थे। (भगवान्‌से यह बात कही)—

"भिक्षुओ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 182

ग <u>उपसंपदामें ज्ञप्ति, अनुश्रावण और धारणा</u>—अनुशासक पहले आकर संघको सूचित करे—

भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामका इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाला (उपसंपदा चाहनेवाला) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उ त्त रा सं घ को करवाकर भिक्षुओंके चरणोंमें वंदना करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जुळवा, उपसंपदाके लिये याचना करवानी चाहिये।

(१) भन्ते! संघसे उपसंपदा माँगता हूँ। पूज्य संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी ...।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—पूज्यसंघसे उपसंपदा माँगता हूँ। पूज्यसंघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षु संघको ज्ञापित करे—

'भन्ते! संघ मेरी सुने—यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले (उम्मेदवार)से विघ्नकारक बातोंको पूछूँ।'

'सुनता है इस नामवाले! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो है उसे पूछता हूँ। होनेपर 'है' कहना, नहीं होनेपर 'नहीं है' कहना। क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ़ ... तेरे पात्र चीवर (पूर्ण संख्यामें) है? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?'

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति— 'भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला (शिष्य) (तेरह) विघ्नकारक बातोंसे शुद्ध है। (इसके) पात्र चीवर परिपूर्ण हैं। (यह) इस नामवाला (उम्मीदवार) इस नामवाले (भिक्षुको) उपाध्याय बना संघसे उपसंपदा चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा दे—यह सूचना है।

ख. (अ नु श्रा व ण)— (१) भन्ते! संघ मेरी सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्‌का उपसंपदा चाहनेवाला शिष्य अन्तरायिक बातोंसे परिशुद्ध है (इसके) पात्र चीवर परिपूर्ण हैं। (यह) इस नामवाला उम्मीदवार इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा चाहता है। संघ इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा देता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले (उम्मीदवार)की इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा पसंद है वह चुप रहे। जिसको पसंद नहीं है वह बोले। (२) दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—पूज्य संघ मेरी सुने ...। (३) तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—पूज्यसंघ मेरी सुने ... जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

ग. धा र णा— 'इस नामवाले (उम्मीदवार)को इस नामवाले (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसंपदा संघने दी। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।'

उपसंपदा कर्म समाप्त

(७) पंद्रह चपस कर्मका आमखोर

उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये, ऋतुका प्रमाण बतलाना चाहिये, दिनका भाग बतलाना चाहिये, सं गी ति[1] बतलानी चाहिये। चार नि श्र य[2] बतलाने चाहियें— (१) यह प्रव्रज्या भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—संघ-भोज, तेरे उद्देश्यसे बना भोजन, निमंत्रण, श ला का भो ज न, पाक्षिक (भोज), उपोसथ दिनका (भोज), प्रतिपद्‌का (भोज)। (२) फटे चीथड़ोंसे बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना

---

[1] छाया ऋतु और दिनका भाग—इन तीनोंके इकट्ठा करनेको संगीति कहते हैं।

[2] देखो पृष्ठ १२१-२२ भी।

चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)— क्षौम (अलसीकी छालका वस्त्र), कपासका (वस्त्र), कौशेय (=रेशमी वस्त्र), कम्बल (=ऊनी वस्त्र), सनका (वस्त्र), भाँगकी (छालका वस्त्र)। (३) वृक्षके नीचे निवासके निश्चयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—विहार, आढ्ययोग, प्रासाद, हर्म्य, गुहा। (४) गोमूत्रकी औषधिके निश्चयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाळ।" 183

चार निश्चय समाप्त

(८) श्रामणेर शिष्योकी सख्या

उस समय (कुछ) भिक्षु एक भिक्षुको उपसपदा दे, अकेले ही छोळ चले गये। पीछे अकेले ही चलते वक्त रास्तेमें उसे अपनी पहलेकी स्त्री मिली। उसने पूछा—

"क्या इस वक्त प्रव्रजित हो गये हो ?"

"हाँ प्रव्रजित हो गया हूँ।"

"प्रव्रजितोके लिये स्त्री-समागम बहुत दुर्लभ है। आओ ! मैथुन-सेवन करो।"

वह उसके साथ मैथुन कर, देरसे गया। भिक्षुओने पूछा—

"आवुस ! क्यो तूने इतनी देर लगाई ?"

तब उसने भिक्षुओंसे वह सब बात कह दी। भिक्षुओने भगवान्‌से वह सब बात कही । (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, उपसपदा करके एक दूसरे (भिक्षुको साथी) देनेकी और चार अकरणीयोके बतलानेकी—

"(१) उपसम्पन्न भिक्षुको अन्तत पशुसे भी मैथुन नही करना चाहिये। जो भिक्षु मैथुन करे वह अश्रमण होता है, अशाक्य-पुत्रीय होता है। जैसे शिर-कटा-पुरुष उस शरीरसे जीनेमे असमर्थ होता है ऐसे ही भिक्षु मैथुन करके अश्रमण होता है, अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(२) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको चोरी समझे जाने वाली (किसी वस्तुको) चाहे वह तृणकी शलाका ही क्यो न हो न लेना चाहिये। जो भिक्षु पा द [1] या पा द के मूल्य या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय होता है। जैसे ढेंपसे छूटा पीला पत्ता फिर हरा होनेके अयोग्य है, ऐसेही भिक्षु पा द या पा द के मूल्यके या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(३) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको जान बूझकर प्राण न मारना चाहिये चाहे वह चीटा माटा ही क्यो न हो। जो भिक्षु जान बूझकर मनुष्यके प्राणको मारता है या अन्तत गर्भपात भी कराता है वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे कोई मोटी शिला दो टूक हो जानेपर फिर जोळने लायक नही रहती ऐसेही भिक्षु जान बूझकर मनुष्यको प्राणसे मारनेसे अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(४) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको (अपने) दिव्य शक्ति (=उत्तरमनुष्यधर्म)को न कहना चाहिये। अन्तत शून्यागारमें मैं रमण करता हूँ, इतना भर भी (नही कहना चाहिये)। जो बुरी नीयत-

---

[1] पाँच मासक (=मासा)=१ पाद, ४ पाद=१ कार्षापण, (देखो पृष्ठ ८,९ भी)।

वाला लोभके वशमें पड़ा भिक्षु अविद्यमान असत्य—दिव्य-शक्ति ध्यान विमोक्ष समाधि समापत्ति मार्ग या फल—को (अपनेमें) बतलाता है वह अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे सिर कटा ताड़ फिर बढ़नेके योग्य नहीं होता ऐसे ही बुरी नीयतवाला लोभके वशमें पड़ा भिक्षु अविद्यमान असत्य—दिव्य-शक्ति (अपनेमें) बतलाकर अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है। 184

चार अकरणीय समाप्त

(९) निभयकी अवधि

उस समय एक भिक्षु (दोषको करके) दोषको न देखनेसे उत्क्षिप्त होनेपर धर्म छोड़कर चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगी। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु दोष (=आपत्ति)के न देखनेसे उत्क्षिप्त हो निकल जाता है और वह फिर आकर उपसंपदा माँगता है तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'क्या तुम उस दोषको देखते हो?'— यदि वह कहे—'मैं देखता हूँ' तो उसे प्रव्रज्या देनी चाहिये। यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उपसंपदा देनी चाहिये। यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो उपसंपदा नहीं देनी चाहिये। उपसंपदा देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उसका ओसारण[1] करना चाहिये यदि कहे 'नहीं देखता हूँ' तो उसका ओसारण नहीं करना चाहिये। ओसारण करके पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे कि 'देखता हूँ'—तो अच्छा है। यदि कहे 'नहीं देखता' तो एकमत होनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। यदि एकमत न मिलता हो तो साथके भोजन और निवासमें दोष नहीं। यदि भिक्षुओ! आपत्तिके न प्रतिकारसे भिक्षु उत्क्षिप्त होनेपर चला जाये और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगे तो उससे ऐसा पूछना चाहिये— 'क्या उस दोषका तुम प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो प्रव्रज्या देनी चाहिये यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस दोषका प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो उपसंपदा देनी चाहिये यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसंपदा देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस आपत्तिका प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो ओसारण करना चाहिये। यदि कहे 'प्रतिकार नहीं करूँगा' तो ओसारण नहीं करना चाहिये। ओसारण करके पूछना चाहिये 'क्या उस दोषका प्रतिकार करते हो?' यदि वह प्रतिकार करे तो ठीक यदि प्रतिकार न करे तो एकमत होनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। यदि एकमत न प्राप्त हो तो साथके भोजन और निवासमें दोष नहीं। 185

"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु बुरी दृष्टिके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त होकर चला गया हो और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसंपदा माँगे तो उससे पूछना चाहिये—'क्या तुम उस बुरी धारणाको छोड़ोगे?' यदि कहे कि—छोड़ूँगा—तो प्रव्रज्या देनी चाहिये यदि कहे कि—नहीं छोड़ूँगा—तो प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोड़ोगे?—यदि कहे कि—छोड़ूँगा—तो उपसम्पदा देनी चाहिये यदि कहे कि—नहीं छोड़ूँगा—तो उपसम्पदा नहीं देनी चाहिये। उपसंपदा देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोड़ोगे—यदि कहे—छोड़ूँगा—तो

---

[1] अपराध होनेपर संघकी ओरसे उत्क्षिप्त करनेका दंड होता है। उस दंडसे हटा लेना ओसारण कहा जाता है।

ओ सा र ण करना चाहिये; यदि कहे—नही छोळूंगा—तो ओसारण नही करना चाहिये। ओसारण करके कहना चाहिये—उस बुरी धारणाको छोळो!—यदि छोळता है तो अच्छा है। यदि नही छोळता तो एकमत मिलनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। एकमत न मिलनेपर साथ भोजन और निवासमें दोष नहीं। 186

प्रथम महाक्खन्धक (समाप्त) ॥१॥

२—उपोसथ-स्कन्धक

१—उपोसथका विधान और प्रातिमोक्षकी आवृत्ति। २—उपोसथ-क्षेत्रकी सीमा और उपोसथोंकी संख्या। ३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और उसके पूर्वके कृत्य। ४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ। ५—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ। ६—उपोसथमें काल स्थान और व्यक्ति संबंधी नियम।

§१—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति

१—राजगृह

(१) उपोसथका विधान

उस समय बुद्ध भगवान राजगृहके गृध्रकूट पर्वतपर रहते थे। उस समय दूसरे मतवाले (परिव्राजक) चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते थे। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते थे (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते थे और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारको एकान्तमें विचार करते वक्त चित्तमें ऐसा ख्याल पैदा हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते हैं। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते हैं (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते हैं और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते हैं। क्यों न आर्य (=बौद्ध भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हों?' तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ भगवान थे वहाँ गया। जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! मुझे एकान्तमें बैठे विचार करते चित्तमें ऐसा ख्याल हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते हैं। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते हैं (जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोंके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते हैं और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते हैं। क्या न आर्य (=भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हों?' अच्छा हो भन्ते! आर्य लोग भी चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा हों।

तब भगवान्‌ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्‌की धार्मिक कथासे समुत्तेजित संप्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी।" 1

(२) उपोसथके दिन धर्मोपदेश

उस समय (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी आज्ञा दी है। भिक्षु लोग चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते थे। जो मनुष्य धर्मोपदेश सुननेके लिये आते थे वह (यह देख) हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते हैं, जैसे कि गूंगे भेळ! एकत्रित होकर तो धर्मोपदेश करना चाहिये था न।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से इस बातको कहा, और भगवान्‌ने इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो धर्मोपदेश करनेकी।" 2

(३) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें नियम

१—एक समय एकान्तमें स्थित विचारमग्न भगवान्‌के चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्यों न, जिन शिक्षा-पदों (=भिक्षु-नियमों) को मैंने भिक्षुओंके लिये विधान किया है उन्हें लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ। यही उनका उ पो स थ कर्म हो।' तब भगवान्‌ने सायंकाल एकान्त चिन्तनसे उठ इसी संबंधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमें स्थित विचारमग्न मेरे चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—क्यों न, जिन शिक्षा-पदोंको मैंने भिक्षुओंके लिये विधान किया है उन्हें लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ।3

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्षकी आवृत्तिकी।

"और भिक्षुओ! इस प्रकार आवृत्ति करनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञ प्ति—भन्ते! संघ मेरी (बात) सुने। यदि संघ ठीक समझे तो उपोसथ करे और प्रा ति मो क्ष की आवृत्ति करे—'संघका क्या है पूर्व कृत्य? आयुष्मानो! (अपनी आचार-)शुद्धिको कहो, ०[1] प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।" 4

प्रा ति मो क्ष (=पातिमोक्ख), प्राति=आदि, मुख=प्रमुख (=प्रधान)। यह भलाइयोंमें प्रमुख है, इसलिये प्रा ति मौ ख्य[2] कहा जाता है।

(४) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें दिन-नियम

२—उस समय भिक्षु लोग (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने प्रातिमोक्ष-आवृत्तिकी अनुमति दी है, प्रतिदिन प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करने लगे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! प्रतिदिन प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथके दिन प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करनेकी।" 5

उस समय भिक्षुलोग (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने प्रातिमोक्ष-आवृत्तिकी अनुमति दी है चतुर्दशी, पंचदशी और अष्टमी, पक्षमें तीन तीन बार प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

---

[1] देखो पृष्ठ ७ भी।

[2] पालीमें पा ति मो क्ख के संस्कृत करनेमें मो क्ख का मो क्ष किया जाता है किन्तु प्राचीन कालमें मो क्ख को मो क्ष के अर्थमें न लेकर मौ ख्य या प्रधानताके अर्थमें लेते थे।

'भिक्षुओ ! पक्षमें तीन तीन बार प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पक्षमें एक बार चतुर्दशी या पञ्चदशीको प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करने की। 6

(४) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें समग्र होनेका नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु परिषद्‌के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्‌के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ ! परिषद्‌के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्‌के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नहीं करनी चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स म ग्र (सभी एकत्रित भिक्षु-मण्डली) को उ पो स थ क र्म की। 7

तब भिक्षुओंके मनमें यह हुआ— 'भगवान्‌ने स म ग्र (=सभी एकत्रित भिक्षु-मण्डली) के लिये उ पो स थ क र्म का विधान किया है यह समग्रता क्या चीज है ? क्या एक निवास-स्थानमें रहने वाले सभी या सारी पृथ्वी (के भिक्षुओंको समग्र कहेंगे) ? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एक निवास-स्थानमें जितने (भिक्षु) हैं उन्हींको समग्र माननेकी। 8

२—उस समय आयुष्मान् म हा क प्पि न रा ज गृ ह के म द्र कु क्षि (मद्रकुक्षि) मृ ग दा व-में रहते थे। तब आयुष्मान् महाकप्पिनको एकान्तमें विचारमग्न होते समय ऐसा चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ में मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ ? क्या स ङ्घ क र्म में मैं जाऊँ या न जाऊँ ? मैं तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् महाकप्पिनके मनके विचारको अपने मनसे जानकर जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (बिना प्रयास) पसार या पसारी बाँहको (बिना प्रयास) समेटे, वैसे ही गृध्रकूट पर्वतपर अन्तर्धान हो म द्र कु क्षि मृ ग दा व में आयुष्मान् महाकप्पिनके सामने प्रकट हुए। भगवान् बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान महाकप्पिन भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान महाकप्पिनसे भगवान्‌ने यह कहा—

'क्या कप्पिन ! एकान्तमें विचार मग्न होते समय तुम्हें ऐसा चित्तमें विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ में मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ ? क्या संघकर्ममें मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ ? मैं तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ' ?

'हाँ भन्ते !

"यदि तुम (जैसे) ब्राह्मण उपोसथका सत्कार=पुरस्कार नहीं करेंगे मान=पूजा नहीं करेंगे तो कौन उपोसथका सत्कार पुरस्कार, मान पूजा करेगा ? ब्राह्मण ! उपोसथमें तुम्हें जाना चाहिये न जाना नहीं चाहिये संघ-कर्ममें तुम्हें जाना चाहिये न-जाना नहीं चाहिये।

"अच्छा भन्ते ! (कह) आयुष्मान् महाकप्पिनने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् महाकप्पिनको धार्मिक कथा कह समुत्तेजितकर जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे या पसारी बाँहको समेटे ऐसे ही म द्र कु क्षि मृ ग दा व में आयुष्मान् महाकप्पिनके सम्मुख अन्तर्धान हो गृध्रकूट पर्वत पर प्रकट हुए।

§२—उपोसथ केन्द्रकी सीमा और उपोसथोंकी संख्या

(१) सीमा बाँधना

१—तब भिक्षुओंके मनमें यह हुआ—'भगवान्‌ने एक निवास-स्थानमें जितने (भिक्षु) हों उनको समग्र कहा किन्तु एक निवास-स्थान कितनेका होता है ? भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सीमाके निर्णय करनेकी।" 9

"भिक्षुओ ! इस प्रकार सीमाका निर्णय करना चाहिये, पहले चिह्न—पर्वत-चिह्न, पाषाण-चिह्न, वन-चिह्न, वृक्ष-चिह्न, मार्ग-चिह्न, वल्मीक (=दीमककी घरकी मिट्टी)-चिह्न, नदी-चिह्न, उदक-चिह्न—बतलाना चाहिये। चिह्नोको बतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी (बात) सुने। चारो ओरके जितने चिह्न है वे बतला दिये गये। यदि सघ उचित समझे तो इन चिह्नोवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी (बात) सुने। जितने चारो ओरके चिह्न बतलाये गये है, सघ इन चिह्नोवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करता है। जिस आयुष्मान्‌को इन चिह्नोवाली सीमाका एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान मानना पसद है वह चुप रहे, जिसको पसद नही है वह बोले। ।

ग धा र णा—"सघको यह चिह्न एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमाके लिये स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा इसे मैं समझता हूँ।"

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने सीमा निर्णय करनेकी अनुमति दी है, बडी भारी चार योजन, पाँच योजन, छ योजनकी सीमानिश्चित करते थे। दूर होनेसे भिक्षु लोग उ पो स थ के लिये प्रातिमोक्षका पाठ करते वक्त भी आते थे। पाठ हो चुकनेपर भी आते थे। बीचमे भी रह जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चार योजन, पाँच योजन, या छ योजनकी बहुत भारी सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधिकसे अधिक तीन योजनकी सीमा निश्चित करनेकी।" 10

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नदीके परले पार तककी सीमा निश्चित करते थे। उपोसथके लिये आते वक्त भिक्षु बह जाते थे, (उनके) पात्र-चीवर भी बह जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! नदीके पार सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसी जगह नदीके पार भी सीमा निश्चित करनेकी जहाँ हमेशा रहनेवाली नाव, या हमेशा रहनेवाला पुल हो।" 11

(२) उपोसथागार निश्चित करना

१—उस समय भिक्षु लोग बारी-बारीसे प रि वे णो में[1] बिना सूचना दिये प्रातिमोक्ष-पाठ करते थे। नये आये भिक्षु नही जानते थे कि कहाँ आज उ पो स थ होगा। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बारी-बारीसे परिवेणमें बिना सूचना दिये प्रातिमोक्ष-पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ विहार, अटारी, प्रासाद, हर्म्य या गुहा जिस किसीको सघ चाहे उ पो स था गा र[2] के लिए सम्मति लेकर उसमे उ पो स थ करनेकी। 12

"भिक्षुओ ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार दे—यह सूचना है।"

---

[1] आँगन।

[2] उपोसथ करनेका शाल।

ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने संघ इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार देता है जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले विहारका उपोसथागार करार देना पसन्द हो वह चुप रहे जिसको न पसन्द हो बोले। ।

ग धा र णा— 'संघको इस नामवाले विहारका उपोसथागार करार देना स्वीकृत है इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।

२—उस समय एक (भिक्षु)आश्रममें दो उपोसथागार करार किये गये थे। यह समझकर कि यहाँ उपोसथ होगा भिक्षु दोनो जगह एकत्रित होते थे। भगवान्‌से यह बात कही —

भिक्षुओ ! एक आवास (—आश्रम)में दो उपोसथागार नहीं करार देना चाहिये। जो करार दे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एकको हटाकर दूसरेमें उपोसथ करनेकी। 13

और भिक्षुओ ! इस प्रकार त्याग करना चाहिये चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति— 'भन्ते ! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले उपोसथागारको त्याग दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने। संघ इस नामवाले उपोसथागारको त्यागता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले उपोसथागारका त्याग पसन्द हो वह चुप रहे जिसको पसन्द न हो वह बोले।

ग धा र णा— 'संघने इस नामवाले उपोसथागारका त्याग किया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

३—उस समय एक आवासमें बहुत छोटा उपोसथागार करार किया गया था। एक उपोसथ (के दिन) बड़ा भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ। भिक्षुओंने न करार की हुई भूमिमें बैठकर प्रातिमोक्ष को सुना। तब उन भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि उपोसथागारके लिये सम्मति लेकर उसमें उपोसथ करना चाहिये और हमने न करार की हुई भूमिमें बैठकर प्रातिमोक्षको सुना। क्या हमारा उपोसथ करना ठीक हुआ या बेठीक ?' भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ ! चाहे करार की हुई भूमिमें चाहे करार न की हुई भूमिमें प्रातिमोक्षको सुने उपोसथका करना ठीक ही होता है। इसलिये भिक्षुओ ! संघ जितने बड़े उपोसथके बरामदेको चाहे उतने बड़े उपोसथके बरामदेको करार दे। 14

और भिक्षुओ ! करार इस प्रकार देना चाहिये—पहले चिह्नोंको बतलाना चाहिये। चिह्नों को बतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति— 'भन्ते ! संघ मेरी सुने। चारों ओर जिन चिह्नोंकी सीमा बतलाई गई है उन चिह्नोंसे घिरे उपोसथके बरामदेको यदि संघ उचित समझे तो करार दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! संघ मेरी सुने—चारों ओर जिन चिह्नोंकी सीमा बतलाई गई है उन चिह्नोंसे घिरे उपोसथके बरामदेको संघ करार देता है। इन चिह्नोंसे घिरे बरामदेका उपोसथ करार देना जिस आयुष्मान्‌को पसंद हो वह चुप रहे जिसको पसंद न हो वह बोले।

ग धा र णा— 'इन चिह्नोंसे घिरे (स्थानका) उपोसथका बरामदा करार देना संघको स्वीकार है इसलिये चुप है—इसे ऐसा मैं समझता हूँ।

४—उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन नये नये भिक्षु सबसे पहिले ही एकत्रित हो, स्थविर भिक्षु नहीं आ रहे हैं यह सोच चले गये और उपोसथ अपूर्ण हो गया। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन सबसे पहिले स्थविर भिक्षुओंके एकत्रित होनेकी। 15

(३) एक आवासमे उपोसथागारको सख्या और स्थान

१—उस समय रा ज गृ ह में बहुतसे आवासोकी एक सीमा थी, जिसके लिये भिक्षु विवाद करते थे—हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय । भगवान्से यह बात कही—

"यदि भिक्षुओ ! बहुतसे आवासोकी एक सीमा हो जिससे भिक्षु हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमें उपोसथ किया जाय, कहकर विवाद करें, तो भिक्षुओ ! उन सभी भिक्षुओको एक जगह एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये । और जहाँ स्थविर भिक्षु रहते है वहाँ एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये । (अलग) वर्ग बाँधकर सघको उपोसथ नही करना चाहिये । जो करे उसे दुक्कट का दोष हो ।" 16

२—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प अ ध क विं द से रा ज गृ ह उपोसथके लिये आते हुए नदी पार करते वक्त गिर गये और उनके चीवर भीग गये । भिक्षुओने आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछा—

"आवुस ! किसलिये तुम्हारे चीवर भीगे है ?"

"आवुसो ! आज मै अ ध क विं द से राजगृह उपोसथके लिये आ रहा था । रास्तेमें नदी पार करते गिर गया इसलिये मेरे चीवर भीगे हैं । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी जो सीमा सघने करार दी है सघ उस सीमाको तीन चीवरोका नियम न रखकर करार दे । 17

और भिक्षुओ ! इस प्रकार करार देना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने । सघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है, यदि सघ उचित समझे तो वह उस सीमाको तीन चीवरका नियम न रखकर करार दे—यह सूचना है ।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने । सघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है उस सीमाको सघ तीन चीवरका नियम न रखकर करार देता है । जिस आयुष्मान्को इस सीमामें तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो बोले ।

ग धा र णा—"सघको उस सीमाका तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना स्वीकृत है इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ ।"

(४) उपोसथमें आनेमें चीवरोंका नियम

१—उस समय भिक्षु यह सोच कि भगवान्ने तीन चीवरके नियम न होनेके करार देनेकी अनुमति दी है, (गृहस्थोंके) घरमें चीवरोको डाल आते थे और वह चीवर खो भी जाते थे, चूहोंसे खा भी लिये जाते थे और भिक्षु कम कपडेवाले या रूखे चीवरोवाले हो जाते थे । (जब दूसरे) भिक्षु ऐसा पूछते—आवुसो ! क्यो तुम कम कपळेवाले रूखे चीवरो वाले हो ?"

"आवुसो ! हमने (यह सोचा कि) भगवान्ने तीन चीवरोके नियम न होनेके करार देनेकी अनुमति दी है, (गृहस्थोंके) घरमें चीवरोको डाल आये थे और वे चीवर खो गये, जल गये, चूहोंसे खा भी लिये गये, इसी कारण हम कम कपळेवाले या रूखे चीवरोवाले हो गये हैं । भगवान् से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सघने जो वह एक उपोसथवाले, एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है सघ उस सीमाको ग्राम और ग्रामके टोलेके अपवादके साथ तीन चीवरका नियम न होनेका करार दे । 18

"और भिक्षुओ! इस प्रकार करार करना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति— 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले एक निवासस्थानकी सीमा करार की है यदि संघ उचित समझे तो गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाको तीन चीवरोंका नियम लागू न होना करार दे'—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण— 'भन्ते! संघ मेरी सुने—संघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार की थी गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ संघ उस सीमामें तीन चीवरोंका नियम न होना करार देता है। जिस आयुष्मान्‌को गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ इस सीमामें तीन चीवरका नियम न होना करार देना पसंद हो वह चुप रहे जिसे पसंद न हो वह बोले। ।

ग. धा र णा— 'संघको गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाका तीन चीवरोंका नियम न रखना करार देना पसन्द है इसीलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(५) सीमा और चीवरके नियम

१— 'भिक्षुओ! सीमाके करार देते वक्त पहिले एक निवासकी सीमा करार देनी चाहिये। फिर तीन चीवरके नियम न रहनेको करार देना चाहिये। भिक्षुओ! सीमाका त्याग करते वक्त पहले तीन चीवरके नियम न रहनेको त्यागना चाहिये पीछे (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये। 19

"और भिक्षुओ! तीन चीवरके नियम न रहनेको इस प्रकार त्यागना चाहिये चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति— 'भन्ते! संघ मेरी सुने। जो वह संघने तीन चीवरके नियम न रहनेको करार किया था यदि संघ उचित समझे तो उसे त्याग दे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—"भन्ते! संघ मेरी सुने। जो वह संघने तीन चीवरके नियम न होनेको करार दिया था संघ उसे त्यागता है। जिस आयुष्मान्‌को यह तीन चीवरोंके नियम न रहनेका त्याग पसंद है वह चुप रहे जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

ग. धा र णा— 'संघको पसंद है, इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।"

२—"और भिक्षुओ! इस प्रकार (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति— 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघने जो एक उपोसथवाले निवास-स्थानकी सीमा करार की थी यदि संघ उचित समझे तो संघ उस सीमाको त्याग दे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण— 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघने जो वह एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा करार की थी संघ उस सीमाको त्यागता है। जिस आयुष्मान्‌को इस सीमाका त्याग पसंद है वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है वह बोले। ।

ग. धा र णा— 'संघने उस सीमाको त्याग किया संघको यह पसंद है इसलिये चुप है— ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

३—"भिक्षुओ! सीमाके न करार देनेपर, न स्थापित किये जानेपर (भिक्षु) जिस गाँव या कस्बेका आश्रय लेकर रहता है उस गाँव या कस्बेकी जो सीमा है वही एक उपोसथवाला एक निवास स्थान है। गाँव न होनेपर भिक्षुओ! जंगलके चारो ओर जो सात अब्भन्तर है वही वहाँ एक उपोसथ वाले एक निवास-स्थानकी सीमा है। भिक्षुओ! सभी नदियाँ असीम हैं सभी समुद्र असीम हैं सभी स्वाभाविक सरोवर असीम हैं। भिक्षुओ! नदी समुद्र या स्वाभाविक सरोवरमें मझोले (कदके) पुरुषके चारो ओर जो पानीका सिंचन होता है वही वहाँ एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा है। 20

(६) सीमाके भीतर दूसरी सीमा नहीं

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सीमाके भीतर सीमा डालते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई है उनका वह काम धर्मानुसार अटूट और यथार्थ है। भिक्षुओ! जिनकी सीमा पीछे करार दी गई है उनका वह काम धर्म-विरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ! सीमाके भीतर सीमा न डालनी चाहिये। जो डाले उसे दुक्कट का दोष हो।" 21

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सीमामें सीमा लगाते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई है उनका काम धर्मानुकूल, अटूट, यथार्थ है। जिनकी सीमा पीछे करार दी गई उनका काम धर्मविरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ! सीमामें सीमा नही लगानी चाहिये। जो लगाये उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सीमाको करार देते वक्त बीचमें फासिला रखकर मीमा करार देनेकी।" 22

(७) उपोसथोंकी संख्या

१—उस समय भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—कितने उपोसथ है? भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! चतुर्दशी, पचदशी (=पूर्णमासी)के यह दो उपोसथ हैं, । 23

२—भिक्षुओके (मनमें) यह हुआ—'कितने उपोसथ कर्म है?' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! यह चार उपोसथ कर्म है (१) (सघके कुछ) भागका धर्म-विरुद्ध (=नियम विरुद्ध) उपोसथ कर्म करना, (२) समग्र (सघ)का धर्म-विरुद्ध उपोसथ कर्म करना, (३) भागका धर्मानुकूल उपोसथ करना, (४) समग्रका धर्मानुकूल उपोसथ कर्म करना। इनमें भिक्षुओ! जो यह धर्म-विरुद्ध (कुछ) भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ! इस प्रकारका उपोसथ कर्म नही करना चाहिये। भिक्षुओ! मैने इस प्रकारके उपोसथकर्म (करने)की अनुमति नही दी है। और भिक्षुओ! जो यह धर्म-विरुद्ध समग्रका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नही करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नही दी है। और भिक्षुओ! जो यह धर्मानुकूल भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नही करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नही दी। उनमें भिक्षुओ! जो यह धर्मानुकूल समग्र(सघ)का उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको करना चाहिये। मैने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ! जो वह धर्मानुकूल समग्रका उपोसथ कर्म है उसे करूँगा—ऐसा भिक्षुओ! तुम्हे सीखना चाहिये।"24

§३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और पूर्वके कृत्य

(१) आवृत्तिमे क्रम

१—तब भिक्षुओके (मनमें) ऐमा हुआ—'कितने प्रातिमोक्षके पाठ है?' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! यह पाँच प्रातिमोक्षके पाठ है—(१) निदानका पाठ करके बाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये—यह प्रथम प्रातिमोक्षका पाठ है, (२) निदानका पाठ करके चार पाराजिकोका पाठ करना चाहिये। शेषको स्मृतिसे सुनाना चाहिये, यह दूसरा प्रातिमोक्षका पाठ है,

(३) निदानका पाठ करके और चार पाराजिकोंका पाठ करके और तेरह संघादिसेसोंका पाठ करके बाकीको स्मृतिसे सुनाना चाहिये यह तीसरा प्रातिमोक्षका पाठ है। (४) निदानका पाठ करके चार पाराजिकोंका पाठ करके तेरह संघादिसेसोंका पाठ करके दो अनियतोंका पाठ करके बाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये यह चौथा प्रातिमोक्षका पाठ है। (५) और विस्तारके साथ पाँचवाँ। भिक्षुओ! यह पाँच प्रातिमोक्षके पाठ हैं। 25

उस समय भगवान्‌ने प्रातिमोक्षके पाठको संक्षेपसे कहनेकी अनुमति दी थी इसलिये (भिक्षु) सर्वथा संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। 26

(२) आपत्कालमें संक्षिप्त आवृत्ति

१—उस समय कोसल देशके एक आवासमें उपोसथके दिन शबरों (के उपद्रव)का भय था (इसलिये) भिक्षु विस्तारके साथ प्रातिमोक्षका पाठ नहीं कर सके। भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ विघ्न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी। 27

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बाधा न होनेपर भी संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! बाधा न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बाधा होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी। वह बाधायें यह हैं—(१) राज-बाधा (२) चोर-बाधा (३) अग्नि-बाधा (४) उदक-बाधा (५) मनुष्य-बाधा (६) अमनुष्य-बाधा (७) हिंस्र-पशु-बाधा (८) सरीसृप-बाधा ( ) जीवनकी बाधा (१)ब्रह्मचर्यकी बाधा—भिक्षुओ! ऐसे विघ्नोंके होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठकी अनुमति देता हूँ और बाधा न होनेपर विस्तारसे। 28

(३) याचना करनेपर उपदेश देना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघके मध्यमें बिना याचना किये ही धर्मोपदेश करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुओ! याचना किये बिना संघके बीचमें धर्मोपदेश नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको स्वयं उपदेश करनेकी या दूसरेको (इसके लिये) प्रार्थना करनेकी। 29

(४) सम्मति होनेपर विनय पूछना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना सम्मतिके संघके बीचमें विनय पूछते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! बिना सम्मतिके संघके बीचमें विनयको नहीं पूछना चाहिये। जो पूछे उसको दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति पाये (भिक्षु)को संघके बीच विनय पूछनेकी। 30

"और भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये?—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो मैं इस नाम

वाले भिक्षुसे विनय पूछूँ। इस प्रकार स्वय अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये ? चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे। भन्ते ! सघ मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु), इस नामवाले (भिक्षु)से विनय पूछे। इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये।"

२—उस समय अच्छे भिक्षु (सघकी) सम्मतिसे सघके बीचमें विनय पूछते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओंको प्रतिकूलता होती थी, नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सघके बीचमे (उसकी) सम्मतिसे परिषद्को देखकर व्यक्तिकी तुलना करके विनय पूछनेकी।" 31

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सघके बीचमें सम्मतिके बिना ही विनयका उत्तर देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! सम्मति न पाया सघके बीचमे विनयका उत्तर न देदे। जो उत्तर दे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सम्मति-प्राप्तको सघके बीचमे विनयका उत्तर देनेकी।" 32

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार समन्त्रणा करनी चाहिये—स्वय अपने लिये समन्त्रणा करनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये मन्त्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ ! स्वय अपने लिये समन्त्रणा करनी चाहिये ? चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—पूज्य सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो मैं इस नामवाले (भिक्षु) द्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दूँ। इस प्रकार स्वय अपने लिये समन्त्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ ! दूसरेको दूसरेके लिये समन्त्रणा करनी चाहिये ?—'चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—पूज्य सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले भिक्षुद्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दे।' इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये समन्त्रणा करनी चाहिये।"

४—उस समय भले भिक्षु सम्मति पाकर सघके बीचमें विनयका उत्तर देते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओंको प्रतिकूलता और नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखलाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सघके बीचमे सम्मति-प्राप्त द्वारा परिषद्की देख भालकर व्यक्तिकी तुलनाकर विनयके उत्तर देनेकी।" 33

(५) अवकाश लेकर दोषारोप करना

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु मौका न दिये ही भिक्षुओपर दोष लगाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बिना अवकाश दिये भिक्षुको दोष नही लगाना चाहिये। जो दोष लगाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अवकाश कराके दोष लगानेकी। आयुष्मान् मेरे लिये अवकाश करें, मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।" 34

२—उस समय भले भिक्षुओंसे ष ड् व र्गी य भिक्षु अवकाश कराकर दोष लगाते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओंको डाह नाराजगी थी, और वह वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, अवकाश करनेपर भी तुलना करके व्यक्तिको दोष लगानेकी।"

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु, भले भिक्षु हमसे पहले अवकाश कराते हैं (यह सोच) पहिले ही आपत्ति-रहित शुद्ध भिक्षुओंको व्यर्थ, अकारण, अवकाश कराते थे। भगवान्से यह बात कही। 35

"भिक्षुओ ! आपत्ति-रहित शुद्ध भिक्षुओंको व्यर्थ अकारण अवकाश (Point of order)

(३) निदानका पाठ करके और चार पा रा जि को का पाठ करके और तेरह स घा दि से सो का पाठ करके बाकीको स्मृतिसे सुनाना चाहिये यह तीसरा प्रातिमोक्षका पाठ है (४) निदानका पाठ करके चार पाराजिकाका पाठ करके तेरह संघादिसेसोका पाठ करके दो अ नि य तो का पाठ करके बाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये यह चौथा प्रातिमोक्षका पाठ है। (५) और विस्तारके साथ पाँचवाँ। भिक्षुओ! यह पाँच प्रातिमोक्षके पाठ हैं। 25

उस समय भगवान्‌ने प्रातिमोक्षके पाठका संक्षेपसे कहनेकी अनुमति दी थी इस-लिये (भिक्षु) सर्वदा संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दु क्क ट का दोष हो। 26

(२) आपत्कालमें संक्षिप्त आवृत्ति

१—उस समय को स ल देशके एक आवासमें उपोसथके दिन शबरा (के उपद्रव)का भय था (इसलिये) भिक्षु विस्तारके साथ प्रातिमोक्षका पाठ नहीं कर सके। भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ अनुमति देता हूँ विघ्न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी।" 27

२—उस समय षड्‌वर्गीय भिक्षु बाधा न होनेपर भी संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान् से यह बात कही—

"भिक्षुओ! बाधा न होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बाधा होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी। यह बाधायें यह हैं—(१) राज-बाधा (२) चोर-बाधा (३) अग्नि-बाधा (४) उदक-बाधा (५) मनुष्य-बाधा (६) अमनुष्य-बाधा (७) हिंसक-जन्तु-बाधा (८) सरीसृप-बाधा (९) जीवनकी बाधा (१०) *ब्रह्मचर्यकी बाधा—भिक्षुओ! ऐसे विघ्नोंके होनेपर संक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठकी* अनुमति देता हूँ और बाधा न होनेपर विस्तारसे। 28

(३) याचना करनेपर उपदेश देना

उस समय षड्‌वर्गीय भिक्षु संघके मध्यमें बिना याचना किये ही धर्मोपदेश करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! याचना किये बिना संघके बीचमें धर्मोपदेश नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको स्वयं उपदेश करनेकी या दूसरेको (इसके लिये) प्रार्थना करनेकी। 29

(४) सम्मति होनेपर विनय पूछना

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु बिना सम्मतिके संघके बीचमें विनय पूछते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बिना सम्मतिके संघके बीचमें विनयको नहीं पूछना चाहिये। जो पूछे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति पाये (भिक्षु)को संघके बीच विनय पूछनेकी। 30

और भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये *या दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे स्वयं अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये?*— चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो मैं इस नाम

२—चोदनावत्थु

तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहार करके चोदनावत्थुकी ओर विचरनेके लिये चल पळे। क्रमश विचरते जहाँ चोदनावत्थु था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चोदनावत्थु (=चोदना-वस्तु)मे विहार करते थे।

(१०) प्रातिमोक्षकी आवृत्ति कैसा भिक्षु करे

१—उस समय एक आवासमे बहुतसे भिक्षु रहते थे। वहाँका स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु मूर्ख अजान था। वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानता था। तब उन भिक्षुओ(के मनमे) यह हुआ—'भगवान्ने स्थविर (=वृद्ध)के आश्रयसे प्रातिमोक्षका विधान किया है। और यह हमारा स्थविर मूर्ख, अजान है। यह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्राति-मोक्ष-पाठको नही जानता। हमे कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, वहाँ जो भिक्षु चतुर, समर्थ हो, उसके आश्रयमें प्रातिमोक्ष हो।" 45

२—उस समय उपोसथ के दिन एक आवासमें बहुतसे मूर्ख, अजान भिक्षु रहते थे, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते थे। उन्होंने स्थविरसे प्रार्थना की—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नही है।' दूसरे स्थविरसे प्रार्थना की—०। तीसरे स्थविरसे प्रार्थना की—"भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नही है।' इसी प्रकारसे सघके (सबसे) नये (भिक्षु)तकसे प्रार्थना-की— 'आयुष्मान् प्रातिमोक्ष-पाठ करे।' उसने भी उत्तर दिया—'भन्ते! मेरे लिये (यह) नही है।' भगवान्से यह बात कही—

'यदि भिक्षुओ! एक आवासमे बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपो-सथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वह स्थविर (=भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें' और वह ऐसा कहे—'मेरे लिये यह करना नही है।' ० इसी प्रकार सघके (सबसे) नये (भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'आयुष्मान्! प्रातिमोक्षका पाठ करें।' वह भी ऐसा कहे—'यह मेरे लिये करना नही है।' तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको एक भिक्षु यह कहकर चारो ओर आवासमे भेजना चाहिये—जा आवुस! सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको याद करके आजा।"

तब भिक्षुओको ऐसा हुआ 'किसके द्वारा भेजना चाहिये?' भगवान्से कहा।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 46

३—स्थविरके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नही जाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! स्थविरके आज्ञा देनेपर नीरोग (भिक्षु)को जानेसे इनकार नही करना चाहिये। जो जानेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

३—राजगृह

(११) काल और अककी विद्या सीखनी चाहिये

१—तब भगवान् चोदनावत्थुमें इच्छानुसार विहार करके फिर राजगृह चले आये। उस समय भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे लोग पूछते थे—'भन्ते! पक्षकी (आज) कौन (तिथि) है?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो! हमें मालूम नही।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पक्ष-की गणना मात्रको भी नही जानते। यह और भली बात क्या जानेंगे!' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्षकी गणना सीखनेकी।" 48

तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'किनको पक्ष-गणना सीखनी चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सबको ही पक्ष-गणना सीखनेकी।" 49

नहीं करना चाहिये जो करावे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ व्यक्तिको तोलकर अवकाश करानेकी। 36

(६) नियम-विरुद्ध कामके लिये फट्कार

१—उस समय ष इ् व र्गी य भिक्षु संघके बीचम अधर्मका (=सभाके नियमके विरुद्ध) काम करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधर्मका काम नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। 37

तिसपर भी अधर्मका काम करते ही थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधर्मका काम करनेपर धिक्कारनेकी। 38

२—उस समय भले भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओको अधर्मके काम करनेपर धिक्कारते थे। षड्वर्गीय भिक्षु द्रोह करते नाराज होते थे और वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दोषको प्रकट करनेकी। 39

३—उन्हीं षड्वर्गीय (भिक्षुओ)के पास दोषको प्रकट करते थे (इसपर) षड्वर्गीय भिक्षु द्रोह करते नाराज होते और वधकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार पाँच (व्यक्तियों) द्वारा धिक्कारनेकी और दो तीन द्वारा दोषको प्रकट करनेकी और एकको 'यह मुझे पसन्द नहीं है' ऐसा अधिष्ठान करनेकी। 40

(७) प्रातिमोक्षको ध्यानसे सुनाना

उस समय ष इ् व र्गी य भिक्षु संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते हुए जानबूझकर नहीं सुनाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष पाठ करनेवालेको जानबूझकर-न-सुनाना नहीं करना चाहिये। जो न सुनावे उसे दुक्कटका दोष होता है। 41

(८) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमें स्वर नियम

उस समय आयुष्मान् उ दा यि संघके प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवाले थे। उनका स्वर कौवे जैसा था। तब आयुष्मान उ दा यि को ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है प्रातिमोक्ष-पाठ करने वालेको (जोरसे) सुनानेका और मैं काक जैसे स्वरवाला हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवालेको (जोरसे) सुनानेके लिये कोशिश करनेकी कोशिश करनेवालेको दोष नहीं। 42

(९) कहाँ और कब प्रातिमोक्षकी आवृत्ति निषिद्ध है

१—उस समय देवदत्त गृहस्थोंसे युक्त परिषद्‌मे प्रातिमोक्ष-पाठ करता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! गृहस्थ-युक्त परिषद्‌में प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। 43

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना कहे ही संघके बीचमें प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बिना प्रार्थना किये संघके बीचमें प्रातिमोक्ष-पाठ नहीं करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविरके आश्रयसे प्रातिमोक्षकी। 44

अन्यतीर्थिक भाणवार समाप्त ॥१॥

२—चोदनावत्थु

तव भगवान् राजगृह में इच्छानुसार विहार करके चोदनावत्थु की ओर विचरनेके लिये चल पळे। क्रमश विचरते जहाँ चोदनावत्थु था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चोदनावत्थु (=चोदना-वस्तु)में विहार करते थे।

(१०) प्रातिमोक्षकी आवृत्ति कैसा भिक्षु करे

१—उस समय एक आवासमें वहुतसे भिक्षु रहते थे। वहाँका स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु मूर्ख अजान था। वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानता था। तव उन भिक्षुओ(के मनमे) यह हुआ—'भगवान्ने स्थविर (=वृद्ध)के आश्रयसे प्रातिमोक्षका विधान किया है। और यह हमारा स्थविर मूर्ख, अजान है। यह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानता। हमें कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, वहाँ जो भिक्षु चतुर, समर्थ हो, उसके आश्रयमे प्रातिमोक्ष हो।" 45

२—उस समय उपोसथ के दिन एक आवासमें वहुतसे मूर्ख, अजान भिक्षु रहते थे, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते थे। उन्होने स्थविरसे प्रार्थना की—'भन्ते ! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने उत्तर दिया—'आवुसो ! मेरे लिये (यह) नही है।' दूसरे स्थविरसे प्रार्थना की—०। तीसरे स्थविरसे प्रार्थना की—"भन्ते ! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें।' उसने भी उत्तर दिया—'आवुसो ! मेरे लिये (यह) नही है।' इसी प्रकारसे सघके (सवमे) नये (भिक्षु)तकसे प्रार्थना-की— 'आयुष्मान् प्रातिमोक्ष-पाठ करे।' उसने भी उत्तर दिया—'भन्ते ! मेरे लिये (यह) नही है।' भगवान्से यह वात कही—

'यदि भिक्षुओ ! एक आवासमें वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हैं और वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वह स्थविर (=भिक्षु)से प्रार्थना करते हैं—'भन्ते ! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करें' और वह ऐसा कहे—'मेरे लिये यह करना नही है।' ० इसी प्रकार सघके (सवसे) नये (भिक्षु)से प्रार्थना करते है—'आयुष्मान् ! प्रातिमोक्षका पाठ करें।' वह भी ऐसा कहे—'यह मेरे लिये करना नही है।' तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको एक भिक्षु यह कहकर चारो ओर आवासमें भेजना चाहिये—जा आवुस ! सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको याद करके आजा।"

तव भिक्षुओको ऐसा हुआ 'किसके द्वारा भेजना चाहिये ?' भगवान्से कहा।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 46

३—स्थविरके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नही जाते थे। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! स्थविरके आज्ञा देनेपर नीरोग (भिक्षु)को जानेसे इनकार नही करना चाहिये। जो जानेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

३—राजगृह

(११) काल और अककी विद्या सीखनी चाहिये

१—तव भगवान् चोदनावत्थु मे इच्छानुसार विहार करके फिर राजगृह चले आये। उस समय भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे लोग पूछते थे—'भन्ते ! पक्षकी (आज) कौन (तिथि) है ?' भिक्षु ऐसा वोलते थे—'आवुसो ! हमें मालूम नही।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पक्ष-की गणना मात्रको भी नही जानते। यह और भली वात क्या जानेंगे !' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पक्षकी गणना सीखनेकी।" 48

तव भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'किनको पक्ष-गणना सीखनी चाहिये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सवको ही पक्ष-गणना सीखनेकी।" 49

२—उस समय लोग भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे पूछते थे—'भन्ते ! भिक्षु कितने हैं ?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो ! हमें मालूम नहीं।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण एक दूसरेको भी नहीं जानते और यह क्या किसी भली बातको जानेंगे !' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंके गिननेकी। 50

३—तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'भिक्षुओंकी गणना कब करनी चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन नाम लेकर या शलाका बाँटकर गिनती करनेकी। 51

(१२) उपोसथके समयकी पूर्वसे सूचना

१—उस समय आज उपोसथ है—यह न जानकर दूरके गाँवको भिक्षाटनके लिये चले जाते थे और वह (उपोसथमें) प्रातिमोक्षके पाठ करते वक्त भी पहुँचते थे पाठके समाप्त हो जानेपर भी पहुँचते थे।—भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आज उपोसथ है इसको बतलानेकी। 52

२—तब भिक्षुओंके (मनमें) यह हुआ—'किसको कहना चाहिये ?'—भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधिक बूढ़े स्थविर भिक्षुको बतलानेकी। 53

३—उस समय एक अधिक वृद्ध स्थविर याद नहीं रखता था। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भोजनके वक्त बतलानेकी। 54

४—भोजनके समय भी नहीं याद रखता। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जिस समय याद हो उसी समय बतलानेकी। 55

(१३) उपोसथागारकी सफ़ाई आदि

१—(क) उस समय एक आवासमें उपोसथागार मलिन रहता था। नये आनेवाले भिक्षु हैरान होते थे—'क्या भिक्षु उपोसथागारमें झाड़ू नहीं देते !' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमें झाड़ू देनेकी। 56

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'किसे उपोसथागारमें झाड़ू देना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी। 57

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नहीं झाड़ू देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते झाड़ू देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये। जो झाड़ू देनेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो। 58

२—(क) उस समय उपोसथागारमें आसन बिछा नहीं होता था। भिक्षु भूमिपर ही बैठ जाते थे जिससे शरीर भी चीवर भी मैले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमें आसन बिछानेकी। 59

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'उपोसथागारमें किसे आसन बिछाना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी। 60

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर भी नये भिक्षु नहीं मानते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते इनकार नहीं करना चाहिये। जो इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो। 61

३—(क) उस समय उपोसथागारमें दीपक नही होता था। भिक्षु अधकारमें शरीरको भी चहल देते थे, चीवरको भी चहल देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमें दीपक जलानेकी।" [1] ०। 62

§४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ

(१) लम्बी यात्राके लिये आज्ञा

उस समय वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षुओने लबी यात्राको जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यहाँ वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु लम्बी यात्रा जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछते। भिक्षुओ! उन्हे आचार्य उपाध्यायसे पूछना चाहिये कि वह कहाँ जायँगे किसके साथ जायँगे। भिक्षुओ! यदि वह मूर्ख अजान भिक्षु दूसरे मूर्ख अज्ञान भिक्षुओंको साथी वतलायें तो आचार्य उपाध्यायोको अनुमति नहीं देनी चाहिये। यदि अनुमति दे तो दुक्कटका दोप हो, और यदि भिक्षुओ! वह मूर्ख अजान भिक्षु आचार्य उपाध्यायकी अनुमति विना ही चले जायँ तो उन्हे दुक्कटका दोप हो।" 63

(२) प्रातिमोक्ष जाननेवाला भिक्षु न होनेपर आवासमें नही रहना चाहिये

"(क) यदि भिक्षुओ! एक आवासमें वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वहाँ दूसरे वहुश्रुत (=विद्वान्), आ ग म (=वुद्ध उपदेश)को जाननेवाले है, ध र्म ध र (=बुद्धके सुत्तोको जाननेवाले), विनयधर (=भिक्षु नियमोको याद रखनेवाले), मा त्रि का ध र (=सुत्तोमें आई दर्शन-सवधी पक्तियोको याद रखनेवाले), पडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, सकोची और सीख चाहनेवाले भिक्षु आवें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको उस भिक्षुका सग्रह करना चाहिये=अनुग्रह करना चाहिये, (आवश्यक वस्तुएँ) प्रदान करनी चाहिए। (स्नान) चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेके पानीसे सेवा करनी चाहिये। यदि सग्रह=अनुग्रह, (आवश्यक वस्तु) प्रदान, चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेका पानी द्वारा सेवा न करे तो दुक्कटका दोप हो। (ख) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते तो भिक्षुओ उन भिक्षुओको आवासके चारो ओर (यह कहकर) एक भिक्षुको भेजना चाहिये—आवुस! जा सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख कर चला आ। इस प्रकार यदि हो जाय तो अच्छा नही तो उन सभी भिक्षुओको, जहाँ उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ जाननेवाले रहते हैं उस आवासमें चला जाना चाहिये, यदि न चले जायँ तो दुक्कटका दोप हो। (ग) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु वर्पावास करते है, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आवासके चारो ओर भेजना चाहिये—जा आवुस, सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख आ। इस प्रकार यदि मिले तो अच्छा, नही तो भिक्षुओ! उन्हें उस आवासमें वर्पावास नही करना चाहिये, यदि वर्पावास करें तो उन्हे दुक्कटका दोप हो।" 64

---

[1] आसन और झाड़ू देनेके प्रकरणके समानही यहाँ भी पाठ है।

२—उस समय लोग भिक्षाटन करते भिक्षुओंसे पूछते थे—'भन्ते ! भिक्षु कितने हैं ?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो ! हमें मालूम नहीं।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण एक दूसरेको भी नहीं जानते और यह क्या किसी भली बातको जानेंगे !' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंके गिननेकी। 50

३—तब भिक्षुओंको (मनमें) यह हुआ—'भिक्षुओंकी गणना कब करनी चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन नाम लेकर या शलाका बाँटकर गिनती करनेकी। 51

(१२) उपोसथके समयकी पूर्वसे सूचना

१—उस समय आज उपोसथ है—यह न जानकर दूरके गाँवको भिक्षाटनके लिये चले जाते थे और वह (उपोसथमें) प्रातिमोक्ष पाठ करते वक्त भी पहुँचते थे पाठके समाप्त हो जानेपर भी पहुँचते थे।—भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आज उपोसथ है इसको बतलानेकी। 52

२—तब भिक्षुओंको (मनमें) यह हुआ—'किसको कहना चाहिये ?'—भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधिक बूढ़े स्थविर भिक्षुको बतलानेकी। 53

३—उस समय एक अधिक बूढ़ स्थविर याद नहीं रखता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भोजनके वक्त बतलानेकी। 54

४—भोजनके समय भी नहीं याद रखता। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जिस समय याद हो उसी समय बतलानेकी। 55

(१३) उपोसथागारकी सफाई आदि

१—(क) उस समय एक आवासमें उपोसथागार मलिन रहता था। नये आनेवाले भिक्षु हैरान होते थे—'क्यों भिक्षु उपोसथागारमें झाड़ू नहीं देते !' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमें झाड़ू देनेकी। 56

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'किसे उपोसथागारमें झाड़ू देना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी। 57

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नहीं झाड़ू देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते झाड़ू देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये। जो झाड़ू देनेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 58

२—(क) उस समय उपोसथागारमें आसन बिछा नहीं होता था। भिक्षु भूमिपर ही बैठ जाते थे जिससे शरीर भी चीवर भी मैले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमें आसन बिछानेकी।" 59

(ख) तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'उपोसथागारमें किसे आसन बिछाना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी। 60

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर भी नये भिक्षु नहीं मानते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते इनकार नहीं करना चाहिये। जो इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 61

३—(क) उस समय उपोसथागारमें दीपक नही होता था। भिक्षु अधकारमें शरीरको भी चहल देते थे, चीवरको भी चहल देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमे दीपक जलानेकी।" [१] ०। 62

§४—असाधारण अवस्थामे उपोसथ

(१) लम्बी यात्राके लिये आज्ञा

उस समय बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षुओने लवी यात्राको जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यहाँ बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु लम्बी यात्रा जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछते। भिक्षुओ! उन्हे आचार्य उपाध्यायसे पूछना चाहिये कि वह कहाँ जायँगे किसके साथ जायँगे। भिक्षुओ! यदि वह मूर्ख अजान भिक्षु दूसरे मूर्ख अज्ञान भिक्षुओको साथी बतलायें तो आचार्य उपाध्यायोको अनुमति नही देनी चाहिये। यदि अनुमति दें तो दुक्कटका दोष हो, और यदि भिक्षुओ! वह मूर्ख अजान भिक्षु आचार्य उपाध्यायकी अनुमति बिना ही चले जायें तो उन्हे दुक्कटका दोष हो।" 63

(२) प्रातिमोक्ष जाननेवाला भिक्षु न होनेपर आवासमे नही रहना चाहिये

"(क) यदि भिक्षुओ! एक आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वहाँ दूसरे बहुश्रुत (=विद्वान्), आगम (=बुद्ध उपदेश)को जाननेवाले है, धर्मधर (=बुद्धके सुत्तोको जाननेवाले), विनयधर (=भिक्षु नियमोको याद रखनेवाले), मात्रिकाधर (=सुत्तोमे आई दर्शन-सबधी पक्तियोको याद रखनेवाले), पडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, सकोची और सीख चाहनेवाले भिक्षु आवें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको उस भिक्षुका सग्रह करना चाहिये=अनुग्रह करना चाहिये, (आवश्यक वस्तुएँ) प्रदान करनी चाहिए। (स्नान) चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेके पानीसे सेवा करनी चाहिये। यदि सग्रह=अनुग्रह, (आवश्यक वस्तु) प्रदान, चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेका पानी द्वारा सेवा न करे तो दुक्कटका दोष हो। (ख) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते तो भिक्षुओ उन भिक्षुओको आवासके चारो ओर (यह कहकर) एक भिक्षुको भेजना चाहिये—आवुस! जा सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख कर चला आ। इस प्रकार यदि हो जाय तो अच्छा नही तो उन सभी भिक्षुओको, जहाँ उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ जाननेवाले रहते है उस आवासमे चला जाना चाहिये, यदि न चले जायें तो दुक्कटका दोष हो। (ग) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु वर्षावास करते है, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आवासके चारो ओर भेजना चाहिये—जा आवुस, सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख आ। इस प्रकार यदि मिले तो अच्छा, नही तो भिक्षुओ! उन्हे उस आवासमें वर्षावास नही करना चाहिये, यदि वर्षावास करें तो उन्हे दुक्कटका दोष हो।" 64

---

[१] आसन और झाळू देनेके प्रकरणके समानही यहाँ भी पाठ है।

(३) उपोसथ या संघकर्ममें अनुपस्थित व्यक्तिका कर्तव्य

१—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! (सब लोग) जमा हो जाओ संघ उपोसथ करेगा।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! एक भिक्षु रोगी है। वह नहीं आया है।

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको (अपनी) शुद्धि (की बात) भेजनेकी। 65

"और भिक्षुओ! (शुद्धिकी बात) इस प्रकार भेजनी चाहिये—उस रोगीको एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासंगको एक कंधेपर कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—'शुद्धि देता हूँ मेरी शुद्धिको ले जाओ मेरी शुद्धिको (संघमें जाकर) कहना। इस प्रकार कायासे सूचित करे वचनसे सूचित करे, काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई (समझी) जाती है। यदि न कायासे सूचित करे न वचनसे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई नहीं होती। इस प्रकार यदि कर सके तो ठीक यदि न कर सके तो भिक्षुओ! वह भिक्षु चारपाई, या चौकीपर (बैठाकर) संघके बीचमें लाया जाय और उपोसथ करे। यदि भिक्षुओ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसा हो—'यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़ जायगा या मृत्यु होगी' तो भिक्षुओ! रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये। (बल्कि) संघको वहाँ जाकर उपोसथ करना चाहिये किन्तु संघके एक भागको उपोसथ नहीं करना चाहिये यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।

'यदि भिक्षुओ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला वहाँसे चला जाय तो शुद्धि दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! शुद्धि (की बात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला (भिक्षु-वेष) छोळ जाये या मर जाये या श्रामणेर बन जाय या भिक्षु-नियमको त्याग दे या अन्तिम अपराध (=पाराजिक)का अपराधी हो जाये या पागल विक्षिप्त चित्त मूर्छित हो जाये या दोष न स्वीकार करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये या दोष या दोषके कामसे उत्क्षिप्तक हो जाय या बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे पंडक माना जाने लगे चोरीसे भिक्षु-वस्त्र पहननेवाला माना जाने लगे या तीर्थिकोंमें चला गया हो या तिर्यक योनिमें चलागया माना जाने लगे मातृघातक पितृघातक अर्हत् घातक भिक्षुणी-दूषक संघमें फूट डालनेवाला (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला (स्त्री पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे तो दूसरेको शुद्धि प्रदान करनी चाहिये। भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद चला जाये तो शुद्धि नहीं ले जाई गई समझनी चाहिये। भिक्षुओ! यदि शुद्धि ले जाने वाला शुद्धिके दे देनेके बाद रास्तेमें ही (भिक्षु आश्रमसे) निकल जाय [1] (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे तो शुद्धि ले जाई गई समझनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके बाद संघमें जाकर सो जानेसे नहीं बतलाता प्रमाद करनेसे नहीं बोलता (अपराध) करनेसे नहीं बोलता तो शुद्धि ले जाई गई होती है। और शुद्धि ले जानेवालेको दोष नहीं। यदि भिक्षुओ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धिके दे देनेके बाद संघमें पहुँचकर जान बूझकर नहीं बतलाता तो भी शुद्धि ले जाई गई होती है और शुद्धि ले जानेवालेको दुक्कटका दोष होता है। 66

२—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया। 'भिक्षुओ! जमा हो। संघ (विवाद-निर्णय आदि) कर्मको करेगा।

ऐसा कहने पर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते! एक भिक्षु रोगी है नहीं आया है।

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको (अपना) छन्द (=सम्मति vote) भेजनेकी। 67

---

[1] पहलेहीकी तरह दुहराना चाहिये।

"और भिक्षुओ ! छ द इस प्रकार भेजना चाहिये—०[1] । छ द ले जानेवाला छ द के दे देनेके वाद सघमें पहुँचकर जान वूझकर नही वतलाता, तो भी छ द ले जाया गया होता है, और छद ले जाने-वालेको दु क्क ट का दोष होता है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन शुद्धि देते वक्त छदके भी देनेकी, यदि सघको कुछ करणीय हो।"

३—उस समय एक भिक्षुको उपोसथके दिन उसके खान्दानवालोंने पकळ लिया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको उसके खान्दानवाले पकळ ले तो (दूसरे) भिक्षुओ-को खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा हो आयुष्मानो ! तुम मुहूर्त भर इस भिक्षुको छोळ दो जितनेमे कि यह भिक्षु उपोसथ करले।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षुओंको खान्दानवालोंसे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मानो ! मुहूर्त भरके लिये जरा एक ओर हो जाओ, जितनेमे कि यह भिक्षु अपनी शुद्धि दे दे।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षु खान्दान वालोसे ऐसा कहे—'आयुष्मानो ! तुम लोग मुहूर्त भरके लिये इस भिक्षुको सीमाके वाहर ले जाओ जितनेमे कि सघ उपोसथ करले।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भी सघके एक भागको उपोसथ नही करना चाहिये, यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

४—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको राजा पकळे, ०। 69

५—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको चोर पकळे, ०। 70

६—" ० वदमाश पकळे, ०। 71

७—"०भिक्षुके शत्रु पकळे, ०। 72

(४) पागलके लिये सघकी स्वीकृति

८—तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ ! जमा हो। सघको करणीय (काम) है।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! एक ग र्ग नामवाला भिक्षु उन्मत्त है। वह नही आया।"

"भिक्षुओ ! यह दो प्रकारके उन्मत्त होते है—(१) भिक्षु उन्मत्त है और उपोसथको याद भी रखता है नही भी रखता है, (२) भिक्षु उन्मत्त है और सघ कर्मको याद भी रखता है, नही भी रखता है, है लेकिन (उपोसथ) नही याद रखता, उपोसथमे आता भी है नही भी आता, सघ-कर्ममें आता भी है नही भी आता, है किन्तु नही आता। "भिक्षुओ ! उनमें जो वह उन्मत्त=पागल, उपोसथको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, सघ-कर्मको याद भी रखता है नही भी याद रखता, उपोसथमें आता भी है, नही भी आता, सघ-कर्ममे आता भी है, नही भी आता, भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे उन्मत्तके लिये उन्मत्त होनेके ठहराव करनेकी। 73

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने, ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है, वह उपोसथको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, सघ-कर्मको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, उपोसथमें आता भी है, नही भी आता, सघ-कर्ममें आता भी है, नही भी आता। यदि सघ उचित समझे तो वह ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करे। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे, सघ-कर्मको याद रखे

---

[1] शुद्धि भेजनेकी तरह ही सभी वातें यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

या न रखे उपोसथमें आये या न आये संघ-कर्ममें आये या न आये संघ ग र्ग भिक्षुके साथ या उसके बिना उपोसथ करे, संघ-कर्म करे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने—ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है। वह उपोसथको याद भी रखता है नहीं भी रखता संघ ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करता है। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे संघ-कर्मको याद रखे या न रखे उपोसथमें आये या न आये संघ-कर्ममें आये या न आये। संघ ग र्ग भिक्षुके बिना उपोसथ करेगा संघ-कर्म करेगा। जिस आयुष्मान्को ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव पसन्द है वह चुप रहे जिसको पसंद नहीं है वह बोले। ।

ग धा र णा— 'संघने ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव स्वीकार किया संघ ग र्ग भिक्षुके साथ या गर्ग भिक्षुके बिना उपोसथ करेगा संघ-कर्म करेगा। यह संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसे मैं ऐसा समझता हूँ।

(५) उपोसथके लिये अपेक्षित वर्ग-संख्या

उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन चार भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ— 'भगवान्ने उपोसथ करनेका विधान किया है और हम चार ही जने हैं कैसे हम उपोसथ करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार (भिक्षुओं)के प्रातिमोक्ष-पाठकी। 74

(६) शुद्धिवाला उपोसथ

१—उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ— भगवान्ने चार भिक्षुओंके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और हम तीन ही जने हैं। कैसे हमें उपोसथ करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीनको शुद्धिवाले उपोसथके करनेकी। 75

'और इस प्रकार करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओंको सूचित करे—'आयुष्मानो! मेरी सुनो आज उपोसथ है। यदि आयुष्मानोंको पसंद हो तो हम एक दूसरेके साथ शुद्धि वाला उपोसथ करें। (तब) स्थविर भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो! मैं बोपोस शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो आवुसो! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो आवुसो मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो!' नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझ भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें भन्ते! मैं शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझें।"

२—उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन दो भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ— 'भगवान्ने चारके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और तीनको शुद्धिवाले उपोसथको करनेकी किन्तु हम दो ही जने हैं कैसे हमें उपोसथ करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी। 76

"और भिक्षुओ! इस प्रकार करना चाहिये—(पहले) स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको उत्तरासंग एक कंधेपर कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ नये भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये— आवुस! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो आवुस! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो आवुस! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो। (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंगकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ, स्थविर भिक्षुसे कहना चाहिये— 'भन्ते! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझें भन्ते! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझें भन्ते! मैं शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझें।"

३—उस समय उस आवासमें उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है चारको प्रातिमोक्ष-पाठ करनेकी, तीनको शुद्धिवाला उपोसथ, दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी, किन्तु मै अकेला हूँ, मुझे कैसे उपोसथ करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला (=चौपाल), मडप, वृक्ष-छायामें भिक्षु आया करते है, उस स्थानको झाळू दे, पीने और इस्तेमाल करनेके पानीको रख, आसन बिछा, दीपक जला बैठना चाहिये। यदि दूसरे भिक्षु आवें तो उनके साथ उपोसथ करना चाहिये। यदि न आयें तो, आज मेरा उपोसथ है, ऐसा दृढ सकल्प (=अधिष्ठान) करना चाहिये। यदि अ धि ष्ठा न न करे तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! जहाँ पर चार भिक्षु रहे, वहाँ एककी शुद्धि लाकर तीनको प्रा ति मो क्ष-पाठ नही करना चाहिये। यदि पाठ करे तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! जहाँपर तीन भिक्षु है, वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बाकी) दोको शुद्धिवाला उपोसथ नही करना चाहिये। यदि करें तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! जहाँपर दो भिक्षु है वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बचे एकको) अ धि ष्ठा न न करना चाहिये। यदि अधिष्ठान करे तो दुक्कटका दोष हो।" 77

(७) उपोसथके दिन दोषोंका प्रतिकार

उस समय उपोसथके दिन एक भिक्षुसे दोष (=अपराध) हो गया। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि सदोष (भिक्षु)को उपोसथ नही करना चाहिये, और मै सदोष हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

१—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको दोष याद आया हो, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षु को एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासग एक कधेपर कर उकळू बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोलना चाहिये—'आवुस ! मुझसे ऐसा दोष हुआ है। उसकी मैं प्र ति दे श ना (=अपराध-स्वीकार, Confession) करता हूँ' (और) उस (दूसरे भिक्षु)को कहना चाहिये—'क्या तुम देखते हो (अपने दोषको) ?'

'हाँ देखता हूँ।'

'आगेके लिये बचाव करना।' 78

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुको उपोसथके दिन दोष (किया या नही किया इसमें) सदेह हो तो उस भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासग एक कधेपर कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—

'आवुस ! मैं इस नामवाले दोषके विषयमें सदेहमें पळा हूँ। जब सदेह-रहित होऊँगा तो उस दोषका प्रतिकार करूँगा'—इस प्रकार कह वह उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष सुने। उसके लिए उपोसथ में रुकावट नही करनी चाहिये।" 79

(८) दोषका प्रतिकार कैसे और किसके सामने

१—(क) उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अधूरे दोषकी दे श ना (=अपराध-स्वीकार) करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधूरे दोषकी दे श ना नही करनी चाहिये। जो (अधूरी) देशना करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 80

(ख) उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु अधूरे दोष (की दे श ना करनेपर उस)को ग्रहण करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे दु क्क ट का दोष हो । §1

२—उस समय एक भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आया। तब उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि सदोष (भिक्षु)को उ पो स थ नहीं करना चाहिये और मैं सदोष हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! यदि किसी भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको अपने पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! मैंने इस नामवाले दोषको किया है। यहाँसे उठकर मैं उस दोषका प्रतिकार करूँगा । (यह) कह उ पो स थ करना चाहिये प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये उसके लिये उपोसथमें रुकावट न डालनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष-पाठके समय किसी भिक्षुको दोषके विषयमें संदेह हो तो उस भिक्षुको पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—आवुस ! मुझे इस नामवाले दोषके विषयमें संदेह है। जब संदेह-रहित हूँगा तब उस दोषका प्रतिकार करूँगा। (यह) कह उपोसथ करना चाहिये प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोड़ना नहीं चाहिये। §2

३—(क) उस समय एक आवासमें उपोसथके दिन सभी संघसे अधूरा दोष हुआ था। तब उन भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि अधूरे दोषकी प्र ति दे श ना नहीं करनी चाहिये न अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को ग्रहण करना चाहिये। और इस सारे संघसे अधूरा दोष हुआ है। हमें कैसा करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ ! यदि किसी आवासमें उपोसथके दिन सारे संघसे अधूरा (=समान) दोष हुआ हो तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको पासवाले आवासमें (यह कहकर) भेजना चाहिये—आवुस ! जा इस दोषका प्रतिकार कर चला आ। फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेंगे। यदि ऐसा हो सके तो अच्छा न हो सके तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने—इस सारे संघसे अधूरा दोष हुआ है (संघ) जब दूसरे दोष रहित शुद्ध भिक्षुको देखेगा तो उसके पास उस दोषका प्रतिकार करेगा। (यह) कह उपोसथ करना चाहिये प्रातिमोक्ष पढ़ना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोड़ नहीं देना चाहिये। §3

(ख) 'यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन सारे संघको समान दोषके होनेमें सन्देह हो गया हो तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—भन्ते ! संघ मेरी सुने। इस सारे संघको समान दोषके विषयमें संदेह है। जब यह संदेह-रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा। (यह) कह उपोसथ करे। प्रातिमोक्षका पाठ करे उसके लिये उपोसथको छोड़ नहीं देना चाहिये। §4

(ग) यदि भिक्षुओ ! एक आवासमें वर्षावास करते संघसे समान दोष हो गया हो तो उन भिक्षुओंको (अपनेमेंसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आस-पासके आवासमें भेजना चाहिये—'जा आवुस ! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ (फिर) हम तेरे पास उस दोषका प्रतिकार करेंगे। यदि यह हो सके तो अच्छा है न हो सके तो एक भिक्षुको सप्ताह भरके लिये (यह कहकर) भेजना चाहिये—'जा आवुस ! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेंगे। §5

४—उस समय एक आवासमें सारे संघसे समान दोष हुआ था और वह उस दोषके नाम-गोत्रको नहीं जानता था। तब वहाँ एक दूसरा बहु-श्रुत आगमज्ञ धर्म-धर विनय-धर, मातिका-धर, पंडित चतुर, मेधावी लज्जा-शील संकोची और सीखनेकी चाहवाला भिक्षु आया। तब उसके पास एक भिक्षु गया। जाकर उस भिक्षुसे यह बोला—

"आवुस! जो ऐसा ऐसा काम करे वह किस दोषका भागी होता है?"

उसने जवाब दिया—"आवुस! जो ऐसा ऐसा करे वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुस! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

उसने कहा—"आवुस! मैं अकेलाही इस दोषका भागी नही हूँ। इस सारे संघसे यह दोष हुआ है।"

दूसरेने कहा—"आवुस! दूसरेके सदोष या निर्दोष होनेमे तुम्हे क्या? आवुस! तू अपने दोषको हटा।"

तब उस भिक्षुने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार कर जहाँ उसके साथी दूसरे भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोला—

"आवुस! जो ऐसे ऐसे (काम)को करता है, वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुसो! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

परन्तु उन भिक्षुओंने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करना नही चाहा। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि किसी आवासमे सारे संघसे सभाग दोष हुआ हो०[1] आवुसो! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।' यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु, उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करे तो ठीक, यदि प्रतिकार न करे तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको उस भिक्षुसे अनिच्छुक नही रहना चाहिये।" 86

चोदनावस्तु भाणवार समाप्त ॥२॥

§५—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ

(१) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें आश्रमवासियोंका उपोसथ

क (a) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर दोषरहित उपोसथ

उस समय एक आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु, उपोसथके दिन एकत्रित हुए। उन्होंने नहीं जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। उन्होंने धर्म समझ, विनय समझ (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ किया, प्रातिमोक्ष-पाठ किया। उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक थे, आ गये। भगवान्‌से यह बात कही।—

१—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे न जानें कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये, वे धर्म समझ, विनय समझ, (संघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक है आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (फिरसे) पाठ करनेवालोंको दोष नही। 87

(२) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-

---

[1] देखो ऊपर।

वासी भिक्षु एकत्रित होते हैं वह नहीं जानते कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये हैं। वे धर्म समझ विनय समझ (सबका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो सख्यामें समान हो—आजायें तो जो पाठ हो चुका वह ठीक बाकीको (वह भी) सुन। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 88

(३) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वे धर्म समझ विनय समझ (सबका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हैं तो जो पाठ हो चुका वह ठीक बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 89

२—(४) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हैं आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षपाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 90

(५) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हैं आजायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 91

(६) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो सख्यामें उनसे कम हैं—आजायें तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 92

३—(७) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्‌के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हैं आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 93

(८) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रम वासी भिक्षु एकत्रित हों और प्रातिमोक्ष-पाठकर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रम वासी भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हैं आजायें तो भिक्षुओ होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 94

(९) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रम वासी भिक्षु एकत्रित हों और प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर भी दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हैं आजायें तो भिक्षुओ! होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 95

४—(१०) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्‌के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो सख्यामें उनसे अधिक हों आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 96

(११) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी

भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो सख्यामें उनके समान हो आजायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये । पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोष नही । 97

(१२) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आजायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये । पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोष नही । 98

५—(१३) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हो, आजायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोष नही । 99

(१४) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारे परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो, आजायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)का दोष नही। 100

(१५) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथासारी परिषद्के उठ जाने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो, आजायें,तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)का दोष नही।" 101

पन्द्रह अदोषता समाप्त ।

(b) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर किया गया दोषयुक्त उपोसथ

६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वे धर्म समझ, विनय समझ, (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है, आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 102

(२) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो० और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो, आजायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 103

(३) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो, आजायें, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 104

७—(४) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हैं, आजायें, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको

वासी भिक्षु एकत्रित होते हैं वह नहीं जानते कि कुछ आवासवासी भिक्षु नहीं आये हैं। वे धर्म समझ विनय समझ (उसका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आवासवासी भिक्षु—जो संख्यामें समान हों—आवें तो जो पाठ हो चुका वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 88

(३) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ आवासवासी भिक्षु नहीं आये। वे धर्म समझ विनय समझ (उसका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हैं तो जो पाठ हो चुका वह ठीक बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 89

२—(४) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षपाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 90

(५) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हैं आजायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 91

(६) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आवासवासी भिक्षु—जो संख्यामें उनसे कम हैं—आजायें तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओंको) शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 92

३—(७) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हैं आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 93

(८) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और प्रातिमोक्ष-पाठकर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हैं आजायें तो भिक्षुओ होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 94

( ) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर भी दूसरे आवासवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हैं आजायें तो भिक्षुओ! होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 95

४—(१०) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु एकत्रित हों और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके उठने तथा कुछ लोगोंके न उठनेपर दूसरे आवासवासी जो संख्यामें उनसे अधिक हों आजायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (पहले) पाठ करनेवालोंको दोष नहीं। 96

(११) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी

दुक्कटका दोष है। 115

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ, तो भिक्षुओ! पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओ-को दुक्कटका दोष है।" 116

पन्द्रह वर्ग-अवर्गके ज्ञान समाप्त

(c) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें सन्देहके साथ किया गया दोष-युक्त-उपोसथ

११—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे वहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वह—हमे उपोसथ करना युक्त है या नही—इसमे सन्देह युक्त होते उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे, और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जाये, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 117

(२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ०, सन्देह युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जाये, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, वाकीको (वह भी) सुने, पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 118

(३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वे जानें ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्राति-मोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ जायें, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, वाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 119

१२—(४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हो, आजायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 120

(५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आजायें, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 121

(६) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने पर ० भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आजायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 122

१३—(७) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 123

(८) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आजायें, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालो को दुक्कटका दोप है। 124

(९) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ०

फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 105

(५) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 106

(६) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 107

८—(७) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 108

(८) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 109

(९) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करने वालोंको दुक्कटका दोष है। 110

—(१०) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 111

(११) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको दुक्कटका दोष है। 112

(१२) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको दुक्कटका दोष है। 113

९—(१३) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 114

(१४) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ जो हो गया सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओंको

दुक्कटका दोष है। 115

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्‌के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ, तो भिक्षुओ! पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओ-को दुक्कटका दोष है।" 116

पद्रह वर्ग-अवर्गके ज्ञान समाप्त

(c) अन्य आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिमें सन्देहके साथ किया गया दोष-युक्त-उपोसथ

११—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वह—हमे उपोसथ करना युक्त है या नहीं—इसमे सन्देह युक्त होते उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे, और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 117

(२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ०, सन्देह युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जाये, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने, पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 118

(३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वे जाने ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्राति-मोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आ जाये, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 119

१२—(४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 120

(५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आजाये, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 121

(६) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने पर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आजायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 122

१३—(७) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजायें, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 123

(८) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आजायें, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालो को दुक्कटका दोष है। 124

(९) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जानें ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें ०

प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 125

१४—(१०) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 126

(११) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 127

(१२) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 128

१५—(१३) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 129

(१४) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 130

(१५) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 131

पन्द्रह सन्देहयुक्त समाप्त

(d) अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिमें संघके साथ किया गया दोषयुक्त उपोसथ

१६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये। वह—हम उपोसथ करना युक्त ही है अयुक्त नहीं है—ऐसे संघके साथ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 132

(२) "यदि ...संघके साथ उपोसथ करें भिक्षु जो संख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक बाकीको वह भी सुना। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 133

(३) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 134

१७—(४) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 135

(५) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 136

(६) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ, तो पाठ होगया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 137

१८—(७) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 138

(८) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो, आजायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 139

(९) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्या मे उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 140

१९—(१०) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ, तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 141

(११) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 142

(१२) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 143

२०—(१३) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हो आ जायँ, तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। (और पहिले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 144

(१४) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायँ, तो जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 145

(१५) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी

प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 125

१४—(१०) 'यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो संख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 126

(११) 'यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 127

(१२) 'यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 128

१५—(१३) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 129

(१४) 'यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 130

(१५) "यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर भिक्षु जो सख्यामें उनसे कम हो आ जायें तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 131

पन्द्रह सन्देहयुक्त समाप्त

(d) अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिमें सकौकृत्य साथ किया गया दोषयुक्त उपोसथ

१६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक आवासवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें कि कुछ आवासवासी भिक्षु नहीं आये। वह—हमें उपोसथ करना युक्त है अयुक्त नहीं है—ऐसे सकौकृत्य साथ उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका पाठ करें, और उनके प्रातिमोक्ष पाठ करते समय दूसरे आवासवासी भिक्षु जो सख्यामें उनसे अधिक हो आ जायें तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 132

(२) "यदि सकौकृत्य साथ उपोसथ करें भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायें तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक बाकीको वह भी सुनें। पाठ करनेवालोंको दुक्कटका दोष है। 133

२४—(१०) "यदि० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोंके उठ जानेपर० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आ जायँ तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। (पहिले) पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 156

(११) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 157

(१२) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोंके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 158

२५—(१३) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 159

(१४) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 160

(१५) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्या में उनसे कम हो आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है।" 161

पन्द्रह कटूक्ति-पूर्वक समाप्त

पचीसी समाप्त

ख अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको जाने विना किया गया उपोसथ

२६–५०—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही जानें कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। ०[1]। 162–186

५१–७५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही जानते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये है। ०[1]।" 187–212

ग अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको देखे विना किया गया उपोसथ

७६–१००—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही देखते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। ०[1]। 213–237

---

[1] पिछली पचीसीकी तरह इसे भी उ पो स थ करते, उ पो स थ कर चुकने, परिषद्के बैठे रहने परिषद्में कुछके उठजाने तथा कुछके बैठे रहने और सारी परिषद्के उठ जाने, इन पाँचोको न जानने, जानने, सदेहयुक्त, सकोचयुक्त और कटूक्ति-पूर्वकके साथ पढनेपर पच्चीस भेद होंगे।

परिपक्के उठ जानेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनसे कम हो आ जायें तो पाठ हो चुका सो ठीक उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोंको दुक्कट का दोष है। 146

पन्द्रह सन्देह-सहित समाप्त

(८) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें रुचि-पूर्वक किया गया दोषयुक्त उपोसथ

२१—(१) 'यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे जानें कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये फिर—वह विनष्ट हो जायें वह विनष्ट हो जायें उनसे क्या मतलब!—ऐसे रुचि पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ करें और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सभ्यामें उनसे अधिक हों आ जायें तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चय (स्थूल-अत्यय बड़ा अपराध)का दोष है। 147

(२) 'यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्ष पाठ करते समय भिक्षु जो सभ्यामें उनके समान हों आ जायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 148

(३) 'यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्ष पाठ करते समय भिक्षु जो सभ्यामें उनसे कम हों आ जायें तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक बाकीको (वह भी) सुनें। पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 149

२२—(४) "यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनसे अधिक हों आ जायें तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 150

(५) "यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनके समान हों आ जायें तो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 151

(६) "यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनसे कम हों आ जायें तो पाठ हो गया वह ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 152

२३—(७) 'यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनसे अधिक हों आ जायें तो उन भिक्षुओंको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका[1] दोष है। 153

(८) 'यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनके समान हों आ जायें तो पाठ हो गया सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 154

(९) 'यदि रुचि-पूर्वक उपोसथ करें प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्‌के अभी न उठनेपर भिक्षु जो सभ्यामें उनसे कम हों आ जायें तो पाठ हो गया सो ठीक उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोंको थुल्लच्चयका दोष है। 155

---

[1] थुल्लच्चय (=स्थूल-अत्यय) एकके भूलोंकी देशना करता है और जो उसे नहीं ग्रहण करता उसके समान दोष (अत्यय) नहीं इसलिये यह ऐसा कहा जाता है। (—अट्ठकथा)।

२—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) पचदशीका हो और नवागन्तुकोका चतुर्दशीका, तो यदि (सख्यामें) आश्रमवासी अधिक हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोका अनुसरण करना चाहिये ०[1]। 839

३—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) प्रतिपद्का हो और नवागन्तुकोका पचदशीका तो यदि (सख्यामें) आश्रमवासी अधिक हो तो आश्रमवासियोको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुकोके (सघ)की पूर्णता नही करनी चाहिये, नवागन्तुकोको सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये। यदि (दोनो सख्यामें) बराबर हो तो आश्रमवासियोको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुको(के सघ)की पूर्णता नही करनी चाहिये। यदि (सख्यामे) नवागन्तुक अधिक हो तो आश्रमवासियोको आगन्तुको(के सघ)की या तो सपूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये। 840

४—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) पचदशीका हो और नवागन्तुकोका प्रतिपद्का तो यदि सख्यामें आश्रमवासी अधिक हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोके सघकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये, यदि बराबर हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये, यदि सख्यामे नवागन्तुक अधिक हो तो नवागन्तुकोको, इच्छा बिना, आश्रमवासियोकी सपूर्णता नही करनी चाहिये, बल्कि आश्रमवासियोको सीमाके बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये।" 841

(२) आवासिको और नवागन्तुकोका अलग उपोसथ नहीं

१—"जब भिक्षुओ! नवागन्तुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग = निमित्त, उद्देश्य, और अच्छी तरहसे बिछी चारपाई, चौकी, तकिया-बिछौना पीने धोनेके पानी, तथा अच्छी तरह साफ-वाफ आँगन देखे। और देखकर सदेहमे पळे—क्या आश्रमवासी भिक्षु हैं या नही। सदेहमें पळकर वह खोज न करे। और बिना खोजे उपोसथ करें, तो दुक्कट का दोष है। यदि सदेहमे पळकर वह खोज करें, खोज कर न देखे और बिना देखे उपोसथ करें तो दोष नही। सदेहमें पळकर वह अलग उपोसथ करें तो दुक्कट का दोष है। सदेहमे पळे वे खोजें, खोजनेपर देखे, देखनेपर 'नष्ट हो ये, विनष्ट हो ये, इनसे क्या मतलब?'—इस कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें तो थुल्लच्चय का दोष है। 842

२—"जब भिक्षुओ! नवागतुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग, उद्देश्य, टहलनेमें पैरका शब्द, पाठका शब्द, खाँसनेका शब्द और थूकनेका शब्द सुनें। और सुनकर सदेहमे पळें०[2] थुल्लच्चयका दोष होता है। 843

३—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओकी नवागतुकताके आकार लिंग =निमित्त, उद्देश्य, अपरिचित पात्र, अपरिचित चीवर, अपरिचित आसन, पाँवोका धोना, पानीका सीचना देखें, देखकर सदेहमें पळें—क्या नवागतुक है, या नही है?—सदेहमें पळकर वह खोज न करें०[2] थुल्लच्चयका दोष है। 844

४—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओकी नवागतुकताके आकार लिंग = निमित्त, उद्देश्य, आते वक्त पैरका शब्द, जूताके फटफटानेका शब्द, खाँसनेका शब्द, थूँकनेका शब्द सुनते हैं। सुनकर सदेहमें पळते हैं—क्या नवागतुक है, या नही है?—सदेहमें पळकर खोज न करें०[3]

---

[1] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो।　　[2] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो।

[3] ऊपरहीकी तरह पढ़ो।

१ १–१२५—"यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो वह नहीं देखते कि कुछ अन्य आवासवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये हैं। [1] । 238–262

घ अन्य आवासिकोंकी अनुपस्थितिको सुने बिना किया गया उपोसथ

१२६–१५ —"यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो वह नहीं सुनते कि कुछ अन्य आवासवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे हैं। [1] । 263–287

१५१–१७५—"यदि उपोसथके दिन एकत्रित हो वह नहीं सुनते कि कुछ अन्य आवासवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये हैं। [1] । 288–312

(२) कुछ नवागन्तुकोंकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

१७६–३५०— "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—आवासवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नहीं आये [2] । 313–487

(३) कुछ आवासवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

३५१–५२५—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ आवासवासी भिक्षु नहीं आये [1] । 488–662

(४) कुछ नवागन्तुकोंकी अनुपस्थितिको जाने देखे सुने बिना नवागन्तुकोंका किया उपोसथ

५२६–७ —[3] "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हों और वे न जानें कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नहीं आये । 663–837

§६—उपोसथके काल, स्थान और व्यक्तिके नियम

(१) उपोसथकी दो तिथियोंमें एक स्वीकार

१—"जब भिक्षुओ ! आवासवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) चतुर्दशीका हो और नवागन्तुकोंका पंचदशीका तो यदि आवासवासी (संख्यामें) अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आवासवासियोंका अनुसरण करना चाहिये। यदि (दोनों) बराबर हों तो (भी) नवागन्तुकोंको आवासवासियोंका अनुसरण करना चाहिये। यदि नवागन्तुक (संख्यामें) अधिक हों तो आवासवासियोंको नवागन्तुकोंका अनुसरण करना चाहिये। 838

---

[1] "आवासवासी भिक्षु नहीं आये" को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[2] "आवासवासी भिक्षु नहीं आये"को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[3] सद्धर्मप्रकाशप्रेसके (अनुतगम वेन्तोता लंका १९११ ई०) 'महावग्ग'में 'सत्ततिक सतानि' (—सत्तर सौ) छपा है जिसमें 'तिक' यह दो अधिक अक्षर प्रमादसे छपे मालूम होते हैं क्योंकि उपर्युक्त क्रमसे गिनती ७ (—सत्त सतानि) ही होनी चाहिये।

ऊपर जैसाही यहाँ भी समझो।

२—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) पंचदशीका हो और नवागन्तुकोंका चतुर्दशीका, तो यदि (संख्यामें) आश्रमवासी अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंका अनुसरण करना चाहिये ०[1]। 839

३—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) प्रतिपद्‌का हो और नवागन्तुकोंका पंचदशीका तो यदि (संख्यामें) आश्रमवासी अधिक हों तो आश्रमवासियोंको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुकोंके (संघ)की पूर्णता नहीं करनी चाहिये, नवागन्तुकोंको सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये। यदि (दोनों संख्यामें) बराबर हों तो आश्रमवासियोंको इच्छा बिना (अपनेको देकर) नवागन्तुकों(के संघ)की पूर्णता नहीं करनी चाहिये। यदि (संख्यामें) नवागन्तुक अधिक हों तो आश्रमवासियोंको आगन्तुकों(के संघ)की या तो संपूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये। 840

४—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओंका (उपोसथ) पंचदशीका हो और नवागन्तुकोंका प्रतिपद्‌का तो यदि संख्यामें आश्रमवासी अधिक हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंके संघकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये, यदि बराबर हों तो नवागन्तुकोंको आश्रमवासियोंकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे बाहर जाना चाहिये, यदि संख्यामें नवागन्तुक अधिक हों तो नवागन्तुकोंको, इच्छा बिना, आश्रमवासियोंकी संपूर्णता नहीं करनी चाहिये, बल्कि आश्रमवासियोंको सीमाके बाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये।" 841

(२) आवासिकों और नवागन्तुकोंका अलग उपोसथ नहीं

१—"जब भिक्षुओ! नवागन्तुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओंकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग = निमित्त, उद्देश्य, और अच्छी तरहसे बिछी चारपाई, चौकी, तकिया-बिछौना पीने धोनेके पानी, तथा अच्छी तरह साफ-वाफ आँगन देखें। और देखकर संदेहमें पळें—क्या आश्रमवासी भिक्षु हैं या नहीं। संदेहमें पळकर वह खोज न करें। और बिना खोजे उपोसथ करें, तो दु क्क ट का दोष है। यदि संदेहमें पळकर वह खोज करें, खोज कर न देखें और बिना देखे उपोसथ करें तो दोष नहीं। संदेहमें पळकर वह अलग उपोसथ करें तो दु क्क ट का दोष है। संदेहमें पळें वे खोजें, खोजनेपर देखें, देखनेपर 'नष्ट हो ये, विनष्ट हो ये, इनसे क्या मतलब?'—इस कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करें तो थु ल्ल च्च य का दोष है। 842

२—"जब भिक्षुओ! नवागतुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओंकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग, उद्देश्य, टहलनेमें पैरका शब्द, पाठका शब्द, खाँसनेका शब्द और थूकनेका शब्द सुनें। और सुनकर संदेहमें पळें०[2] थुल्लच्चयका दोष होता है। 843

३—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओंकी नवागतुकताके आकार लिंग =निमित्त, उद्देश्य, अपरिचित पात्र, अपरिचित चीवर, अपरिचित आसन, पाँवोंका धोना, पानीका सींचना देखें, देखकर संदेहमें पळें—क्या नवागतुक है, या नहीं है?—संदेहमें पळकर वह खोज न करें०[2] थुल्लच्चयका दोष है। 844

४—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओंकी नवागतुकताके आकार लिंग = निमित्त, उद्देश्य, आते वक्त पैरका शब्द, जूताके फटफटानेका शब्द, खाँसनेका शब्द, थूँकनेका शब्द सुनते हैं। सुनकर संदेहमें पळते हैं—क्या नवागतुक है, या नहीं है?—संदेहमें पळकर खोज न करें०[3]

---

[1] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो। [2] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढ़ो।
[3] ऊपरहीकी तरह पढ़ो।

दुक्कटका दोष होता है। 845

५—"जब भिक्षुओ! नवागन्तुक भिक्षु नाना प्रकारके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओंको देखते हैं तो उन्हें एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आता है। एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आनेपर वह दर्याफ्त नहीं करते। दर्याफ्त किये बिना यदि अकेले उपोसथ करें तो दोष नहीं। वह पूछें। पूछकर निश्चय न करें निश्चय किये बिना यदि अकेले उपोसथ करें तो दुक्कटका दोष है। वे पूछें पूछकर निश्चय न करें निश्चय किये बिना अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 846

६—"जब भिक्षुओ! नवागन्तुक भिक्षु एक तरहके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओंको देखें और वह भिन्न सहनिवासवाले हैं का ख्याल करके भिन्न सहनिवासका ख्याल करके दर्याफ्त न करें दर्याफ्त किये बिना अकेले उपोसथ करें तो दुक्कटका दोष है। यदि वह पूछें पूछकर निश्चय करें निश्चय करनेके बाद अलग उपोसथ करें तो दुक्कटका दोष है। वे पूछें पूछनेके बाद निश्चय करें निश्चय करके अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 847

७—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागन्तुकोंको नाना प्रकारके वस्त्र पहने देखें और वे एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करें, एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करें (न पूछें) पूछे बिना अकेले उपोसथ करें तो दोष नहीं। वे पूछें पूछकर निश्चय न करें और निश्चय किये बिना अकेले उपोसथ करें तो दुक्कटका दोष है। वे पूछें पूछकर निश्चय न करें निश्चय किये बिना अलग उपोसथ करें तो दोष नहीं। 848

८—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षु नवागन्तुक भिक्षुओंको एक प्रकारके वस्त्रवाला देखें वे नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करें नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करें, दर्याफ्त किये बिना निश्चय करें निश्चय करके अलग उपोसथ करें तो दुक्कटका दोष है। वे पूछें पूछकर निश्चय करें, निश्चय करके एक साथ उपोसथ करें तो दोष नहीं। 849

(३) उपोसथके दिन आवासके त्यागमें नियम

१—"भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रमको छोड़ भिक्षु रहित आश्रममें न जाना चाहिये। 850

२—भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमको छोड़ जो आश्रम भी नहीं है और जहाँ भिक्षु भी नहीं हैं वहाँ नहीं जाना चाहिये। 851

३—भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रममें न भिक्षु रहित आश्रममें जाना चाहिये और न वहाँ ही जाना चाहिये जो आश्रम नहीं है। 852

४—"भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु) आश्रम नहीं है किन्तु जहाँ भिक्षु रहते हैं ऐसे स्थानसे भिक्षु-रहित आश्रममें नहीं जाना चाहिये। 853

५—"भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन ऐसे स्थानसे जो (भिक्षु) आश्रम नहीं है किन्तु जहाँ भिक्षु रहते हैं उस स्थानसे उस स्थानको नहीं जाना चाहिये जो न (भिक्षु) आश्रम है और न जहाँ भिक्षु रहते हैं। 854

६—"भिक्षुओ! अथवा साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु-) आश्रम नहीं है किन्तु जहाँ भिक्षु हैं ऐसे स्थानसे उस स्थानको नहीं जाना चाहिये जो

भिक्षु-रहित (भिक्षु-) आश्रम है। या जो भिक्षु-रहित अन्-आश्रम है। 855

७—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमको छोळ अन्-आश्रम या भिक्षु-रहित आश्रममें न जाना चाहिये। 856

८—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमको छोळकर भिक्षु-रहित अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये। 857

९—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षु-रहित आश्रम या अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये। 858

१०—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो।

११—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 859

१२—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँपर नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 860

१३—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले अन्-आश्रममें ऐसे भिक्षुवाले आश्रममें नहीं जाना चाहिये, जहाँ नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 861

१४—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 862

१५—" भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 863

१६—"भिक्षुओ ! संघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अन्-आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अन्-आश्रम में नहीं जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 864

१७—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर एक प्रकारके सहनिवासवाले भिक्षु हो, और जहाँपर जानेके लिये वह उसी दिन पहुँच जा सके। 865

१८—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 866

१९—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अन्-आश्रममें जाना चाहिये जहाँपर कि एक सहनिवासवाले भिक्षु हो और जहाँपरके लिये वह समझे कि उसी दिन पहुँच सकता है। 867

२०—" भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले अनावाससे ऐसे भिक्षुवाले आवासमें जाना चाहिये ०। 868

२१—" ० भिक्षुवाले अनाश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 869

२२

२२— भिक्षुवाले अन्-आश्रम भिक्षुवाले ऐसे आश्रमसे या अन्-आश्रममें जाना चाहिये । 870

२३— भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रममें जाना चाहिये । 871

२४— भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममें जाना चाहिये । 872

२५— भिक्षुओ ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अनाश्रममें जाना चाहिये जहाँपर एक जैसे सहनिवासवाले भिक्षु हो और जहाँपरके लिए यह जानता हो कि उसी दिन पहुँच सकेगा । 873

(४) प्रातिमोक्ष आवृत्तिके लिये अयोग्य सभा

१— भिक्षुओ ! जिस परिषद्में भिक्षुणी बैठी हो उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये । जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो । 874

२— शिक्षमाणा बैठी हो । 875

३— श्रामणेर बैठा हो । 876

४— श्रामणेरी बैठी हो । 877

५— (भिक्षु) नियमोका प्रत्याख्यान करनेवाला बैठा हो । 878

६— अन्तिम दोष (= पाराजिक)का दोषी बैठा हो । 879

७— दोषके न देखनेसे उत्क्षिप्त हुआ (पुरुष) बैठा हो उसमे प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये । जो पाठ करे उसे धर्मानुसार (दंड) करवाना चाहिये । 880

८— दोषके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो । 881

९— बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो । 882

१०— पंडक बैठा हो उसमें प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये । जो पाठ करे उसे दुक्कट का दोष हो । 883

११— चोरीसे (= अपने आप) चीवर पहन लेनेवाला (पुरुष) बैठा हो । 884

१२— तीर्थिकोके पास चला गया बैठा हो । 885

१३— तिर्यग् योनिवाला (= नाग आदि) बैठा हो । 886

१४— मातृ-घातक बैठा हो । 887

१५— पितृ-घातक बैठा हो । 888

१६— अर्हद्-घातक बैठा हो । 889

१७— भिक्षुणी-दूषक बैठा हो । 890

१८— संघमें फूट डालनेवाला बैठा हो । 891

१९— (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला बैठा हो । 892

२०— (स्त्री-पुरुष) दोनो लिंगोवाला बैठा हो । 893

२१— भिक्षुओ ! परिषद्के न उठी होनेके सिवाय परिवास संबंधी शुद्धि देकर उपोसथ नही करना चाहिये । 894

(५) उपोसथके दिन ही उपोसथ

"भिक्षुओ ! संघकी समग्रताके अतिरिक्त उपोसथके भिन्न दिनको उपोसथ नही करना चाहिये । 895

तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

उपोसथ-स्कन्धक समाप्त ॥२॥

३—वर्षोपनायिका-स्कंधक

१—वर्षावासका विधान और उसका काल । २—बीचमें सप्ताह भरके लिये वर्षावासका तोळना
३—वर्षावास करनेके स्थान । ४—स्थान-परिवर्तनमें सदोपता और निर्दोषता ।

§१—वर्षावासका विधान और काल

१—राजगृह

(१) वर्षावासका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क ल द क नि वा प में विहार करते थे उस समय तक भगवान्ने वर्षावास करने का विधान नही किया था और भिक्षु हेमन्तमें, भी ग्रीष्ममें भी, वर्षामें भी विचरण करते थे । लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोको मर्दन करते एक इन्द्रियवाले जीव (=वृक्ष-वनस्पति)को पीळा देते वहुतसे छोटे छोटे प्राणि समुदायोको मारते हेमन्तमें भी, ग्रीष्ममें भी, वर्षामे भी विचरण करते है ! यह दूसरे तीर्थ (=मत) वाले जिनका धर्म अच्छी तरह व्याख्यान नही किया गया है वह भी वर्पावासमें लीन होते है, एक जगह रहते है यह चिळियाँ वृक्षोके ऊपर घोसले वनाकर वर्षावासमे लीन होती है, एक जगह रहती हैं किन्तु ये शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोको मर्दन करते० विचरण करते हैं !' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना । तव उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही । भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास करनेकी ।" 1

(२) वर्षावासका आरम्भ

१—तव भिक्षुओको यह हुआ—'कवसे वर्षावास करना चाहिये ?'

भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षा (ऋतु) में वर्षावास करनेकी ।" 2

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—'क्या है व स्सू प ना यि का (=वर्षोपनायिका=जो तिथि वर्षा को ले आती है) ?'

भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! पहिली और पिछली यह दो वर्षोपनायिका है । आपाढ पूर्णिमाके दूसरे दिनसे पहला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये, या आपाढ पूर्णिमाके मास भर वाद पिछला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये । भिक्षुओ ! यह दो (श्रावण कृष्ण-प्रतिपद् और भाद्र कृष्ण-प्रतिपद्) व र्षो- प ना यि का है ।" 3

(३) वर्षावासमें चारिका यात्रा नहीं

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास करके वर्षाकालके बीचहीमें विचरण करनेके लिये चल देते थे। लोग उसी प्रकार हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण हरे तृणोंको मर्दन करते विचरण करते हैं!

भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना। तब जो अल्पेच्छ (=लाभ रहित) भिक्षु थे वह हैरान होते थे—कैसे षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास आरम्भ करके वर्षाकालके भीतर ही विचरण करने चल जाते हैं! तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! वर्षावास आरम्भ करके पहले तीन मास (श्रावण, भाद्र, आश्विन) या पिछले तीन (भाद्र, आश्विन, कार्तिक) बिना एक जगह बसे विचरणके लिये नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 4

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावासके लिये (एक जगह) रहना नहीं चाहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वर्षावासके लिये (एक जगह) न रहना नहीं करना चाहिये। जो (वर्षावासके लिये) न रहे उसे दुक्कटका दोष हो।" 5

(४) वर्षोपनायिकाका आयास नहीं टालना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास न करनेकी इच्छासे वर्षोपनायिका (के दिन) को जान बूझकर अतिक्रमण कर देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वर्षावास न करनेकी इच्छासे वर्षोपनायिकाका दिन जान बूझकर अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। जो लाँघे उसको दुक्कटका दोष हो।" 6

(५) राजाकी वर्षावासका स्वीकार

उस समय मगधराज श्रेणिक बिम्बिसारने अधिमास (मलमास) जोड़नेकी इच्छासे भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आर्य आगामी पूर्णिमाको वर्षावास आरम्भ करें।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (अधिक मास होनेके लिये) राजाओंका अनुवर्तन करनेकी।" 7

६—बीचमें समाप्त करके निज वर्षावासका तोड़ना

२—श्रावस्ती

(१) [illegible] सात दिनके लिये बाहर जाना

[illegible]

करके पहले तीन मास या पिछले तीन मास विना वसे विचरण करनेके लिये नही चल देना चाहिये। उदयन उपासक तव तक प्रतीक्षा करे, जव तक कि भिक्षु वर्षावास करते है। वर्षावास समाप्त करके वे आयेंगे। यदि उसको काम करनेकी शीघ्रताहो तो वही आश्रम-वासी भिक्षुओके पास विहार की प्रतिष्ठा करानी चाहिये।'

(यह सुन कर) उदयन उपासक हैरान होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे सदेश भेजनेपर नही आते! मै (दान-)दायक, (कर्म-)कारक, और सघका सेवक हूँ।' भिक्षुओने उदयन उपासक के हैरान होनेको सुना। तव उन्होने भगवान्मे यह वात कही। भगवान्ने उसी सवधमे उसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया।—

१—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सात (व्यक्तियो)के सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु विना सदेश भेजे नही—(१) भिक्षुका (काम हो), (२) भिक्षुणीका (काम हो), (३) शिक्षमाणाका (कामहो), (४) श्रामणेरका (काम हो), (५) श्रामणेरीका (काम हो), (६) उपासकका (काम हो), (७) उपासिकाका (काम हो), भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इन सातोका सप्ताह भरका काम होनेपर सदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु विना सदेश भेजे नही। सप्ताह भर रहकर फिर लौट आना चाहिये। 8

२—(क)। "जव भिक्षुओ! (किसी) उपासकने सघके लिये विहार वनवाया हो और यदि वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आवे, मै दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, और भिक्षुओका दर्शन करना चाहता हूँ', तो भिक्षुओ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये, किन्तु सदेश न भेजनेपर नही (जाना चाहिये) और सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये। 9

(ख) "यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने सघके लिये अटारी (अड्ढयोग) वनवाई हो, प्रासाद, हर्म्य, गुहा, परिवेण (=आँगनदार घर), कोठरी, उपस्थान-शाला (=चौपाल), अग्नि-शाला, कप्पियकुटी (=भडार), पाखाना, (=वच्च-कुटी), चक्रम (=टहलनेकी जगह), चक्रमन-शाला (=टहलनेकी शाला), उदपान (=प्याव), उदपान-शाला, जन्ताघर (=स्नानगृह), जन्ताघर-शाला, पुष्करिणी, मडप, आराम (=वाग), और आराम-वस्तु (=वागके भीतरके घर) वनवाये हो, और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आयें, मै दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, भिक्षुओका दर्शन करना चाहता हूँ।'—तो भिक्षुओ! सदेश मिलनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये, विना सदेश भेजे नही (जाना चाहिये), सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 10

(ग) "यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने वहुतसे भिक्षुओंके लिये अटारी० सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 11

(घ) "०एक भिक्षुके लिये०। 12

(ङ) "० भिक्षुणी-सघके लिये०। 13

(च) "० वहुतसी भिक्षुणियोंके लिये०। 14

(छ) "० एक भिक्षुणीके लिये०। 15

(ज) "० वहुतसी शिक्षमाणाओके लिये०। 16

(झ) "० एक शिक्षमाणाके लिये०। 17

(ञ) "० वहुतसे श्रामणेरोके लिये०। 18

(ट) "० एक श्रामणेरके लिये०। 19

(ठ) बहुतसी श्रामणेरियोंके लिये । 20

(ड) एक श्रामणेरीके लिये । 21

(ढ) यदि भिक्षुओ ! उपासकने अपने लिये घर, शयनीय-घर उ द्दो सि त (=रातके खुलना घर) अटारी मा ल (=पर्णकुटी) दूकान (आपण) आपणसाला प्रासाद हर्म्य गुहा परिवेण कोठरी उपस्थान-शाला अग्नि-शाला र स व ती (रसोईघर) पाखाना चक्रम चक्रमनशाला प्याव प्यावशाला (पौसला) स्नान-गृह (=जन्ताघर) जन्ताघर-शाला पुष्करिणी मंडप आराम आरामवस्तु, बनवाये हो और वह पुत्रका ब्याह करनेवाला हो या कन्याका ब्याह करनेवाला हो या रोगी हो या उत्तम सु त्त न्तों (-बुद्धोपदेश)का पाठ करता हो और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आवें'—सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 22

३—(क) 'यदि भिक्षुओ ! (किसी) उपासिकाने सघके लिये विहार बनवाया हो और वह भिक्षुओंके पास सदेस भेजे—आर्य लोग आवें मैं दान देना चाहती हूँ धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, भिक्षुओंका दर्शन करना चाहती हूँ तो—सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये बिना सदेस भेजे नहीं और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 23

(ख) 'यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने सघके लिये अड्ढयोग (=अटारी) सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 24

(ग) यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने बहुतसे भिक्षुओंके लिये । 25

(घ) एक भिक्षुके लिये । 26

(ङ) भिक्षुणीसघके लिये । 27

(च) बहुतसी भिक्षुणियोंके लिये । 28

(छ) एक भिक्षुणीके लिये । 29

(ज) बहुतसी शिक्षमाणाओंके लिये । 30

(झ) एक शिक्षमाणाके लिये । 31

(ञ) बहुतसे श्रामणेरोंके लिये । 32

(ट) एक श्रामणेरके लिये । 33

(ठ) बहुतसी श्रामणेरियोंके लिये । 34

(ड) एक श्रामणेरीके लिये । 35

(ढ) अपने लिये निवास घर—शयनीय घर ० । 36

(ण) पुत्रका ब्याह करनेवाली या कन्याका ब्याह करनेवाली हो या रोगी हो या उत्तम सुत्तन्तोंका पाठ करती हो और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—आर्य लोग आवें इस सुत्तन्तको सीखें कहीं ऐसा न हो कि यह सु त्त न्त (याद करनेवालेके बिना) नष्ट हो जाय' या उसका और कोई कृत्य करणीय हो और वह भिक्षुओंके पास सदेस भेजे—'आर्य लोग आवें मैं दान देना चाहती हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ भिक्षुओंका दर्शन करना चाहती हूँ'—तो भिक्षुओ ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये न सदेस भेजनेपर नहीं और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये । 37

४—(क) यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने सघके लिये । 38

(ख) यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने बहुतसे भिक्षुओंके लिये । 39

(ग) एक भिक्षुके लिये । 40

(घ) " भिक्षुणी-सघके लिये । 41

(ङ) "० बहुत सी भिक्षुणियोंके लिये ० । 42
(च) "० एक भिक्षुणीके लिये ० । 43
(छ) "० एक भिक्षुणीके लिये ० । 44
(ज) "० बहुतसे शिक्षमाणाओंके लिये ० । 45
(झ) "० एक शिक्षमाणाके लिये ० । 46
(ञ) "० बहुतसे श्रामणेरोंके लिये ० । 47
(ट) "० एक श्रामणेरके लिये ० । 48
(ठ) "० बहुतसी श्रामणेरियो के लिये ० । 49
(ड) "० एक श्रामणेरीके लिये ० । 50
(ढ) "० अपने लिये ० । 51
५—(क) "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुणीने सघके लिये ० ।52 ०[1] (ढ) अपने लिये ०' । 65
६—(क) "यदि भिक्षुओ ! शिक्षमाणाने ० । ० ।[1] 66 (ढ) ० अपने लिये । 79
७—(क) "यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरने ० । ०[1] 80 (ढ) ० अपने लिये ० । 93
८—(क) "यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरीने ० । ०[1] 94 (ढ) ० अपने लिये ० ।" 107

(२) संदेशके विना भी सात दिनके लिये बाहर जाना

उस समय एक भिक्षु रोगी था। उसने भिक्षुओके पास सदेश भेजा—'मै रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवे। भिक्षुओके आगमनको चाहता हूँ।' भगवान्से यह बात कही।

१—"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच (व्यक्तियो)के सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजे विना भी जानेकी। सदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या—भिक्षुके, (कामके लिये), भिक्षुणीके, शिक्षमाणाके, श्रामणेरके और श्रामणेरीके। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँचोंके सप्ताह भरके कामके लिये विना सदेश भेजे भी जानेकी। सदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या। सप्ताहमें लौटना चाहिये। 108

२—(क) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु रोगी हो और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—'मैं रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवे, मैं भिक्षुओका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये विना सदेश भेजे भी जाना चाहिये, सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। रोगीके पथ्यका प्रबध करूँगा, रोगीके सुश्रूपकका प्रबध करूँगा, रोगीके लिये ओपधका प्रबध करूँगा, देखभाल करूँगा या सुश्रूपा करूँगा—(इस विचारसे जाना चाहिये) सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 109

(ख) "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुका मन (सन्याससे) उचट गया हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'मेरा मन उचट गया है, भिक्षु लोग आवे, भिक्षुओका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! विना सदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। (यह सोचकर कि) उचाटको दूर करूँगा या दूर करवाऊँगा, या धार्मिक कथा कहूँगा, सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 110

(ग) "यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुको सदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ हो और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे, मुझे सदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ है ० (यह सोचकर कि) सदेहको

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

हटाऊँगा या हटवाऊँगा या धर्मकी बात सुनाऊँगा । 111

(ख) यदि भिक्षुओ ! भिक्षुको बुरी धारणा उत्पन्न हुई हो (यह सोचकर कि) बुरी धारणाको दूर करूँगा या कराऊँगा या उसे धर्मकी बात सुनाऊँगा । 112

(ङ) यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने प रि वा स देने योग्य बड़ा दोष किया हो और वह भिक्षुओं के पास संदेश भेजे—मैंने परिवासके योग्य बड़ा दोष किया है (यह सोचकर कि) परिवास देनेका यत्न करूँगा या सुनाऊँगा या गणके सामने होऊँगा । 113

(च) यदि भिक्षुओ ! भिक्षु मू ल प्र ति कर्ष ण (दंड)के योग्य हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—मैं मूल प्रतिकर्षणार्ह हूँ (यह सोचकर कि) मूल प्रतिकर्षणके लिये प्रयत्न करूँगा या सुनाऊँगा या गणके सम्मुख होऊँगा । 114

(छ) 'यदि भिक्षुओ ! (कोई) भिक्षु मा न त्वा र्ह (—मानत्व दंड देनेके योग्य)हो। 115

(ज) 'यदि भिक्षुओ ! (कोई) भिक्षु अ भ्मा न (—आह्वान) के योग्य हो । 116

(झ) 'यदि भिक्षुओ ! संघ किसी भिक्षुका (दंड) कर्म—त र्ज नी य नि य स्स प्र व्रा ज नी य प्र ति सा र णी य उ त्क्षे प णी य—करना चाहे और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—संघ मेरा (दंड)[1] कर्म करना चाहता है (यह विचारकर कि) संघ (दंड)कर्म न करे या हल्का (दंड) करे। और सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 117

(ञ) "यदि भिक्षुओ ! संघने भिक्षुको त र्ज नी य (दंड)कर्म कर दिया हो और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजे—'संघने मुझे (दंड)कर्म कर दिया। भिक्षु लोग आवें। मैं भिक्षुओंका आगमन चाहता हूँ तो भिक्षुओ ! बिना संदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये संदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। ऐसा (प्रयत्न) करनेके लिये कि (वह भिक्षु) अच्छी तरह बर्ताव करे, रोवाँ गिरावे निस्तारके लिये बर्ताव करे, (जिसमें कि) संघ उस दंडको उठा ले। सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 118

३—(क) यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षुणी रोगिणी हो [2]। 128

४—(क) "यदि भिक्षुओ ! शिक्षमाणा रोगिणी हो ।[3] (ङ) शिक्षमाणाकी शिक्षा टूट गई हो (यह सोचकर कि) उसे शिक्षा (=आचार-नियम)के ग्रहण करानेका प्रयत्न करूँगा । (च) यदि भिक्षुओ ! शिक्षमाणा उपसम्पदा ग्रहण करना (=भिक्षुणी बनना) चाहती है और वह भिक्षुओंके पास संदेश भेजें—'मैं उपसम्पदा ग्रहण करना चाहती हूँ आर्य लोग आयें। मैं आर्योंका आगमन चाहती हूँ तो भिक्षुओ ! बिना संदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। संदेश भेजने पर तो बात ही क्या। (यह सोचकर कि) उपसम्पदा ग्रहणमें उत्सुकता पैदा करूँगा सुनाऊँगा या गणके सामने होऊँगा सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 133

५—(क) 'यदि भिक्षुओ ! श्रामणेर रोगी हो [1] (ङ) श्रामणेर वर्ष पूछना चाहे और वह भिक्षुओंके पास दूत भेजे (यह सोचकर कि) उससे पूछूँगा या उसे बतलाऊँगा । या श्रामणेर उपसम्पदा ग्रहण करना चाहता है । 138

७—"यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरी हो [3]। [3]

८—उस समय किसी भिक्षुकी माता रोगिणी थी। उसने पुत्रके पास संदेश भेजा—मैं रोगिणी

---

[1] ऊपर भिक्षुके लिये आई हुई (ञ) तक सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

[2] भिक्षुके लिये ऊपर (ञ) तक आई हुई सभी बातें यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

[3] श्रामणेरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

हूँ, मेरा पुत्र आये, मैं पुत्रका आगमन चाहती हूँ। तव उस भिक्षुको हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है सदेश भेजनेपर सात जनोंके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको। सदेश न भेजनेपर नही, और सन्देश भेजे विना भी पाँच जनोके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको, सदेश भेजनेपर तो वात ही क्या। और यह मेरी माता रोगिणी है, किन्तु वह उपासिका (=बौद्ध स्त्री) नही है। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह वात कही —

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सात जनोंके सप्ताह भरके कामके लिये, विना सदेश भेजे भी जानेकी। सदेश भेजनेपर तो वात ही क्या—'भिक्षु, भिक्षुणी, शिक्षमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, माता और पिता (के कामके लिये)। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन सातोंके सप्ताह भरके कामके लिये विना सदेश भेजे भी जानेकी, सदेश भेजनेपर तो वात ही क्या। सप्ताह में लौट आना चाहिये। 139

९—"यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुकी माता रोगिणी हो, और वह पुत्रके पास सदेश भेजे—'मैं रोगिणी हूँ, मेरा पुत्र आवे, मैं पुत्रका आगमन चाहती हूँ,' तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये विना सदेश पाये भी जाना चाहिये, सदेश पानेकी तो वात ही क्या। (इस विचारसे कि) पथ्यका प्रवध करूँगा, रोगिणीकी सुश्रूषाका प्रवन्ध करूँगा, औषधिका प्रवध करूँगा, देखभाल करूँगा या सेवा करूँगा। सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 140

१०—"यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुका पिता रोगी हो ०[1]।" 141

(३) सदेश मिलनेपर सात दिनके लिये वाहर जाना

१—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुका भाई वीमार हो और वह भाईके पास सदेश भेजे—'मैं रोगी हूँ, मेरा भाई आये, मैं भाईका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जाना चाहिये, विना सदेशके नही, और सप्ताह भरमें लौट आना चाहिये। 142

२—"यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुका जाति-भाई वीमार हो और वह भिक्षुके पास सदेश भेजे—'मैं वीमार हूँ, भदन्त आयें, मैं भदतका आगमन चाहता हूँ' तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जाना चाहिये सदेश न भेजनेपर नही। और सप्ताहमें लौट आना चाहिये। 143

३—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुका भृतिक (=विहारका नौकर) वीमार हो और वह भिक्षुओंके पास सदेश भेजे—'मैं वीमार हूँ, भदन्त लोग आयें, मैं भदन्तोका आगमन चहता हूँ,' तो भिक्षुओ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। सदेश न भेजनेपर नही। सप्ताहमें लौट आना चाहिये।" 144

४—उस समय सघका (वळा) विहार टूट रहा था। एक उपासकने जगलमें (लकळी) सामान कटवाया था। उसने भिक्षुओंके पास सन्देश भेजा—'यदि भदन्त लोग इस सामानको ले जा सके तो मैं इसे उन्हें देता हूँ,' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सघके कामसे जानेको (किन्तु) सप्ताहमें लौट आना चाहिये।" 145

वर्षावास भाणवार समाप्त

---

[1] माताकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

§३–वर्षावास करनेके स्थान

(१) विशेष परिस्थितिमें स्थान-त्याग

उस समय कोसल देशके एक (भिक्षु)ग्राममें वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको जंगली जानवरो (=व्यालो)ने उत्पीडित किया पकळा और मारा भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

१— यदि भिक्षुओ! वर्षावास करते भिक्षुओंको जंगली जानवर पीडित करते पकळते और मारते हैं तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं, (करना चाहिये)। 146

२—यदि भिक्षुओ! वर्षावास करते भिक्षुओंको सरीसृप (=साँप-बिच्छू) पीडित करें डसे और मारें तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 147

३— चोर। 148

४— पिशाच। 149

५— यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंका ग्राम आगसे जल जाये और भिक्षुओं को भिक्षाकी तकलीफ हो तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 150

६— भिक्षुओंका आसन और निवास आगसे जल गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ पाते हों। 151

७— भिक्षुओंका गाँव पानीसे डूब गया हो और भिक्षुओंको भिक्षाकी तकलीफ हो। 152

८— भिक्षुओंका आसन और निवास पानीसे डूब गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ पाते हों। 153

(२) गाँव उजळनेपर गाँववालोंके साथ

१—उस समय एक(भिक्षु) आवासमें वर्षावास करते समय भिक्षुओंका गाँव चोरोंने उठा दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ वह गाँव गया वहाँ जानेकी। 154

२—० गाँव दो टुकळे हो गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जिधर अधिक संख्या है उधर जानेकी। 155

३—अधिक संख्यावाले श्रद्धा-रहित प्रसन्नता-रहित थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जिधर श्रद्धावान् प्रसन्नतावान् हैं उधर जानेकी। 156

(३) स्थानकी प्रतिकूलतासे ग्राम-त्याग

१—उस समय कोसल देशके एक(भिक्षु)आवासमें वर्षावास करते भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिला। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! यदि वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिलता तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 157

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षु आवश्यकतानुसार अच्छा या बुरा भोजन पूरा पाते हैं किन्तु वह भोजन अनुकूल नही है तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये, वर्षावास टूटनेका डर नही । 158

३—"० भोजन पूरा पाते है और वह भोजन अनुकूल भी होता है, किन्तु अनुकूल ओपध नही पाते तो इसी विघ्न-बाधा ० । 159

४—"० अनुकूल ओपध भी पाते है लेकिन अनुकूल उपस्थाक (=अन्न, भोजन देनेवाला गृहस्थ) नही पाते तो इसी विघ्न-बाधा० ।" 160

(४) व्यक्तिकी प्रतिकूलतासे स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुको स्त्री बुलाती है—'आओ, भन्ते ! तुम्हे हिरण्य (=अशर्फी) दूँगी, तुम्हे सुवर्ण दूँगी, तुम्हे खेत, मकान, बैल, गाय, दास, दासी, भार्या बनानेके लिये कन्या दूँगी या मैं तुम्हारी हूँगी या तुम्हारे लिये दूसरी भार्या लाऊँगी,' तब यदि भिक्षुके (मनमें) ऐसा हो—'भगवान्ने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जानें मेरे ब्रह्म चर्यमें विघ्न हो' तो वहाँसे चल देना चाहिये, वर्षावासके टूटनेका डर नही । 161

२—" ० भिक्षुको वेश्या बुलाती है ०[१] । 162

३—" ० भिक्षुको स्थूलकुमारी (=अधिक अवस्थावाली अविवाहिता स्त्री) बुलाती है ०[१] । 163

४—" ० भिक्षुको पडक (हिजळा) बुलाता है ०[१] । 164

५—" ० भिक्षुको जातिवाले बुलाते हैं ०[१] । 165

६—" ० भिक्षुको राजा बुलाते हैं ०[१] । 166

७—" ० भिक्षुको चोर बुलाते हैं ०[१] । 167

८—" ० भिक्षुको बदमाश बुलाते है ०[१] । 168

९—" ० यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु जिसका स्वामी नही, ऐसे खजानेको देखे । तब भिक्षुको ऐसा हो—'भगवान्ने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जाने मेरे ब्रह्मचर्यमें विघ्न हो ।' तो वहाँसे चल देना चाहिये , वर्षावासके टूटनेका डर नही ।" 169

(५) संघ-भेद रोकनेके लिये स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु बहुतसे भिक्षुओको संघमें फूट डालनेकी कोशिश करते देखे और वहाँ भिक्षुको ऐसा हो—'संघ में फूट डालनेको भगवान्ने भारी (दोष) कहा है, मेरे सामनेहो संघमें कही फूट न पळ जाय,' (यह सोच) वहाँसे चल देना चाहिये । वर्षावास टूटनेका डर नही । 170

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करता भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमे बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे है ० । 171

३—" ० भिक्षु सुनता है कि अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे हैं, और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र हैं । यदि मैं इनको कहूँ कि आवुसो ! भगवान्ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है, मत आप आयुष्मान् संघमें

---

[१] ऊपर 'स्त्री' हीकी तरह यहाँ भी पढना चाहिये ।

§३–वर्षावास करनेके स्थान

(१) विशेष परिस्थितिमें स्थान-त्याग

उस समय कोसल देशमें एक (भिक्षु)आश्रममें वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको जंगली जानवरों (=व्यालों)ने उत्पीड़ित किया पकड़ा और मारा भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

१— यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करते भिक्षुओंको जंगली जानवर पीड़ित करते पकड़ते और मारते हैं तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 146

२—यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करते भिक्षुओंको सरीसृप (=साँप-बिच्छू) पीड़ित करें, डसें और मारें तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 147

३— चोर •। 148

४— पिशाच। 149

५— यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंका ग्राम आगसे जल जाये और भिक्षुओंको भिक्षाकी तकलीफ हो तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं (करना चाहिये)। 150

६— भिक्षुओंका आसन और निवास आगसे जल गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ पाते हो। 151

७— भिक्षुओंका गाँव जलसे डूब गया हो और भिक्षुओंको भिक्षाकी तकलीफ हो। 152

८— भिक्षुओंका आसन और निवास पानीसे डूब गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ पाते हो। 153

(२) गाँव उजड़नेपर गाँववालोंके साथ

१—उस समय एक (भिक्षु) आवासमें वर्षावास करते समय भिक्षुओंका गाँव चोरोंने उठा दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जहाँ वह गाँव गया वहाँ जानेकी। 154

२— गाँव दो टुकड़े हो गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जिधर अधिक संख्या है उधर जानेकी। 155

३—अधिक संख्यावाले श्रद्धा-रहित प्रसन्नता-रहित थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जिधर श्रद्धावान् प्रसन्नतावान् हैं उधर जानेकी। 156

(३) स्थानकी प्रतिकूलतामें ग्राम-त्याग

१—उस समय कोसल देशमें एक (भिक्षु) आवासमें वर्षावास करते भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिला। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! यदि वर्षावास करनेवाले भिक्षुओंको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नहीं मिलता तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 157

(७) वर्षावासके लिए अयोग्य स्थान

१—उस समय भिक्षु वृक्षोंके कोटरमें वर्षावास करते थे। लोग देखकर हैरान होते थे—कैसे (यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण वृक्षोंके कोटरमें वर्षावास करते है) जैसे कि पिशाच! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वृक्षके कोटरमें वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसको दुक्कटका दोष हो।" 184

२—उस समय भिक्षु वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते है) जैसेकि शिकारी! भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वृक्ष-वाटिकामे वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष है।" 185

३—उस समय भिक्षु चौळेमें वर्षावास करते थे। वर्षा आनेपर वृक्षके नीचेकी ओर भी भागते थे, नीमके झुरमुटकी ओर भी भागते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! चौळेमें वर्षावास नही करना चाहिये जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। 186

४—उस समय भिक्षु विना घर-मकान के वर्षावास करते थे और सर्दीसे भी तकलीफ पाते थे गर्मीसे भी तकलीफ पाते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! विना घर-मकानके वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।' 187

५—उस समय भिक्षु मुर्दो (के रखने)की कुटियोंमे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण मुर्दाकी कुटियोमे वर्षावास करते है) जैसेकि मुर्दा जलानेवाले शवदाहक! भगवानने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! मुर्दोकी कुटियोमे वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 188

६—उस समय भिक्षु छप्परोमें वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसेकि चरवाहे! भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! छप्परोमें वर्षावास नही करना चाहियें। जो करे उसे दुक्कटका दोषहो।" 189

७—उस समय भिक्षु चाटी (=अनाज रखनेका मिट्टीका बडा कुडा जिसे कही-कही छोळ भी कहते है)मे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे ० जैसे तीर्थिक[1]! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! चाटीमें वर्षावास नही करना चाहिये ० दुक्कट०।" 190

(८) वर्षावासमे प्रव्रज्या

१—उस समय श्रावस्तीमे सघने प्रतिज्ञा (=कतिका) की थी—'वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नही देंगे।' विशाखा मृगारमाताके नातीने भिक्षुओंके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओंने कहा—'आवुस! सघने प्रतिज्ञा की है कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या न देगें। आवुस तब तक प्रतीक्षा करो, जब तक कि भिक्षु वर्षावास कर लेते हैं। वर्षा समाप्त होनेपर वे प्रव्रज्या देंगे।' तब भिक्षुओने वर्षावास करके विशाखा मृगारमाताके नातीसे कहा—'अब आओ आवुस! प्रव्रज्या लो।' उसने

---

[1] बुद्धके समयके आजीवक, निर्ग्रन्थ (=जैन) आदि साधु-सम्प्रदाय।

फूट डालनेकी इच्छा करें तो वह मेरी बातको करेंगे कान देकर सुनेंगे ध्यान देंगे तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 172

४—'यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमें बहुतसे भिक्षु संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रहे हैं और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'वे भिक्षु मेरे मित्र नहीं हैं किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। यदि मैं उनके मित्रोंसे कहूँगा तो वे इन्हें कहेंगे—'आवुसो! भगवान्‌ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है अतः आप आयुष्मान् संघमें फूट डालनेकी इच्छा करें तो वह उनकी बातको करेंगे कान देकर सुनेंगे ध्यान देंगे तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 173

५—'यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने—'अमुक (भिक्षु)आवासमें बहुतसे भिक्षुओंने संघमें फूट डाल दी। यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र हैं '। 174

६— भिक्षु सुने । यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षु मेरे मित्र नहीं हैं किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र '। 175

७— भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियाँ संघमें फूट डालनेकी कोशिश कर रही हैं। यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हैं। यदि मैं उनसे कहूँगा—भगिनियो! भगवान्‌ने संघमें फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है ध्यान देंगी तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नहीं। 176

८— वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नहीं हैं किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। यदि मैं उनके मित्रोंसे कहूँगा तो वे इन्हें कहेंगे ध्यान देंगी। 177

— भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियोंने संघमें फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हैं। 178

१०— भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी)आवासमें बहुतसी भिक्षुणियोंने संघमें फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नहीं हैं किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। 179

(६) घुमन्तू गृहस्थोंके साथ-साथ वर्षावास

१—(क) उस समय एक भिक्षु व्रज (=ग्वालोंके टेवड़े)में वर्षावास करना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ व्रजमें वर्षावास करनेकी। 180

(ख) व्रज उठकर कहीं चला गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जहाँ व्रज उठकर जाए वहाँ जानेकी। 181

२—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर सार्थ (=कारवाँ)के साथ जाना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सार्थके साथ वर्षावास करनेकी। 182

३—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर नावसे जाना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नावपर वर्षावास करनेकी। 183

[1] ऊपरकी तरह यहाँ दुहराओ।

(७) वर्षावासके लिए अयोग्य स्थान

१—उस समय भिक्षु वृक्षोंके कोटरमें वर्षावास करते थे। लोग देखकर हैरान होते थे—कैसे (यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण वृक्षोके कोटरमे वर्षावास करते हैं) जैसे कि पिशाच!' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वृक्षके कोटरमे वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसको दुक्कटका दोप हो।" 184

२—उस समय भिक्षु वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास करते हैं) जैसेकि शिकारी! भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वृक्ष-वाटिकामें वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोप है।" 185

३—उस समय भिक्षु चौळेमें वर्षावास करते थे। वर्षा आनेपर वृक्षके नीचेकी ओर भी भागते थे, नीमके झुरमुटकी ओर भी भागते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! चौळेमें वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोप हो।' 186

४—उस समय भिक्षु विना घर-मकान के वर्षावास करते थे और सर्दीसे भी तकलीफ पाते थे गर्मीसे भी तकलीफ पाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! विना घर-मकानके वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 187

५—उस समय भिक्षु मुर्दो (के रखने)की कुटियोमे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण मुर्दाकी कुटियोमे वर्षावास करते हैं) जैसेकि मुर्दा जलानेवाले शवदाहक! भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! मुर्दोकी कुटियोमें वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 188

६—उस समय भिक्षु छप्परोमें वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसेकि चरवाहे! भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! छप्परोमें वर्षावास नही करना चाहियें। जो करे उसे दुक्कटका दोपहो।" 189

७—उस समय भिक्षु चाटी (=अनाज रखनेका मिट्टीका बड़ा कुडा जिसे कही-कही छोळ भी कहते है)में वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे ० जैसे तीर्थिक[1]! भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! चाटीमें वर्षावास नही करना चाहिये ० दुक्कट०।" 190

(८) वर्षावासमे प्रव्रज्या

१—उस समय श्रावस्तीमें सघने प्रतिज्ञा (=कतिका) की थी—'वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नही देंगे।' विशाखा मृगारमाताके नातीने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओने कहा—'आवुस! सघने प्रतिज्ञा की है कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या न देगे। आवुस तव तक प्रतीक्षा करो, जव तक कि भिक्षु वर्षावास कर लेते हैं। वर्षा समाप्त होनेपर वे प्रव्रज्या देगे।' तव भिक्षुओने वर्षावास करके विशाखा मृगारमाताके नातीसे कहा—'अव आओ आवुस! प्रव्रज्या लो।' उसने

---

[1] बुद्धके समयके आजीवक, निर्ग्रन्थ (=जैन) आदि साधु-सम्प्रदाय।

कहा—'भन्ते ! यदि मैं पहले प्रव्रजित हुआ होता तो (भिक्षु जीवनमें) रमण करता किन्तु अब मैं नहीं प्रव्रजित होऊँगा। विशाखा मृगारमाता हैरान होती थी—कैसे आर्य लोग ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नहीं देंगे ! कौन काल ऐसा है कि जिसमें धर्माचरण नहीं किया जाय ?' भिक्षुओंने विशाखा मृगारमाताके हैरान होनेको सुना। तब उन्होंने यह बात भगवानसे कही।—

'भिक्षुओ ! ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये कि वर्षाके भीतर हम प्रव्रज्या नहीं देंगे। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। 191

§४—स्थान-परिवर्तनमें सदोषता और निर्दोषता

(१) पहिली वर्षोपनायिकामें वचन दे वर्षावासमें व्यतिक्रम निषिद्ध

१—उस समय आयुष्मान उपनन्द शाक्यपुत्रने राजा प्रसेनजित् कोसलसे पहिली वर्षोपनायिका में वर्षावास करनेका वचन दिया था। और उन्होंने उस आवास (भिक्षु-आश्रम)में जाते वक्त रास्तेमें बहुत चीवरोंवाला एक आवास देखा। तब उनको हुआ—क्यों न मैं दोनों आवासोंमें वर्षावास करूँ ? इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा। तब वह दोनों आवासोंमें वर्षावास करने लगे। राजा प्रसेनजित् कोसल हैरान होता था—'कैसे आर्य उपनन्द शाक्यपुत्र हमें वर्षावासका वचन देकर झूठ करते हैं। भगवान्ने अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है और झूठ बोलनेके त्यागको प्रशंसा है। भिक्षुओंने राजा प्रसेनजित् कोसलके हैरान होनेको सुना। तब जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ करते हैं ! भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है और झूठ बोलनेके त्यागको प्रशंसा है। तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रित कर आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रसे पूछा—

"सचमुच उपनन्द ! तूने राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ किया ?

'हाँ सच भगवान् !

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—'कैसे तू निकम्मा आदमी राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ करेगा ? मोघ-पुरुष ! मैंने तो अनेक प्रकारसे झूठ बोलनेकी निंदा की है और झूठ बोलनेके त्यागकी प्रशंसा है। मोघ-पुरुष ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है । फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने (भिक्षुओंको) संबोधित किया—

'यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु (किसीको) पहिली वर्षोपनायिकासे वर्षावास करनेका वचन दे और उस आवासमें जाते वक्त रास्तेमें एक बहुत चीवरोंवाला आवास देखे। तब उसको हो—क्या न मैं दोनों आवासोंमें वर्षावास करूँ ? इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा'। तब वह दोनों आवासोंमें वर्षावास करने लगे। भिक्षुओ ! उस भिक्षुका पहिली (वर्षोपनायिका) न मालूम हो तोभी तुरंत उसको दुक्कटका दोष हो। 192

(२) पहिली वर्षोपनायिकामें वचन दे आवासमें आन-जानेके नियम

१—(क)—क 'यदि भिक्षुओ ! किसी भिक्षुने पहिली वर्षोपनायिकासे वर्षावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमें जाते वक्त वह बाहर उपोसथ कर पीछे विहारमें जाये आसन-वासन बिछाये पीने-पीनेका पानी रखे आँगनमें झाड़ू दे और करने लायक कामके न रहने

पर उसी दिन चला जाये। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरत उसको दुक्कटका दोष हो। 193

ख "यदि भिक्षुओ ! किसी भिक्षुने पहिली वर्षोपनायिकासे वर्षावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमे जाते वक्त वह बाहर उपोसथ करे, पीछे विहारमे जाय, आसन-वासन बिछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमें झाळूदे, और करने लायक कामके बाक़ी रहतेही उसी दिन चला जाये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरन्त उसको दुक्कटका दोष हो। 194

ग "आँगनमें झाळूदे और करने लायक कामके बाकी न रहनेपर दो-तीन दिन बिता कर चला जाय, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 195

घ "आँगनमें झाळू दे और करने लायक कामके बाकी रहते ही दो-तीन दिन बिताकर चला जाये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 196

ङ "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताहभरके करने लायक कामके रहते दो-तीन दिन बिताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहको बाहर बितावे, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोष हो।" 197

(३) कब आना-जाना और कब नहीं

२—(दोष नही)—क "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताह भरके करने लायक कामके रहते दो-तीन दिन बिताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहके भीतरही लौट आये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको दोष नही। 198

ख "० आँगनमें झाळू दे और वह प्रवारणाके[1] आनेके एक सप्ताह पहले करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु चाहे उस आवासमें आये या न आयें, उस भिक्षुको० दोष नही। 199

३—(दोष) ८ "० आँगनमें झाळू दे और वह करने लायक काम बाकी न रखकर उसी दिन चला जाता ह। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 200

ख "० आँगनमें झाळू दे और वह करने लायक कामको बाकी रखकर उसी दिन चला जाता है० दुक्कट हो। 201

ग "० आँगनमें झाळूदे और करने लायक कामको न छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 202

घ "० आँगनमें झाळू दे और करने लायक कामको बाकी रख दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 203

ङ १२ "० आँगनमें झाळू दे और सप्ताह भरके लायक कामको छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है और वह सप्ताह भर बाहर बिताता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 204

च "० आँगनमे झाळू दे और वह दो-तीन दिन बसकर सप्ताहभर करने लायक कामको छोळकर चला जाता है और उसी सप्ताहमें लौट आता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 205

४—(दोष नही) "० आँगनमें झाळू दे और प्रवारणाके एक सप्ताह पहिले करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है, तो भिक्षुओ चाहे वह उस आवासमें आये या न आये उस भिक्षुको० दोष नही।" 206

---

[1] वर्षावास समाप्तिपर पळनेवाली (आश्विन) पूर्णिमाको प्रवारणा कहते हैं।

(४) पिछली वर्षोपनायिकासे वचन दे आवासमें जाने-लौटनेके नियम

१—(दोष)—क 'यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने पिछली (वर्षोपनायिका)में वर्षावास करनेका वचन दिया हो और वह उस आवासको जाते वक्त बाहर उपोसथ करे, पीछे विहार में जाय आसन-वासन बिछाये, खाने-पीनेका पानी रखे आँगनमें झाड़ू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रखकर चला जाय भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पिछली वर्षोपनायिका न मालूम हो तो भी तुरत उसको दुक्कटका दोष हो। 207

ख आँगनमें झाड़ू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाय दुक्कटका दोष हो। 208

ग आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको न बाकी रखकर चला जाता है दुक्कटका दोष हो। 209

घ आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक काम बाकी रखकर चला जाता है दुक्कटका दोष हो। 210

ङ आँगनमें झाड़ू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताहभर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है दुक्कटका दोष हो। 211

२—(दोष नहीं)—क आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रह सप्ताह भर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है और उस सप्ताहके भीतर ही लौट आता है दोष नहीं। 212

ख आँगनमें झाड़ू देता है और वह चातुर्मासी कौमुदी (=शरद पूनो=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमें आवे या न आवे उस भिक्षुको दोष नहीं। 213

३—(दोष)—क आँगनमें झाड़ू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रख चला जाता है दुक्कटका दोष हो। 214

ख आँगनमें झाड़ू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है। 215

ग आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाकी न रखकर चला जाता है। 216

घ आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है। 217

ङ आँगनमें झाड़ू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताह भरके करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है उस भिक्षुको दुक्कटका दोष हो। 218

४—(दोष नहीं)—क आँगनमें झाड़ू देता है और दो-तीन दिन रह सप्ताह भरके कामको बाकी रखकर चला जाता है और उसी सप्ताहके भीतर लौट आता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको दोष नहीं। 219

ख आँगनमें झाड़ू देता है और वह चातुर्मासी कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमें आवे या न आवे उस भिक्षुको दोष नहीं। 220

वस्सूपनायिकक्खन्धक समाप्त ॥३॥

४–प्रवारणा-स्कंधक

१—प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति-सबधी नियम। २—कुछ भिक्षुओकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा। ३—असाधारण प्रवारणा। ४—प्रवारणा स्थगित करना। ५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढाना।

§१–प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति सम्बन्धी नियम

१—श्रावस्ती

(१) मौन व्रतका निषेध

१—उस समय बुद्धभगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पिं डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु को स ल देशके एक भिक्षु-आश्रममें वर्षावास करते थे। तब उन भिक्षुओ को यह हुआ—'किस उपायसे हम एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त, अच्छी तरह वर्षावास करें, और भोजनसे न दुख पायें।' तब उन भिक्षुओ को यह हुआ—'यदि हम एक दूसरेसे आलाप-सलाप न करें, जो भिक्षा करके गाँवसे पहले आये वह आसन बिछावे, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढा, पैर रगळनेकी कठली, रक्खे, कूळेकी थालीको धोकर रक्खे, धोने-पीनेके पानीको रक्खे, भिक्षा करके गाँवसे पीछे आये, तो जो कुछ खाकर बचा हुआ हो यदि चाहे तो उसे खाय, न चाहे तो तृण-रहित स्थानमें छोळदे या प्राणी-रहित पानीमें डाल दे, और वह आसनको उठाये, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढा, पैर रगळनेकी कठली समेटे, कूळेकी थालीको धोकर रखदे, धोने-पीनेका पानी उठावे, और चौकेको साफ करे। जो पीनेवाले पानीके घळे, इस्तेमाल करनेवाले पानीके घळे, या पाखानेके घळेको रिक्त, खाली देखे तो उसे भरके रखदे। यदि उससे न होसके तो हाथके इशारेसे बुलाकर हाथके सकेतसे रखवा दे। उसके कारण दुर्वचन न बोले। इस प्रकार हम एकमत, विवाद रहित हो मोदयुक्त, अच्छी तरह वर्षावास कर सकेगे और भोजनसे भी न दुख पायेंगे।

तब उन भिक्षुओने एक दूसरेसे आलाप-सलाप नही किया ० उसके कारण दुर्ववचन नही बोले। यह नियम था कि वर्षाके बाद वर्षावास करके भिक्षु भगवान्‌के दर्शनके लिये जाते थे। तब वर्षावास समाप्त कर तीन महीनेके बाद आसन-वासन समेट, पात्र-चीवर ले वह भिक्षु श्रा व स्ती की ओर चल पळे। क्रमश जहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क का आराम जे त व न था और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोका यह नियम है कि वह आये भिक्षुओसे कुशल-प्रश्न पूछते हैं। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा, यापन करने योग्य तो रहा? तुम लोगोने एकमत, विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास तो किया? भोजनके लिये तुम्हें तकलीफ तो नही हुई?"

'हाँ भगवान् ! अच्छा रहा, यापन करने योग्य रहा, हमने एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया, भोजनके लिये हमें तकलीफ नहीं हुई।

जानते हुए भी (किसी किसी बातको) तथागत पूछते हैं, जानते हुए भी (किसी किसी बातको) नहीं पूछते। काल जानकर पूछते हैं (न पूछने का) काल जानकर नहीं पूछते। तथागत सार्थक (बात) को पूछते हैं, व्यर्थकी (बातको) नहीं (पूछते)। व्यर्थकी (बातका पूछना) तथागतकी मर्यादासे परे है। बुद्ध भगवान् दो कारणोंसे भिक्षुओंसे पूछते हैं—(१) धर्म उपदेश करनेके लिए, (२) या शिष्योंके लिए शिक्षापद (= नियम) विधान करनेके लिए। तब भगवान्ने उन भिक्षुओंसे यह कहा —

"भिक्षुओ ! कैसे तुमने एकमत विवाद रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और तुम्हें भोजनके लिये तकलीफ नहीं हुई।

'भन्ते ! हम बहुतसे प्रसिद्ध सम्भ्रान्त भिक्षु कोसल देशके एक भिक्षु-आश्रममें वर्षावास करने लगे। तब हम भिक्षुओंको यह हुआ—किस उपायसे[1] उसके कारण दुर्वचन न बोलें। इस प्रकार भन्ते ! हमने एकमत विवाद रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और भोजनके लिये तकलीफ नहीं हुई।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! न-अच्छी-तरहसे ही इन मोघ-पुरुषों (= निकम्मे आदमियों)ने वर्षावास किया तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरहसे वर्षावास किया। भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने पशुओंकी तरह ही एक साथ वास किया तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरह वर्षावास किया। भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने भेळोंकी तरह ही एक साथ वास किया तो भी । भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने पक्षियोंकी तरहही एक साथ वास किया तो भी । भिक्षुओ ! कैसे इन मोघ-पुरुषोंने तीर्थिकोंके मूक व्रतको ग्रहण किया ! भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिए है ।

फटकार कर धर्म-संबंधी कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ ! मूक व्रतको जिसको कि तीर्थिक लोग ग्रहण करते हैं—नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसको दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओंको देखे सुने और सन्देह वाले इन तीन तरह (के अपराधों या दोषों)की प्रवारणा (=बारना-मार्जन) करनेकी और वह तुम्हें एक दूसरेके लिये अनुकूल दोष हटाने वाली विनय-अनुमोदित होगी। I

और भिक्षुओ ! प्रवारणा इस प्रकार करनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने। आज प्रवारणा (=पवारणा) है। यदि संघ उचित समझे तो वह प्रवारणा करे। तब स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु एक कंधेपर उत्तरासंग रख उकडूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! संघके पास देखे सुने और संदेह वाले इन तीन प्रकारके (अपने अपराधोंकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे सुने और संदेह वाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।' (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंग करके उकडूँ बैठ, हाथ जोळकर ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! संघके पास (देखे सुने और संदेहवाले इन तीन प्रकार अपराधोंकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे सुने और संदेहवाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।

---

[1] देखो पृष्ठ १८५ (१)।

(२) वृद्धोंके सामने बैठनेमें नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूं बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनोंपर ही बैठे रहते थे। (उनमें) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूं बैठ प्रवारणा करते वक्त अपने आसनोंपर ही बैठे रहते हैं !' तब उन भिक्षुओं ने भगवान्‌ने यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके उकळूं बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनोंपर ही बैठे रहते हैं ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ ! वे मोघपुरुष स्थविर भिक्षुओंके उकळूं बैठे प्रवारणा करते वक्त आसनपर ही बैठे रहते हैं ? भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

—फटकार करके धर्म संबंधी कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुओंके उकळूं बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनपर नहीं बैठना चाहिये। जो बैठे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सभीको उकळूं बैठ प्रवारणा करने की।"2

२—उस समय बुढ़ापेसे अतिदुर्बल एक स्थविर सबके प्रवारणा कर लेनेकी प्रतीक्षामें उकळूं बैठे मूर्छित होकर गिर पळे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तब तक उकळूं बैठने की जब तक कि उसके पासवाला प्रवारणा करे और (अनुमति देता हूँ) प्रवारणा कर लेनेपर आसनपर बैठने की।"3

(३) प्रवारणाकी तिथियाँ

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'कितनी प्रवारणाएँ हैं !' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! चतुर्दशीकी और पंचदशीकी, यह दो प्रवारणाएँ हैं।"4

(४) प्रवारणाके चार कर्म

तब भिक्षुओंको ऐसा हुआ—"कितने प्रवारणाके कर्म हैं ?" भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह चार प्रवारणाके कर्म हैं—(१) धर्म-विरुद्ध वर्ग (=अपूर्ण संघ)का प्रवारणा कर्म, (२) धर्म-विरुद्ध संपूर्ण (संघ)का प्रवारणा कर्म, (३) धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म, (४) धर्मानुसार संपूर्ण (संघ)का प्रवारणा कर्म। भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्मको नहीं करना चाहिये, और मैंने इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी अनुमति नहीं दी है। भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध समग्र (संघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको नहीं करना चाहिये, और मैंने ऐसे प्रवारणा कर्मकी अनुमति नहीं दी है। भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्म को नहीं करना चाहिये, और ऐसे प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति नहीं दी है। भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुसार समग्र (संघ)का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको करना चाहिये। इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हे यह सीखना चाहिये कि जो यह धर्मानुसार समग्र (संघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको मैं करूँगा।" 5

(५) अनुपस्थितकी प्रवारणा

१—तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

हाँ भगवान् ! अच्छा रहा यापन करने योग्य रहा हमने एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया भोजनके लिये हम तकलीफ नहीं हुई।

जानते हुए भी (किसी किसी बातको) तथागत पूछते हैं जानते हुए भी (किसी किसी बातको) नहीं पूछते। काल जानकर पूछते हैं (न पूछने का) काल जानकर नहीं पूछते। तथागत सार्थक (बात) को पूछते हैं अनर्थकी (बातको) नहीं (पूछते) । अनर्थकी (बातका पूछना) तथागतकी मर्यादासे परे है। बुद्ध भगवान् दो कारणोंसे भिक्षुओंसे पूछते हैं—(१) धर्म उपदेश करने के लिए (२) या शिष्योंके लिए शिक्षा पद (= नियम) विधान करनेके लिए। तब भगवान्ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

'भिक्षुओ ! कैसे तुमने एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और तुम्हें भोजनके लिये तकलीफ नहीं हुई।

'भन्ते ! हम बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु कोसल देशमें एक भिक्षु-आश्रममें वर्षावास करने लगे। तब हम भिक्षुओंको यह हुआ—किस उपायसे[1] उसका कारण दुर्वचन न बोलें। इस प्रकार भन्ते ! हमने एकमत विवाद रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और भोजनके लिये तकलीफ नहीं हुई।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! न-अच्छी-तरहसे ही इन मोघ-पुरुषों (= निकम्मे आदमियों)ने वर्षावास किया तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरहसे वर्षावास किया। भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने पशुओंकी तरह ही एक साथ वास किया तो भी यह समझते हैं कि इन्होंने अच्छी तरह वर्षावास किया भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोंने भेड़ोंकी तरह ही एक साथ वास किया तो भी । भिक्षुओ ! इन मोघ पुरुषोंने पक्षियोंकी तरहही एक साथ वास किया तो भी । भिक्षुओ ! कैसे इन मोघ-पुरुषोंने तीर्थिकोंके मूक व्रतको ग्रहण किया ! भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिए है ।

फटकार कर धर्म-संबंधी कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ ! मूक व्रतको जिसको कि तीर्थिक लोग ग्रहण करते हैं—नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसको दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओंको देखे सुने और सन्देह वाले इन तीन तरह (के अपराधों या दोषों)की प्र वा र णा (=बारबार्जन) करनेकी और वह तुम्हें एक दूसरेके लिये अनुकूल दोष हटाने वाली विनय-अनुमोदित होगी। 1

'और भिक्षुओ ! प्र वा र णा इस प्रकार करनी चाहिये—चतुर, समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने। आज प्रवारणा (=पवारणा) है। यदि संघ उचित समझे तो वह प वा र णा करे। तब स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु एक कंधेपर उत्तरासंग रख उकड़ूँ बैठ, हाथ जोड़ ऐसा कहे—'आवुस ! संघके पास देखे सुने और संदेह वाले इन तीन प्रकारके (अपने अपराधोंकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे सुने और संदेह वाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी । (फिर) नये भिक्षुको एक कंधेपर उत्तरासंग करके उकड़ूँ बैठ हाथ जोड़कर ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! संघके पास (देखे सुने और संदेहवाले इन तीन प्रकार अपराधोंकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे सुने और संदेहवाले अपराधोंको बतलावें। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।

---

[1] देखो पृष्ठ १८५ (१)।

हुआ—भगवान्‌ने पांच भिक्षुओंके सघको प्रवारणा करनेकी अनुमति दी है और हम चार ही जने है। हमें कैसे प्रवारणा करनी चाहिये ?, यह बात भगवान्‌से कही —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार (भिक्षुओ)को एक दूसरेके साथ (=अन्योन्य) प्रवारणा करनेकी। 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—'चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—'आयुष्मानो ! मेरी सुनो, आज प्रवारणा है। यदि आयुष्मानोको पसद हो तो हम एक दूसरेके साथ प्रवारणा करे।' (तब) स्थविर भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासग कर उकळू बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—आवुसो ! मैं आयुष्मानोके पास प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मानो ! कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और सदेहवाले अपराधोको बतलावे। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। इसके बाद भी०। तीसरी बार भी०।' (फिर) नये भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासग करके, उकळूँ बैठ, हाथ जोळकर उन भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! आयुष्मानोके पास देखे, सुने मै प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके (मेरे) देखे, सुने, सदेहवाले अपराधोको बतलावे। देखनेपर मै उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।'"

२—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है, पाँचके सघको प्रवारणा करनेकी। चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम तीनही जने है, कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देताहूँ तीन (भिक्षुओ)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी। 9

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[१]।"

३—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन दो भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है, पाँचके सघको प्रवारणा करनेको और चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, और तीन को (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम दोही जने हैं, कैसे हमे प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दो (भिक्षुओं)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की। 10

"और भिक्षुओ इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[१]।"

(८) एक भिक्षुकी प्रवारणा

उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने अनुमति दी है ०[२] और दोको (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की, किन्तु मैं अकेला हूँ, मुझे कैसी प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला (=चौपाल) ०[२] उसके लिये उपोसथमें रुकावट नही करनी चाहिये।" 11

---

[१] चार भिक्षुओं वाली प्रवारणाकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[२] देखो २§४।६ (३) (पृष्ठ १५५-77)—'उपोसथ' और 'शुद्धि'की जगहपर 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

भिक्षुओ ! एकत्रित हो जाओ संघ प्रवारणा करेगा। ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

भन्ते ! एक भिक्षु बीमार है वह नहीं आया है।

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ—रोगी भिक्षुको प्रवारणा (को दूसरे द्वारा भेज) देने की। 6

और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्रवारणा) देनी चाहिये—उस रोगी भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग रख उकड़ूँ बैठ हाथ जोड़कर ऐसे कहना चाहिये— मैं प्रवारणा देता हूँ। मेरी प्रवारणाको ले जाओ ! मेरे लिये प्रवारणा करना। इस प्रकार कायासे सूचित करे वचनसे सूचित करे, या काय-वचनसे सूचित करे तो प्रवारणा देदी गई होती है। यदि न कायासे सूचित करे न वचनसे सूचित करे न काय-वचनसे सूचित करे तो प्रवारणा दी गई नहीं होती। इस प्रकार यदि प्रवारणा मिल सके तो ठीक नहीं और यदि नहीं तो भिक्षुओ ! उस रोगी भिक्षुको चारपाई या चौकीपर उठाकर ले आकर प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसा हो—यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़ जायगा और उसकी मृत्यु होगी—तो भिक्षुओ रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये बल्कि संघको वहाँ जाकर प्रवारणा करनी चाहिये। किन्तु संघको एक भागको प्रवारणा नहीं करनी चाहिये यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।

२— यदि भिक्षुओ प्रवारणा देनेपर प्रवारणा ले जाने वाला वहाँसे चला जाये तो प्रवारणा दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणा देनेपर प्रवारणा ले जानेवाला (भिक्षु संघमेंसे) निकल जाये या मर जाये या श्रामणेर बनजाय या भिक्षुनियमको त्यागदे या अन्तिम अपराध (=पाराजिक) का अपराधी हो जाय या पागल विक्षिप्त-चित्त या मूर्च्छित हो जाये या दोष न स्वीकार करनेसे उत्क्षिप्त हो जाये या दोषका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये या बुरी धारणाके न छोड़नेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे पंडक माना जाने लगे चोरीसे भिक्षुवस्त्र पहिननेवाला माना जाने लगे मातृघातक पितृघातक अर्हद्घातक भिक्षुणीदूषक संघमें फूट डालनेवाला बुद्धके शरीरसे लोहू निकालनेवाला (स्त्री-पुरुष) दोनोंके चिह्नवाला माना जाने लगे तो दूसरेको प्रवारणा प्रदान करना चाहिये [1]।"

(६) प्रवारणामें अपर्याप्त भिक्षु-संख्या

१—[1]उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन पाँच भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—भगवान्‌ने संघको प्रवारणा करनेका विधान किया है और हम पाँच ही जने हैं। कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (कमसे कम) पाँच (भिक्षुओं)के संघको प्रवारणा करने की। 7

(७) अल्पसंख्यक प्रवारणामें नियम

१—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन चार भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओंको यह

[1] देखो उपोसथ-स्कंधक ४।३।१३ (१४) (पृष्ठ १४७-४८ 67-69) शुद्धि और उपोसथकी जगह 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

[1] १, २, ३ संख्याके लिये उपोसथ-स्कंधक ४।३।१२ (१८) (पृष्ठ १४८-४९ 67-69) देखना चाहिये।

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन लोग दान दें जिससे बहुत अधिक रात बीत जाये और भिक्षुओको ऐसा हो—'लोग दान देते हैं जिससे अधिक रात बीत गई, यदि सघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान होजयागा,' तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते! सघ मेरी सुने, लोगोंके दान देनेमे आज बहुत रात बीत गई यदि सघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान होजायगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी-वर्ष-वाली प्रवारणा करे।' 825

३—"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन भि क्षु ओ के ध र्म (=सुत्तत= बुद्धोपदेश)का पाठ करते, सुत्त पाठियोके सुत्ततका सगायन करते विनयधर्मके विनयका निर्णय करते, धर्मकथिको (=धर्मोपदेशको)के धर्मकी परीक्षा करते, भिक्षुओके कलह करते, अधिक रात बीत जाये और तब भिक्षुओको ऐसा हो—० भिक्षुओके कलह करते आज बहुत अधिक रात चली गई, यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान हो जायगा', तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'० भिक्षुओके कलह करते (आज) बहुत अधिक रात बीत गई। यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही होगी और विहान होजायगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।' " 826

४—उस समय को स ल देशके एक आवासमें प्रवारणाके दिन बहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ था। वहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम था और बहुत भारी मेघ उठा हुआ था। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'यह बहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम है और बहुत भारी मेघ उठा हुआ है यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ बरसने लगेगा। (इस वक्त) हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्से ०।—

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन बहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ हो, वहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम हो, और बहुत भारी मेघ उठा हुआ हो, और उस वक्त भिक्षुओको ऐसा हो—'यह बहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे बचनेका स्थान कम है, और बहुत भारी मेघ उठा हुआ है। यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ बरसने लगेगा', तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते! सघ मेरी सुने, यह बहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है ० यह मेघ बरसने लगेगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।" 827

५—"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन राजाकी तरफ से विघ्न हो ०। 828

६—"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन चोरका विघ्न हो ०। 829

७—" ० अग्निका विघ्न हो ०। 830

८—" ० पानीका विघ्न हो ०। 831

९—"० मनुष्यका विघ्न हो ०। 832

१०—"० अमनुष्यका विघ्न हो ०। 833

११—"० हिंसक जन्तुओका भय हो ०। 834

१२—"० सरीसृपोका भय हो ०। 835

१२—"० जीवनका भय हो ०। 836

(९) प्रवारणामें दोष प्रतिकार कैसे और किसके सामने

[1]उस समय एक भिक्षुको प्रवारणा करते समय दोष याद आया । [2] जब वह संदेह रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा । (यह) कह प्रवारणा करे । इसके लिये प्रवारणाको छोड़ नहीं देना चाहिये' । 12 13

प्रथम भाणवार समाप्त

§२—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा

क (क) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर की गई दोषरहित प्रवारणा

उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन बहुतसे—पाँच या अधिक आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हुए । उन्होंने नहीं जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नहीं आये । [3] और भिक्षुओ ! सबकी समग्रताके अतिरिक्त प्रवारणासे भिन्न दिनको प्रवारणा नहीं करनी चाहिये । 821

द्वितीय भाणवार समाप्त

§३—असाधारण प्रवारणा

(१) विशेष अवस्थाओंमें संक्षिप्त प्रवारणा

१—(क) उस समय कोसल देशमें एक आवासमें प्रवारणाके दिन शबरोंका भय होगया । भिक्षु तीन वचनसे[4] प्रवारणा नहीं कर सके । भगवान्‌से यह बात कही ।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दो वचनसे प्रवारणा करनेकी । 822

(ख) और अधिक शबरोंका भय हुआ जिससे भिक्षु दो वचनसे भी प्रवारणा नहीं कर सके । भगवान्‌से यह बात कही ।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एक वचनसे प्रवारणा करनेकी । 823

(ग) और भी अधिक शबरोंका भय हुआ । भिक्षु एक वचनसे भी प्रवारणा नहीं कर सके ।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उसी वर्षमें प्रवारणा करनेकी । 824

२—उस समय एक आवासमें प्रवारणाके दिन लोग दान देते थे जिससे बहुत अधिक रात बीत जाती थी । तब उन भिक्षुओंको हुआ—'लोग दान देते हैं जिससे अधिक रात बीत गई यदि संघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सबकी प्रवारणा भी नहीं पूरी होगी और विहान होजायगा । हमें कैसे करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही ।—

---

[1] इसके लिये २§४।७ (पृष्ठ १५५,78 79)को देखना चाहिये ।

[2] देखो २§४।८ (१ २) (पृष्ठ १५५-५६) 'प्रातिमोक्ष'की जगह 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये

[3] देखो वर्षोपनायिक-स्कंधक ३§१-४ (पृष्ठ १७८-८४) चार भिक्षुके स्थानपर पाँच भिक्षु और 'उपोसथ'के स्थानपर 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये ।

[4] संघके सामने निवेदन करते समय 'दूसरी बार भी' 'तीसरी बार भी' कहकर जो वही वाक्यावली दो बार, तीन बार, दुहराई जाती है उसीको 'दो वचन' 'तीन वचन' कहते हैं ।

२—"कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे भाषणकी गई, कही गई प्रवारणाके समाप्त न होते उसे (कोई) स्थगित करता है तो वह प्रवारणा स्थगित होती है ।० दो वचनवाली ०।० एक वचनवाली ०।० उसी वर्षवाली ०।—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ।"

(४) फटकार करके प्रवारणा पूरा करना

१—"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक भिक्षु (दूसरे) भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, और उस भिक्षुको दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध नही, वाचिक आचार शुद्ध नही, आजीविका शुद्ध नही, यह मूर्ख अजान है । प्रेरित करनेपर ऐसा कहनेमें समर्थ नही है—वस भिक्षु मत भडन कलह, विग्रह, विवाद कर—इस प्रकार फटकार करके सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 841

२—"जव भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन, एक भिक्षु दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार अशुद्ध है, आजीविका अशुद्ध है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरणा करनेपर भी अनियोग देने मे समर्थ नही, तो—मत भिक्षु भडन=कलह, विग्रह, विवाद कर,—यह कह फटकार सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 842

३—"जव भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे । उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते हैं—इस आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है (किन्तु) आजीविका शुद्ध नही है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमे समर्थ नही है, तो—मत भिक्षु ! भडन=कलह, विग्रह, विवाद कर—(कह) फटकार कर सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 843

४—"जव भिक्षुओ ! ० इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है (किन्तु) यह मूर्ख अज्ञ है, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमें समर्थ नही है, तो—मत भिक्षु ! ० विवाद कर—(कह) फटकार कर सघको प्रवारणा करनी चाहिये ।" 844

(५) दड करके प्रवारणा करना

१—"जव भिक्षुओ ! ० दूसरे भिक्षु जानते है—इन आयुष्मान्‌का कायिक समाचार, वाचिक समाचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है, यह पडित चतुर है, प्रेरित करनेपर अनियोग देनेमें समर्थ हैं, तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! जो तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगितकी सो किस लिये स्थगित की ? क्या शील-सवधी दोपसे स्थगितकी, या आचार-सवधी दोपसे स्थगित की, या दृष्टि (धारणा)-सवधी दोषसे स्थगितकी ? यदि वह ऐसा कहे—'शील-सवधी दोषमे स्थगित करता हूँ, या आचार-सवधी दोपमे स्थगित करता हूँ, या दृष्टि-सवधी दोपसे स्थगित करता हूँ ।' तो उससे ऐसे पूछना चाहिये—क्या आयुष्मान् शील-सवधी दोपको जानते है ? आचार-सवधी दोपको जानते हैं ? या धारणा (=दृष्टि)-सवधी दोपको जानते हैं ?' यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मैं शील-सवधी दोषको जानता हूँ, आचार-सवधी दोपको जानता हूँ, धारणा-सवधी दोषको जानता हूँ', तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! क्या है शील-सवधी दोप, क्या है आचार-सवधी दोप, क्या है धारणा-सवधी दोप ?' यदि वह ऐसा कहे—'चार पा रा जि क, तेरह स घा दि से स, यह शील-सवधी दोप है, थु ल्ल च्च य, पा चि त्ति य, पा टि दे स नि य, दु क्क ट, दु र्भा ष ण यह आचार-सवधी दोप है, मिथ्या-दृष्टि, अन्त-ग्राहिका दृष्टि,[1] यह दृष्टि-सवधी दोप है, तो उसे यह कहना चाहिये—आवुस ! जो तुमने

[1] आत्माको नित्य या सतति-रहित मानना ।

१४— ब्रह्मचर्यमें विघ्न हो और वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—'यह ब्रह्मचर्यका विघ्न उपस्थित है, यदि संघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो संघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और ब्रह्मचर्यका विघ्न भी होजायगा तो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने यह ब्रह्मचर्यका विघ्न (उपस्थित) है यदि संघ उचित समझे तो यह दो-वचन-वाली एक-वचन वाली या उसी वर्षवाली प्रवारणा करे। "837

(२) दोषयुक्त व्यक्तिकी प्रवारणाका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दोषयुक्त होते प्रवारणा करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।

भिक्षुओ ! दोषयुक्त हो प्रवारणा नहीं करनी चाहिये। जो प्रवारणा करे उसे दुक्कटका दोष है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जो दोषयुक्त होते प्रवारणा करे उसे अवकाश करा दोषारोपण करनेकी। 838

§४–प्रवारणाका स्थगित करना

(१) अवकाश न करनेपर स्थगित

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अवकाश करवाते वक्त अवकाश करना नहीं चाहते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अवकाश न करनेवालेकी प्रवारणाको स्थगित करनेकी। 839

और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पञ्चदशीको उस प्रवारणाको उस व्यक्तिके साथ होनेपर संघके बीचमें बोलना चाहिये— भन्ते ! संघ मेरी सुने अमुक नाम वाला व्यक्ति दोष-युक्त है। उसकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। सामने होनेपर भी उसकी प्रवारणा नहीं करनी चाहिये' इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है।

(२) अनुचित स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (यह सोच) कि अच्छे भिक्षुने मुझपर हमारी प्रवारणा स्थगित करते हैं इसलिये दोष रहित शुद्ध भिक्षुओंकी प्रवारणाको भी झूठ-मूठ बिना कारण स्थगित करते थे और जिनकी प्रवारणा होगई उनकी प्रवारणाको भी स्थगित करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! दोषरहित शुद्ध भिक्षुओंकी प्रवारणाको बिना कारण झूठ-मूठ स्थगित न करना चाहिये। जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है। और भिक्षुओ ! जिनकी प्रवारणा हो चुकी उनकी प्रवारणाको स्थगित नहीं करना चाहिये जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है। 840

(३) स्थगित करनेका प्रकार

"भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है और इस प्रकार अ-स्थगित।

१— कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा अस्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे प्रवारणाको भाषण कर यह कर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे, तो वह प्रवारणा अ-स्थगित होती है। भिक्षुओ ! यदि दो वचनसे । भिक्षुओ ! यदि एक वचनसे । भिक्षुओ ! यदि उसी वर्ष वाली प्रवारणाको भाषणकर करकर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे तो वह प्रवारणा अ-स्थगित (ही) है—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा अ-स्थगित होती है।

आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया। यदि संघ उचित समझे तो प्र वा र णा करे। 846

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन थु ल्ल च्च य का दोष किया हो और, कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) थु ल्ल च्च य मानते हो, और कोई कोई पा चि त्ति य, कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हो और कोई कोई पा टि दे स नि य, कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हो और कोई कोई दु क्क ट, कोई कोई थुल्लच्चय मानते हो और कोई कोई दु र्भा ष ण, तो भिक्षुओ ! जो थु ल्ल च्च य समझनेवाले हैं वह उस भिक्षुको एक ओर ले जाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर लिया। यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।" 847

४—"यदि भिक्षुओ ! ० पा चि त्ति य दोष किया हो ०। 848

५—"०पा टि दे स नि य (दोष) किया हो ०। 849

६—"०दु क्क ट (का दोष) किया ०। 850

७—"०दुर्भाषण (दोष) किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई स घा दि से स, तो भिक्षुओ ! जो वह दुर्भाषण समझनेवाले हैं उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया। यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।' यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन दुर्भाषण (दोष) किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई थु ल्ल च्च य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई पा चि त्ति य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई पा टि दे स नि य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई दु क्क ट, तो भिक्षुओ! जो भिक्षु दु र्भा ष ण माननेवाले हैं, उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर० यदि संघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।" 851

(६) वस्तु या व्यक्तिको स्थगित करना

१—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघमें कहे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह वस्तु (=दोष) जान पळती है किन्तु व्यक्ति नही जान पळता, यदि संघ उचित समझे तो वस्तुको स्थगित कर प्रवारणा करे,' तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध (भिक्षुओ)को प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि वस्तु जान पळती है और व्यक्ति नही तो उसे इसी वक्त कहो।" 852

२—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघके बीचमें ऐसा कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने, यहाँ व्यक्ति जान पळता है किन्तु वस्तु नही, यदि संघ उचित समझे तो व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे,' तो उसको ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओ)के (संघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि व्यक्ति जान पळता है वस्तु नही तो उस (वस्तु)को इसी वक्त कहो।" 853

३—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन संघमें ऐसा कहे—'भन्ते ! संघ ! मेरी सुने, यह वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी, यदि संघ उचित समझे तो वस्तु और व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओ)के (संघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी तो उसको इसी वक्त कहो।" 854

इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगित की है वह क्या देखनेसे स्थगित की है सुननेसे स्थगित की है या सन्देहके कारण स्थगित की है ? यदि वह कहे—'देखनेसे मैंने स्थगित की है या सुननेसे मैंने स्थगित की है या सन्देहसे मैंने स्थगित की है' तो उसको ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा देखे (दोष)के कारण स्थगित कर दी तो क्या तुमने देखा कैसे देखा कब तुमने देखा कहाँ तुमने देखा कि उसने पाराजिकका अपराध किया संघादिसेसका अपराध किया थुल्लच्चय पाचित्तिय पाटिदेसनिय दुक्कट दुर्भाषणका अपराध किया ? (उस वक्त) कहाँ तुम थे और कहाँ यह भिक्षु था। क्या तुम करते थे और क्या यह भिक्षु करता था ? यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको देखे (अपराध)से स्थगित नहीं करता बल्कि सुने (अपराध)से स्थगित करता हूँ। तो उसको कहना चाहिये—'आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने (अपराध)से स्थगित किया तो तुमने क्या सुना कब सुना कहाँ सुना कि इसने पाराजिक दुर्भाषणका अपराध किया ? भिक्षुसे सुना या भिक्षुणीसे सुना या शिक्षमाणासे सुना या श्रामणेरसे सुना या श्रामणेरीसे सुना या उपासकसे सुना या उपासिकासे सुना या राजासे सुना या राजाके महामात्यसे सुना या तीर्थिकोंसे सुना या तीर्थिकोंके अनुयायियोंसे सुना ? यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने अपराधसे स्थगित नहीं करता बल्कि सन्देहसे स्थगित करता हूँ' तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'आवुस ! जो तूने इस भिक्षुकी प्रवारणाको सन्देहसे स्थगित किया है तो तू क्या सन्देह करता है, कैसे सन्देह करता है, कब सन्देह करता है कहाँ सन्देह करता है कि इसने पाराजिक दुर्भाषणका अपराध किया ? भिक्षुसे सुनकर सन्देह करता है या तीर्थिकोंके अनुयायियोंसे सुनकर सन्देह करता है ? यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको सन्देहसे नहीं स्थगित करता बल्कि मैं नहीं जानता कि मैं क्यों इस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। यदि भिक्षुओ ! वह दोषारोपण करनेवाला (=चोदक) भिक्षु प्रत्युत्तर (=अनुयोग)से जानकार गुरुभाइयों (=स-ब्रह्मचारियों) के चित्तको सन्तुष्ट न कर सके तो कहना चाहिये कि उसका दोषारोपण ठीक नहीं। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु प्रत्युत्तरसे स-ब्रह्मचारियोंके चित्तको सन्तुष्ट कर सके तो कहना चाहिये उसका दोषारोपण ठीक है। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु बिना जड़के पाराजिक (दोष) लगानेका स्वीकार करे तो उसपर संघादिसेस (दोष)का आरोप कर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि वह दोषारोपण करनेवाला भिक्षु बिना जड़के संघादिसेस दोष लगानेको स्वीकार करे तो उसपर धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये। बिना जड़के थुल्लच्चय दुर्भाषण (दोष) लगानेको स्वीकार करे तो धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है (अपनेको) पाराजिकका दोषी स्वीकार करता है तो उसे (हमेशाके लिये संघसे) निकालकर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है, संघादिसेसका दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो उसपर संघादिसेस दोष लगाकर संघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि थुल्लच्चय दुर्भाषणका दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो धर्मानुसार (दंड) करवाके संघको प्रवारणा करनी चाहिये। 84

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन थुल्लच्चय दोष किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके बारेमें) थुल्लच्चय समझते हों और कोई कोई संघादिसेस तो जो भिक्षु थुल्लच्चय समझनेवाले हैं वह उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दंड) करवाकर संघमें

जब तक कि नीरोग हो जाओ। नीरोग हो चुकनेपर इच्छा हो तो दोषारोपण करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह (दोष-)आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पाचित्तिय है।" 857

(८) प्रवारणा स्थगित करनेके अनधिकारी

१—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक नीरोग (भिक्षु) दूसरे रोगी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे कहना चाहिये—'आवुस! यह भिक्षु रोगी है। रोगीको भगवान्ने आरोप न लगाने योग्य कहा है। आवुस! प्रतीक्षा करो जब तक कि यह नीरोग हो जाय। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दोप लगाना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पा चि त्ति य है। 858

२—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे रोगी (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'(आप दोनो) आयुष्मान् रोगी है। रोगीको भगवान्ने आरोपण करनेके अयोग्य कहा है। आवुसो! प्रतीक्षा करो जब तक कि तुम दोनो नीरोग हो जाओ। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दूसरे नीरोग (भिक्षु)पर आरोप करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पा चि त्ति य है। 859

३—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक (भिक्षु) दूसरे (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो सघको दोनोसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दड) करवा सघको प्रवारणा करनी चाहिये।" 860

§५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढ़ाना

(१) ध्यान आदिकी अनुकूलताके लिये

उस समय कोसल देशके एक आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके एकमत, विवाद-रहित हो मोदयुक्त (वहाँ) रहते एक अच्छा वि हा र (=ध्यान समाधि आदि) प्राप्त हुआ। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमे एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम इसी वक्त प्रवारणा करेंगे तो हो सकता है कि प्रवारणा करके भिक्षु विचरनेके लिये चले जायँ और इस प्रकार हम इस उत्तम वि हा र से बाहर हो जायँगे, हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु० इस प्रकार हम इस उत्तम विहारसे बाहर हो जायँगे,' तो भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रवारणाके सग्रह करने की। 861

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (सग्रह) करना चाहिये—सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित होनेके बाद चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—भन्ते! सघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है, यदि हम० बाहर हो जायँगे। यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणाका सग्रह (=रोक रखना) करे इस वक्त उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और चातुर्मासी कौमुदी—पूर्णिमा को प्रवारणा करेगा—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—(१) भन्ते! सघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त रहने में एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम ० और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा करेगा। जिस आयुष्मान्को पसद है प्रवारणाका स ग्र ह किया जाय और इस समय उपोसथ किया

"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले वस्तु (=दोष) जान पड़े और पीछे व्यक्ति (=अपराधी दोषी) तो (दोषको) बतलाना उचित है। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले व्यक्ति जान पड़े और पीछे वस्तु तो (दोषको) बतलाना उचित है। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले वस्तु भी जान पड़े और व्यक्ति भी और उसका आरोप (=उत्क्षेपण) प्रवारणा कर चुकनेपर कहे तो (आरोपीको) उत्कोटनक पाचित्तिय होता है। ४५५

(७) झगड़ालुओंसे बचनेका ढंग

उस समय कोसल देशके एक आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध और सम्भ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके आसपास दूसरे भंडन (=कलह) विवाद और शोर करनेवाले तथा संघमें झगड़ा (मुकदमा) लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास करने लगे—'उन भिक्षुओंके वर्षावास कर लेनेपर प्रवारणाके दिन हम उनकी प्रवारणाको स्थगित करेंगे।' उन भिक्षुओंने सुना कि हमारे पासमें दूसरे झगड़ा लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास कर रहे हैं— 'कैसे हमें करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध सम्भ्रान्त भिक्षु वर्षावास करते हों और उनके पासमें प्रवारणाको स्थगित करनेवाले, तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन भिक्षुओंको दो-तीन चतुर्दशीके उपोसथ करनेकी जिसमें कि वह उन भिक्षुओंसे पहिले ही प्रवारणा कर सकें। यदि भिक्षुओ ! वे संघमें झगड़ा लगानेवाले भिक्षु उस आवासमें आते हैं तो उस आवासमें रहनेवाले भिक्षुओंको जल्दी जल्दी एकत्रित हो प्रवारणा कर लेनी चाहिये और प्रवारणा करके कहना चाहिये— 'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली। आयुष्मानोंको जैसा जान पड़े वैसा करें।' भिक्षुओ ! यदि वे संघमें झगड़ा डालनेवाले भिक्षु बिना प्रबन्ध किये उस आवासमें आवें तो आवासमें रहनेवाले भिक्षुओंको आसन बिछाना चाहिये पैर धोनेका जल पैर धोनेका पीढ़ा पैर रगड़नेकी कठली रख देनी चाहिये और अगवानी करके (उनके) पात्र चीवरको ग्रहण करना चाहिये। पानीके लिये पूछना चाहिये और उनको बहकाकर सीमाके बाहर जाकर प्रवारणा करनी चाहिये। प्रवारणा करके कहना चाहिये—'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली। आयुष्मानोंको जैसा जान पड़े वैसा करें।' यदि ऐसा हो सके तो ठीक न हो सके तो एक चतुर समर्थ आश्रम-निवासी भिक्षु दूसरे आश्रम-निवासी भिक्षुओंको सूचित करे—'आवासके रहनेवाले-आयुष्मानो ! मेरी सुनो यदि आयुष्मान् उचित समझें तो इस वक्त हम उपोसथ कर, प्रातिमोक्ष-पाठ करें और आगामी अमावस्यामें प्रवारणा करेंगे।' यदि भिक्षुओ ! वे संघमें झगड़ा लगानेवाले भिक्षु ऐसे कहें—'अच्छा हो आवुसो ! कि हम अभी प्रवारणा करें।' तो उन्हें इस प्रकार कहना चाहिये—'आवुसो ! हमारी प्रवारणामें तुम्हें अधिकार नहीं। हम (अभी) प्रवारणा नहीं करेंगे।' यदि भिक्षुओ ! वे संघमें झगड़ा डालनेवाले भिक्षु उस अमावस्या तक (भी) रह जायँ तो एक चतुर समर्थ आश्रमवासी भिक्षुओंको सूचित करे—'आवासके रहनेवाले आयुष्मानो ! मेरी सुनो। यदि आयुष्मान् उचित समझें तो इस वक्त हम उपोसथ करें प्रातिमोक्ष-पाठ करें और आगामी पूर्णिमामें प्रवारणा करेंगे।' यदि भिक्षुओ ! वे संघमें झगड़ा लगानेवाले भिक्षु ऐसा कहें। यदि भिक्षुओ ! वे संघमें झगड़ा लगानेवाले भिक्षु उस पूर्णिमा तक रहें तो भिक्षुओ ! उन सभी भिक्षुओंको आगामी चातुर्मासी कौमुदी (आश्विन) पूर्णिमाको इच्छा न रहनेपर भी प्रवारणा करनी चाहिये। ४५६

"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे नीरोग (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ! रोगी हैं और रोगी को भगवान्ने दोषारोपण (=अनुयोग) करनेके लिये अयोग्य कहा है। आवुस ! तब तक प्रतीक्षा करो

जब तक कि नीरोग हो जाओ। नीरोग हो चुकनेपर इच्छा हो तो दोपारोपण करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह (दोप-)आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पाचित्तिय है।" 857

(८) प्रवारणा स्थगित करनेके अनधिकारी

१—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक नीरोग (भिक्षु) दूसरे रोगी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे कहना चाहिये—'आवुस! यह भिक्षु रोगी है। रोगीको भगवान्ने आरोप न लगाने योग्य कहा है। आवुस! प्रतीक्षा करो जब तक कि यह नीरोग हो जाय। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दोप लगाना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पाचित्तिय है। 858

२—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे रोगी (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'(आप दोनो) आयुष्मान् रोगी है। रोगीको भगवान्ने आरोपण करनेके अयोग्य कहा है। आवुसो! प्रतीक्षा करो जब तक कि तुम दोनो नीरोग हो जाओ। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दूसरे नीरोग (भिक्षु)पर आरोप करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पाचित्तिय है। 859

३—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक (भिक्षु) दूसरे (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो सघको दोनोंसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दड) करवा सघको प्रवारणा करनी चाहिये।" 860

§५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढ़ाना

(१) ध्यान आदिकी अनुकूलताके लिये

उस समय कोसल देशके एक आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके एकमत, विवाद-रहित हो मोदयुक्त (वहाँ) रहते एक अच्छा विहार (=ध्यान समाधि आदि) प्राप्त हुआ। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमे एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम इसी वक्त प्रवारणा करेंगे तो हो सकता है कि प्रवारणा करके भिक्षु विचरनेके लिये चले जायँ और इस प्रकार हम इस उत्तम विहारसे बाहर हो जायँगे, हमें कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमें बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु० इस प्रकार हम इस उत्तम विहारसे बाहर हो जायँगे,' तो भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रवारणाके सग्रह करने की। 861

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (सग्रह) करना चाहिये—सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित होनेके बाद चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—भन्ते! सघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है, यदि हम० बाहर हो जायँगे। यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणाका सग्रह (=रोक रखना) करे इस वक्त उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और चातुर्मासी कौमुदी—पूर्णिमाको प्रवारणा करेगा—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—(१) भन्ते! सघ मेरी सुने, हमें एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त रहनेमें एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम ० और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा करेगा। जिस आयुष्मान्को पसद है प्रवारणाका सग्रह किया जाय और इस समय उपोसथ किया

जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय वह चुप रहे और जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

"धारणा—संघने स्वीकार किया कि प्रवारणाका संग्रह किया जाय। इस समय उपोसथ किया जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय संघको पसंद है इसलिये चुप है—इसे मैं ऐसा समझता हूँ।

(२) प्रवारणाको बढ़ा देनेपर जानेवालेके लिये गुंजाइश

यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओंके प्रवारणा-संग्रह कर लेनेपर एक भिक्षु ऐसा बोले—आवुसो! मैं देहात विचरण करने जाना चाहता हूँ। देहातमें मेरा कुछ काम है। तो उससे ऐसा कहना चाहिये—अच्छा आवुस! प्रवारणा करके चले जाना। यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु प्रवारणा करते समय दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—आवुस! मेरी प्रवारणामें तुम्हें अधिकार नहीं। मेरी प्रवारणा तुम्हारे साथ न होगी। यदि भिक्षुओ! प्रवारणा करते वक्त उस भिक्षुकी प्रवारणाको दूसरा भिक्षु स्थगित करे तो संघको दोनोंसे जिरह करके बात करके पता लगा करके धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 86_2

यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु देहातमें उस कामको भुगताकर उस चातुर्मासी कौमुदी (पूर्णिमा) के भीतर फिर आवासमें लौट आये तो उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते वक्त यदि कोई भिक्षु उस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—'आवुस मेरी प्रवारणामें तुम्हारा अधिकार नहीं है। मेरी प्रवारणा हो चुकी है।' यदि उन भिक्षुओंके प्रवारणा करते वक्त वह भिक्षु किसी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो संघको दोनोंसे जिरह करके बात करके पता लगा करके धर्मानुसार (दंड) करके प्रवारणा करनी चाहिये। 86_3

इस स्कंधकमें ४६ वस्तु हैं

पवारणास्कन्धक समाप्त ॥४॥

५—चर्म-स्कंधक

१—जूते संबंधी नियम । २—सवारी, चारपाई, चौकीके नियम ।
३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम ।

§१—जूते संबंधी नियम

१—राजगृह

(१) सोण कोटिविंशकी प्रव्रज्या

१—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे। उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार अस्सी हजार गाँवोका स्वामी हो राज्य करता था। उस समय चंपामे सोण कोटिवीस (=बीस करोड़का धनी) नामक सुकुमार श्रेष्ठिपुत्र रहता था। उसके पैरके तलवोमे रोएँ उगे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हजार गावो (के मुखियो) को किसी कामके लिये जमाकर सोणकोटिवीसके पास दूत भेजा—'सोणका आगमन चाहता हूँ।' तब सोण कोटिवीसके माता-पिताने सोणसे यह कहा—'तात सोण! राजा तेरे पैरोको देखना चाहता है। सो तात सोण! तू राजाकी ओर पैर न फैलाना। राजाके सामने पल्थी मारकर बैठना। पल्थी मारकर बैठनेपर राजा तेरे पैरोको देख लेगा।'

तब सोण कोटिवीसके लिये पालकी लाई गई। सोण कोटिवीस जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ गया। जाकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारको प्रणाम कर पल्थी मारकर बैठा। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने सोण कोटिवीसके पैरके तलवोमें उत्पन्न रोमोको देखा। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोको इस जन्मके हितकी बातका उपदेश कर प्रेरित किया—'भणे[1]! मैंने तुम्हे इस जन्मके हितकी बातके लिये उपदेश किया। जाओ! उन भगवान्की सेवामे। वह भगवान् तुम्हे जन्मान्तरके हितकी बातके लिये उपदेश करेंगे।'

तब वह अस्सीहजार गाँवोके मुखिया जहाँ गृध्रकूट पर्वत था वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान्के उपस्थाक (=निरंतर सेवक) थे। तब उन अस्सी हजार गाँव (के मुखियो) ने आयुष्मान् स्वागतके पास जाकर यह पूछा—"भन्ते! यह अस्सी हजार गाँवोके (मुखिया) भगवान्के दर्शनको यहाँ आये हैं। अच्छा हो भन्ते! हम भगवान्का दर्शन पायें।"

"तो तुम आयुष्मानो! मुहूर्त भर यही रहो, जब तक कि मैं भगवान्से निवेदन करूँ।"

तब आयुष्मान् स्वागतने उन अस्सी हजार गाँवो (के मुखियो) के सामने देखते-देखते पटिया (=अर्धचन्द्रपाषाण)में डूबकर (=अन्तर्धान हो) भगवान्के सामने प्रकट हो यह

---

[1] अपनेसे छोटेको संबोधन करनेमें इस शब्दका व्यवहार होता था।

कहा— 'भन्ते ! यह अस्सी हजार गाँवोंके मुखिया भगवान्‌के दर्शनको यहाँ आये हैं सो अब जिसका भगवान् काल समझें (वैसा यह करें)।

तो स्वागत ! विहारकी छायामें आसन बिछा।"

अच्छा भन्ते ! —(कह) आयुष्मान् स्वागतने भगवान्‌को उत्तर दे पीढ़ी के भगवान्‌के सामने अन्तर्धान हो उन अस्सी हजार गाँवोंके देखते-देखते उनके सामने प्रतिमाग भगवान्‌के विहारकी छायामें आसन बिछाया। तब भगवान् विहार (=रहनेकी कोठरी) से निकलकर विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब वह अस्सी हजार गाँवोंके मुखिया जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। तब वह अस्सी हजार गाँवोंके मुखिया आयुष्मान् स्वागत की ओर ही निहारते थे भगवान्‌की ओर नहीं। तब भगवान्‌ने उन अस्सी हजार गाँवोंके मुखियोंके मनकी बातको जानकर आयुष्मान् स्वागतको संबोधित किया—

'तो स्वागत ! और भी उत्तम मनुष्य-धर्मसे दिव्य-शक्ति ऋद्धि प्रातिहार्य (=चमत्कार दिखाना) को दिखा।

अच्छा भन्ते ! (कह) आयुष्मान् स्वागत भगवान्‌को उत्तर दे आकाशमें जाकर टहलते भी थे खड़े भी होते थे बैठते भी थे लेटते भी थे धुआँ भी देते थे प्रज्वलित भी होते थे अन्तर्धान भी होते थे। तब आयुष्मान् स्वागत ने आकाशमें अनेक प्रकारकी दिव्य-शक्ति ऋद्धि प्रातिहार्य को दिखा भगवान्‌के पैरोंमें सिरसे वन्दनाकर भगवान्‌से यह कहा—

भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता (गुरु) हैं और मैं श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता हैं और मैं श्रावक हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता हैं और मैं श्रावक हूँ।

तब उन अस्सी हजार गाँवोंके मुखियोंने—'आश्चर्य है हो ! अद्भुत है हो !! जो शिष्य ऐसा दिव्य-शक्तिधारी है। ऐसा महा ऋद्धिवाला है !! अहो ! शास्ता कैसे होंगे !—(कह) भगवान्‌की ओर ही निहारते थे आयुष्मान् स्वागतकी ओर नहीं।

तब भगवान्‌ने उन अस्सी हजार गाँवों (के मुखियों) के मनकी बातको जानकर दान-कथा शील-कथा स्वर्ग-कथा और काम भोगोंके दुष्परिणाम अपकार, मालिन्य और काम-भोगसे रहित होनेके गुणको प्रकट किया। जब भगवान्‌ने उन्हें भव्य चित्त मृदु-चित्त अनाच्छादित-चित्त आह्लादित-चित्त प्रसन्न-चित्त देखा तब जो बुद्धोंका उठानेवाला उपदेश है—दुःख दुःखका कारण दुःखका नाश और दुःखके नाशका उपाय—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा रहित स्वच्छ वस्त्र अच्छी तरह रंगको पकड़ता है इसी प्रकार उन अस्सी हजार गाँवोंके मुखियोंको उसी आसनपर— जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह नाश होनेवाला है यह विरज=निर्मल धर्मकी आँख उत्पन्न हुई। तब उन्होंने दृष्ट धर्म (=धर्मका साक्षात्कार करनेवाला) प्राप्त-धर्म विदित-धर्म पर्यवगाढ़-धर्म (अच्छी तरह धर्मको अवगाहन करनेवाला) सन्देह-रहित वाद-विवाद-रहित और विशारदताको प्राप्त हो भगवान्‌के धर्ममें अत्यन्त निष्ठावान् हो भगवान्‌से यह कहा—'आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा करदे ढँकेको उघाड़ दे भूलेको रास्ता बतलाये अँधेरेमें तेलका दीपक रखदे, जिससे कि आँखवाले देखें। ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह हम भगवान्‌की शरण जाते हैं धर्म और भिक्षु संघकी भी। आजसे भगवान् हमें अंजलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।

२—तब सोण कोटिवीसको ऐसा हुआ—'मैं भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पड़ता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण सर्वथा परिशुद्ध खरादे-शंखसा उज्ज्वल ब्रह्मचर्य घरमें रहकर सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर-दाढ़ी मुँड़ा काषाय वस्त्र पहिन घरसे बेघर

हो प्रव्रजित हो जाऊँ ?'

तव वह अस्सी हजार गाँवोके मुखिया भगवान्के भाषणका अभिनदनकर अनुमोदनकर आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये। तब सो ण को टि वी स उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोके चले जानेके थोळीही देर बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सो ण कोटिवीसने भगवान्से यह कहा—

"मै भगवान्के उपदेश धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पळता है कि) यह० ब्रह्मचर्य घरमें रहकर सुकर नही। भन्ते! मै शिर-दाढी मुँळा, काषाय वस्त्र पहिन, घर-से-बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दें।"

सो ण कोटिवीसने भगवान्के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके थोळे ही समय बादसे आयुष्मान् सो ण, सी त व न में विहार करते थे। उनके बहुत उद्योग-परायण हो टहलते वक्त पैर फट गये और टहलनेकी जगह खूनसे वैसे ही भर गई जैसे कि गाय मारनेकी जगह। तब एकान्त में विचारमग्न हो बैठे आयुष्मान् सोणके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—"भगवान्के जितने उद्योग-परायण हो विहरनेवाले शिष्य है मै उनमेंसे एक हूँ, तो भी मेरा मन आस्रवो (=चित्तमलो)को छोळ कर मुक्त नही हो रहा है। मेरे घरमें भोग-सामग्री है। वहाँ रहते मैं भोगोको भी भोग सकता हूँ और पुण्य भी कर सकता हूँ। क्यो न मै लौटकर गृहस्थ हो भोगोका उपभोग करूँ और पुण्य भी करूँ।"

३—तब भगवान्ने आयुष्मान् सोणके चित्तके विचारको अपने मनसे जानकर, जैसे बलवान् पुरुष (विना प्रयास)समेटी बाँहको फैलाये और फैलाई बाँहको समेटे वैसे, ही गृ ध्र कू ट पर्वतपर अन्तर्धान हो (भगवान्) सी त व न में प्रकट हुए। तब भगवान् बहुतसे भिक्षुओके साथ आश्रममें टहलते, जहाँ आयुष्मान् सो ण के टहलनेका स्थान था, वहाँ गये। भगवान्ने आयुष्मान् सो ण के टहलनेकी जगह खूनसे भरी देखी। देखकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! यह किसका टहलनेका स्थान खूनसे भरा है जैसे कि गाय मारनेका स्थान?"

"भन्ते! बहुत उद्योग-परायण हो टहलते हुए आयुष्मान् सो ण के पैर फट गये। उन्हीकी टहलनेकी जगह है जो खूनसे भरी है जैसे कि गाय मारनेका स्थान।"

(२) अत्यन्त परिश्रम भी ठीक नहीं

तब भगवान् जहाँ आयुष्मान् सो ण का विहार (=रहनेकी कोठरी) था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् सो ण भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सो ण से भगवान्ने यह कहा—

"क्या सो ण! एकान्तमें विचारमग्न हो बैठे तेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—० पुण्य भी करूँ?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! क्या तू पहले गृहस्थ होते समय वी णा बजानेमें चतुर था?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वी णा के तार बहुत जोरसे खिचे होते थे तो क्या उस समय तेरी वी णा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नही, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वीणाके तार अत्यन्त ढीले होते थे, क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नही, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सोण! जब तेरी वीणाके तार न बहुत जोरसे खिंचे होते थे न अत्यन्त ढीले होते थे क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी काम लायक होती थी?"

"हाँ भन्ते!"

"इसी प्रकार सोण! अत्यधिक उद्योग-परायणता औद्धत्यको उत्पन्न करती है अत्यन्त शिथिलता कौसीद्य (=शारीरिक आलस्य) उत्पन्न करती है इसलिये सोण उद्योग करनेमें समता को ग्रहणकर इन्द्रियोंके सम्बन्धमें समता ग्रहण कर, और वहाँ कारणको ग्रहण कर।

अच्छा भन्ते! —(यह) आयुष्मान् सोणने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् सोणको यह उपदेशकर जैसे बलवान् पुरुष वैसेही सीतवनमें आयुष्मान् सोणके सामने अन्तर्धान हो गृध्रकूटमें जा प्रकट हुए। तब आयुष्मान् सोणने दूसरे समय उद्योग करनेमें समताको ग्रहण किया इन्द्रियोंके सम्बन्धमें समताको ग्रहण किया और वहाँ कारणको ग्रहण किया और आयुष्मान् सोण एकान्तमें प्रमादरहित उद्योगयुक्त आत्मनिग्रही हो विहरते अचिरमें ही जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण) को इसी जन्ममें स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे। 'जन्म क्षय हो गया ब्रह्मचर्य वास पूरा होगया करना था सो कर लिया और यहाँ कुछ करनेको नहीं'—यह जान लिया। और आयुष्मान् सोण अर्हतों (=जीवन्मुक्त)मेंसे एक हुए।

(३) अर्हत्वका वर्णन

तब अर्हत्व प्राप्त कर लेनेपर आयुष्मान् सोणको यह हुआ—'क्यों न मैं भगवान्‌के पास (अपने) अर्हत्व-प्राप्तिको बतलाऊँ। तब आयुष्मान् सोण जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सोणने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! जो क्षीण मलवाला (ब्रह्मचर्य)वासको पूरा कर चुका करणीयको कर चुका भार मुक्त निर्वाण-प्राप्त भव-बन्धन-क्षीण ठीक तरहसे ज्ञानसे विमुक्त अर्हत् होता है वह छ बातोंके कारण मुक्त होता है—(१) निष्कामतासे मुक्त होता है, (२) प्रविवेक (=एकान्त चिन्तन)से मुक्त होता है (३) द्रोह रहित होनेसे मुक्त होता है (४) (विषयोंके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है, (५) तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है (६) मोहके नाशसे मुक्त होता है। भन्ते! शायद यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो कि यह आयुष्मान् (अर्हत्) सिर्फ श्रद्धामात्रसे निष्कामताके कारण मुक्त है किन्तु भन्ते! ऐसा नहीं देखना चाहिये। भन्ते! जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है जिसने ब्रह्मचर्य (-वास) पूरा कर लिया जो करने लायक कामको कर चुका है वह करने लायक सभी कामोंको न देखते हुए, किये हुए कामोंके संचयको न देखनेसे और रागके नाशसे वीतराग होनेसे निष्कामताके कारण मुक्त होता है द्वेषके क्षय होनेसे द्वेषरहित हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है मोहके क्षयसे मोहरहित हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयुष्मान् लाभ-सत्कार और प्रशंसाकी इच्छासे एकान्त-सेवन करके मुक्त हुए किन्तु भन्ते! ऐसा नहीं देखना चाहिये। जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है जिसने ब्रह्मचर्य पूरा कर लिया है जो करने लायक कामको कर चुका है वह करने लायक सभी कामोंको न देखते हुए किये हुए कामोंके संचयको न देखनेसे और रागके नाशसे वीतराग होनेसे विवेक (=एकान्तचिन्तन)के कारण मुक्त होता है द्वेषके क्षय होनेसे द्वेष-रहित हो विवेकके कारण मुक्त होता है। मोहके क्षय होनेसे मोह-रहित हो विवेक के कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयुष्मान्! शील-व्रत-परामर्श (=शील और व्रतके अभिमान)को सारके तौरपर मान द्रोह-रहित (=समता

रहित) हो मुक्त हुए,' किन्तु भन्ते! ऐसा नहीं देखना चाहिये०[1] मोह-रहित हो द्रोहरहित होनेके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते! ० (विषयोंके) ग्रहण (=उपादान)के क्षयसे मुक्त हुए हैं ।०[2] मोहरहित हो (विषयोंके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है। (५) शायद भन्ते! ० तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त हुए हैं०[3] मोहरहित हो तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है। (६) शायद भन्ते! ० मोहके नाशसे मुक्त हुए है०[4] मोहरहित हो मोहके नाशसे मुक्त होता है।

"भन्ते! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया है, ऐसे भिक्षुके सामने यदि आँख द्वारा जानने योग्य रूप बार-बार भी आएँ तो भी उसके चित्तमें नहीं लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चचलही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।० यदि कान द्वारा जानने योग्य शब्द ० बार बार भी आवें०।० यदि नाक द्वारा जानने योग्य गध बार बार भी आवें०।०यदि जिह्वा द्वारा जानने योग्य रस बार बार भी आवें० यदि काया द्वारा जानने योग्य (शीत उष्ण आदिवाले) स्पर्श बार बार भी आवें०।० यदि मनद्वारा जानने योग्य धर्म बार बार भी आवें तो भी उसके चित्तमें नहीं लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चचल ही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा। जैसे भन्ते! छिद्र-रहित, दरार-रहित, ठोस पथरीला पर्वत हो, तो चाहे (उसकी) पूर्व दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित, सम्प्रकम्पित =सम्प्रवेपित नहीं कर सकता, पश्चिम दिशासे भी०, उत्तर दिशासे भी०, दक्षिण दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित० नहीं कर सकता। ऐसेही भन्ते! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया है० उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।—

निष्कामतासे मुक्त, विवेक-युक्त चित्तवाले,
अद्रोहसे मुक्त और उपादान-क्षयवाले,
तृष्णाके क्षयसे मुक्त, सम्मोह-रहित-चित्तवाले (पुरुष)का,
चित्त आयतनोकी उत्पत्तिको देखकर मुक्त होता है।
उस अच्छी तरहसे मुक्त, शान्त चित्तवाले भिक्षुको,
किये (कामो)का सचय नहीं, न कुछ करणीय शेष है।
जैसे ठोस पहाळ हवासे कपायमान नही होता,
इसी प्रकार प्रिय रूप, रस, शब्द, गध, और स्पर्श,
(यह) पदार्थ अनित्य है और वह अर्हत्‌को कपित नही करते।
वह विनाशको देखता है और उसका चित्त सुमुक्त हो स्थित होता है।

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! इस प्रकार कुलपुत्र लोग अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते हैं, (जिसमे कि) बात भी कह दी जाती है और आत्म-श्लाघा भी नही होती, किन्तु कोई कोई मोघ-पुरुष तो मानो परिहास करते अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते हैं, वह पीछे विनाशको प्राप्त होते है।"

फिर भगवान्‌ने आयुष्मान् सो ण को सबोधित किया—

---

[1] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर 'द्रोहरहित' शब्दको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[2] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर, 'विषयोंके ग्रहणके क्षय' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये ।

[3] ऊपर 'निष्कामता'की जगह 'तृष्णाके क्षय'वाक्यको रख, बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[4] ऊपर 'निष्कामता'की जगह 'मोहके नाशसे' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

"सोण! तू सुकुमार है। सोण! अनुमति देता हूँ तेरे लिये एक तल्लेके जूतेकी।"

"भन्ते! मैं अस्सी गाळी हिरण्य (=अशर्फी) और हाथियोंके सात अनीक¹को छोळकर बेघर हो प्रव्रजित हुआ। मेरे लिये (लोग) कहनेवाले होंगे सोण कोटिवीस अस्सी गाळी अशर्फी और हाथियोंके सात अनीकको छोळकर प्रव्रजित हुआ सो वह अब एक-तल्ले जूतेमें आसक्त हुआ है। यदि भगवान भिक्षु-संघके लिये अनुमति दें तो मैं भी इस्तेमाल करूँगा। यदि भगवान् भिक्षु-संघके लिये अनुमति नहीं देंगे तो मैं भी इस्तेमाल नहीं करूँगा।"

(४) एक तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक तल्लेवाले जूते की। भिक्षुओ! दो तल्लेवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये, न तीन तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, न अधिक तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 1

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रंगके जूतेको धारण करते थे, सारे पीले, सारे लाल, सारे मजीठिया (रंगके), सारे काले, सारे महारंग-से-रँगे, सारे महानाम (रंग) से रँगे जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे षड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रंगके जूते को धारण करते हैं) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! सारे नीले, सारे महानाम-(रंग)से रँगे जूतोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 2

(५) जूतोंके रंग और भेद

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नीलीपत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे, पीली पत्तीवाले, लाल पत्तीवाले, मजीठिया रंगकी पत्तीवाले, काली पत्तीवाले, महारंगसे रँगी पत्तीवाले, महानाम (रंग)से रँगी पत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे कि काम-भोगी गृही। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नीली पत्तीवाले, महानाम (रंग)से रँगी पत्तीवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 3

२—उस समय षड्वर्गीय लोग एँड़ी ढँकनेवाले जूतोंको धारण करते थे, पुट-बद्ध² जूतेको धारण करते थे, पलिगुण्ठिम³ जूतेको धारण करते थे, रुईदार जूतेको धारण करते थे, तीतरके पंखा जैसे जूतोंको धारण करते थे, मेढ़ेकी सींग बँधे हुए जूतोंको धारण करते थे, बकरेकी सींग बँधे जूतोंको धारण करते थे, बिच्छूके डंककी तरह नोकवाले जूते धारण करते थे, मोर-पंख-सिये जूतोंको धारण करते थे, चित्र-जूतेको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे काम-भोगी गृही। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! एँड़ी ढँकनेवाले चित्र-जूतेको न धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 4

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सिंह-चर्मसे बने जूतोंको धारण करते थे, व्याघ्रके चर्म, चीते

¹छ हाथी और एक हथिनीका अनीक होता है।
²यूनानी लोगोंके जूतों जैसे (—अनुवादक)।
³आजकलके 'बूट' की तरह सारे पैरको ढाँकने वाला जूता।

के चर्म०, ०हरिनके चर्म०, ० ऊदविलावके चर्म ०, ०विल्लीके चर्म०, ० काळक-चर्म०, ०उल्लूके चर्मसे परिष्कृत जूतोको धारण करते थे। ० भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ! सिंह-चर्मसे बने० जूतोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 5

(६) पुराने बहुत तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहन, पात्र-चीवर ले एक भिक्षुको अनुगामी बना रा ज-गृ ह में भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। बहुत तल्लेवाले जूतेको पहने एक उपासकने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर जूतेको छोळ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर जहाँ, वह भिक्षु था, वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादनकर यह बोला—

"भन्ते! किस लिये पैर खुजला रहे है?" "पैर फूट गये है।"

"तो, भन्ते! यह जूता है।"

"नही, आवुस! भगवान्ने बहुत तल्लेके जूतेका निषेध किया है।"

(भगवान्ने कहा—) "भिक्षु! लेले इस जूतेको।"

तब भगवान्ने इसी सबधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (पहिनकर) छोळे हुए बहुत तल्लेके जूतेकी। भिक्षुओ! नया बहुत तल्ले-वाला जूता नही पहनना चाहिये। जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो।" 6

(७) गुरुजनोंके नगे-पैर होनेपर जूतेका निषेध

उस समय भगवान् चौळेमें विना जूतेहीके टहल रहे थे। 'शास्ता विना जूतेके टहल रहे है' यह (देख) स्थविर भिक्षु भी विना जूतेहीके टहल रहे थे। प ड् व र्गी य भिक्षु शास्ताको बिना जूतेके टहलते और स्थविर भिक्षुओको भी विना जूतेके टहलते (देखकर) भी जूता पहने टहलते थे। (यह देख) जो अल्पेच्छ भिक्षु थे, वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको विना जूतेके टहलते (देख) और स्थविर भिक्षुओको भी विना जूतेके (देख) जूता पहने टहलते है!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"क्या सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको बिना जूतेके टहलते (देख)० जूता पहन कर टहलते है?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

बुद्धभगवान्ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुष, शास्ताको विना जूता पहने टहलते (देख) ० जूता पहने टहलते है? भिक्षुओ! यह काम-भोगी श्वेत वस्त्र पहननेवाले गृही भी अपनी जीविकाके हुनर (=शिल्प) के लिये, (अपने) आचार्य्यमें गौरवयुक्त, आदरयुक्त, एक तरहकी वृत्तिवाले हो रहते हैं। भिक्षुओ! यह कैसे शोभा देगा कि तुम इस प्रकारके सुन्दर तौरसे व्याख्यात धर्ममें प्रव्रजित होकर आचार्योमें, और आचार्यतुल्योमें, उपाध्यायोमें और उपाध्यायतुल्योमे, गौरव रहित, आदररहित, असमान वृत्तिके हो वरतोगे? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

भगवान्ने फटकारकर धार्मिककथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आचार्य या आचार्यतुल्योको, उपाध्याय या उपाध्याय तुल्योको विना जूतेके

---

[1] एक प्रकारका पैरका रोग जिसमें काँटे लगासा जख्म होता है।

"सोण! तू सुकुमार है, सोण! अनुमति देता हूँ तेरे लिये एक तल्लेके जूतेकी।

'भन्ते! मैं अस्सी गाळी हिरण्य (=असर्फी) और हाथियोंके सात अनीक[1]को छोळ घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ। मेरे लिये (लोग) कहनेवाले होंगे सोण कोळिवीस अस्सी गाळी असर्फी और हाथियोंके सात अनीकको छोळकर प्रव्रजित हुआ सो यह अब एक-तल्ले जूतेमें आसक्त हुआ है। यदि भगवान भिक्षु-संघके लिये अनुमति दें तो मैं भी इस्तेमाल करूँगा। यदि भगवान् भिक्षु-संघके लिये अनुमति नहीं देंगे तो मैं भी इस्तेमाल नहीं करूँगा।

(४) एक तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक तल्लेवाले जूते की। भिक्षुओ! दो तल्लेवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये, न तीन तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, न अधिक तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 1

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रंगके जूतेको धारण करते थे, सारे पीले, सारे लाल, सारे मजीठिया (रंगके), सारे काले, सारे महारंग-से रँगे, सारे महानाम-(रंग) से-रँगे जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे षड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रंगके जूते को धारण करते हैं) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ! भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! सारे नीले, सारे महानाम (रंग)से रँगे जूतोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 2

(५) जूतोंके रंग और भेद

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नीलीपत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे, पीली पत्तीवाले, लाल पत्तीवाले, मजीठिया रंगकी पत्तीवाले, काली पत्तीवाले, महारंगसे रँगी पत्तीवाले, महानाम (रंग)से रंगी पत्तीवाले जूतोंको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे ( ) जैसे कि काम-भोगी गृही। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! नीली पत्तीवाले, महानाम (रंग)से रँगी पत्तीवाले जूतेको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 3

२—उस समय षड्वर्गीय लोग एँळी ढकनेवाले जूतोंको धारण करते थे, पुटबद्ध[2] जूतेको धारण करते थे, पलिगुंठिम[3] जूतेको धारण करते थे, रुईदार जूतेको धारण करते थे, तीतरके पंखो जैसे जूतोंको धारण करते थे, मेढ़ेकी सींग बँधे हुए जूतोंको धारण करते थे, बकरेकी सींग बँधे जूतोंको धारण करते थे, बिच्छूके डंककी तरह नोकवाले जूते धारण करते थे, मोर-पंख-सिये जूतोंको धारण करते थे, चित्र-जूतेको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे काम-भोगी गृही। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! एँळी ढँकनेवाले चित्र-जूतेको न धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 4

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सिंह चर्मसे बने जूतेको धारण करते थे, व्याघ्रके चर्म, चीते

---

[1] एक हाथी और एक हथिनीका अनीक होता है।

[2] यूनानी लोगोंके जूतों जैसे (—अट्ठकथा)।

[3] आजकलके 'बूट' की तरह सारे पैरको ढाँकने वाला जूता।

२—वाराणसी

(११) निषिद्ध पादुकायें

१—तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जहाँ वा रा ण सी है उधर विचरनेको चल दिये। क्रमश विचरते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे और वहाँ वाराणसीमें भगवान् ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने काठकी खळाऊँका निषेध किया है सोच, ताळके पौधोको कटवा तालके पत्तोकी पादुका (बनवा) धारण करते थे। (पत्तेके) काटनेसे वह तालके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण तालके पौधेको कटवा कर तालके पत्तेकी पादुका धारण करते हैं, और कटे हुए वह तालके पौधे सूख जाते हैं! शाक्यपुत्रीय श्रमण एकेन्द्रिय जीव (=वृक्ष)की हिंसा करते हैं।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ० तालके पौधे सूख जाते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ० तालके पौधे सूखते हैं? भिक्षुओ! (कितने ही) मनुष्य वृक्षोमे जीवका ख्याल रखते है। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! तालके पत्रकी पादुका नहीं धारण करनी चाहिये०। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 12

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—भगवान्ने तालके पत्रकी पादुकाका निषेध किया है—यह सोच बाँसके पौधोको कटवाकर बाँसके पौधोकी पादुका धारण करते थे। कटजानेसे वे बेंतके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान होते थे—० एकेन्द्रिय जीवकी हिंसा करते हैं।' भिक्षुओने ० सुना। तब उन भिक्षुओने यह बात भगवान्से कही ०।—

"भिक्षुओ! बाँसके पौधोकी पादुका नही धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोप हो।" 13

३—तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहार कर जिधर भ द्दि या[1] (=भद्रिका) है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरते, जहाँ भ द्दि या है, वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ भ द्दि या में के जा ति या वनमें विहार करते थे। उस समय भद्दियावाले भिक्षु अनेक प्रकारकी पादुकाके मडनमें लगे रहते थे—तृण-पादुका भी बनाते बनवाते थे, मूँजकी पादुका भी बनाते बनवाते थे, ब ल्व ज (=बब्भळ घास)की पादुका०, हिंतालकी पादुका०, कमल-पादुका०, कम्बल-पादुका०, भी बनाते बनवाते थे, और शील, चित्त तथा प्रज्ञाके विषयमें पाठ और पूँछताछ करना छोळे हुए थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे ०। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! भद्दियाके भिक्षु अनेक प्रकारके पादुकाके मडनमें लगे रहते हैं ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ०? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

---

[1]सम्भवत वर्तमान मुगेर (विहार)।

टहलते वक्त जूता पहिनकर नहीं टहलना चाहिये जो टहले उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! आराममें जूता नहीं पहनना चाहिये जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो। 7

(८) विशेष अवस्थामें आराममें भी जूता पहिनना

१—उस समय एक भिक्षुको पाद कील क रोग[1] था। भिक्षु पकळकर उसे पाखानेके लिये और पिशाब कराने ले जाते थे। भगवान्ने विहार देखनेके लिये घूमते वक्त उन भिक्षुओंको उस भिक्षुको पकळकर पाखानेके लिये भी पेशाबके लिये भी ले जाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—'भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या बीमारी है?'

"भन्ते! इस आयुष्मान्को पाद कील क रोग है। इसको हम पकळकर पाखानेके लिये भी पेशाब के लिये भी ले जाते हैं।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उसे जूता धारण करनेकी जिसके कि पैरमें पीळा हो पैर फटे हो या पादकील रोग हो।" 8

२—उस समय भिक्षु बिना पैर धोये चारपाईपर भी चढ़ते थे चौकीपर भी चढ़ते थे। उससे चीवर भी मैला होता था और निवास-स्थान भी। भगवान्से यह बात कही —

"भिक्षुओ! जूता धारण करनेकी अनुमति देता हूँ। यदि उसी समय चारपाई या चौकीपर चढ़ना हो। 9

(९) आराममें जूता, मसाल, दीपक और दंड रखनेका विधान

उस समय भिक्षु रातके वक्त उपोसथके स्थानमें भी बैठनेके स्थानमें भी जाते हुए अन्धकारमें ठाँठ (=ठूँठे)में भी काँटेमें भी चले जाते थे और पैरोंको पीळा होती थी। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आराममें भी जूता मसाल दीपक और क त र द ड (=डंडा) को धारण करनेकी। 10

(१०) खळाऊँका निषेध

उस समय प ड्व र्गी य भिक्षु रात्रिके भिनसारको उठकर खळाऊँपर चढ़ ऊँचे शब्द महाशब्द खटखट शब्द करते टहलते थे और अनेक प्रकारकी ति र श्चा न क था (=फजूलकी बात) जैसे कि—राज-कथा चोर-कथा महामात्य-कथा सेना-कथा भय-कथा युद्ध-कथा अन्न-कथा पान-कथा वस्त्र-कथा शयन कथा माला-कथा गंध-कथा ज्ञाति-कथा यान-कथा ग्राम-कथा कस्बेकी कथा नगर-कथा देश कथा स्त्री-कथा पुरुष-कथा शूर-कथा चौरस्तेकी कथा पनघटकी कथा पहले मरोंकी कथा नानत्वकी कथा लोक-आख्यायिका समुद्र-आख्यायिका—ऐसी भव और अभवकी कथा कहते थे और इस प्रकार कीळोंको भी आक्रान्त करते थे मारते थे और भिक्षुओंको भी समाधिसे च्युत कर देते थे। तब जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु रातके भिनसारको भिक्षुओंको भी समाधिसे च्युत कर देते हैं! भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु समाधिसे च्युत करते हैं?

(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! काठकी खळाऊँको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको दुक्कटका दोष हो। 11

---

[1] एक प्रकारका पैरका रोग जिसमें काँटे लगा सा जान होता है।

२—वाराणसी

(११) निषिद्ध पादुकाये

१—तब भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जहाँ वा रा ण सी है उधर विचरनेको चल दिये। क्रमश विचरते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे और वहाँ वाराणसीमे भगवान् ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने काठकी खळाऊँका निषेध किया है सोच, ताळके पौधोको कटवा तालके पत्तोकी पादुका (बनवा) धारण करते थे। (पत्तेके) काटनेसे वह तालके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण तालके पौधेको कटवा कर तालके पत्तेकी पादुका धारण करते हैं, और कटे हुए वह तालके पौधे सूख जाते हैं। शाक्यपुत्रीय श्रमण एकेन्द्रिय जीव (=वृक्ष)की हिंसा करते हैं।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ० तालके पौधे सूख जाते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ० तालके पौधे सूखते है? भिक्षुओ! (कितने ही) मनुष्य वृक्षोमे जीवका ख्याल रखते हैं। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! तालके पत्रकी पादुका नही धारण करनी चाहिये०। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 12

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—भगवान्ने तालके पत्रकी पादुकाका निषेध किया है—यह सोच बाँसके पौधोको कटवाकर बाँसके पौधोकी पादुका धारण करते थे। कटजानेसे वे बेंतके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान होते थे—० एकेन्द्रिय जीवकी हिंसा करते है।' भिक्षुओने ० सुना। तब उन भिक्षुओने यह बात भगवान्से कही ०।—

"भिक्षुओ! बाँसके पौधोकी पादुका नही धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 13

३—तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहार कर जिधर भ द्दि या[1] (=भद्रिका) है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरते, जहाँ भ द्दि या है, वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ भ द्दि या में के जा ति या वनमें विहार करते थे। उस समय भद्दियावाले भिक्षु अनेक प्रकारकी पादुकाके मडनमें लगे रहते थे—तृण-पादुका भी बनाते बनवाते थे, मूँजकी पादुका भी बनाते बनवाते थे, ब ल्व ज (=बभळ घास)की पादुका०, हितालकी पादुका०, कमल-पादुका०, कम्बल-पादुका०, भी बनाते बनवाते थे, और शील, चित्त तथा प्रज्ञाके विषयमें पाठ और पूँछताछ करना छोळे हुए थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे ०। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! भद्दियाके भिक्षु अनेक प्रकारके पादुकाके मडनमे लगे रहते है ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ०? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

---

[1]सम्भवत वर्तमान मुगेर (बिहार)।

फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ! तृण मूँज बल्वज हिंताल कमल कम्बल की पादुकायें नहीं धारण करनी चाहिएँ, और न सुवर्णमयी न रौप्यमयी० न मणिमयी न वैदूर्यमयी न स्फटिकमयी न कांसमयी न कांचमयी न रांगेकी न सीसेकी न तांबे (=ताम्र।लो ह)की पादुकायें धारण करनी चाहिएँ। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! चाकी (=मुट्ठी?) तक पहुँचनेवाली पादुकाको नहीं धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नित्य रहनेकी जगहपर तीन प्रकारकी पादुकाओंके इस्तेमाल करनेकी—न चलनेकी और पेशाब पाखानेकी और आचमन (के वक्त)की। 14

४—श्रावस्ती

(१२) गाय बछड़ोंको पकड़ने मारने आदिका निषेध

तब भगवान् भ द्दि या में इच्छा तरह विहार कर जिधर श्रा व स्ती है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमशः विचरते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अ ना थ पि ण्डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अ चि र व ती (=राप्ती) नदीमें तैरती गायोंकी सींगोंको भी पकड़ते थे कानो गर्दन पूँछको भी पकड़ते थे पीठपर भी चढ़ते थे। राग-युक्त चित्तसे लिंगको भी छूते थे बछियोंको भी अवगाहन कर मारते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण तैरती गायोंको मारते हैं जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भिक्षुओंने सुना।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?

"(हाँ) सचमुच भगवान्!

भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! गायोंकी सींग कान गर्दन पूँछ नहीं पकड़नी चाहिये और न पीठपर चढ़ना चाहिये। जो चढ़े उसे दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! न राग-युक्त चित्तसे लिंगको छूना चाहिये। जो छूये उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो। न बछियोंको मारना चाहिये जो मारे उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 15

§२—सवारी, चारपाई चौकीके नियम

(१) सवारीका निषेध

उस समय ष ड्‌ व र्गी य भिक्षु पराये पुरुषके साथवाली स्त्रीसे युक्त पराई स्त्रीके साथवाले पुरुषसे युक्त यानसे जाते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे गंगाके मेलेको। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यानसे नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसे दुक्कटका दोष हो। 16

(२) रोगमें सवारीका विधान

१—उस समय एक भिक्षु को स ल देशमें भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रा व स्ती जाते वक्त रास्तेमें बीमार हो गया। तब वह भिक्षु रास्तेसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठा। लोगोंने उस भिक्षुको देखकर यह कहा—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायेंगे?

"आवुस! मैं भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।

"आइये भन्ते ! चलें।"

"आवुस ! मैं नहीं चल सकता। बीमार हूँ।"

"आइये भन्ते ! यानपर चढ़िये।"

"नहीं आवुस ! भगवान्‌ने यानका निषेध किया है।"

इस प्रकार सकोच करके नहीं चढ़ा। तब उस भिक्षुने श्रावस्ती जाकर भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगीको यानकी।" 17

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या नर-जोते (यान), या मादा-जोते (यान) (से जाना चाहिये) ?।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, नरजोते हत्थवट्टक[1]की।" 18

(३) विहित सवारियाँ

उस समय एक भिक्षुको यानकी चोटसे बहुत भारी पीळा हुई। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, शिविका, पाल्की (=पाटकी)की।" 19

(४) महाशय्याका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु उच्चाशयन, महाशयन जैसे कि कुर्सी (=आसन्दी), पलग, गोळक, चित्रक, पटिक[2](=गलीचा), पटलिक, [3]तूलिक (=तोशक), विकतिक, [4]उद्दलोमी एकन्तलोमी, कटिस्स, कौशेय, कुत्तक ऊनी बिछौना, हाथीका झूल, घोळेका झूल, रथका झूल, मृग-छाला, समूरी मृगका सुन्दर बिछौना, ऊपरकी चादर, (सिरहाने, पैरहाने) दोनो ओर लाल तकियोंको धारण करते थे। विहारमें घूमते वक्त लोग देखकर हैरान होते थे—(०) जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! उच्चाशयन, महाशयन, जैसे कि—० दोनो ओर लाल तकियोंको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 20

(५) सिंह आदिके चमळोंका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—'भगवान्‌ने उच्चाशयन, महाशयनका निषेध किया है—(यह सोच) सिंह-चर्म, व्याघ्र-चर्म, चीतेका चर्म इन (तीन) महा-चर्मोंको धारण करते थे और उन्हे चारपाईके प्रमाणसे भी काट रखते थे, चौकीके प्रमाणसे भी काट रखते थे। चारपाईके भीतर भी बिछा रखते थे, बाहर भी बिछा रखते थे। चौकीके भीतर भी०, बाहर भी बिछा रखते थे। विहार घूमते वक्त लोग देखकर हैरान होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! महाचर्मो—सिंह, व्याघ्र, चीतेके चर्मको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 21

(६) प्राणिहिंसाकी प्रेरणा और चर्मधारणका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, भगवान्‌ने महाचर्मोंका निषेध किया है, (यह सोच) गायके चाम-

---

[1] एक तरहकी सवारी।

[2] किनारीदार बिछानेका कम्बल।

[3] एक ओर किनारीवाला बिछानेका कम्बल।

[4] बिछानेका जळाऊ रेशमी कपळा।

फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया।—

भिक्षुओ! तृण मूँज बल्वज हिंताल कमल कम्बल• की पादुकाएँ नहीं धारण करनी चाहिएँ, और न सुवर्णमयी न रौप्यमयी• न मणिमयी न वैदूर्यमयी न स्फटिकमयी न काँसमयी न काँचमयी न राँगेकी न सीसेकी न ताँबे (=ताम्र। लोह)की पादुकाएँ धारण करनी चाहिएँ। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! कावी (=घुट्ठी ?) तक पहुँचनेवाली पादुकाको नहीं धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नित्य रहनेकी जगहपर तीन प्रकारकी पादुकाओंके इस्तेमाल करनेकी—न चलनेकी और पेशाब पाखानेकी और आचमन (के वक्त)की। 14

४—श्रावस्ती

(१०) गाय बछड़ोंको पकड़ने मारने आदिका निषेध

तब भगवान् भद्दियामें अच्छी तरह विहार कर जिधर श्रावस्ती है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अचिरवती (=राप्ती) नदीमें तैरती गायोंकी सीगोंको भी पकड़ते थे कानों गर्दन पूँछको भी पकड़ते थे पीठपर भी चढ़ते थे। राग-युक्त चित्तसे लिंगको भी छूते थे बछियाको भी अवगाहन कर मारते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण तैरती गायोंको मारते हैं, जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। भिक्षुओंने सुना। भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! गायोंकी सींग कान गर्दन पूँछ नहीं पकड़नी चाहिये और न पीठपर चढ़ना चाहिये। जो चढ़े उसे दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! न राग-युक्त चित्तसे लिंगको छूना चाहिये। जो छूवे उसे थुल्लच्चयका दोष हो। न बछियोंको मारना चाहिये जो मारे उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 15

§२—सवारी, चारपाई चौकीके नियम

(१) सवारीका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु पराये पुरुषके साथवाली स्त्रीसे युक्त पराई स्त्रीके साथवाले पुरुषसे युक्त यानसे जाते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे गंगाके मेलेको। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! यानसे नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 16

(२) रोगम सवारीका विधान

१—उस समय एक भिक्षु कोसल देशमें भगवान्के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाते वक्त रास्तेमें बीमार हो गया। तब वह भिक्षु रास्तेसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठा। लोगोंने उस भिक्षुको देखकर यह कहा—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायेंगे?

"आवुस! मैं भगवान्के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।

होती थी, भिक्षु सकोच करके उनपर नही बैठते थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"अनुमति देता हूँ भिक्षुओ ! गृहस्थोंके बिस्तरेपर बैठने की, किन्तु लेटनेकी नहीं ।" 23

२—उस समय विहार चमळेके टुकळोंसे बिछे थे । भिक्षु सकोचके मारे नहीं बैठते थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सिर्फ बधन भर पर बैठनेकी ।" 24

(८) जूता पहिने गाँवमे जानेका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जूता पहन गाँवमे प्रवेश करते थे । लोग हैरान होते थे (०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! जूता पहने गाँवमे प्रवेश नही करना चाहिये । जो प्रवेश करे उसे दुक्कटका दोष हो ।" 25

२—उस समय एक भिक्षु बीमार था और वह जूता पहने विना गाँवमे प्रवेश करनेमे असमर्थ था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बीमार भिक्षुको जूता पहनकर गाँवमे प्रवेश करनेकी ।" 26

§३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम

(१) सोण-कुटिकण्णकी प्रव्रज्या

उस समय आयुष्मान् म हा का त्या य न अ व न्ती [1] (देश)मे कु र र घर के प्र पा त प र्व त पर वास करते थे । उस समय सो ण कु टि क ण्ण उनका उपस्थाक था—एकान्तमें स्थित, विचारमें डूबे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनम ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते हैं, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध शखसा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमे बसते पालन करना, सुकर नहीं है । क्यो न मैं० प्रव्रजित हो जाऊँ ।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ गया जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोला—

"भंते ! एकान्तमें स्थित हो विचारमे डूबे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—० । भंते ! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०से यह कहा—

"सोण ! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है । अच्छा है, सोण ! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोके शासन (उपदेश)का अनुगमन कर, और काल-युक्त (=पर्व-दिनोमे) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख ।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासकका प्रव्रज्याका उछाह ठंडा पळ गया ।

दूसरी बार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—० । ० तीसरी बार भी० । "० भंते ! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें ।"

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर बनाया) । उस समय अ व न्ति द क्षि णा प थ में बहुत थोळे भिक्षु थे । तब आयुष्मान् म हा का त्या

---

[1] वर्तमान मालवा ।

को धारण करते थे और उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काटकर रखते थे • चौकीके बाहर भी बिछा रखते थे।

उस समय एक दुराचारी भिक्षु एक दुराचारी उपासकके घरमें आने जानेवाला था। तब वह दुराचारी भिक्षु पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले जहाँ उस दुराचारी उपासकका घर था वहाँ गया। जाकर बिछे आसनपर बैठा। तब वह दुराचारी उपासक जहाँ वह दुराचारी भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उसे अभिवादनकर एक ओर बैठा। उस समय उस दुराचारी उपासकके पास एक तरुण सुन्दर दर्शनीय (चितकरी) प्रसन्न करनेवाला चीतके बच्चेकी तरहका चितकबरा बछड़ा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछड़ेको बड़े चावसे निहारता था। तब उस पापी उपासकने उस पापी भिक्षुसे यह कहा—

"भन्ते ! आर्य क्यों मेरे बछड़ेको इतनी चावसे निहार रहे हैं ?

"आवुस ! मझे इस बछड़ेके चमड़ेका काम है।

तब उस पापी उपासकने उस बछड़ेको मारकर चमड़ेको घून कर उस पापी भिक्षुको दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चमड़ेको (लेकर) संघाटीसे ढाँककर चला गया। तब उस बछड़ेपर स्नेह रखनेवाली गायने उस पापी भिक्षुका पीछा किया। भिक्षुओंने पूछा—

'आवुस ! क्या यह गाय तेरा पीछा कर रही है ?"

'आवुसो ! मै भी नहीं जानता कि क्यों यह गाय मेरा पीछा कर रही है।

उस समय उस पापी भिक्षुकी संघाटी खूनसे सनी हुई थी। भिक्षुओंने यह कहा—

'किन्तु आवुस यह तेरी संघाटीको क्या हुआ ?

तब उस पापी भिक्षुने भिक्षुओंसे यह बात कह दी।

'क्या आवुस ! तूने प्राण हिंसाकी प्रेरणाकी ?

"हाँ आवुस !

तब वह जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—

"कैसे भिक्षु प्राण-हिंसाकी प्रेरणा करेगा ? भगवान्‌ने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है और प्राण-हिंसाके त्यागकी प्रशंसा है।

तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमे भिक्षु-संघको एकत्रित करवा उस पापी भिक्षुसे पूछा—

'सचमुच भिक्षु तूने प्राण-हिंसाके लिये प्रेरणाकी ?

(हाँ) सचमुच भगवान् !

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा— 'मोघ पुरुष (निकम्मे आदमी) ! कैसे तूने प्राणहिंसाकी प्रेरणा की ? मोघपुरुष ! मैने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है और प्राण-हिंसाके त्यागकी प्रशंसा है। मोघ पुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! प्राण-हिंसाकी प्रेरणा नहीं करनी चाहिये। जो प्रेरणा करे उसका धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ ! गायका चाम नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! कोई भी चर्म नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 22

(७) चमड़े मढ़ी चारपाई आदिपर बैठ़ा जा सकता है

१—उस समय लोगोंकी चारपाइयाँ भी चौकियाँ भी चमड़ेसे मढ़ी होती थी चमड़ेसे बँधी

होती थी, भिक्षु सकोच करके उनपर नही वैठते थे । भगवान्से यह वात कही ।—

"अनुमति देता हूँ भिक्षुओ ! गृहस्थोके विस्तरेपर वैठने की, किन्तु लेटनेकी नही ।" 23

२—उस समय विहार चमळेके टुकळोंसे विछे थे । भिक्षु सकोचके मारे नही वैठते थे । भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सिर्फ वधन भर पर वैठनेकी ।" 24

(८) जूता पहिने गाँवमे जानेका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जूता पहने गाँवमे प्रवेश करते थे । लोग हैरान होते थे (०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ । भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! जूता पहने गाँवमें प्रवेश नही करना चाहिये । जो प्रवेश करे उसे दुक्कटका दोष हो ।" 25

२—उस समय एक भिक्षु वीमार था और वह जूता पहने विना गाँवमे प्रवेश करनेमें असमर्थ था । भगवान्से यह वात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वीमार भिक्षुको जूता पहनकर गाँवमें प्रवेश करनेकी ।" 26

§३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम

(१) सोण-कुटिकण्णकी प्रव्रज्या

उस समय आयुष्मान् म हा का त्या य न अ व न्ती[1] (देश)में कु र र घर के प्र पा त प र्व त पर वास करते थे। उस समय सो ण कु टि क ण्ण उनका उपस्थाक था—एकान्तमें स्थित, विचारमें डूवे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते हैं, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध शखसा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमें वसते पालन करना, सुकर नही है । क्यो न मैं० प्रव्रजित हो जाऊँ ।"

तव सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ गया जाकर अभिवादनकर एक ओर वैठ यह वोला—

"भते ! एकान्तमे स्थित हो विचारमें डूवे मेरे मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—० । भते ! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०से यह कहा—

"सोण ! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है । अच्छा है, सोण ! तू गृहस्थ रहते ही वुद्धोके शासन (उपदेश)का अनुगमन कर, और काल-युक्त (=पर्व-दिनोमें) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख ।"

तव सोण-कुटिकण्ण उपासकका प्रव्रज्याका उछाह ठडा पळ गया ।

दूसरी वार भी० मनमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—० । ० तीसरी वार भी० । "० भते ! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करें ।"

तव आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर वनाया) । उस समय अ व न्ति द क्षि णा प थ में वहुत थोळे भिक्षु थे । तव आयुष्मान् म हा का त्या

---

[1] वर्तमान मालवा ।

को धारण करते थे और उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काटकर रखते थे चौकीके बाहर भी बिछा रखते थे।

उस समय एक दुराचारी भिक्षु, एक दुराचारी उपासकके घरमें आने जानेवाला था। तब वह दुराचारी भिक्षु पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहनकर पात्र चीवरले जहाँ उस दुराचारी उपासकका घर था वहाँ गया। जाकर बिछे आसनपर बैठा। तब वह दुराचारी उपासक जहाँ वह दुराचारी भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उसे अभिवादनकर एक ओर बैठा। उस समय उस दुराचारी उपासकके पास एक तरुण सुन्दर दर्शनीय (चित्तको) प्रसन्न करनेवाला चीतेके बच्चेकी तरहका चितकबरा बछड़ा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछड़ेको बड़े चावसे निहारता था। तब उस पापी उपासकने उस पापी भिक्षुसे यह कहा—

'भन्ते! आर्य क्यों मेरे बछड़ेको इतनी चावसे निहार रहे हैं ?

'आवुस! मझे इस बछड़ेके चमड़ेका काम है।

तब उस पापी उपासकने उस बछड़ेको मारकर चमड़ेको चून कर उस पापी भिक्षुको दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चमड़ेको (लेकर) सघाटीसे ढाँककर चला गया। तब उस बछड़ेपर स्नेह रखनेवाली गायने उस पापी भिक्षुका पीछा किया। भिक्षुओंने पूछा—

'आवुस! क्यों यह गाय तेरा पीछा कर रही है ?

'आवुसो! मैं भी नहीं जानता कि क्यों यह गाय मेरा पीछा कर रही है।

उस समय उस पापी भिक्षुकी सघाटी खूनसे सनी हुई थी। भिक्षुओंने यह कहा—

'किन्तु आवुस यह तेरी सघाटीको क्या हुआ ?

तब उस पापी भिक्षुने भिक्षुओंसे यह बात कह दी।

'क्या आवुस! तूने प्राण हिंसाकी प्रेरणाकी ?

'हाँ आवुस!"

तब वह जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—

"कैसे भिक्षु प्राण-हिंसाकी प्रेरणा करेगा? भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है और प्राण-हिंसाके त्यागकी प्रशंसा है।

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमें भिक्षु-सघको एकत्रित करवा उस पापी भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच भिक्षु तूने प्राण-हिंसाके लिये प्रेरणाकी ?"

(हाँ) सचमुच भगवान्!

बुद्ध भगवान्ने फटकारा— 'मोघ पुरुष (=निकम्मे आदमी)! कैसे तूने प्राणहिंसाकी प्रेरणा की? मोघपुरुष! मैंने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी निंदा की है और प्राण-हिंसाके त्यागकी प्रशंसा है। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है।

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! प्राण-हिंसाकी प्रेरणा नहीं करनी चाहिये। जो प्रेरणा करे उसका धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ! गायका चाम नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! कोई भी चर्म नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। 22

(७) चमड़े मढ़ी चारपाई आदिपर बैठा जा सकता है

१—उस समय लोगोंकी चारपाइयाँ भी चौकियाँ भी चमड़ेसे मढ़ी होती थी चमड़ेसे बँधी

पाठ किया।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके स्वाध्याय समाप्त होने पर साधुवाद द्वारा अनुमोदन किया।—

साधु साधु भिक्षु ! तूने सोलह अट्ठक-वर्गिक सुत्तोंको अच्छी तरह धारण किया है, अच्छी तरह मनन किया है, अच्छी तरह याद किया है। तू मधुर स्वरसे युक्त अर्थ प्रकट करनेवाली वाणीसे युक्त है। भिक्षु ! तू कितने वर्षका (भिक्षु) है ?"

"भगवान् ! मैं एक वर्षका हूँ।"—

"भिक्षु ! तूने इतनी देर क्यों की ?"

"भन्ते ! मैंने बहुत दिनोंसे कामोंमें दुष्परिणाम देख लिया था। और गृहवास बहु-कार्य-बहु-करणीय जंजाल (=झंझट) होता है।"

भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

"लोकमें दुष्परिणामको देख और उपधि-रहित धर्मको जानकर, आर्य पापमें नहीं रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमें नहीं रमता।"

तब आयुष्मान् सोणने—'भगवान् मेरा अनुमोदन कर रहे हैं, यही इसका समय है' (सोच) आसनसे उठ, उत्तरासंग एक कंधे पर कर भगवान्‌के चरणोंपर सिरसे पकड़कर, भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं, और यह कहते हैं—

"भन्ते ! अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं ०, अच्छा हो भगवान् चीवर-पर्याय (=विकल्प) कहें ?"

(२) सीमान्त देशोंमें विशेष नियम

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ ! अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं। भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदों (=सीमान्त देशों) में विनयधरको लेकर पाँच, (कोरम वाले) भिक्षुओंके गणसे उपसम्पदा (करने) की अनुमति देता हूँ।" 27

यहाँ यह प्रत्यन्त (सीमान्त) जनपद हैं—पूर्व दिशामें क ज ग ल[1] नामक निगम (=कसबा) है, उसके बाद बड़े साल (क जगल) हैं, उसके परे 'इधरसे बीचमें' प्रत्यन्त जनपद हैं। पूर्व-दक्षिण दिशामें स ल ल व ती[2] नामक नदी है, उससे परे, इधरसे बीचमें (=ओरसे मध्ये) प्रत्यन्त जनपद हैं। दक्षिण दिशामें से त क णि क[3] नामक निगम है ०। पश्चिम दिशामें थू ण[4] नामक ब्राह्मण-ग्राम ०। उत्तर दिशामें उ सी र ध्व ज नामक[5] पर्वत, उससे परे ० प्रत्यन्त जनपद हैं।

"भिक्षुओ ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विनयधर सहित पाँच भिक्षुओंके गणसे उपसम्पदा करने की। 28

"सब सीमान्त-देशोंमें गणवाले उपानह ०। 29

[1] वर्तमान ककजोल (जिला-संथाल परगना, बिहार)।

[2] वर्तमान सिलई नदी (जिला हजारीबाग और बीरभूम)।

[3] हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था।

[4] आधुनिक थानेश्वर।

[5] हरिद्वारके समीप।

यम मे तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहाँ तहाँसे दसवर्ग (=दस भिक्षुओंका) भिक्षु-संघ एकत्रित कर आयुष्मान् सोणको उपसम्पन्न किया (=भिक्षु बनाया)। वर्षावास कर एकान्तमें स्थित विचार में बैठे आयुष्मान् सोणके चित्तमें ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—मैंने उन भगवान्‌को सामने से नहीं देखा बल्कि मैंने सुनाही है—वह भगवान् ऐसे हैं, ऐसे हैं। यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दें तो मैं *भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।*

तब आयुष्मान् सोण सायंकाल ध्यानसे उठ, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् महाकात्यायनसे कहा—

'भन्ते ! एकान्तमें विचारमें बैठे मेरे चित्तमें एक ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ है—यदि *उपाध्याय मुझे आज्ञा दें तो मैं भगवान् के दर्शनके लिये जाऊँ।*

'साधु ! साधु ! सोण ! जाओ सोण भगवान्‌के चरणोंमें वन्दना करना'—'भन्ते ! मेरे उपाध्याय भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना करते हैं। और यह भी कहना—'भन्ते अवन्ति दक्षिणापथमें बहुत कम भिक्षु हैं। तीन वर्ष व्यतीत कर बड़ी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे दसवर्ग भिक्षुसंघ एकत्रितकर मुझे उपसम्पदा मिली। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा-पथमें (१) अल्पतर गण (=कम कोरम् की जमायत)से उपसम्पदाकी अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणा पथमें भन्ते ! भूमि काली (कंकरीली) कड़ी गोकंट (=गोकंटक)से भरी है। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा पथमें (२) (भिक्षु) गणको गण-वाले उपानह (पनहो)की अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणपथमें भन्ते ! मनुष्य स्नानके प्रेमी उदकसे शुद्धि माननेवाले हैं अच्छा हो भन्ते ! अवन्ति-दक्षिणा-पथमें (३) नित्य-स्नानकी अनुज्ञा दें। अवन्ति-दक्षिणापथमें भन्ते ! चर्ममय आस्तरण (बिछौने) होते हैं जैसे मेष चर्म अज-चर्म मृग चर्म। (४) चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दें। भन्ते ! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओंको (मनुष्य) चीवर देते हैं—'यह चीवर अमुक नामवालेको दो।' वह आकर कहते हैं—आवुस ! इस नामवाले मनुष्यने तुम्हें चीवर दिया है। वह (विधि-निषेध) सन्देहमें पड़ (सेवन नहीं करते फिर कहीं उन्हें) निस्सर्गीय (=छोड़नेका प्रायश्चित्त) न होजाय। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय करें।

अच्छा भन्ते ! कह सोण कुटिकण्ण आयुष्मान् महाकात्यायनको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ श्रावस्ती थी वहाँको चले।

क्रमशः विचरते जहाँ श्रावस्ती में अनाथ-पिंडिकका जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

'आनन्द ! इस नवागत भिक्षुको वास दो।'

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—'भगवान् जिसके लिये कहते हैं—आनन्द ! इस नवागत भिक्षुको वास दो। उसे भगवान् एक ही विहारमें साथ रखना चाहते हैं। यह सोच जिस विहार में भगवान् रहते थे उसीमें आयुष्मान् सोणका आसन लगा दिया।

भगवान्‌ने बहुत रात खुले स्थानमें बिताकर प्रवेश किया। तब रातको भिनसारमें उठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणको कहा—

'भिक्षु ! धर्मका पाठ कर सकते हो।'

'हाँ भन्ते !' (कह) आयुष्मान् सोणने सभी सोलह अट्ठक वर्गिकोंको[१] स्वर-सहित

[१] सुत्तनिपात पारायणवग्ग ५।

६—भैषज्य-स्कंधक

१—औषध और उसके बनानेके साधन। २—स्वेदकर्म तथा चीर-फाळ आदि की चिकित्सा। ३—आराममें चीजोंको रखना सँभालना आदि। ४—अभक्ष्य मास। ५—सघाराममें चीजोके रखनेके स्थान। ६—गोरस और फलरस आदिका विधान।

§१—औषध और उसके बनानेके साधन

१—श्रावस्ती

(१) पाँच भैषज्योंका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय भिक्षु शरदकी बीमारी (=जाळा बुखार) से उठे थे, उनका पिया यवागू (=खिचळी) भी वमन होजाता था, खाया भात भी वमन होजाता था, इसके कारण वह कृश, रूक्ष और दुर्वर्ण पीले पीले नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये थे। भगवान्ने उन भिक्षुओको कृश० नसोमें-सटे-शरीरवाला देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द! क्यो आजकल भिक्षु कृश० नसोमें-सटे-शरीर वाले है?"

"इस समय भन्ते! भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं, उनका पिया यवागू भी वमन हो जाता है० नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये है।"

तब एकान्तमें स्थित हो विचार मग्न होते समय भगवान्के मनमें ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं० नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये हैं। क्यो न मैं भिक्षुओको (ऐसे) भै ष ज्य (=औषध) की अनुमति दूँ, जिसको लोग भैषज्य मानते हो जो आहारका काम भी कर सके, किन्तु स्थूल-आहार न समझा जाये।' तब भगवान्को यह हुआ—यह पाँच भैषज्य हैं जैसे कि—घी, मक्खन, तेल, मधु और खाँड—इन्हे लोग भैषज्य भी मानते है, और यह आहारका काम भी कर सकते है, किन्तु स्थूल-आहार नही समझे जाते। क्यो न मैं इन भिक्षुओको इन पाँच भैषज्योको समयसे लेकर समयपर उपयोग करनेकी अनुमति दूँ।'

तब भगवान्ने सायकालको एकान्त चिन्तनसे उठकर इसी सबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमें स्थित हो विचार-मग्न होते समय मेरे मनमें ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है० क्यो न मैं भिक्षुओको (ऐसे) भैषज्यकी अनुमति दूँ।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच भैषज्योकी पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करनेकी।"1

२—उस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करते थे। उनको

" नित्य-स्नान ।30

सब चर्म—मेष-चर्म अज-चर्म मृग-चर्म जैसे भिक्षुओ! मध्य देशमें (=युक्त प्रान्त बिहार)मे एरगू मोरगु, मग्गाल जन्तु है ऐसेही भिक्षुओ! अवन्ती दक्षिणापथमें मेष-चर्म अज-चर्म मृग-चर्म (आदि) चर्मके बिछौने है ।31

अनुज्ञा देता हूँ (चीवर) उपभोग करनेकी जब तक (तीन चीवरमें) न मिलाया जब तक कि हाथमें न आजाय।" 32

चम्मक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—भैषज्य-स्कंधक

१—औषध और उसके बनानेके साधन। २—स्वेदकर्म तथा चीर-फाळ आदि की चिकित्सा। ३—आराममें चीजोंको रखना सँभालना आदि। ४—अभक्ष्य मास। ५—सघाराममें चीजोंके रखनेके स्थान। ६—गोरस और फलरस आदिका विधान।

§१—औषध और उसके बनानेके साधन

१—श्रावस्ती

(१) पाँच भैषज्योंका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय भिक्षु शरदकी बीमारी (=जाळा बुखार) से उठे थे, उनका पिया यवागू (=खिचळी) भी वमन होजाता था, खाया भात भी वमन होजाता था, इसके कारण वह कृश, रुक्ष और दुर्वर्ण पीले पीले नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये थे। भगवान्‌ने उन भिक्षुओको कृश० नसोमें-सटे-शरीरवाला देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द! क्यो आजकल भिक्षु कृश० नसोमें-सटे-शरीर वाले है?"

"इस समय भन्ते! भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है, उनका पिया यवागू भी वमन हो जाता है० नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये हैं।"

तब एकान्तमें स्थित हो विचार मग्न होते समय भगवान्‌के मनमें ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे हैं० नसोमें-सटे-शरीर वाले हो गये हैं। क्यो न मै भिक्षुओको (ऐसे) भै प ज्य (=औषध) की अनुमति दूँ, जिसको लोग भैषज्य मानते हो जो आहारका काम भी कर सके, किन्तु स्थूल-आहार न समझा जाये।' तब भगवान्‌को यह हुआ—यह पाँच भैषज्य हैं जैसे कि—घी, मक्खन, तेल, मधु और खाँड—इन्हे लोग भैषज्य भी मानते है, और यह आहारका काम भी कर सकते है, किन्तु स्थूल-आहार नही समझे जाते। क्यो न मै इन भिक्षुओको इन पाँच भैषज्योको समयसे लेकर समयपर उपयोग करनेकी अनुमति दूँ।'

तब भगवान्‌ने सायकालको एकान्त चिन्तनसे उठकर इसी सबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमें स्थित हो विचार-मग्न होते समय मेरे मनमे ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है० क्यो न मै भिक्षुओको (ऐसे) भैषज्यकी अनुमति दूँ।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच भैषज्योकी पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमे सेवन करनेकी।"1

२—उस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करते थे। उनको

जो यह रूखे भोजन थे वह भी अच्छे न लगते थे। चिकने (भोजना)की तो बात ही क्या? और वह शरत्की बीमारीसे उठनेपर उससे और भोजनके अच्छे न लगने इन दोनो कारणोसे और भी अधिक कृश नसोंमें-सटे-शरीर वाले थे। भगवान्ने उन भिक्षुओंको और भी अधिक कृश देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द! क्यों आजकल भिक्षु और भी अधिक कृश हैं?"

"भन्ते! इस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योंको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमें सेवन करते हैं। उनको जो यह रूखे भोजन हैं वह भी अच्छे नहीं लगते नसोंमें सटे-शरीरवाले हैं।"

तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उन पाँच भैषज्योंको ग्रहणकर पूर्वाह्ण (-काल)में भी अपराह्ण (=विकाल)में भी सेवन करनेकी।" 2

(२) चर्बीवाली दवा

उस समय रोगी भिक्षुओंको चर्बीकी दवाईका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चर्बीकी दवाईकी (जैसेकि) रीछकी चर्बी मछलीकी चर्बी सोंसकी चर्बी सुअरकी चर्बी गदहेकी चर्बी काल(पूर्वाह्ण)में लेकर कालसे पका कालसे तेलके साथ मिलाकर सेवन करनेकी। भिक्षुओ! यदि विकालसे ग्रहण की गई हो विकालसे पकाई और विकालसे मिलाई गई हो (और) भिक्षुओ! उनका भक्षण करे तो तीनों दुक्कटोंका दोष हो। यदि भिक्षुओ! कालसे लेकर विकालसे पका विकालसे मिला उनका सेवन करे तो दो दुक्कटोंका दोष हो। यदि भिक्षुओ! कालसे लेकर कालसे पका विकालसे उनका सेवन करे (तो) एक दुक्कटका दोष हो। यदि भिक्षुओ! कालसे ले कालसे पका कालसे मिला उनका सेवन करे तो दोष नहीं। 3

(३) मूलकी दवाइयाँ

१—उस समय रोगी भिक्षुओंको जड़ वाली दवाओंका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जड़वाली दवाओंकी (जैसेकि)—हल्दी अदरक वच अवचस्व (=वच) अतीस खस भद्रमुस्ता (=नागरमोथा) और जो कोई दूसरी भी जड़वाली दवाइयाँ हैं जोकि न खाद्य हैं न खानेके काम आती हैं न भोज्य हैं न भोजनके काम आती हैं उन्हें लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी प्रयोजन न होनेपर सेवन करने वाले को दुक्कटका दोष हो। 4

२—उस समय रोगी भिक्षुओंको पिसी हुई जड़वाली दवाइयोंका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खरल-बट्टेकी। 5

(४) कषायकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओंको कषायकी दवाईका काम था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कषायवाली दवाइयोंकी (जैसे कि)—नीमका कषाय कुटज (=कूट)का कषाय पटोल (=परवल)का कषाय पक्कव[1] का कषाय नक्तमाल का कषाय और जो कोई दूसरी भी कषायकी दवाइयाँ हैं जो न खाद्य हैं न खानेके काम आती हैं न भोज्य हैं, न भोजनके

[1] कड़वे फलवाली एक लता।

काम आती है, उन्हें लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी। प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 6

(५) पत्तेकी दवाइयाँ

उस (समय) रोगी भिक्षुओंको पत्तेकी दवाइयोंका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पत्तेकी दवाइयोंकी, (जैसे कि) नीमका पत्ता, कुटजका पत्ता, पटोलका पत्ता, तुलसीका पत्ता, कपासीका पत्ता, और जो कोई दूसरी भी पत्तेकी दवाइयाँ हैं, ० प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 7

(६) फलकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओंको फलकी दवाइयोंका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फलकी दवाइयोंकी (जैसे कि)—विडंग, पिप्पली, मिर्च, हर्रा, बहेरा, आँवला, गोष्ठफल और जो कोई दूसरी भी फलकी दवाइयाँ हैं०। 8

(७) गोंदकी दवाइयाँ

० गोंदवाली दवाइयोंका काम था। ०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गोंदवाली दवाइयोंकी (जैसे कि)—हींग, हींगकी गोंद, हींगकी सिपाटिका, तक, तक पत्ती, तक पर्णी, सज्जुकी गोंद, और जो कोई दूसरी भी गोंदवाली दवाइयाँ हैं०।" 9

(८) लवणकी दवाइयाँ

० लवणवाली दवाइयोंका काम था०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लवणवाली दवाइयोंकी (जैसे कि)—सामुद्रिक (नमक), काला नमक, सेंधा नमक, वानस्पतिक (नमक), बिळाल[1] और जो कोई दूसरी भी नमककी दवाइयाँ हैं०।" 10

(९) चूर्णकी दवाइयाँ और ओखल-मूसल-चलनी

१—उस समय आयुष्मान् आनन्दके उपाध्याय आयुष्मान् वेलट्ठसीसको दादकी बीमारी थी। उसके लासेसे चीवर शरीरमें चिपक जाता था। उसको भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। भगवान्‌ने विहार घूमते वक्त भिक्षुओंको पानीसे भिगो भिगोकर चीवरको छुळाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह पूछा।—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इन आयुष्मान्‌को स्थूलकक्ष (=काछका मोटा हो जाना, दाद)का रोग है। उसके लासेसे चीवर शरीरमें चिपक जाता है। उसीको हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे हैं।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

भिक्षुओ! जिसको खुजली, फोळा (=पिळका), आस्राव (=बहनेवाला फोळा) स्थूलकक्ष (हो) या शरीरसे दुर्गंध आता हो उसे चूर्णवाली दवाइयोंकी अनुमति देता हूँ। नीरोगको छकन (=गोबर), मिट्टी, पके रग (का चूर्ण)। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओखल और मूसलकी।" 11

२—उस समय भिक्षुओंको चूर्णवाली दवाइयोंको चालनेकी ज़रूरत थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] एक प्रकारका नमक।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आटेकी चलनीकी।"

सूक्ष्म (=चलनी)की आवश्यकता थी।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कपड़ेकी चलनीकी। 12

(१०) कच्चे मांस और कच्चे खूनकी दवा

उस समय एक भिक्षुको अ-म नु ष्य (=भूत-प्रेत)का रोग था। आचार्य उपाध्याय उसकी सेवा करते करते नीरोग नहीं कर सके। सूअर मारनेके स्थानपर जाकर उसने कच्चे मांसको खाया कच्चे खूनको पिया और उसका वह अ-म नु ष्य वाला रोग शान्त होगया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अ-मनुष्यवाले रोगमें कच्चे मांस और कच्चे खूनकी। 13

(११) अंजन, अंजनदानी सलाई आदि

१—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था। उसे भिक्षु पकड़कर पिशाब-पाखानेके लिये ले जाते थे। विहार घूमते वक्त भगवान्ने पकड़कर उस भिक्षुको पिशाब-पाखानेके लिये ले जाते जाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह पूछा—

'भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?

'भन्ते! इस आयुष्मान्को आँखका रोग है। इन्हें हम पकड़कर पिशाब-पाखानेके लिये ले जाते हैं। तब भगवान्ने इसी संबंधमें भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अंजनकी (जैसे कि)—काला अंजन रस-अंजन सोत(=नदी की धारमें मिला) अंजन गेरु कपल। 14

२—अंजनके साथ पीसनेके सामानकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चंदन तगर, कालानुसारी तालिस भद्रमुस्ताकी।" 15

३—उस समय भिक्षु पीसे हुए अंजनको कटोरेमें रख छोड़ते थे पुरवोंमें रख छोड़ते थे और उसमें तिनका धूल आदि पड़ जाता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीकी। 16

४—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सुनहली रुपहली नाना प्रकारकी अंजनदानियोंको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—( ) जैसे काम-भोगी गृहस्थ। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! नाना प्रकारकी अंजनदानियोंको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी (हाथी) दाँतकी सींगकी नरकटकी बाँसकी काठकी लाखकी फलकी ताँबे (=लोह)की शंखकी (अंजनदानियोंके रखनेकी)। 17

५—उस समय अंजन-दानियाँ खुली होती थीं जिससे तिनका धूल पड़ जाती थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी। 18

६—ढक्कन गिर जाते थे।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर अंजनदानियोंमें बाँधनेकी। 19

७—अंजनदानियाँ फट जाती थीं।—

अनुमति देता हूँ सूतसे मढ़नेकी। 20

८—उस समय भिक्षु अँगुलीसे आँजते थे और आँखें दुखती थीं। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आँजनेकी सलाईकी। 21

९—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपेकी नाना प्रकारकी सलाइयाँ रखते थे। लोग हैरान होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी आँजनेकी सलाइयोको नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी०, शखकी० (सलाईकी)।" 22

१०—उस समय आँजनेकी सलाइयाँ ज़मीनपर गिर पळती थी और रूखळ हो जाती थी। भगवान् से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सलाईदानीकी।" 23

११—उस समय भिक्षु अजनदानीको भी, आँजनेकी सलाईको भी हाथमे रखते थे। भगवान् से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजनदानीके वटुएका।" 24

१२—उस समय कधेका वटुआ (=असवट्टक) न था। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कधेके वटुएकी, बाँधनेके सूतकी।" 25

(१२) सिरका तेल

१—उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको सिर-दर्द था। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सिरपर तेलकी।" 26

(१३) नस और नसकरनी आदि

१—ठीक नही हुआ। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नस लेनेकी।" 27

२—नस गल जाती थी। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नसकरनी (=नाकमें नस डालनेकी नली)की।" 28

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोने-रूपे नाना प्रकारकी नसकरनीको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—०। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी नसकरनीको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ शख ० की।"

४—नस वरावर नही पळती थी। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जोळी नसकरनी की।" 29

(१४) धूम-वत्तीका विधान

१—(नससे भी) अच्छा न होता था। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (दवाईके) धुएँके पीनेकी।" 30

२—उसी वत्तीको लीपकर पीते थे। उससे कठ जलता था। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धूमनेत्रकी (=फोफी)।" 31

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नाना प्रकारके सोने-रूपेके धूम्रनेत्र धारण करते थे। लोग हैरान होते थे। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारके धूम्रनेत्र नही धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीके० शखके धूम्रनेत्रकी।" 32

४—उस समय धूम्रनेत्र विना ढके रहते थे और उनमें कीळे चले जाते थे। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी।"

५—उस समय भिक्षु धूम्रनेत्र हाथमें रखते थे। ०।—

"० अनुमति देता हूँ धूम्रनेत्रके थैलेकी।" 33

३—एक ओर घिस जाते थे। —

"० अनुमति देता हूँ दोहरी थैलीकी। ० कन्धेके बदुएकी० बाँधनेके सूतकी। 34

(१५) वातका तेल

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को वातका रोग था। वैद्य तेल पकानेको कहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल पकानेकी। 35

(१६) दवामें मद्य मिलाना

१—उस समय तेलमें शराब (=मद्य) डालनी थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल-पाकमें मद्य डालनेकी। 36

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु बहुत मद्य डालकर तेल पकाते थे और उन्हें पीकर मतवाले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बहुत मद्य डाले हुए तेलको नहीं पीना चाहिये। जो पीये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उस तेलके पीनेकी जिसमें मद्यका रंग गन्ध और रस न जान पड़े। 37

३—उस समय भिक्षुओंके पास अधिक मद्य डालकर पकाया हुआ बहुतसा तेल था। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ कि अधिक मद्य डालकर पकाये हुए तेलके साथ हमें क्या करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अभ्यञ्जन (=मालिश करने)की।" 38

(१७) तेलका बर्तन

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के पास बहुतसा तेल पका था लेकिन तेलका बर्तन मौजूद न था। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीन तुम्बोंकी—लोह(=ताँबा)के तुँबेकी काठके तुँबेकी फलके तुँबेकी। 39

§२—स्वेदकर्म और क्षीर-काळ आदि

(१) स्वेदकर्म

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के शरीरमें वात (का रोग) था। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्वे द क र्म (पसीना निकालनेकी चिकित्सा)की। 40

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स म्भा र-स्वे द की[1]। 41

३—नहीं अच्छा होता था।—

[1] अनेक प्रकारके पसीना लानेवाले पत्तोंसे ढाँक सोना।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ म हा स्वे द[1] की।" 42

(२) सींगसे खून निकालना

४—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भ गो द क[2] की।" 43

५—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उ द क को ष्ट क की[3]।" 44

१—उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको गठिया (=पर्ववात)का रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खून निकालनेकी।" 45

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सींगसे खून निकालनेकी।" 46

(३) पैरमें मालिश और दवा

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि वच्छके पैर फटे थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरमे मालिश करनेकी।" 47

२—नहीं अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरके लिये (दवा) बनानेकी।" 48

(४) चीर फाळ

उस समय एक भिक्षुको फोळेका रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ श स्त्र-क र्म (=चीर-फाळ)की।" 49

(५) मलहम-पट्टी

१—काढेके पानीकी जरूरत थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काढेके पानीकी।" 50

२—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तिलकल्क (=खली)की।" 51

३—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ क व ळि का (=मलहम का फाहा)की।" 52

४—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घाव बाँधनेकी पट्टीकी।" 53

५—घाव खुजलाते थे।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सरसोके लोयेसे सहलानेकी।" 54

६—घाव पनृछाता था।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धुंआस करनेकी।" 55

७—बढा मास उठ आता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नमककी ककरीसे काटनेकी।" 56

---

[1] पोरसा भर गढा खोदकर उसे अंगारसे भरकर मिट्टी बालूसे मूँदकर वहाँ नाना प्रकारके वात रोग दूर करनेवाले पत्तोंको बिछाकर, शरीरमें तेल लगा उसपर लेटकर पसीना निकालना (—अट्ठकथा)।

[2] पत्तोंके काढ़ेसे शरीरको सींच सींचकर पसीना निकालना।

[3] गर्म पानी भरे बरतन जिस कोठरीमें रखे है, उसमें बैठकर पसीना निकालना।

८—घाव नहीं भरता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घावके तेलकी। 57

९—तेल गिर जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ विकासिक (=पतली पट्टी) सभी घावकी चिकित्सा की। 58

(६) सर्प-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुको साँपने काटा था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार म हा वि क टों के (खिला) देनेकी। जैसे कि पाखाना पेशाब राख और मिट्टी। 59

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वय ले लेना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कप्पियकारक (=ग्रहणकरानेवाले)के होनेपर दिया लेनेकी और कप्पियकारकके न होनेपर स्वयं लेकर सेवन करनेकी। 60

(७) विष-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुने विष खा लिया था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाखाना पिलानेकी। 61

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वयं लेना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जैसा करनेसे वह ग्रहण करे वही ग्रहणका ढंग है। (काम हो जानेपर) फिर नहीं ग्रहण कराना चाहिये। 62

(८) घरदिन्नक रोगकी चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको घ र दि न्न क[1] रोग था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हराई (=सीता)की मिट्टी पिलानेकी। 63

(९) भूत-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको दु ष्ट ग्र ह (=भूत)ने पकड़ा था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आ मि पो द क (=अनाज जलाकर बनाया खार) पिलानेकी। 64

(१०) पांडुरोग चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको पाण्डु रोग था। ।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (गो)-मूत्रकी हर्रे पिलानेकी।" 65

(११) शुक्लपित्ती आदिकी चिकित्सा

१—०चुनपित्ती (=छ वि दो ष) हो आई थी। ।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गन्धके लेप करनेकी। 66

२—०शरीर धुस हो गया था। ।—

अनुमति देता हूँ जुलाब पीनेकी। 67

---

[1] स्वाभाविक अस्वाभाविक दोनो प्रकारका।

३—० अ च्छ क जी (=काँजी)की ज़रूरत थी। ०।—
"० अनुमति देता हूँ अ च्छ क जी की।" 68
४—० अ क ट जू स (=स्वाभाविक जूस)की ज़रूरत थी। ०।—
५—"० अनुमति देता हूँ अ क ट जू स की।" 69
६—० क टा क ट[1]की ज़रूरत थी। ०।—
७—"० अनुमति देता हूँ क टा क ट की।" 70
८—० प्र ति च्छा द न (=ढाँकनेकी वस्तु)की ज़रूरत थी। ०।—
"० अनुमति देता हूँ प्र ति च्छा द न की।" 71

§३—आराममें चीजोंका रखना सँभालना आदि

(१) पिलिन्दि वच्छका राजगृहमे लेण बनवाना

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ राजगृहमें ले ण (=गुहा) बनवानेके लिये पहाळ साफ करवा रहे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ से यह कहा—

"भन्ते! स्थविर क्या करा रहे है?"

"महाराज! ले ण बनवानेके लिये पहाळ (=पब्भार) साफ करा रहा हूँ।"

"क्या भन्ते! आर्यको आरामिक (=आराममें काम करनेवाले)की आवश्यकता है?"

"महाराज! भगवान्ने आरामिक (रखने)की अनुमति नही दी है।"

"तो भन्ते! भगवान्से पूछकर मुझसे कहना।"

"अच्छा महाराज," (कह) आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने भगवान्के पास (यह सदेश दे) दूत भेजा—

"भन्ते! मगधराज सेनिय बि म्बि सा र आरामिक देना चाहता है। कैसा करना चाहिये?"

(२) आराममें सेवक रखना

भगवान्ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरामिककी।" 72

दूसरी बार भी मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया ० आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छसे यह पूछा—

"क्या भन्ते! भगवान्ने आरामिककी अनुमति दी?"

"हाँ महाराज!"

"तो भन्ते! आर्यको आरामिक देता हूँ।"

तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को आरामिक देनेका वचन दे

---

[1] वशीकरण मत्र किये पेयके पीनेसे उत्पन्न होनेवाला रोग।

८—घाव नहीं भरता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घावके तेलकी। 57

९—तेल गिर जाता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ विकासिक (=पतली पट्टी) सभी घावकी चिकित्सा की। 58

(६) सर्प-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुको साँपने काटा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार म हा वि क टों के (खिला) देनेकी। जैसे कि पाखाना पेशाब राख और मिट्टी। 59

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वयं ले लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कल्प्यकारक (=ग्रहणकरानेवाले)के होनेपर लिया लेनेकी और कल्प्यकारकके न होनेपर स्वयं लेकर सेवन करनेकी। 60

(७) विष-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुने विष खा लिया था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाखाना पिलानेकी। 61

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वयं लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जैसा करनेसे वह ग्रहण करे वही ग्रहणका ढंग है। (काम होजानेपर) फिर नहीं ग्रहण कराना चाहिये। 62

(८) घरदिन्नक रोगकी चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको घ र दि न्न क[1] रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हराई (=सीता)की मिट्टी पिलानेकी। 63

(९) भूत-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको दु ष्ट ग्र ह (=भूत)ने पकड़ा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आ मि स खा र (=अनाज जलाकर बनाया खार) पिलानेकी। 64

(१०) पांडुरोग-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको पाण्डु रोग था। ।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (गो)-मूत्रकी हर्रे पिलानेकी। 65

(११) जुड़पित्ती आदिकी चिकित्सा

१—० जुड़पित्ती (=छ वि दो ष) हो आई थी। ।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गन्धक लेप करनेकी। 66

२—० शरीर दुष्ट हो गया था। ।—

अनुमति देता हूँ जुलाब पीनेकी। 67

---

[1] स्वाभाविक अस्वाभाविक दोनों प्रकारका।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारको आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने यह कहा—

"महाराज ! क्यों (तुमने) उस आरामिकके कुटुम्बको बँधवाया है ?"

"भन्ते ! उस आरामिकके घरमें ऐसी सुवर्ण माला ० थी जैसी हमारे अन्तःपुरमें भी नही ० निस्संशय चोरीसे लाई गई है।"

तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने मगधराज सेनिय बिम्बिसारका प्रासाद सोनेका हो जाय— यह सकल्प किया, और वह सारा सुवर्णका हो गया।—

"महाराज ! यह बहुत सा सुवर्ण कहाँसे (आया) ?"

"जान गया, भन्ते ! आर्यकी ऋद्धिके बलसे वह आरामिक कुटुम्ब (वैसा हो गया था)।" और उस आरामिकके कुटुम्बको छुळवा दिया।

(४) भैषज्य सप्ताहभर रक्खे जासकते हैं

लोग (यह देखकर) सन्तुष्ट, अत्यन्त प्रसन्न हुए कि आर्य पिलिन्दिवच्छने राजा सहित सारी परिषद्को दिव्यशक्ति—ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलाया, और वे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छके पास घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ इन पाँच भैषज्योंको ले जाने लगे। साधारण तौरसे भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पाँच भैषज्योंके पानेवाले थे। पाने पर परिषद् (=जमात)को दे देते थे, और उनकी परिषद् बटोरू हो गई। लेकर वे कुंडेमें भी, घरमें भी रखते थे। जलछक्के और थैलियोंमें भी भरकर जँगलोंमें भी टाँग देते थे। और वह तितर बितर पळे रहते थे और विहार चूहोंसे भर गया था। लोग विहार में घूमते वक्त (वह सब) देख हैरान होते थे। 'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण कोष्टागारवाले हो गये है जैसे कि मगधराज सेनिय बिम्बिसार।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना और जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेतावेंगे !'

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेताते है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवानने भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो वह रोगी भिक्षुओंके खाने लायक भैषज्य हैं, जैसे कि घी, मक्खन, मधु, तेल, खाँळ उन्हें अधिकसे अधिक सप्ताह भर पास रखकर सेवन करना चाहिये, इसका अतिक्रमण करनेपर धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये।" 73

२—राजगृह

(५) गुळ खानेका विधान

तब भगवान् श्रावस्ती में इच्छानुसार विहारकर जिधर राजगृह है उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल पळे। आयुष्मान् कखारेवतने रास्तेमे गुळ बनाते वक्त उसमें आटा भी, राख भी, डालते देखा। देखकर अन्नयुक्त गुळ है। यह अविहित है। अपराह्णमे भोजन करने लायक नही है—(सोच) संदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित गुळ नही खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह भी गुळ नही खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! किस लिये गुळमें आटा भी राख भी, डालते हैं ?"

"बाँधनेके लिये भगवान् !"

मुक्त कर देनेके बाद याद करके एक सर्वार्थक महामात्य (=प्राइवेट सेक्रेटरी) को संबोधित किया—

"भणे! जो मैंने आर्यके लिये आरामिक देनेको कहा था क्या वह दे दिया गया?"

"नहीं देव! आर्यको आरामिक (नहीं) दिया गया।"

"भणे! कितना समय उसको हो गया?"

तब उस महामात्यने रातोंको गिनकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारको यह कहा—

"देव! पाँच सौ रात।"

"तो भणे! आर्यको पाँच सौ आरामिक दो।"

"अच्छा देव" (कह) उस महामात्यने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको पाँच सौ आरामिक दिये जिनका कि एक गाँव बस गया। जिसे कि (पीछे लोग) आरामिकग्राम भी कहते थे पिलिन्दिग्राम भी कहते थे।

(३) पिलिन्दिवच्छका चमत्कार

उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ उस ग्राममें भिक्षाटक (=कुलूपक) थे। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पूर्वाह्णके समय पहनकर पात्र-चीवर ले पिलिन्दिग्राममें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। उस समय उस गाँवमें उत्सव था। लड़के अलंकृत हो माला पहने खेलते थे। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पिलिन्दिगाँवमें बिना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ एक आरामिकका घर था वहाँ पहुँचे। जाकर बिछे आसनपर बैठे। उस समय उस आरामिककी लड़की दूसरे लड़कोंको अलंकृत मालाधारी देख रोती थी—'माला मुझे दो! अलंकार मुझे दो!' तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने आरामिककी स्त्रीसे कहा—'क्या यह बच्ची रो रही है?"

"भन्ते! यह लड़की दूसरे लड़कोंको अलंकृत मालाधारी देखकर रो रही है 'माला मुझे दो! अलंकार मुझे दो!' हम गरीबोंके पास कहाँ माला है कहाँ अलंकार है?

तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ एक तिनकेके टुकड़ेको उठाकर आरामिककी स्त्रीसे बोले—अच्छा! तो इस तिनकेके टुकड़ेको लड़कीके सिरपर रख दे।

तब उस आरामिककी स्त्रीने उस तिनकेके टुकड़ेको लेकर उस लड़कीके सिरपर रख दिया और वह सुवर्णमाला-जैसी अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिक हो गई। वैसी सुवर्णमाला तो राजाके अन्तःपुरमें भी नहीं थी। लोगोंने मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे कहा—

"देव! अमुक आरामिकके घर ऐसी सुवर्णमाला अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिका है वैसी सुवर्णमाला तो देवके अन्तःपुरमें भी नहीं है। कहाँसे उस दरिद्रके (घरमें ऐसी हो सकती है) निश्चय चोरीसे लाई गई है।

तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उस आरामिकके कुटुम्बको बाँध लिया। दूसरी बार भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पूर्वाह्णमें पहनकर पात्र-चीवर ले भिक्षाके लिये पिलिन्दिग्राममें प्रविष्ट हुए। पिलिन्दिग्राममें बिना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ उस आरामिकका घर था वहाँ गये। जाकर पड़ोसियोंसे पूछा—

"इस आरामिकका कुटुम्ब कहाँ चला गया?"

"भन्ते! उस सुवर्णमालाके कारण राजाने बँधवा दिया।"

तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसारका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार, जहाँ आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ थे वहाँ गया।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारको आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने यह कहा—

"महाराज ! क्यो (तुमने) उस आरामिकके कुटुम्बको बँधवाया है ?"

"भन्ते ! उस आरामिकके घरमें ऐसी सु व र्ण मा ला ० थी जैसी हमारे अन्त पुरमें भी नही ० निस्सशय चोरीसे लाई गई है।"

तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारका प्रासाद सोनेका हो जाय—यह सकल्प किया, और वह सारा सुवर्णका हो गया।—

"महाराज ! यह बहुत सा सुवर्ण कहाँसे (आया) ?"

"जान गया, भन्ते ! आर्यकी ऋद्धिके बलसे वह आरामिक कुटुम्ब (वैसा हो गया था)।" और उस आरामिकके कुटुम्बको छुळवा दिया।

(४) भैषज्य सप्ताहभर रक्खे जासकते हैं

लोग (यह देखकर) सन्तुष्ट, अत्यन्त प्रसन्न हुए कि आर्य पि लि न्दि व च्छ ने राजा सहित सारी परिषद्को दिव्यशक्ति—ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलाया, और वे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छके पास घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ इन पाँच भैषज्योको ले जाने लगे। साधारण तौरसे भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पाँच भैषज्योके पानेवाले थे। पाने पर परिषद् (=जमात)को दे देते थे, और उनकी परिषद् बटोरू हो गई। लेकर वे कुंडेमे भी, घरमें भी रखते थे। ज ल छ क्के और थैलियोमे भी भरकर जँगलोमें भी टाँग देते थे। और वह तितर बितर पळे रहते थे और विहार चूहोंसे भर गया था। लोग विहार मे घूमते वक्त (वह सब) देख हैरान होते थे। 'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण कोष्ठागारवाले हो गये है जैसे कि मगधराज सेनिय बिम्बिसार।' भिक्षुओने उन मनुष्योंके हैरान होनेको सुना और जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेतावेगे !'

तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेताते है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवानने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो वह रोगी भिक्षुओके खाने लायक भैषज्य है, जैसे कि घी, मक्खन, मधु, तेल, खाँळ उन्हे अधिकसे अधिक सप्ताह भर पास रखकर सेवन करना चाहिये, इसका अतिक्रमण करनेपर धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 73

२—*राजगृह*

(५) गुळ खानेका विधान

तब भगवान् श्रा व स्ती में इच्छानुसार विहारकर जिधर रा ज गृ ह है उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल पळे। आयुष्मान् क खा रे व त ने रास्तेमें गुळ बनाते वक्त उसमें आटा भी, राख भी, डालते देखा। देखकर अन्नयुक्त गुळ है। यह अविहित है। अपराह्णमें भोजन करने लायक नही है—(सोच) सदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित गुळ नही खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह भी गुळ नही खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! किस लिये गुळमें आटा भी राख भी, डालते है ?"

"बाँधनेके लिये भगवान् !"

"यदि भिक्षुओ ! बाँधनेके लिये गुळमें आटा भी राख भी डालते हैं तो वह भी तो गुळ ही कहा जाता है।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इच्छानुसार गुळ खानेकी। 74

(६) मूँगका विधान

आयुष्मान् क ख्ञा रे व त ने पकी भी मूँग उगी देखी। देखकर मूँग निषिद्ध है पकी भी मूँग उत्पन्न होती है—(सोच) संदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित मूँग नहीं खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह भी मूँग नहीं खाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! पकी भी मूँगे उत्पन्न होती हैं तो अनुमति देता हूँ इच्छानुसार मूँग खानेकी। 75

(७) छाछका विधान

उस समय एक भिक्षुको पेटमें वायगोलेकी बीमारी थी। उसने नमकीन सो वी र क (=छाछ) को पिया। वह वायगोलेका रोग शान्त हो गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (इस) रोगमें सो वी र क (=छाछ)की और नीरोगके लिये पानी मिलेको पेयके तौरपर सेवन करनेकी। 76

(८) आरामके भीतर रख पकाये, और स्वयं पकायेका खाना निषिद्ध

१—तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचे और वहाँ भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क ल न्द क निवापमें विहार करते थे। उस समय भगवान्‌को पेटमें वायुकी पीळा हुई। तब आयुष्मान् आनन्दने—पहले भी भगवान्‌के पेटमें वायुकी पीळा होनेसे त्रिकटुक यवागू (=खिचळी) लाभ देती थी—(यह सोच) स्वयं तिल तंडुल और मूँगको माँगकर भीतर डालके (आरामके) भीतर स्वयं पकाकर भगवान्‌के पास उपस्थित किया—

"भगवान् त्रिकटुक यवागूको पियें !

जानते हुए भी तथागत पूछते हैं [1]।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

'आनन्द ! कहाँसे यह यवागू (आई) है ?

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से सब बात कह दी। बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"आनन्द ! अनुचित है अयुक्त है श्रमणके आचारके विरुद्ध है अविहित है अकरणीय है। कैसे आनन्द तू ! इस प्रकारके बटोरपनके लिये चेताता है ? आनन्द ! जो कुछ भीतर रखा गया है वह भी निषिद्ध है जो कुछ भीतर पकाया गया है वह भी निषिद्ध है जो स्वयं पका है वह भी निषिद्ध है। आनन्द ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! (आरामके) भीतर रखे भीतर पकाये और स्वयं पकायेको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो। 77

२—"भिक्षुओ ! भीतर रखे भीतर पकाये स्वयं पकायेका जो सेवन करे उसे तीनों दु क्क टो का दोष हो। 78

"यदि भिक्षुओ ! भीतर रखे भीतर पके और दूसरे द्वारा पकायेका सेवन करे तो दो दु क्क टो- का दोष हो। 79

---

[1] देखो पृष्ठ १ ८।

"भिक्षुओ! यदि भीतर रखे, बाहर पकाये, स्वयं पकायेका सेवन करे तो दो दुक्कटोंका दोष हो।" 80

"यदि भिक्षुओ! बाहर रखे, भीतर पकाये स्वयं पकायेका सेवन करे तो दो दुक्कटों का दोष हो। 81

"यदि भिक्षुओ! भीतर रखे, बाहर पकाये (किन्तु) दूसरे द्वारा पकायेको भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 82

"यदि भिक्षुओ! बाहर रखे, भीतर पकाये (किन्तु) दूसरा द्वारा पकायेका भोजन करे तो एक दुक्कटका दोष हो। 83

"यदि भिक्षुओ! बाहर रखे, बाहर पकाये और अपने (हाथसे) पकायेका भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 84

"यदि भिक्षुओ! बाहर रखे बाहर पकाये किन्तु दूसरे द्वारा पकायेका भोजन करे तो दोष नहीं।"

२—उस समय भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने स्वयं पाकका निषेध किया है दोबारा पकानेमें संदेहमें पळे थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फिर पाक करनेकी।" 85

(९) दुर्भिक्षमें आराममें रखे, पकाये तथा स्वयं पकायेका खाना विहित

१—उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था। लोग नमक भी, तेल भी, तंदुल भी खाद्य भी आराममें लाते थे। उन्हें भिक्षु बाहर रखवा देते थे और उन्हें चूहे बिल्लियाँ आदि भी खाती थीं। चोर भी ले जाते थे, जूठा खानेवाले (=दमक) भी ले जाते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भीतर रखवानेकी।" 86

२—भीतर रखवाकर बाहर पकाते थे और जूठा खानेवाले घेर लेते थे। भिक्षु विश्वास पूर्वक खा नहीं सकते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भीतर पकानेकी।" 87

३—दुर्भिक्षमें कल्पयकारक (=भिक्षुओंके काम करनेवाले) बहुत भागको ले जाते थे और थोळासा भिक्षुओंको देते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्वयं पकानेकी—भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भीतर रक्खे, भीतर पकाये, और (अपने) हाथसे पकायेकी।" 88

(१०) निर्जन वन स्थानमें स्वयं फल आदिका ग्रहण करना

उस समय बहुतसे भिक्षुओंने काशी (देश)में वर्षावास कर भगवान्‌के दर्शनको राजगृह जाते समय रास्तेमें रूखा या अच्छा कोई भोजन आवश्यकतानुसार भरपूर नहीं पाया। खाने लायक फल बहुत था किन्तु कोई कल्प्यकारक[1] नहीं था। तब वह भिक्षु तकलीफ पाते, जहाँ राजगृहमें वेणुवन कलन्दक निवाप था और जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंसे कुशल-समाचार पूछे। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा? यापन करने योग्य तो रहा? रास्तेमें बिना तकलीफके तो आये? और भिक्षुओ! कहाँसे तुम आये?"

---

[1] भोजन आदि जिन चीजोंको स्वयं उठाकर भिक्षु नहीं खा सकते उसको उठाकर देनेवाला कल्प्यकारक कहलाता है।

"अच्छा रहा भगवान्! आपका भाग्य रहा भगवान्! भन्ते! हम काशी (देशमें) वर्षावास कर मार्गमें तकलीफ पाते आये।

तब भगवान्ने उसी सबबसे उसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जहाँपर खाने योग्य फलको देखो और कल्प्यकारक न हो तो स्वयं ले जाकर कल्प्यकारकको देख भूमिमें रख फिर उससे ग्रहण कर खानेकी। भिक्षुओ! ऐसे देनेकी अनुमति देता हूँ। ८९

(११) भोजनापरान्त लाये मधुकी अनुमति

१—उस समय एक ब्राह्मणके पास नये तिल और नई मधु उत्पन्न हुई थी। तब उस ब्राह्मणको यह हुआ—'अच्छा हो मैं इन नये तिलों और नई मधुको बुद्ध सहित भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।' तब वह ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। भगवान्के साथ कुशल-प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े उस ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

'आप गौतम भिक्षु-संघके साथ कलके मेरे भोजनको स्वीकार करें।'

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब वह ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृतिको जान चला गया। तब उस ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भो गौतम! भोजनका समय है। भोजन तैयार है।" तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले जहाँ उस ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब वह ब्राह्मण बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित—सम्प्रवारित कर भगवान्के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा ... समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठ चले गये। भगवान्के चले जानेके थोड़ी ही देर बाद उस ब्राह्मणको यह हुआ— 'जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था उन्हीं नये तिलों और नये मधुको देना मैं भूल गया। क्यों न मैं नये तिलों और नये मधुको कूँडों और घड़ोंमें भर आराममें लिवा ले चलूँ।'

तब वह ब्राह्मण नये तिलों और नये मधुको कूँडों और घड़ोंमें भरकर आराममें लिवा जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े उस ब्राह्मणने भगवान्से यह कहा—

"भो गौतम! जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था उन्हीं नये तिलों और नये मधुका देना मैं भूल गया। आप गौतम उन नये तिलों और नये मधुको स्वीकार करें।"

'तो ब्राह्मण! भिक्षुओंको दे।'

—उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोड़ेको भी बस कर देते थे। जानकर भी इनकार कर देते थे और सारा संघ पूरा कर देता था। भिक्षु संकोचसे नहीं स्वीकार करते थे।

भिक्षुओ! स्वीकार करो। भोजन करो।

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वहाँसे लाये हुएको भोजन पूर्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उस भोजन करनेकी। ९०

२—उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्य-पुत्रके सेवक कुलने संघके लिये खानेकी चीज भेजी और कहा—'यह खानेकी चीज आर्य उपनन्दको दिखलाकर संघको देना।' उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये थे। तब आदमियोंने आराममें जाकर भिक्षुओंसे पूछा—

आर्य उपनन्द कहाँ हैं?

"आवुस! आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये हैं।"

"भन्ते ! इस खानेकी चीजको आर्य उ प न द को दिखला संघको देना चाहिये।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! लेकर रख छोळो जब तक कि उ प न द आता है।" 91

४—तब आयुष्मान् उपनद शाक्यपुत्र भात (खाने)से पहले (गृहस्थ) कुटुम्बोमें बैठकीकर दिन के (मध्य)में आते थे। उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोळेसे भी ० भिक्षु सदेहमे पळ नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो, भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भातके पहिले लियेको, भोजन पूर्त्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 92

३—श्रावस्ती

५—तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमश चारिका करते जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रको काय-दाह (=शरीर जलने)का रोग था। तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जहाँ आयुष्मान् सा रि पु त्र थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"आवुस ! सारिपुत्र पहले जब तुम्हे कायदाह रोग होता था तो कैसे अच्छा होता था ?"

"आवुस ! भ सी ळ (=कमलकी जळ) और कमल-नालसे।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे, पसारी बाँहको समेटे वैसे ही (अप्रयास) जेतवनमे अन्तर्धान हो म दा कि नी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुए। एक ना ग ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको दूरसे ही आते देखा। देख कर यह कहा—

"आइये भन्ते ! आर्य महामौद्गल्यायन, भन्ते ! स्वागत है आर्य महामौद्गल्यायनका। भन्ते ! आर्यको किस चीजकी ज़रूरत है ? क्या दूँ ?"

"आवुस ! मुझे भसीळकी ज़रूरत है और कमल-नालकी।"

तब उस नागने दूसरे नागको आज्ञा दी—'तो भणे ! आर्यको जितनी आवश्यकता हो उतनी भसीळ और कमल-नाल दो।'

तब वह नाग मदाकिनी पुष्करिणीमें घुसकर सूँळसे भसीळ और कमल-नालको निकाल अच्छी तरह धोकर गठरी बाँध जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे वहाँ गया।

तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जे त व न में जा प्रकट हुए। और वह नाग भी मदा-किनी पुष्करिणीके तीर अन्तर्धान हो जे त व न में जा प्रकट हुआ। तब वह नाग आयुष्मान् महामौद्-गल्यायनको भसीळ और कमल-नाल दे जेतवनमें अन्तर्धान हो मदाकिनी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुआ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने आयुष्मान् सा रि पु त्र को भसीळ और कमल-नाल दिया। तब भसीळ और कमल-नालके खानेसे आयुष्मान् सारिपुत्रकी काय-दाहकी पीळा शान्त हो गई, और बहुत-सी भसीळ और कमल-नाल बच रही। उस समय दुर्भिक्ष होनेसे भिक्षु सदेहमें पळ नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो, भोजन करो।"

"अच्छा रहा भगवान्! यापन योग्य रहा भगवान्! भन्ते! हम काशी (देशमें) वर्षावास कर मार्गमें तकलीफ पाते आये।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जहाँपर खाने योग्य फलको देखो और कल्प्यकारक न हो तो स्वयं ले जाकर कल्प्यकारकको देख भूमिमें रख फिर उससे ग्रहण कर खानेकी। भिक्षुओ! लेने देनेकी अनुमति देता हूँ। 89

(११) भोजनोपरान्त लाये भक्ष्यकी अनुमति

१—उस समय एक ब्राह्मणके पास नये तिल और नई मधु उत्पन्न हुई थी। तब उस ब्राह्मणको यह हुआ—'अच्छा हो मैं इन नये तिलों और नई मधुको बुद्ध सहित भिक्षु-संघको प्रदान करूँ।' तब वह ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। भगवान्‌के साथ कुशल-प्रश्न पूछ एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"आप गौतम भिक्षु-संघके साथ कलके मेरे भोजनको स्वीकार करें।

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब वह ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृतिको जान चला गया। तब उस ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

'भो गौतम! भोजनका समय है। भोजन तैयार है।' तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र चीवर ले जहाँ उस ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब वह ब्राह्मण बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित—सम्प्रवारित कर भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठ चले गये। भगवान्‌के चले जानेके थोड़ी ही देर बाद उस ब्राह्मणको यह हुआ— 'जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था उन्हीं नये तिलों और नये मधुको देना मैं भूल गया। क्यों न मैं नये तिलों और नये मधुको कूँड़ों और घड़ोंमें भर आराममें लिवा ले चलूँ।

तब वह ब्राह्मण नये तिलों और नये मधुको कूँड़ों और घड़ोंमें भरकर आराममें लिवा जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम! जिनके लिये मैंने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया था उन्हीं नये तिलों और नये मधुको देना मैं भूल गया। आप गौतम उन नये तिलों और नये मधुको स्वीकार करें।

"तो ब्राह्मण! भिक्षुओंको दे।

—उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोड़ेमें भी बस कर देते थे। जानकर भी इन्कार कर देते थे और सारा संघ पूर्ण कह देता था। भिक्षु संदेहमें पड़ नहीं स्वीकार करते थे।

भिक्षुओ! स्वीकार करो। भोजन करो।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वहाँसे लाये हुएको भोजन पूर्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी। 90

१—उस समय आयुष्मान् उ प न न्द शाक्य-पुत्रके सेवक कुटुम्बने संघके लिये खानेकी चीज भेजी और कहा—'यह खानेकी चीज आर्य उपनन्दको दिखलाकर संघको देना।' उस समय आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये थे। तब आदमियोंने आराममें जाकर भिक्षुओंसे पूछा—"आर्य उ प न न्द कहाँ हैं?"

आवुसो! आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्र गाँवमें भिक्षाके लिये गये हैं।

§४-अभक्ष्य मांस

५—वाराणसी

(१) सुप्रियाका अपना मास देना

तव भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर जिधर वाराणसी है उधर चारिकाके लिये चले। क्रमश चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहा पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे। उस समय वाराणसीमें सुप्रिय (नामक) उपासक और सुप्रिया (नामक) उपासिका, दोनो श्रद्धालु थे। वह दाता काम करनेवाले और सघके सेवक थे। तव सुप्रिया उपासिका एक दिन आराममे जा एक विहार(=भिक्षुओंके रहनेकी कोठरी)से दूसरे विहार, एक परिवेण[1] से दूसरे परिवेणमे जा भिक्षुओंसे पूछती थी—

"भन्ते! कौन रोगी है? किसके लिये क्या लाना चाहिये?"

इस समय एक भिक्षुने जुलाव लिया था। तव उस भिक्षुने सुप्रिया उपासिकासे यह कहा—

"भगिनी! मैंने जुलाव लिया है। मुझे प्रतिच्छादनीय (=पथ्य)की आवश्यकता है।"

"अच्छा आर्य! लाया जायेगा।"—(कह) घर जा नौकरको आज्ञा दी—

"जा भणे! तैयार मास खोज ला।"

"अच्छा आर्ये!"—(कह) उस पुरुषने सुप्रिया उपासिकाको उत्तर दे सारी वाराणसी को खोज डालनेपर भी तैयार मास न देखा। तव वह जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह बोला—

"आर्ये! तैयार मास नहीं है। आज मारा नहीं गया।"

तव सुप्रिया उपासिकाको यह हुआ—'उस रोगी भिक्षुको प्रतिच्छादनीय न मिलनेसे रोग बढेगा, या मौत होगी। मेरे लिये यह उचित नहीं कि वचन देकर न पहुँचवाऊँ।'—(यह सोच) पोत्थनिका (=मास काटनेका हथियार) ले जाँघके मासको काटकर (यह कह) दासीको दे दिया—

'हन्त! जे! इस मासको तैयारकर अमुक विहारमे रोगी भिक्षु है उसको दे आ। यदि मेरे वारेमें पूछे तो कहना वीमार है।' और चादरमें जाँघको वाँधकर कोठरीमे जा चारपाईपर लेट गई। तव सुप्रिय उपासकने घरमें जा दासीसे पूछा—"सुप्रिया कहाँ है?"

"आर्य! यह कोठरीमें लेटी हुई हैं।"

तव सुप्रिय उपासक जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह वोला—

"कैसे लेटी हो?"

"वीमार हूँ।"

"तुम्हें क्या वीमारी है?"

तव सुप्रिया उपासिकाने सुप्रिय उपासकसे वह सव वात कह दी। तव सुप्रिय उपासकने—"आश्चर्य है! अद्भुत है! कितनी श्रद्धालु, (=प्रसन्न) सुप्रिया है जो कि उसने अपने मासको भी दे दिया। इसके लिये और क्या अदेय हो सकता है?"—(कह) हर्पित=उदग्र हो जहाँ भगवान् थे वहाँ

---

[1] उस समय आजकलके युक्त-प्रान्त और बिहारके देहातोंके मिट्टीके घरोकी तरह बीचमें आँगन रख चारों ओर कोठरियाँ बनाई जाती थीं। ऐसे आँगनवाले घरको परिवेण कहते थे।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वनकी और पुष्करिणीकी वस्तुको भोजन पूरा हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी। 93

(१२) स्वयं लेकर फल खाना

उस समय श्रा व स्ती में बहुतसा खाने लायक फल उत्पन्न हुआ था लेकिन कोई क ल्प्य का र क न था। भिक्षु सन्देहमें पळकर फल न खाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बिना बीजवाले तथा (बीजवाले) फलके बीजको निकालकर कल्प्य न करनेपर भी खानेकी। 94

४—राजगृह

(१३) गुप्त स्थानमें चीरफाळ वस्तिकर्मका निषेध

१—तब भगवान् श्रा व स्ती में इच्छानुसार विहारकर रा ज गृ ह के वे णु व न क ल न्द क नि वा प में विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुको भ ग न्द र का रोग था। आ का श गो त्र वैद्य शस्त्रकर्म (=चीर फाळ) करता था। तब भगवान् विहारमें घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार (=कोठरी) था वहाँ गये। आ का श गो त्र वैद्यने भगवान्‌को दूरसे ही आते देखा। देखकर भगवान्‌से यह बोला—

'आइये आप गौतम! इस भिक्षुके मल-मार्गको देखें। जैसे कि गोहका मुख है।'

तब भगवान्‌ने—'यह मोघपुरुष मुझसे ही मज़ाक कर रहा है'—(सोच) वहींसे लौटकर इसी सम्बन्धमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

भिक्षुओ! क्या अमुक विहारमें रोगी भिक्षु है?

है भगवान्!

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! उस आयुष्मान्‌को भगन्दरका रोग है और आ का श गो त्र वैद्य शस्त्र-कर्म कर रहा है।

बुद्ध भगवान्‌ने निन्दा की—

भिक्षुओ! अयुक्त है उस मोघ पुरुषके लिये अनुचित है। अयोग्य है। अप्रतिरूप है। श्रमणोंके आचारके विरुद्ध है। अविहित है। अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ! वह मोघ पुरुष गुह्य-स्थानमें शस्त्र-कर्म कराता है! भिक्षुओ! (उस) गुह्य-स्थानमें चमळा कोमल होता है। घाव मुश्किलसे भरता है। शस्त्र चलाना कठिन है। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

निन्दा करके धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! गुह्य-स्थानमें शस्त्र-कर्म नहीं करना चाहिये। जो कराये उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 95

२—उस समय ष ड्‌ व र्गी य भिक्षु—भगवान्‌ने शस्त्र-कर्मका निषेध किया है (यह सोच) व स्ति क र्म कराते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे षड्‌वर्गीय भिक्षु वस्ति-कर्म कराते हैं!' तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्‌से कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।

निन्दा कर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! गुह्य-स्थानके चारों ओर दो अंगुल तक शस्त्रकर्म या वस्तिकर्म नहीं कराना चाहिये। जो कराये उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 96

§ ४–अभक्ष्य मांस

५—वाराणसी

(१) सुप्रियाका अपना मास देना

तव भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चले। क्रमश चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व मे विहार करते थे। उस समय वाराणसीमें सुप्रिय (नामक) उपासक और सुप्रिया (नामक) उपासिका, दोनो श्रद्धालु थे। वह दाता काम करनेवाले और सघके सेवक थे। तव सुप्रिया उपासिका एक दिन आराममें जा एक विहार(=भिक्षुओके रहनेकी कोठरी)से दूसरे विहार, एक प रि वे ण [1] से दूसरे परिवेणमें जा भिक्षुओंसे पूछती थी—

"भन्ते! कौन रोगी है? किसके लिये क्या लाना चाहिये?"

उस समय एक भिक्षुने जुलाव लिया था। तव उस भिक्षुने सुप्रिया उपासिकासे यह कहा—

"भगिनी! मैंने जुलाव लिया है। मुझे प्रतिच्छादनीय (=पथ्य)की आवश्यकता है।"

"अच्छा आर्य! लाया जायेगा।"—(कह) घर जा नौकरको आज्ञा दी—

"जा भणे! तैयार मास खोज ला।"

"अच्छा आर्ये!"—(कह) उस पुरुषने सु प्रि या उपासिकाको उत्तर दे सारी वा रा ण सी को खोज डालनेपर भी तैयार मास न देखा। तव वह जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह वोला—

"आर्ये! तैयार मास नही है। आज मारा नही गया।"

तव सुप्रिया उपासिकाको यह हुआ—'उस रोगी भिक्षुको प्र ति च्छा द नी य न मिलनेसे रोग वढेगा, या मौत होगी। मेरे लिये यह उचित नही कि वचन देकर न पहुँचवाऊँ।'—(यह सोच) पोत्थनिका (=मास काटनेका हथियार) से जाँघके मासको काटकर (यह कह) दासीको दे दिया—

'हन्त! जे! इस मासको तैयारकर अमुक विहारमे रोगी भिक्षु है उसको दे आ। यदि मेरे बारेमे पूछे तो कहना वीमार है।' और चादरसे जाँघको वाँधकर कोठरीमें जा चारपाईपर लेट गई। तव सु प्रि य उपासकने घरमें जा दासीसे पूछा—"सुप्रिया कहाँ है?"

"आर्य! यह कोठरीमें लेटी हुई हैं।"

तव सु प्रि य उपासक जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह वोला—

"कैसे लेटी हो?"

"वीमार हूँ।"

"तुम्हें क्या वीमारी है?"

तव सुप्रिया उपासिकाने सुप्रिय उपासकसे वह सव वात कह दी। तव सुप्रिय उपासकने—"आश्चर्य है! अद्भुत है! कितनी श्रद्धालु, (=प्रसन्न) सुप्रिया है जो कि उसने अपने मासको भी दे दिया। इसके लिये और क्या अदेय हो सकता है?"—(कह) हर्पित=उदग्र हो जहाँ भगवान् थे वहाँ

---

[1] उस समय आजकलके युक्त-प्रान्त और बिहारके देहातोंके मिट्टीके घरोंकी तरह वीचमें आँगन रख चारो ओर कोठरियाँ वनाई जाती थीं। ऐसे आँगनवाले घरको प रि वे ण कहते थे।

गया। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सु प्रि य उपासकने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भिक्षु-संघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सु प्रि य उपासक भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌की प्रदक्षिणाकर चला गया। तब सुप्रिय उपासकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा समयकी सूचना दी—"भन्ते ! (भोजनका) समय है भात तैयार है।

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र चीवर ले जहाँ सुप्रिय उपासकका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब सुप्रिय उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े सुप्रिय उपासकसे भगवान्‌ने यह कहा—"कहाँ है सुप्रिया ?"

"बीमार है भगवान् !"

"तो आवे।"

"भगवान् ! नहीं आ सकती।

"तो पकड़कर ले आओ !

तब सुप्रिय उपासक सु प्रि या उपासिकाको पकड़कर ले आया। भगवान्‌के दर्शन मात्रसे (उसी समय) उसका बड़ा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया। तब सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाने— आश्चर्य है रे ! अद्भुत है रे ! तथागतकी महा दिव्यशक्ति और महानुभावताको जो कि भगवान्‌के दर्शन मात्रसे बड़ा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया' —(कह) हर्षित—उदग्र हो अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा बुद्ध सहित भिक्षु-संघको संतर्पित किया। भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गये। तब भगवान् सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाको धार्मिक कथासे समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ ! किसने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा ?" —ऐसा कहनेपर उस भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा।

"लाया गया भिक्षु ?

(हाँ) लाया गया भगवान्।

"खाया तूने भिक्षु ?"

"(हाँ) खाया मैंने भगवान्।

"समझा बूझा तूने भिक्षु ?"

"नहीं भगवान् ! मैंने (नहीं) समझा बूझा।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे तूने मोघपुरुष ! बिना समझे बूझे मांसको खाया ? मोघ पुरुष ! तूने मनुष्यके मांसको खाया। मोघ पुरुष ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

(७) मनुष्य हाथी आदि के मांस अभक्ष्य

१—फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! ऐसे श्रद्धावान्—प्रसन्न मनुष्य हैं जो अपने मांस तकको दे देते हैं।

भिक्षुओ ! मनुष्य-मांस नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको थुल्लच्चयका दोष हो। 97

२—उस समय राजाके हाथी मरते थे। दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मांस खाते थे।

भिक्षाके लिये जानेपर भिक्षुओंको भी हाथीका मास देते थे, और भिक्षु हाथीका मास खाते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य पुत्रीय श्रमण हाथीका मास खाते हैं! हाथी राजाका अंग है। यदि राजा जाने तो उनसे असन्तुष्ट होगा।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! हाथीके मासको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 98

३—उस समय राजाके घोळे मरते थे ० [1]।—

"भिक्षुओ! घोळेका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 99

४—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग कुत्तेका मास खाते थे ० [2]।—

"भिक्षुओ! कुत्तेका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 100

५—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग साँपका मास खाते थे ० [2]। कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण साँपका मास खाते हैं। साँप घृणित और प्रतिकूल होता है। सुफस्स (=सुस्पर्श) नागराज भी जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे सुफस्स नागराजने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! श्रद्धा-हीन प्रसन्नता-रहित नाग भी हैं। वह थोळीसी बातके लिये भी भिक्षुओंको तकलीफ दे सकते हैं। अच्छा हो भन्ते! आर्य लोग साँपका मास न खायें।" तब भगवान्‌ने सुफस्स नागराजको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब सुफस्स नागराज भगवान्‌की धार्मिक कथासे समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्‌ने इसी संबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया

"भिक्षुओ! साँपका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 101

६—उस समय शिकारी सिंहको मारकर सिंहका मास खाते थे। भिक्षुओंके भिक्षाचार करते वक्त (उन्हें) सिंहका मास देते थे। भिक्षु सिंहका मास खाकर जंगलमें रहते थे। सिंह-मासके गंधसे सिंह भिक्षुओंको मारते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! सिंहके मासको नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 102

७—उस समय शिकारी बाघको मारकर बाघका मास खाते थे ० [2]।—

"भिक्षुओ! बाघका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 103

८—उस समय शिकारी चीते (=द्वीपी)को मारकर चीतेका मास खाते थे ० [2]।—

"भिक्षुओ! चीतेका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 104

९—उस समय शिकारी भालूको मारकर भालूका मास खाते थे ० [2]।—

"भिक्षुओ! भालू (=अच्छ)का मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 105

१०—उस समय शिकारी तळक(=तरक्षु, लकळबग्घा)को मारकर तळकका मास खाते थे ० [2]।

"भिक्षुओ! तळकका मास नहीं खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

सुप्रिय भाणवार समाप्त ॥२॥

---

[1] हाथीकी तरह [६§४।२ (२)] यहाँ भी दोहराना चाहिये।

[2] हाथीकी तरह [६§४।२ (२)] यहाँ भी दोहराना चाहिये।

गया। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सु प्रि य उपासकने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सु प्रि य उपासक भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌की प्रदक्षिणाकर चला गया। तब सुप्रिय उपासकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा समयकी सूचना दी—"भन्ते! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सुप्रिय उपासकका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब सुप्रिय उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े सुप्रिय उपासकसे भगवान्‌ने यह कहा—"कहाँ है सुप्रिया?

"बीमार है भगवान्!"

"तो आवे।

"भगवान्! नहीं आसकती।

"तो पकड़कर ले आओ।

तब सुप्रिय उपासक सु प्रि या उपासिकाको पकड़कर ले आया। भगवान्‌के दर्शन मात्रसे (उसी समय) उसका बड़ा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया। तब सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाने—"आश्चर्य है हे! अद्भुत है हे! तथागतकी महा दिव्यशक्ति और महानु भावताको जो कि भगवान्‌के दर्शन मात्रसे बड़ा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया'—(वह) हर्षित=उदग्र हो अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा बुद्ध सहित भिक्षु-संघको सर्पित किया। भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गये। तब भगवान् सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाको धार्मिक कथासे समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी संबन्धमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ! किसने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा?"—ऐसा कहनेपर उस भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

'भन्ते! मैंने सुप्रिया उपासिकासे मांस माँगा।

"लाया गया भिक्षु?

(हाँ) लाया गया भगवान्।

"खाया तूने भिक्षु?

(हाँ) खाया मैंने भगवान्।"

"समझा बूझा तूने भिक्षु?

"नहीं भगवान्! मैंने (नहीं) समझा बूझा।

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे तूने मोघपुरुष! बिना समझे बूझे मांसको खाया? मोघ पुरुष! तूने मनुष्यके मांसको खाया। मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

(२) मनुष्य, हाथी आदिके मांस अभक्ष्य

१—तत्पश्चात् धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! ऐसे श्रद्धालु—प्रसन्न मनुष्य हैं जो अपने मांसको भी दे देते हैं।

"भिक्षुओ! मनुष्य-मांस नहीं खाना चाहिये। जो खावे उसको थुल्लच्चयका दोष हो।। 97

२—उस समय राजाके हाथी मरते थे। दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मांस खाते थे।

उसको दस बातें मिलती है ।
आयु, वर्ण, सुख, बल,—
प्रतिभा उसको उत्पन्न होती है, फिर
(यवागू) क्षुधा, पिपासा, (और) वायुको दूर करती है,
पेटको शोधती है, खायेको पचाती है ।
बुद्धने इसे दवा बतलाया है ।
इसलिये सुख चाहनेवाले मनुष्यको,
तथा दिव्य सुखको चाहनेवाले,
या मनुष्योमें सुन्दर भाग्यकी इच्छा रखनेवालेको,
नित्य यवागूका दाता होना ठीक है ।

तब भगवान् उस ब्राह्मण (के दान)को इन गाथाओसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये । तब भगवान्ने इसी सघर्मे इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ यवागू और मधुगोलक की ।"107

(४) निमत्रणके स्थानसे भिन्न खिचळी निषिद्ध

लोगोने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओको यवागू और मधुगोलककी अनुमति दी है तब वह सबेरे ही खानेके लायक यवागू और मधुगोलकको तैयार कराते थे । भिक्षु सवेरे ही यवागू और मधु-गोलकको खानेसे भोजनके समय मनसे नही खाते थे । उस समय एक श्रद्धालु नौजवान महामात्यने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमत्रित किया था । तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको यह हुआ—'क्यो न मैं साढे बारहसौ भिक्षुओके लिये साढे बारहसौ मासकी थालियाँ तैयार कराऊँ, और एक एक भिक्षुके लिये एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ ?' तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य और साढे बारहसौ मासकी थालियोको तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! भोजनका काल है, भात तैयार है ।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ उस श्रद्धालु तरुण महामात्यका घर था वहाँ गये । जाकर भिक्षु-सघ सहित बिछे आसनपर बैठे । तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य चौकेमें भिक्षुओंको परोसने लगा । भिक्षुओंने ऐसा कहा—'आवुस ! थोळा दो ! आवुस ! थोळा दो ।'

"भन्ते ! 'यह श्रद्धालु महामात्य तरुण है'—यह सोच थोळा-थोळा मत लीजिये । मैंने बहुत खाद्य-भोज्य तैयार किया है, साढे बारह सौ मासकी थालियाँ (तैयार की है जिसमें कि) एक एक भिक्षुको एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ । भन्ते ! खूब इच्छा-पूर्वक ग्रहण कीजिये ।"

"आवुस ! हम इस कारणसे थोळा-थोळा नही ले रहे हैं, बल्कि हमने सवेरे ही भोज्य यवागू और मधुगोलक खा लिया है, इसलिये थोळा-थोळा ले रहे हैं ।"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य हैरान होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे घर निमन्त्रित होनेपर दूसरेके भोज्य यवागू और मधुगोलकको खायेंगे । क्या मै इच्छानुसार (भोजन) नही देसकता था ?'—(यह कह) कुपित, असतुष्ट हो चिढानेकी इच्छासे भिक्षुओके पात्रोको (यह कह) भरता चला गया—"खाओ ! या ले जाओ ! खाओ ! या ले जाओ ।"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यद्वारा सतर्पित=सम्प्रवारित करके भगवान्के भोजन कर हाथ खीच लेनेपर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको भगवान् धार्मिक कथाद्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे

५—अंधकविन्द

(२) खिचड़ी और लड्डूका विधान

१—तब भगवान् वाराणसीमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ जिधर अंधकविंद है उधर चारिकाके लिये चले। उस समय देहात (=जनपद) के लोग बहुत सा नमक, तेल, तंडुल और खानेकी चीज गाड़ियोंपर रख—'जब हमारी बारी आयेगी तब भोजन करायेंगे'—यह सोच बुद्ध सहित भिक्षु-संघके पीछे पीछे चलते थे। और पाँच सौ जूठा खाने वाले भी पीछे-पीछे चल रहे थे। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ अंधकविंद था वहाँ पहुँचे। तब एक ब्राह्मणको बारी न मिलनेसे ऐसा हुआ—'बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके पीछे-पीछे (यह सोचकर) चलते हुए दो महीनेसे अधिक हो गए कि जब बारी मिलेगी तब भोजन कराऊँगा और मुझे बारी नहीं मिल रही है। मैं अकेला हूँ मेरा घरका बहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यों न मैं भोजन परसनेको देखूँ। जो परसनेमें न हो उसको मैं दूँ।'

तब ब्राह्मणने भोजन परसनेको देखते वक्त यवागू खिचड़ी और लड्डू (=मधुगोलक)को न देखा। तब वह ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् आनंद थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनंदसे यह बोला—

'भो आनन्द! मुझे बारी न मिलनेसे ऐसा हुआ—'बुद्ध-सहित संघके पीछे-पीछे (यह सोचकर) चलते दो महीनेसे अधिक हो गये कि जब बारी मिलेगी तब भोजन कराऊँगा और मुझे बारी नहीं मिल रही है। और मैं अकेला हूँ। मेरा घरका बहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यों न मैं भोजन परसनेको देखूँ। जो परसनेमें न हो उसको मैं दूँ। (फिर) भोजन परसनेको देखते वक्त यवागू और लड्डू मैंने नहीं देखा। सो भो आनन्द! यदि मैं यवागू और लड्डूको तैयार कराऊँ तो क्या आप गौतम उसे स्वीकार करेंगे?

"तो ब्राह्मण! मैं इसे भगवान्से पूछूँगा।

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह बात कही।

"तो आनन्द! (वह ब्राह्मण) तैयार करे।

"तो ब्राह्मण! तैयार करो।

तब वह ब्राह्मण उस रातके बीत जानेपर बहुत सा यवागू और लड्डू तैयार करा भगवान्के पास ले गया।—

"आप गौतम मेरे यवागू और लड्डूको स्वीकार करें।

तब भिक्षु आगा-पीछा करते नहीं स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ! ग्रहण करो! भोजन करो!"

तब ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम यवागू और लड्डूसे संतर्पित—सम्प्रवारित कर भगवान्के हाथ धो (खानेसे) हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

—"ब्राह्मण! खिचड़ी यवागूके यह दस गुण (=आनृशंस) हैं—(१) यवागू देनेवाला आयुका दाता होता है (२) वर्ण (=रूप)का दाता होता है (३) सुखका दाता होता है (४) बलका दाता होता है (५) प्रतिभाका दाता होता है (६) (खाई हुई खिचड़ी) पीनेपर भूखको दूर करता है (७) प्यासको दूर करता है (८) वायुको अनुलोम करता है (९) पेटको साफ करता है (१०) कच्चेको पचाता है। ब्राह्मण! खिचड़ीके ये दस गुण हैं।

जो संयमी (और) दूसरेके दिये भोजन-खानेवालोंको—

समयपर सत्कार पूर्वक यवागू (खिचड़ी) देता है

उसको दस बातें मिलती हैं ।
आयु, वर्ण, सुख, बल,—
प्रतिभा उसको उत्पन्न होती है, फिर
(यवागू) क्षुधा, पिपासा, (और) वायुको दूर करती है,
पेटको शोधती है, खायेको पचाती है ।
बुद्धने इसे दवा बतलाया है ।
इसलिये सुख चाहनेवाले मनुष्यको,
तथा दिव्य सुखको चाहनेवाले,
या मनुष्योंमें सुन्दर भाग्यकी इच्छा रखनेवालेको,
नित्य यवागूका दाता होना ठीक है ।

तब भगवान् उस ब्राह्मण (के दान)को इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये । तब भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरण में धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ यवागू और मधुगोलक की ।"107

(४) निमन्त्रणके स्थानसे भिन्न खिचळी निषिद्ध

लोगोंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंको यवागू और मधुगोलककी अनुमति दी है तब वह सबेरे ही खानेके लायक यवागू और मधुगोलकको तैयार कराते थे । भिक्षु सबेरे ही यवागू और मधुगोलकको खानेसे भोजनके समय मनसे नही खाते थे । उस समय एक श्रद्धालु नौजवान महामात्यने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमन्त्रित किया था । तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको यह हुआ—'क्यो न मैं साढे बारहसौ भिक्षुओके लिये साढे बारहसौ मासकी थालियाँ तैयार कराऊँ, और एक एक भिक्षुके लिये एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ ?' तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य और साढे बारहसौ मासकी थालियोको तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! भोजनका काल है, भात तैयार है ।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ उस श्रद्धालु तरुण महामात्यका घर था वहाँ गये । जाकर भिक्षु-सघ सहित बिछे आसनपर बैठे । तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य चौकेमें भिक्षुओको परोसने लगा । भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुस ! थोळा दो ! आवुस ! थोळा दो ।'

"भन्ते ! 'यह श्रद्धालु महामात्य तरुण है'—यह सोच थोळा-थोळा मत लीजिये । मैंने बहुत खाद्य-भोज्य तैयार किया है, साढे बारह सौ मासकी थालियाँ (तैयार की है जिसमें कि) एक एक भिक्षुको एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ । भन्ते ! खूब इच्छा-पूर्वक ग्रहण कीजिये ।"

"आवुस ! हम इस कारणसे थोळा-थोळा नही ले रहे हैं, बल्कि हमने सबेरे ही भोज्य यवागू और मधुगोलक खा लिया है, इसलिये थोळा-थोळा ले रहे हैं ।"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य हैरान होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे घर निमन्त्रित होनेपर दूसरेके भोज्य यवागू और मधुगोलकको खायेंगे । क्या मैं इच्छानुसार (भोजन) नही देसकता था ?'—(यह कह) कुपित, असतुष्ट हो चिढानेकी इच्छासे भिक्षुओंके पात्रोको (यह कह) भरता चला गया—"खाओ ! या ले जाओ ! खाओ ! या ले जाओ ! "

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यद्वारा सतर्पित=सम्प्रवारित करके भगवान्के भोजन कर हाथ खींच लेनेपर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको भगवान् धार्मिक कथाद्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षितकर आसनसे

उत्तर चले गये। तब भगवान्‌के चौकेसे चले जानेके थोड़ी देर बाद उस महामात्यको पछतावा होने लगा। उसको होने लगा— 'मेरा अलाभ है रे! मुझे दुर्लाभ मिला है रे! जो मुझको नहीं हुआ है रे! जो कि मैंने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको इच्छापूर्वक खिलाकर पात्रको भर दिया—'खाओ! या ले जाओ!'—क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?'

तब वह पछतावा करता महामात्य जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस महामात्यने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌के चले जानेके थोड़ी देर बाद मुझे पछतावा होने लगा ... क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?"

"आवुस! जो कि तूने आज बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको निमंत्रित किया इससे तूने बहुत पुण्य उपार्जित किया। जो कि तेरे यहाँसे एक एक भिक्षुने एक एक दाना ग्रहण किया, इससे तूने बहुत पुण्य कमाया। स्वर्गका आराधन किया।"

तब वह महामात्य—'लाभ है भन्ते! मुझको सुलाभ हुआ भन्ते! मैंने बहुत पुण्य कमाया स्वर्गका आराधन किया'— यह जान हर्षित उदग्र हो आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"भिक्षुओ! सचमुच भिक्षु दूसरेके यहाँ निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! वे निकम्मे आदमी दूसरी जगह निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते हैं? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिए है ...।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! दूसरी जगह निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य यवागूको नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे धर्मानुसार (दंड) देना चाहिये।" 108

५—राजगृह

(५) बेलट्ठ कात्यायनका गुळका व्यापार

तब भगवान् अंधकविंदमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु संघके साथ जिधर राजगृह है उधर चारिकाके लिये चले। उस समय बेलट्ठ कच्चान (कात्यायन) गुळसे भरी पाँच सौ गाड़ियोंके साथ राजगृहसे अंधकविंद जानेवाले रास्तेमें जा रहा था। भगवान्‌ने दूरसे ही बेलट्ठ कच्चानको आते देखा। देखकर मार्गसे हट एक वृक्षके नीचे (भगवान्) बैठ गये। तब बेलट्ठ कच्चान जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े बेलट्ठ कच्चानने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मैं एक एक भिक्षुको एक एक गुळका घड़ा देना चाहता हूँ।"

"तो कच्चान! तू एक ही गुळके घड़ेको ला।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) बेलट्ठ कच्चान एक ही गुळके घड़ेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से बोला—

"भन्ते! मैं गुळके घड़ेको लाया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये?"

"तो कच्चान! तू भिक्षुओंको गुळ दे।"

"अच्छा भते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओको गुळ दे यह कहा—

"भते ! मैंने भिक्षुओको गुळ दे दिया, और यह बहुतसा गुळ बाकी है। भते मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो कच्चान ! भिक्षुओको गुळसे सतर्पित कर।"

"अच्छा भते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओको गुळोंसे (=भेलियोंसे) सतर्पित किया। किन्ही किन्ही भिक्षुओने पात्रोको भर लिया, किन्हीने ज ल छ क्को को, किन्हीने थैलोको भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने भिक्षुओको गुळोंसे सर्तापितकर भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने भिक्षुओको गुळोंसे सर्तापित कर दिया और बहुतसा गुळ बाकी है। भते ! मैं (इनका) क्या करूँ ?"

"तो कच्चान ! तू गुळको शेप-भोजी (=विघासाद)को यथेच्छ दे दे।"

"अच्छा भते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे गुळ को यथेच्छ वि घा सा-दा न दे भगवान्‌से यह कहा—

"भते ! गुळका यथेच्छ विघासादान मैंने दे दिया और बहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो क च्चा न ! जूठ खाने वालोको इन गुळोंसे सर्तापित कर।"

"अच्छा भते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे जूठ खाने वालोको गुळोंसे सर्तापित किया। किन्ही किन्ही जूठ खाने वालोने कुडोको भी घळोको भी भर लिया, पिटारियो और उछगोको भी भर लिया। तब वे ल ट्ठ क च्चा न ने जूठ खाने वालोको गुळोंसे सर्तापितकर भगवान् से यह कहा—

"भते ! मैंने जूठ खाने वालोको गुळोंसे सर्तापित कर दिया और बहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"कच्चान ! देवो-सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सारे) लोकमें, श्रमण-ब्राह्मण-सहित देव-मनुष्य सयुक्त (सारी) प्रजामें, सिवाय तथागत या तथागतके श्रावकके ऐसे (व्यक्ति)को मै नही देखता जिसके खानेपर यह गुळ अच्छी तरह हजम हो सके। इसलिये कच्चान ! तू इस गुळको तृण-रहित भूमिमें छोळ दे, या प्राणी-रहित जलमें डालदे।"

"अच्छा भते !" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न ने उस गुळको प्राणि-रहित जलमें डाल दिया। तब पानीमें डाला वह गुळ चिटचिटाता था, धुँधुआता था, बहुत धुँधुआता था, जैसेकि दिनकी धूपमें छोळा थाल पानीमे डालनेमें चिर्टचिटाता है, धुँधुआता है, बहुत धुँधुआता है, इसी प्रकार वह गुळ०।

तब वे ल ट्ठ क च्चा न घबराया हुआ रोमाचित हो जहाँ भगवान्‌थे वहाँ आया। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे वे ल ट्ठ क च्चा न को भगवान्‌ने आ नु पू र्वी क था जैसेकि दानकथा०[1] तब वेलट्ठकच्चान विदित धर्म०[2] हो भगवान्‌से यह बोला—

"आश्चर्य भते ! अद्‌भुत भते ! ०[2] यह मै भते ! भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे अजलिवद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।"

---

[1] देखो पृष्ठ ८४।   [2] देखो पृष्ठ ८५।

उठकर चले गये। तब भगवान्‌के चले जानेके थोड़ीही देर बाद उस अश्रद्धालु तरुण महामात्यको पछतावा होने लगा। उदासी छाने लगी— 'मुझे अलाभ है रे! मुझे दुर्लाभ मिला है रे! मुझे सुलाभ नहीं हुआ है रे! जोकि मैंने कुपित असंतुष्ट हो चिढ़ानेकी इच्छासे भिक्षुओंके पात्रोंको भर दिया—खाओ! या ले जाओ!—क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?

तब वह अश्रद्धालु तरुण महामात्य जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर जहाँ भगवान् थे एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस महामात्यने भगवान्‌से यह कहा—

'भन्ते! भगवान्‌के चले जानेके थोड़ीही देर बाद मुझे पछतावा होने लगा, क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य?'

'आवुस! जोकि तूने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको निमंत्रित किया, इससे तूने बहुत पुण्य उपार्जित किया। जोकि तेरे यहाँ एक एक भिक्षुने एक एक दाना ग्रहण किया, इस बात से तूने बहुत पुण्य कमाया। स्वर्गका आराधन किया।'

तब वह महामात्य— लाभ है मुझे, सुलाभ हुआ मुझे, मैंने बहुत पुण्य कमाया, स्वर्ग का आराधन किया— यह सोच हर्षित-उदग्र हो आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

'भिक्षुओ! सचमुच भिक्षु दूसरेके यहाँ निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य खिचड़ीको ग्रहण करते हैं?'

(हाँ) सचमुच भगवान्!

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

'कैसे भिक्षुओ! वे निकम्मे आदमी दूसरी जगह निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते हैं? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ...।'

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! दूसरी जगह निमंत्रित हो दूसरेके भोज्य यवागूको नहीं ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे धर्मानुसार (दंड) देना चाहिये।' 108

६—राजगृह

(५) बेलट्ठ कात्यायनका गुड़का व्यापार

तब भगवान् अन्धकविन्दमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु संघके साथ जिधर राजगृह है उधर चारिकाके लिये चले। उस समय बेलट्ठ कच्चान (=कात्यायन) सभी गुड़के घड़ोंसे भरी पाँचसौ गाड़ियोंके साथ राजगृहसे अन्धकविन्द जाने वाले रास्तेमें जा रहा था। भगवान्‌ने दूरसे ही बेलट्ठ कच्चानको आते देखा। देखकर मार्गसे हट एक वृक्षके नीचे (भगवान्) बैठ गये। तब बेलट्ठ कच्चान जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े बेलट्ठ कच्चानने भगवान्‌से यह कहा—

'भन्ते! मैं एक एक भिक्षुको एक एक गुड़का घड़ा देना चाहता हूँ।'

'तो कच्चान! तू एक ही गुड़के घड़ेको ला।'

'अच्छा भन्ते!' (कह) बेलट्ठ कच्चान एक ही गुड़के घड़ेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से बोला—

'भन्ते! मैं गुड़के घड़ेको लाया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये?'

'तो कच्चान! तू भिक्षुओंको गुड़ दे।'

"गृहपतियो! दुराचार, दु:शील (=दुराचारी)के ये पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पाँच ? गृहपतियो! दु:शील, दुराचारी (मनुष्य) आलस्यके कारण अपनी भोग सम्पत्तिको बहुत हानि करता है, दु:शीलताका तथा दुराचारका यह पहला दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! और फिर दु:शील, दुराचारीकी बदनामी होती है। दु:शीलता तथा दुराचारका यह दूसरा दुष्परिणाम है।

०और गृहपतियो! दु:शील, दुराचारी जिस किसी सभामे जाता है—चाहे वह क्षत्रियोकी सभा हो, चाहे ब्राह्मणोकी सभा हो, चाहे वैश्योकी सभा हो, चाहे श्रमणोकी सभा हो—उसमे अविशारद हो झेंपा हुआ जाता है। दु:शील, दुराचारका यह तीसरा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! और फिर दुराचारी अत्यन्त मूढताको प्राप्त हो मरता है। दु:शील दुराचारीका यह चौथा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! दु:शील, दुराचारी शरीर छोळनेपर, मरनेपर नरकमें=दुर्गतिमें =निरयमे उत्पन्न होता है। दु:शील दुराचारीका यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। दु:शील=दुराचारके ये पाँच दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो! सदाचारीके ये पाँच सुपरिणाम है। कौनसे पाँच ?

"गृहपतियो! सदाचारी (=सदाचार-युक्त आदमी) हिम्मती होनेके कारण बहुत सी धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। सदाचारी (=सदाचार युक्तका) यह पहला सुपरिणाम है।

"और फिर, गृहपतियो! सदाचारी सदाचारयुक्तकी नेकनामी होती है। सदाचारी सदाचार-युक्तका यह दूसरा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो! सदाचारी सदाचार-युक्त जिस जिस सभामें जाता है—चाहे क्षत्रियोकी सभा हो, चाहे ब्राह्मणोकी सभा हो, चाहे वैश्योकी सभा हो, चाहे श्रमणोकी सभा हो—उस सभामें वह विशारद हो नि:सकोच जाता है। सदाचारी=सदाचार-युक्तका यह तीसरा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो! सदाचारी (=सदाचार-युक्त) मनुष्य बिना मूढताको प्राप्त हुए मरता है। सदाचारीके सदाचारका यह चौथा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो! सदाचारी=सदाचार-युक्त शरीर छोळनेपर, मरनेपर सुगति=स्वर्ग-लोकमें उत्पन्न होता है। सदाचारीके सदाचारका यह पाँचवाँ सुपरिणाम है। गृहपतियो! सदाचारीके सदाचारके यह पाँच सुपरिणाम है।"

तब भगवान्‌ने बहुत रात तक उपासकोको धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित कर उद्योजित किया—

"गृहपतियो! रात बीत गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) पाटलिग्राम-वासी उपासक आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोके चले जानेके थोळीही देर बाद भगवान् शून्यआगारमे चले गये।

उस समय सु नी ध (=सुनीथ) और व र्ष का र म ग ध के महामात्य पा ट लि ग्रा म में वज्जियोको रोकनेके लिये नगर बसाते थे। । भगवान्‌ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आनन्द! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोके रोकनेके लिये नगर बसा रहे है।"

"आनन्द! जैसे त्रयस्त्रिंशके देवताओंके साथ मन्त्रणा करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्ष-

(६) रोगीको गुळ और नीरोगको गुळका रस

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय राजगृहमें गुळ बहुत था। भिक्षु हिचकिचा रहे थे कि भगवान्ने गुळकी अनुमति रोगीके लिये दी है या नीरोगके लिये और गुळको न खाते थे। भगवान्से यह बात कही।

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगीको गुळकी और नीरोगीको गुळके रसकी।' 109

७—पाटलिग्राम

(७) पाटलिग्राममें नगर-निर्माण

तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महान् भिक्षु-संघके साथ जिधर पाटलिग्राम है उधर चारिकाके लिये चल दिये। तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ पाटलिग्राम है वहाँ पहुँचे।

पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

भन्ते! भगवान् हमारे आवसथागार[1] (अतिथिशाला)को स्वीकार करें।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ आवसथागार था वहाँ गये। जाकर चारों ओर बिछौना बिछे आवसथागारको बिछवाकर आसनोंको लगवाकर, पानीकी चाटियोंको रखवाकर तथा तेल-प्रदीप जलवा जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुए पाटली-ग्रामके उपासकोंने भगवान्से यह कहा—

(भन्ते! आवसथागारमें सब बिछौने बिछ गये हैं आसन लग गये हैं पानीकी मटकियाँ रख दी गई हैं तेल-प्रदीप जल गये हैं। भन्ते! भगवान् अब जिसका समय समझें) तब भगवान् पहनकर पात्र-चीवर ले भिक्षुसंघके साथ जहाँ आवसथागार था वहाँ गये। जाकर पैरोंको धो आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खंभेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षु-संघ भी पाँवोंको धोकर आवसथागारमें प्रविष्ट हो पश्चिमकी दीवारके पास पूर्वाभिमुख बैठे। पाटली ग्रामके उपासक भी पाँवोंको धोकर आवसथागारमें प्रविष्ट हो पूर्वकी दीवारके पास पश्चिमाभिमुख हो जिधर भगवान् थे उधर ही मुँह करके बैठे। तब भगवान्ने पाटली ग्रामके उपासकोंको आमंत्रित किया—

[1] उदान अ० क० ८ : ६ "भगवान् कब पाटलीग्राममें गये? श्रावस्ती में धर्म-सेनापति (सारिपुत्र)का चैत्य बनवा वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास किया। वहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर वहाँसे निकलकर अम्बलट्ठिकामें वास किया। फिर अ-त्वरित-चारिकासे जनपद चारिका करते जहाँ तहाँ एक रात वास करते लोकानुग्रह करते क्रमशः पाटलिग्राम पहुँचे। पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवी राजाओंके आदमी समय समयपर आकर घरके मालिकोंको घरसे निकालकर मास भी आधा मास भी बस जाते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोंने नित्य पीळित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वास-स्थान होगा—(सोचकर) नगरके बीचमें महाशाला बनवाई जिसका नाम था 'आवसथागार'। वह उसी दिन समाप्त हुआ था।"

अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पडित) छोटे जलाशयोको छोळ समुद्र और नदियोको सेतुसे तरते है।

(जबतक) लोग कूला बाँधते रहते है, (तबतक) मेधावी जन पार हो गये रहते है।"

८—कोटिग्राम

तब भगवान् जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् को टि ग्रा म में विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! चारो आर्य-सत्योंके अनुबोध (=बोध)=प्रतिबोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घ-कालसे यह दौळना=ससरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' होरहा है। कौनसे चारो? भिक्षुओ! दु ख आर्य-सत्यके बोध=प्रतिबोध न होनेसे०दु ख-समुदय०। दु ख-निरोध०। दु ख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्०। भिक्षुओ! सो मैंने इस दु ख आर्य-सत्यको अनुबोध=प्रतिबोध किया०, (तो) भव तृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण होगई अब पुनर्जन्म नही है।

"चारो आर्य-सत्योको ठीकसे न देखनेसे दीर्घकालसे आवागमनमे पळा उन उन जातियोमें (जन्मता है)। सो मैंने उनको देख लिया, तृष्णा क्षीण होगई, दु खकी जळ कट गई अब पुनर्जन्म नही है।"

अ म्ब पा ली गणिकाने सुना—भगवान् कोटिग्राममें आ गये। अम्बपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोको जुळवाकर, सुन्दर यानपर चढ, सुन्दर यानोंके साथ वै शा ली से निकली, और जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्से यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका, भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वै शा ली के लि च्छ वि यो ने सुना—'भगवान् वैशालीमें आये है ०'। तब वह लिच्छवी ० सुन्दर यानोपर आरूढ़ हो ० वैशालीसे निकले। उनमे कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्बपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोके धुरोंसे धुरा, चक्कोसे चक्का, जूयेसे जूआ टकराया। उन लिच्छवियोंने अम्बपाली गणिकासे कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यो तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोंके धुरोंसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो! क्योकि मैंने भिक्षुसघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिये निमन्त्रित किया है।"

"जे अम्बपाली! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमारे लिये) दे दे।"

"आर्यपुत्रो! यदि वैशाली देश (=जनपद) भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे! हमें अ म्बि का ने जीत लिया, अरे! हमें अम्बिकाने वचित कर दिया।"

तब वह लिच्छवी जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोको आते देखा। देखकर भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

कार वज्जियोंके रोकनेके लिये नगर बना रहे हैं। यहाँ आनन्द ! मैंने दिव्य अमानुष नेत्रसे देखा—कई हजार देवता यहाँ पाटलि-ग्राममें वास्तु (=घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महा-शक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ महा-शक्ति-शाली राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता वहाँ नीच राजाओं । आनन्द ! जितने भी आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं जितने (भी) वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) हैं। (उनमें) यह पाटलिपुत्र पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोड़ी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=विघ्न) होंगे आग पानी और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य सुनीध और वर्षकार जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्के साथ सम्मोदनकर, एक ओर खड़े हुए भगवान्से बोले—

"भिक्षु-संघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब सुनीध और वर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जानकर, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होंने) भगवान्को समयकी सूचना दी ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र चीवर ले भिक्षुसंघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीध और वर्षकारका आवसथ था वहाँ गये जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीध वर्षकारने बुद्ध-सहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोज्यसे सन्तर्पित-सम्प्रवारित किया। तब सुनीध वर्षकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये मगध-महामात्य सुनीध वर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओंसे (दान) अनु-मोदन किया—

"जिस प्रदेश (में) पंडित पुरुष शीलवान् संयमी।
ब्रह्मचारियोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥
वहाँ जो देवता हैं उन्हें दक्षिणा (दान-)-भाग देनी चाहिये।
वह देवता पूजित हो पूजा करती हैं। मानित हो मानती हैं ॥ २ ॥
तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करती हैं।
देवताओंसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मंगल देखता है ॥ ३ ॥"

तब भगवान् सुनीध और वर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठकर चले गये।

उस समय सुनीध वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगा वह गौतम द्वार होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से गंगानदी पार होगा वह गौतम तीर्थ होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले वह गौतम द्वार हुआ।

भगवान् जहाँ गंगा-नदी है वहाँ गये। उस समय गंगा करारे तक भरी करारेपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे कोई बेड़ा (=उलुम्प) खोजते थे कोई कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैला दे फैलाई बाँहको समेट ले वैसे ही भिक्षुसंघके साथ गंगानदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खड़े हुए। भगवान्ने उन मनुष्योंको देखा कोई कोई नाव खोज रहे थे । तब भगवान्ने इस

अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पडित) छोटे जलाशयोको छोळ समुद्र और नदियोको सेतुमे तरते है ।
(जवतक) लोग कूला वाँधते रहते है, (तवतक) मेधावी जन पार हो गये रहते है ।"

८—कोटिग्राम

तव भगवान् जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये । वहाँ भगवान् को टि ग्रा म मे विहार करते थे । भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! चारो आर्य-सत्योके अनुवोध (=वोध)=प्रतिवोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घ-कालसे यह दौळना=ससरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' होरहा है। कौनसे चारो ? भिक्षुओ ! दु ख आर्य-सत्यके वोध=प्रतिवोध न होनेसे०दु ख-समुदय० । दु ख-निरोध० । दु ख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्० । भिक्षुओ ! सो मैने इस दु ख आर्य-सत्यको अनुवोध=प्रतिवोध किया०, (तो) भव तृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण होगई अव पुनर्जन्म नही है ।

"चारो आर्य-सत्योको ठीकसे न देखनेसे दीर्घकालसे आवागमनमें पळा उन उन जातियोमें (जन्मता है)। सो मैंने उनको देख लिया, तृष्णा क्षीण होगई, दु खकी जळ कट गई अव पुनर्जन्म नही है ।"

अ म्ब पा ली गणिकाने सुना—भगवान् कोटिग्राममें आ गये । अम्वपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोको जुळवाकर, सुन्दर यानपर चढ, सुन्दर यानोके साथ वै शा ली से निकली, और जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ चली । जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गई। एक ओर वैठी अम्वपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित किया । तव अम्वपाली गणिका भगवान्से यह वोली—

"भन्ते ! भिक्षु सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तव अम्वपाली गणिका, भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई ।

वै शा ली के लि च्छ वि यो ने सुना—'भगवान् वैशालीमें आये है ०'। तव वह लिच्छवी ० सुन्दर यानोपर आरूढ हो ० वैशालीसे निकले । उनमें कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलकारवाले थे । कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे । ० लोहित (=लाल) ० । ० अवदात (=सफेद) ० । अम्वपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोके धुरोसे धुरा, चक्कोंसे चक्का, जूयेसे जूआ टकराया । उन लिच्छवियोने अम्वपाली गणिकासे कहा—

"जे ! अम्वपाली ! क्यो तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोके धुरोंसे धुरा टकराती है । ०"

"आर्यपुत्रो ! क्योकि मैने भिक्षुसघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिये निमन्त्रित किया है ।"

"जे अम्वपाली ! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमारे लिये) दे दे ।"

"आर्यपुत्रो ! यदि वैशाली देश (=जनपद) भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी ।"

तव उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे ! हमें अ म्वि का ने जीत लिया, अरे ! हमें अम्विकाने वचित कर दिया ।"

तव वह लिच्छवी जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये । भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोको आते देखा । देखकर भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को । अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियो की परिषद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि परिषद्को त्रायस्त्रिंश (देव)-परिषद् समझो (=उप संहरण)।"

तब वह लिच्छवी रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे लिच्छवियोंको भगवान्ने धार्मिक-कथासे समुत्तेजित किया। तब वह लिच्छवी भगवान्से बोले—

"भन्ते! भिक्षु-संघके साथ भगवान् कलका हमारा भोजन स्वीकार करें।"

"लिच्छवियो! कलके लिये तो मैंने अम्बपाली गणिकाका भोजन स्वीकार कर लिया है।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोळीं—

"अरे! हमें अम्बिकाने जीत लिया! अरे! हमें अम्बिकाने वंचित कर लिया।"

तब वह लिच्छवी भगवान्के भाषणको अभिनन्दितकर, अनुमोदितकर, आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघके साथ जहाँ अम्बपाली का परोसनेका स्थान था वहाँ गये। जाकर प्रज्ञप्त (=बिछे) आसनपर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध-सहित भिक्षुसंघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित-सम्प्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर लेनेपर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्से बोली—

"भन्ते! मैं इस आरामको बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको देती हूँ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली को धार्मिक कथासे समुत्तेजित कर, आसनसे उठकर चले गये।

६—*वैशाली*

तब भगवान् कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर जहाँ वैशाली है जहाँ महावन है वहाँ गये। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावन की कूटागार शालामें विहार करते थे।

लिच्छवी भाणवार (समाप्त) ॥ ३ ॥

(८) सिंह सेनापतिकी दीक्षा

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवी संस्थागार (=प्रजातंत्र-सभागृह)में बैठे थे एकत्रित हो बुद्धका गुण बखानते थे धर्मका संघका गुण बखानते थे। उस समय निगंठो (=जैनो)का श्रावक सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था। तब सिंह सेनापतिके चित्तमें हुआ—"निःसंशय वह भगवान् अर्हन् सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे तब तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवि बखान रहे हैं। क्यों न मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्धके दर्शनके लिये चलूँ।

तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ नातपुत्त थे वहाँ गया। जाकर निगंठनातपुत्तसे बोला—

"भंते! मैं श्रमण गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ।"

"सिंह! क्रियावादी होते हुये तू क्या अक्रिया (=अकर्म) वादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा। सिंह! श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है श्रावकोंको अक्रिया-वादका उपदेश करता है।"

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी वह शान्त होगई।

दूसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी। तब सिंह सेनापति जहाँ निगंठ-नातपुत्त थे वहाँ गया कहा।

"क्या तू सिंह ! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा० ।"

दूसरी वार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शात होगई ।

तीसरी वार भी वहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । 'पूछूं या न पूछूं, निगठनाथपुत्त मेरा क्या करेगा ? क्यो न निगठनाथपुत्तको विना पूछे ही, मै उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ?'

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथोके साथ, दिन-ही-दिन (=दो पहर)को भगवान्‌के दर्शनके लिये, वैशालीसे निकला । जितना यान (=रथ)का रास्ता था, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ । सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिने भगवान्‌से यह कहा—

"भंते ! मैने सुना है कि—श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है । अक्रियाके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीकी ओर शिष्योंको ले जाता है । भंते ! जो ऐसा कहता है—'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है० ।' क्या वह भगवान्‌के बारेमे ठीक कहता है ? झूठमे भगवानकी निन्दा तो नही करता ? धर्मानुसार ही धर्मको कहता है ? कोई सह-धार्मिक वादानुवाद तो निंदित नही होता ? भंते ! हम भगवान्‌की निंदा करना नही चाहते ।"

"सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये मुझे कहा जा सकता है—श्रमण गौतम [1]अक्रिया-वादी है० ।"

"सिंह ! क्या कारण है, '०श्रमण गौतम अ क्रि या-वा दी है०' सिंह ! मै कायदुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरितको, तथा अनेक प्रकारके पाप वुराइयोको अ-क्रिया कहता हूँ० ।०

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे०—'श्रमण गौतम क्रिया-वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीमे श्रावकोको ले जाता है० । सिंह ! मै का य सु च रि त (=अ-हिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वा क्-सु च रि त (=सच वोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, वकवाद न करना), म न सु च रि त (=अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कु श ल (=उत्तम) धर्मोको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है, जिस कारणसे० मुझे 'श्रमण गौतम क्रियावादी' है०।०

"०[1] उ च्छे द वा दी० । ०जु गु प्सु० । ०वै न यि क० । ०त प स्वी० । अ प ग र्भ० ।

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—'श्रमण गौतम अ स्स स त (=आश्वसत) है, आश्वासके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीके द्वारा श्रावकोको ले जाता है' । सिंह ! मैं परम आश्वाससे आश्वासित हूँ, आश्वासके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग)से ही श्रावकोको ले जाता हूँ । यह कारण० ।"

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य ! भंते आश्चर्य ! भंते ! ० उपासक मुझे स्वीकार करें ।"

"सिंह ! सोच समझकर करो० । तुम्हारे जैसे सभ्रात मनुष्योका सोच समझकर (निश्चय) करना ही अच्छा है ।"

"भंते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी सतुष्ट हुआ । भंते ! दूसरे तैर्थिक मुझ जैसा शिष्य पाकर, सारी वै शा ली में पताका उळाते—सिंह सेनापति हमारा शिष्य (=श्रा व क)हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते है—सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मै भंते ! दूसरी वार भगवान्‌की

---

[1] अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु, तपस्वी, अप-गर्भकी व्याख्या वेरञ्जसुत्त (अ० नि०) में ।

शरण जाता हूँ धर्म और भिक्षु-संघकी भी ।

'सिंह ! तुम्हारा घर दीर्घकालसे निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है उनके आनेपर 'पिंड न देना (चाहिये) ऐसा मत समझना ।

'भंते ! इससे मैं और भी प्रसन्न-मन संतुष्ट और अभिरत हुआ । । मैंने सुना था भंते ! कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'मुझे ही दान देना चाहिये दूसरोंको दान न देना चाहिये '। भंते ! भगवान् तो मुझे निगंठोंको भी दान देनेको कहते हैं । हम भी भंते ! इसे युक्त समझेंगे । यह भंते ! मैं तीसरी बार भगवानकी शरण जाता हूँ । ।

तब भगवान्ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कथा कही जैसे—दान-कथा शील-कथा स्वर्ग-कथा कामभोगोंके दोष अपकार और क्लेश और निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया । जब भगवान्ने सिंह सेनापतिको अरोग-चित्त मृदु-चित्त अनाच्छादित-चित्त उदग्र-चित्त प्रसन्न-चित्त जाना । तब जो बुद्धोंकी स्वयं उठानेवाली धर्म-देशना है उसे प्रकाशित किया—दुःख समुदय निरोध और मार्ग । जैसे कालिमा रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रंग पकड़ता है । इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आसनपर विरज विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ—

जो कुछ समुदय-धर्म है वह सब निरोध-धर्म है'।

सिंह सेनापति दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म विदित-धर्म=परि-अवगाढ़-धर्म संदेह-रहित वाद-विवाद रहित विशारदता प्राप्त शास्ताके शासनमें स्वतंत्र हो भगवान्से यह बोला—

भंते ! भिक्षु-संघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें ।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तब सिंह सेनापति भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तब सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

'हे आदमी ! जा तू तैयार मांसको देख तो ।

तब सिंह सेनापतिने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी । भगवान् पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहनकर पात्र चीवर ले जहाँ सिंह सेनापतिका घर था वहाँ गये । जाकर भिक्षुसंघके साथ बिछे आसनपर बैठे । उस समय बहुतसे निगंठ (जैनसाधु) वैशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्लाते थे—'आज सिंह सेनापतिने मोटे पशुको मार कर, श्रमण गौतमके लिये भोजन पकाया श्रमण गौतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे किये उस (मांस) को खाता है । ।

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था वहाँ गया । जाकर सिंह सेनापतिके कानमें बोला—

भंते ! जानते हैं बहुतसे निगंठ वैशालीमें एक सड़कसे दूसरी सड़कपर बाँह उठाकर चिल्ला रहे हैं—आज ।

'जाने दो आर्यो (अय्या) ! चिरकालसे यह आयुष्मान् (=निगंठ) बुद्ध धर्म संघकी निंदा चाहने वाले हैं । यह आयुष्मान् भगवान्की असत् तुच्छ मिथ्या अ-भूत निंदा करते नहीं शरमाते । हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान बूझकर प्राण न मारेंगे ।

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित (कर) परिपूर्ण किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, सिंह सेनापति एक ओर

---

[1]देखो उपालि-सुत्त (मज्झिमनिकाय पृष्ठ २२२)।

बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे सदर्शन करा ,आसनसे उठकर चल दिये।

(९) अपने लिये मारे मासको जान बूझकर खाना निषिद्ध

तब भगवान्ने इसी सबधमें इसो प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जान बूझकर (अपने) उद्देश्यसे बने मासको नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (अपने लिये मारे को) देखे, सुने, सदेह-युक्त—इन तीन बातोंसे शुद्ध मछली और मास (के खाने) की।" 110

§५—संघाराममें चीजोंके रखनेके स्थान

(१) दुर्भिक्षके समयके विधान सुभिक्षमें निषिद्ध

उस समय वै शा ली सुभिक्ष थी। सुदर शस्योवाली थी। वहाँ भिक्षा पाना सुलभ था। [1]उछसे भी यापन करना सुकर था। तब भगवान्को एकातमें स्थितहो विचार-मग्न होते समय भगवान्के दिलमे यह ख्याल पैदा हुआ—जो मैंने दुर्भिक्ष=दु शस्यके समय (जबकि) भिक्षा मिलनी मुश्किल है भिक्षुओके लिये—भीतर रक्खे भीतर पकाये[2] और अपने हाथसे पकाये, लेन-देन, वहाँसे लाये, भोजनसे पहिलेका लिया, वनका, पुष्करिणीका—की अनुमति दी है भिक्षु आजभी क्या उनका सेवन करते हैं?' तब भगवान्ने सायकाल एकान्त-चिंतनसे उठ आयुष्मान् आ न द को सबोधन किया—

"आनद! जो मैंने भिक्षुओको दुर्भिक्षमें अनुमति दी—०, क्या आजभी भिक्षु उनका सेवन करते हैं?"

"(हाँ) सेवन करते हैं भन्ते!"

तब भगवान्ने इसी सबध में इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो मैंने दुर्भिक्ष ० में अनुमति दी—भीतर रक्खे ० के सेवन करनकी, उन्हे मैं आजसे निषिद्ध करता हूँ। भिक्षुओ! भीतर रक्खे ० को नही सेवन करना चाहिये। जो सेवन करे उसको दुक्कटका दोप हो। और भिक्षुओ! 'वहाँसे लाये', ० और पुष्करिणीके भोजनको कर लेनेपर ० नही भोजन करना चाहिये। जो भोजन करे उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" III

(२) चीज़ोंके रखनेका स्थान (=कल्प्यभूमि) चुनना

उस समय देहातके लोग बहुतसा नमक, तेल, तडुल और खाद्य (-सामग्री)को गाळियोंमें रख आराममे बाहरके हातेमें शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे रहते थे कि जब बारी मिलेगी तो भोज देगे। और (उस समय) महामेघ उठा हुआ था। तब वह लोग जहाँ आयुष्मान् आ न द थे। वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनदसे बोले—

"भन्ते आनन्द! हम बहुत सा नमक, तेल, तडुल और खाद्य (सामग्री)को गाळियोंमें रख आरामसे बाहरके हातेमें शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे हैं कि जब बारी मिलेगी तो भोज देगे। और (इस समय) महामेघ उठा हुआ है। भन्ते आनन्द! हमें कैसा करना चाहिये?"

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] कण चुनचुनकर खाना। [2] देखो (६§३।९) पृष्ठ २२७।

'तो आनन्द ! संघ आखिर वाले विहारको कप्पिय भूमि[1] होनेका ठहराव करके वहीं रखवावे। संघ जिस विहार या अड्ढयोग (=अटारी) प्रासाद या हर्म्य या गुहा को चाहे (उसे कप्पियभूमि बनावे)। 112

'और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको कप्पियभूमि होनेका ठहराव करे—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—'भन्ते ! संघ मेरी सुने संघ इस नाम वाले विहारको कप्पियभूमि होनेका ठहराव करता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नाम वाले विहारके कप्पियभूमि होनेका ठहराव स्वीकार है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है वह बोले। संघको इस नाम वाले विहारका कप्पियभूमि होना स्वीकार है।

ग. धारणा—'संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

(३) कप्पिय-भूमिमें भोजन नहीं पकाना

उस समय उसी ठहरावकी हुई कप्पियभूमिमें यवागू पकाते थे भात पकाते थे सूप तैयार करते थे मांस कूटते थे काठ फाळ्ते थे। रातके भिनसारको उठकर भगवान्‌ने (उस) ऊँचे शब्द महाशब्द कौवोंके रवके शब्दोंको सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

'आनन्द ! क्या है यह ऊँचा शब्द महाशब्द ?

"भन्ते ! इस समय लोग उसी ठहराव की हुई कप्पियभूमिमें यवागू पका रहे हैं। उसीका भगवान् यह ऊँचा शब्द है।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! ठहरावकी गई कप्पियभूमिमें भोजन नहीं बनाना चाहिये। जो भोजन करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीन कप्पिय-भूमियों की—घरोंपर उठाई, गाय बैठनेकी गृहस्थोंकी। 113

(४) चार प्रकारकी कप्पिय भूमियाँ

उस समय आयुष्मान् यशोज बीमार थे। उनके लिये दवाइयाँ लाई गई थीं। उन्हें भिक्षु बाहर ही रखते थे और चूहे आदि भी उन्हें खा जाते थे चोर भी चुरा ले जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ठहराव की हुई कप्पियभूमिके उपयोगकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार प्रकारकी कप्पियभूमियोंकी—घरोंपर उठाई गाय बैठनेकी गृहस्थोंकी और ठहराव की गई।" 114

सिंह भाणवार समाप्त ॥४॥

६६—गोरस और फल-रसका विधान

(१) मेंडक श्रेष्ठी और उसके परिवारकी दिव्यविभूतियाँ

१—उस समय भद्दिय (=भद्रिका) नगरमें मेंडक (नामक) गृहपति (=वैश्य) रहता

---

[1] सामान रखनेका स्थान भंडार।

था। उसका ऐसा दिव्यवल था—सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा (जब वह) द्वार पर बैठता था तो आकाशसे अनाजकी धारा गिरकर अनाजके घर (=धान्यागार)को भर देती थी। और (उसकी) भार्याका यह दिव्यवल था कि एक ही आ ढ क[1] भर (चावलकी) हाँळी पका और एक वर्तन भर सूप (=दाल) पका दास, काम करनेवाले (सभी) पुरुषोको भोजन परस देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह खतम नही होता था। (उसके) पुत्रका यह दिव्यवल था कि एक ही हज़ार (मुद्रा)की थैलीको लेकर दास और नौकर (सभी) पुरुषोके छ मासके वेतनको देता था और वह जब तक उसके हाथमे रहती खतम न होती थी। (उसकी) पतोहूका यह दिव्यवल था कि एक ही चार द्रो ण[1] भरके एक टोकरेको लेकर दास और नौकर(सभी)पुरुषोके छ मासके भोजनको दे देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह खतम न होता। (उसके) दासका इस प्रकारका दिव्यवल था कि एक हलसे जोतते वक्त सात हराइयाँ (सीताएँ) उत्पन्न होती थीं।

(२) विम्बिसार द्वारा परीक्षा

मगधराज सेनिय वि म्बि सा र ने सुना कि हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमे मे ड क गृहपति रहता है। उसका ऐसा दिव्यवल है ० सात हराइयाँ उत्पन्न होती हैं। तब मगधराज सेनिय विम्बिसारने एक स र्वा र्थ क म हा मा त्य (प्राइवेट सेक्रेटरी)को सवोधित किया—

"भणे ! हमारे राजके भ द्दि य नगरमें मेंडक गृहपति रहता है ०। जाओ भणे ! पता लगाओ तो तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है।"

"अच्छा देव !"—(कह) वह महामात्य मगधराज सेनिय विम्बिसारको उत्तर दे चतुरगिनी सेनाके साथ जिधर भद्दिया नगर है उधरको चला। क्रमश जहाँ भ द्दि या थी और जहाँ मेंडक गृहपति था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मेंडक गृहपतिसे यह बोला—

"गृहपति ! मुझे राजाने आज्ञा दी है कि 'भणे ! हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमें में ड क गृहपति रहता है ० तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है'। गृहपति तुम्हारे दिव्यवलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपति सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा द्वारपर बैठा तो आकाशसे अनाजकी धाराने गिरकर अनाजके घरको भर दिया।

"गृहपति ! तेरे दिव्यवलको देख लिया। तेरी भार्याके दिव्यवलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपतिने भार्याको आज्ञा दी—

"तो तू इस चतुरगिनी सेनाको भोजन परोस।"

तब में ड क गृहपतिकी भार्याने एकही आढक भर (चावलकी) हाँळी और एक वर्तन भर सूप (दाल) पका, चतुरगिनी सेनाको भोजन परस दिया और जब तक वह न उठी तब तक वह खतम न हुआ।

"गृहपति तेरी भार्याके दिव्यवलको देख लिया, (अब) तेरे पुत्रके दिव्यवलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेंडक गृहपतिने पुत्रको आज्ञा दी—

"तो तू चतुरगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे।"

तब मेंडक गृहपतिके पुत्रने एक ही हज़ारके तोळेको लेकर चतुरगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे दिया और वह जब तक उसके हाथमें रहा खतम न हुआ।

---

[1] ४ कुडव=१ प्रस्थ, ४ प्रस्थ=१ आढक, ४ आढक=१ द्रोण, ४ द्रोण=१ माणी, ४ माणी=१ खारी (—अभिधानप्पदीपिका)।

"तो आनन्द ! सब आखिर वाले विहारको कप्प्य भूमि[1] होनेका ठहराव करके वहाँ रखवावे। सब जिस विहार या अड्डयोग (=अटारी) प्रासाद या हर्म्य या गुहा को चाहे (उसे कप्प्यभूमि बनावे)। 112

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति— 'भन्ते ! संघ मेरी सुने यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको कप्प्यभूमि होनेका ठहराव करे—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण— भन्ते ! संघ मेरी सुने संघ इस नाम वाले विहारको कप्प्यभूमि होने का ठहराव करता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नाम वाले विहारके कप्प्यभूमि होनेका ठहराव स्वीकार है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है वह बोले। संघको इस नाम वाले विहारका कप्प्यभूमि होना स्वीकार है।

ग धारणा— 'संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

(३) कप्प्य-भूमिमें भोजन नहीं पकाना

उस समय उसी ठहरावकी हुई कप्प्यभूमिमे यवागू पकाते थे भात पकाते थे सूप तैयार करते थे मांस काटते थे काठ फाळते थे। रातके भिनसारको उठकर भगवान्‌ने (उस) ऊँचे शब्द महाशब्द कौवोंके रवके शब्दोंको सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! क्या है यह ऊँचा शब्द महाशब्द ?"

"भन्ते ! इस समय लोग उसी ठहराव की हुई कप्प्यभूमिमें यवागू पका रहे हैं। उसीका भगवान् यह ऊँचा शब्द है।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! ठहरावकी गई कप्प्यभूमिमें भोजन नहीं बनाना चाहिये। जो भोजन करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीन कप्प्य-भूमियों की—खंभोंपर उठाई, गाय बैठनेकी गृहस्थोंकी। 113

(४) चार प्रकारकी कप्प्य भूमियाँ

उस समय आयुष्मान् यशोज बीमार थे। उनके लिये दवाइयाँ लाई गई थी। उन्हें भिक्षु बाहर ही रखते थे और चूहे आदि भी उन्हें खा डालते थे चोर भी चुरा ले जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ठहराव की हुई कप्प्यभूमिके उपयोगकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार प्रकारकी कप्प्यभूमियोंकी—खंभोंपर उठाई गाय बैठनेकी गृहस्थोंकी और ठहराव-की गई। 114

सिंह भाणवार समाप्त ॥४॥

§६—गोरस और फल-रसका विधान

(१) मेंडक श्रेष्ठी और उसके परिवारकी दिव्यविभूतियाँ

१—उस समय भद्दिय (=भद्रिका) नगरमें मेंडक (नामक) गृहपति (=वैश्य) रहता

---

[1] सामान रखनेका स्थान, भंडार।

श्रेष्ठीको भगवान्ने आनुपूर्विककथा[1] कही ०।० मेंडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है।०। तव दृष्टधर्म० मेंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे कि भन्ते! ०[2] मैं भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे साजलि शरणागत उपासक जाने। भन्ते! भिक्षु-सघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

मेंडक गृहपति भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर प्रद-क्षिणाकर चला गया।

तव मेंडक गृहपतिने उस रातके वीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेंडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तव मेंडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-वधु (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उनको भग-वान्ने आनुपूर्विक[1] कथा कही०। उनको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ०। तव दृष्ट-धर्म० उन्होने भगवान्को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!!० हम भन्ते! भगवान्की शरण जाते है, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे हमे भन्ते! ० उपासक जाने!"

तव मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृह-पतिने भगवान्से कहा—

"जव तक भन्ते! भगवान् भद्दियामें विहार करते है, तव तक मै बुद्ध-सहित भिक्षु-सघकी ध्रुव-भक्त (=सर्वदाके भोजन)से (सेवा करूँगा)।"

तव भगवान् मेंडक गृहपतिको धार्मिक कथा (कह) आसनसे उठकर चल दिये।

तव भ द्दि या में इच्छानुसार विहारकर, मेंडक गृहपतिको विना पूछेही, साढे बारह सौके महान् भिक्षु-सघके साथ, भगवान् जहाँ अ गु त्त रा प[3] था, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। मेंडक गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तव मेंडक गृहपतिने दासो और कमकरोको आज्ञा दी—

"तो भणे! बहुतसा लोन, तेल, मधु, तडुल और खाद्य गाळियोपर लादकर आओ। साढे बारह सौ ग्वाले भी, साढे बारह सौ धेनु (=दूध देनेवाली) गायोको लेकर आवें। जहाँ हम भगवान्को देखेंगे, वहाँ गर्मवारवाले दूधके साथ भोजन करायेंगे।"

तव मेंडक गृहपतिने रास्तेमें एक जगल (=कातार)मे भगवान्को पाया। जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए, मेंडक श्रेष्ठीने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भिक्षु-सघ-सहित भगवान् कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

[3] मुगेर और भागलपुर जिलोंका गगाके उत्तरवाला भाग।

'गृहपति ! तेरे पुत्रका बल देख लिया। (अब) तेरी पतोहूके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।

तब मेंडक गृहपतिने पतोहूको आज्ञा दी।—

"तो तू (इस) चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन (=रसद) दे।

तब मेंडक गृहपतिकी पतोहूने एक ही चार द्रोणके टोकरेको लेकर चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन दे दिया और जब तक न उठी तब तक वह खतम न हुआ।

"गृहपति तेरी पतोहूका दिव्यबल देख लिया। अब तेरे दासके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

'स्वामिन् ! मेरे दासके दिव्यबलको खेतमें देखना चाहिये।

'गृहपति रहने दे ! देख लिया तेरे दासके दिव्यबलको भी।"—(कह) चतुरंगिनी सेनाके साथ फिर राजगृहको लौट गया और जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे सारी बात कह दी।

१०—*भद्दिया*

(२) पाँच गो रसोंका विधान

तब भगवान् वैशाली में इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ जिधर भद्दिया[1] थी उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ भद्दिया थी वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भद्दिया (=भद्रिका)में जातिया(=जातिका)-वनमें विहार करते थे। मेंडक गृहपतिने सुना कि—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम भद्दियामें आए हैं जातिया वनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (=मंगल) कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—'वह भगवान अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध विद्या आचरण-सम्पन्न सुगत लोक-विद् अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) पुरुषोंके दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार) देव-मनुष्योंके उपदेशक (=शास्ता) बुद्ध भगवान् हैं। वह देव-मार-ब्रह्मा सहित इस लोकको श्रमण ब्राह्मणों सहित देव-मनुष्यों सहित-(इस) प्रजा (=जनता)को स्वयं (परम-तत्त्वको) जानकर साक्षात्कार कर बतलाते हैं। वह आदि-कल्याण मध्य कल्याण अवसान(अन्तमें)-कल्याण अर्थ-सहित=व्यंजनसहित धर्मको उपदेशते हैं और केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है।

तब मेंडक गृहपति भद्र (=उत्तम) भद्र यानोंको जुड़वाकर, भद्र यानपर आरूढ़ हो भद्र भद्र यानोंके साथ भगवान्‌के दर्शनके लिये भद्रिका (=भद्दिया)से निकला। बहुतसे तीर्थिकों (=पंथाइयों)ने दूरसे ही मेंडक-गृहपतिको आते हुए देखा। देखकर मेंडक-गृहपतिसे कहा—

'गृहपति ! तू कहाँ जाता है?"

"भन्ते ! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ।

*"क्या गृहपति ! तू क्रियावादी होकर अ-क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है? गृह*पति ! श्रमण गौतम अ-क्रियावादी है अ-क्रियाके लिये धर्म-शिष्योंको उपदेश करता है, उसी (रास्ते)से श्रावकोंको भी ले जाता है।

तब मेंडक गृहपतिको हुआ—

"निःसंशय वह भगवान अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध होंगे जिसलिये कि यह तीर्थिक निन्दा करते हैं।"

(और) जितना रास्ता यानका था उतना यानसे जाकर (फिर) यानसे उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक

[1] मुंगेर (बिहार)।

श्रेष्ठीको भगवान्‌ने आनुपूर्विककथा[1] कही ०।० मेंडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है।०। तब दृष्टधर्म० मेंडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!! जैसे कि भन्ते! ०[2] मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे भगवान् मुझे साजलि शरणागत उपासक जानें। भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

मेंडक गृहपति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रद-क्षिणाकर चला गया।

तब मेंडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेंडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसंघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-वधु (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उनको भग-वान्‌ने आनुपूर्विक[1] कथा कही०। उनको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ०। तब दृष्ट-धर्म० उन्होंने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य! भन्ते!! आश्चर्य! भन्ते!!० हम भन्ते! भगवान्‌की शरण जाते हैं, धर्म और भिक्षु-संघकी भी। आजसे हमें भन्ते!० उपासक जानें!"

तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान् भद्दियामें विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-सहित भिक्षु-संघकी ध्रुव-भक्त (=सर्वदाके भोजन)से (सेवा करूँगा)।"

तब भगवान् मेंडक गृहपतिको धार्मिक कथा (कह) आसनसे उठकर चल दिये।

तब भ द्दि या में इच्छानुसार विहारकर, मेंडक गृहपतिको विना पूछेही, साढे बारह सौके महान् भिक्षु-संघके साथ, भगवान् जहाँ अं गु त्त रा प[3] था, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। मेंडक गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तब मेंडक गृहपतिने दासो और कमकरोको आज्ञा दी—

"तो भणे! बहुतसा लोन, तेल, मधु, तडुल और खाद्य गाळियोपर लादकर आओ। साढ़े बारह सौ ग्वाले भी, साढे बारह सौ धेनु (=दूध देनेवाली) गायोको लेकर आवें। जहाँ हम भगवान्‌को देखेंगे, वहाँ गर्मधारवाले दूधके साथ भोजन करायेंगे।"

तब मेंडक गृहपतिने रास्तेमें एक जगल (=कातार)में भगवान्‌को पाया। जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए, मेंडक श्रेष्ठीने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! भिक्षु-संघ-सहित भगवान् कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

[3] मुगेर और भागलपुर जिलोंका गंगाके उत्तरवाला भाग।

तब मेंडक श्रेष्ठी भगवान्‌की स्वीकृतिको जान भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

मेंडक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्‌को काल सूचित कराया। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले जहाँ मेंडक गृहपतिका परोसना था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-संघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेंडक गृहपतिने साढ़े बारह सौ गोपालोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! एक एक गाय ले एक एक भिक्षुके पास खड़े हो जाओ, गर्मधारवाले दूधसे भोजन करायेंगे।" तब मेंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे संतर्पित किया पूर्ण किया। गर्मधारके दूधसे आनाकानी करते भिक्षु (उसे) ग्रहण न करते थे।

(तब भगवान्‌ने कहा)— 'ग्रहण करो परिभोग करो भिक्षुओ!

मेंडक गृहपति बुद्ध-सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य-भोज्य तथा धार-उष्ण दूधसे अपने हाथसे संतर्पितकर पूर्णकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

'भन्ते! जल-रहित खाद्य-रहित कान्तार (=बीयाबान) मार्ग भी है बिना पाथेयके (उनसे) जाना सुकर नहीं। अच्छा हो भन्ते! भगवान् पाथेयकी अनुज्ञा दें।

तब भगवान् मेंडक श्रेष्ठीको धर्म-उपदेश (कर) आसनसे उठकर चल दिये। भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गोरस—दूध दही तक्र (=छाछ) नवनीत(=मक्खन) और घी (=सर्पिष्) की।" 115

(४) पाथेयका विधान

"भिक्षुओ! (कोई कोई) जल-रहित खाद्य-रहित कान्तार-मार्ग है (जिनसे) बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं। अनुज्ञा देता हूँ भिक्षुओ! तण्डुलार्थी (=तण्डुल चाहनेवाला) तण्डुलका मूँग-चाहनेवाला मूँगका उड़द चाहनेवाला उड़दका नोन चाहनेवाला नोनका गुड़ चाहनेवाला गुड़का तेल चाहनेवाला तेलका घी चाहनेवाला घीका पाथेय ढूँढ़े। 116

(५) सोने चाँदीका निषेध

"भिक्षुओ! (कोई कोई) श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य होते हैं। वह कप्पियकारक (=भिक्षुका गृहस्थ मनेजर)के हाथमें हिरण्य (=सोनेका सिक्का) देते हैं—'इससे आर्यको जो विहित है वह दे देना।

'भिक्षुओ! उससे जो विहित हो उस उपभोग करनेकी अनुज्ञा देता हूँ। किन्तु भिक्षुओ! जातरूप (=सोना)—रजत (=चाँदी)का उपभोग करना या संग्रह करना मैं किसी भी हालतमें नहीं कहता। 117

१२—आपण

क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् जहाँ आपण था वहाँ पहुँचे।

(६) आठ पान और सभी फल-रसोंका विधान भी अनुमति

केणिय जटिलने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम आपणमें आये हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा मङ्गल कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—[1] इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम है।

[1] देखो पृष्ठ ७।

तव केणिय जटिलको हुआ—मैं श्रमण गौतमके लिए क्या लिवा चलूँ। फिर केणिय जटिलको हुआ—'जो कि वह ब्राह्मणोके पूर्वके ऋषि, मत्रोको रचनेवाले (=कर्त्ता), मत्रोका प्रवचन (=वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मत्र-पदको, गीतको, कथितको, समीहितको, आजकल ब्राह्मण अनुगान करते है, अनु-भापण करते है, भापितको ही अनु-भाषण करते है, बाँचेको ही अनु-वाचन करते है,—जैसेकि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अगिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु। (वह) रातको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल—(मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत थे। वह इस प्रकारके पान (पीनेकी चीज़) पीते थे । श्रमण गौतम भी रातको उपरत=विकाल-भोजनसे विरत है। श्रमण गौतम भी इस प्रकारके पान पी सकते हैं।' (यह सोच) वहुतसा पान तैयार करा, बँहगी (=काज)से उठवाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ समोदन किया (और) एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए केणिय जटिलने भगवान्से कहा—

"भगवान् (=आप)! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करें।"

"केणिय! तो भिक्षुओको दो।"

भिक्षु आगा-पीछा करते ग्रहण नही करते थे।

"भिक्षुओ! ग्रहण करो और खाओ।"

तव केणिय जटिल बुद्ध-सहित सघको अपने हाथसे वहुतसे पान द्वारा सतर्पित=सप्रवारित कर भगवान्के हाथ धो पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर वैठ गया । एक ओर वैठे केणिय जटिलको भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित=समादपित=समुत्तेजित=सप्रहर्षित किया।

भगवान्के धर्मोपदेश द्वारा० सप्रहर्षित (=हर्षित) हो केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—

"आप गौतम! भिक्षुसघ सहित कलका भोजन स्वीकार करें।" ऐसा कहनेपर भगवान्ने केणिय जटिलसे यह कहा—"केणिय! भिक्षुसघ बळा है। साढे वारह सौ भिक्षु है, और तुम ब्राह्मणोमें प्रसन्न (=श्रद्धालु) हो।" दूसरी वार भी केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—"क्या हुआ, भो गौतम! जो भिक्षुसघ बळा है, साढे वारह सौ भिक्षु है, और मैं ब्राह्मणोमें प्रसन्न हूँ? आप गौतम भिक्षुसघ सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करें।"

दूसरी वार भी भगवान्ने०। तीसरी वार भी०।०।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तव केणिय जटिल भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ कर चला गया।

तव भगवान्ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें, धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आठ पानो (=पेय वस्तुओ)की—आम्रपान, जम्बूपान, चोच-पान, मोच(=केला)-पान, मधु-पान, अगूरका पान, सालूक (=कोईकी जळ)-पान, और फारुसक (=फाल्सा)-पान। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अनाजके फलके रसको छोळ, सभी फलोके रसकी,० एक ढाकके रसको छोळ सभी पत्तोके रसकी,० एक महुएके फूलके रसको छोळ, सभी फूलोके रसकी। अनुज्ञा देता हूँ, ऊखके रसकी।" 118

तव केणिय जटिलने उस रातके वीतनेपर अपने आश्रममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई—"भो गौतम! (भोजनका) काल है, भोजन तय्यार है।"

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघके साथ विछे आसनपर वैठे। तव केणिय जटिलने बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित =सप्रवारित किया। भगवान्के खाकर हाथ उठा लेनेपर

एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिलके दानका भगवान्ने इन गाथाओंद्वारा (भोजन-दानका) अनुमोदन किया—

"यज्ञोंमें मुख है अग्निहोत्र छन्दोंमें मुख (=मुख्य) है सावित्री। मनुष्योंमें मुख है राजा, नदियोंमें मुख है सागर॥
नक्षत्रोंमें मुख है तारा तपन करनेवालोंमें मुख है सूर्य।
पुण्य चाहनेवाले यज्ञकर्त्ताओंके लिये संघ मुख है॥"

तब भगवान् केणिय जटिलके दानका इन गाथाओं द्वारा अनुमोदनकर आसनसे उठकर चल गये।

१२—कुसीनारा

(७) रोजमल्लका सत्कार

तब आपणमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके भिक्षु-संघ-सहित जहाँ कुसीनारा थी। उधर चारिकाके लिये चल दिये। कुसीनाराके मल्लोंने सुना—साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं। उन्होंने नियम किया—'जो भगवान्की अग-वानीको नहीं आये उसको पाँच सौ दंड।' उस समय रोज नामक मल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ कुसीनारा थी वहाँ पहुँचे। कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्की अगवानी की। रोजमल्ल भी भगवान्की अगवानीकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए रोजमल्लसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) बहुत सुन्दर (=उदार) है जो तूने भगवान्की अग-वानी की।

'भन्ते! आनन्द! मैंने बुद्ध धर्म संघका सम्मान नहीं किया बल्कि भन्ते! आनन्द! जातिके दण्डके भयसे ही मैंने भगवान्की अगवानी की।

तब आयुष्मान आनन्द अ-सन्तुष्ट हुए—"कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है?

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए, आयुष्मान आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते! रोजमल्ल विख्यात-नामक अभिज्ञात-प्रसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्यों की इस धर्ममें श्रद्धा होनी अच्छी है। अच्छा हो भन्ते! भगवान् वैसा करें जिसमें रोजमल्ल इस (बुद्ध) धर्ममें प्रसन्न होवे। तब भगवान् रोजमल्लके प्रति मित्रता-पूर्ण (=मैत्र) चित्त उत्पन्न कर, आसनसे उठ विहारमें प्रविष्ट हुए। रोजमल्ल भगवान्के मैत्र-चित्तसे स्पर्श हो जैसे बछड़ेवाली गायकी भाँति एक विहारसे दूसरे विहार एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता था—

"भन्ते! इस समय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं? हम उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं?

आवुस रोज! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार है। निःशब्द हो धीरे धीरे वहाँ जाकर आलिन्द (=ड्योढ़ी)में प्रवेशकर खाँसकर जंजीरको खटखटाओ भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।"

कसया (जि० गोरखपुर)।

तव रो ज म ल्ल ने जहाँ वह बन्द-द्वार विहार था, वहाँ नि शब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्द-में घुसकर, खाँसकर जजीर खटखटाई। भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। तव रोजमल्ल विहारमें प्रवेशकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोजमल्लको भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1]—० रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सव विनाश होनेवाला है।' तब रोज मल्लने दृष्टधर्म हो० भगवान् से कहा—

" अच्छा हो, भन्ते! अय्या (=आर्य-भिक्षु लोग) मेरा ही चीवर, पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=आसन), ग्लान-प्रत्यय-भैपज्य-परिष्कार (=दवा-पथ्य) ग्रहण करे, औरोका नही।"

"रोज तेरी तरह जिन्होने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्मको देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, अय्या मेरा ही० ग्रहण करे, औरोका नही। तो रोज! तेरा भी ग्रहण करेंगे, और दूसरोका भी।"

उस समय कु सी ना रा में उत्तम भोजोका ताँता लग गया था। तव वारी न मिलनेसे रोज मल्लको यह हुआ—'क्यो न मैं परोसनेको देखूँ, जो वहाँ न हो उसे तैयार कराऊँ।' तव परोसनेको देखते समय रोजमल्लने दो चीज़ोको नही देखा—डाक (=शाक) और खाद्य पीणको। तव रोजमल्ल जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनदसे यह वोला—

"भन्ते! वारी न मिलनेसे मुझे यह हुआ—०। तव परोसनेको देखते समय मैने दो चीजोको नही देखा—०। यदि, भन्ते! आनन्द! मैं डाक और खाद्य पीणको तैयार कराऊँ, तो क्या भगवान् उसे स्वीकार करेगे?"

"तो रोज! भगवान्‌से यह पूछूँगा।"

तव आयुष्मान् आनदने भगवान्‌से यह वात कही।—

"तो आनन्द! (रोज) तैयार करावे।"

"तो रोज! तैयार कराओ।"

तव रोजमल्ल उस रातके वीत जानेपर, वहुत परिमाणमें डाक और खाद्य पीण तैयार करा, भगवान्‌के पास ले गया।—

"भन्ते! भगवान् डाक और खाद्य पीणको स्वीकार करें।"

"तो रोज! भिक्षुओको दे।"

भिक्षु लेनेमें हिचकिचा रहे थे, और न लेते थे।

"भिक्षुओ! ग्रहण करो, और खाओ।"

तव रोजमल्ल वुद्ध (-सहित) भिक्षु-सघको अपने हाथसे वहुतसे डाक और खाद्य पीण द्वारा सत-र्पित=सप्रवारितकर, भगवान्‌के हाथ धो (पात्रसे) हाथ खीच लेनेपर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे रोजमल्लको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सप्रहर्षितकर आसनसे उठ चल दिये।

(८) डाक और पीणकी अनुमति

तव भगवान्‌ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सभी डाको और सभी खाद्य पीण (के खाने)की।" 119

(९) भूत पूर्व हजाम भिक्षुको हजामतका सामान लेना निषिद्ध

तव भगवान् कु सी ना रा में इच्छानुसार विहारकर०, जहाँ आ तु मा थी, वहाँ चारिकाके लिये

[1] देखो पृष्ठ ८४।

एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिलके दानका भगवान्ने इन गाथाओंद्वारा (भोजन-दानका) अनुमोदन किया—

"यज्ञोंमें मुख है अग्निहोत्र, छन्दोंमें मुख (=मुख्य) है सावित्री। मनुष्योंमें मुख है राजा, नदियोंमें मुख है सागर॥
नक्षत्रोंमें मुख है तारा, तपन करनेवालोंमें मुख है सूर्य।
पुण्य चाहनेवाले यज्ञकर्त्ताओंके लिये संघ मुख है॥"

तब भगवान् केणिय जटिलके दानका इन गाथाओं द्वारा अनुमोदनकर आसनसे उठकर चले गये।

[1]१२—कुसीनारा

(७) रोजमल्लका सत्कार

तब आपणमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके भिक्षु-संघ-सहित जहाँ कुसीनारा थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। कुसीनाराके मल्लोंने सुना—साढ़े बारह सौ भिक्षुओंके महासंघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं। उन्होंने नियम किया—'जो भगवान्की अगवानीको नहीं जाये उसको पाँच सौ दंड।' उस समय रोज नामक मल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ कुसीनारा थी वहाँ पहुँचे। कुसीनाराके मल्लोंने भगवान्की अगवानी की। रोजमल्ल भी भगवान्की अगवानीकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए रोजमल्लसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

'आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) बहुत सुन्दर (=उदार) है जो तूने भगवान्की अगवानी की।"

"भन्ते! आनन्द! मैंने बुद्ध धर्म संघका सम्मान नहीं किया, बल्कि भन्ते! आनन्द! जातिके दण्डके भयसे ही मैंने भगवान्की अगवानी की।"

तब आयुष्मान् आनन्द अ-सन्तुष्ट हुए—कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है?

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते! रोजमल्ल विख्यात अभिज्ञात=प्रसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्योंकी इस धर्ममें श्रद्धा होनी अच्छी है। अच्छा हो भन्ते! भगवान् वैसा करें जिसमें रोजमल्ल इस (बुद्ध) धर्ममें प्रसन्न होवे।" तब भगवान् रोजमल्लके प्रति मैत्री-पूर्ण (=मैत्र) चित्त उत्पन्न कर आसनसे उठ विहारमें प्रविष्ट हुए। रोजमल्ल भगवान्के मैत्र चित्तसे लगाये गये बछड़ेवाली गायकी भाँति एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता था—

"भन्ते! इस वक्त वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं? हम उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते हैं?"

"आवुस रोज! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार है। निःशब्द हो धीरे धीरे वहाँ जाकर अलिन्द (=ड्योढ़ी)में प्रवेशकर खाँसकर जंजीर खटखटाओ। भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देंगे।

[1] कसया (जि॰ गोरखपुर)।

तव रो ज म ल्ल ने जहाँ वह वन्द-द्वार विहार था, वहाँ नि शब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्द-में घुसकर, खाँसकर जजीर खटखटाई। भगवान्ने द्वार खोल दिया। तव रोजमल्ल विहारमें प्रवेशकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे हुये रोजमल्लको भगवान्ने आनुपूर्वी कथा०[१]—० रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सव विनाश होनेवाला है।' तव रोज मल्लने दृप्टधर्म हो० भगवान् से कहा—

" अच्छा हो, भन्ते ! अय्या (=आर्य-भिक्षु लोग) मेरा ही चीवर, पिड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=आसन), ग्लान-प्रत्यय-भेपज्य-परिष्कार (=दवा-पथ्य) ग्रहण करें, औरोका नही।"

"रोज तेरी तरह जिन्होने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्मको देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, अय्या मेरा ही० ग्रहण करें, औरोका नही। तो रोज ! तेरा भी ग्रहण करेंगे, और दूसरोका भी।"

उस समय कु सी ना रा में उत्तम भोजोका ताँता लग गया था। तव वारी न मिलनेसे रोज मल्लको यह हुआ—'क्यो न मैं परोसनेको देखूँ, जो वहाँ न हो उसे तैयार कराऊँ।' तव परोसनेको देखते समय रोजमल्लने दो चीज़ोको नही देखा—डाक (=शाक) और खाद्य पीणको। तव रोजमल्ल जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनदसे यह वोला—

"भन्ते ! वारी न मिलनेसे मुझे यह हुआ—०। तव परोसनेको देखते समय मैंने दो चीजोको नही देखा—०। यदि, भन्ते ! आनन्द ! मैं डाक और खाद्य पीणको तैयार कराऊँ, तो क्या भगवान् उसे स्वीकार करेंगे ?"

"तो रोज ! भगवान्से यह पूछूँगा।"

तव आयुष्मान् आनदने भगवान्से यह वात कही।—

"तो आनन्द ! (रोज) तैयार करावे।"

"तो रोज ! तैयार कराओ।"

तव रोजमल्ल उस रातके वीत जानेपर, वहुत परिमाणमें डाक और खाद्य पीण तैयार करा, भगवान्के पास ले गया।—

"भन्ते ! भगवान् डाक और खाद्य पीणको स्वीकार करें।"

"तो रोज ! भिक्षुओको दे।"

भिक्षु लेनेमें हिचकिचा रहे थे, और न लेते थे।

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, और खाओ।"

तव रोजमल्ल वुद्ध (-सहित) भिक्षु-सघको अपने हाथसे वहुतसे डाक और खाद्य पीण द्वारा सतर्पित=सप्रवारितकर, भगवान्के हाथ धो (पात्रसे) हाथ खीच लेनेपर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे रोजमल्लको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सप्रहर्पितकर आसनसे उठ चल दिये।

(८) डाक और पीणकी अनुमति

तव भगवान्ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सभी डाको और सभी खाद्य पीण (के खाने)की।" 119

(९) भूत पूर्व हजाम भिक्षुको हजामतका सामान लेना निपिद्ध

तव भगवान् कु सी ना रा मे इच्छानुसार विहारकर०, जहाँ आ तु मा थी, वहाँ चारिकाके लिये

[१] देखो पृष्ठ ८४।

चल दिये। उस समय आतुमामें बुढ़ापेमें प्रव्रजित हुआ भूत-पूर्व हजाम (=नहापित) एक भिक्षु निवास करता था। उसके दो पुत्र थे (जो) अपनी पढ़िलाई और कर्ममें सुन्दर प्रतिभाशाली दक्ष शिल्पमें परिशुद्ध थे। उस वृद्ध-प्रव्रजित (बुढ़ापेमें प्रव्रजित)ने सुना कि भगवान् आतुमा आ रहे हैं। तब उस वृद्ध प्रव्रजितने दोनों पुत्रोंसे कहा—

"तातो! भगवान् आतुमामें आ रहे हैं। तातो! हजामतका सामान लेकर नाली लोटोंके साथ घर घरमें फेरा लगाओ (और) लोन तेल तंडुल और खाद्य (पदार्थ) संग्रह करो। आनेपर भगवान्‌को यवागू (खिचड़ी) दान देंगे।

अच्छा तात! वृद्ध प्रव्रजितको कह पुत्र हजामतका सामान ले लोन तेल तंडुल खाद्य संग्रह करते घूमने लगे। उन बालकोंको सुन्दर प्रतिमा-संपन्न देखकर जिनको (क्षौर) न कराना था वह भी कराते थे और अधिक देते थे। तब उन बालकोंने बहुत सा लोन भी तेल भी तंडुल भी खाद्य भी संग्रह किया। भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ आतुमा थी वहाँ पहुँचे। वहाँ आ तु मा में भगवान् भु सा गा र में विहार करते थे। तब वह वृद्ध-प्रव्रजित उस रातके बीत जानेपर बहुत सा यवागू तैयार करा भगवान्‌के पास ले गया—"भन्ते! भगवान् मेरी खिचड़ी स्वीकार करें"। । भगवान्‌ने उस वृद्ध-प्रव्रजितसे पूछा— 'कहाँसे भिक्षु! यह खिचड़ी है?

उस वृद्ध प्रव्रजितने भगवान्‌से (सब) बात कह दी। भगवान्‌ने धिक्कारा।

'मोघ-पुरुष (=नालायक)! (यह तेरा कहना) अनुचित=अन्-अनुलोम=अ प्रतिरूप श्रमण कर्तव्यके विरुद्ध अविहित अ-कप्पिय (अ-करणीय) है। कैसे तू मोघ-पुरुष! अविहित (चीज)के (जमा करनेके लिये) कहेगा?

भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'भिक्षुओ! भिक्षुको निषिद्ध (=अ-कप्पिय)के लिये आज्ञा (=समादपन) नहीं देनी चाहिये। जो आज्ञा दे उसको 'दुक्कट (=दुष्कृत)की आपत्ति। और भिक्षुओ! भूत-पूर्व हजामको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे, उसे दुक्कटकी आपत्ति। 120

१४—श्रावस्ती

तब भगवान् आ तु मा में इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रा व स्ती थी वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय श्रावस्तीमें बहुत सा खाद्य फल था। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। "अनुमति देता हूँ सब खाद्य फलोंके लिये। 121

(१०) सांघिक खेत बीज आदिमें नियम

उस समय संघके बीजको व्यक्तिके (=पौद्गलिक) खेतमें रोपते थे पौद्गलिक बीजको संघके खेतमें रोपते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"संघके बीजको यदि पौद्गलिक खेतमें बोया जाय तो (दसवाँ) भाग[1] देकर भोग करना चाहिये। पौद्गलिक बीजको यदि संघके खेतमें बोया जाये तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये। 122

(११) विधान या निषेध न कियेके बारेमें निश्चय

"जो मैंने भिक्षुओ! 'यह नहीं विहित है (कहकर) निषिद्ध नहीं किया यदि वह

[1] "दसवाँ भाग देना यह जम्बुद्वीप (=भारत)में पुराना रवाज (=पौराण-चारित्त) है। इसलिये दस भागमें एक भाग भूमिके मालिकोंको देना चाहिये। (—अट्ठकथा)

निपिद्ध (=अ-कप्पिय=हराम)के अनुलोम हो, और विहित (=कप्पिय=हलाल)का विरोधी, (तो) वह तुम्हे हलाल नही है। भिक्षुओ! जिसे मैने 'यह विहित नही है' (कह कर) निपिद्ध नही किया यदि वह विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, (तो) वह तुम्हे विहित है। भिक्षुओ! जिसे मैने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नही दी, वह यदि अविहितका अ-विरोधी है, और विहितका विरोधी, तो वह तुम्हे विहित नही है। भिक्षुओ! जिसे मैने 'यह विहित है' (कहकर) अनुज्ञा नही दी, वह यदि विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, तो वह तुम्हे विहित है।" 123

(१२) किस कालका लिया भोजन किस काल तक विहित

तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या उतने कालवालेसे याम भर कालवाला विहित है, या नही? उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला विहित है, या नही? उतने कालवालेसे जीवन भर वाला विहित है या नही? याम (=पहर) भर कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला० ? यामभर कालवालेसे जीवन भर वाला० ? सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला० ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उतने कालवालेसे, उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमे विहित है, अपराह्णमे नही। भिक्षुओ! उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमें विहित है, अपराह्ण-में नही। भिक्षुओ! उतने कालवाले (=यावत्कालिक)से जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होने पर पहर भर विहित है, पहर बीत जानेपर नही। भिक्षुओ! सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होनेपर सप्ताह भर विहित है, सप्ताह बीत जानेपर नही विहित है।" 124

भेसज्जक्खन्धक समाप्त ॥६॥

७—कठिन स्कंधक

१—कठिन चीवरके नियम। २—कठिन चीवरका उद्धार। ३—कठिन चीवरके अ-विघ्न।

§१—कठिन चीवरके नियम

१—श्रावस्ती

(१) कठिन चीवरका विधान

१—उस समय भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय पाठेय्यक (पाठा¹के रहनेवाले) तीस भिक्षु जो सभी आरण्यक, भिक्षाचारी और चीथड़ा पहननेवाले तीनही चीवर धारण करनेवाले थे भगवान्‌के दर्शनार्थ श्रावस्ती आते वक्त वर्षोपनायिका (=आषाढ़-पूर्णिमा)के नजदीक होनेसे वर्षोपनायिकाको श्रावस्ती न पहुँच सके और उन्होंने मार्गमें साकेत (=अयोध्या)में वर्षावास किया और (श्रावस्ती आने)की उत्कंठाके साथ वर्षावास किया—भगवान् यहाँसे पासहीमें छ योजनपर विहार करते हैं और हमें भगवान्‌का दर्शन नहीं हो रहा है। तब वह भिक्षु तीनमास बाद वर्षावास समाप्तकर प्रवारणा कर चुकनेपर वर्षा बरसते पानीके जमाव और पानीके कीचड़ होते समय ही भीगे चीवरोंसे जहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकका आराम जेतवन था और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे।

बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि आगन्तुक भिक्षुओंके साथ कुशल समाचार पूछें। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा? यापन करने योग्य तो रहा? एक मत हो प्रेमके साथ विवाद रहित हो अच्छी तरह वर्षावास तो किया? भोजनका कष्ट तो नहीं हुआ?

"भन्ते! हम पाठेय्यक (पाठाके रहनेवाले) तीस भिक्षु भीगे चीवरोंसे रास्ता आये।

तब भगवान्‌ने इसी सम्बन्धमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ वर्षावास कर चुके भिक्षुओंको कठिन² पहिनने की। 1

(२) कठिनवाले भिक्षुके लिये विधान

"कठिनके पहिन चुकनेपर भिक्षुओ! तुम्हें पाँच बातें विहित होंगी—(१) बिना आमन्त्रणके

---

¹कोसल देशके पश्चिम ओर एक राष्ट्र था (—अट्ठकथा)।

²वर्षावासकी समाप्तिपर सारे संघकी सम्मतिसे सम्मान प्रदर्शनके लिये किसी भिक्षुको जो चीवर दिया जाता है उसे "कठिन" चीवर कहते हैं।

विचरना, (२) विना (तीनो चीवरोको) लिये विचरण करना, (३) गणके साथ भोजन (करना), (४) इच्छानुसार चीवर (लेना), (५) और जो वहाँ चीवर मिलते वक्त होगा वह उसका होगा। कठिनके लिये एकत्रित होजानेपर भिक्षुओ! यह पाँच बाते तुम्हे विहित होगी। 2

और भिक्षुओ! कठिनके लिये इस तरह सम्मत्रण (=ठहराव) करना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—'भन्ते! सघ मेरी सुने। यह सघके लिये क ठि न (वनाने)का कपळा प्राप्त हुआ है। यदि सघ उचित समझे तो इस कठिनके कपळेको इस नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये दे'—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—'(१) भन्ते! सघ मेरी सुने। सघको यह क ठि न का कपळा मिला है। सघ इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेके लिये दे रहा है। जिस आयुष्मान्को सघका इस क ठि न के कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये देना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह बोले। (२) दूसरी वार भी०। (३) तीसरी वार भी०।

ग धारणा 'सघने इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेको दे दिया। सघको पसद है इसलिये चप है'—ऐसा मै इसे समझताहूँ।

(३) कठिनका प्रसारण और न प्रसारण

"भिक्षुओ! इस प्रकार क ठि न का प्रसारण होता है। कैसे भिक्षुओ! क ठि न का प्रसारण नही होता? उपछने मात्रसे नही क ठि न का आच्छादन होता। धोने मात्रसे नही०, चीवरके फैलाने मात्र से नही०, छेदन मात्रसे नही०, वधन मात्रसे नही०, लपेटने मात्रसे नही० क डू स (=कुदी) करने मात्रसे नही०, हवाके रखकी ओर करने मात्रसे नही०, परिभड (=आळ) करने मात्रसे नही०, चौपेता करने मात्रमे नही०, कम्वलके मर्दन मात्रमे नही०, चिन्ह कर चुकनेसे ही नही०, (उसके सबधकी)कथा करनेसे ही नही०, कुक्कू (=कुछ समयका) किये होनेपर ही नही०, जमा किये होनेपर नही०, छोळने लायक होनेपर नही, अ क ल्प्य (=अ-विहित) कियेपर नही०, सघाटीसे अलग होनेपर नही०, न उत्तरासगमे अलग होनेपर०, न अन्तरवासकसे अलग होनेपर०, न पाँच या पाँच के अधिकसे अलग होनेपर, उसी दिन कटा होनेसे तथा मडलिकायुक्त होनेसे०, न व्यक्तिका पहना होनेसे अलग०, ठीक तरहमे क ठि न पहना गया हो और यदि उसे सीमासे वाहर स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिनका आच्छादन नही होता। भिक्षुओ! इस प्रकार कठिनका अ-प्रसारण होता है।

"भिक्षुओ! किस प्रकार कठिनका प्रसारण होता है? विना पहने क ठि न का प्रसारण होता है। विना पहने वस्त्रमें०, वस्त्रमें०, रास्तेके चीथळेमें०, दुकानपर पळे पुराने कपळेमें०, न लाछन कियेमें०, जिसके वारेमें वात न चलाई गई हो वैसेमें०, न कुक्कू (=कुछ समयका) कियेमें०, न एकत्रित कियेमें०, न छोळे हुएमें०, न क ल्प्य (=विहित) कियेमें०, सघाटीसे क ठि न आच्छादित होता है, उत्तरासगसे०, अन्तरवासकसे०, पाँचो या पाँचके अतिरिक्तमे उसी दिन कटे तथा मडलिका युक्त कियेसे क ठि न आच्छादित होता है, व्यक्तिके आच्छादित करनेसे क ठि न आच्छादित होता है, कठिन अच्छी तरहसे आच्छादित हो और उसे सीमामें स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिन आच्छादित होता है। भिक्षुओ! इस प्रकार कठिन प्रसारित (=आस्थत) होता है।"

§२—कठिन चीवरका उद्धार (=उत्पत्ति)

(१) कठिनकी उत्पत्ति

'भिक्षुओ ! कैसे कठिन उत्पन्न होता है ? भिक्षुओ ! कठिन की उत्पत्तिमें यह आठ मातृका (=उत्पादिका) हैं प्र क्र म ना न्ति का निष्ठानान्तिका सन्निष्ठानान्तिका नाशनान्तिका श्रवणान्तिका आशावच्छेदिका सीमातिक्रान्तिका उत्पत्तिके साथ।"

(२) सात आदाय

(१) भिक्षुओ ! कठिनके आस्तृत (=प्रसारित) हो जानेपर बने चीवरको ले चल देता है फिर नहीं लौटता। ऐसे भिक्षुको प्र क्र म ना न्ति क (=चला जाना अन्त है जिसका) नामक कठिन का उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर चीवरले चला जाता है किन्तु सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है 'यहीं इस चीवरको बनाऊँ फिर न लौटूँगा। और वह उस चीवरको बनवाता है। ऐसे भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क (=बनना चुकना अन्त है जिसका) नामक कठिन-उद्धार होता है। (३) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर चीवरको ले चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—न इस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूँगा। उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क (=जिसका समाप्त करना बाकी है यह अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (४) चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है और बनवाते वक्त उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुका नाशनान्तिक (=नाश हो जाना ही अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (५) चीवरको लेकर चल देता है (यह सोचकर कि) लौटूँगा। सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर वह सुनता है कि उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ। उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क (=सुनना है अन्त जिसका) कठिन उद्धार होता है। (६) चीवरको लेकर —'फिर लौटूँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर जाकर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा' फिर आऊँगा—(सोचते) बाहर ही कठिनके उद्धारके समयको बिता देता है। उस भिक्षुका सी मा ति क्र न्ति क (=सीमा अतिक्रमण कर दिया गया है जिसमें) कठिन उद्धार होता है (७) चीवरको लेकर—'फिर आऊँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा फिर आऊँगा' (सोचते) कठिन उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके साथ कठिन उद्धार होता है।

आदाय सप्तक समाप्त

(३) सात समादाय सप्तक

(१) भिक्षु ! कठिनके आस्तृत हो जानेपर बने चीवरको ठीकसे ले चल देता है [1]।

समादाय सप्तक समाप्त

(४) छ आदाय

"(१) भिक्षु ! कठिनके आस्तृत हो जानेपर न बने चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—यहीं चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। और वह उस चीवरको

[1] इसकी तरह यहाँ भी सातों पाठ हैं सिर्फ ऊपरके 'ले चल देता है' की जगह 'ठीकसे लेकर चल देता है' पढ़ना चाहिये।

वनवाये उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क नामक कठिन-उद्धार होता है ।०[1]

आदाय षट्क समाप्त

(५) छ समादाय

(१)भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर न वने चीवरहीको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है। सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही चीवर वनवाऊँ और फिर न लौटूँ' और वह उस चीवरको वनवाये। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक नामक कठिन-उद्धार होता है।०[2]।

समादाय षट्क समाप्त

(६) आदाय कठिन-उद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय) चला जाता है और सीमासे वाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यही वनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको वनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'न इस चीवरको वनवाऊँ, न फिर आऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।० चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ और फिर न आऊँ' और वह उस चीवरको वनवाये। वनवाते वक्त ही उसका वह चीवर नष्ट हो जाय। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

२—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय)—फिर नही आऊँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ।' और वह उस चीवरको वनवाता है, उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—'फिर न आऊँगा'—(सोच) चल देता है। सीमाके वाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यहीं वनवाऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—फिर न लौटूँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ'—और वह उस चीवरको वनवाता है। वनवाते समय ही वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

३—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय), विना अधिष्ठान किये चल देता है उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—०उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० और न यही होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० स न्नि ष्ठा नान्ति क कठिन- उद्धार होता है।०और न यही होता है कि फिर आऊँगा,० और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० नाशनान्तिक कठिन-उद्धार होता है।

४—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है सीमासे वाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ और फिर न आऊँ', उस चीवरको वनवाता है, उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क

---

[1] ऊपर आदाय सप्तकमें प्रक्रमणान्तिकको छोळ तथा 'वने चीवर'के स्थानपर 'न बने चीवर'के पाठके साथ दुहराना चाहिये।

[2] आदाय षट्ककी तरह यहाँ भी पाठ है सिर्फ 'आदाय'की जगह 'समादाय' पाठ रखना चाहिये।

§२—कठिन चीवरका उद्धार (=उत्पत्ति)

(१) कठिनकी उत्पत्ति

भिक्षुओ ! कैसे कठिन उत्पन्न होता है ? भिक्षुओ ! कठिन की उत्पत्तिमें यह आठ मातृका (=उत्पादिका) हैं प्रक्रमणान्तिका निष्ठानान्तिका सन्निष्ठानान्तिका नाशनान्तिका श्रवणान्तिका आसावच्छेदिका सीमातिक्रान्तिका उत्पत्तिके साथ ।"

(२) सात आदाय

(१) भिक्षुओ ! कठिनके आस्तृत (=प्रसारित) हो जानेपर बने चीवरको ले चल देता है फिर नहीं लौटता। ऐसे भिक्षुको प्रक्रमणान्तिक (=चला जाना अन्त है जिसका) नामक कठिनका उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर चीवरके चला जाता है किन्तु सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है 'यहीं इस चीवरको बनाऊँ फिर न लौटूँगा। और वह उस चीवरको बनवाता है। ऐसे भिक्षुको निष्ठानान्तिक (=बनवा चुकना अन्त है जिसका) नामक कठिन-उद्धार होता है। (३) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर चीवरको ले चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूँगा। उस भिक्षुको सन्निष्ठानान्तिक (=जिसका समाप्त करना बाकी है यह अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (४) चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है और बनवाते वक्त उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुका नाशनान्तिक (=नाश हो जाना ही अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (५) चीवरको लेकर चल देता है (यह सोचकर कि) लौटूँगा। सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर वह सुनता है कि उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ। उस भिक्षुको श्रवणान्तिक (=सुनना है अन्त जिसका) कठिन उद्धार होता है। (६) चीवरको लेकर—'फिर लौटूँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर जाकर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा' 'फिर आऊँगा'—(सोचते) बाहर ही कठिनके उद्धारके समयको बिता देता है। उस भिक्षुको सीमातिक्रान्तिक (=सीमा अतिक्रमण कर दिया गया है जिसमें) कठिन-उद्धार होता है (७) चीवरको लेकर—'फिर आऊँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा फिर आऊँगा' (सोचते) कठिन उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके साथ कठिन उद्धार होता है।

आदाय सप्तक समाप्त

(३) सात समादाय सप्तक

(१) भिक्षु ! कठिनके आस्तृत हो जानेपर बने चीवरको ठीकसे ले चल देता है[1]।

समादाय सप्तक समाप्त

(४) छ आदाय

(१) भिक्षु ! कठिनके आस्तृत हो जानेपर न बने चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। और वह उस चीवरको

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी सातों पाठ हैं सिर्फ ऊपरके 'ले चल देता है' की जगह 'ठीकसे लेकर चल देता है' कहना चाहिये।

टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क (=आशा टूट जाये जिसमें) कठिन-उद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे 'लौटकर न आऊँगा' (यह सोच) चल देता है। सीमाके वाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार होता है। (२)० 'लौटकर न आऊँगा'० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'लौटकर न आऊँगा'० ना श-ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'लौटकर न आऊँगा'० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे अधिष्ठान विनाही चलदेता है। उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा। उस सीमाके वाहर जा उस चीवराशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।०० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।"

अनाशा द्वादशक समाप्त

(९) आशापूर्वक कठिनोद्धार

१—" (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे वाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह वही उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर नही पाता है० स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होने पर पाता है० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे वाहर जाकर वह सुनता है—उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूकि उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ। और वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बन-वाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० सुनता है० आशा होनेपर पाता है० स न्नि ष्ठा ना न्ति क०। (३)० सुनता है० आशा होने पर पाता है० ना श ना न्ति क०। (४)० सुनता है—उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूकि उस आवास में कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर लौटकर न जाऊँ', और वह उस चीवरकी आशासे सेवन करता है। उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

कठिन उद्धार होता है। ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर वह चीवरको बन वाता है। चीवरके बन जानेपर वह सुनता है—'उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है' उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर 'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चला जाता है और सीमाके बाहर जा चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) बाहर ही कठिन-उद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्र न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) कठिन-उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुको (दूसरे) भिक्षुओंके साथ कठिन-उद्धार होता है।

(७) समादाय कठिन-उद्धार

१—'भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है[1]।

२—"भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है[2]।

३—'भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है[3]।

४—'भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है।

आदाय भाणवार समाप्त

(८) अनाशापूर्वक कठिनोद्धार

१—'भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है और आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है और आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ। उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) और आशा होनेपर नहीं पाता। ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। वह उसी चीवरकी आशाका सेवन करता है (किन्तु) उसकी वह चीवराशा

---

[1] ऊपरके सूत्र (६)१ जैसा ही पाठ है सिर्फ 'आदाय'की जगह 'समादाय' है।

[2] ऊपरके दूसरे सूत्र(६)२ जैसा ही पाठ है सिर्फ आदायका समादाय होजाता है।

[3] ऊपरके तीसरे सूत्र(६)३की तरह 'आदाय'का 'समादाय' बदलकर पाठ है।

ऊपरके चौथे सूत्र(६)४ की तरह पाठ है; सिर्फ 'आदाय'को 'समादाय'में परिवर्तन करदेना चाहिये।

टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क (=आशा टूट जाये जिसमें) कठिन-उद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे 'लौटकर न आऊँगा' (यह सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार होता है। (२)० 'लौटकर न आऊँगा'० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'लौटकर न आऊँगा'० ना श-ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'लौटकर न आऊँगा'० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे अधिष्ठान बिनाही चलदेता है। उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा। उस सीमाके बाहर जा उस चीवराशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।०० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।"

अनाशा द्वादशक समाप्त

(९) आशापूर्वक कठिनोद्धार

१—" (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह वही उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर नही पाता है० स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होने पर पाता है० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जाकर वह सुनता है—उस आवासमें कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूंकि उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ। और वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० सुनता है० आशा होनेपर पाता है० स न्नि ष्ठा ना न्ति क०। (३)० सुनता है० आशा होने पर पाता है० ना श ना न्ति क०। (४)० सुनता है—उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूंकि उस आवास में कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर लौटकर न जाऊँ', और वह उस चीवरकी आशामे सेवन करता है। उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

१— (१) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेसे 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। वह सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नहीं पाता। वह उस चीवरको बनवाता है चीवर बन जानेपर सुनता है—'उस आवासमें कठिन उत्पन्न (? रद्द) है'। उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)[1] 'फिर लौटूँगा' यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करें और फिर न लौटें। आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है। (३) 'फिर लौटूँगा' सीमाके बाहर जाकर उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होनेपर नहीं पाता। चीवर बन जानेपर—'लौटूँगा लौटूँगा' (कहता) बाहर ही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्रा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) 'फिर लौटूँगा' आशा होनेपर पाता है वह उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर लौटूँगा लौटूँगा कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके सा थ कठिनोद्धार होता है।

आशा द्वादशक समाप्त

(१०) करणीय-पूर्वक कठिनोद्धार

१— (१) भिक्षु कठिनके आस्तृत हो जानेपर किसी काम (=करणीय)से चला जाता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है आशा होनेपर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—न इस चीवरको बनवाऊँ, न फिर लौटूँ। उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) करणीयसे चला जाता है। आशा होने पर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। और उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२— (१) भिक्षु कठिनके आस्तृत होनेपर किसी काम (=करणीय)से 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है आशा होनेपर नहीं पाता। स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन उद्धार होता है। (३) करणीयसे फिर न लौटूँगा (कह) चला जाता है आशा होनेपर नहीं पाता ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है सीमाके बाहर जानेपर उस चीवरकी आशा

[1]सन्निष्ठानान्तिककी तरह यहाँ भी समझो।

उत्पन्न होती है। ० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर अधिष्ठानके विनाही किसी काम (=करणीय) से चला जाता है। उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं उस चीवरको बनाऊँ और फिर न लौटूं।' वह उस चीवरको बनाता है। उस भिक्षुका नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० करणीयसे अधिष्ठान बिनाही चला जाता है। उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा, और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाको सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होने-पर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'न उस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूंगा'। उस भिक्षुका स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ०[1] आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरका बनवाऊँ और फिर न लौटूं। ० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) ० सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है ० आशोपच्छेदिक कठिनोद्धार होता है।"

करणीय द्वादशक समाप्त

(११) अप-विनय-पूर्वक कठिनोद्धार

१—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरके (अपने हिस्सेको) अ प वि न य (=हक छोळना) करके दिशामे जानेके लिये चल देता। दिशामें चले जानेपर भिक्षु उससे पूछते हैं—'आवुस! तुमने वर्षावास कहाँ किया, और कहाँ है तुम्हारा चीवरका हिस्सा?' वह ऐसा कहता है—'अमुक आवासमे मैंने वर्षावास किया और वहीं मेरा चीवरका हिस्सा है।' वह ऐसा कहते हैं—'जाओ आवुस! उस चीवरको ले आओ! तुम्हारे लिये हम यहाँ चीवर बनायेंगे।' वह उस आवाससे जाकर भिक्षुओंसे पूछता है—'आवुस! कहा है मेरा चीवरका हिस्सा?' वह ऐसा कहते हैं—आवुस! यह है तुम्हारा चीवरका हिस्सा। (अब) तुम कहाँ जाओगे? वह ऐसा बोलता है—'मै अमुक आवासमें जाऊँगा। वहाँ भिक्षु मेरे लिये चीवर बनायेंगे।' वे ऐसा बोलते है—'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर बना देगे।' उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और (वहाँ) न लौटूं।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) ० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर बना देगे।' उसको ऐसा होता है—०[1] स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर बना देगे।' उसको ऐसा होता है ०[1] ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) ० अ प वि न य करके दिशामे जानेके लिये चल देता। ० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर बना देंगे।' उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और (वहाँ) न लौटूं।' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० वह उस आवासमें जाकर भिक्षुओंसे पूछता है—'आवुसो! कहाँ है, मेरा चीवरका भाग?' वे ऐसा बोलते है—'आवुस! यह है तेरा चीवरका भाग।' वह उस चीवरको लेकर उस आवासमें जाता है। उसे रास्तेमें भिक्षु लोग पूछते हैं—'आवुस कहाँ जाओगे?' वह ऐसा कहता

---

[1] देखो ७§२।६ (३) पृष्ठ २५९।

१— (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेसे 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशामें चल देता है। वह सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नहीं पाता। वह उस चीवरको बनवाता है चीवर बन जानेपर सुनता है— उस आवासमें कठिन उत्पन्न (? रखा) है। उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) [1] 'फिर लौटूँगा' नहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है। (३) 'फिर लौटूँगा' सीमाके बाहर जाकर उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होनेपर नहीं पाता। चीवर बन जानेपर— 'लौटूँगा लौटूँगा' (कहता) बाहर ही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा-ति क्रा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) 'फिर लौटूँगा' आशा होनेपर पाता है वह उस चीवर को बनवाता है। चीवर बन जानेपर लौटूँगा लौटूँगा कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओंके सा थ कठिनोद्धार होता है।

आशा द्वादशक समाप्त

(१०) करणीय-पूर्वक कठिनोद्धार

१— (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर किसी काम (=करणीय)से चला जाता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है आशा होनेपर नहीं पाता है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुका नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) करणीयसे चला जाता है। आशा होने पर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ'। वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। उसको ऐसा होता है—यहीं इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। और उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२— (१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर किसी काम (=करणीय)से 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवर की आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है आशा होनेपर नहीं पाता। उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ'। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है आशा होनेपर नहीं पाता। स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) करणीयसे फिर न लौटूँगा (कह) चला जाता है आशा होनेपर नहीं पाता ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा

[1] सन्निष्ठानान्तिककी तरह यहाँ भी समझो।

१—"भिक्षुओ ! कैसे आवासका विघ्न होता है ? जब भिक्षुओ ! एक भिक्षु उस आवासमे वास करता है या फिर लौटूँगा यह इच्छा रख चल देता है, भिक्षुओ ! इस प्रकार आवासका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! किस प्रकार चीवरका विघ्न होता है ?—भिक्षुओ ! जब भिक्षुका चीवर नही बना होता या बेठीकसे बना होता है, या चीवरकी आशा टूट नही गई रहती, इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! ये दो कठिनके विघ्न है।

२—"भिक्षुओ ! कौनसे दो कठिनके अविघ्न है ?—आवासका अविघ्न और चीवरका अविघ्न। भिक्षुओ ! कैसे आवासका अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षु फिर न लौटूँगा (सोच) इच्छा-रहित हो उस आवासको त्यागकर वमनकर छोळकर चल देता है, इस प्रकार भिक्षुओ ! आवासका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! कैसे चीवरसे अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षुका चीवर बन गया होता है, या नष्ट (=गुम) हो गया होता है, या विनष्ट (=खतम) होगया होता है, या जल गया होता है, या चीवरकी आशा टूट गई होती है,— इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! यह दो कठिन के अविघ्न हैं।"

कठिनक्खन्धकसमाप्त ॥७॥

८—चीवर-स्कंधक

§१—विहित चीवर और उनके भेद

१—राजगृह

(१) जीवक-चरित

उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे।

उस समय वैशाली ऋद्ध=स्फीत (=समृद्धिशाली) बहुत जनों=मनुष्योंसे आकीर्ण सुभिक्षा (=अन्नपान-सम्पन्न) थी। उसमें ७७७७ प्रासाद ७७७७ कूटागार ७७७७ आराम ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं। गणिका अम्बपाली अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक परमरूपवती नाच गीत और वाद्यमें चतुर थी। चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास कार्षापण रातपर जाया करती थी। उससे वैशाली और भी अधिक शोभित थी। तब राजगृहका नैगम किसी कामसे वैशाली गया। राजगृहके नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध ...। राजगृहका नैगम वैशालीमें उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया। लौटकर जहाँ राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार था वहाँ गया। जाकर राजा बिम्बिसारसे बोला—

"देव! वैशाली ऋद्ध=स्फीत ... और ... भी शोभित है। अच्छा हो देव! हम भी गणिका रक्खें?"

"तो भणे! वैसी कुमारी ढूँढो जिसको तुम गणिका रख सको।"

उस समय राजगृहमें सालवती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय ... थी। तब राजगृहके नैगमने सालवती कुमारीको गणिका खड़ी की। सालवती गणिका थोड़े कालमें ही नाच गीत और वाद्यमें चतुर हो गई। चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कार्षापण)से रातभर जाया करती थी। तब वह गणिका अचिरमें ही गर्भवती हो गई। तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोंको नापसंद (=अमनाप) होती है, यदि मुझे कोई जानेगा—सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा। क्यों न मैं बीमार बन जाऊँ। तब सालवती गणिकाने दौवारिक (=दर्बान)को आज्ञा दी—

"भणे! दौवारिक!! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे तो कह देना—बीमार है।"

'अच्छा आर्ये! (=अय्ये!)' उस दौवारिकने सालवती गणिकासे कहा।

सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना। तब सालवती ने दासीको हुकुम दिया—

'हन्द! जे! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर कूड़ेके ऊपर छोड़ आ।"

दासी सालवती गणिकाको 'अच्छा आर्ये!' कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख ले जाकर कूड़ेके ऊपर रख आई।

उस समय अभय राजकुमारने सबेरे ही राजाकी हाजिरीको जाते (समय) कौओंसे घिरे उस बच्चेको देखा। देखकर मनुष्योंसे पूछा—

"भणे! (=रे!) यह कौओंसे घिरा क्या है?" "देव! बच्चा है।"

"भणे जीता है?" "देव जीता है।"

"तो भणे! उस बच्चेको ले जाकर, हमारे अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आओ।"

"अच्छा देव!" उस बच्चेको अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें दासियोंको पोसनेके लिये दे आये। 'जीता है' (जीवति), इसीसे उसका नाम भी जीवक रक्खा। कुमारने पोसा था, इसलिये कौमार-भृत्य नाम हुआ। जीवक कौमार-भृत्य अचिरहीमें विज्ञ हो गया। तब जीवक कौमार-भृत्य जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया, जाकर अभय-राजकुमारसे बोला—

"देव! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है?"

"भणे जीवक! मैं तेरी माको नहीं जानता, और मैं तेरा पिता हूँ, मैंने तुझे पोसा है।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजकुल (=राजदर्बार) मानी होता है, बिना शिल्पके जीविका करना मुश्किल है। क्यों न मैं शिल्प सीखूँ।"

उस समय तक्षशिलामें (एक) दिशा-प्रमुख (=दिगन्त-प्रसिद्ध) वैद्य रहता था। तब जीवक अभय राजकुमारने बिना पूछे, जिधर तक्ष-शिला[1] थी, उधर चला। क्रमशः जहाँ तक्ष-शिला थी, जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया। जाकर उस वैद्यसे बोला—

"आचार्य! मैं शिल्प सीखना चाहता हूँ।"

"तो भणे[2] जीवक! सीखो।"

जीवक कौमार-भृत्य बहुत पढ़ता था, जल्दी धारण कर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढ़ा हुआ इसको भूलता न था। सात वर्ष बीतनेपर जीवक०को यह हुआ—'बहुत पढ़ता हूँ०, पढ़ते हुए सात वर्ष हो गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नहीं मालूम होता, कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?' तब जीवक० जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया, जाकर उस वैद्यसे बोला—

"आचार्य! मैं बहुत पढ़ता हूँ०। कब इस शिल्पका अन्त जान पड़ेगा?"

"तो भणे जीवक! खनती (=खनित्र) लेकर तक्षशिलाके योजन-योजन चारो ओर घूमकर जो अ-भैषज्य (=दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ।"

"अच्छा आचार्य!" जीवक ने कुछभी अ-भैषज्य न देखा, (और) आकर उस वैद्यको कहा—

"आचार्य! तक्ष-शिलाके योजन-योजन चारो ओर मैं घूम आया, (किन्तु) मैंने कुछ भी अ-भैषज्य नहीं देखा।"

"सीख चुके, भणे जीवक! यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है।" (कह) उसने जीवक कौमार-भृत्यको थोळा पाथेय दिया। तब जीवक उस स्वल्प-पाथेय (=राहखर्च)को ले, जिधर राजगृह था, उधर चला। जीवक०का वह स्वल्प पाथेय रास्तेमे साकेत (=अयोध्या)में खतम होगया। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—'अन्न-पान-रहित जंगली रास्ते हैं, बिना पाथेयके जाना सुकर नहीं है, क्यो न मैं पाथेय ढूँढ़ूँ।"

उस समय साकेतमें श्रेष्ठि (=नगर-सेठ)की भार्याको सात वर्षसे शिर-दर्द था। बहुतसे बळे बळे दिगत-विख्यात वैद्य आकर नही अ-रोग कर सके, (और) बहुत हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवकने साकेतमें प्रवेशकर आदमियोसे पूछा—

"भणे! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ?"

---

[1] वर्तमान शाहजीदी ढेरी, जि० रावलपिंडी। [2] छोटेके लिये सम्बोधन।

८—चीवर-स्कंधक

§१—विहित चीवर और उनके भेद

१—राजगृह

(१) जीवक-चरित

उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक-निवापमें विहार करते थे।

उस समय वैशाली ऋद्ध—स्फीत (—समृद्धिशाली) बहुत जनों—मनुष्योंसे आकीर्ण सुभिक्षा (—अन्नपान-सम्पन्न) थी। उसमें ७७७७ प्रासाद ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम ७७७७ पुष्करिणियाँ थीं। गणिका अम्बपाली अभिरूप—दर्शनीय—प्रासादिक परमरूपवती नाच गीत और वाद्यमें चतुर थी। चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास कार्षापण रातपर जाया करती थी। उससे वैशाली और भी अधिक शोभित थी। तब राजगृहका नैगम किसी कामसे वैशाली गया। राजगृहके नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध ।राजगृहका नैगम वैशालीमें उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया। लौटकर जहाँ राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार था वहाँ गया। जाकर राजा० बिम्बिसारसे बोला—

"देव! वैशाली ऋद्ध—स्फीत और भी शोभित है। अच्छा हो देव! हम भी गणिका रक्खें ?

'तो भणे! वैसी कुमारी ढूँढो जिसको तुम गणिका रख सको।

उस समय राजगृहमें सालवती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय थी। तब राजगृहके नैगमने सालवती कुमारीको गणिका खड़ी की। सालवती गणिका थोड़े कालमें ही नाच गीत और वाद्यमें चतुर हो गई। चाहनेवाले मनुष्योंके पास सौ (कार्षापण)से रातभर जाया करती थी। तब वह गणिका अचिरमें ही गर्भवती हो गई। तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोंको नापसंद (—अमनाप) होती है यदि मुझे कोई जानेगा—सालवती गणिका गर्भिणी है तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा। क्यों न मैं बीमार बन जाऊँ। तब सालवती गणिकाने दौवारिक (—दर्वान)को आज्ञा दी —

"भणे! दौवारिक!! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे तो कह देना—बीमार है।

'अच्छा आर्ये! (—अय्य!) उस दौवारिकने सालवती गणिकासे कहा।

"सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना। तब सालवती ने दासी को हुकुम दिया —

"हन्द! जे! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर कूड़ेके ऊपर छोड़ आ।

दासी सालवती गणिकाको "अच्छा आर्ये!" कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख लेजाकर कूड़ेके ऊपर रख आई।

उस समय अभय राजकुमारने सवेरेमें ही राजाकी हाजिरीको जाते (समय) कौओंसे घिरे उस बच्चेको देखा। देखकर मनुष्योंसे पूछा —

भणे! (—रे!) यह कौओंसे घिरा क्या है। "देव! बच्चा है।

"नही, भणे जीवक, (यह) तेरा ही रहे। हमारे ही अन्तःपुर (=हवेलीकी सीमा)में मकान वनवा।"

"अच्छा देव!" कह जीवक ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमे मकान वनवाया।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक विं वि सा र को भगदरका रोग था। धोतियाँ (=साटक) खूनसे सन जाती थी। देवियाँ देखकर परिहास करती थीं—'इस समय देव ऋतुमती है, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेंगे।' इससे राजा मूक होता था। तव राजा विंविसारने अभय-राजकुमारसे कहा—

"भणे अभय! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती है। देवियाँ देखकर परिहास करती है०। तो भणे अभय! ऐसे वैद्यको ढूँढो, जो मेरी चिकित्सा करे।"

"देव! यह हमारा तरुण वैद्य जी व क अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा।"

"तो भणे अभय! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे।"

तव अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक! जा राजाकी चिकित्सा कर।"

"अच्छा देव!" कह जीवक कौमार-भृत्य नखमें दवा ले जहाँ राजा विंविसार था, वहाँ गया। जाकर राजा विंविसारसे वोला—

"देव! रोगको देखें।"

तव जीवकने राजा विंविसारके भगदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया। तव राजा विंविसारने निरोग हो, पाँच सौ स्त्रियोको सव अलकारोंसे अलकृत भूपितकर, (फिर उस आभूषण-को) छोळवा पुज वनवा, जीवक को कहा—

"भणे! जीवक! यह पाँच सौ स्त्रियोका आभूपण तुम्हारा है।"

"यही वस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करें।"

"तो भणे जीवक! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्सा द्वारा) करो, रनवास और वुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघका भी (उपस्थान करो)।"

"अच्छा, देव!" (कह) जीवकने राजा विंविसारको उत्तर दिया।

उस समय रा ज गृ ह के श्रेष्ठीको सात वर्षका शिर दर्द था। वहुतसे वळे वळे दिगन्त-विख्यात (=दिसा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) वहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। वैद्योने उसे (दवा करनेसे) जवाव दे दिया था। किन्हीं वैद्यो ने कहा—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा। किन्ही वैद्योने कहा—सातवें दिन०। तव राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी वहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योने इसे जवाव देदिया है०। यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यो न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको माँगे। तव राजगृहके नैगमने राजा विंविसारके पास जा कहा—

"देव! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी, वहुत काम करने वाला है। लेकिन वैद्योने जवाव दे दिया है०। अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये आज्ञा दें।"

तव राजा विम्वसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक! श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिके विकारको पहिचानकर, श्रेष्ठी गृहपतिसे वोला—

"आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्याको सात वर्षका शिर-दर्द है, आचार्य ! जाओ श्रेष्ठिभार्याकी चिकित्सा करो।

तब जीवक ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपतिका मकान था वहाँ जाकर दौवारिकको हुकुम दिया—

"भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि भार्याको कह—'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'"

"अच्छा आर्य !" कह दौवारिक जाकर श्रेष्ठि-भार्यासे बोला—

'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।

'भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?

"आर्ये ! तरुण (=दहरक) है ?"

"बस भणे दौवारिक ! तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत बड़े बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य ।'

तब वह दौवारिक जहाँ जीवक कौमार-भृत्य था वहाँ गया। जाकर बोला—

"आचार्य ! श्रेष्ठि-भार्या (=सेठानी) ऐसे कहती है—बस भणे दौवारिक ! ।

"जा भणे दौवारिक ! सेठानीको कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—आर्ये ! पहिले कुछ मत दो जब अरोग हो जाना तो जो चाहना सो देना।"

"अच्छा आचार्य !" दौवारिकने श्रेष्ठि-भार्यासे कहा—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है ।

'तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।

"अच्छा अय्या !" जीवको कहा—'आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।

जीवक सेठानीके पास जाकर, रोगको पहिचान सेठानीसे बोला—

"अय्या ! मुझे पसर भर घी चाहिये।

सेठानीने जीवकको पसर भर घी दिलवाया। जीवक ने उस पसर भर घीको नाना दवाइयोंसे पकाकर सेठानीको चारपाईपर उत्तान लेटवाकर नथनोंमें दे दिया। नाकसे दिया वह घी मुखसे निकल पड़ा। सेठानीने पीकदानमें थूककर, दासीको हुकम दिया—

"हन्द जे ! इस घीको बर्तनमें रख ले।

तब जीवक कौमार-भृत्यको हुआ—'आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है जो कि इस फेंकने लायक घीको बर्तनमें रखवाती है। मेरे बहुतसे महार्घ औषध इसमें पड़े हैं, इसके लिये यह क्या देगी ?

तब सेठानीने जीवक के भावको ताळकर जीवक को कहा —

"आचार्य ! तू किसलिये उदास है।"

"मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य ! ।

"आचार्य ! हम गृहस्थिनें (=आगारिका) हैं, हम संयमको जानती हैं। यह घी दासों कम करों के पैरमें मलने और दीपकमें डालनेको अच्छा है। आचार्य तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है उसमें कमी नहीं होगी।

तब जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको एक ही नासले निकाल दिया। सेठानीने अरोग हो जीवकको चार हजार दिया। पुत्रने 'मेरी माताको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। बहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। श्रेष्ठि गृहपतिने 'मेरी भार्याको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार एक दास एक दासी और एक घोड़ेका रथ दिया। तब जीवक उन सोलह हजार दास दासी और अश्वरथको ले जहाँ राजगृह था उधर चला। क्रमशः जहाँ राजगृह जहाँ अभय राजकुमार था वहाँ गया। जाकर अभय राजकुमारसे बोला—

"देव ! यह—सोलह हजार दास दासी और अश्व रथ मेरे प्रथम कामका फल है। इसे देव ! [illegible] (=पोसावनिय)में स्वीकार कर।

"नहीं, भणे जीवक, (यह) तेरा ही रहे। हमारे ही अन्तःपुर (=हवेलीकी सीमा) में मकान बनवा।"

"अच्छा देव!" कह जीवक ने अभय-राजकुमारके अन्तःपुरमें मकान बनवाया।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसारको भगंदरका रोग था। धोतियाँ (=साटक) खूनसे सन जाती थीं। देवियाँ देखकर परिहास करती थीं—'इस समय देव ऋतुमती हैं, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेंगे।' उससे राजा मूक होता था। तब राजा बिम्बिसारने अभय-राजकुमारसे कहा—

"भणे अभय! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनमें सन जाती हैं। देवियाँ देखकर परिहास करती हैं०। तो भणे अभय! ऐसे वैद्यको ढूँढो, जो मेरी चिकित्सा करे।"

"देव! यह हमारा तरुण वैद्य जीवक अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा।"

"तो भणे अभय! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक! जा राजाकी चिकित्सा कर।"

"अच्छा देव!" कह जीवक कौमार-भृत्य नखमें दवा ले जहाँ राजा बिम्बिसार था, वहाँ गया। जाकर राजा बिम्बिसारसे बोला—

"देव! रोगको देखें।"

तब जीवकने राजा बिम्बिसारके भगंदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया। तब राजा बिम्बिसारने निरोग हो, पाँच सौ स्त्रियोंको सब अलंकारोंसे अलंकृत भूषितकर, (फिर उस आभूषण-को) छोळवा पुंज बनवा, जीवक को कहा—

"भणे! जीवक! यह पाँच सौ स्त्रियोंका आभूषण तुम्हारा है।"

"यही बस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करें।"

"तो भणे जीवक! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्सा द्वारा) करो, रनवास और बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघका भी (उपस्थान करो)।"

"अच्छा, देव!" (कह) जीवकने राजा बिम्बिसारको उत्तर दिया।

उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको सात वर्षका शिर दर्द था। बहुतसे बळे बळे दिगन्त-विख्यात (=दिसा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) बहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। वैद्योंने उसे (दवा करनेसे) जवाब दे दिया था। किन्हीं वैद्यों ने कहा—पाँचवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा। किन्हीं वैद्योंने कहा—सातवें दिन०। तब राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी बहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योंने इसे जवाब देदिया है०। यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यों न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको माँगें। तब राजगृहके नैगमने राजा बिम्बिसारके पास जा कहा—

'देव! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी, बहुत काम करने वाला है। लेकिन वैद्योंने जवाब दे दिया है०। अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये आज्ञा दें।"

तब राजा बिम्बसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक! श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिके विकारको पहिचानकर, श्रेष्ठी गृहपतिसे बोला—

'यदि मैं गृहपति ! तुझे निरोग कर दूँ तो मुझे क्या दोगे ?"

आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो और मैं तुम्हारा दास।

'क्यों गृहपति ! तुम एक करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?

'आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ।

'क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?

आचार्य ! सकता हूँ।

'क्या उत्तान सात मास लेटे रह सकते हो ? "आचार्य ! सकता हूँ।

तब जीवकने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाईपर लिटाकर चारपाईसे बाँधकर शिरके चमळेको फाळकर खोपळी खोल दो जन्तु निकाल लोगोको दिखलाये—

देखो यह दो जन्तु है—एक बळा है एक छोटा। जो वह आचार्य यह कहते थे—पाँचवे दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा उन्होने इस बळे जन्तुको देखा था पाँच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपतिकी गुद्दी चाट लेता गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता। उन आचार्योंने ठीक देखा था। जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा उन्होंने इस छोटे जन्तुको देखा था ।

खोपळी (=सिब्बनी) जोळकर, शिरके चमळेको सीकर लेप कर दिया। तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

"आचार्य ! मैं एक करवटसे सात मास नही लेट सकता।

'गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था—० सकता हूँ।

'आचार्य ! यदि मैंने कहा था तो मर भले ही जाऊँ किन्तु मैं एक करवटसे सात मास लेटा नही रह सकता।

'तो गृहपति ! दूसरी करवट सात मास लेटो।

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

'आचार्य ! मैं दूसरी करवटसे सातमास नही लेट सकता। ।

'तो गृहपति ! उत्तान सात मास लेटो।

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर कहा—

'आचार्य ! मैं उत्तान सात मास नही लेट सकता।"

'गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था— सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैंने कहा था तो मर भले ही जाऊँ किन्तु मैं उत्तान सात मास लेटा नही रह सकता।

'गृहपति ! यदि मैंने यह न कहा होता तो इतना भी तू न लेटता। मैं तो जानता था तीन सप्ताहोंमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा। उठो गृहपति ! निरोग हो गये। जानते हो मुझे क्या देना है ?

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मैं तुम्हारा दास।

'बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो और न तुम मेरे दास। राजाको सौहजार देवो और सौहजार मुझे।

तब गृहपतिने निरोग हो सौ हजार राजाको दिया और सौ हजार जीवक कौमार-भृत्यको।

उस समय वाराणसीके श्रेष्ठी (=नगर-सेठ)के पुत्रको मक्खचिका (=शिरके बल घुमरी खाना) खेलने अँतळीमें गाँठ पळ जानेका रोग (होगया) था जिससे पी हुई खिचळी (=यागु-यवागू) भी अच्छी तरह नही पचती थी खाया भात भी अच्छी तरह न पचता था। पेशाब पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश रुक्ष-दुर्वर्ण पीला धमनी (=धमनि-सन्थत-गात्त) भर रह गया

था। तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ—'मेरे पुत्रको वैसा रोग है, जिससे जाउर भी०। क्यो न मै राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको मांगूं।' तब बनारसके श्रेष्ठीने राजगृह जाकर राजा बिंबिसारसे यह कहा—

"देव! मेरे पुत्रको वैसा रोग है०। अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्य को आज्ञा दें।"

तब राजा बिंबिसारने जीवक को आज्ञा दी—

"भणे जीवक! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह बनारस जाकर, जहाँ बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहाँ गया। जाकर श्रेष्ठी-पुत्रके विकारको पहिचान, लोगोको हटाकर, कनात घेरवा, खभोको बँधवा, भार्या को सामने कर, पेटके चमळेको फाळ, आँतकी गाँठको निकाल, भार्याको दिखलाया—

"देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीना भी अच्छी तरह नही पचता था०।"

गाँठको सुलझाकर अँतळियोको (भीतर) डालकर, पेटके चमळेको सीकर, लेप लगा दिया। बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोळी ही देरमें निरोग हो गया। बनारसके श्रेष्ठीने 'मेरा पुत्र निरोग कर दिया' (सोच) जीवक कौमार-भृत्यको सोलह हज़ार दिया। तब जीवक उन सोलह हज़ारको ले फिर राजगृह लौट गया।

उस समय राजा प्रद्योतको पाडु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बळे बळे दिगत-विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके, बहुतसा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारके पास दूत भेजा—

"मुझे देव! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यकी आज्ञा दें, कि वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब राजा बिंबिसारने जीवक को हुकुम दिया—

"जाओ भणे जीवक! उज्जैन (=उज्जेनी) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह जीवक उज्जैन जाकर, जहाँ राजा प्रद्योत (=पज्जोत) था, वहाँ गया। जाकर राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर बोला—

"देव! घी पकाता हूँ, उसे देव पीयें।"

"भणे जीवक! बस, घीके बिना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घीमे मुझे घृणा=प्रतिकूलता है।"

तब जीवक को यह हुआ—'इस राजाका रोग ऐसा है, कि घीके बिना आराम नही किया जा सकता, क्यो न मै घीको कषाय-वर्ण, कषाय-गध, कषाय-रस पकाऊँ।' तब जीवक ने नाना औषधोंमे कषाय-वर्ण, कषाय-गध, कषाय-रस घी पकाया। तब जीवक को यह हुआ—'राजाको घी पीकर पचते वक्त उबान होता जान पळेगा। यह राजा चड (क्रोधी) है, मुझे मरवा न डाले। क्यो न मैं पहिलेही ठीक कर रक्खूँ। तब जीवक जाकर राजा प्रद्योतसे बोला—

"देव! हमलोग वैद्य हैं, वैसे वैसे (विशेष) मुहूर्त्तमें मूल उखाळते हैं, औषध सग्रह करते हैं। अच्छा हो, यदि देव वाहन-शालाओ और नगर-द्वारोपर आज्ञा देदें कि जीवक जिस वाहनसे चाहे, उस वाहनसे जावे, जिस द्वारसे चाहे, उस द्वारसे जावे, जिस समय चाहे, उस समय जावे, जिस समय चाहे, उस समय (नगरके) भीतर आवे।"

तब राजा प्रद्योतने वाहनागारो और द्वारोपर आज्ञा देदी—'जिस वाहनसे०।' उस समय राजा प्रद्योतकी भद्रवतिका नामक हथिनी (दिनमे) पचास योजन (चलने) वाली थी। तब जीवक

यदि मै गृहपति ! तुम निरोग कर दूँ तो मुझे क्या दोगे ?"
आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो और मै तुम्हारा दास।
क्यो गृहपति ! तुम एक करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?
आचार्य ! मै एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ।
क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"
आचार्य ! सकता हूँ।
क्या उत्तान सात मास लेटे रह सकते हो ? 'आचार्य ! सकता हूँ।

तब जीवकने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाईपर लिटाकर, चारपाईसे बाँधकर सिरके चमड़ेको फाळकर खोपळी खोल दो जन्तु निकाल लोगोको दिखलाये—

देखो यह दो जन्तु हैं—एक बळा है एक छोटा। जो वह आचार्य यह कहते थे—पाँचव दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा उन्होने इस बळे जन्तुको देखा था पाँच दिनमें यह श्रेष्ठी गृहपतिकी गुद्दी चाट लेता गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता। उन आचार्योंने ठीक देखा था। जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवें दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा उन्होने इस छोटे जन्तुको देखा था।"

खोपळी (=खिप्पनी) जोळकर सिरके चमळेको सीकर लेप कर दिया। तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

'आचार्य ! मै एक करवटसे सात मास नही लेट सकता।

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यो कहा था—० सकता हूँ।

"आचार्य ! यदि मैने कहा था तो मर भले ही जाऊँ किन्तु मै एक करवटसे सात मास लेटा नही रह सकता।

"तो गृहपति ! दूसरी करवट सात मास लेटो।

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

'आचार्य ! मै दूसरी करवटसे सातमास नही लेट सकता। ।

'तो गृहपति ! उत्तान सात मास लेटो।

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर कहा—

'आचार्य ! मै उत्तान सात मास नही लेट सकता।

'गृहपति ! तुमने मुझे क्यो कहा था— सकता हूँ।

"आचार्य ! यदि मैने कहा था तो मर भले ही जाऊँ, किन्तु मै उत्तान सात मास लेटा नही रह सकता।"

"गृहपति ! यदि मैने यह न कहा होता तो इतना भी तू न लेटता। मै तो जानता था तीन सप्ताहोमें श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा। उठो गृहपति ! निरोग हो गये। जानते हो मुझे क्या देना है ?

'आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मै तुम्हारा दास।

'बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो और न तुम मेरे दास। राजाको सौहजार देदो और सौहजार मुझे।

तब गृहपतिने निरोग हो सौ हजार राजाको दिया और सौ हजार जीवक कौमार-भृत्यको।

उस समय बनारसके श्रेष्ठी (=नगर-सेठ)के पुत्रको मक्खचिका (=सिरके बल घुमरी काटना) खेलते अँतळीमें गाँठ पळ जानेका रोग (होगया) था जिससे पी हुई खिचळी (=यागु यवागू) भी अच्छी तरह नही पचती थी खाया भात भी अच्छी तरह न पचता था। पेशाब पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश रूक्ष=दुर्बल पीला ठठरी (धमनि-सन्थत-गात) भर रह गया

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाब लेना चाहते हैं।"

"तो भन्ते! आनन्द! भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करे)।"

तब आयुष्मान आनन्द भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक को बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नहीं, कि मैं भगवान्‌को मामूली जुलाब दूँ।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोंमें भावितकर, जाकर भगवान्‌को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें, यह भगवान्‌को दस बार जुलाब लगायेगा। इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूँघें०। इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें०। इस प्रकार भगवान्‌को तीस जुलाब होंगे।"

जीवक भगवान्‌को तीस जुलाबके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्‌को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्‌को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा। जब भगवान् जुलाब हो जानेपर नहायेंगे, तब भगवान्‌को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्‌ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! जीवकको बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक जाकर भगवान्‌से बोला—

"मुझे भन्ते! बळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। भन्ते! स्नान करें सुगत! स्नान करें।"

तब भगवान्‌ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्‌को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्‌को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान्‌का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान्‌का शरीर थोळे समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिवि[1]के दुशाले को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"मैं भन्ते! भगवान्‌से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक! तथागत वरके परे हो गये हैं।"

"भन्ते! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक!"

"भन्ते! भगवान् पांसुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) हैं, और भिक्षु-संघ भी। भन्ते ० मुझे यह शिविका दुशाला जोळा, राजा प्रद्योतने भेजा है। भन्ते! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

---

[1] वर्तमान सीबी (विलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पंजाब)के आस पास-का प्रदेश।

[2] अ क "भगवान्‌के बुद्धत्त्व-प्राप्तिसे बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु)ने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पांसुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

कौमार-भृत्य राजाके पास घी ले गया—"देव ! कषाय पियें।" तब जीवक राजाको घी पिलाकर हस्ति-शालामें जा भद्रवतिका हथिनीपर (सवार हो) नगरसे निकल पळा। तब राजा प्रद्योतको उस पिये घीसे उवान्त हो गया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंसे कहा—

"भणे ! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढो।"

"देव ! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे बाहर गया है।"

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (जिसमें) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक ! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य ! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं।' भणे काक ! यह वैद्य लोग बळे मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौशाम्बी में कलेवा करते देखा। काक दासने जीवकसे कहा—

"आचार्य ! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।"

"ठहरो भणे काक ! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक ! (तुम भी) खाओ।"

"बस आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।'"

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था। तब जीवकने काक से कहा—

"तो भणे काक ! आँवला खाओ और पानी पियो।"

तब काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया और पानी पिया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं (वमन हो) निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यसे बोला—

"आचार्य ! क्या मुझे जीना है ?"

"भणे काक ! डर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी। वह राजा चंड है, मुझे मरवा न डाले इसलिये मैं नहीं लौटूँगा।" (—कह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे जहाँ राजगृह था वहाँको चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा बिंबिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा बिंबिसारसे यह (सब) बात कह डाली।

"भणे जीवक ! अच्छा किया जो नहीं लौटा। वह राजा चंड है, तुझे मरवा भी डालता।"

तब राजा प्रद्योतने निरोग हो जीवक कौमार-भृत्यके पास दूत भेजा—'जीवक आवे, वर (=इनाम) दूँगा।' 'बस आर्य ! देव मेरा उपकार (=अधिकार) याद रक्खें।' उस समय राजा प्रद्योतको बहुत सी हजार दुशालोंके जोळोंमें अग्र-श्रेष्ठ-मुख्य-उत्तम-प्रवर शिवि (देश) के दुशालोंका एक जोळा प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको जीवकके लिये भेजा। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे यह शिविका दुशाला जोळा भेजा है। उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध या राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारके सिवा दूसरा कोई इसके योग्य नहीं है।"

उस समय भगवान्का शरीर दोष-युक्त था। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—

"आनंद ! तथागतका शरीर दोष-युक्त है। तथागत जुलाब (=विरेचन) लेना चाहते हैं।"

तब आयुष्मान् आनंद जहाँ जीवक था वहाँ गये। जाकर ०—

"आवुस जीवक ! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाव लेना चाहते हैं।"

"तो भन्ते ! आनन्द ! भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करे)।"

तव आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक को बोले—

"आवुस जीवक ! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तव जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नही, कि मैं भगवान्‌को मामूली जुलाव दूं।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोसे भावितकर, जाकर भगवान्‌को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते ! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूंघें, यह भगवान्‌को दस वार जुलाव लगायेगा। इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूंघे०। इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूंघें०। इस प्रकार भगवान्‌को तीस जुलाव होगे।"

जी व क भगवान्‌को तीस जुलावके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्‌को तीस जुलाव दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्‌को तीस जुलाव न होगा, एक कम तीस जुलाव होगा। जब भगवान् जुलाव हो जानेपर नहायेंगे, तब भगवान्‌को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्‌ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! जीवकको वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द ! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तव जीवक जाकर भगवान्‌से वोला—

"मुझे भन्ते ! वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। भन्ते ! स्नान करें सुगत ! स्नान करें।"

तव भगवान्‌ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्‌को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्‌को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"जव तक भन्ते ! भगवान्‌का शरीर स्वस्थ नही होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूंगा)।"

भगवान्‌का शरीर थोळे समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिवि[1]के दुशाले को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर वैठा। एक ओर वैठे जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"मैं भन्ते ! भगवान्‌से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक ! तथागत वरके परे हो गये है।"

"भन्ते ! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"वोलो, जीवक !"

"भन्ते ! भगवान् पासुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) हैं, और भिक्षु-सघ भी। भन्ते ० मुझे यह शि वि का दुशाला जोळा, राजा प्र द्यो त ने भेजा है। भन्ते ! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

---

[1] वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पजाव) के आस पासका प्रदेश।

[2] अ क "भगवान्‌के बुद्धत्व-प्राप्तिसे बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु)ने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पासुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

कौमार-भृत्य राजाके पास जा ऐसे बोला—देव! कषाय पियें। तब जीवक राजाको घी पिलाकर हस्तिशालामें जा भद्रवती हथिनीपर (सवार हो) नगरसे निकल पड़ा। तब राजा प्रद्योतको उस पिये घीका उद्गार हो गया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंसे कहा—

"भणे! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढ़ो।"

"देव! भद्रवती हथिनीपर नगरसे बाहर गया है।"

उस समय अमनुष्य-उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (नित्य) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—आचार्य! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं। भणे काक! यह वैद्य लोग बड़े मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौशाम्बीमें कलेवा करते देखा। काक दासने जीवकसे कहा—

"आचार्य! राजा तुम्हें लौटाते हैं।"

"ठहरो भणे काक! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक! (तुम भी) खाओ।"

"बस आचार्य! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।'"

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर पानी पीता था। तब जीवकने काक दाससे कहा—

"तो भणे काक! आँवला खाओ और पानी पियो।"

तब काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया और पानी पिया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं (खड़े हो) निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यसे बोला—

"आचार्य! क्या मुझे जीना है?"

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाब लेना चाहते हैं।"

"तो भन्ते! आनन्द! भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करें)।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक को बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नहीं, कि मैं भगवान्‌को मामूली जुलाव दूँ।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोंसे भावितकर, जाकर भगवान्‌को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें, यह भगवान्‌को दस बार जुलाब लगायेगा। इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूँघें०। इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें०। इस प्रकार भगवान्‌को तीस जुलाब होंगे।"

जीवक भगवान्‌को तीस जुलाबके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको बळे दर्वाजेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्‌को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्‌को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा। जब भगवान् जुलाब हो जानेपर नहायेंगे, तब भगवान्‌को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्‌ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! जीवकको बळे दर्वाजेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक जाकर भगवान्‌से बोला—

"मुझे भन्ते! बळे दर्वाजेसे निकलनेपर०। भन्ते! स्नान करें सुगत! स्नान करें।"

तब भगवान्‌ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्‌को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्‌को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान्‌का शरीर स्वस्थ नहीं होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान्‌का शरीर थोळे समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिवि[1]के दुशाले को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"मैं भन्ते! भगवान्‌से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक! तथागत वरके परे हो गये हैं।"

"भन्ते! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक!"

"भन्ते! भगवान् पासुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) हैं, और भिक्षु-संघ भी। भन्ते ० मुझे यह शिविका दुशाला जोळा, राजा प्रद्योतने भेजा है। भन्ते! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

---

[1] वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पंजाब)के आस पासका प्रदेश।

[2] अ क "भगवान्‌के बुद्धत्व-प्राप्तिसे बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु)ने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पासुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

कौमार भृत्य राजाके पास घी ले गया—देव ! कषाय पियें। तब जीवक राजाको घी पिलाकर हथि-सारमें जा भद्रवतिका हथिनीपर (सवार हो) नगरसे निकल पळा। तब राजा प्रद्योतको उस पिये घीसे उबान्त हो गया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंसे कहा—

'भणे ! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है जीवक वैद्यको ढूँढो।

देव ! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे बाहर गया है।

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (दिनमें) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक ! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य ! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं।' भणे काक ! यह वैद्य लोग बळे मायावी होते हैं, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौशाम्बीमें कलेवा करते देखा। दास काकने जीवक से कहा—

'आचार्य ! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।

"ठहरो भणे काक ! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक ! (तुम भी) खाओ।

"बस आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था। तब जीवक ने काक से कहा—

"तो भणे काक ! आँवला खाओ और पानी पियो।

तब काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया और पानी पिया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं (वमन हो) निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यसे बोला—

"आचार्य ! क्या मुझे जीना है ?

'भणे काक ! डर मत तू भी निरोग होगा राजा भी। वह राजा चंड है मुझे मरवा न डाले इसलिये मैं नहीं लौटूँगा। (—यह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे जहाँ राजगृह था वहाँको चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था जहाँ राजा बिंबिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा बिंबिसारसे यह (सब) बात कह डाली।

"भणे जीवक ! अच्छा किया जो नहीं लौटा। वह राजा चंड है तुझे मरवा भी डालता।

तब राजा प्रद्योतने निरोग हो जीवक कौमार-भृत्य के पास दूत भेजा—'जीवक आवें वर (=इनाम) दूँगा' 'बस आर्य ! देव मेरा उपकार (=अधिकार) याद रक्खें। उस समय राजा प्रद्योतको बहुत सी हजार दुशालोंमें उत्तम अग्र=श्रेष्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर शिवि (देश) के दुशालोंका एक जोड़ा प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको जीवकके लिये भेजा। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे यह शिविका दुशाला जोड़ा भेजा है। उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धके बिना या राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारके बिना दूसरा कोई इसके योग्य नहीं है।

उस समय भगवान्‌का शरीर दोष-ग्रस्त था। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द ! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है तथागत जुलाब (=विरेचन) लेना चाहते हैं।" आयुष्मान् आनन्द जहाँ जीवक था वहाँ जाकर बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाव लेना चाहते है।"

"तो भन्ते! आनन्द! भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करें)।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक . को बोले—

"आवुस जीवक! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नही, कि मैं भगवान्को मामूली जुलाव दूँ।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोसे भावितकर, जाकर भगवान्को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें, यह भगवान्को दस बार जुलाव लगायेगा। इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूँघें०। इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघें०। इस प्रकार भगवान्को तीस जुलाव होगे।"

जीवक भगवान्को तीस जुलावके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्को तीस जुलाव दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्को तीस जुलाव न होगा, एक कम तीस जुलाव होगा। जब भगवान् जुलाब हो जानेपर नहायेंगे, तब भगवान्को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! जीवकको वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक जाकर भगवान्से बोला—

"मुझे भन्ते! वळे दर्वाज़ेसे निकलनेपर०। भन्ते! स्नान करें सुगत! स्नान करें।"

तब भगवान्ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक ने भगवान्से यह कहा—

"जब तक भन्ते! भगवान्का शरीर स्वस्थ नही होता, तब तक मैं जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान्का शरीर थोळे समयमें ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिवि[1]के दुशाले को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक ने भगवान्से यह कहा—

"मै भन्ते! भगवान्से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक! तथागत वरके परे हो गये हैं।"

"भन्ते! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक!"

"भन्ते! भगवान् पासुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) है, और भिक्षु-सघ भी। भन्ते ० मुझे यह शिविका दुशाला जोळा, राजा प्रद्योत ने भेजा है। भन्ते! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

---

[1] वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पजाब) के आस पासका प्रदेश।

[2] अ क "भगवान्के बुद्धत्व-प्राप्तिसे बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु) ने गृह-पति-चीवर धारण नहीं किया। सब पासुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

कौमार-भृत्य राजाके पास घी ले गया—देव! कषाय पियें। तब जीवक राजाको घी पिलाकर हस्ति-सारमें जा भद्रवतिका हथिनीपर (सवार हो) नगरसे निकल पळा। तब राजा प्रद्योतको उस पिये घीसे उबात हो गया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंसे कहा—

"भणे! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढो।

देव! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे बाहर गया है।"

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (दिनमें) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

'भणे काक! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं।' भणे काक! यह वैद्य लोग बळे मायावी होते हैं उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तब काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमें कौशाम्बी में कलेवा करते देखा। दास काकने जीवक से कहा—

'आचार्य! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।

"ठहरो भणे काक! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक! (तुम भी) खाओ।

'बस आचार्य! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते हैं उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा आँवला खाकर, पानी पीता था। तब जीवकने काक से कहा—

'तो भणे काक! आँवला खाओ और पानी पियो।"

तब काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य आँवला खा रहा है पानी पी रहा है (इसमें) कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता'—(और) आधा आँवला खाया और पानी पिया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं (वमन हो) निकल गया। तब काक (दास) जीवक कौमार भृत्यसे बोला—

"आचार्य! क्या मुझे जीना है?

"भणे काक! डर मत तू भी निरोग होगा राजा भी। वह राजा चंड है मुझे मरवा न डाले इसलिये मैं नहीं लौटूँगा। (—यह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे जहाँ राजगृह था वहाँको चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था जहाँ राजा बिंबिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा बिंबिसारसे यह (सब) बात कह डाली।

'भणे जीवक! अच्छा किया जो नहीं लौटा। वह राजा चंड है तुझे मरवा भी डालता।

तब राजा प्रद्योतने निरोग हो जीवक कौमार-भृत्यके पास दूत भेजा—'जीवक आवें वर (=इनाम) दूँगा' 'बस आर्य! देव मेरा उपकार (=अधिकार) याद रक्खें।' उस समय राजा प्रद्योतको बहुत सी हजार दुशालेके जोळेमें अग्र—श्रेष्ठ—मुख्य—उत्तम—प्रवर शिवि (देश) के दुशालोंका एक जोळा प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको जीवकके लिये भेजा। तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे यह शिविका दुशाला जोळा भेजा है। उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संबुद्धके बिना या राजा मागध श्रेणिक बिंबिसारके बिना दूसरा कोई इसके योग्य नहीं है।

उस समय भगवान्का शरीर दोष-ग्रस्त था। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्द को संबोधित किया—

"आनन्द! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है तथागत जुलाब (=विरेचन) लेना चाहते हैं।

आयुष्मान् आनन्द जहाँ जीवक था वहाँ जाकर बोले—

ने किस चीवरकी अनुमति दी है, और किसकी नही ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छ तरहके चीवरोकी—क्षौ म, कपासवाले, कौशेय, कम्वल (-ऊनी), साण (=सनका), और भ ग[1]।" 6

(६) नये चीवरके साथ पासुकूल भी

१—उस समय जो भिक्षु गृहस्थो (के दिये नये) चीवरको धारण करते थे वह हिचकिचाते हुए पा सु कू ल (=फेंके हुए चीथळो)को नही धारण करते थे—'भगवान्ने एकही तरहके चीवरकी अनुमति दी है, दो की नही।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोके नये चीवर धारण करनेवालोको पासुकूल धारण करने की भी। मै उन दोनोहीसे भिक्षुओ! सतुष्टि (=त्यागीपन) वतलाता हूँ।" 7

२—उम समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फें के ची थ ळे के लिये स्मशान मे गये और किन्ही किन्ही भिक्षुओने प्रतीक्षा न की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तव न प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐमे कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरेने कहा—'आवुसो! हम तुम्हे नही देगे। तुम क्यो नही आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इच्छा न होनेपर न प्रतीक्षा करनेवालोको भाग न देनेकी।" 8

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फेंके चीथळोके लिये स्मशानमें गये। और किन्ही किन्हीने प्रतीक्षा की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तव प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरोने कहा—आवुसो! हम तुम्हे नही देगे। तुम क्यो नही आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होनेपर भी प्रतीक्षा करनेवालोको भाग देनेकी।" 9

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। कोई कोई भिक्षु पासुकलके लिये पहिले स्मशानमें गये और कोई कोई पीछे। जो भिक्षु पासुकूलके लिये पहले स्मशानमें गये उनको पा सु कू ल मिला। जो पीछे गये उन्हे पा सु कू ल नही मिला। उन्होने ऐसे कहा—'आवुसो! हमे भी भाग दो!' दूसरोने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें नही देंगे! तुम क्यो पीछे आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पीछे आनेवालोको इच्छा न रहनेपर भाग न देनेकी।" 10

§२–संघके कर्म-चारियोंका चुनाव

(१) चीवरका बँटवारा

१—उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। वह एक साथही पासुकूलके लिये स्मशानमें गये। उनमेंसे किन्ही किन्ही भिक्षुओने पासुकूल पाया, किन्ही किन्हीने नही पाया। न पानेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो।'—दूसरेने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हे भाग न देंगे। तुमने क्यो नही प्राप्त किया ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ साथ रहनेवालोको इच्छा न रहते भी भाग देने की।" 11

---

[1] भाँगकी छालका वना, अथवा उक्त पाँचो प्रकारके मिश्रणसे वना हुआ कपळा।

बोढेको स्वीकार करें और भिक्षु-संघको गृहस्थोंके दिये चीवर (=गृहपति चीवर)की आज्ञा दें।

भगवान्ने शिविके दुशाले को स्वीकार किया। भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

(२) नये वस्त्रके चीवरका विधान

'भिक्षुओ! गृहपति चीवर (के उपयोगकी) अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे पांसुकूलिक रहे, जो चाहे गृहपति चीवर धारण करे। (दोनोंमें) किसीसे भी मैं संतुष्टि कहता हूँ 1

(३) ओढ़नेकी अनुमति

१—रा ज गृ ह के लोगोंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृ ह प ति (=गृहस्थोंके दिये गये) चीवरकी अनुमति दे दी है। तब वह लोग हर्षित—उदग्र हुए—'अब हम दान देंगे पुण्य करेंगे क्योंकि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृ ह प ति चीवरकी अनुमति दे दी है। और एकही दिनमें रा ज गृ ह में कई हजार चीवर मिल गये। देहातके (=जानपद) मनुष्योंने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओंके लिये गृहपति चीवरकी अनुमति दे दी है। (और) देहातमें भी एकही दिनमें कई हजार चीवर मिल गये।

२—उस समय संघको ओढ़ना (=प्रावार) मिला था। भगवान्से यह बात कही—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओढ़नेकी। 2

कौशेय (=कीड़ेसे पैदा सभी प्रकारके वस्त्र)का प्रा वा र मिला था।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कौ शे य-प्रा वा र की।" 3

को ज व (=लम्बे बालोंवाला कम्बल) मिला था।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ को ज व की।" 4

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(४) कम्बलकी अनुमति

उस समय का शि रा ज[1] ने जी व क कौमार-भृत्यके पास पाँचसौका क्षौ म (=अलसीकी छालका बना हुआ कपड़ा)-मिश्रित कम्बल भेजा था। तब जी व क कौमार-भृत्य उस पाँचसौका कम्बल लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जी व क कौ मा र भृ त्य ने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मुझे का शि रा ज ने यह पाँचसौका क्षौ म मिश्रित कम्बल भेजा है। भन्ते! भगवान् इस मेरे कम्बलको ग्रहण करें, स्वीकार करें जिसमें कि यह चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।

भगवान्ने कम्बलको स्वीकार किया। तब भगवान्ने जी व क कौमार-भृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब जी व क कौ मा र-भृ त्य भगवान्की धार्मिक कथाद्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबन्धमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कम्बलकी।" 5

(५) छ प्रकारके चीवरका विधान

उस समय संघको नाना प्रकारके चीवर (=वस्त्र) मिले। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्

---

[1] कोसलराज प्र से न जि त् का सगा भाई (—अट्ठकथा)।

ने किस चीवरकी अनुमति दी है, और किसकी नही ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छ तरहके चीवरोकी—क्षौ म, कपासवाले, कौशेय, कम्वल (-ऊनी), साण (=सनका), और भ ग[1]।" 6

(६) नये चीवरके साथ पासुकूल भी

१—उस समय जो भिक्षु गृहस्थो(के दिये नये) चीवरको धारण करते थे वह हिचकिचाते हुए पा सु कू ल (=फेंके हुए चीथळो)को नही धारण करते थे—'भगवान्‌ने एकही तरहके चीवरकी अनुमति दी है, दो की नही।' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोके नये चीवर धारण करनेवालोको पासुकूल धारण करने की भी। मैं उन दोनोहीसे भिक्षुओ! सतुष्टि (=त्यागीपन) वतलाता हूँ।" 7

२—उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फेंके चीथळेके लिये स्मशान में गये और किन्ही किन्ही भिक्षुओने प्रतीक्षा न की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तव न प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरेने कहा—'आवुसो! हम तुम्हे नही देंगे। तुम क्यो नही आये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इच्छा न होनेपर न प्रतीक्षा करनेवालोको भाग न देनेकी।" 8

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फेंके चीथळोके लिये स्मशानमें गये। और किन्ही किन्हीने प्रतीक्षा की। जो भिक्षु स्मशानमें गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तब प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुसो! हमें भी हिस्सा दो!' दूसरोने कहा—आवुसो! हम तुम्हे नही देंगे। तुम क्यो नही आये?' भगवान्‌से यह वात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होनेपर भी प्रतीक्षा करनेवालोको भाग देनेकी।"9

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। कोई कोई भिक्षु पासुकूलके लिये पहिले स्मशानमें गये और कोई कोई पीछे। जो भिक्षु पासुकूलके लिये पहले स्मशानमें गये उनको पा सु कू ल मिला। जो पीछे गये उन्हे पा सु कू ल नही मिला। उन्होने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो!' दूसरोने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हे नही देंगे! तुम क्यो पीछे आये?' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पीछे आनेवालोको इच्छा न रहनेपर भाग न देनेकी।" 10

§२—संघके कर्म-चारियोंका चुनाव

(१) चीवरका बँटवारा

१—उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमें रास्तेसे जा रहे थे। वह एक साथही पासुकूलके लिये स्मशानमें गये। उनमेंसे किन्ही किन्ही भिक्षुओने पासुकूल पाया, किन्हीं किन्हीने नही पाया। न पानेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो।'—दूसरेने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें भाग न देंगे। तुमने क्यो नही प्राप्त किया?' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ साथ रहनेवालोको इच्छा न रहते भी भाग देने की।" 11

---

[1] भोगकी छालका वना, अथवा उक्त पाँचो प्रकारके मिश्रणसे वना हुआ कपळा।

२—उस समय बहुतसे भिक्षु कोसल देससे रास्तेसे जा रहे थे। वह पण करके श्मशानमें पांसुकूलके लिये गये। किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंको पांसुकूल मिला किन्हीं किन्हींने नहीं पाया। न पानेवाले भिक्षुओंने ऐसे कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो!'—दूसरोंने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें भाग न देंगे। तुमने क्यों नहीं प्राप्त किया?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पण करके जानेपर, इच्छा न रहते हुए भी भाग देनेकी।" 12

(२) चीवर प्रतिग्राहकका चुनाव

उस समय लोग चीवर लेकर आराम आते थे। वहाँ प्र ति ग्रा ह क (—ग्रहण करनेवाले) को न पा लौटा जाते थे और चीवर कम मिला करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुनने की।—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो (२) जो न द्वेषके रास्ते जानेवाला हो (३) जो न मोहके रास्ते जानेवाला हो (४) जो न भयके रास्ते जानेवाला हो और (५) जो लिये-बे-लियेको जानता हो। 13

और भिक्षुओ इस प्रकार चुनाव (—सम्मत) करना चाहिये। पहले (उसे) भिक्षुसे पूछ लेना चाहिये। पूछ करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—यदि संघ उचित समझे तो अमुक नाम वाले भिक्षुको चीवर प्रतिग्राहक चुने—यह सूचना है। ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(३) चीवर-निदहकका चुनाव

उस समय चीवर प्रतिग्राहक भिक्षु चीवरको लेकर वहीं छोड़कर चले जाते थे। चीवर गुम हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको ची व र-नि द ह क (—चीवरोंको रखनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो[1]। 14

(४) भंडार निश्चित करना

उस समय ची व र-नि द ह क भिक्षु मंडपमें भी वृक्षके नीचे भी निम्ब-कोपमें भी चीवर रख देते थे और उन्हें चूहे और दूसरे कीड़े खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भंडागार निश्चित करनेकी। संघ-विहार या अ ड्ढ यो ग (—अटारी) या प्रासाद या हर्म्य या गुहा जिसे चाहे (उसे) भंडागार बनाये। 15

'और भिक्षुओ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षुसंघको सूचित करे—पूज्य संघ मेरी सुने। यदि संघको पसंद हो तो इस नामवाले विहारको भंडागार (—भंडार) निश्चित करें—यह सूचना है।।"

(५) भंडारीका चुनाव

१—उस समय संघके भंडागारमें चीवर अरक्षित रहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको भा ण्डा गा रि क (=भंडारी) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो।और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये[2]। 16

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भंडारीको उठा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भंडारीको नहीं उठाना चाहिये। जो उठाये उसे दुक्कटका दोष हो। 17

---

[1] चीवर-प्रतिग्राहककी तरहही चीवर-निदहकके गुण और चुनावके बारेमें समझना चाहिये।

[2] चीवर प्रतिग्राहककी तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

(६) जमा चीवरोंका बाँटना

उस समय संघके भंडारमें चीवर जमा हो गये थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, संघके सामने बाँटनेकी।" 18

(७) चीवर-भाजकका चुनाव

उस समय सारा संघ (एकत्रित हो) बाँटता था, जिससे हल्ला होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-भाजक (=चीवर बाँटनेवाला) चुननेकी (१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[1]। 19

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये०[1]।"

(८) चीवर बाँटनेका ढंग

तब चीवर-भाजक भिक्षुओंको ऐसा हुआ—'कैसे चीवर बाँटना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले चुनकर, तुलनाकर, रंग-रंग (को अलग)कर, भिक्षुओंकी गणनाकर, (उन्हें) वर्गमें बाँट चीवरके हिस्सेको स्थापित करनेकी।" 20

(९) भिक्षुओंसे श्रामणेरोंका हिस्सा

१—तब चीवर-भाजक भिक्षुओंको यह हुआ कैसे श्रामणेरोको हिस्सा देना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोको उपार्ध (=दोतिहाई हिस्सा) देनेकी।" 21

२—उस समय एक भिक्षु अपने हिस्सेको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छोळनेवालेको अपने भागके दे देनेकी।" 22

३—उस समय एक भिक्षु अधिक भागको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अनुक्षेप (=पूर्ति) दे देनेपर अधिक भागको दे देनेकी।" 23

(१०) बुरे चीवरोंपर चिट्ठी डालना

तब चीवर-भाजक भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे चीवरका हिस्सा देना चाहिये?' क्या जैसा हाथमें आवे वैसाही या पुरानेके क्रमसे?" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खराबको जमाकर उसपर कुश डालनेकी।" 24

§ ३—चीवरकी रँगाई आदि

(१) चीवर रंगनेके रंग

उस समय भिक्षु गोबरसे भी, पीली मिट्टीसे भी, चीवरको रँगते थे। चीवर दुर्वर्ण होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] चीवर-प्रतिग्राहक (पृष्ठ २७६)की तरह।

२—उस समय बहुतसे भिक्षु कोसल देशसे रास्तेसे जा रहे थे। वह पण करके श्मशानमें पांसुकूलके लिये गये। किन्हीं किन्हीं भिक्षुओंको पांसुकूल मिला किन्हीं किन्हींने नहीं पाया। न पानेवाले भिक्षुओंने ऐसा कहा—'आवुसो! हमें भी भाग दो!'—दूसरोंने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हें भाग न देंगे। तुमने क्यों नहीं प्राप्त किया?' भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पण करके जानेपर इच्छा न रहते हुए भी भाग देनेकी। 12

(२) चीवर प्रतिग्राहकका चुनाव

उस समय लोग चीवर लेकर आराम आते थे। वहाँ प्र ति ग्रा ह क (=ग्रहण करनेवाले) को न पा लौटा ले जाते थे और चीवर कम मिला करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको चीवर प्रतिग्राहक चुनने की।—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो (२) जो न द्वेषके रास्ते जानेवाला हो (३) जो न मोहके रास्ते जानेवाला हो (४) जो न भयके रास्ते जानेवाला हो और (५) जो लिये-न-लियेको जानता हो। 13

और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव (=सम्मनन) करना चाहिये। पहले (उस) भिक्षुसे पूछ लेना चाहिये। पूछ करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—यदि संघ उचित समझे तो अमुक नाम-वाले भिक्षुको चीवर प्रतिग्राहक चुने—यह सूचना है। ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(३) चीवर-निदहकका चुनाव

उस समय चीवर प्रतिग्राहक भिक्षु चीवरको लेकर वहीं छोड़कर चले जाते थे। चीवर गुम हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको ची व र-नि द ह क (=चीवरोंको रखनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो[1]। 14

(४) भंडार निश्चित करना

उस समय ची व र-नि द ह क भिक्षु मंडपमें भी वृक्षके नीचे भी निम्ब-कोषमें भी चीवर रख देते थे और उन्हें चूहे और दूसरे कीड़े खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भंडागार निश्चित करनेकी। संघ-विहार या अ ड्ढ यो ग (=अटारी) या प्रासाद या हर्म्य या गुहा जिसे चाहे (उसे) भंडागार बनाये। 15

"और भिक्षुओ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षुसंघको सूचित करे—पूज्य संघ मेरी सुने। यदि संघको पसंद हो तो इस नामवाले विहारको भंडागार (=भंडार) निश्चित करें—यह सूचना है।...।

(५) भंडारीका चुनाव

१—उस समय संघके भंडागारमें चीवर अरक्षित रहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोंसे युक्त भिक्षुको भां डा गा रि क (=भंडारी) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो...। और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये[1]। 16

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भंडारीको उठा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! भंडारीको नहीं उठाना चाहिये। जो उठाये उसे दुक्कटका दोष हो। 17

---

[1] चीवर-प्रतिग्राहककी तरहही चीवर निदहकके गुण और चुनावके बारेमें समझना चाहिये। चीवर-प्रतिग्राहककी तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

४—उस समय चीवर घना रँग जाता था ०—
"० अनुमति देता हूँ पानी में डालनेकी ।" 36
५—चीवर रूखा हो जाता था। ०—
"० अनुमति देता हूँ हाथसे कूटनेकी ।" 37

§४—चीवरोंकी कटाई, संख्या और मरम्मत

(१) काटकर सिले (=छिन्नक) चीवरका विधान

उस समय भिक्षु कापाय (वस्त्र)को विना काटे ही धारण करते थे।

२—दक्षिणागिरि

तव भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जिधर द क्षि णा गि रि है उधर चारिकाके लिये चले गये। भगवान्ने म ग ध के खेतोको मेळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेळ-बँधा देखा। देखकर आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—

"आनद ! देख रहा है तू मगधके खेतोको मेळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेंळ-बँधा ?"

"हाँ भन्ते !"

"आनन्द ! क्या तू भिक्षुओके लिये ऐसे चीवर वना सकता है ?"

"सकता हूँ भगवान् !"

३—राजगृह

तव भगवान द क्षि णा गि रि में इच्छानुसार विहारकर फिर रा ज गृ ह चले आये। तव आयुष्मान् आनन्दने वहुतसे भिक्षुओके चीवरोको वनाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह वोले—

"भन्ते ! भगवान् मेरे वनाये चीवरोको देखें।"

तव भगवान्ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ ! आनन्द पडित है, आनन्द महाप्रज्ञ है जो कि उसने मेरे सक्षेपसे कहेका विस्तारसे अर्थ समझ लिया। क्यारी भी वनाई, आधी क्यारी भी वनाई, मडल भी वनाया, अर्ध मडल भी वनाया विवर्त (=मडल और अर्ध मडल दोनो मिलकर) भी वनाया, अनुविवर्त भी वनाया, ग्रै वे य क (=गर्दनकी जगह चीवरको मज़वूत करनेकी दोहरी पट्टी) भी वनाया, जा घे य क (=पिंडलीकी जगह चीवरको मज़वूत करनेकी दोहरी पट्टी) वा हु व न्त (=वाँहकी जगहका चीवरका भाग) भी वनाया। छि न्न क (=काटकर सिला चीवर), श स्त्र - रु क्ष (=मोटा-झोटा) और श्रमणोके योग्य होगा और प्र त्य र्थी (=चुरानेवालो)के कामका न होगा।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सघाटी, उत्तरासघ और अन्तरवासकको छि न्न क (=काट कर सिला) वनानेकी।" 38

४—वैशाली

(२) चीवरोंकी संख्या

तव भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहार कर जिधर वै शा ली है उधर चले गये। भगवान्ने राजगृह और वैशालीके मार्गमें वहुतसे भिक्षुओको चीवरसे लदे देखा।—सिरपर भी चीवरकी पोटली, कधेपर भी चीवरकी पोटली, कमरमें भी चीवरकी पोटली वाँधकर वह जा रहे थे। देखकर भगवान्को

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छ रंगोंकी—(१) मूल (=जळसे निकला) रंग (२) स्कंध-रंग (३) त्वक (=छालका)-रंग (४) पत्र (=पत्तेका) रंग (५) पुष्प-रंग (६) फल-रंग।" 25

(२) रंग पकाना

१—उस समय भिक्षु कच्चे रंगसे रँगते थे और चीवर दुर्गन्धयुक्त होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंग पकानेकी और रंगके छोटे मटकेकी। 26

२—रंग उतर जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उत्तराकम्प[1] बाँधनेकी। 27

३—उस समय भिक्षु नहीं जानते थे कि रंग पका कि नहीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पानीमें या नखपर बूँद डाल(कर परीक्षा ले)नेकी। 28

(३) रंगके बर्तन

१—उस समय भिक्षु रंग उतारते समय हँड़ियाको खींचते थे जिससे हँड़िया टूट जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंगके नांदकी और दंडसहित पात्रकी।

२—उस समय भिक्षुओंके पास रँगनेका बर्तन न था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रंगके कूँड़ेकी, रंगके घड़ेकी। 29

३—उस समय भिक्षु थालीमें भी पत्तेपर भी चीवरको मलते थे। चीवर फट जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रजन-द्रोणी[2]। 30

(४) चीवर सुखानेके सामान

१—उस समय भिक्षु जमीनपर चीवर फैला देते थे और चीवरमें धूल लग जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तृणकी सँथरीकी। 31

२—तृणकी सँथरीको कीड़े खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चीवर (फैलाने)के बाँस और रस्सीकी।" 32

(५) रंगाईका ढंग

१—बीचमें डालते थे और रंग दोनों ओरसे बह जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोनोंके बाँधनेकी। 33

२—कोने निर्बल हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोना बाँधनेके सूतकी। 34

३—रंग एक ओरसे बहता था। ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बराबर उलटते हुए रंगनेकी और बूँदकी धार न टूटनेपर न हटानेकी।" 35

[1] बरतनके बगलमें बीचमें रखनेका सामान।

[2] पत्थर या मिट्टी और बीचमें रँगनेका विशाल पात्र जिसका एक सुराख मध्यमें चौकोर है।

४—उस समय चीवर घना रँग जाता था ०—
" ० अनुमति देता हूँ पानी में डालनेकी ।" 36
५—चीवर रूखा हो जाता था । ०—
" ० अनुमति देता हूँ हाथसे कूटनेकी ।" 37

§४—चीवरोंकी कटाई, संख्या और मरम्मत

(१) काटकर सिले (=छिन्नक) चीवरका विधान

उस समय भिक्षु कापाय (वस्त्र)को विना काटे ही धारण करते थे।

२—दक्खिणागिरि

तव भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जिधर द क्षि णा गि रि है उधर चारिकाके लिये चले गये। भगवान्ने म ग ध के खेतोको मेळ वँधा, कतार वँधा, मर्यादा वँधा, और चौमेळ-वँधा देखा। देखकर आयुष्मान् आनदको सवोधित किया—

"आनद ! देख रहा है तू मगधके खेतोको मेंळ वँधा, कतार वँधा, मर्यादा वँधा, और चौमेळ-वँधा ?"

"हाँ भन्ते !"

"आनन्द ! क्या तू भिक्षुओंके लिये ऐसे चीवर वना सकता है ?"

"सकता हूँ भगवान् !"

३—राजगृह

तव भगवान द क्षि णा गि रि मे इच्छानुसार विहारकर फिर रा ज गृ ह चले आये। तव आयुष्मान् आनन्दने वहुतसे भिक्षुओके चीवरोको वनाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह वोले—

"भन्ते ! भगवान् मेरे वनाये चीवरोको देखें ।"

तव भगवान्ने इसी सवधमे, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ ! आनन्द पडित है, आनन्द महाप्रज्ञ है जो कि उसने मेरे सक्षेपसे कहेका विस्तारसे अर्थ समझ लिया। क्यारी भी वनाई, आधी क्यारी भी वनाई, मडल भी वनाया, अर्ध मडल भी वनाया विवर्त (=मडल और अर्ध मडल दोनो मिलकर) भी वनाया, अनुविवर्त भी वनाया, ग्रै वे य क (=गर्दनकी जगह चीवरको मजवूत करनेकी दोहरी पट्टी) भी वनाया, जा घे य क (=पिंडलीकी जगह चीवरको मजवूत करनेकी दोहरी पट्टी) वा हु व न्त (=वाँहकी जगहका चीवरका भाग) भी वनाया । छि न्न क (=काटकर सिला चीवर), श स्त्र - रु क्ष (=मोटा-झोटा) और श्रमणोंके योग्य होगा और प्र त्य र्थी (=चुरानेवालो)के कामका न होगा।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सघाटी, उत्तरासघ और अन्तरवासकको छि न्न क (=काट कर सिला) वनानेकी।" 38

४—वैशाली

(२) चीवरोंकी सख्या

तव भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहार कर जिधर वै शा ली है उधर चले गये। भगवान्ने राजगृह और वैशालीके मार्गमें वहुतसे भिक्षुओको चीवरसे लदे देखा।—सिरपर भी चीवरकी पोटली, कधेपर भी चीवरकी पोटली, कमरमें भी चीवरकी पोटली वाँधकर वह जा रहे थे। देखकर भगवान्को

यह हुआ—'यह मोघ पुरुष बहुत जल्दी चीवर बटोरने लगे। अच्छा हो मैं चीवरकी सीमा बाँध दूँ मर्यादा स्थापित कर दूँ।' तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमें गो त म क चै त्य में विहार करते थे। उस समय भगवान् हेमन्तमें अ न्त रा ष्ट क[1] की रातोंमें हिम-पातके समय रातको खुली जगहमें एक चीवर ले बैठे। भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। प्रथम याम (=चार घंटा)के समाप्त होनेपर भगवान्को सर्दी मालूम हुई। भगवान्ने दूसरा चीवर ओढ़ लिया और भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। बिचले याम के बीत जाने पर भगवान्को सर्दी मालूम हुई तब भगवान्ने तीसरे चीवरको पहन लिया और भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। अन्तिम यामके बीत जाने पर अरुणके उगते रात्रिके न न्दि मु खी होने (=पौ फटने)के वक्त सर्दी मालूम हुई। तब भगवान्ने चौथा चीवर ओढ़ लिया। तब भगवान्को सर्दी न मालूम हुई। तब भगवान्को यह हुआ। जो कोई शी ता लु क (=जिनको सर्दी ज्यादा लगती है) सर्दीसे डरनेवाले कुल-पुत्र इस धर्ममें प्रव्रजित हुए हैं वह भी तीन चीवरसे गुजारा कर सकते हैं। अच्छा हो मैं भिक्षुओंके लिये चीवरकी सीमा बाँधूं मर्यादा स्थापित करूँ तीन चीवरोंकी अनुमति दूँ। तब भगवान्ने इसी प्रकरणमें इसी संबंधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! रा ज गृ ह और वै शा ली के मार्गमें जाते वक्त मैंने बहुतसे भिक्षुओंको चीवरसे लदे देखा (मैंने सोचा) अच्छा हो मैं भिक्षुओंके लिये तीन चीवरोंकी अनुमति दूँ।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—(१) दोहरी सं घा टी (२) एकहरे उ त्त रा सं ग (३) इकहरे अं त र वा स क तीन चीवरोंकी। 39

(२) फालतू चीवरोंके बारेमें नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने तीन चीवरोंकी अनुमति दी है—(सोच) दूसरे तीन चीवरोंसे गाँवमें जाते थे दूसरे ही तीन चीवरोंसे आराममें रहते थे और दूसरे ही तीन चीवरोंसे नहाने जाते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ थे वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु फालतू चीवर धारण करते हैं।' तब उन लोगोंने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया।—

"भिक्षुओ! फालतू चीवर नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 40

२—उस समय आयुष्मान् आ न न्द को (एक) फालतू चीवर मिला था। आयुष्मान् आनन्द उस चीवरको आयुष्मान् सा रि पु त्र को देना चाहते थे और आयुष्मान् सारिपुत्र उस समय सा के त में विहार करते थे। तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि फालतू चीवर नहीं धारण करना चाहिये और यह मुझे फालतू चीवर मिला है। मैं इस चीवरको आयुष्मान् सारिपुत्रको देना चाहता हूँ और आयुष्मान् सा रि पु त्र साकेतमें विहार कर रहे हैं। मुझे कैसे करना चाहिये?

तब आयुष्मान् आनन्दने यह बात भगवान्से कही।—

"आनन्द! कब तक सा रि पु त्र आयेगा?

"नवें या दसवें दिन भगवान्।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दस दिन तक फालतू चीवरको रख छोड़ने की। 41

३—उस समय भिक्षुओंको फालतू चीवर मिलता था। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'हमें इस

---

[1] माघकी अन्तिम चार और फागुनकी आरम्भिक चार रातें।

फालतू चीवरको क्या करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फालतू चीवरके वि क ल्प करनेकी।"42

५—वाराणसी

(४) पेवँद रफू करना

तब भगवान् वै शा ली में इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व मे विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुके अन्तरवासकमें छेद हो गया था। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्‌ने तीन चीवरोका विधान किया है, दोहरी स घा टी, इकहरे उ त्त रा स घ और इकहरे अ न्त र वा स क की। और इस मेरे अन्तरवासकमे छेद हो गया है। क्यो न मैं पेवद लगाऊँ जिससे कि (छेदके) चारो तरफ दोहरा हो जाये और बीचमे इकहरा?' तब उस भिक्षुने पेवद लगाया। आश्रममे घूमते वक्त भगवान्‌ने उस भिक्षुको पेवद लगाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उससे बोले—

"भिक्षु! तू क्या कर रहा है?"

"भगवान्! पेवद लगा रहा हूँ।"

"साधु! साधु! भिक्षु, तू ठीक ही पेवद लगा रहा है।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, नये या नये जैसे कपळेकी दोहरी स घा टी, इकहरे उत्तरासघ और इकहरे अन्तरवासककी, ऋतु खाये कपळेकी चौहरी, सघाटी, दोहरे उत्तरासघ और दोहरे अन्तर-वासककी, पा सु कू ल (=फेंके चीथळे) होनेपर यथेच्छ। दूकानके फेंके चीथळेको खोजना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पेवन्द, रफू, डाँळे, टाँके, और दृढी-कर्मकी।" 43

६—श्रावस्ती

(५) विशाखाको वर

तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चले। फिर क्रमश विहार करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा-मृगार माताको भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब विशाखा मृगार माता भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित हो भगवान्‌से यह बोली—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु-सघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्‌की स्वीकृति जान भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

उस समय उस रातके बीतनेपर चा तु र्द्वी पि क[1] महामेघ बरसने लगा। तब भगवान्‌ने भिक्षुओ-को सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जैसे यह जे त व न में बरस रहा है वैसे ही चारो द्वीपोमें बरस रहा है। भिक्षुओ!

---

[1] चारों द्वीपवाली सारी पृथ्वीपर जो एकही समय बरसता है।

वर्षामें शरीरको नहलाओ। यह अन्तिम चातुर्द्वीपिक महामेघ है।

"अच्छा भन्ते!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दे चीवरको फेंक वर्षामें शरीरको नहलाने लगे। तब विशाखा मृगारमाताने उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा दासीको आज्ञा दी—

"जा रे! आराममें जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है। भन्ते भात तैयार है।"

"अच्छा आर्ये!" (कह) उस दासीने विशाखा मृगारमाताको उत्तर दे आराममें जा देखा कि भिक्षु चीवर फेंक शरीरको वर्षामें नहला रहे हैं। देखकर—आराममें भिक्षु नहीं हैं। आजीवक[1] शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं—(सोच) जहाँ विशाखा मृगारमाता थी वहाँ गई। जाकर यह कहा—
"आर्ये! आराममें भिक्षु नहीं हैं। आजीवक शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं।"

तब पंडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे विशाखा मृगारमाताको यह हुआ—

"निस्संशय आर्य लोग चीवर फेंककर शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं और इस मूर्खाने मान लिया कि आराममें भिक्षु नहीं हैं और आजीवक शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं।"

फिर दासीको आज्ञा दी—

"जा रे! आराममें जाकर समयकी सूचना दे—०।"

तब वे भिक्षु शरीरको ठंडाकर शान्त शरीरवाले हो चीवरोंको ले अपने अपने विहारमें चले गये। तब वह दासी आराममें जा भिक्षुओंको न देख—आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है—(सोच) जहाँ विशाखा मृगारमाता थी वहाँ गई। जाकर विशाखा मृगारमातासे यह कहा—

"आर्ये! आराममें भिक्षु नहीं हैं। आराम सूना है।"

तब पंडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे विशाखा मृगारमाताको यह हुआ—

'निस्संशय आर्य लोग शरीरको ठंडाकर, शान्तकाय हो चीवरको लेकर अपने अपने विहारमें चले गये होंगे और इस मूर्खाने समझा कि आराममें भिक्षु नहीं हैं, आराम सूना है।

और फिर दासीको भेजा—'जा रे!'

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! पात्र चीवर तैयार कर लो। भोजनका समय है।

"अच्छा भन्ते!" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया—

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र चीवर ले जैसे बलवान् पुरुष (अप्रयास) समेटी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको समेटे वैसे ही जेतवनमें अन्तर्धान हो विशाखा मृगारमाताके कोठेपर प्रकट हुए और भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब विशाखा मृगारमाता—'आश्चर्य रे! अद्भुत रे! तथागतकी दिव्यशक्ति-महानुभावताको जाँघ भर कमर भर, बाढ़ वर्तमान होनेपर भी एक भिक्षुका भी पैर या चीवर न भींगा!'—सोच हर्षित-उदग्र हो बुद्ध सहित भिक्षु-संघको उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा सन्तर्पित कर भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गई।

(६) वर्षिकशाटी आदिका विधान

एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मैं भगवान्‌से आठ वर माँगती हूँ।"

"विशाखे! तथागत वरोंसे परे हो गये हैं।"

"भन्ते! जो विहित हैं और निर्दोष हैं।"

---

[1] उस समयके नंगे साधुओंका एक संप्रदाय।

"वोल विशाखे !"

"भन्ते ! (१) मैं यावत्‌जीवन सघको वर्षाकी व र्षि क सा टि का (वरसातके लिये धोती) देना चाहती हूँ, (२) नवागन्तुकोको भोजन देना, (३) प्रस्थान करनेवालोको भोजन देना, (४) रोगीको भोजन देना, (५) रोगी परिचारकको भोजन देना, (६) रोगीको दवा देना, (७) सदा सवेरे यवागू (=खिचळी) देना, (८) भिक्षुणी-सघको उ द क मा टी [1] देना।"

"विशाखे ! क्या वात देख तूने तथागतसे आठ वर माँगे ?"

१—"भन्ते ! मैंने दासीको आज आज्ञा दी—'जा रे ! आराममे जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है, भन्ते ! भोजन तैयार है—'तब उस दासीने आराममे जाकर देखा कि भिक्षु लोग कपडे फेंक शरीरको वर्षा खिला रहे हैं, और मेरे पास आकर कहा—'आर्ये ! आराममें भिक्षु नही हैं। आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे हैं।' भन्ते ! नग्नता गदी, घृणित, वुरी चीज है। भन्ते ! यह वात देख मैं सघको यावत् जीवन व र्षि क सा टि का देना चाहती हूँ।

२—"और फिर भन्ते ! नवागन्तुक भिक्षु गलीको नही जानते, रास्तेको नही जानते, थके हुए भिक्षाटन करते हैं। वह मेरे दिये नवागन्तुकके भोजनको खा, गली जाननेवाले, रास्ता पहिचाननेवाले हो, थकावट दूरकर भिक्षाचार करेंगे। भन्ते ! इस वातको देख मैं सघको यावत् जीवन नवागन्तुकको भोजन देना चाहती हूँ।

३—"और फिर भन्ते ! प्रस्थान करनेवाले भिक्षुओंको अपना भोजन ढूँढते वक्त उनका कारवाँ छूट जाता है, या जहाँ वह निवास करनेको जाना चाहते हैं वहाँ वि का ल (=अपराह्ण)में पहुँचेंगे, थके हुए रास्ता जायँगे। मेरे प्रस्थान करनेवालोके भोजनको खाकर उनका कारवाँ न छूटेगा और जहाँ वह जाना चाहते हैं वहाँ कालमे पहुँचेंगे। विना थकावटके रास्ता जायँगे। भन्ते इस वातको देख मैं चाहती हूँ सघको जीवन भर ग मि क - भोजन (प्रस्थान करनेवालोको भोजन) देनेकी।

४—"और फिर भन्ते ! रोगी भिक्षुको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग वढता है या मृत्यु होती है। भन्ते ! मेरे रोगी भोजनको खाकर उनका रोग नही वढेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते ! इस वातको देख मैं चाहती हूँ जीवन भर सघको रोगी-भोजन देना।

५—"और फिर भन्ते ! रोगी-परिचारक भिक्षु अपने भोजनकी खोजमें रोगीके पास चिरसे भोजन ले जायेगा या उस दिन खा न सकेगा। यदि वह रोगी-परिचारकके भोजनको खाकर रोगीके लिये कालसे भोजन ले जायेगा तो भ क्त च्छे द (=भोजन न मिलना) न होगा। भन्ते ! इस वातको देख मैं चाहती हूँ सघको जीवन भर रोगि-परिचारक-भोजन देना।

६—"और फिर भन्ते ! रोगी-भिक्षुको अनुकूल भैषज्य न मिलनेपर रोग वढता है या मृत्यु होती है। मेरे रोगी-भैषज्यको ग्रहण करनेसे न उनका रोग वढेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते इस वातको देख मैं चाहती हूँ सघको यावत् जीवन रोगी-भैषज्य देना।

७—"और फिर भन्ते ! भगवान्‌ने अ न्ध क विं द में दश गुणोको देख यवागूकी अनुमति दी है। भन्ते ! उन गुणोको देख मैं चाहती हूँ सघको सदा यवागू देना।

८—"भन्ते ! एक वार भिक्षुणियाँ अचिरवती (=राप्ती नदी)में वेश्याओके साथ एक ही घाटमें नगी नहाती थी। तव भन्ते ! उन वेश्याओने भिक्षुणियोंसे ताना मारा—'तुम नवयुवतियोको ब्रह्मचर्य पालन करनेसे क्या ? (पहले) तो भोगोका उपभोग करना चाहिये। जव वुड्ढी होना तव ब्रह्मचर्य करना। इस प्रकार तुम्हारा दोनो ही मतलव सिद्ध होगा।' तव भन्ते ! उन वेश्याओके ताना मारने

---

[1] स्त्रियोंके मासिकधर्मके समय काममें लाया जानेवाला वस्त्र।

वर्षामें शरीरको नहलाओ। यह अन्तिम चातुर्द्वीपिक महामेघ है।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दे चीवरको फेंक वर्षामें शरीरको नहलाने लगे। तब विशाखा मृगारमाताने उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा दासीको आज्ञा दी—

'जा रे ! आराममें जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है। भन्ते भात तैयार है।"

"अच्छा आर्ये !" (कह) उस दासीने विशाखा मृगारमाताको उत्तर दे आराममें जा देखा कि भिक्षु चीवर फेंक शरीरको वर्षामें नहला रहे हैं। देखकर—आराममें भिक्षु नहीं हैं। आजीवक शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं—(सोच) जहाँ विशाखा मृगारमाता थी वहाँ गई। जाकर यह कहा—"आर्ये आराममें भिक्षु नहीं हैं। आजीवक शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं।

तब पंडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे विशाखा मृगारमाताको यह हुआ—

'निस्संशय आर्य लोग चीवर फेंककर शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं और इस मूर्खाने मान लिया कि आराममें भिक्षु नहीं हैं और आजीवक शरीरको वर्षा भिगा रहे हैं।

फिर दासीको आज्ञा दी—

"जा रे ! आराममें जाकर समयकी सूचना दे—०।

तब वे भिक्षु शरीरको ठंडाकर शान्त शरीरवाले हो चीवरोंको ले अपने अपने विहारमें चले गये। तब वह दासी आराममें जा भिक्षुओंको न देख—आराममें भिक्षु नहीं हैं आराम सूना है—(सोच) जहाँ विशाखा मृगारमाता थी वहाँ गई। जाकर विशाखा मृगारमातासे यह कहा—

"आर्ये ! आराममें भिक्षु नहीं हैं। आराम सूना है।

तब पंडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे विशाखा मृगारमाताको यह हुआ—

'निस्संशय आर्य लोग शरीरको ठंडाकर शान्तकाय हो चीवरको लेकर अपने अपने विहारमें चले गये होंगे और इस मूर्खाने समझा कि आराममें भिक्षु नहीं हैं आराम सूना है।

और फिर दासीको भेजा—'जा रे !

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! पात्र-चीवर तैयार कर लो ! भोजनका समय है।

अच्छा भन्ते ! (कह) उन भिक्षुओंने भगवान्‌को उत्तर दिया—

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र चीवर ले जैसे बलवान् पुरुष (अप्रयास) समेटी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको समेटे वैसे ही जेतवनमें अन्तर्धान हो विशाखा मृगारमाताके कोठेपर प्रकट हुए और भिक्षु-संघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब विशाखा मृगारमाता—'आश्चर्य रे ! अद्भुत रे ! तथागतकी दिव्यशक्ति-महानुभावताको जोकि घोंट भर कमर भर, बाढ़के वर्तमान होनेपर भी एक भिक्षुका भी पैर या चीवर न भीगा !—सोच हर्षित-उदग्र हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघको उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा संतर्पित कर भगवान्‌के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गई।

(६) वर्षिकशाटी आदिका विधान

एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! मैं भगवान्‌से आठ वर माँगती हूँ।

"विशाखे ! तथागत वरोंसे परे हो गये हैं।

"भन्ते ! जो विहित हैं जो निर्दोष हैं।"

---

[1] उस समयके नंगे साधुओंका एक संप्रदाय।

स्वप्नदोष नही होता। आनन्द ! जो वह पृ थ क् ज न (=सासारिक पुरुष) काम भोगोमें वीतराग नही है उनको भी स्वप्नदोष नही होता। यह सभव नही आनन्द ! इसकी जगह नही कि अर्हतोको स्वप्न-दोष हो।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आज मैंने आनदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा ० अर्हतोको स्वप्नदोष हो।"

"भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष है—(१) दु खके साथ सोता है, (२) दु खके साथ जागता है, (३) बुरे स्वप्नको देखना है, (४) देवता रक्षा नही करते, (५) स्वप्नदोष होता है।—भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष हैं।

"भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण है—(१) सुखसे सोता है, (२) सुखसे जागता है, (३) बुरे स्वप्न नही देखता, (४) देवता रक्षा करते है, (५) स्वप्नदोष नही होता। भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण है।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कायकी रक्षा करते, चीवरकी रक्षा करते, आसन-वासनकी रक्षा करते बैठनेकी।" 45

§५—कुछ और वस्त्रोंका विधान तथा चीवरोंके लिये नियम

(१) बिछौनेकी चादर

उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था और वह सारे आसनको नही ढकता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प्र त्य स्त र ण (=आसनकी चादर) जितना बळा चाहे उतना बळा बनानेकी।" 46

(२) रोगीको कोपीन

उस समय आयुष्मान् आनन्दके उपाध्याय आयुष्मान् बे ल ट्ठ सी स को स्थूलकक्ष (=दाद) रोग था। उसके पछासे चीवर शरीरमें लिपट जाते थे। उन्हे भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने उन भिक्षुओको वह चीवर पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! इस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! इस आयुष्मान्‌को स्थूलकक्ष रोग है और पछासे चीवर शरीरमें लिपट जाते है। उन्हे हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे हैं।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जिस भिक्षुको खुजली, फोळा, आस्राव या स्थूलकक्षका रोग हो उसको क ण्डू क प्र ति च्छा द न (=कोपीन) की।" 47

(३) अँगोछा (=मुख-पोंछन)

तब वि शा खा मृ गा र मा ता मुख पोछनेका वस्त्र ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा मृ गा र मा ता ने भगवान्‌से यह कहा—

पर वह भिक्षुणियाँ चुप हो गईं। भन्ते ! स्त्रियोंकी नग्नता गंदी घृणित बुरी (चीज) है। भन्ते ! इस बातको देख मैं चाहती हूँ कि भिक्षुणी संघको यावत् जीवन उदक साटी देना।

'विशाखे ! तूने किस गुणको देख तथागतसे आठ वर माँगे ?"

'भन्ते ! जब दिशाओंमें वर्षावासकर भिक्षु श्रावस्तीमें भगवान्‌के दर्शनके लिये आयेंगे तब भगवान्‌के पास आकर पूछेंगे—'भन्ते अमुक नामवाला भिक्षु मर गया। उसकी क्या गति है ? क्या परलोक है ? उसके लिये भगवान् स्रोत आपत्ति फल सकृदागामि फल अनागामि फल या अर्हत्त्वका व्याकरण करेंगे। उनके पास आकर मैं पूछूँगी—'क्या भन्ते ! वह (मृत) आर्य श्रावस्ती-में कभी आये थे ? यदि वह मुझसे कहेंगे—'वह भिक्षु पहले श्रावस्ती आया था तो मैं निश्चय कर लूँगी निस्संशय उस आर्यने ग्रहण किया होगा वर्षिक शाटिकाको या आगन्तुक भोजनको या गमिक-भोजनको या रोगि भोजनको या रोगि परिचारक भोजनको या रोगि भैषज्यको या सदाके यवागूको। उसको याद कर मेरे चित्तमें प्रमोद होगा प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होगी प्रीतियुक्त होने पर काया शान्त होगी काया शान्त होनेपर सुख-अनुभव करूँगी और सुखिनी होनेपर मेरा चित्त समाधि-को प्राप्त होगा और वह होगी मेरी इन्द्रिय भावना बल-भावना बोध्यंग-भावना। भन्ते ! इस गुण-को देख मैंने तथागतसे आठ वर माँगे।

"साधु ! साधु ! विशाखे तूने इन गुणोंको ठीक ही देख तथागतसे आठ वर माँगे। विशाखे ! स्वीकृति देता हूँ तुझे आठ वरोंकी।

तब भगवान्‌ने विशाखा मृगार माताको इन गाथाओंसे अनुमोदन किया—

"जो शीलवती सुगतकी शिष्या प्रमुदित हो अन्न पान देती है
कृपणताको छोड शोक-हारक, सुख-दायक स्वर्ग-प्रद दानको देती है।
वह निर्मल निर्दोष मार्गको पा दिव्यबल और आयुको प्राप्त होगी।
पुण्यकी इच्छावाली वह सुखिनी और नीरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग-लोकमें प्रमोद करेगी।

तब भगवान् विशाखा मृगारमाताको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षिक-शाटिकाकी आगन्तुक-भोजनकी गमिक भोजनकी रोगि-भोजनकी रोगि-परिचारक भोजनकी रोगि-भैषज्यकी सदाके यवागूकी और भिक्षुणी-संघको उदक साटीकी।" 44

विशाखा भाणवार समाप्त

(७) काया, चीवर और आसन आदिको सँभालकर बैठना

उस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृति और असंप्रजन्य (—असावधानता) रहित हो नींद लेते थे। स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता था और आसन वासन अशुचिसे मलिन होता था। तब आयुष्मान् आनन्दको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने आसन वासनको अशुचि-पूर्ण देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया— 'आनन्द क्यों ये आसन-वासन मलिन हो रहे हैं ?

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेते हैं। स्मृति और संप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता है और आसन-वासन अशुचिसे मलिन होता है।

"यह ऐसा ही है आनन्द ! यह ऐसा ही है आनन्द ! आनन्द ! स्मृति संप्रजन्य रहित हो निद्रा लेनेसे स्वप्नदोष होता ही है। आनन्द ! जो भिक्षु स्मृति और संप्रजन्यसे युक्त हो निद्रा लेते हैं उनको

स्वप्नदोष नही होता। आनन्द! जो वह पृथक्जन (=सासारिक पुरुष) काम भोगोमें वीतराग नही है उनको भी स्वप्नदोष नहीं होता। यह सभव नही आनन्द! इसकी जगह नहीं कि अर्हतोको स्वप्न-दोष हो।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज मैंने आनदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा ० अर्हतोको स्वप्नदोष हो।"

"भिक्षुओ! स्मृति सप्रजन्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष है—(१) दुःखके साथ सोता है, (२) दुःखके साथ जागता है, (३) बुरे स्वप्नको देखता है, (४) देवता रक्षा नही करते, (५) स्वप्नदोष होता है।—भिक्षुओ! स्मृति सप्रजन्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोष हैं।

"भिक्षुओ! स्मृति सप्रजन्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण है—(१) सुखसे सोता है, (२) सुखसे जागता है, (३) बुरे स्वप्न नही देखता, (४) देवता रक्षा करते है, (५) स्वप्नदोष नही होता। भिक्षुओ! स्मृति सप्रजन्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पाँच गुण है।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कायकी रक्षा करते, चीवरकी रक्षा करते, आसन-वासनकी रक्षा करते बैठनेकी।" 45

§ ५—कुछ और वस्त्रोंका विधान तथा चीवरोंके लिये नियम

(१) बिछौनेकी चादर

उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था और वह सारे आसनको नही ढकता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रत्यस्तरण (=आसनकी चादर) जितना बळा चाहे उतना बळा बनानेकी।" 46

(२) रोगीको कोपीन

उस समय आयुष्मान् आनन्दके उपाध्याय आयुष्मान् बेलट्ठसीसको स्थूलकक्ष (=दाद) रोग था। उसके पछासे चीवर शरीरमें लिपट जाते थे। उन्हे भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने उन भिक्षुओको वह चीवर पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इस आयुष्मान्‌को स्थूलकक्ष रोग है और पछामे चीवर शरीरमें लिपट जाते हैं। उन्हे हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे है।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जिस भिक्षुको खुजली, फोळा, आस्राव या स्थूलकक्षका रोग हो उसको कडूकप्रतिच्छादन (=कोपीन)की।" 47

(३) अँगोछा (=मुख-पोंछन)

तब विशाखा मृगारमाता मुख पोछनेका वस्त्र ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्‌से यह कहा—

पर वह भिक्षुणियाँ चुप हो गई। भन्ते ! स्त्रियोंकी नग्नता बड़ी घृणित बुरी (चीज) है। भन्ते! इस बातको देख मैं चाहती हूँ कि भिक्षुणी संघको यावत् जीवन उ द क सा टी देना।"

'विशाखे ! तूने किस गुणको देख तथागतसे आठ वर माँगे ?'

'भन्ते ! जब दिशाओंमें वर्षावासकर भिक्षु श्रा व स्ती में भगवान्के दर्शनके लिये आयेंगे तब भगवान्के पास आकर पूछेंगे—'भन्ते अमुक नामवाला भिक्षु मर गया। उसकी क्या गति है ? क्या परलोक है ? उसके लिये भगवान् स्रो त आ प त्ति फ ल स कृ दा गा मि फ ल अ ना गा मि फ ल या अ र्ह त्व का व्या क र ण करेंगे। उनके पास आकर मैं पूछूँगी—'क्या भन्ते ! वह (मृत) आर्य श्रावस्ती में कभी आये थे ? यदि वह मुझसे कहेंगे—'वह भिक्षु पहले श्रावस्ती आया था तो मैं निश्चय कर लूँगी निस्संशय उस आर्यने ग्रहण किया होगा व र्षि क शा टि का को या ग न्तु क भो ज न को या ग मि क-भोजनको या रो गि भो ज न को या रो गि परिचारक भोजनको या रो गि भैषज्यको या सदाके यवागूको। उसको याद कर मेरे चित्तमें प्रमोद होगा प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होगी प्रीतियुक्त होने पर काया शान्त होगी काया शान्त होनेपर सुख-अनुभव करूँगी और सुखिनी होनेपर मेरा चित्त समाधि को प्राप्त होगा और वह होगी मेरी इ न्द्रि य-भावना ब ल-भावना बो ध्य ग-भावना। भन्ते ! इस गुणको देख मैंने तथागतसे आठ वर माँगे।

"साधु ! साधु ! विशाखे तूने इन गुणोंको ठीक ही देख तथागतसे आठ वर माँगे । विशाखे ! स्वीकृति देता हूँ तुझे आठ वरोंकी ।

तब भगवान्ने वि शा खा मृ गा र मा ता को इन गाथाओंसे अनुमोदन किया—

'जो शीलवती सुगतकी शिष्या प्रमुदित हो अन्न पान देती है

इन्द्रियोंको जीत शोक-हारक, सुख-दायक स्वर्ग-प्रद दानको देती है।

वह निर्मल निर्दोष मार्गको पा दिव्यबल और आयुको प्राप्त होगी ।

पुण्यकी इच्छावाली वह सुखिनी और नीरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग-लोकमें प्रमोद करेगी ।

तब भगवान् विशाखा मृगारमाताका इस गाथाओंसे अनुमोदनकर, आसनसे उठ चले गये।

तब भगवान्ने इसी सबन्धमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षिक-शाटिकाकी नवागन्तुक-भोजनकी गमिक-भोजनकी रोगि भोजनकी रोगि-परिचारक-भोजनकी रोगि भैषज्यकी सदाके यवागूकी और भिक्षुणी-संघको उदक-शाटीकी। 44

विशाखा भाणवार समाप्त

(७) काया, चीवर और आसन आदिको सँभालकर बैठना

उस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृ ति और स प्र ज न्य (—जागरूकता) रहित हो नींद लेते थे। स्मृति और सप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता था और आसन वासन अशुचिसे मलिन होता था। तब आयुष्मान् आनन्दको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त भगवान्ने आसन वासनको अशुचि-पूर्ण देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—"आनन्द क्यों ये आसन-वासन मलिन हो रहे हैं ?

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृ ति और स प्र ज न्य रहित हो नींद लेते हैं। स्मृति और सप्रजन्य रहित हो नींद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता है और आसन-वासन अशुचिसे मलिन होता है।

"यह ऐसा ही है आनन्द ! यह ऐसा ही है आनन्द ! आनन्द ! स्मृ ति सप्रजन्य रहित हो निद्रा लेनेको स्वप्नदोष होता ही है। आनन्द ! जो भिक्षु स्मृ ति और स प्र ज न्य से युक्त हो निद्रा लेते हैं उनको

स्वप्नदोष नही होता। आनन्द ! जो वह पृ थ ग् ज न (=सासारिक पुरुष) काम भोगोमे वीतराग नही है उनको भी स्वप्नदोष नहीं होता। यह सभव नही आनन्द ! इसकी जगह नही कि अर्हतोको स्वप्न-दोष हो।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज मैने आनन्दको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा ० अर्हतोको स्वप्नदोष हो।"

"भिक्षुओ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाच दोष है—(१) दुखके साथ सोता है, (२) दुखके साथ जागता है, (३) बुरे स्वप्नको देखता है, (४) देवता रक्षा नहीं करते, (५) स्वप्नदोष होता है।—भिक्षुओ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पांच दोष है।

"भिक्षुओ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पांच गुण है—(१) सुखसे सोता है, (२) सुखसे जागता है, (३) बुरे स्वप्न नही देखता (४) देवता रक्षा करते है, (५) स्वप्नदोष नही होता। भिक्षुओ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पांच गुण है।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कायकी रक्षा करने, चीवरकी रक्षा करने, आसन-वासनकी रक्षा करते बैठनेकी।" 45

§५—कुछ और वस्त्रोंका विधान तथा चीवरोंके लिये नियम

(१) बिछौनेकी चादर

उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था और वह सारे आसनको नही ढकता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्र त्य स्त र ण (=आसनकी चादर) जितना बळा चाहे उतना बळा बनानेकी।" 46

(२) रोगीको कोपीन

उस समय आयुष्मान् आनन्दके उपाध्याय आयुष्मान् बे ल ट्ठ सी स को स्थूलकक्ष (=दाद) रोग था। उसके पछामे चीवर शरीरमे लिपट जाते थे। उन्हे भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने उन भिक्षुओको वह चीवर पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इस आयुष्मान्‌को स्थूलकक्ष रोग है और पछासे चीवर शरीरमे लिपट जाते है। उन्हे हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे है।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जिस भिक्षुको खुजली, फोळा, आस्राव या स्थूलकक्षका रोग हो उसको क ण्डू क प्र ति च्छा द न (=कोपीन)की।" 47

(३) अँगोछा (=मुख-पोंछन)

तब वि शा खा मृ गा र मा ता मुख पोछनेका वस्त्र ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा मृ गा र मा ता ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् इस मेरे मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार करें जिसमें कि यह मुझे चिरकाल तक हित सुखके लिये हो।"

भगवान्ने मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार किया। विशाखा मृगारमाता भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठकर चली गई। तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ मुख पोछनेके वस्त्रकी। 48

(४) पाँच बातोंसे युक्त व्यक्तिको विश्वसनीय समझना

उस समय रोज मल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। रोज मल्लने क्षौम (=अलसीकी छालका बना कपड़ा)की पिलोतिका आयुष्मान् आनन्दके हाथमें दी थी और आयुष्मान् आनन्दको क्षौम पिलोतिकाकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त (=व्यक्ति)पर विश्वास करनेकी—(१) प्रसिद्ध हो (२) सम्भ्रान्त हो (३) बोलनेवाला हो (४) जीता हो (५) लेनेपर मुझसे सन्तुष्ट होगा यह जानता हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँच बातोंसे युक्तपर विश्वास करनेकी। 49

(५) जलछक्के आदिके लिये उपयोगी वस्त्र

उस समय भिक्षुओंके तीनो चीवर पूर्ण थे किन्तु उन्हें जलछक्के और थैलेकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ परिष्कार (=सामग्री वस्तुओं)के वस्त्रकी। 50

(६) वस्त्रोंमें कुछका सदा और कुछका चारो मास इस्तेमाल करना

तब भिक्षुओंको यह हुआ—भगवान्ने जिन चीजोंके लिये अनुमति दी है (जैसे कि)—तीन चीवर, वार्षिक साटिका, आसन, प्रत्यस्तरण, कण्डू-प्रतिच्छादन या मुख पोछनेका वस्त्र या परिष्कार वस्त्र उन सभीका उपयोग करना चाहिये या उनका विकल्प[1] करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीनो चीवरोंको उपयोग करनेकी। विकल्प करनेकी नहीं। वार्षिक साटिकाको वर्षाके चारो मासो तक इस्तेमाल करनेकी उसके बाद विकल्प करनेकी। आसनको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं। प्रत्यस्तरणको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं। कण्डू प्रतिच्छादनको जब तक रोग है इस्तेमाल करनेकी उसके बाद विकल्प करनेकी। मुख पोछनेके वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं। परिष्कार वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं।" 51

(७) [illegible] चीवरकी लम्बाई चौड़ाई

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'कितने छोटे चीवरका विकल्प करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, बुद्धके अंगुलसे लम्बाईमें आठ अंगुल चौड़ाईमें चार अंगुल छोटे चीवरको विकल्प करनेकी। 52

[1] जिसको एक साथ नहीं रखा जा सकता।

(८) चीवरको हल्का, नरम आदि करनेका ढग

१—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प का पासुकूलसे बना (चीवर) भारी था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सू त्र रु क्ष[1] करनेकी।" 53

२—(चीवरका) कान लटका था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लटके कानको निकालनेकी।" 54

३—सूत बिखरे रहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, हवाके रुख ऊपर चढा लेनेकी।" 55

४—उस समय सघाटीसे पात्र टूट जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अप्टपदक[2] करनेकी।" 56

(९) कपळा कम होनेपर तीनों चीवरको छिन्नक नही बनाना

१—उस समय एक भिक्षुके लिये तीनो चीवर बनाते वक्त सारे छिन्नक (=टुकळेसिये) करके नही पूरे होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दो चीवरके छिन्नक होनेकी और एकके अछिन्नक होनेकी।" 57

२—दो छिन्नक और एक अछिन्नक भी नही पूरे पळते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो अछिन्नक और एक छिन्नककी।" 58

३—दो अछिन्नक और एक छिन्नक भी नही पूरा पळता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अ न्वा धिक (=जोळ)को भी लगानेकी। किन्तु भिक्षुओ सभी (चीवर)को अछिन्नक नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 59

(१०) अधिक वस्त्र माता-पिताको दिया जा सकता है

उस समय एक भिक्षुको बहुत चीवर (=कपळा, वस्त्र) मिला था। वह उसे माता-पिताको देना चाहता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! माता-पिताके देनेको मैं क्या कहूँ। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ माता-पिताको देनेकी। भिक्षुओ! श्रद्धासे दियेको नही फेंकना चाहिये। जो फेंके उसको दुक्कटका दोष हो।" 60

(११) एक चीवरसे गाँवमें नही जाना

उस समय एक भिक्षु अ न्ध व न में चीवरको डालकर उसके पास जो एक और (चीवर) था उसके साथ गाँवमें भिक्षाके लिये गया। चोर उस चीवरको चुरा ले गया और वह भिक्षु खराब चीवरवाला, मैले चीवरवाला हो गया। भिक्षुओने पूछा—"आवुस! तू क्यो खराब चीवरवाला, मैले चीवर वाला है?"

"आवुसो! मै अन्धवनमें चीवर डालकर० भिक्षाके लिये गया। चोरोने उस चीवरको चुरा लिया। उसीसे मैं खराब चीवरवाला, मैले चीवरवाला हूँ।" भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] चीवरकी कटी क्यारियोंकी मेंळको दोहरा करना होता है। सू त्र रु क्ष करनेमें कपळेको दोहरा करनेके बजाय सूतकी सिलाईहीसे वह काम लिया जाता है।

[2] मुहँ सीकर बनाया हुआ ढक्कन।

'भन्ते ! भगवान् इस मेरे मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार करें जिसमें कि यह मुझे चिरकाल तक हित सुखके लिये हो।

भगवान्ने मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार किया। वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठकर चली गई। तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ मुख पोछनेके वस्त्रकी। 48

(४) पाँच बातोंसे युक्त व्यक्तिको विश्वसनीय समझना

उस समय रो ज म ल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। रो ज म ल्ल ने क्षौ म (=अलसीकी छालका बना कपड़ा)की पि लो ति का आयुष्मान् आनन्दके हाथमें दी थी और आयुष्मान् आनन्दको क्षौम पि लो ति का की आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त (=व्यक्ति)पर विश्वास करनेकी—(१) प्रसिद्ध हो (२) सम्भ्रान्त हो (३) बोलनेवाला हो (४) जीता हो (५) लेनेपर मुझसे सन्तुष्ट होगा यह जानता हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँच बातोंसे युक्तपर विश्वास करनेकी। 49

(५) जलछक्के आदिके लिये उपयोगी वस्त्र

उस समय भिक्षुओंके तीनो चीवर पूर्ण थे किन्तु उन्हें जलछक्के और थैलेकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प रि ष्का र (=कामकी वस्तुओं)के वस्त्रकी। 50

(६) वस्त्रोंमें कुछका सदा और कुछका चारों मासोंसे इस्तेमाल करना

तब भिक्षुओंको यह हुआ—भगवान्ने जिन चीजोंके लिये अनुमति दी है (जैसे कि)—तीन चीवर वर्षिक साटिका आसन प्रत्यस्तरण कडूप-प्रतिच्छादन या मुख पोछनेका वस्त्र या परिष्कार वस्त्र उन सभीका उपयोग करना चाहिये या उनका वि क ल्प[^1] करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीनो चीवरोंको उपयोग करनेकी। विकल्प करनेकी नहीं। वर्षिक साटिकाको वर्षाके चारों मासों तक इस्तेमाल करनेकी उसके बाद विकल्प करनेकी आसनको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं प्र त्य स्त र ण को इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं क डू क प्र ति च्छा द न को जब तक रोग है इस्तेमाल करनेकी इसके बाद विकल्प करनेकी मुख पोछनेके वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं परिष्कार वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी विकल्प करनेकी नहीं। 51

(७) चारीवाले चीवरकी लम्बाई चौड़ाई

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'कितने पीछेके चीवरका विकल्प करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बुद्धके अंगुलसे लम्बाईमें आठ अंगुल चौड़ाईमें चार अंगुल पीछेके चीवरको विकल्प करनेकी। 52

---

[^1]: जिसको एक साथ नहीं रखा जा सकता।

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिया हो, तो—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उस भिक्षुको—'यह चीवर मेरे हैं'—(कह) उन चीवरोंको इस्तेमाल करनेकी। यदि भिक्षुओ ! उन चीवरोंको इस्तेमाल करनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आ जाय तो बराबरका हिस्सा देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओंके चीवर बाँटते समय किन्तु कुश पड़नेसे पहिले दूसरा भिक्षु आजाय तो उसेभी बराबरका भाग देना चाहिये। भिक्षुओ ! यदि उन भिक्षुओंके चीवर बाँटते समय और कुशके डाल देनेपर दूसरा भिक्षु आवे तो इच्छा न होनेपर भाग न देना चाहिये।" 65

४—उस समय आयुष्मान् ऋ षि दा स और आयुष्मान् ऋ षि भ द्र दो भाई स्थविर वर्षावास कर एक गाँवके आवासमे गये। लोगोंने—'देरसे स्थविर लोग आये हैं'—(कह) चीवर सहित भोजन तैयार किया। आवासके रहनेवाले भिक्षुओंने स्थविरोंसे पूछा—

"भन्ते ! स्थविरोंके कारण यह सांघिक चीवर मिले हैं। स्थविर (इनमें) भाग लेंगे ?"

स्थविरोंने यह कहा—"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते हैं (उससे) जबतक क ठि न न मिले तबतक तुम्हारेही वे चीवर होते हैं।"

उस समय तीन भिक्षु राजगृहमे वर्षावास करते थे। वहाँ लोग—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर देते थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भगवान्‌ने कमसे कम चार व्यक्तिका संघ कहा है, और हम तीन ही जने हैं। यह लोग—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दे रहे हैं। हमें कैसे करना चाहिये ?'

५—उस समय[१] आयुष्मान् नी ल वा सी आयुष्मान् सा ण वा सी, आयुष्मान् गो प क, आयुष्मान् भृ गु, और आयुष्मान् फलिक स दा न—बहुतसे स्थविर पा ट लि पु त्र के कु क्कु टा रा म में विहार करते थे। तब उन भिक्षुओंने पाटलिपुत्र जा उन स्थविरोंसे पूछा। स्थविरोंने यह कहा—

"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते है, जब तक क ठि न न मिले तुम्हारे ही वे होते हैं।"

(२) वर्षावासके भिन्न स्थानके चीवरमें भाग नहीं

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र श्रा व स्ती मे वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमें गये। वहाँ चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

"आवुस ! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप इनमे हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवरमें-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप (इनमें) हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिए भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप (इनमें) हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

---

[१] यह अंश बुद्ध-निर्वाणके बादका है। पा ट लि पु त्र (पाटलि गाम नहीं) नगर और कु क्कु टा रा म निर्वाणके बाद ही अस्तित्वमें आये थे।

भिक्षुओ ! एकही (और) बच चीवरसे गाँवमें नहीं जाना चाहिये। जो जाये उसको दुक्कट का दोष हो। 61

(१२) चीवरोंमेंसे किसी एकको छोड़ रखनेके कारण

उस समय आयुष्मान् आ न न्द (पहने चीवरको छोड़) और दूसरे चीवरके न रहते गाँवमें भिक्षाके लिये गये। भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"क्यों आवुस ! आनन्द भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमें जानेको मना किया है न ? आवुस ! तुम क्यों एकही चीवर और रहते गाँवमें प्रविष्ट हुए।

आवुसो ! यह है। भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमें जानेको मना किया है किन्तु मैं न रहनेपर प्रविष्ट हुआ हूँ।

भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे स धा टी रख छोड़ी जा सकती है—(१) रोगी होता है (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है (३) या नदी पार गया होता है (४) या किवाळ्से रक्षित विहार होता है (५) या क ठि न आस्तरण हो गया होता है। भिक्षुओ ! संघाटी छोड़ रखनेके ये चार कारण (ठीक) है। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे उ त रा स ङ्ग रख छोड़ा जा सकता है— (१) रोगी होता है (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है (५) या क ठि न आस्तरण हो गया होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे अ न्त र वा स क रख छोड़ा जा सकता है— (१) रोगी होता है (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है (५) या कठिन आस्तरण हो गया होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे व र्षि क शा टि का को रख छोड़ा जा सकता है—(१) रोगी होता है (२) सीमाके बाहर गया हो (३) नदीके पार गया हो (४) या किवाळ्से रक्षित विहार हो (५) वर्षिक साटिका न बनी या ठीक बनी हो भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोंसे वर्षिक साटिका रख छोड़ी जा सकती है। 62

§६–चीवरोंका बँटवारा

(१) संघके लिये दिये चीवरपर अधिकार

१—उस समय एक भिक्षुने अकेलेही वर्षावास किया। वहाँ लोगोंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिये। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कमसे कम चार व्यक्तिक संघ और मैं अकेला हूँ। इन लोगोंने—'संघको देते हैं' (कह) चीवर दिये हैं। क्यों न मैं इन सांघिक (= संघके) चीवरोंको श्रा व स्ती ले चलूँ ? तब उस भिक्षुने उन चीवरोंको ले श्रावस्ती जा भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षु ! जबतक कठिन न मिल जाय यह चीवर तेरेही है। भिक्षुओ ! यदि भिक्षुने अकेला वर्षावास किया है और मनुष्योंने—'संघको देते है'—(कह) चीवर दिये है। तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन चीवरोंके उसीके होनेकी जब तक कि कठिन नहीं मिल जाता। 63

—उस समय एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योंने—'संघको देते हैं'—(कह) चीवर दिया। [1] —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघके सामने बाँटनेकी। 64

---

[1] ऊपरहीकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योने—'सघको देते हैं'—(कह) चीवर दिया हो, तो—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उस भिक्षुको—'यह चीवर मेरे है'—(कह) उन चीवरोको इस्तेमाल करनेकी। यदि भिक्षुओ ! उन चीवरोको इस्तेमाल करनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आ जाय तो वरावरका हिस्सा देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओके चीवर वाँटते समय किन्तु कुश पडनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आजाय तो उसेभी वरावरका भाग देना चाहिये। भिक्षुओ ! यदि उन भिक्षुओके चीवर वाँटते समय और कुशके डाल देनेपर दूसरा भिक्षु आवे तो इच्छा न होनेपर भाग न देना चाहिये।" 65

४—उस समय आयुष्मान् ऋ षि दा स और आयुष्मान् ऋ षि भ द्र दो भाई स्थविर वर्षावास कर एक गाँवके आवासमे गये। लोगोने—देरमे स्थविर लोग आये हैं—(कह) चीवर सहित भोजन तैयार किया। आवासके रहनेवाले भिक्षुओने स्थविरोसे पूछा—

"भन्ते ! स्थविरोके कारण यह साघिक चीवर मिले है। स्थविर (इनमे) भाग लेंगे ?"

स्थविरोने यह कहा—"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते है (उससे) जवतक क ठि न न मिले तवतक तुम्हारेही वे चीवर होते हैं।"

उस समय तीन भिक्षु राजगृहमें वर्षावास करते थे। वहाँ लोग—'सघको देते हैं'—(कह) चीवर देते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्‌ने कमसे कम चार व्यक्तिका सघ कहा है, और हम तीन ही जने है। यह लोग—'सघको देते है'—(कह) चीवर दे रहे है। हमें कैसे करना चाहिये ?'

५—उस समय[1] आयुष्मान् नी ल वा सी आयुष्मान् साँ ण वा सी, आयुष्मान् गो प क, आयुष्मान् भृ गु, और आयुष्मान् फलिक स दा न—वहुतसे स्थविर पा ट लि पु त्र के कु क्कु टा रा म में विहार करते थे। तब उन भिक्षुओने पाटलिपुत्र जा उन स्थविरोसे पूछा। स्थविरोने यह कहा—

"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्‌के उपदेशे धर्मको जानते हैं, जव तक क ठि न न मिले तुम्हारे ही वे होते है।"

(२) वर्षावासके भिन्न स्थानके चीवरमें भाग नहीं

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र श्रा व स्ती में वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमें गये। वहाँ चीवर वाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

"आवुस ! यह साघिक चीवर वाँटे जा रहे है। आप इनमें हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवरमें-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर वाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह साघिक चीवर वाँटे जा रहे हैं। आप (इनमें) हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर वाँटनेके लिए भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह साघिक चीवर वाँटे जा रहे हैं। आप (इनमें) हिस्सा लेंगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमें गये। वहाँ (भी) चीवर वाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

---

[1] यह अश बुद्ध-निर्वाणके वादका है। पा ट लि पु त्र (पाटलि गाम नहीं) नगर और कु क्कु टा रा म निर्वाणके वाद ही अस्तित्वमें आये थे।

'आवुस! यह सांघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप (इसमें) हिस्सा लेंगे ?

"हाँ आवुस! लूँगा'—(वह) वहाँसे चीवर भाग ले बळा भारी चीवरका गट्ठर बाँध फिर या बस्ती लौट आये। भिक्षुओंने यह कहा—

"आवुस उपनंद! तुम बळे पुण्यवान् हो। तुम्हें बहुत चीवर मिला है।

'आवुसो! कहाँसे मैं पुण्यवान् हूँ? आवुसो! मैं यहाँ श्रावस्तीमें वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमें गया वहाँसे भी चीवर-भाग लिया। इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिल गया।

"क्या आवुस उपनंद! दूसरी जगह वर्षावास करके तुमने दूसरी जगह चीवर-भाग लिया?

'हाँ आवुस!

तब जो वह भिक्षु अल्पेच्छ थे वह हैरान होते थे— 'कैसे आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्र दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर-भाग लेंगे!! भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच उपनंद! तूने दूसरी जगह वर्षावासकर, दूसरी जगह चीवर-भाग लिया?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

'कैसे तू मोघ-पुरुष! दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर भाग लेगा! मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! दूसरी जगह वर्षावास करके दूसरी जगह चीवर-भाग नहीं लेना चाहिये। जो ले उसको दुक्कटका दोष हो। 66

(२) दो स्थानमें वर्षावास करनेपर हिस्सेका आधा ही आधा

उस समय आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रने—इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा—(सोच) अकेले दो आवासोंमें वर्षावास किया। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रको चीवरमें हिस्सा देना चाहिये?—भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! दे दो मोघ पुरुषको एक भाग।

'यदि भिक्षुओ! भिक्षु—'इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा'—सोच अकेले दो आवासोंमें वर्षावास करे और यदि एक जगह आधा और दूसरी जगह आधा बसे तो एक जगहसे आधा और दूसरी जगहसे आधा चीवर-भाग देना चाहिये। या जहाँ बहुत अधिक बसा हो वहाँसे चीवर-भाग देना चाहिये। 67

§७—रोगीकी सेवा और मृतकका दायभागी

(१) रोगीकी सेवाका भार

उस समय एक भिक्षुको पेट बिगळनेकी बीमारी थी। वह अपने मल-मूत्रमें पळा था। तब भगवान् आयुष्मान् आनंदको पीछे लिये आश्रम घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार था वहाँ पहुँचे। भगवान्ने उस भिक्षुको अपने मल-मूत्रमें पळा देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उस भिक्षुसे यह बोले—

"भिक्षु! तुझे क्या रोग है?

पेटमें विकार है भगवान्।

"है तेरे पास भिक्षु! कोई परिचारक?"

"नहीं है भगवान्!"

"क्यों भिक्षु तेरी परिचर्या नहीं करते?"

"भन्ते! मैं भिक्षुओंका कोई काम करनेवाला न था, इसलिये भिक्षु मेरी परिचर्या नहीं करते।"

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"जा आनन्द! पानी ला, इस भिक्षुको नहलायेंगे।"

"अच्छा भन्ते!"—(कह) आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌को उत्तर दे पानी लाये। भगवान्‌ने पानी डाला। आयुष्मान् आनन्दने धोया। भगवान्‌ने सिरको पकड़ा तथा आयुष्मान् आनन्दने पैरको, और उठाकर चारपाई पर लिटा दिया।

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें इसी प्रसंगमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर पूछा—

"भिक्षुओ! क्या अमुक विहारमें रोगी भिक्षु है?"

"है, भगवान्!"

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! उस आयुष्मान्‌को पेटकी बीमारीका रोग है।"

"है कोई, भिक्षुओ! उस भिक्षुका परिचारक?"

"नहीं है भगवान्!"

"क्या भिक्षु उसकी सेवा नहीं करते?"

"भन्ते! वह भिक्षु भिक्षुओंका कोई काम करनेवाला नहीं था, इसलिये भिक्षु उसकी सेवा नहीं करते।"

"भिक्षुओ! न तुम्हारे माता है न पिता, जो कि तुम्हारी सेवा करेंगे। यदि तुम एक दूसरेकी सेवा नहीं करोगे तो कौन सेवा करेगा?

"भिक्षुओ! जो मेरी सेवा करना चाहे वह रोगीकी सेवा करे। यदि उपाध्याय है तो उपाध्यायको यावत् जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि आचार्य है०। यदि साथ विहार करनेवाला है०। यदि शिष्य है०। यदि एक-उपाध्याय-का शिष्य है०। यदि एक-आचार्य-का शिष्य है तो यावत्-जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि नहीं है तो उपाध्याय, आचार्य, साथ-विहरनेवाला (=चेला), शिष्य, एक-उपाध्याय-का-शिष्य, एक-आचार्य-का-शिष्य या संघको सेवा करनी चाहिये। यदि न सेवा करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

(२) कैसे रोगीकी सेवा दुष्कर है

"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है—(१) (साथियोंके) अनुकूल न करनेवाला होता है, (२) अनुकूलकी मात्रा नहीं जानता, (३) औषध सेवन नहीं करता, (४) हित चाहनेवाले रोगि-परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात नहीं प्रकट करता—बढ़ते (रोग)को बढ़ रहा है, हटतेको हट रहा है, ठहरेको ठहरा है, (५) दुःखमय, तीव्र, खर, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय, प्राणहर, शारीरिक पीड़ाओंका सहनेवाला नहीं होता। भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है।"

(३) कैसे रोगीकी सेवा सुकर है

"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त रोगीकी सेवा करना सुकर होता है—(१) अनुकूल करनेवाला होता है, (२) अनुकूलकी मात्रा जानता है, (३) औषध सेवन करता है, (४) हित चाहनेवाले रोगि-

परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात प्रकट करता है— (५) दुःसह शारीरिक पीड़ाओंको सहने वाला होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच ।

(४) अयोग्य रोगी परिचारक

भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त रो गी प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य नहीं होता— (१) दवा नहीं ठीक कर सकता (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को नहीं जानता प्रतिकूलको देता है अनुकूलको हटाता है (३) किसी लाभके ख्यालसे रोगीकी सेवा करता है मैत्री-पूर्ण चित्तसे नहीं (४) मल-मूत्र थूक और वमनके हटानेमें घृणा करता है (५) रोगीको समय समय पर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित करनेमें समर्थ नहीं होता। भिक्षुओ ! इन पाँच ।

(५) योग्य रोगी परिचारक

भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त रो गी प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य होता है— (१) दवा ठीक करनेमें समर्थ होता है (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को जानता है—प्रतिकूलको हटाता है अनुकूलको देता है (३) किसी लाभके ख्यालसे नहीं मैत्री-पूर्ण चित्तसे रोगीकी सेवा करता है (४) मल-मूत्र थूक और वमनके हटानेमें घृणा नहीं करता (५) रोगीको समय समयपर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित करनेमें समर्थ होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच ।

(६) मरे भिक्षु या श्रामणेरकी चीज़का मालिक संघ

१—उस समय दो भिक्षु को स ल ज न प द में रास्तेसे जा रहे थे। वह एक आवासमें गये। वहाँ एक बीमार भिक्षु था। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुस ! भगवान्ने रोगी-सेवाकी प्रशंसा की है। आओ आवुस ! हम इस रोगीकी सेवा करें।' उन्होंने उसकी सेवा की। उनके सेवा करतेमें वह मर गया। तब उन भिक्षुओंने उस भिक्षुके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती जा भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मरे भिक्षुके पात्र-चीवरका स्वामी संघ है। यदि रो गी प रि चा र क ने बहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघको तीन चीवर और पात्रको रो गी प रि चा र क को देने की। 69

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देना चाहिये वह रो गी प रि चा र क भिक्षु संघके पास जाकर ऐसा कहे—'भन्ते ! अमुक नामवाला भिक्षु मर गया है। यह उसका त्रिचीवर और पात्र है।' फिर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—'पूज्य संघ मेरी सुने। अमुक नामका भिक्षु मर गया। यह उसका त्रि चीवर और पात्र है। यदि संघ उचित समझे तो यह त्रिचीवर और पात्रको इस रो गी प रि चा र क को दे। यह सूचना है । संघको यह पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'"

२ उस समय एक श्रामणेर मर गया। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! श्रामणेरके मरनेपर उसके पात्र चीवरका स्वामी संघ है। यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ संघको तीन चीवर और पात्रको रोगी-परिचारक को देने की। 70

[1] ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(७) मरेकी सम्पत्तिमें सेवा करनेवाले भिक्षु और श्रामणेरका भाग

१—उस समय एक भिक्षु और एक श्रामणेरने एक रोगीकी सेवाकी । उसकी सेवा करतेमें वह

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

मर गया। तब उस रोगी-परिचारक भिक्षुको ऐसा हुआ—'रोगी-परिचारक श्रामणेरको कैसे हिस्सा देना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोगी-परिचारक श्रामणेरको बराबरका भाग देने की।" 71

२—उस समय बहुत भाड-बहुत सामानवाला एक भिक्षु मर गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुके मरनेपर उसके पात्र-चीवरका स्वामी सघ है। यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो अनुमति देता हूँ सघको त्रिचीवर और पात्र रोगी-परिचारकको देनेकी। जो वहाँ छोटे छोटे भाड, छोटे छोटे सामान हो उन्हे सघके सामने बाँटने की, जो वहाँ बळे बळे भाड, बळे बळे सामान हो उन्हे विना दिये, विना बाँटे आगत-अनागत (=वर्तमान और भविष्यके) चातुर्दिश (=चारो दिशाओंके, सारे ससारके) सघकी (सम्पत्ति) होने की।" 72

§८—चीवरोंके वस्त्र रंग आदि

(१) नगे रहनेका निषेध

उस समय एक भिक्षु नगा हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते! भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता (=त्यागी जीवन) सन्तोष, तपस्या, (अव-) धूतपन, प्रासादिकता, अ-सग्रह, और उद्योगकी प्रशसा करते हैं। भन्ते! यह नग्नता अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ०और उद्योगको लानेवाली है। अच्छा हो भन्ते! भगवान् भिक्षुओको नग्न रहनेकी अनुमति दे।"

भगवान्‌ने फटकारा—

"अयुक्त है मोघपुरुष! अनुचित है, अप्रतिरूप, श्रमणके आचरणके विरुद्ध, अविहित है, अकरणीय है। कैसे मोघपुरुष तूने तीर्थिकोके आचार इस नग्नताको ग्रहण किया! मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! नग्नताको जो कि तीर्थिकोका आचार है नही ग्रहण करनी चाहिये। जो ग्रहण करे उसको थुल्लच्चय का दोष हो।" 73

(२) कुश-चीर आदिका निषेध

१—उस समय एक भिक्षु कुश-चीर (=कुशका बना कपळा)को पहनकर ० वल्कल चीर पहनकर ०, फलक (=काठ)-चीर पहनकर०, (मनुष्य) केश-कम्बल पहनकर ०, बाल-कम्बल पहनकर०, उल्लूका पख पहनकर०, मृग-छालेकी कतरनको पहनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते! भगवान् अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ० की प्रशसा करते हैं। भन्ते! यह मृग-छालकी कतरन (का पहिनना) अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ० और उद्योगको लानेवाला है। अच्छा हो भन्ते! भगवान् भिक्षुओको इस मृगछालेकी कतरन (पहनने)की अनुमति दें।"

भगवान्‌ने फटकारा ०—

"भिक्षुओ! अजिनक्षिप (=मृग-छालेकी कतरन)को जोकि तीर्थिकोका आचार है नहीं धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे थुल्लच्चय का दोष हो।" 74

२—उस समय एक भिक्षु अर्क-नाल (=मँदारके नालका बना कपळा) पहनकर ० पोत्थक

(=टाट) पहनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया ०।—[1]

"भिक्षुओ! पोत्थकको नहीं पहनना चाहिये। जो पहिने उसको दुक्कटका दोष हो। 75

(३) बिल्कुल नीले पीले आदि चीवरोंका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सारे ही नीले चीवरोंको धारण करते थे, सारे ही पीले चीवरोंको धारण करते थे, सारे ही लाल, सारे ही मजीठ, सारे ही काले, सारे ही महारंगसे रंगे, सारे ही महानाम (=हल्दी)से रंगे चीवरोंको धारण करते थे। कटी किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे, लंबी किनारीके चीवरोंको धारण करते थे, फूलदार किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे, फन (की शकलकी) किनारीवाले चीवरोंको धारण करते थे। कंचुक धारण करते थे। तिरीटक (=एक छाल)को धारण करते थे। वेठन धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! न सारे नीले चीवरोंको धारण करना चाहिये, न सारे पीले चीवरोंको धारण करना चाहिये, न वेठन धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 76

(४) चीवर आदिके न मिलनेपर संघका कर्तव्य

१—उस समय वर्षावासकर भिक्षु चीवर न मिलनेसे चले जाते थे, भिक्षु-आश्रम छोड़कर चले जाते थे। मर भी जाते थे। श्रामणेर बन जाते थे। (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाले हो जाते थे। अन्तिम वस्तु (=पाराजिक)के दोषी माननेवाले भी हो जाते थे, उन्मत्त, विक्षिप्त-चित्त, होश न रखनेवाले, दोष न देखनेपर भी (अपनेको) उत्क्षिप्तक माननेवाले होते थे, दोषका प्रतिकार न करनेवाले उत्क्षिप्तक भी, बुरी धारणाको न त्यागनेसे (अपनेको) उत्क्षिप्तक माननेवाले होते थे, पंडक भी, चोरके साथ वास करनेवाले भी, तीर्थिकके पास चले जानेवाले भी, तिर्यक् योनि[2]में गये भी, मातृघातक भी, पितृघातक भी, अर्हत् घातक भी, भिक्षुणीदूषक भी, संघमें फूट डालनेवाले भी, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले भी, (स्त्री पुरुष) दोनोंके लिंगवाले भी (अपनेको) बतलानेवाले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'यदि भिक्षुओ! वर्षावासकर भिक्षु, चीवरके न पानेसे चला जाता है तो योग्य ग्राहक[3] होनेपर देना चाहिये। 77

(५) चीवरोंका संघ मालिक

१—"यदि भिक्षुओ! वर्षावासकर भिक्षु चीवरके न पानेसे भिक्षु-आश्रमको छोड़ जाता है, मर जाता है, श्रामणेर, (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला, अंतिम वस्तुका दोषी अपनेको माननेवाला होता है तो संघ मालिक है। 78

२—"यदि उन्मत्त, बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक मानता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये। 79

३—"यदि पंडक, दोनों लिंगोंवाला माननेवाला होता है तो संघ मालिक है। 80

४—"यदि भिक्षुओ! वर्षावासकर चीवरके मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले चला जाता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये। 81

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी समझना चाहिये। मिलाओ कुशवस्त्र भिक्षुणी-स्कन्धक (पृष्ठ ५१९)।

[2] पशु और प्रेत की योनि।

[3] चीवर आदि देकर संग्रह करने योग्य।

५—"यदि भिक्षुओ! वर्षावासकर चीवर मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले भिक्षु आश्रम छोळ चला जाता है, मर जाता है० अन्तिम वस्तुका दोपी माननेवाला होता है तो सघ स्वामी है।" 82

६—"यदि० बाँटनेसे पहिले उन्मत्त०, बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माननेवाला होता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये।" 83

७—"यदि० बाँटनेसे पहले पडक० दोनोके लिंगोवाला माननेवाला होता है तो सघ मालिक है।" 84

§९—चीवर-दान और चीवर-वाहनके नियम

(१) संघ-भेद होनेपर चीवरोके सनके अनुसार बँटवारा

१—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओके वर्षावास करलेनेपर चीवर मिलनेसे पहले सघमे फूट हो जाती है और लोग—सघको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते है और एक पक्षको चीवर देते है तो वह सघका ही है।" 85

२—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओके वर्षावास कर लेनेपर सघमें फूट हो जाती है और लोग—सघको देते हैं—(कह) एक पक्षको (दक्षिणाका) पानी देते है और उसी पक्षको चीवर देते है, तो वह सघका ही है।" 86

३—"यदि० चीवरके मिलनेसे पहिलेही सघमें फूट हो जाती है और लोग—इस पक्षको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते हैं और दूसरे पक्षको चीवर देते हैं तो वह पक्षका ही है।" 87

४—"यदि० सघमें फूट हो जाती है और लोग—(इस) पक्षको देते हैं—(कह) एक पक्षको पानी देते हैं और उसी पक्षको चीवर देते है तो वह पक्षका ही है।" 88

५—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुओके वर्षावास करलेनेपर चीवरके मिल जानेपर (किन्तु) बाँटनेसे पहिले सघमें फूट होती है तो सबको बराबर बराबर बाँटना चाहिये।" 89

(२) दूसरेके लिये दिये चीवरोंका चीवर-वाहक द्वारा उपयोग करनेमे नियम

१—उस समय आयुष्मान् रे व त ने एक भिक्षुके हाथसे—'यह चीवर स्थविरको देना'—(कह) आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास एक चीवर भेजा। तब उस भिक्षुने रास्तेमें आयुष्मान् रे व त से (माँगनेपर पा जाने के) विश्वाससे उस चीवरको (अपने लिये) ले लिया। जब आयुष्मान् रे व त ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे मिलनेपर पूछा—"भन्ते! मैंने स्थविरके लिये चीवर भेजा था, मिला वह चीवर?"

"आवुस! मैंने उस चीवरको नही देखा।"

तब आयुष्मान् रे व त ने उस भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! (तुम) आयुष्मान्के हाथसे मैंने स्थविरके लिये चीवर भेजा, वह चीवर कहाँ है?"

"भन्ते! मैंने आयुष्मान्से (माँगनेपर पाजाने के) विश्वाससे उस चीवरको (अपने लिये) ले लिया।"

भगवान्से यह बात कही—

"यदि भिक्षुओ! (कोई) भिक्षु भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको दो—(कह) चीवर भेजे, और वह रास्तेमें भेजनेवालेका विश्वास (होनेसे अपने लिये) ले ले तो लेना ठीक है, जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे यदि लेता है तो लेना ठीक नही है।" 90

२—"यदि भिक्षुओ! कोई (भिक्षु) भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको दो—(कह) चीवर

भेजता है और वह रास्तेमें सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उस मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक है। जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वासस अगर लेता है तो लेना ठीक नही। 91

३—"यदि वह रास्तम सुनता है कि जिसके लिये भेजा गया वह मर गया और उसे मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नही। यदि भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक है। 92

४—"यदि सुनता है कि दोनो मर गये तो भेजनेवालेका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक है जिसको भेजा गया उसका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक नही। 93

५—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(यह) चीवर भेजता है और वह रास्तम भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक नही जिसको भेजा गया उसके विश्वाससे ले लेता है तो ठीक है। 94

६—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(यह) चीवर भेजता है और वह रास्तेमे सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उसे मृतक चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नही है जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे अगर लेता है तो ठीक है। 95

७—"यदि सुनता है जिसको भेजा गया वह मर गया और उसका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक है। भेजनेवालेके विश्वासस अगर ले लेता है तो ठीक नही है। 96

८—"यदि सुनता है कि दोनो मर गये तो यदि भेजनेवालेका मृतक-चीवर (मान) इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक नही और जिसको भेजा गया उसका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो ठीक है। 97

(३) आठ प्रकारके चीवर-दान और उनका बँटवारा

"भिक्षुओ! यह आठ चीवरकी मातृकाएँ (=उत्पत्तिके कारण) है—(१) सीमामें देता है (२) वचन-बद्ध होने (=कतिका)से देता है (३) भिक्षाके स्वीकारसे देता है (४) (अकेले भिक्षु-) सघको देता है (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनो सघको देता है (६) वर्षावास कर चुके सघको देता है (७) (चीज) कहकर देता है (८) व्यक्तिको देता है।

(१) 'सीमामें देता है' तो सीमाके भीतर जितने भिक्षु है उनको बाँटना चाहिये।98

(२) 'वचन-बद्ध होनेसे देता है' तो एक प्रकारके लाभवाले जितने आवास है एक आवासको देनेपर उन सभी (आवासो)के लिये दिया होता है।99

(३) 'भिक्षाके स्वीकारसे देता है' तो जहाँ (वह दायक) सघका काम बराबर किया करता है वहाँके लिये दिया होता है। 100

(४) (एक) सघको देता है' तो सघके सामने बाँटना चाहिये। 101

(५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनो सघको देता है' तो चाहे भिक्षु बहुत हो और भिक्षुणी एकही हो आधा आधा (बाँट) देना चाहिये चाहे भिक्षुणी बहुत हो भिक्षु एकही हो आधा आधा (बाँट) देना चाहिये। 102

(६) 'वर्षावास' कर चुके सघको देता है' तो जितने भिक्षुओने उस आवासमें वर्षावास किया उन्हे बाँटना चाहिये। 103

(७) '(चीज़) कहकर देता है' तो यवागू या भात या खाद्य (वस्तु) या चीवर या आसन या भैषज्य (जिसके लिये कहा, वह देना चाहिये)। 104

(८) 'व्यक्तिको देता है'=यह चीवर अमुकको देता हूँ (तो उसी व्यक्तिको देना चाहिये)।" 105

चीवरक्खन्धक समाप्त ॥८॥

९—चापेय-स्कंधक

१—कर्म और अकर्म। २—पाँच प्रकारके संघ (के कोरम्) और उनके अधिकार।
३—नियम-विरुद्ध और नियमानुकूल दंड।
४—नियम-विरुद्ध दंड। ५—नियम-विरुद्ध दंड-हटाना। ६—नियम-विरुद्ध दंडका संशोधन।
७—नियम-विरुद्ध दंड-हटानेका संशोधन।

§१—कर्म और अकर्म

१—चम्पा

(१) निर्दोषको दंडित करना अपराध है

१—उस समय बुद्ध भगवान् च म्पा में ग ग्ग रा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे। उस समय का शी देशमें वा स भ गा म नामक (गाँव) था। वहाँपर का श्य प गो त्र नामक आवासिक भिक्षु रहता था। वह इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आवें और आये अच्छे भिक्षु सुख-पूर्वक विहार करें और यह आवास वृद्धि—वि रू ढि और वि पु ल ता को प्राप्त हो।

उस समय बहुतसे भिक्षु का शी (देश) में चारिका करते जहाँ वा स भ गा म था वहाँ पहुँचे। का श्य प गो त्र भिक्षुने दूरसेही उन भिक्षुओंको आते देखा। देखकर आसन बिछाया पादोदक पाद पीठ पादकठलिक रख दिया और अगवानीकर (उनके) पात्र चीवरको लिया। पानी पीनेको पूछा नहानेके लिये प्रबन्ध किया। यवागू खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति) का यत्न किया। तब उन नवा गन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आवासिक भिक्षु बहुत अच्छा है (हमारे) नहानेके लिये इसने प्रबन्ध किया यवागू खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति) का यत्न किया। आओ आवुसो! हम यहीं वा स भ गा म में वास करें।' तब उन आगन्तुक भिक्षुओंने वहीं वा स भ गा म में वास किया।

तब काश्यपगोत्र भिक्षुको यह हुआ—'इन नवागन्तुक भिक्षुओंकी यात्राकी जो थकावट थी वह भी दूर हो गई जो स्थानकी अजानकारी थी वह भी जान गये यावज्जीवन दूसरोंके कुटुम्बमें (=खाने-पीनेकी चीजोंके लिये) यत्न करना दुष्कर है। माँगना लोगोंको अप्रिय होता है। क्यों न मैं यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करना छोड़ दूँ।' तब उसने यवागू खाद्य और भातके लिये उत्सुकता करना छोड़ दिया।

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! पहले यह आवासिक भिक्षु नहानेके लिये प्रबन्ध करता यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करता था। सो आवुसो! अब यह आवासिक भिक्षु दुष्ट हो गया। आओ आवुसो! हम इस आवासिक भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) करें।' तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने एकत्रित हो का श्य प गो त्र भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! पहले तू नहानेके लिये प्रबन्ध करता यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता

करता था, सो तू आवुस ! अब न नहानेका प्रबन्ध करता है, न यवागू खाद्य भोजनके लिये उत्सुकता करता है, सो आवुस ! तूने अपराध किया। क्या तू उस अपराधको देखता है ?"

"आवुसो ! मैंने दोष नहीं किया जिसको कि मैं देखूँ।"

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने अ प रा ध (=आपत्ति) न देखनेके लिये का श्य प गो त्र भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) किया। तब का श्य प गो त्र भिक्षुको यह हुआ—'मैं नहीं जानता कि यह आ प त्ति है कि अ न् आ प त्ति है। आ प त्ति (=अपराध) मैंने की है, या नहीं की है। मैं उ त्क्षि प्त[1] हूँ या उत्क्षिप्त नहीं हूँ। (मेरा उत्क्षेपण) धर्मानुसार है या धर्मविरुद्ध। को प्य (=अयुक्त) है या अ को प्य। कारणसे है या अकारणसे। क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्‌से यह पूछूँ।'

तब काश्यपगोत्र भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिया। क्रमशः चारिका करते जहाँ च म्पा थी और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा।

बुद्ध भगवानोंका यह नियम है०[2] बिना तकलीफके रास्तेमें तो आया ? भिक्षु ! कहाँसे तू आ रहा है ?"

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफके भन्ते ! मैं रास्तेमें आया। भन्ते ! का शि देशमें वा स भ गा म है वहाँका मैं आश्रमनिवासी हूँ। मैं इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आयें० और विपुलताको प्राप्त हों०[3] क्यों न मैं चम्पा जाकर भगवान्‌से यह पूछूँ। वहाँसे भगवान् मैं आ रहा हूँ।"

"भिक्षुओ ! यह अन् आपत्ति है, आपत्ति नहीं है। तू आपत्ति-रहित है, आपत्ति सहित नहीं, तू अनुत्क्षिप्त है, उत्क्षिप्त नहीं, तेरा उत्क्षेपण अधर्मसे हुआ है, कोप्यसे हुआ है, कारण बिना हुआ है, जा भिक्षु ! तू वहीं वा स भ गा म में निवासकर।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) का श्य प भिक्षु भगवान्‌को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको पछतावा हुआ, अफसोस हुआ—'अलाभ है हमको, लाभ नहीं ! दुर्लभ हुआ हमें, सुलाभ नहीं हुआ जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी बिना, कारण बिना उत्क्षेपण किया। आओ आवुसो ! हम च म्पा में चलकर भगवान्‌के पास अपराधको (कह) क्षमा करायें।'

तब वह नवागन्तुक भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिये। क्रमशः जहाँ च म्पा थी, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोंका यह आचार है०।

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफके भन्ते ! हम रास्तेमें आये। भन्ते ! का शि देशमें वा स भ गा म है वहाँसे हम आये हैं।"

"भिक्षुओ ! तुमनेही (उस) आश्रमवासी भिक्षुको उत्क्षिप्त किया था ?"

"हाँ भन्ते !"

"किस अपराधसे ? किस कारणसे ?"

"बिना अपराधके, बिना कारणके भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

---

[1]जिसको उत्क्षेपणका दंड हुआ हो। [2]देखो पृष्ठ १८५। [3]पीछेका पाठ दुहराओ।

९—चम्पेय-स्कंधक

१—कर्म और अकर्म। २—पाँच प्रकारके संघ(के कोरम्) और उनके अधिकार।
३—नियम-विरुद्ध और नियमानुकूल दंड।
४—नियम-विरुद्ध दंड। ५—नियम-विरुद्ध दंड-हटाव। ६—नियम-विरुद्ध दंडका संशोधन।
७—नियम-विरुद्ध दंड-हटावका संशोधन।

§१—कर्म और अकर्म

१—चम्पा

(१) निर्दोषका उत्क्षेप करना अपराध है

१—उस समय बुद्ध भगवान् च म्पा में ग ग रा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे। उस समय का शी देशमें वा स भ गा म नामक (गाँव) था। वहाँपर का श्य प गो त्र नामक आश्रमवासी भिक्षु रहता था। वह इसके विषयमें बराबर यत्नशील रहता था जिसमें कि न आये अच्छे भिक्षु आवें और आये अच्छे भिक्षु सुख-पूर्वक विहार करें और यह आवास वृद्धि—वि रू ढि और वि पु ल ता को प्राप्त हो।

उस समय बहुतसे भिक्षु का शी (देश)में चारिका करते जहाँ वा स भ गा म था वहाँ पहुँचे। का श्य प गो त्र भिक्षुने दूरसेही उन भिक्षुओंको आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पादोदक, पाद पीठ, पादकठलिक रख दिया, और अगवानीकर (उनके) पात्र-चीवरको लिया। पानी पीनेको पूछा नहानेके लिये प्रबन्ध किया। यवागू खाद्य (और) भोजन(की प्राप्ति)का यत्न किया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'यह आश्रमवासी भिक्षु बहुत अच्छा है (हमारे) नहानेके लिये इसने प्रबन्ध किया यवागू खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति)का यत्न किया। आओ आवुसो! हम यहीं वा स भ गा म में वास करें। तब उन आगन्तुक भिक्षुओंने वहीं वा स भ गा म में वास किया।

तब काश्यपगोत्र भिक्षुको यह हुआ—'इन नवागन्तुक भिक्षुओंको यात्राकी जो थकावट थी वह भी दूर हो गई, जो स्थानकी अजानकारी थी वह भी जान गये। यावज्जीवन दूसरोंके कुटुम्बमें (—खाने-पीनेकी चीजोंके लिये) यत्न करना दुष्कर है। माँगना लोगोंको अप्रिय होता है। क्यों न मैं यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करना छोड़ दूँ। तब उसने यवागू खाद्य और भातके लिये उत्सुकता करना छोड़ दिया।

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! पहले यह आश्रमवासी भिक्षु नहानेके लिये प्रबन्ध करता यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करता था। सो आवुसो! अब यह आश्रमवासी भिक्षु दुष्ट हो गया। आओ आवुसो! हम इस आश्रमवासी भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दंड) करें। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओंने एकत्रित हो का श्य प गो त्र भिक्षुसे यह कहा—

'आवुस! पहले तू नहानेके लिये प्रबन्ध करता यवागू खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता

कारण, वर्गताके कारण, कोप्य (=हटाने लायक) और अयोग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको नहीं करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके कर्मकी अनुमति नही दी। भिक्षुओ ! जो यह अधर्मसे समग्र कर्म है भिक्षुओ ! यह कर्म अधर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है०। भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे वर्ग कर्म है वह कर्म धर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है। ०। ० भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे समग्रकर्म है यह धर्मताके कारण, सामग्रताके कारण, अकोप्य, और योग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको करना चाहिये। ऐसे कर्मकी मैंने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! सीखना चाहिये कि जो यह धर्मसे समग्र कर्म है उसे करूँगा।"

(४) अकर्मोंके भेद

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म (=दंड) करते थे—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म करते थे, (२) अधर्मसे समग्र कर्म०, (३) धर्मसे वर्ग कर्म०, (४) धर्म जैसेसे वर्गकर्म०, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०, (६) सू च ना[1] विना भी अ नु श्रा व ण[1] युक्त कर्म करते थे, (७) अ नु श्रा व ण विनाभी सूचना-युक्त कर्म करते थे, (८) सू च ना विनाभी, अ नु श्रा व ण विनाभी कर्म करते थे, (९) ध र्म (—बुद्धोपदेश)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१०) वि न य (—भिक्षु नियम)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (११) बुद्धशासनके विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१२) प टि कु ट्ठ क ट (=दूसरेके निन्दा- वाक्यके जवाबमे किया गया) धर्म-विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होतेथे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करेंगे०।' तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करते है—० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है, उसे नही करना चाहिये। (२) अधर्मसे समग्र कर्म०। (३) धर्मसे वर्ग कर्म०। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म०। (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०। (६) ज्ञ प्ति बिना, अ नु श्रा व ण युक्त कर्म०। (७) अनुश्रावण विना ज्ञप्तियुक्त कर्म०। (८) अनुश्रावण विना भी और ज्ञप्ति विना भी कर्म०। (९) धर्मसे विरुद्ध कर्म०। (१०) विनय-विरुद्ध कर्म०। (११) बुद्ध-शासनके विरुद्ध कर्म०। (१२) पटिकुट्ठकट धर्म विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म अकर्म्य है, उसे नही करना चाहिये। 3

(५) कर्म छ

"भिक्षुओ ! यह छ क र्म (=दंड) है—(१) अधर्म कर्म, (२) वर्ग कर्म, (३) समग्र कर्म, (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म, (६) धर्मसे समग्र कर्म।

(६) अधर्म कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! क्या है अधर्म कर्म ?

क (१) "भिक्षुओ ! ज्ञ प्ति के साथ दो (वचनोके साथ कियेजानेवाले) कर्मको केवल ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अ नु श्रा व ण कराता, वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्तिके साथ दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंमे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममें एकही कर्म-वाक्से कर्म करता है, और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (४) ज्ञप्ति

---

[1]देखो वोट लेनेके लिये प्रस्ताव पेश करनेका ढंग।

'मोघपुरुषो ! अयोग्य है श्रमणोके आचारके विरुद्ध है कैसे मोघपुरुषो ! तुम निर्दोष शुद्ध भिक्षुका अपराध बिना कारण बिना उत्क्षिप्त करोगे ! मोघपुरुषो न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ।

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको संबोधित किया—

'भिक्षुओ ! निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराध बिना कारण बिना उत्क्षिप्त नही करना चाहिये। जो उत्क्षिप्त करे उसे दुक्कट का दोष हो। १

तब वह भिक्षु आसनसे उठ उत्तरासंगको एक कंधेपर रख भगवान्के चरणोमे सिरसे पळ भग वान्से यह बोले—

"भन्ते ! हमारा अपराध है बालककी तरह मूढकी तरह अज्ञकी तरह हमने अपराध किया जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी बिना कारण बिना उत्क्षिप्त किया। सो भन्ते ! भगवान् हमारे अपराधको अपराधके तौरपर ग्रहण करें भविष्यमें संयमके लिये ।

"सो भिक्षुओ ! तुमने अपराध किया कारण बिना उत्क्षिप्त किया। चूँकि भिक्षुओ ! तुम अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार प्रतिकार करते हो (इसलिये) हम तुम्हारे उस (अप-राध क्षमापन)को ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ ! आर्य विनयमें यह वृद्धि (की बात) है जो कि (मनुष्य) अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार उसका प्रतिकार करता है और भविष्यमें संयम करने वाला होता है।

(२) अकर्मों (=नियम-विरुद्ध फैसलों) के भेद

उस समय चम्पा मे इस प्रकारके कर्म (=[illegible]) करते थे—अधर्मसे वर्ग (=कुछ व्यक्तियो का) कर्म करते थे अधर्मसे समग्र कर्म करते थे धर्मसे वर्ग कर्म करते थे धर्म जैसेसे वर्ग कर्म करते थे धर्म जैसेसे समग्र कर्म करते थे। अकेला एकको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला दोको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला बहुतोको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला संघको भी उत्क्षिप्त करता था। दो भी एकको दोको बहुतोको संघको उत्क्षिप्त करते थे। बहुतसे भी एकको दोको बहुतोको संघको उत्क्षिप्त करते थे। (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता था। जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे चम्पा मे भिक्षु ऐसे कर्म करते है !— (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता है। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ ! चम्पा में ?

(हाँ) सचमुच भगवान् ।

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

"भिक्षुओ ! अयुक्त है (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करे ! न यह भिक्षुओ ! अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ।

फटकारकर भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है। उसे नही करना चाहिये। (२) अधर्मसे समग्र कर्म अकर्म है उसे नही करना चाहिये। धर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है उसे नही करना चाहिये। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म अकर्म है । (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म अकर्म है । (६) एकको उत्क्षिप्त करे अकर्म है । । (७) संघ संघको भी उत्क्षिप्त करे अकर्म है इसे नही करना चाहिये। २

(३) कर्मके भेद

भिक्षुओ ! यह चार कर्म ([illegible])हैं—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म (२) अधर्मसे समग्र कर्म (३) धर्मसे वर्ग कर्म (४) धर्मसे समग्र कर्म। भिक्षुओ ! इनमे जो यह अधर्मसे वर्ग कर्म है वह अधर्मताके

कारण, वर्गताके कारण, कोप्य (=हटाने लायक) और अयोग्य है। भिक्षुओ! ऐसे कर्मको नही करना चाहिये। मैने इस प्रकारके कर्मकी अनुमति नही दी। भिक्षुओ! जो यह अधर्मसे समग्र कर्म है भिक्षुओ! यह कर्म अधर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है०। भिक्षुओ! जो यह धर्मसे वर्ग कर्म है वह कर्म धर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है। ०। ० भिक्षुओ! जो यह धर्मसे समग्रकर्म है यह धर्मताके कारण, सामग्रताके कारण, अकोप्य, और योग्य है। भिक्षुओ! ऐसे कर्मको करना चाहिये। ऐसे कर्मकी मैने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ! सीखना चाहिये कि जो यह धर्मसे समग्र कर्म हैं उसे करूँगा।"

(४) अकर्मोंके भेद

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म (=दड) करते थे—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म करते थे, (२) अधर्मसे समग्र कर्म०, (३) धर्मसे वर्ग कर्म०, (४) धर्म जैसेसे वर्गकर्म०, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०, (६) सू च ना[1] बिना भी अ नु श्रा व ण[1] युक्त कर्म करते थे, (७) अ नु श्रा व ण बिनाभी सूचना-युक्त कर्म करते थे, (८) सू च ना बिनाभी, अ नु श्रा व ण बिनाभी कर्म करते थे, (९) ध र्म (—बुद्धोपदेश)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१०) वि न य (—भिक्षु नियम)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (११) बुद्धशासनके विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१२) प टि कु ट्ठ क ट (=दूसरेके निन्दा- वाक्यके जवाबमें किया गया) धर्म-विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होतेथे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करेंगे०।' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करते हैं—० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है, उसे नही करना चाहिये। (२) अधर्मसे समग्र कर्म०। (३) धर्मसे वर्ग कर्म०। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म०। (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०। (६) ज्ञ प्ति बिना, अ नु श्रा व ण युक्त कर्म०। (७) अनुश्रावण बिना ज्ञप्तियुक्त कर्म०। (८) अनुश्रावण बिना भी और ज्ञप्ति बिना भी कर्म०। (९) धर्मसे विरुद्ध कर्म०। (१०) विनय-विरुद्ध कर्म०। (११) बुद्ध-शासनके विरुद्ध कर्म०। (१२) पटिकुट्ठकट धर्म विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म अकर्म्य है, उसे नही करना चाहिये। 3

(५) कर्म छ

"भिक्षुओ! यह छ क र्म (=दड) है—(१) अधर्म कर्म, (२) वर्ग कर्म, (३) समग्र कर्म, (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म, (६) धर्मसे समग्र कर्म।

(६) अधर्म कर्मके भेद

"भिक्षुओ! क्या है अधर्म कर्म ?

क (१) "भिक्षुओ! ज्ञ प्ति के साथ दो (वचनोके साथ कियेजानेवाले) कर्मको केवल ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अ नु श्रा व ण कराता, वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्तिके साथ दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममें एकही कर्म-वाक्से कर्म करता है, और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (४) ज्ञप्ति

---

[1]देखो वोट लेनेके लिये प्रस्ताव पेश करनेका ढग।

सहित दो (वचनोंके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो कर्म-वाचाओंसे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता यह अधर्म कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें एक ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाचाको नहीं अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है और कर्म-वाचाको नहीं अनुश्रावण कराता तो वह अधर्म कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें तीन ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है । (४) चार ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है । (५) एक कर्म-वाचासे कर्म करता है और ज्ञप्ति को नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (६) दो कर्म-वाचासे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (७) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें चार कर्म-वाचासे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता वह अधर्म कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है अधर्म कर्म (=नियम-विरुद्ध दंड)।

(७) वर्ग कर्मके भेद

"भिक्षुओ! क्या है वर्ग-कर्म?—क (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्म (=दंड)को प्राप्त हैं वह नहीं आये हों छन्द (=वोट) देनेवालोंका छन्द नहीं आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश (विरुद्ध-वचन) करें यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं वह आये हों किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं वह आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें यह वर्ग कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है नहीं आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द नहीं आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों और छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें तो यह वर्ग कर्म है।

(८) समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! समग्र-कर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनों द्वारा किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों देनेवालोंका छन्द आया हो सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें, यह समग्र कर्म है। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें, यह समग्र कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है समग्र कर्म।

(९) धर्माभास वर्ग-कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म?—

क (१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म वाचको अनुश्रावण कराके पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह न आये हो छन्द देनेवालोंका छन्द

नही आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म । (२) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो किन्तु छन्द देनेवालोका छन्द नही आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द भी आया हो, किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म।

ख (१) "ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म-वाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हो वह न आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो आये हो (किन्तु) छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्म-वाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हो आये हो, छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो, (किन्तु) सम्मुख आनेपर प्रतिक्रोश करें, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।

(१०) धर्माभाससे समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसेसे समग्रकर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्र कर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्र कर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे समग्र कर्म।

(११) धर्मसे समग्रकर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्मसे समग्रकर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले एक ज्ञप्तिको स्थापित करे पीछे एक कर्मवाक्से कर्म करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्र कर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममें पहिले एक ज्ञप्ति स्थापित करे, पीछे तीन कर्म वाकोंसे कर्म करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्र कर्म।—भिक्षुओ! यह है धर्मसे समग्रकर्म।

§२—पाँच प्रकारके संघ और उनके अधिकार

(१) वर्ग (कोरम्) द्वारा सघोंके प्रकार

"सघ पाँच है—(१) चतुर्वर्ग (=चार व्यक्तियोका) भिक्षु-सघ, (२) पचवर्ग (=पाँच व्यक्तियोका)० (३) दशवर्ग (=दस आदमियोका)०, (४) विंशतिवर्ग (=वीस आदमियोका)०, (५) अतिरेक विंशतिवर्ग (=वीससे अधिक व्यक्तियोका)०।

सहित दो (वचनोंके साथ किये जानेवाले) कर्ममें दो कर्म-वाचासे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता यह अधर्म कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें एक ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाचको नहीं अनुश्रावण कराता यह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है और कर्म-वाचको नहीं अनुश्रावण कराता तो यह अधर्म कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें तीन ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है । (४) चार ज्ञप्तियोंसे कर्म करता है । (५) एक कर्म-वाचसे कर्म करता है और ज्ञप्ति को नहीं स्थापित करता यह अधर्म कर्म है। (६) दो कर्म-वाचसे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता यह अधर्म कर्म है। (७) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें चार कर्म-वाचोंसे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नहीं स्थापित करता यह अधर्म कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है अ ध र्म क र्म (=नियम-विरुद्ध कर्म)।

(७) वर्ग कर्मके भेद

"भिक्षुओ! क्या है व र्ग-क र्म?—क (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु क र्म (=वद)को प्राप्त हैं वह नहीं आये हों छन्द (=वोट) देनेवालों का छन्द नहीं आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश (=निन्दा-वचन) करें यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं वह आये हों किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त हैं वह आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें यह वर्ग कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हैं नहीं आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द नहीं आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों किन्तु छन्द देनेवालोंका छन्द न आया हो और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों और छन्द देनेवालोंका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करें तो यह वर्ग कर्म है।

(८) समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! समग्र-कर्म?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनों द्वारा किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह आये हों देनेवालोंका छन्द आया हो सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें यह समग्र कर्म है। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द आया हो सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करें यह समग्र कर्म है।—भिक्षुओ! यह कहा जाता है समग्र कर्म।

(९) धर्माभास वर्ग-कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसे वर्ग-कर्म?—

क (१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोंसे किये जानेवाले) कर्ममें पहले कर्म वाचको अनुश्रावण कराके पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हों वह न आये हों छन्द देनेवालोंका छन्द

४—"यदि भिक्षुओ! विं श ति व र्ग मे किया जानेवाला कर्म हो तो वीसवी भिक्षुणीसे (सख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे ०[1]। सघ जिसका क र्म कर रहा है उसे वीसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 12

(इति) विंशतिवर्गकरण

५—"(१) चाहे भिक्षुओ! पा रि वा सि क[2] को चौथा वना परिवास दे, मू ल से प्र ति क - र्ष ण करे, मा न त्व दे, वीसवाँ वना आह्वान करे, किन्तु अकर्म न करे। 13

(२) चाहे भिक्षुओ! मूलमे प्र ति क र्ष ण करने योग्यको चौथा वना०।

(३) चाहे भिक्षुओ! मा न त्व देने योग्यको चौथा वना०।

(४) चाहे भिक्षुओ! मा न त्व चा रि क को चौथा वना०।

(५) चाहे भिक्षुओ! आह्वान करने योग्यको चौथा वना०।" 14

(४) सघके बीच फटकारना किसके लिये लाभदायक और किसके लिये नहीं

१—"भिक्षुओ! किसी किसीको सघके बीच प्र ति क्रो श न (=डाँटना) लाभदायक है और किसी किसीको सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है। भिक्षुओ! किसीको सघके वीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है?—भिक्षुणीको भिक्षुओ! सघके बीच प्र ति क्रो श न करना लाभदायक नही है। शिक्षमाणाको०। श्रामणेरको०। श्रामणेरीको०। शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवालेको०। अन्तिम वस्तुके दोषीको०। उन्मत्तको०। विक्षिप्तचित्तको०। होश न रखनेवालेको०। आ प त्ति के न देखनेसे उ त्क्षि प्त क को०। आ प त्ति के अप्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। बुरी धारणा को न त्यागनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। पडकको०। चोरके साथ रहनेवालेको०। तीर्थिकोके पास चले गयेको०। ति र्य क योनिमें गयेको०। मातृघातकको०। पितृघातकको०। अर्हत्घातकको०। भिक्षुणीदूपकको०। सघमें फूट डालनेवालेको०। ०लोहू निकालनेवालेको०। (स्त्री पुरुष) दोनो लिंग वालेको०। भिन्न सहवासवालेको०। भिन्न सीमामें रहनेवालेको०। ऋद्धिसे आकाशम खडेको०। जिसका सघ कर्म कर रहा हो, उसको भी भिक्षुओ! सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही। भिक्षुओ! इनका सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है।

२—"भिक्षुओ! किसका सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है?—एक साथ रहनेवाले, एक सीमामें ठहरनेवाले प्रकृतिस्थ भिक्षुको, कमसे कम अपने पास बैठनेवाले भिक्षुको सूचित करते सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है। भिक्षुओ! इसको सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक है।"

(५) ठीक और बेठीक निस्सारण

"भिक्षुओ! यह दो निस्सारणा हैं—कोई व्यक्ति नि स्सा र ण (=निकालने) (के दोष) को प्राप्त होता है और उसे सघ निकालता है, (तो उनमेंसे) कोई सु नि स्सा रि त होता है और कोई दु र्नि स्सा रि त।

१—"भिक्षुओ! कौनसा व्यक्ति नि स्सा र ण (के दोपको अप्राप्त है और उसे सघ निकालता है, (इसलिये) दु र्नि स्सा रि त है? जब भिक्षुओ! एक भिक्षु निर्दोप, शुद्ध, होता है और उसे सघ निकालता है (इसलिये) दु र्नि स्सा रि त है। भिक्षुओ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है (कि वह) निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है, और उसे सघने निकाला, (अत)दु र्नि स्सा रि त है। 15

---

[1] चतुर्वर्गकी ही तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

[2] चुल्ल २§१।२ (पृष्ठ ३६७)।

(२) संघोंके अधिकार

"क (१) वहाँ भिक्षुओ! जो यह चतुर्वर्ग भिक्षु-संघ है वह—उ प स म्प दा प्र वा र णा आ ह्वा न —इन तीन कर्मोंको छोळ धर्मसे-समग्र हो सभी कर्मोंके करने योग्य है। 4

(२) वहाँ भिक्षुओ जो प च व र्ग भि क्षु-स घ है वह—आह्वान और मध्यम जनपदों[1] (=युक्तप्रान्त और बिहार)मे उपसम्पदा इन दो कर्मोंको छोळ धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोंके करने योग्य है। 5

(३) वहाँ भिक्षुओ! जो यह दशवर्ग भिक्षु-संघ है वह—आह्वान—एक कर्मको छोड़ 6

(४) वहाँ भिक्षुओ! जो वि श ति व र्ग भि क्षु स घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोंके करने योग्य है। 7

वहाँ भिक्षुओ! जो यह अतिरेक वि श ति व र्ग भि क्षु स घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोंके करने योग्य है। 8

(३) वर्ग (=कोरम्) पूरा करनेका उपाय

१—"भिक्षुओ! यदि चतुर्वर्गसे करने लायक कर्म हो तो चौथी भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे किन्तु अ क र्म (=अयुक्त रीतिसे कर्म) न करे। भिक्षुओ! यदि चतुर्वर्गसे किया जानेवाला कर्म हो तो चौथी शिक्षमाणासे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे किन्तु अकर्मको न करे। चौथे श्रामणेर। चौथी श्रामणेरी। चौथे (भिक्षु)शिक्षाको प्रत्याख्यान करनेवाले। चौथे अन्तिम वस्तु (=पा रा जि क)के दोषी। चौथे आपत्ति (=दोष) के न देखनेसे उत्क्षिप्तक। चौथे आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्तक। चौथे बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक। चौथे पंडक। चौथे चोरके साथ सह-वास करनेवाले। चौथे तीर्थिकोंके पास चले गये। चौथे तिर्यक (=नाग आदि) योनिमें गये। चौथे मातृघातक। चौथे पितृघातक। चौथे अर्हत्घातक। चौथे भिक्षुणीदूषक। चौथे संघमें फूट डालनेवाले। चौथे (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले। यदि भिक्षुओ! च तु र्व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो चौथे (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवालेसे (संख्या पूरी करके) कर्मको करे किन्तु अकर्मको न करे। चौथे भिन्न सवासवाले। चौथे भिन्न सीमामें रहनेवाले। चौथे ऋद्धिसे आकाशमें खळे। संघ जिसका कर्म (=इन्साफ)कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे। 9

(इति) चतुर्वर्गकरण

२—"यदि भिक्षुओ! प च व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो पाँचवीं भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे। ।[2] संघ जिसका कर्म (=इन्साफ) कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे। 10

(इति) पंचवर्गकरण

३—"यदि भिक्षुओ! द श व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो दसवीं भिक्षुणीसे (संख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे। संघ जिसका क र्म कर रहा है उसे दसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे। 11

(इति) दशवर्गकरण

---

[1]मध्यम जनपदोंकी सीमाके लिये देखो ५§१।२ पृष्ठ २११।

[2]चतुर्वर्गकीही तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

सघ या वहुतमे (भिक्षु) या एक भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझमे आपत्ति हुई है, क्या तू उस आपत्तिको देख रहा है।' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति (=दोष) नही है जिसे कि मै देखूँ।' सघ आपत्तिके न देखनेके कारण उसका उ त्क्षे प ण करता है (तो यह) अधर्म कर्म है। 20

"(२) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति प्रतिकारके करनेके लिये नही रहती, उसे सघ या वहुतमे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, तू उस आपत्तिका प्रतिकार कर !' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' तव सघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके कारण उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 21

"(३) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको वुरी धारणा नही होती। उसे सघ या वहुतमे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तेरी धारणा वुरी है। उस वुरी धारणाको छोळ दे !' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! मुझे वुरी धारणा नहीं है जिसको कि मै छोळूँ।' यदि सघ उसका, वुरी धारणाके न छोळनेके लिये उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 22

"(४) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति नही होती, प्रतिकार करने लायक आपत्ति नही होती। उसको सघ, वहुतमे या एक भिक्षु प्रेरित करते है—'आवुस ! तुझमे आपत्ति हुई है। उस आ प त्ति को देखता है ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर !'—वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसको कि मै देखूँ, मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' सघ उसका, न देखने या प्रतिकार न करनेके कारण यदि उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 23

"(५) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आ प त्ति नही होती, और न छोळनेके लिये वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—"आवुस ! तुझमे आपत्ति हुई है। देखता है तू आपत्तिको ?' तुझे वुरी धारणा है। छोळ ! उस वुरी धारणाको।' वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आ प त्ति नही है जिसको देखूँ, मेरे पास वुरी धारणा नही है जिसे छोळूँ।' तव सघ न देखने या न छोळनेके कारण उसका उत्क्षेपण करे तो यह अ ध र्म क र्म (=अन्याय, वेइसाफी) है। 24

"(६) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको प्रतिकार न करने लायक आपत्ति होती है, न छोळने लायक वुरी धारणा होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है, उस आपत्तिका प्रतिकार कर। तुझे वुरी धारणा है उसको छोळ !' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि छोळूँ।' तव सघ यदि आपत्ति का प्रतिकार न करने या वुरी धारणाके न छोळनेके कारण, उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 25

"(७) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आपत्ति नही होती न प्रतिकार करनेके लिये आपत्ति होती है, न छोळनेके लिये वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, देखता है उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तेरे पास वुरी धारणा है उस अपनी वुरी धारणाको छोळ !' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नही जिसको कि देखूँ, जिसका प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही जिसको कि छोळूँ।' सघ न देखने, न प्रतिकार करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है तो यह अ ध र्म कर्म है। 26

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, उसको सघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक (भिक्षु) प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है। देखता है उस आपत्तिको ?' वह ऐसा बोलता है—'हाँ आवुस ! देखता हूँ।' उसका सघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करता है, (यह) अ ध र्म कर्म है। 27

"(२) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आ प त्ति (=अपराध) हुई है। उस आपत्तिका प्रतिकार कर।' वह ऐसा

२— भिक्षुओ! कौनसा व्यक्ति निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है और संघ उसे निकालता है (तो भी वह) सुनिस्सारित है?—भिक्षुओ! जो भिक्षु मूर्ख नासमझ बारबार कसूर करनेवाला अपदान (=चरित्र) रहित गृहस्थोंके साथ अत्यन्त संसर्ग रखकर गृहस्थोंके प्रतिकूल संसर्गसे युक्त हो विहार करता है और उसे यदि संघ निकालता है तो वह सुनिस्सारित है। भिक्षुओ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है कि वह निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त था (किन्तु) संघने उसे निकाला (और वह) सुनिस्सारित है। 16

(६) ठीक और बेठीक ओसारण (=ले लेना)

'भिक्षुओ! यह दो ओसारणा हैं—भिक्षुओ! कोई व्यक्ति ओसारणकी (योग्यता कर्म)को अप्राप्त होता है और उसे संघ ओसारता (=अपनेमें मिलाता) है (तो उनमेंसे) कोई सु-ओसारित होता है और कोई दुर्-ओसारित भी। 17

१— 'भिक्षुओ! कौनसा व्यक्ति ओसारण(की योग्यता कर्म)को अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है (इसलिये) दुर्-ओसारित है? भिक्षुओ! पंडक ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि संघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। चोरके साथ रहनेवाला। तीर्थिकके पास चला गया। तिर्यक योनिमें चला गया। मातृघातक। पितृघातक। अर्हत्घातक। भिक्षुणीदूषक। संघमें फूट डालनेवाला। लोहू निकालनेवाला। (स्त्री-पुरुष) दोनों लिंगवाला ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि संघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ! यह कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है (इसलिये) दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ! ये व्यक्ति कहे जाते हैं ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त हैं और उन्हें संघ ओसारता है (इसलिये) दुर्-ओसारित हैं। 18

२— भिक्षुओ! कौनसा व्यक्ति ओसारणकी योग्यताको अप्राप्त है और उसे संघ ओसारता है तो भी वह सु-ओसारित है? हथ-कटा भिक्षुओ! ओसारणाकी योग्यताको अप्राप्त है। यदि उसे संघ ओसारण करे तो सु-ओसारित है। पैर-कटा। हाथ-पैर-कटा। कन-कटा। नकटा। नाक कान-कटा। अँगुली-कटा। अल (=अदम ?) कटा। कण्डरा-कटा। फर गई अँगुलियोंके हाथवाला। कुबड़ा। बौना। घेघेवाला। लक्षणाहत[1]। कोड़ा खाये हुआ। लिखितक[2] (Out law)। श्लीपदिक[3]। भयंकर रोगवाला। परिषद्‌को बिगाड़नेवाला। काना। लूला। लँगड़ा। पक्षाघातवाला। टूटे ईर्यापथ (=शारीरिक आचार) वाला। बुढ़ापेसे दुर्बल। अन्धा। गूँगा। बहरा। अन्धा-गूँगा। अन्धा-बहरा। गूँगा-बहरा। अन्धा-गूँगा-बहरा भिक्षुओ! ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और यदि उसे संघ ओसारता है तो वह सु-ओसारित है। भिक्षुओ! इसे कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त है और यदि संघ उन्हें ओसारता है तो वे सु-ओसारित हैं। 19

(इति) वासभगाम भाणवार प्रथम ॥१॥

(७) अधर्म्म उत्क्षेपणीय कर्म

क (१) भिक्षुओ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति (=अपराध) नहीं हुई होती और उसे

---

[1] जिसे ऐसा काम करके दागनेका दंड मिला है।

[2] जिसके बारे लिखे राजाज्ञा कहीं लिखा रहता है कि जो इसे पाये मार डाले।

[3] फील-पाँव रोगवाला।

सघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, क्या तू उस आपत्तिको देख रहा है।' वह ऐसा वोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति (=दोष) नही है जिसे कि मै देखूँ।' सघ आपत्तिके न देखनेके कारण उसका उ त्क्षे प ण करता है (तो यह) अधर्म कर्म है। 20

"(२) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति प्रतिकारके करनेके लिये नही रहती, उसे सघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, तू उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! ' वह ऐसा वोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' तब सघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके कारण उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 21

"(३) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको बुरी धारणा नही होती। उसे सघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तेरी धारणा वुरी है। उस वुरी धारणाको छोळ दे !' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि मै छोळूँ।' यदि सघ उसका, वुरी धारणाके न छोळनेके लिये उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 22

"(४) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति नही होती, प्रतिकार करने लायक आपत्ति नही होती। उसको सघ, वहुतसे या एक भिक्षु प्रेरित करते है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। उस आ प त्ति को देखता है ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर !'—वह ऐसा वोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसको कि मै देखूँ, मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' सघ उसका, न देखने या प्रतिकार न करनेके कारण यदि उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 23

"(५) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आ प त्ति नही होती, और न छोळनेके लिये वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—"आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू आपत्तिको ?' तुझे वुरी धारणा है। छोळ ! उस वुरी धारणाको।' वह ऐसा वोलता है—'आवुसो ! मुझे आ प त्ति नही है जिसको देखूँ, मेरे पास वुरी धारणा नही है जिसे छोळूँ।' तब सघ न देखने या न छोळनेके कारण उसका उत्क्षेपण करे तो यह अ ध र्म क र्म (=अन्याय, बेइसाफी) है। 24

"(६) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको प्रतिकार न करने लायक आपत्ति होती है, न छोळने लायक वुरी धारणा होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है, उस आपत्तिका प्रतिकार कर। तुझे वुरी धारणा है उसको छोळ !' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि छोळूँ।' तब सघ यदि आपत्ति का प्रतिकार न करने या वुरी धारणाके न छोळनेके कारण, उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 25

"(७) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आपत्ति नही होती न प्रतिकार करनेके लिये आपत्ति होती है, न छोळनेके लिये वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, देखता है उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तेरे पास बुरी धारणा है उस अपनी वुरी धारणाको छोळ !' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नही जिसको कि देखूँ, जिसका प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही जिसको कि छोळूँ।' सघ न देखने, न प्रतिकार करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है तो यह अ ध र्म कर्म है। 26

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, उसको सघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक (भिक्षु) प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है। देखता है उस आपत्तिको ?' वह ऐसा वोलता है—'हाँ आवुस ! देखता हूँ।' उसका सघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करता है, (यह) अ ध र्म कर्म है। 27

"(२) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आ प त्ति (=अपराध) हुई है। उस आपत्तिका प्रतिकार कर।' वह ऐसा

कहता है—'हाँ आवुस ! प्रतिकार करूँगा।' तब उसका सघ प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है। 28

"(३) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे सघ प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह यह कहता है—'हाँ आवुसो ! छोळूँगा।' उसका सघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है। 29

(४) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है ।[1] 30

"(५) एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है छोळने लायक बुरी धारणा होती है ।[1] 31

(६) एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है ।[1] 32

(७) एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे सघ प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है उस आपत्ति को ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! देखता हूँ। हाँ प्रतिकार करूँगा हाँ छोळूँगा।' उसे सघ न देखनेके लिये प्रतिकार न करनेके लिये न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है। 33

(८) धर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क (१) "भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है। उसका सघ या बहुतसे (भिक्षु) या एक व्यक्ति प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझसे आपत्ति नहीं हुई है जिसे कि मै देखूँ।' सघ आपत्तिको न देखनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म कर्म है। 34

"(२) भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है।[1] । वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म कर्म (=न्याय) है। 35

(३) भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है ।[1] । वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मै छोळूँ।' सघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) धर्म कर्म है। 36

"(४) भिक्षुको देखने लायक आपत्ति और प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ।[1] 37

"(५) भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। ।[1] 38

"(६) भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है छोळने लायक बुरी धारणा होती है। ।[1] 39

७— भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसको सघ प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नहीं है जिसको कि मै देखूँ। मुझे आपत्ति नहीं है

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी मिलाकर पढ़ना चाहिये।

जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नहीं है जिसको कि मैं छोळूँ।' संघ न देखने, प्रतिकार न करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करे (यह) धर्म-कर्म है।" 40

§३—कुछ अधर्म और धर्म-कर्म

(१) अधर्म कर्म

१—तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालि ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो बे-सामने करता है तो भन्ते! क्या वह धर्म-कर्म है? विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्म कर्म है, अ-विनय कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो बिना पूछे करे, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको बिना प्रतिज्ञाके करे, स्मृति-विनय देने लायकको अमूढ विनय दे, अमूढ विनयके लायकको तत्पापीयसिक कर्म करे, तत्पापीयसिक कर्मके लायकका तर्जनीय कर्म करे, तर्जनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे, नियस्स कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे, प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे, प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे, उत्क्षेपणीय कर्म लायकको परिवास दे, परिवास देने लायकको मूलसे प्रतिकर्षण करे, मूलसे प्रतिकर्षण करने लायकको मानत्व दे, मानत्व देने लायकका आह्वान करे, आह्वान लायकका उपसम्पादन करे, भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है। विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्म कर्म है, अविनय कर्म है जो कि वह उपालि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको बेसामने करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्म कर्म होता है, अ-विनय-कर्म होता है, और इस प्रकार संघ सातिसार (=अतिकी धारणावाला) होता है। उपालि! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो बिना पूछे करता है ० आह्वान् लायकका उपसम्पादन करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है, और इस प्रकार संघ सातिसार होता है।"

(२) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है, भन्ते! क्या वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र संघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको प्रतिज्ञा करके करता है, स्मृति-विनयके लायकको स्मृति-विनय देता है, अमूढ-विनय०, तत्पापीयसिक-कर्म०, तर्जनीय-कर्म०, नियस्सकर्म०, प्रव्राजनीय कर्म०, प्रतिसारणीयकर्म०, उत्क्षेपणीयकर्म०, परिवास०, मूलसे प्रतिकर्षण०, मानत्व०, आह्वान०, उपसम्पदाके लायकको उपसम्पादन करता है, भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है। उपालि! समग्र संघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है इस प्रकार उपालि! धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार-रहित होता है। उपालि! समग्र संघको पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको०, स्मृति-विनय०, अमूढ-विनय०, तत्पापीयसिक-कर्म०,

तर्जनीय कर्म नियस्स कर्म प्रव्राजनीय कर्म प्रतिसारणीय कर्म उत्क्षेपणीय कर्म परिवास मूलसे प्रतिकर्षण मानत्त्व आह्वान उपसम्पदाके लायकको उपसम्पदा देता है इस प्रकार उपालि ! धर्म कर्म विनय कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार रहित होता है।

(३) अधर्म कर्म

१—'भन्ते ! समग्र संघ स्मृति-विनयके लायकको यदि अमूढ विनय दे अमूढ-विनयके लायकको स्मृति-विनय दे तो भन्ते ! क्या यह धर्म कर्म विनय कर्म है?

'उपालि ! यह अधर्म कर्म है अ विनय कर्म है।

२—'यदि भन्ते ! समग्र संघ अमूढ विनयके लायक का तत्पापीयसिक कर्म करे और तत्पापीयसिक कर्म लायकको अमूढ-विनय दे तत्पापीयसिक कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे तर्जनीय कर्म लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे तर्जनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे नियस्स-कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे नियस्स कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे प्रव्राजनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे प्रतिसारणीय कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे उत्क्षेपणीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे उत्क्षेपणीय कर्म लायकको परिवास दे परिवास लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे परिवास लायकका मूलसे प्रतिकर्षण करे मूलसे प्रतिकर्षण लायकको परिवास दे मूलसे प्रतिकर्षण लायकको मानत्व दे मानत्व लायकका मूलसे प्रतिकर्षण करे मानत्व लायकका आह्वान् करे आह्वान् लायकको मानत्व दे आह्वान लायकको उपसम्पादन करे उपसम्पदा लायकका आह्वान् करे भन्ते ! क्या यह धर्म कर्म है विनय कर्म है?

'उपालि यह अ धर्म कर्म है अ विनय कर्म है। उपालि ! यदि समग्र संघ स्मृति विनयके लायकको अमूढ विनय दे अमूढ विनय लायकको स्मृति-विनय दे तो उपालि यह अधर्म कर्म अ विनय कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार युक्त होता है। [1]। आह्वान लायकको उपसम्पदा दे उपसम्पदा लायकका आह्वान करे उपालि यह अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार-युक्त होता है।

(४) धर्म कर्म

१—"भन्ते ! समग्र संघ यदि स्मृति विनय लायकको स्मृति विनय दे अमूढ विनय लायकको अमूढ-विनय दे तो भन्ते ! क्या यह धर्म-कर्म है विनय कर्म है?

"उपालि ! यह धर्म-कर्म है विनय-कर्म है।

२—*भन्ते ! यदि समग्र संघ अमूढ विनय लायकको अमूढ विनय दे तत्पापीयसिक कर्म* तर्जनीय कर्म नियस्स कर्म प्रव्राजनीय कर्म प्रतिसारणीय कर्म उत्क्षेपणीय कर्म परिवास मूलसे प्रतिकर्षण मानत्व आह्वान उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे तो भन्ते ! क्या यह धर्म-कर्म है ! विनय-कर्म है?

'उपालि ! यह धर्म-कर्म है विनय-कर्म है। यदि उपालि समग्र संघ स्मृति-विनय लायकको स्मृति-विनय दे [2] उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे तो उपालि ! यह धर्म कर्म विनय कर्म होता है और इस प्रकार संघ अतिसार रहित होता है।

---

[1] ऐसेही आगे भी उपालिके प्रश्नमें आये शब्दोंको दुहराना चाहिये।

[2] उपालिके प्रश्नमें आये शब्दोंको फिर यहाँ दुहराना चाहिये।

(५) अधर्म कर्मका रूप

तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

१—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ स्मृति-विनय लायकको अमूढ विनय दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। ० स्मृति-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे, स्मृति-विनय लायकका तर्जनीय कर्म करे, ० नियस्स कर्म करे, ० प्रव्राजनीय कर्म करे, ० प्रतिसारणीय कर्म करे, ० उत्क्षेपणीय कर्म करे०, परिवास दे, ० मूलसे प्रतिकर्षण करे, ० मानत्त्व दे, ० आह्वान करे, स्मृति-विनय लायकको उपसम्पदा दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है।

२—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ अमूढ-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे, ०[1] अमूढ-विनय लायकको उपसम्पदा दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म, अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। 41

३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ , तत्पापीयसिक कर्म लायकको०[2]। 42

४—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ तर्जनीय कर्म लायकको०[2]। 43

५—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ नियस्स कर्म लायकको०[2]। 44

६—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ प्रव्राजनीय कर्म लायकको०[2]। 45

७—" ० प्रतिसारणीय कर्म लायकको०[2]। 46

८—" ० उत्क्षेपणीय कर्म लायकको०[2]। 47

९—" ० परिवास लायकको०[2]। 48

१०—" ० मूलसे प्रतिकर्षण लायकको[2]। 49

११—" ० मानत्त्व लायकको०[2]। 50

१२—" ० आह्वान लायकको०[2]। 51

१३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसम्पदा लायक को स्मृति विनय दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसपदा लायकको अमूढ-विनय दे ०। ० तत्पापीयसिक कर्म करे०। ० तर्जनीय कर्म०। ० नियस्स कर्म ०।० प्रव्राजनीय कर्म ०।० प्रतिसारणीय कर्म ०।० उत्क्षेपणीय कर्म ०।० परिवास ०।० मूलसे प्रतिकर्पण ०।० मानत्त्व ०। भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसपदा लायकको आह्वान दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविन-यकर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त है।" 52

उपालि भाणवार द्वितीय ॥२॥

§४—अधर्म कर्म

(१) तर्जनीय कर्म

"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू , कलह-कारक, विवाद-कारक बकवादी, सघमे (सदा) मुकदमा करनेवाला होता है।

१—यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा हो—'आवुसो ! यह भिक्षु झगळालू ० है, आओ हम इसका

---

[1] अमूढ-विनयके साथ बाकी सब वाक्योको रखकर पढना चाहिये।

[2] ऊपरकी भाँति आवृत्ति।

तर्जनीय कर्म करें। वह अ ध र्म से व र्ग[1] द्वारा उसका त र्ज नी य क र्म (=डाँटनेका दंड) करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 53

२— 'वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका अधर्मसे वर्ग द्वारा संघने तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह उसका अ ध र्म से स म ग्र द्वारा तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 54

३— 'वहाँ भिक्षुओंको यह होता है—'आवुसो' इस भिक्षुका संघने अधर्मसे समग्र द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह धर्म से वर्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 55

४— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो' इस भिक्षुका संघने धर्मसे वर्ग द्वारा तर्जनीयकर्म किया है। आओ। हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह उस भिक्षुका ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 56

५— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने ध र्मा भा स व र्ग द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह ध र्मा भा स स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 57

६—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—यह भिक्षु झगळालू है, आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह अधर्मसे समग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 58

७— 'वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है— । वह ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 59

८— 'वह उस आवासको छोळ कर दूसरे आवासमें चला जाता है। वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 60

९— वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स से स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 61

१०— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है— । वह अ ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 62

११— भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू होता है। यदि वहाँ भिक्षुओंको ऐसा हो—आवुसो! यह भिक्षु झगळालू है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह धर्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 63

१२—"वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है— । वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 64

१३— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। 65

'वह ध र्मा भा स से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 66

१४— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 67

१५— 'वहाँ भी भिक्षुओंको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 68

---

[1] नियम-विरुद्ध पार्टी।

"१६—भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु अगळ्ळान्‌० होता है।०। वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 69

१७—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह धर्माभाससे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 70

१८—"० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 71

१९—"० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 72

२०—"० वह धर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।० 73

२१—"० वह धर्माभाससे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 74

२२—"० अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 75

२३—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 76

२४—"० वह धर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।०। 77

२५—"० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं।" 78

(२) नियस्स कर्म

१—भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु मूर्ख, अजान, बहुत आपत्ति (=अपराध) करनेवाला, अपदान (=आचार)-रहित, गृहस्थोसे (अत्यधिक) संसर्ग रखनेवाला, प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त होता है। यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु मूर्ख० प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त है, आओ! हम इसका नियस्स कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 79

२—वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका नियस्स कर्म किया है। आओ हम इसका नियस्स कर्म करें।' वह अधर्मसे समग्र हो उसका नियस्स कर्म करते है। वह उस आवाससे चला जाता है। 80

३—० धर्मसे वर्ग हो ०। 81

४—धर्माभाससे वर्ग हो ०। 82

५—धर्माभाससे समग्र हो ०।०[1]। 83

२५—० वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। 84

(३) प्रव्राजनीय कर्म

१—यहाँ एक भिक्षु कुल दूषक (और) दुराचारी होता है। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—'यह भिक्षु कुल दूषक और दुराचारी है। आओ, हम इसका प्रव्राजनीय कर्म (=वहाँसे हटा देनेका दंड) करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रव्राजनीय कर्म करते हैं। वह दूसरे आवासमें चला जाता है। 85

२—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया है। आओ, हम इसका प्रव्राजनीय कर्म करें।' वह उसका अधर्मसे समग्र हो प्रव्राजनीय कर्म करते है। 86

३—० धर्मसे वर्ग हो ०। 87

४—"धर्माभाससे वर्ग हो ०। 88

---

[1]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक (पृष्ठ ३११-१३) दुहराना चाहिये।

५— 'धर्मामाससे समग्र हो । [1] 189
२५— वह धर्मा मा स से व र्ग हो उसका प्र व्रा ज नी य क र्म करते हैं। 109

(४) प्रतिसारणीय कर्म

१— 'भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु गृहस्थोंका आक्रोश (=गाली-गलौज) परिभाष (=बकवाद) करता है। वहाँ भिक्षुओंको यदि ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु गृहस्थोंको आक्रोश प रि भा स करता है आओ हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें।'वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसार णीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 110

२— 'वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! सबने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया है। आओ हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें। वह अधर्मसे समग्र हो उसका प्रति सारणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 111

३— ध र्म से व र्ग हो । 112
४— ध र्मा मा स से वर्ग हो । 113
५— ध र्मा मा स से स म ग्र हो । [2] । 114
२५— वह ध र्मा मा स से व र्ग हो उसका प्र ति सा र णी य कर्म करते हैं। 134

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क (१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति (=अपराध) करके उस आपत्तिको देखना (Realisation) नहीं चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति करके उसको देखना नहीं चाहता। आपत्तिके न देखनेसे आओ हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें। वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 135

(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! सबने आपत्तिके न देखनेसे इस भिक्षुका अ ध र्म से व र्ग हो उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ हम आपत्तिके न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें। वह अधर्मसे समग्र हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवास से चला जाता है। 136

(३) ध र्म से व र्ग हो । 137
(४) ध र्मा मा स से व र्ग हो । 138
(५) ध र्मा मा स से स म ग्र हो । [1] । 139
(२५) ध र्मा भा स से व र्ग हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। 159

ख (१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिका प्रतिकार नहीं करना चाहता। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति (=दोष) करके आपत्तिका प्रतिकार नहीं करना चाहता आओ हम आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें। वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 160

(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! सबने अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।
[2] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।

न करनेके लिये इस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ हम आपत्तिके न प्रतिकारके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अ ध र्म से स म ग्र हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 161

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 162

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 163

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[1]। 164

"(२५) ० ध र्मा भा स से व र्ग हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 184

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नहीं चाहता। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु बुरी धारणाको नहीं छोळना चाहता। आओ, हम बुरी धारणाके न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 185

"(२) वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ, हम उसका बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करें। वह अ ध र्म से स म ग्र हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 186

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो ०। 187

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो ०। 188

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो ०। ०[1]। 189

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिए उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 209

§५—नियम-विरुद्ध दंडकी माफ़ी

(१) तर्जनीय कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है। अब यह ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफी चाहता है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ करें (=हटा लें)।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसको तर्जनीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 210

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ किया है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ करें। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 211

३—"० धर्मसे वर्ग हो०। 212

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 213

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस (पृष्ठ ३११-१३) तक दुहराना चाहिये।

५— धर्माभाससे समग्र हो । [1] । 214

२५—" धर्माभाससे वर्ग हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते है। 224

(२) नियस्स कर्मकी माफी

१— "भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने नियस्स कर्म किया है (तब वह) ठीकसे रहता है लाम मिटाता है निस्तारक लिये काम करता है और नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है— नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ करें। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 225

२— "वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो ! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ किया है। आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ करें। वह अधर्मसे समग्र हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 226

३— धर्मसे वर्ग हो । 227

४—" धर्माभाससे वर्ग हो । 228

५— धर्माभाससे समग्र हो ।[1] । 229

२५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते है। 249

(३) प्रव्राजनीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहता है । वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 250

२— वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते है । 251

३— धर्मसे वर्ग हो । 252

४— धर्माभाससे वर्ग हो । 253

५— धर्माभाससे समग्र हो । । 254

२५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते है। 274

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफी

१— भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने प्रतिसारणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है प्रतिसारणीय कर्मकी माफी चाहता है । वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 275

२—" वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते है । 276

३— धर्मसे वर्ग हो । 277

४— धर्माभाससे वर्ग हो । 278

५— धर्माभाससे समग्र हो । । 279

२५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते है। 299

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह सबका पच्चीस तक यहाँ भी दुहराना चाहिये ।
तर्जनीयकी तरह यहाँ नियस्स कर्मको माफीके लिये दुहराना चाहिये ।

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी

क "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिके न देखनेसे किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमे जाता है। 300

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 301

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 302

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 303

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 304 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 324

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 325

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 326

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 327

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 328

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 329 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 349

ग "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० बुरी धारणाके न छोळनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 350

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 351

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 352

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 353

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 354 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 374

§६—नियम-विरुद्ध दंड-संशोधन

(१) तर्जनीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

५— धर्माभाससे समग्र हो ।[1] । 214

५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते हैं। 224

(२) नियस्स कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने नियस्स कर्म किया है (तब वह) ठीकसे रहता है, रोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है और नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है— नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ करें। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 225

— वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ किया है। आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ करें। वह अधर्मसे समग्र हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 226

३— धर्मसे वर्ग हो । 227

४—" धर्माभाससे वर्ग हो । 228

— धर्माभाससे समग्र हो ।[1] । 229

५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। 249

(३) प्रव्राजनीय कर्मकी माफी

१— भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहता है। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 250

२— वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं। 251

३—" धर्मसे वर्ग हो । 252

४— धर्माभाससे वर्ग हो । 253

— धर्माभाससे समग्र हो । । 254

२५— धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं। 274

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रतिसारणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है प्रतिसारणीय कर्मकी माफी चाहता है। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 275

— वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। 276

३—" धर्मसे वर्ग हो । 277

४— धर्माभाससे वर्ग हो । 278

५— धर्माभाससे समग्र हो । । 279

६— धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। 299

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह [illegible] पुनरावृत्ति करनी ।

[2] तर्जनीय की तरह [illegible] पुनरावृत्ति करनी ।

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी

क "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिके न देखनेसे किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 300

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 301

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 302

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 303

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 304 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 324

ख "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 325

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 326

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 327

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 328

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 329 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 349

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० बुरी धारणाके न छोळनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 350

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 351

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 352

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 353

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 354 [1]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 374

§६—नियम-विरुद्ध दंड-संशोधन

(१) तर्जनीय कर्म

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। ० [illegible] होता है— [illegible] करना चाहिए।

---

[1] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिए।

आवुसो ! यह भिक्षु झगळाल है आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करें। वह अधर्मसे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है (ख) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म (=न्याय) है। भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है) किन्तु जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा— (यह) न किया कर्म है बुरा किया है कर्म फिर करने लायक कर्म है। वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी (=न्यायके पक्षपाती) है। 375

२— अधर्मसे समग्र कर्म । 376

३— धर्मसे वर्ग कर्म । 377

४— धर्माभाससे वर्ग कर्म । 378

५— धर्माभाससे समग्र कर्म । 379

६— यह अधर्मसे समग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है (ख) नहीं किया कर्म (=न्याय) है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है) (किन्तु) जिन भिक्षुओने ऐसे कहा— (यह) न किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है ।380 [१]

२५— यह धर्माभासम कर्म हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं । तब वहाँ रहनेवाला संघ विवाद करता है= (क) (यह) धर्माभाससे वर्गका कर्म है (ख) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओने ऐसे कहा— (यह) धर्माभाससे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है) (किन्तु) जिन भिक्षुओने ऐसे कहा— (यह) नहीं किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है' (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है)। 400

(२) नियस्स कर्म

१— 'भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु मूर्ख [१] प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गसे युक्त होता है। यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है— [१] आओ हम इसका नियस्स कर्म करें। यह अधर्मसे वर्ग हो उसका नियस्स कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है—(क) 'अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। 401

[१]। 425

(३) प्रव्राजनीय कर्म

१—"यहाँ एक भिक्षु कुलदूषक (और) दुराचारी होता है। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है— [१] आओ हम इसका प्रव्राजनीय कर्म करें। यह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रव्राजनीय कर्म करते हैं। वहाँका रहनेवाला संघ विवाद करता है— (क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। 426। [१]। 450

(४) प्रतिसारणीय कर्म

१— 'भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु गृहस्थोका आक्रोश परिहास करता है। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है— [१] आओ हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करें। यह अधर्मसे वर्ग हो

'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफीके लिए भी दुहराना चाहिये।

[१] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

कर्म उसका प्रतिसार करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है।' (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।"०[१] 451—475

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके उस आपत्तिको देखना नही चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[१] आओ हम आपत्ति न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है'।"476 ०[२]।500

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिका प्रतिकार नही करना चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[३] आओ हम आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' 501। ०[४]। 525

ग "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नही चाहता। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—०[५] आओ हम बुरी धारणा न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' यहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं।०[६]।526

(२५) "० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। तब वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) (यह) अधर्मसे वर्गका कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'अधर्मसे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नही है), (किन्तु) जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'(यह) नही किया कर्म है,० फिर करने लायक कर्म है' (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी हैं)।" 550

§७—नियम-विरुद्ध दण्डकी माफ़ीका संशोधन

(१) तर्जनीय-कर्मकी माफ़ी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने तर्जनीय-कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है०[७] तर्जनीय-कर्मकी माफ़ी चाहता है। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'०[८] आओ हम इसके तर्जनीय-कर्मको माफ करें।' अधर्मसे वर्ग हो वह उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते हैं। वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक,

[१] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफीके लिये भी दुहराना चाहिये।
[२] 'तर्जनीय कर्म'की तरह ही यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।
[३] देखो पृष्ठ ३१४ (ख)।
[४] 'तर्जनीय कर्मके सशोधन'की तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी नम्बर २५ तक समझना चाहिए।
[५] देखो पृष्ठ ३१४। [६] देखो पृष्ठ ३१५। [७] देखो पृष्ठ ३१५-१६।
[८] तर्जनीय कर्मके सशोधनकी तरह यहाँ भी नम्बर २ तक समझना चाहिये।

कर्म है। भिक्षुओ ! यहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसा कहा—'यह अधर्मसे वर्ग कर्म है' (वह धर्मवादी नहीं है) किन्तु जिन भिक्षुओंने ऐसा कहा— (यह) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। वह भिक्षु धर्मवादी है। 551

२— अधर्मसे समग्र कर्म । 552

३— धर्मसे वर्ग कर्म । 553

४— धर्माभाससे वर्ग कर्म । 554

५— धर्माभाससे समग्र कर्म । 554

२५— वह धर्माभाससे वर्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। तब वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है— (क) यह धर्माभासस वर्गका कर्म है (ख) नहीं किया कर्म है बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। भिक्षुओ ! वहाँ जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा— (यह) धर्माभासम कर्म है (वह धर्मवादी नहीं है) (किन्तु) जिन भिक्षुओंने ऐसे कहा— (यह) नहीं किया कर्म है, बुरा किया कर्म है फिर करने लायक कर्म है। (वह धर्मवादी है)। 575

(२) नियस्स कर्मकी माफी

१—भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको सघने नियस्स कर्म किया है (तब वह) ठीकसे रहता है [1] नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—"[1] आओ हम इसके नियस्स कर्मको माफ करें। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है— । 575। [1] । 600

(३) प्रव्राजनीय कर्मकी माफी

१— भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहता है। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है— । 601। [1] । 625

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने प्रतिसारणीय कर्म किया है। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—। 626 [1] । 650

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी

क (१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्ति न देखनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—। 651। । 675

ग (१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका सघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेप

---

[1] देखो पृष्ठ ३१५ १६। [1] देखो पृष्ठ ३१६।

[1] तर्जनीय कर्म (पृष्ठ ३११)की तरह यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।

देखो पृष्ठ ३१७ तर्जनीय कर्मकी माफीके लक्षोधनकी तरह यहाँ भी वाक्योंकी योजना समझो।

णीय कार्य किया है। ०[1] वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेक लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वहांका रहनेवाला सघ विवाद करता है—०। ०676। ०[1] 700

ग "(१) भिक्षुओ! यहां एक भिक्षुका सघने बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। [2] वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वहांका रहनेवाला सघ विवाद करता है—०।" 700। ०[2]। 724

चम्पेय्यक्खंधक समाप्त ॥९॥

---

[1] तर्जनीय कर्मकी माफीके सशोधनकी तरह (पृष्ठ ३१७) यहां भी वाक्योंकी योजना समझो।

[2] देखो पृष्ठ ३१७ (ग)।

१०—कौशम्बक-स्कंधक

१—भिक्षु-संघ में कलह। २—कौन धर्मवादी और कौन अधर्मवादी?
३—संघ-सामग्री (=संघका मिलकर एक होजाना)।
४—योग्य विनयधरकी प्रशंसा।

§१—भिक्षु-संघमें कलह

१—कौशाम्बी

(१) कौशाम्बीमें भिक्षुओंमें झगड़ा

१उस समय भगवान् कौशाम्बीमें घोषिताराममें विहार करते थे। (तब) किसी भिक्षुको आपत्ति (=दोष) हुई थी। वह उस आपत्तिको आपत्ति समझता था, दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको अनापत्ति समझते थे। (फिर) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे। तब उन भिक्षुओंने उस भिक्षुसे कहा— 'आवुस! तुम जो आपत्ति किये हो, उस आपत्तिको देख रहे हो?' 'आवुसो! मुझे आपत्ति ही नहीं! किसको मैं देखूँ?' तब उन भिक्षुओंने जमा हो आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका 'उत्क्षेपण'२ किया। वह भिक्षु, बहु-श्रुत आगमज्ञ३ धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर,४ पंडित-व्यक्त, मेधावी लज्जी आस्थावान् सीखनेवाला था। उस भिक्षुने जाकर सम्भ्रान्त भिक्षुओंके पास जाकर कहा— 'हे आवुसो! यह अनापत्ति आपत्ति नहीं। मैं आपत्ति-रहित हूँ, इसे मुझे (वह दोष)

१अट्ठकथामें है—"एक संघाराममें दो भिक्षु—एक विनय-धर (=विनयपिटक-पाठी) दूसरा सौत्रान्तिक (=सुत्तपिटक-पाठी) वास करते थे। उनमें सौत्रान्तिक एक दिन पाखानेमें जा, धोवनके बचे जलको बर्तनमें ही छोड़, चला आया। विनयधर पीछे पाखाने गया। बर्तनमें पानी देखकर उस भिक्षुसे पूछा—'आवुस! तुमने इस जलको छोड़ा है?' 'हाँ आवुस!' 'तुम इसमें आपत्ति (=दोष) नहीं समझते?' 'हाँ नहीं समझता'। 'आवुस! यहाँ आपत्ति होती है।' 'यदि होती है तो (प्रति-)देशना (=क्षमापन) करूँगा।' 'यदि तुमने बिना जाने भूलसे किया तो आपत्ति नहीं है' वह उस आपत्ति को अनापत्ति समझता था। विनयधरने भी अपने अनुयायियोंसे कहा—"यह सौत्रान्तिक 'आपत्ति' करके भी नहीं समझता"। वह उस (सौत्रान्तिक)के अनुयायियोंको देखकर कहते—'तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी 'आपत्ति' हुई नहीं जानता।' वह कहते—'यह विनयधर पहिले अनापत्तिकर, अब आपत्ति करता है वह मिथ्या-वादी है।" उन्होंने कहा— 'तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-वादी है"। इस प्रकार कलह बढ़ी।"

२देखो चुल्ल १§५ (पृष्ठ ३४१)। ३सुत्त-पिटकके दीर्घ-निकाय आदि पाँच निकाय आगम कहे जाते हैं। ४अति-संक्षिप्त अभिधर्म मातृका है।

आपत्ति-सहित (कहते हैं)। 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुझे (उन्होने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य, स्थानमे अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष ग्रहण करे।" (तब) सभी जानकार सभ्रान्त भिक्षुओको पक्षमें उसने पाया। जा न प द (=दीहाती) जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओके पास भी दूत भेजा०। जनपद जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओको भी पक्षमें पाया। तब वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहाँ उ त्क्षे प क थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओसे बोले—

"यह अनापत्ति है आवुसो! आपत्ति नही। यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (-आ प न्न) नही। अनुत्क्षिप्त है उत्क्षिप्त नही। यह अ-धार्मिक० क र्म (-न्याय)से उत्क्षिप्त किया गया है।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोंसे कहा—"आवुसो! यह आपत्ति है, अनापत्ति नही। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नही। यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नही। यह धार्मिक=अ को प्य=स्था नी य, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है। आयुष्मानो! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अ नु व र्त न=अनुगमन न करें।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी, उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

(२) उत्क्षिप्तकोंको उपदेश

तब भगवान्—'भिक्षु-सघमें फूट हो गई, भिक्षु-सघमे फूट हो गई'—(सोच) आसनसे उठ, जहाँ वह उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओंसे कहा—

"मत तुम भिक्षुओ!—'हम जानते है, हम जानते हैं'—(सोच) जैसा-तैसा होनेपर भी (किसी) भिक्षुका उत्क्षेपण करना चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति (=अपराध) किया हो, और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हो। यदि भिक्षुओ! वे भिक्षु उस भिक्षुके बारेमें ऐसा जानते हो—'यह आयुष्मान् बहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पडित (=व्यक्त), मेधावी, लज्जाशील, आस्थावान्, सीख (चाहने)वाले हैं, यदि हम इन भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेगे='इन भिक्षुके साथ हम उपोसथ न करेगे, इन भिक्षुके विना उपोसथ करेंगे, तो इसके कारण सघमें झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, सघमें फूट=सघराजी-सघ-व्यवस्थान=सघका बिलगाव होगा।' तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर, भिक्षुओको आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्तिके तौरपर देखता हो० यदि हम इन भिक्षुका आपत्तिके न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेंगे=इन भिक्षुके साथ प्रवारणा न करेंगे, इन भिक्षुके विना प्रवारणा करेंगे (०) इन भिक्षुओके साथ सघ कर्म न करेंगे ०। इन भिक्षुके साथ आसनपर नही बैठेंगे ०। इन भिक्षुओंके साथ यवागू पीने नही बैठेंगे०। इन भिक्षुओके साथ भोजन करने नही बैठेंगे०। इन भिक्षुओके साथ एक छतके नीचे वास नही करेंगे ०। इन भिक्षुओंके साथ वृद्धत्वके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, सामीचिकर्म (=कुशल समाचार पूछना) नही करेंगे ०। तो इसके कारण झगळा० होगा, तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर भिक्षुओको, आपत्ति न देखनेके लिये उन भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये।" 1

(३) उत्क्षेपकोंको उपदेश

तब भगवान् उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओको यह बात कह आसनसे उठ, जहाँ उत्क्षिप्त

(—उत्क्षेपण किये गये भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्‌ने उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह कहा—

'भिक्षुओ! आपत्ति करके—'हमने आपत्ति नहीं की, हम अन्-आपत्ति युक्त हैं' (सोच) आपत्तिका प्रतिकार न करना मत चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हों। यदि वह भिक्षु उन भिक्षुओंके बारेमें ऐसा जानता है—'यह आयुष्मान् बहुश्रुत शील (चाहने) वाले हैं, यह मेरे कारण, या दूसरोंके कारण छन्द (—स्वेच्छाचार) द्वेष मोह भय (के रास्ते या) अगति (—बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्ति न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे, मेरे साथ उपोसथ न करेंगे, मेरे बिना उपोसथ करेंगे तो इसके कारण संघमें झगळा होगा। भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (—क्षमापन) करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो... भय (के रास्ते या) अगति (—बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्तिके न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे, मेरे साथ प्रवारण न करेंगे[1] सामीचि कर्म न करेंगे तो इसके कारण झगळा होगा। तो भिक्षुओ! फूटको बळा समझकर दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (—क्षमापन) करना चाहिये। 2

तब भगवान् उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह बात कह आसनसे उठकर चले गये।

(४) आवासके भीतर और बाहर उपोसथ करना

उस समय उत्क्षिप्तानुगामी (—उत्क्षिप्त भिक्षुका अनुगमन करनेवाले) भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते थे, संघकर्म करते थे, किन्तु उत्क्षेपक (—उत्क्षेपण करनेवाले) भिक्षु सीमासे बाहर जा उपोसथ करते थे, संघ-कर्म करते थे। तब एक उत्क्षेपक भिक्षु, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे उस भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

'भन्ते! यह उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते हैं, संघ-कर्म करते हैं, किन्तु भन्ते! हम उत्क्षेपक भिक्षु सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करते हैं, संघ-कर्म करते हैं।'

'भिक्षु! यदि उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करेंगे, संघ-कर्म करेंगे जैसाकि मैंने ज्ञप्ति और अनुश्रावणका विधान किया है, तो उनके वे कर्म धर्मानुसार—अकोप्य और युक्त होंगे। भिक्षु! यदि तुम उत्क्षेपक भिक्षु वहीं सीमाके भीतर जैसाकि मैंने ज्ञप्ति और अनुश्रावणका विधान किया है उसके अनुसार उपोसथ करोगे, संघ-कर्म करोगे तो तुम्हारे भी वे कर्म धर्मानुसार अकोप्य और युक्त होंगे। सो किसलिये?—भिक्षु तुम्हारे लिये वे दूसरे आवासके भिक्षु हैं और उनके लिये तुम दूसरे आवासके भिक्षु हो। भिक्षु! भिन्न आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयं ही अपनेको भिन्न आवासवाला बनाता है या (२) समग्र हो संघ (आपत्तिके)न देखने या न प्रतिकार करने अथवा (बुरी धारणाके)न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। भिक्षु! एक आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयं ही अपनेको एक आवासवाला बनाता है या (२) संघ-समग्र हो न देखने या न प्रतिकार करने अथवा न छोळनेके लिये उत्क्षिप्त (किये गये व्यक्ति)-को ओसारण करता है।' 3

---

[1] देखो पृष्ठ ३२१।

(५) कलहके कारण अनुचित कायिक वाचिककर्म नही करना चाहिये

उस समय भोजन करते वक्त (गृहस्थके) घरमे भिक्षुओंने झगळा, कलह, विवाद किया, और अनुचित कायिक और वाचिक कर्म दिखलाया। हाथमे इशारा किया। लोग हैरान होते थे— 'कैसे शाक्य पुत्रीय श्रमण भोजन करते वक्त (गृहस्थके घरमें) झगडा, कलह, विवाद करेंगे और अनुचित कायिक तथा वाचिक कर्म प्रदर्शित करेंगे, हाथका इशारा करेंगे!' भिक्षुओंने उन मनुष्यो-के हैरान होने को सुना और जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे वे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु० हाथका इशारा करेंगे!' तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ! उन भिक्षुओंने० हाथका इशारा किया?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

भगवान्ने फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! संघमें फूट होनेपर, अन्याय होनेपर सम्मोदन न करनेपर—'इतनेसे एक दूसरे-को अनुचित कायिक कर्म, वाचिक कर्म न दिखलायेंगे, हाथका इशारा न करेंगे'—(सोच) आसनपर बैठे रहना चाहिये। भिक्षुओ! संघमे फूट होजानेपर, न्याय होनेपर, सम्मोदनके किये जानेपर, दूसरे आसनपर बैठना चाहिये।"4

(६) कलह करनेवालोंकी जिद

उस समय भिक्षु संघमे झगळा करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार)से वेधते फिरते थे। वह झगळेको शान्त न कर सकते थे। तब एक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे उस भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यहाँ संघमे भिक्षु झगळा करते० झगळेको शान्त नही कर सकते। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् जहाँ वह भिक्षु है वहाँ चलें।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे बोले—

"बस भिक्षुओ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो।"

ऐसा कहनेपर एक अधर्मवादी भिक्षुने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! रहने दें। परवाह मत करें। भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म)के सुखके साथ विहार करें। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेंगे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—"बस०।"

दूसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते!०।"

(७) दीर्घायु जातक

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ! भूतकालमें वा रा ण सी मे ब्रह्मदत्त नामक का शि रा ज था। (वह) आढ्य=महाधनी=महा भोगवान=महा सैन्य युक्त=महावाहन युक्त =महाराज्य युक्त, भरे कोष्ठागार वाला था। (उस समय) दी घि ति नामक को स ल रा जा था, जोकि दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोळे राज्यवाला, अपरिपूर्ण कोष, कोष्ठा-गारवाला था। तब भिक्षुओ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने चतुरंगिनी सेना तैयारकर को स ल रा ज दी घि ति पर चढाई की। तब भिक्षुओ! कोसलराज दीघितिको ऐसा हुआ—'काशिराज ब्र ह्म द त्त

(—उत्क्षेपण किये गये भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! आपत्तिकरके—'हमने आपत्ति नहीं की हम अन्-आपत्ति युक्त हैं' (सोच) आपत्तिका प्रतिकार न करना मत चाहो। यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हों। यदि वह भिक्षु उन भिक्षुओंके बारेमें ऐसा जानता है—'यह आयुष्मान् बहुश्रुत ... शील (चाहने) वाले हैं यह मेरे कारण या दूसरोंके कारण छंद (—स्वेच्छाचार) द्वेष मोह भय (के रास्ते या) अगति (—बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्ति न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे मेरे साथ उपोसथ न करेंगे मेरे बिना उपोसथ करेंगे तो इसके कारण संघमें झगळा ... होगा। भिक्षुओ ! फूटको बळा समझकर दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (—क्षमापन) करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो ... भय (के रास्ते या) अगति (—बुरे रास्ते)में नहीं जा सकते। यदि ये भिक्षु आपत्तिके न देखनेके लिये मेरा उत्क्षेपण करेंगे मेरे साथ प्रवारणा न करेंगे [1] सामीचि कर्म न करेंगे तो इसके कारण झगळा ... होगा। तो भिक्षुओ ! फूटको बळा समझकर दूसरोंके ऊपर विश्वासकर उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (—क्षमापन) करना चाहिये। 2

तब भगवान् उत्क्षिप्त (भिक्षु)के पक्षवाले भिक्षुओंसे यह बात कह आसनसे उठकर चले गये।

(४) आवासके भीतर और बाहर उपोसथ करना

उस समय उत्क्षिप्तानुगामी (—उत्क्षिप्त भिक्षुका अनुगमन करनेवाले) भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते थे संघकर्म करते थे किन्तु उत्क्षेपक (—उत्क्षेपण करनेवाले) भिक्षु सीमासे बाहर जा उपोसथ करते थे संघ-कर्म करते थे। तब एक उत्क्षेपक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे उस भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करते हैं संघ-कर्म करते हैं किन्तु भन्ते ! हम उत्क्षेपक भिक्षु सीमासे बाहर जाकर उपोसथ करते हैं संघ-कर्म करते हैं।"

"भिक्षु ! यदि उत्क्षिप्तानुगामी भिक्षु वहीं सीमाके भीतर उपोसथ करेंगे संघ-कर्म करेंगे जैसाकि मैंने ज्ञप्ति और अनुश्रावणका विधान किया है तो उनके वे कर्म धर्मानुसार—अकोप्य और युक्त होंगे। भिक्षु ! यदि तुम उत्क्षेपक भिक्षु वहीं सीमाके भीतर जैसाकि मैंने ज्ञप्ति और अनुश्रावणका विधान किया है उसके अनुसार उपोसथ करोगे संघ-कर्म करोगे तो तुम्हारे भी वे कर्म धर्मानुसार अकोप्य और युक्त होंगे। सो किसलिये ?—भिक्षु तुम्हारे लिये वे दूसरे आवासके भिक्षु हैं और उनके लिये तुम दूसरे आवासके भिक्षु हो। भिक्षु ! भिन्न आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयं ही अपनेको भिन्न आवासवाला बनाता है या (२) समग्र हो संघ (आपत्तिके) न देखने या न प्रतिकार करने अथवा (बुरी धारणाके) न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। भिक्षु ! एक आवास होनेके यह दो स्थान हैं—(१) स्वयं ही अपनेको एक आवासवाला बनाता है या (२) संघ-समग्र हो न देखने या न प्रतिकार करने अथवा न छोळनेके लिये उत्क्षिप्त (किये गये व्यक्ति)-का ओसारण करता है।" 3

[1] देखो पृष्ठ ३११।

सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देख पाया तथा खड्गकी धोवनको पी पाया ।

"तब भिक्षुओ ! कोसल राज द्रीघितिकी महिषीने उस गर्भके पूर्ण होनेपर पुत्र प्रसव किया (माता-पिताने) उसका दीर्घायु नाम रखा । तब भिक्षुओ ! बहुत काल न जाते जाते दीर्घायु कुमार विज्ञ हो गया । कोसलराज दीघितको यह हुआ—'यह काशिराज ब्रह्मदत्त हमारे अनर्थका करने वाला है । इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोष, और कोष्ठागारको छीन लिया है । यदि यह जान पायेगा तो हम तीनोको मरवा डालेगा । क्यो न मैं दीर्घायु कुमारको नगरसे बाहर बसा दूँ ।'

"तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघितिने दीर्घायु कुमारको नगरसे बाहर बसा दिया । दीर्घायु कुमार नगरसे बाहर बसते थोडे ही समयमे सारे शिल्पोको सीख गया । उस समय कोसल राज दीघिति का हजाम काशिराज ब्रह्मदत्त के पास रहता था । भिक्षुओ ! एक समय कोसलराज दीघितिके हजामने कोसलराज दीघितको स्त्री सहित वाराणसी के एक कोनेमें कुम्हारके घरमे अज्ञात वेषसे परिव्राजकके रूपमें वास करते देखा । देखकर जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्त था वहाँ गया । जाकर काशिराज ब्रह्मदत्त से यह बोला—

"देव ! कोसलराज दीघिति स्त्री सहित वाराणसी० परिव्राजकके रूपमें वास कर रहा है ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कोसलराज दीघितिको स्त्री सहित ले आओ !'

"अच्छा देव !' (कह) वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे कोसलराज दीघिति को स्त्री सहित ले आये ।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोको आज्ञा दी—'तो भणे ! कोसलराज दीघिति को स्त्री सहित मज़बूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह करके अच्छी तरह बाँध, छुरेसे मुंळवा, ज़ोरकी आवाज़वाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा दक्खिन दरवाज़ेसे नगरके दक्खिन ओर चार टुकळे कर चारो दिशाओमे बलि फेंक दो ।'

"अच्छा देव !' कह वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तरदे, कोसलराज दीघिति को स्त्री सहित ० मज़बूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह बाँध, छुरेसे शिर मुंळवा ज़ोरके आवाज़वाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेमे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते थे। तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'मुझे माता-पिताका दर्शन किये देर हुई । चलो माता-पिताका दर्शन करूँ ।' तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारने वाराणसीमे प्रवेशकर माता-पिताको मोटी रस्सीसे बाँहि पीछेकी ओर बँधे एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते देखा । देखकर जहाँ माता-पिता थे वहाँ गया । कोसलराज दीघितिने दूरसे ही कुमार दीर्घायुको आते देखा । देखकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"तात दीर्घायु ! मत तुम छोटा बळा देखो । तात दीर्घायु ! वैरसे वैर शात नही होता । अवैर से ही तात दीर्घायु वैर शात होता है ।'

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! उन आदमियोने कोसलराज दीघितिसे यह कहा—'यह कोसलराज दीघिति उन्मत्तहो बक-झक कर रहा है । दीर्घायु इसका कौन है ? किसको यह ऐसे कह रहा है—तात दीर्घायु, मत तुम छोटा बळा देखो० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शात होता है ।'

"'भणे ! मै उन्मत्त हो बकझक नही कर रहा हूँ बल्कि (मेरी बातको) जो विज्ञ है वह जानेगा ।'

"भिक्षुओ ! दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी कोसलराज दीघितिने कुमार दीर्घायुसे यह

बाहन हूँ और मैं दरिद्र हूँ। मैं काशिराज ब्रह्मदत्तके साथ एक भिडन्त भी नहीं ले सकता। क्यों न मैं पहले ही नगर से भाग जाऊँ। तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति महिषी (=पटरानी)को लेकर पहिलेही नगरसे भाग गया। तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त कोसलराज दीघिति की सेना वाहन देश कोष और कोष्ठागारको जीतकर अधिकारमें किया। तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति अपनी स्त्री सहित जिधर वाराणसी थी उधरको चला। क्रमश जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचा। तब भिक्षुओ ! कोसल-राज दीघिति अपनी स्त्री सहित वाराणसीके एक कोनेमें कुम्हारके घरमें अज्ञात वेषमें परिव्राजकका रूप धारणकर वास किया। तब भिक्षुओ कोसलराज दीघिति की महिषी गर्भिणी हो गर्भिणी हुई। उसको ऐसा दोहद (दोहळ) हुआ—वह सूर्यके उदयके समय की डा-क्षेत्र (युद्धभूमि)में सन्नाह और वर्म (कवच)में युक्त चतुरंगिनी सेनाको खडी देखना चाहती थी और खड्गकी धोवनको पीना चाहती थी। तब भिक्षुओ कोसलराज दीघिति की महिषीने कोसल राज दीघितिसे यह कहा—

'देव ! मैं गर्भिणी हूँ। मुझे ऐसा दोहद उत्पन्न हुआ है—सूर्यके उदयके समय क्रीडा-क्षेत्रमें सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खडी देखना चाहती हूँ और खड्गकी धोवनको पीना चाहती हूँ।

देवि ! दुर्गतिमें पड़े हम लोगोंको कहाँसे हम लोगोंके लिये क्रीडा क्षेत्रमें सन्नाह और वर्म से युक्त चतुरंगिनी सेना खडी (होगी) और कहाँसे खड्गकी धोवन (आयेगी) ?

'देव ! यदि मैं न पाऊँगी तो मर जाऊँगी।

भिक्षुओ ! उस समय काशिराज ब्रह्मदत्तका ब्राह्मण पुरोहित कोसलराज दीघितिका मित्र था। तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघित जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्तका पुरोहित था वहाँ गया। जाकर पुरोहित ब्राह्मणसे यह बोला—

सौम्य[1] ! तेरी सखि भी गर्भिणी है। उसको इस प्रकारका दोहद उत्पन्न हुआ है—•और खड्गकी धोवनको पीना चाहती है।

'तो देव हम भी देवीको देखना चाहते हैं।

'तब भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति की महिषी जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण था वहाँ गई पुरोहित ब्राह्मणने दूरसे ही कोसलराज दीघितकी महिषीको आते देखा। देखकर आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंग कर जिधर कोसलराज दीघितिकी महिषी थी उधर हाथ जोड़ तीन बार उदान (चित्तोल्लाससे निकला वाक्य) कहा—अहो ! कोसलराज कोखमें है ! अहो ! कोसलराज कोखमें है। कोसलराज कोखम है (और रानीसे कहा)—देवि प्रसन्न हो तू सूर्यके उदयके समय क्रीडा क्षेत्रमें सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खडी देखेगी और खड्गकी धोवनको पीयेगी।

'तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्त था वहाँ गया। जाकर यह बोला—'देव ! ऐसी सान्त है इसलिये कल सूर्यके उदयके समय क्रीडास्थानम सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेना खडी हो और खड्ग धोये जायें।

तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोंको आज्ञा दी—'भणे ! जैसा पुरोहित ब्राह्मण कहता है वैसा करो।

'भिक्षुओ ! (इस प्रकार) कोसलराज दीघितिकी महिषीने सूर्यके उदयके समय क्रीडास्थलमें

[1] मित्रके सम्बोधनमें इस शब्दका प्रयोग होता था।

ब्रह्मदत्तने बहुत थोळेही समय बाद दीर्घायुकुमारको अपने अन्तरगके विश्वसनीय स्थानपर स्थापित किया ।

"(एक वार) काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारमे यह कहा—'तो भणे! माणवक रथ जोतो शिकारके लिये चलेगें ।'

"'अच्छा, देव' (कह) उत्तरदे, दीर्घायु कुमारने रथ जोत, काशिराज ब्रह्मदत्तमे यह कहा—

"देव! रथ जुत गया । अब जिसका काल समझतेहो (वैसा करे)

"तव भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढा और दीर्घायु कुमारने रथको हाँका । उसने ऐसे रथ हाँका कि सेना दूसरी ओर चली गई और रथ दूसरी ओर तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दूर जाकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो भणे माणवक! रथको छोटो । थक गया हूँ लेटूँगा ।'

"'अच्छा देव!' (कह) दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे, रथ छोळ पृथ्वीपर पलथी मारकर बैठ गया । तब काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारकी गोदमे सिर रख सो गया । थका होनेसे क्षणभरमे ही उसे नीद आगई । तब भिक्षुओ! दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज ब्रह्मदत्त हमारे बहुतसे अनर्थोका करनेवाला है । इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश और कोष्ठागारको छीन लिया । इसने मेरे माता-पिताको मारडाला । यह समय है जब कि मै वैर साधूँ ।'—(सोच) म्यानसे उसने तलवार निकाली । तब भिक्षुओ । दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'मरनेके समय पिताने मुझे कहा था—'तात दीर्घायु! मत तुम छोटा बळा देखो, तात दीर्घायु, वैरसे वैर शान्त नही होता । अवैर से ही तात दीर्घायु! वैर शान्त होता है ।' यह मेरे लिये उचित नही कि मै पिताके वचनका उल्लघन करूँ", (सोच) म्यानमे तलवार डाल्दी । दूसरी वार भी० । तीसरी वार भी दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज० म्यानमे तलवार डालदी ।

"तव भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त, भयभीत, उद्विग्न, शकायुक्त, त्रस्त हो सहसा (जाग) उठा । तव दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—'देव! क्यो तुम भयभीत जाग उठे ?'

"'भणे माणवक! मुझे स्वप्नमे कोसलराज दीघितिके पुत्र दीर्घायु कुमारने खड्गसे (मार) गिराया था, इसीसे मैं भयभीत० (जाग) उठा ।'

"तव भिक्षुओ! दीर्घायु कुमारने बाएँ हाथमे काशिराज ब्रह्मदत्तके सिरको पकळ दाहिने हाथ में खड्गले, काशिराज ब्रह्मदत्त से यह कहा—

"'देव! मैं हूँ कोसलराज दीघितका पुत्र दीर्घायु कुमार । तुम हमारे बहुत अनर्थ करने वाले हो । तुमने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश, और कोष्ठागारको छीन लिया । तुमने मेरे माता पिताको मार डाला यही समय है कि मै (पुराने) वैरको साधूँ ।'

"तव भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारके पैरोमें सिरसे पळ, दीर्घायु कुमारसे यह बोला—'तात दीर्घायु! मुझे जीवन दान दो, तात दीर्घायु मुझे दान दो ।'

"'देवको जीवन दान मै दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दें ।'

"'तो तात दीर्घायु! तुम मुझे जीवन दान दो, मैं तुम्हे जीवन दान देता हूँ ।'

"तव भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त और दीर्घायु कुमारने एक दूसरेको जीवन दान दिया और (एकने दूसरे का) हाथ पकळा, और द्रोह न करनेकी शपथ की ।

"तव भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो तात! दीर्घायु! रथ जोतो चलें ।'

कहा— तात छोटा बळा मत देखो अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है।

'तीसरी बार भिक्षुओ ! उन आदमियोंने कोसलराज दीधितिसे यह कहा—'यह कोसलराज दीधिति उन्मत्त हो ।

'भणे ! मैं उन्मत्त हो बक-बक नहीं कर रहा हूँ ।

'तब भिक्षुओ ! व आदमी कोसलराज दीधितिको स्त्री सहित एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा दक्षिणद्वारसे लजा नगरके दक्षिण चार टुकळेकर चारो दिशाओंमें बलि डाल गुल्म (=पहरेदार) रख चले गये।

'तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारने वाराणसीमें जा शराब ले पहरेदारोंको पिलाया। जब व मतवाले होकर पळ गये तब लकळी ला चिता बना माता-पिताके शरीरको चितापर रख आकर हाथ जोळ तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा की।

'उस समय भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त ऊपरके महलपर था। काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायुको तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा करते देखा। देखकर उसको ऐसा हुआ—निस्संशय यह आदमी कोसलराज दीधितिका जातिवाला या रक्त-सम्बन्धी है। अहो मेरे अनर्थके लिये किसीने (यह बात मुझे नहीं) बतलाई।

'तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार ! अरण्यमें जा पेट भर रो आँसू पोंछ वाराणसीमें प्रवेशकर अन्तःपुर (=राजाके रहनेके दुर्ग)के पासकी हथसारमें जा महावतसे यह बोला—'आचार्य मैं (आपका) शिल्प सीखना चाहता हूँ।

'तो भणे माणवक ! (=अच्छा) सीखो।

'तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार रातके भिनसारको दीर्घायु कुमार हथसारमें मधु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था। काशिराज ब्रह्मदत्तने रातके भिनसारको उठकर हथसारमें मधु स्वरसे गीत गाते और वीणा बजाते (किसी आदमी)को सुना। सुनकर आदमियोंसे पूछा—

'भणे ! (यह) कौन रातके भिनसारको उठकर हथसारमें मधु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था?

देव ! अमुक महावतका शिष्य माणवक रातके भिनसारको उठकर मधुस्वरसे गाता और वीणा बजाता था।

'तो भणे ! उस माणवकको यहाँ ले आओ।

'अच्छा देव ! (कह) वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे दीर्घायु कुमारको ले आये।

(राजाने पूछा)—'भणे माणवक ! क्या तू रातके भिनसारको उठकर मधु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था?

'हाँ देव !

'तो भणे माणवक ! गाओ और वीणा बजाओ।

'अच्छा देव—(कह) दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तको सन्तुष्ट करनेकी इच्छासे मधु स्वरसे गाया और वीणा बजाया।

'भणे माणवक ! तू मेरी सेवामें रह।

'अच्छा देव' (कह) दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दिया।

तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तका पहले उठने-वाला पीछे-सोने-वाला क्या-काम है—पूछनेवाला प्रियचारी (और) प्रियवादी सेवक होगया। तब भिक्षुओ ! काशिराज

ब्रह्मदत्तने बहुत थोळेही समय बाद दीर्घायुकुमारको अपने अन्तरगके विश्वसनीय स्थानपर स्थापित किया।

"(एक बार) काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—'तो भणे! माणवक रथ जोतो शिकारके लिये चलेगे।'

"'अच्छा, देव' (कह) उत्तरदे, दीर्घायु कुमारने रथ जोत, काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

"देव! रथ जुत गया। अब जिसका काल समझतेहो (वैसा करे)

"तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढा और दीर्घायु कुमारने रथको हाँका। उसने ऐसे रथ हाँका कि सेना दूसरी ओर चली गई और रथ दूसरी ओर तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दूर जाकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो भणे माणवक! रथको छोडो। थक गया हूँ लेटूँगा।'

"'अच्छा देव!' (कह) दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे, रथ छोळ पृथ्वीपर पलथी मारकर बैठ गया। तब काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारकी गोदमे सिर रख सो गया। थका होनेसे क्षणभरमें ही उसे नीद आगई। तब भिक्षुओ! दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज ब्रह्मदत्त हमारे बहुतसे अनर्थोका करनेवाला है। इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश और कोष्ठागारको छीन लिया। इसने मेरे माता-पिताको मारडाला। यह समय है जब कि मै वैर साधूं।'—(सोच) म्यानसे उसने तलवार निकाली। तब भिक्षुओ। दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'मरनेके समय पिताने मुझे कहा था—'तात दीर्घायु! मत तुम छोटा बळा देखो, तात दीर्घायु, वैरसे वैर शान्त नही होता। अवैर से ही तात दीर्घायु! वैर शान्त होता है।' यह मेरे लिये उचित नही कि मैं पिताके वचनका उल्लघन करूँ", (सोच) म्यानमे तलवार डालदी। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज० म्यानमें तलवार डालदी।

"तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त, भयभीत, उद्विग्न, शकायुक्त, त्रस्त हो सहसा (जाग) उठा। तब दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—'देव! क्यो तुम भयभीत जाग उठे?'

"'भणे माणवक! मुझे स्वप्नमे कोसलराज दीघिति के पुत्र दीर्घायु कुमारने खड्गसे (मार) गिराया था, इसीसे मै भयभीत० (जाग) उठा।'

"तब भिक्षुओ! दीर्घायु कुमारने बाएँ हाथसे काशिराज ब्रह्मदत्तके सिरको पकळ दाहिने हाथ में खड्गले, काशिराज ब्रह्मदत्त से यह कहा—

"'देव! मैं हूँ कोसलराज दीघितका पुत्र दीर्घायु कुमार। तुम हमारे बहुत अनर्थ करने वाले हो। तुमने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश, और कोष्ठागारको छीन लिया। तुमने मेरे माता पिताको मार डाला यही समय है कि मै (पुराने) वैरको साधूं।'

"तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारके पैरोमें सिरसे पळ, दीर्घायु कुमारसे यह बोला—'तात दीर्घायु! मुझे जीवन दान दो, तात दीर्घायु मुझे दान दो।'

"'देवको जीवन दान मै दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दे।'

"'तो तात दीर्घायु! तुम मुझे जीवन दान दो, मै तुम्हे जीवन दान देता हूँ।'

"तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्त और दीर्घायु कुमारने एक दूसरेको जीवन दान दिया और (एकने दूसरे का) हाथ पकळा, और द्रोह न करनेकी शपथ की।

"तब भिक्षुओ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो तात! दीर्घायु! रथ जोतो चले।'

'अच्छा देव !' —(कह) दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे रथ जोत काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

'देव ! तुम्हारा रथ जुत गया। अब जिसका समय समझो (वैसा) करो।

'तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढ़ा और दीर्घायु कुमारने रथ हाँका। (उसने) रथको ऐसा हाँका कि थोळीही देरमे सेनासे मिलगया। तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने वाराणसी में प्रवेशकर अमात्यो और पारिषदोको एकत्रितकर यह कहा—

भणे ! यदि कोसलराज दीघीतिके पुत्र दीर्घायु कुमारको देखो तो उसका क्या करोगे?

किन्ही किन्हीने कहा—'हम देव ! हाथ काट लेंगे' 'हम देव ! पैर काट लेंगे' 'हम देव ! हाथ पैर काट लेंगे' 'हम देव ! कान काट लेंगे' हम देव ! नाक काट लेंगे' 'हम देव नाक-कान काट लेंगे' 'हम देव ! सिर काट लेंगे।

'भणे यह कोसलराज दीघीतिका पुत्र दीर्घायु कुमार है। इसका तुम कुछ नही करने पाओगे इसने मुझे जीवन-दान और मैंने इसे जीवन-दान दिया।

'तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

'तात दीर्घायु ! पिताने मरनेके समय जो तुमसे कहा—तात दीर्घायु। मत तुम छोटा बळा देखो अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है—क्या सोचकर तुम्हारे पिताने ऐसा कहा?

'मत बळा—मत चिरकाल तक वैर करो' यह सोच देव ! मेरे पिताने मरनेके समय 'मत बळा' कहा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'मत छोटा'—(सो) मत जल्दी मित्रो से बिगाळ करो यह सोच मेरे पिताने मरने के समय कहा—मत छोटा। और जो देव ! मेरे पिताने मरनेके समय कहा—'वैरसे वैर नही शान्त होता अवैरसे ही वैर शान्त होता है'—(सो) देवने मेरे माता-पिताको मारा यह (सोच) यदि मै देवको प्राणसे मारता तो जो देवके हित चाहनेवाले है वे मुझे प्राणसे मार देते। और (फिर) जो मेरे हित चाहनेवाले है वे उनको प्राणसे मारते इस प्रकार वह वैर वैरसे शान्त न होता। किन्तु इस वक्त देवने मुझे जीवन-दान दिया और मैने देवको जीवन-दान दिया। इस प्रकार अवैरसे वह वैर शान्त हुआ था। देव ! यह समझ मेरे पिताने मरने के समय कहा—तात दीर्घायु ! अवैरसे ही वैर शान्त होता है।

'तब भिक्षुओ काशिराज ब्रह्मदत्तने—'आश्चर्य है रे ! अद्भुत है रे ! कितना पंडित यह दीर्घायु कुमार है जो कि पिताके संक्षेपसे कहेका (इतना) विस्तारसे अर्थ जानता है ! —(कह उसके) पिताकी सेना वाहन देश कोष कोष्ठागारको लौटा दिया (और अपनी) कन्याको प्रदान किया।

'भिक्षुओ ! दंड ग्रहण करनेवाले शस्त्र ग्रहण करनेवाले उन क्षत्रिय राजाओका भी ऐसा आपसमें मेल हो (ता) क्या भिक्षुओ यह शोभा देता है कि ऐसे स्वाख्यात (अच्छी तरह व्याख्यात) धर्ममें प्रव्रजित हुए तुम्हारा मेल (न) हो।

"दूसरी बार भी ।

तीसरी बार भी भगवान्ने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

" 'बस भिक्षुओ ! मत भंडन कलह विग्रह विवाद करो'।

तीसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

'भन्ते ! भगवान् ! धर्मस्वामी ! ठहरें बे परवाह मत करें ! भन्ते भगवान् धर्मस्वामी दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म) के सुखके साथ विहार करें। हम इस भंडन कलह विग्रह विवादको जान लेंगे।"

तव भगवान्—'यह मोघ पुरुष प रि या दि न्न रू प (=अत्यन्त लिप्त) है इनको समझाना सुकर नहीं'—(सोच) आश्रमसे उठ चल दिये।

(इति) दीर्घायु भाणवार ॥ १ ॥

(८) भिक्षु-संघका परित्याग

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले कौशाम्बीमें भिक्षाचारकर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खळेही खळे इस गाथाको बोले—

"वळे शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको बाल (=अज्ञ) नही मानते,
सघके भग होनेपर (और) मेरे लिये मनमें नही करते ॥
मूढ, पडितसे दिखलाते, जीभपर आई बातको बोलने वाले,
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते है, जिस (कलह)मे (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये है, उसे नही जानते ॥

'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझे जीता', 'मुझे त्यागा'।
(इस तरह) जो उसको नही बाँधते, उनका वैर शात होजाता है ॥
वैरसे वैर यहाँ कभी शात नही होता।
अ-वैरसे (ही) शात होता है, यही सनातन-धर्म है ॥
दूसरे (=अपडित) नही जानते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होगे।
जो वहाँ (मृत्युके पास) जाना जानते हैं, वे (पडित) वृद्धिगत (कलहोको) शमन करते हैं ॥
हड्डी तोळने वालो, प्राण हरने वालो, गाय-घोळा-धन-हरनेवालो।
राष्ट्रको विनाश करनेवालो (तक)का भी मेल होता है ॥
यदि नम्र-साधु-विहारी (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले।
तो सब झगळोको छोळ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ॥
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले।
तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोळ, उत्तम मातग-राजकी भाँति अकेला विचरे।
अकेला विचरना अच्छा है, वालसे मित्रता नही (अच्छी)।
वे पर्वाह हो उत्तम मातग-(=नाग) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ॥"

२—बालकलोणकार ग्राम

तव भगवान् खळे खळे इन गाथाओको कहकर, जहाँ बा ल क-लो ण का र ग्राम था, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् भृ गु बालक-लोणकार ग्राममें वास करते थे। आयुष्मान् भृगुने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा)। भगवान् बिछाये आसनपर बैठे। बैठकर चरण धोये। आयुष्मान् भृगु भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् भृगुसे भगवान्ने यो कहा—"भिक्षु ! क्या खमनीय (=ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है ? पिंड (=भिक्षा)के लिये तो तुम तकलीफ नही पाते ?"

"खमनीय है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! मै पिंडके लिये तकलीफ नही पाता।"

३—प्राचीनवशदाव

तव भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजितकर०, आसनसे उठकर, जहाँ प्रा ची न-व श-दाव है, वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न न्दि य और आयुष्मान

किम्बिल प्राचीन-वंश-दावमें विहार करते थे। दाव-पालक (=वन-पाल)ने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर भगवान्‌से कहा—

'महाश्रमण! इस दावमें प्रवेश मत करो। यहाँपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम (=मौजसे) विहर रहे हैं उनको तकलीफ मत दो।

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालको भगवान्‌के साथ बात करते सुना। सुनकर दाव-पालसे यह कहा—

'आवुस! दाव-पाल! भगवान्‌को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये हैं।

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहाँ आयुष्मान् नन्दिय और आयु० किम्बिल थे वहाँ गये। जाकर बोले —

'आयुष्मानो! चलो आयुष्मानो! हमारे शास्ता भगवान् आगये।

तब आ० अनुरुद्ध आ० नन्दिय आ० किम्बिल भगवान्‌की अगवानीकर एकने पात्र चीवर ग्रहण किया एकने आसन बिछाया एकने पादोदक रक्खा। भगवान्‌ने बिछाये आसनपर बैठ पैर धोये। वे भी आयुष्मान् भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्धसे भगवान्‌ने कहा—

'अनुरुद्धो! खमनीय तो है? यापनीय तो है? पिंड लिये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते?

'खमनीय है भगवान्!

'अनुरुद्धो! क्या एकचित्त परस्पर मोद-सहित दूध-पानी हुए, परस्पर प्रिय-दृष्टिसे देखते विहरते हो?

'हाँ भन्ते! हम एकचित्त ।

'तो कैसे अनुरुद्धो! तुम एकचित्त ?

'भन्ते! मुझे यह विचार होता है— मेरे लिये लाभ है! मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है जो ऐसे स-ब्रह्मचारियो (=गुरु भाइयो)के साथ विहरता हूँ। भन्ते! इन आयुष्मानोंमें मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है मानसिक-कर्म अन्दर और बाहर । तब भन्ते! मुझे यह होता है—क्यों न मैं अपना मन हटा कर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तके अनुसार करूँ। सो भन्ते! मैं अपने चित्तको हटाकर इन्हीं आयुष्मानोंके चित्तोंका अनुवर्तन करता हूँ। भन्ते! हमारा शरीर नाना है किन्तु चित्त एक ।

आयुष्मान् नन्दियने भी कहा— 'भन्ते! मुझे यह होता है ।

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते! मुझे यह ।

'साधु साधु अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! क्या तुम प्रमाद-रहित आलस्य रहित संयमी हो विहरते हो?

'भन्ते! हाँ! हम प्रमाद रहित ।

'अनुरुद्धो! तुम कैसे प्रमाद रहित ? 'भन्ते! हमारेमें जो पहिले ग्रामसे भिक्षाचार करके लौटता है वह आसन लगाता है पीनेका पानी रखता है धोनेका पानी रखता है। जो पीछे गाँवमें भिक्षाचार करके लौटता है (वह) भोजन (मेंसे जो) बचा रहता है यदि चाहता है खाता है (यदि) नहीं चाहता है तो (उसे) स्थानमें जहाँ हरियाली न हो छोड़ देता है या जीव रहित पानीमें छोड़ देता है। आसनोंको समेटता है। पीनेके पानीको समेटता है। धोनेके पानीको धोकर समेटता है। आसनेकी जगहपर झाड़ू देता है। पानीके घड़े पीनेके घड़े या पाखानेके घड़े रिक्त खाली देखता है

उसे (भरकर) रख देता है। यदि वह उससे होने लायक नहीं होता तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेत (=हस्त-विलंघक)से दूसरेको बुलाकर, पानीके घड़े या पीनेके घड़ेको (भरकर) रखवाता है। भन्ते! हम उसके लिये वाग्-युद्ध नहीं करते। भन्ते! हम पाँचवें दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते हैं। इस प्रकार भन्ते! हम प्रमाद-रहित०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस संयमी हो विहरते, क्या तुम्हें [1]उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है?"

४—पारिलेय्यक

तब भगवान् आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न न्दि य, और आयुष्मान् कि म्बि ल को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर, आसनसे उठ जिधर पा रि ले य्य क है उधर चारिकाके लिये चलपड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ पा रि ले य्य क है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् पा रि ले य्य क में र क्षि त व न-खंडके भ द्र शा ल (वृक्ष)के नीचे विहार करते थे।

(९) एकान्त निवासका-आनन्द

तब एकान्तमें स्थित हो विचारमग्न होते समय भगवान्के चित्तमें यह विचार हुआ—'मैं पहले उन झगड़ा, कलह, विवाद, बकवाद और संघमें अधिकरण (=मुकदमा) पैदा करनेवाले कौशाम्बीके भिक्षुओंसे आकीर्ण (=घिरा) हो अनुकूलताके साथ नहीं विहार कर सकता था। सो मैं अब उन ० कौ शा म्बी के भिक्षुओंसे अलग, अकेला, अद्वितीय हो अनुकूलताके साथ विहार कर रहा हूँ। एक हस्तिनाग (हाथीका पट्ठा) भी हाथी, हथिनी, हाथीके कलभ (=तरुण) और हाथीके छउआ (=छाप, शाव)से आकीर्ण हो विहरता था और हाथीके छउआ (=छाप-शावक)से आकीर्ण हो विहरता था। शिरकटे तृणोंको खाता था। टूटी-भाँगी शाखाओं को (वह) खाता था। मैले पानीको पीता था। अवगाह (=जलाशय) उतर जानेपर हथिनियाँ उसके शरीरको रगड़ती चलती थीं। (ऐसे) आकीर्ण (हो) (वह) दुःखसे अनुकूलतासे विहार करता था। तब उस महागजको हुआ, इस वक्त मैं हाथी ०, आकीर्ण ० हूँ ०। क्यों न मैं गणसे अकेला ०?

तब वह हस्ति-नाग यूथसे हटकर, जहाँ पारिलेय्यक-रक्षित वन-खंड भद्र-शाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। वहाँ आकर वह नाग जो हरित स्थान होता था, उसे अहरित-करता था। भगवान्के लिये सूँड़से पानी ला, पीनेका (पानी) रखता था। तब एकान्तस्थ ध्यानस्थ भगवान्के मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले भिक्षुओं ० से आकीर्ण विहरता था, अनुकूलतासे न विहरता था। सो मैं अब भिक्षुओं ० से अन्-आकीर्ण विहर रहा हूँ। अन्-आकीर्ण हो, सुखसे, अनुकूलतासे विहार कर रहा हूँ। उस हस्ति-नागको भी मनमें यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मैं पहिले हाथियों ० अन्-आकीर्ण सुखसे अनुकूलसे विहर रहा हूँ। तब भगवान्ने अपने प्र-विवेक (=एकान्त सुख) को जान, और (अपने) चित्तसे उस हस्ति-नागके चित्तके वितर्कको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

> "हरीस जैसे दाँतवाले हस्ति-नागसे नाग (=बुद्ध) का चित्त समान है,
> जो कि वनमें अकेला रमण करता है।"

५—श्रावस्ती

तब भगवान् पा रि ले य्य क में इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रा व स्ती थी, उधर चारिकाके

---

[1] देखो पृष्ठ ९ टि०।

लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी वहाँ गये। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब कौशाम्बीके उपासकोंने (विचारा)—

'यह अय्या (=भिक्षु) कौशाम्बीके भिक्षु, हमारे बड़े अनर्थ करनेवाले हैं। इनसेही पीड़ित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो अब हम अय्या कौशाम्बक भिक्षुओंको न अभिवादन करें न प्रत्युत्थान करें, न हाथ जोड़ना—सामीची कर्म करें, न सत्कार करें न गौरव करें न मानें न पूजें आनेपर भी पिंड (=भिक्षा) न दें। इस प्रकार हम लोगों द्वारा अ-सत्कृत अ-गुरुकृत अ-मानित अ-पूजित असत्कार-प्राप्त चले जायेंगे या गृहस्थ बन जायेंगे या भगवान्को जाकर प्रसन्न करेंगे।

तब कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बी-वासी भिक्षुओंको न अभिवादन करते ...। तब कौशाम्बीवासी भिक्षुओंने कौशाम्बीके उपासकोंसे असत्कृत हो कहा—

अच्छा आवुसो! हमलोग श्रावस्तीमें भगवान्के पास इस झगड़े (=अधिकरण) को शान्त करें। तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले जहाँ श्रावस्ती थी वहाँ गये।

§ २—अधर्मवादी और धर्मवादी

आयुष्मान् सारिपुत्रने सुना— वह भंडन-कारक=कलह-कारक=विवाद-कारक, भस्स (=बक)-कारक संघमें अधिकरण (=झगड़ा) कारक कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं। तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—'भन्ते! वह भंडन-कारक कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं उन भिक्षुओंके साथ मैं कैसे बर्तूं?'

'सारिपुत्र! तो तू धर्मके अनुसार बर्त।'

'भन्ते! मैं धर्म (=नियमानुसार) या अधर्म कैसे जानूँ?'

(१) अधर्मवादीकी पहिचान

'सारिपुत्र! अठारह बातों (=वस्तु) से अ-धर्मवादी जानना चाहिये। सारिपुत्र! भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको अ-धर्म कहता है। (३) अ-विनयको विनय कहता है। (४) विनयको अ-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा अ-भाषित अ-लपितको तथागत-द्वारा भाषित-लपित कहता है। (६) भाषित लपितको अ-भाषित अ-लपित कहता है। (७) तथागत-द्वारा अन्-आचरितको आचरित कहता है। (८) तथागत द्वारा आचरितको अन्-आचरित कहता है। (९) तथागत-द्वारा अ-प्रज्ञप्त (=अ-विहित) को प्रज्ञप्त कहता है। (१०) प्रज्ञप्तको अ-प्रज्ञप्त ...। (११) अन्-आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है। (१३) लघु (=छोटी)-आपत्तिको गुरु (=बड़ी)-आपत्ति कहता है। (१४) गुरु-आपत्तिको लघु-आपत्ति कहता है। (१५) स-अवशेष (=अपूर्ण) आपत्तिको अन्-अवशेष (=पूर्ण) आपत्ति कहता है। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति कहता है। (१७) दुट्ठुल्ल (=दुराचार) आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहता (=दीपित प्रकाशित करता है)। (१८) दुट्ठुल्ल आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहता है। ५

(२) धर्मवादीकी पहिचान

"अठारह बातोंसे सारिपुत्र धर्म-वादी जानना चाहिये।—

सारिपुत्र! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है। (२) धर्मको धर्म ...। (३) अ-विनयको अ-विनय ...। (४) विनयको विनय ...। (५) अ-भाषित अ-लपित ...। (६) भाषित लपित

को ०भाषित-लपित०। (७) ०अन्-आचरितको ०अन्-आचरित०। (८) ०आचरितको ०आचरित०। (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति०। (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघु-आपत्तिको लघु-आपत्ति०। (१४) गुरु-आपत्तिको गुरु-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति०। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको अन्-अवशेष आपत्ति०। (१७) दुस्थौल्य आपत्तिको दुस्थौल्य आपत्ति०। (१८) अ-दुस्थौल्य आपत्तिको अ-दुस्थौल्य आपत्ति०। 6

आयुष्मान् महा मौ द्ग ल्या य न ने सुना—'वह भडनकारक ०।०।

आयुष्मान् महा का श्य प ने ०।० महा का त्या य न ने सुना—०।० महा को ट्ठि त (=कोष्ठिल) ने सुना—०।० महा क प्पि न ने सुना—०।० महा चु न्द ०।० अ नु रु द्ध ०।० रे व त ०।० उ पा ली ०।० आ न न्द ०।० रा हु ल०।

म हा प्र जा प ती गौ त मी ने सुना—'वह भडन-कारक०।' "भन्ते! मै उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गौतमी! तू दोनो ओरका धर्म (=बात) सुन। दोनो ओरका धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि, शान्त, रुचि, पसन्द कर। भिक्षुनी-सघको भिक्षु-सघसे जो कुछ अपेक्षा करना है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करना चाहिये।"

अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने सुना—'वह भडनकारक०।' "भन्ते! मै उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गृहपति! तू दोनो ओर दान दे। दोनो ओर दान देकर दोनो ओर धर्म सुन। दोनो ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि (-सिद्धान्त) क्षाति (=औचित्य), रुचिको ले, पसन्दकर।"

"विशाखा मृगार-माताने सुना—जो वह०। "भन्ते! मै उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तूं ?"

"विशाखा! तू दोनो ओर दान दे०। ०रुचिको ले पसन्दकर।"

तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु क्रमश जहॉ श्रावस्ती थी, वहॉं पहुँचे। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने जहॉं भगवान् थे, वहॉ जा० "भन्ते! वह भडनकारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये। भन्ते! उन भिक्षुओको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! अलग आसन देना चाहिये।"

"भन्ते! यदि अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! तो अलग बनाकर देना चाहिये। परन्तु सारिपुत्र! वृद्धतर भिक्षुका आसन हटाने (के लिये) मैं किसी प्रकार भी नही कहता। जो हटाये उसको 'दुष्कृति' की आपत्ति। 6

"भन्ते! आमिष (=भोजन आदि) के (विषयमें) कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र! आमिष सबको समान बॉटना चाहिये।" 7

§ ३—संघ-सामग्री (=० एकता)

तब धर्म और विनयको प्रत्यवेक्षा (=मिलान, खोज) उस उत्क्षिप्त भिक्षुको (विचार) हुआ—'यह आपत्ति (=दोष) है अन्-आपत्ति नही है। मै आपन्न (=आपत्ति-युक्त) हूँ, अन्-आपन्न नही हूँ। मै उत्क्षिप्त (='उत्क्षेपण' दडसे दडित) हूँ, अन्-उत्क्षिप्त नही हूँ। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय)से मै उत्क्षिप्त हूँ।' तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने) अनुयायियोके पास गया, बोला—'यह आपत्ति है आवुसो! आओ आयुष्मानो मुझे मिला दो।०। तब वह उत्क्षिप्त

अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—

'भन्ते! यह उत्क्षिप्तक भिक्षु कहता है—'आवुसो! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं। आओ आयुष्मानो! मुझे (संघमें) मिलाओ।' भन्ते! तो कैसे करना चाहिये?

भिक्षुओ! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं। यह भिक्षु आपन्न है अन्-आपन्न नहीं है। उत्क्षिप्त है अन्-उत्क्षिप्त नहीं है। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त है। भिक्षुओ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न है उत्क्षिप्त है और आपत्ति(=दोष) देखता है अतः इस भिक्षुको मिला लो। 7

तब उत्क्षिप्तके अनुयायी भिक्षुओंने उस उत्क्षिप्त भिक्षुको मिला (=ओसारण) कर, जहाँ उत्क्षेपक भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे कहा—

'आवुसो! जिस वस्तु (=बात)में संघका भंडन=कलह विग्रह विवाद हुआ था संघ (फूट) संघ-राजी=संघ-व्यवस्थान=संघ-नानाकरण हुआ था। सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है उत्क्षिप्त है अव-सारित (=मिला लिया गया) है। हाँ तो! आवुसो! हम इस वस्तु (=मामला बात)के उप-शमन (=फैसला मिटाना)के लिये संघकी सामग्री (=मेल) करें।

तब वह उत्क्षेपक (=अलग करनेवाले) भिक्षु जहाँ भगवान् थे जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्‌से बोले—

(१) संघसामग्रीका तरीका

'भन्ते! वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु ऐसा कहते हैं—'आवुसो! जिस वस्तुमें संघकी सामग्री करें।' भन्ते! कैसे करना चाहिये?

'भिक्षुओ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न उत्क्षिप्त पश्यी (=अपनी आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है। इसलिये भिक्षुओ! उस वस्तुके उप-शमनके लिये संघ संघकी सामग्री करे। 8

और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोगी सभीको एक जगह जमा होना चाहिये किसीको (बतला) भेजकर छन्द (=वोट) न देना चाहिये। जमा होकर योग्य समर्थ भिक्षु-द्वारा संघ को ज्ञापित (=सूचित=संबोधित) करना चाहिये—

क. ज्ञप्ति—'भन्ते! संघ मुझे सुने। जिस वस्तुमें संघ में भंडन कलह विग्रह विवाद हुआ था सो (उस विषयमें) यह भिक्षु आपन्न है उत्क्षिप्त (है) पश्यी अव-सारित है। यदि संघ उचित (=पसन्द) समझे तो संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री करे—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते! संघ मुझे सुने—जिस वस्तुमें अवसारित है। संघ उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री कर रहा है। जिस आयुष्मान्‌को उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ सामग्री करना पसन्द है वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द है वह बोले। (२) दूसरी बार भी । (३) तीसरी बार भी ।

ग. धारणा—संघने उस वस्तुके उपशमनके लिये संघ-सामग्री (=फूट संघको एक करना) की संघ-राजी संघ-भेद निहत (=नष्ट) हो गया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—यह मैं समझता हूँ।

(२) नियम-विरुद्ध संघ-सामग्री

उसी समय उपोसथ करना चाहिये और प्रातिमोक्ष उद्देश (=प्रातिमोक्षका पाठ) करना चाहिये।

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! जिस वस्तुसे सघमें झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, सघ-भेद (=सघमे फूट)=सघ राजी=सघ-व्यवस्थान, सघका विलगाव हो, सघ उस वस्तुको विना विनिश्चय (=फैसला) किये अमूल (=वेजळकी वात)से मूलको पा मघ-सामग्री (=सारे सघको एक करना) करे। तो भन्ते ! क्या वह सघ-सामग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! जिस वस्तुसे सघमें० अमूलमे मूलको पा सघ-सामग्री करता है, उपालि ! वह सघ-सामग्री धर्म विरुद्ध है।"9

(३) नियमानुसार संघ-सामग्री

"भन्ते ! जिस वस्तुसे सघमें झगळा हो, सघ उस वस्तुका विनिश्चय कर मूलसे मूलको पकळ (यदि) स घ-सा म ग्री करे, तो भन्ते ! क्या वह स घ-सा म ग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! ० वह स घ-सा म ग्री धर्मानुसार है।" 10

(४) दो प्रकारकी सघ-सामग्री

"भन्ते ! सघ-सामग्री कितनी हैं ?"

"उपालि ! सघ-सामग्री दो हैं—(१) उपालि ! (एक) सघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यजन-युक्त है, (२) उपालि (एक) सघ-सामग्री अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त है। उपालि ! कौनसी सघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यजन-युक्त है ? उपालि ! जिस वस्तुसे सघमें झगळा० होता है सघ उस वस्तुका विना निर्णय किये, अमूलसे मूलको पा सघ-सामग्री करता है, उपालि ! यह कही जाती है, अर्थ-रहित, व्यजन-युक्त सघ-सामग्री। उपालि ! कौनसी सामग्री, अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त है ?—उपालि ! जिस वस्तुसे सघमे झगळा० होता है, सघ उस वस्तुका निर्णय कर मूलसे मूलको पा स घ-सा म ग्री करता है, उपालि ! यह कही जाती है अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त (भी)।—उपालि ! यह दो सघ-सामग्री हैं।" 11

§४—योग्य विनयधरकी प्रशंसा

तव आयुष्मान् उपालि आसनसे उठ, एक कधेपर उत्तरासगकर जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोळ भगवान्‌से गाथामें कहा—

"सघके कर्तव्यो और मन्त्रणाओ,
उत्पन्न अर्थो और विनिश्चयो (=फैसलो)के समय -
किस प्रकारका पुरुष बळा उपकारक (होता है),
(और) कैसे भिक्षु विशेपत ग्रहण करने लायक होता है ?
(जो) प्रधान शीलोमें दोप-रहित,
अपेक्षित आचारवाला (और) इन्द्रियोमें सुसयमी हो,
विरोधी भी धर्मसे (जिसे) नही (दोपी) कह सकते,
उ स में वै सी (कोई बुराई) नही होती जिसको लेकर उसे बोलें॥
वह वैसे सदाचारकी विशुद्धतामें स्थित है,
विशारद है, परास्त करके बोलता है,
सभामें जानेपर न स्तब्ध (=गुम्) होता है, न विचलित होता है,
विहितोकी गणना करते (किसी) वातको नही छोळता॥
वैसेही सभामे प्रश्न पूछनेपर,

न सोचने लगता है न चुप होता है।
वह पंडित क्षणमें प्राप्त उत्तर देने योग्य वचनको
कह विरोधी सभाका रंजन करता है।।
(जो) वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त
अपने सिद्धान्तोंमें विशारद
मीमांसा करनेमें समर्थ कथन करनेमें होशियार
और विरोधियोंके भावको जाननेवाला (होता है)।।
विरोधी जिससे निग्रह किये जाते हैं
महाजन[1] (जिससे बातको) समझ पाते हैं
बिना हानि किये प्रश्नका उत्तर देते वह
अपने सम्प्रदाय (और) सिद्धान्तको नहीं त्यागता।।
(सबके) दूत-कर्ममें समर्थ अच्छी तरह सीखा हुआ
और संघके कृत्योंमें जैसा उसको कहें
भिक्षुगण द्वारा भेजे जानेपर (वैसा ही उस) वचनको करता है और
'मैं करता हूँ'—यह अभिमान नहीं करता।।
जिन जिन बातोंमें आपत्ति (=अपराध)युक्त होता है
जैसे उस आपत्तिसे मुक्ति होती है
ये दोनों (भिक्षु-भिक्षुणी) विभंग उसको अच्छी तरह आते हैं
आपत्तिसे छूटनेके पथका कोविद (होता है)।।
जिसका आचरण करते निस्सारणको प्राप्त होता है
और जैसे (दोषगामी) वस्तुसे निस्सारित होता है
उस (आचरण)को करनेवाले प्राणीका (जैसे ओसारण होता है)
विभंगका कोविद इसे भी जानता है।।
वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त
नवों स्थविरों और मध्यमोंमें (भी)
महाजनके अर्थकी रक्षामें पंडित
ऐसा भिक्षु यहाँ विशेषतः ग्रहण करने लायक (है)।।

कोसम्बकक्खन्धक समाप्त ।।१०।।

महावग्ग समाप्त ।।३।।

---

[1] सर्वसाधारण।
[2] भिक्षु-भिक्षुणी प्रातिमोक्ष (पृष्ठ १-७)का ही दूसरा नाम विभंग है।

४—चुल्लवग्ग

न सोचने लगता है न चुप होता है।
वह पंडित कालमें प्राप्त उत्तर देने योग्य वचनको
कह भिक्षुकी सभाका रंजन करता है॥
(जो) वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त
अपने सिद्धान्तोंमें विशारद
मीमांसा करनेमें समर्थ कथन करनेमें होशियार
और विरोधियोंके भावको जाननेवाला (होता है)॥
विरोधी जिससे निग्रह किये जाते हैं
महाजन[1] (जिससे बातको) समझ पाते हैं
बिना हानि किये प्रश्नका उत्तर देने वह
अपने सम्प्रदाय (और) सिद्धान्तको नहीं त्यागता॥
(संघके) दूत-कर्ममें समर्थ अच्छी तरह सीखा हुआ
और संघके कृत्योंमें जैसा उसको कह
भिक्षुगण द्वारा भेजे जानेपर (वैसा ही उस) वचनको करता है और
'मैं करता हूँ'—यह अभिमान नहीं करता॥
जिस जिस बातोंमें आपत्ति (=अपराध)युक्त होता है
जैसे उस आपत्तिसे मुक्ति होती है
ये दोनों (भिक्षु-भिक्षुणी) विभंग उसको अच्छी तरह याद हैं
आपत्तिसे छूटनेके पथका कोविद (होता है)॥
जिनका आचरण करके निस्सारणको प्राप्त होता है
और जैसे (दोषगामी) वस्तुसे निस्सारित होता है
उस (आचरण)को करनेवाले प्राणीका (जैसे ओसारण होता है)
विभंगका कोविद इसे भी जानता है॥
वृद्धतर भिक्षुओंमें आदर-युक्त
तथा स्थविरों और मध्यमोंमें (भी)
महाजनके अर्थकी रक्षामें पंडित
ऐसा भिक्षु यहाँ विशेषतः ग्रहण करने लायक (है)॥

कोसम्बकक्खन्धक समाप्त ॥१०॥

महावग्ग समाप्त ॥३॥

---

[1] सर्वसाधारण।

[2] भिक्खु-भिक्खुनी पातिमोक्ख (पृष्ठ १-७)का ही दूसरा नाम विभंग है।

४–चुल्लवग्ग

१–कर्म-स्कंधक

१—तर्जनीय कर्म । २—नियस्सकर्म । ३—प्रव्राजनीय कर्म । ४—प्रतिसारणीय कर्म । ५—आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म । ६—आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म । ७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म ।

§१–तर्जनीय कर्म

१—श्रावस्ती

(१) तर्जनीय-कर्मके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय प डु क और लो हि त क[1] भिक्षु स्वय झगळा, कलह, विवाद, और बकवाद, करनेवाले थे, सघमे अधिकरण (=मुकदमा) करनेवाले थे। और जो दूसरे भी झगळा० करनेवाले भिक्षु थे उनके पास जाकर ऐसा कहते थे—'आवुसो ! तुम आयुष्मानोको वह हराने न पावे । जबरदस्तको जबरदस्तसे मुकाबिला करना चाहिये । तुम उससे अधिक पडित, अधिक चतुर, अधिक बहुश्रुत और अधिक समर्थ हो। मत उससे डरो। हम भी तुम्हारे पक्षवाले होगे ।' इससे नित्यही अनुत्पन्न झगळे उत्पन्न होते थे, उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते थे । जो वह अल्पेच्छ, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोची, सीख चाहनेवाले थे वे हैरान होते—'कैसे प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं !' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही ।

तब भगवान्ने इसी सबन्धमे इसी प्रकरणमें भिक्षुसघको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते है ?"

"(हॉं) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ ! उन मोघपुरुषो (=फजूलके आदमियोके लिये) यह अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप है, श्रमणोके आचार के विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है । कैसे भिक्षुओ ! वे मोघपुरुष स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं । भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नो–(श्रद्धा-रहितो)को प्रसन्न करनेके लिये है, या प्रसन्नोकी (श्रद्धाको) और

[1] षड्वर्गीय भिक्षुओंमेंसे दोके नाम (—अट्ठकथा, देखो पुष्ठ १४ टिप्पणी २ भी) ।

४–चुल्लवग्ग

१–कर्म-स्कंधक

१—तर्जनीय कर्म । २—नियस्सकर्म । ३—प्रव्राजनीय कर्म । ४—प्रतिसारणीय कर्म । ५—आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म । ६—आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म । ७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म ।

§१–तर्जनीय कर्म

१—श्रावस्ती

(१) तर्जनीय-कर्मके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। उस समय प डु क और लो हि त क[१] भिक्षु स्वय झगळा, कलह, विवाद, और बकवाद, करनेवाले थे, सघमें अधिकरण (=मुकदमा) करनेवाले थे। और जो दूसरे भी झगळा० करनेवाले भिक्षु थे उनके पास जाकर ऐसा कहते थे—'आवुसो ! तुम आयुष्मानोको वह हराने न पावे। जबरदस्तको जबरदस्तसे मुकाबिला करना चाहिये। तुम उससे अधिक पडित, अधिक चतुर, अधिक बहुश्रुत और अधिक समर्थ हो। मत उससे डरो। हम भी तुम्हारे पक्षवाले होगे।' इससे नित्यही अनुत्पन्न झगळे उत्पन्न होते थे, उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते थे। जो वह अल्पेच्छ, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोची, सीख चाहनेवाले थे वे हैरान होते—'कैसे प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी सबन्धमें इसी प्रकरणमें भिक्षुसघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ ! उन मोघपुरुषो (=फजूलके आदमियोके लिये) यह अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप है, श्रमणोके आचार के विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ ! वे मोघपुरुष स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते है। भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नो–(श्रद्धा-रहितो)को प्रसन्न करनेके लिये है, या प्रसन्नोकी (श्रद्धाको) और

---

[१] षड्वर्गीय भिक्षुओमेंसे दोके नाम (—अट्ठकथा, देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी २ भी)।

बढ़ानेके लिये है; बल्कि भिक्षुओ ! अप्रसन्नोंको अप्रसन्न करनेके लिये है, और प्रसन्नों (=श्रद्धालुओं)मेंसे भी किसी किसीको उल्टा करनेवाला है।"

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओंको अनेक प्रकारसे फटकारकर दुर्भरता (=भरण पोषणमें कठिन) दुष्पोषता, महेच्छता (=बड़ी इच्छा), असन्तोष, संगणिका (=जमातमें रहनेकी प्रवृत्ति) और आलस्य (कौसीद्य)की निन्दा करके अनेक प्रकारसे सुभरता, सुपोषता, अल्पेच्छता, सन्तोष, अवधूतपन, प्रासादिकता (मानसिक स्वच्छता), त्याग, वीर्यारंभ (=उद्योग परायणता)की प्रशंसा करके भिक्षुओंके उसके अनुकूल उसके योग्य धर्म-सम्बन्धी कथा कहके भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करे।"

(२) दंड देनेकी विधि

और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये। पहले पंडुक और लोहितक भिक्षुओंको प्रेरित करे, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये। स्मरण दिलाकर आपत्ति (=अपराध)का आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगड़ा करनेवाले … उत्पन्न झगड़े और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं। यदि संघ उचित समझे तो संघ पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करे—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने। यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगड़ने वाले … उत्पन्न झगड़े और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं। संघ पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म करना पसंद है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है वह बोले।

द्वितीय अनुश्रावण—दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने। यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगड़ा करनेवाले …।

तृतीय अनुश्रावण—तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने। यह पंडुक और लोहितक भिक्षु स्वयं झगड़ा करनेवाले …।

ग. धारणा—संघने पंडुक और लोहितक भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(३) नियम-विरुद्ध दंड

१—भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीकसे न सम्पादित (कर्म) कहा जाता है—(१) सामने नहीं किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। १

२—और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीकसे न सम्पादित है—(१) बिना आपत्तिके किया होता है, (२) देशना (=कहलाना)से न जाने लायक आपत्तिके लिये किया गया होता है, (३) देशित (=कबूल कराई जा चुकी) आपत्तिके लिये किया गया होता है। २

३—और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म होता है—(१) बिना प्रेरित किये किया गया होता है, (२) बिना स्मरण कराये किया गया होता है, (३) आपत्तिका आरोप किये बिना किया गया होता है। ३

पहले अनुश्रावणकी ही बातको यहाँ फिर दुहराना चाहिये।

४—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंमे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म० होता है—(१) सामने नहीं किया गया होता, (२) अधर्म (=अनियम)से किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है। 5

५—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंमे युक्त तर्जनीय अधर्म कर्म ० होता है—(१) विना पूछे०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे किया गया होता है। 6

६—"०—(१) विना प्रतिज्ञा कराये०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 7

७—"०—(१) आपत्तिके विना०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 8

८—"०—(१) देशना(=क्षमा कराना)के बाहरकी आपत्तिसे०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 9

९—"०—(१) क्षमा करा ली गई आपत्तिके लिये०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 10

१०—"०—(१) प्रेरणा किये विना०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 11

११—"०—(१) स्मरण कराये विना०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०।। 12

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त तर्जनीय कम, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये विना किया गया होता है, (२) अधर्मसे किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन बातो से युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म, और ठीकसे न संपादित होता है"। 13

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार तर्जनीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंमे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, विनय कर्म, और सुसंपादित (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२)पूछ-ताछ कर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अगोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म, विनय-कर्म, और सुसंपादित (कहा जाता) है। 14

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) आपत्तिसे किया गया होता है, (२) देशना (=क्षमापन) होने लायक आपत्तिके लिये किया गया होता है, (३) न देशित (=जिसके लिये क्षमा नही माँगी गई है) आपत्तिके लिये किया गया होता है।०। 15

३—"०—(१) प्रेरित करके०, (२) स्मरण दिलाकर०, (३) आपत्तिका आरोप करके०।०। 16

४—"०—(१) सामने०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०। ०। 17

५—"०—(१) पूछकर०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 18

६—"०—(१) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 19

७—"०—(१) आपत्ति (होने)से०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 20

८—"०—(१) देशना (=क्षमा-याचना) करने लायक आपत्तिके लिये०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 21

९—"०—(१) अदेशित आपत्तिके लिये०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 22

१०—"०—(१) प्रेरित करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्रसे०।०। 23

११—" —(१) स्मरण कराके (२) धर्मसे (३) समग्रसे ।। 24
१२— •—(१) आपत्तिका आरोप करके (२) धर्मसे (३) समग्रसे ।। 25

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) तर्जनीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातो से युक्त भिक्षुके चाहनेपर (=आकंखमान) सघ तर्जनीय कर्म करे—(१) झगळा कलह विवाद बकवाद करनेवाला सघमें अधिकरण करनेवाला होता है (२) बाल (=मूढ) अचतुर बराबर अपराध करनेवाला अपदान (=आचार) रहित होता है (३) प्रतिकूल गृहस्थ ससर्गोंसे सयुक्त हो विहरता है। भिक्षुओ ! इन तो बातो से युक्त भिक्षुके चाहनेपर सघ तर्जनीय कर्म करे। 26

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुके चाहनेपर सघ तर्जनीय कर्म करे (१)शीलके विषयमें दुश्शील होता है (२) आचारके विषयमे दुराचारी होता है (३) दृष्टि (=धारणा) के विषयमे बुरी धारणावाला होता है ।। 27

३— —(१) बुद्धकी निन्दा करता है (२) धर्मकी निंदा करता है (३) सघकी निंदा करता है ।। 28

४— —(१) अकेला झगळा कलह विवाद, बकवाद करनेवाला सघमें अधिकरण करनेवाला होता है (२) अकेला बाल अचतुर बराबर आपत्ति करनेवाला अपदान रहित होता है (३) अकेला प्रतिकूल गृहस्थ ससर्गोंमे युक्त हो विहरता है ।। 29

५— •—(१) अकेला शीलके विषयमें दुश्शील होता है (२) अकेला आचार के विषयमें दुराचारी होता है (३) अकेला दृष्टि (=धारणा)के विषयमें बुरी धारणावाला होता है ।। 30

६—" —(१)अकेला बुद्धकी निंदा करता है (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है (३) अकेला सघकी निंदा करता है ।। 31

छ आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका तर्जनीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये और वह ठीकसे बरताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये (२) निश्रय नहीं देना चाहिये (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) नही करानी चाहिये (४) भिक्षुणियोको उपदेश देनेकी सम्मति नही लेनी चाहिये (५) (सघकी) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश नहीं देना चाहिये (६) जिस आ प त्ति (=अपराध)के लिये सघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नही करना चाहिये (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नही करना चाहिये (८) या उससे अधिक बुरी (आपत्ति) नहीं करनी चाहिये ( ) क र्म (=न्याय फैसला)की निंदा नहीं करनी चाहिये (१) कर्मिका (=फैसला करनेवालो)की निंदा नही करनी चाहिये (११) प्र कृ ता त्म (अदंडित) भिक्षुके उ पो स थ को स्थगित नही करना चाहिये (१२) (की) प्र वा र णा स्थगित नहीं करनी चाहिये (१३) बात बोलने लायक (काम) नही करना चाहिये (१४) अ नु वा द (शिकायत)को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये (१५) अवकाश नहीं कराना चाहिये (१६) प्रेरणा नहीं करनी चाहिये (१७) स्मरण नहीं कराना चाहिये (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।" 32

अट्ठारह तर्जनीय कर्मके व्रत समाप्त

(७) दड न माफ करने लायक व्यक्ति

तव सघने पडुक और लोहितक भिक्षुओका तर्जनीय कर्म किया। वे सघके तर्जनीय कर्मसे पीडित हो ठीकसे वर्ताव करते थे, रोवाँ गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! सघद्वारा तर्जनीय कर्मसे दडित हो हम ठीकसे वर्तते है, रोवाँ गिराते है, निस्तारके लायक (काम) करते है। कैसे हमे करना चाहिये ?"

भगवान्से यह वात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ, पडुक और लोहितक भिक्षुओके तर्जनीय कर्मको माफ (=प्रतिप्रश्रब्ध= शान्त) करे। 33

(१-५)"भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा[1] देता है, (२) निश्रय[2] देता है, (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है, (४) भिक्षुणियोको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है, (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश देता है। 34

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोमे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है, (७) या वैसी दूसरी आपत्ति करता है, (८) या उससे अधिक वुरी आपत्ति करता है, (९) कर्म (=फैसला, की निंदा करता है, (१०) कर्मिक (=फैसला करने वालो)की निंदा करता है। 35

(११-१८) "भिक्षुओ ! आठ वातोमे युक्त भिक्षुका तर्जनीय कर्म न माफ करना चाहिये—(११) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित करता है, (१२) (०की) प्रवारणा स्थगित करता है, (१३) वात वोलने लायक काम करता है, (१४) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है, (१५) अवकाश कराता है, (१६) प्रेरणा कराता है, (१७) स्मरण कराता है, (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग करता है।" 36

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता , (२) निश्रय नही देता, (३) श्रामणेर से सेवा नही कराता, (४) भिक्षुणियोके उपदेश देनेकी सम्मति पानेकी इच्छा नही रखता, (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश नही देता। 37

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नही करता, (७) या वैसी दूसरी आपत्तिको नही करता, (८) या उससे वुरी दूसरी आपत्तिको नही करता, (९) कर्म (=न्याय) की निंदा नही करता, (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालो)की निंदा नही करता। 38

(११–१८) "और भी भिक्षुओ ! आठ वातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्म को माफ करना

---

[1] महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ १३२)।

[2] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)।

११— —(१) स्मरण कराके (२) धर्मसे (३) समग्रसे । । 24

१२— —(१) आपत्तिका आरोप करके (२) धर्मसे (३) समग्रसे । । 25

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) तर्जनीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—'भिक्षुओ ! तीन बातों से युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ तर्जनीय कर्म करे—(१) झगड़ा कलह विवाद बकवाद करनेवाला संघमें अ धि क र ण करनेवाला होता है (२) बाल (=मूढ) अचतुर बराबर अपराध करनेवाला अपदान (=आचार) रहित होता है (३) प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गोंसे संयुक्त हो विहरता है। भिक्षुओ ! इन दो बातों से युक्त भिक्षुके चाहनेपर संघ तर्जनीय कर्म करे। 26

२—'और भी भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुके चाहनेपर संघ तर्जनीय कर्म करे (१)शीलके विषयमें दुःशील होता है (२) आचारके विषयमें दुराचारी होता है (३) दृष्टि (=धारणा) के विषयमें बुरी धारणावाला होता है । । 27

३— •—(१) बुद्धकी निन्दा करता है (२) धर्मकी निंदा करता है (३) संघकी निंदा करता है । । 28

४— —(१) अकेला झगड़ा कलह विवाद बकवाद करनेवाला संघमें अधिकरण करनेवाला होता है (२) अकेला बाल अचतुर बराबर आपत्ति करनेवाला अपदान रहित होता है (३) अकेला प्रतिकूल गृहस्थ संसर्गोंमें युक्त हो विहरता है । । 29

५— •—(१) अकेला शीलके विषयमें दुःशील होता है (२) अकेला आचार के विषयमें दुराचारी होता है (३) अकेला दृष्टि (=धारणा)के विषयमें बुरी धारणावाला होता है । । 30

६— •—(१)अकेला बुद्धकी निंदा करता है (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है (३) अकेला संघकी निंदा करता है । । 31

छ आकंक्षमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका तर्जनीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये और वह ठीकसे बरताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये (२) निश्रय नहीं देना चाहिये (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) नहीं करानी चाहिये (४) भिक्षुणियोंके उपदेश देनेकी सम्मति नहीं लेनी चाहिये (५) (पहली) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश नहीं देना चाहिये (६) जिस आ प त्ति (=अपराध)के लिये संघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नहीं करना चाहिये (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये (८) या उससे अधिक बुरी (आपत्ति) नहीं करनी चाहिये (९) क र्म (=न्याय फैसला)की निंदा नहीं करनी चाहिये (१०) कर्मिकों (=फैसला करनेवालो)की निंदा नहीं करनी चाहिये (११) प्र कृ ता त्म (अदंडित) भिक्षुके उ पो स थ को स्थगित नहीं करना चाहिये (१२) (को) प्र वा र णा स्थगित नहीं करनी चाहिये (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करना चाहिये (१४) अ नु वा द (शिकायत)को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये (१५) अवकाश नहीं कराना चाहिये (१६) प्रेरणा नहीं करनी चाहिये (१७) स्मरण नहीं कराना चाहिये (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।" 32

अट्ठारह तर्जनीय कर्मके व्रत समाप्त

(नि य स्स क र्म की वि धि)—बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघसे य्य स क भिक्षुका नि य स्स क र्म करे। उनका नि स्स य (=निश्रय[1]) करके रहना चाहिये।" 41

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (निम्म=कर्म) करना चाहिये—पहिले से य्य स क भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाकर आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोपकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति–'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह से य्य स क भिक्षु वाल० आह्वान करता है, यदि सघ उचि तसमझे तो सघ सेय्यसक भिक्षुका, नियस्स कर्म करे उनका नि स्स य ले रहना चाहिये—यह सूचना है।'

"ख अ नु श्रा व ण—'(१)पूज्य सघ मेरी सुने,०। जिस आयुष्मान्‌को सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म करना और निस्सय लेकर रहना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह वोले।

"(२) 'दूसरी वार भी०।

"(३) 'तीसरी वार भी इसी वातको कहता हूँ—पूज्यसघ मेरी सुने—०जिसको पसद न हो वह वोले।

"ग धा र णा—'सघने सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म उनका निस्सय लेकर रहना किया, सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

(३) नियम विरुद्ध नियस्स दड

(१)"भिक्षुओ ! तीन वातो से युक्त नि य स्स क र्म, अधर्म कर्म, अ वि न य, कर्म ठीक से न सपादित होता है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) विना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[2]। 42

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातो से युक्त नियस्स कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये विना किया गया होता है, (२) अधर्मसे किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन वातोंसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीक से न सपादित होता है।" 53

वारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार नियस्स दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन वातोंसे युक्त नियस्स कर्म धर्मकर्मक्र० (कहा जाता) है। —(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अगोंसे युक्त नियस्सकर्म धर्मकर्म० (कहा जाता) है। ०[3] 54

(१२)"०—(१) आपत्तिका आरोप करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्रसे०।०। 65

वारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)। [2] देखो १§१।३ (पृष्ठ ३४२)।
[3] देखो पृष्ठ ३४३।

चाहिये—(११) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नहीं करता (१२) (की) प्रवारणा स्थगित नहीं करता (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करता (१४) अनुवादको नहीं प्रस्थापित करता (१५) अवकाश नहीं कराता (१६) प्रेरणा नहीं कराता (१७) स्मरण नहीं कराता (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।" 39

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये।४ पंडुक और लोहितक भिक्षु संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंगकर (सम्मानसे) वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर, उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा बोले—'भन्ते ! हम संघ द्वारा तर्जनीय-कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तते हैं, लोम गिराते हैं, निस्तार (के काम) को करते हैं, तर्जनीय कर्मसे माफी चाहते हैं। दूसरी बार भी । तीसरी बार भी— 'भन्ते ! तर्जनीय कर्मसे माफी चाहते हैं'।

(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—भन्ते ! संघ ! मेरी सुने, यह पंडुक (और) लोहितक भिक्षु संघ द्वारा तर्जनीय कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तते हैं, तर्जनीय-कर्मसे माफी चाहते हैं। यदि संघ उचित समझे तो संघ पंडुक लोहितक भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मको माफ करे—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—(१) भन्ते ! संघ ! मेरी सुने यह पंडुक (और) लोहितक भिक्षु संघ द्वारा तर्जनीय कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तते हैं। तर्जनीय-कर्मसे माफी चाहते हैं। संघ पंडुक (और) लोहितक भिक्षुओंके तर्जनीय कर्मको माफ कर रहा है। जिस आयुष्मान्‌को पंडुक (और) लोहितक भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मकी माफी पसंद है वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

(२) दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने— ।

(३) तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! संघ मेरी सुने— जिस आयुष्मान्‌को पंडुक (और) लोहितक भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मकी माफी पसंद है वह चुप रहे, जिसको पसंद नहीं है वह बोले। ग. धारणा—संघने पंडुक और लोहितक भिक्षुओंके तर्जनीय-कर्मको माफ कर दिया, संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

तर्जनीय-कर्म समाप्त

§२—नियस्स कर्म

(१) नियस्स दंडका आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सेय्यसक (=श्रेयस्क) बाल (=मूर्ख) अजान, बहुत आपत्ति करनेवाले मर्यादा रहित, अनुचित संसर्ग रखनेवाले गृहस्थोंके साथ विहरते थे और उनको भिक्षु परिवास देते-देते (= दंड देते) परिवास देते, मूलसे प्रतिकर्षण करते, (थे) मानत्त देते, आह्वान (थे)। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वे हैरान होते थे—कैसे आयुष्मान् सेय्यसक बाल होंगे! और उन्होंने भिक्षु आह्वान करें। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।

सचमुच भिक्षुओ ?

(हाँ) सचमुच भगवान् ।

चाहता हूँ ।' दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी—'भन्ते । ० नियस्स कर्मकी माफी चाहता हूँ ।'

"(तव) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[1] ।

"—'सघने से य्य स क भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ कर दिया, सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ' ।" 80

नियस्स कर्म समाप्त ॥२॥

§३–प्रव्राजनीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दडके आरम्भकी कथा

उस समय अ श्व जि त् और पु न र्व सु नामक (दो) भिक्षु की टा गि रि में आवासिक (=सदा आश्रममें रहनेवाले (भिक्षु) थे । वे इस प्रकारका अनाचार करते थे—मालाके पौदेको रोपते, रोपवाते थे, सीचते-सिचाते थे, चुनते-चुनवाते थे, गूँथते-गूँथवाते थे । इकहरी वँटी माला[2] वनाते भी थे वनवाते भी थे । दोनो ओर से वँटी माला वनाते भी थे, वनवाते भी थे, मजरिका (=मजरी) वनाते भी थे वनवाते भी थे, विधूतिका वनाते भी थे वनवाते भी थे, वटसक (=अवतसक) वनाते थे वनवाते भी थे, आवेळ (=आपीड) वनाते भी थे, वनवाते भी थे, उरच्छद वनाते भी थे। वनवाते भी थे, वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, वहुओ, दासियोके लिये एक ओरकी वटिक मालाको ले भी जाते थे, लिवा भी जाते थे, दोनो ओरकी वटिकमालाको ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे, ० उ र च्छ द ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे । वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, वहुओ और दासियोंके साथ एक वर्तनमे खाते थे, एक प्यालेमें पीते थे, एक आसनमें वैठते थे, एक चारपाईपर लेटते थे, एक विस्तरेपर लेटते थे, एक ओढनेमें लेटते थे, एक ओढने विछौनेमे लेटते थे, विकाल (=दोपहरवाद) भी खाते थे, मद्य भी पीते थे, माला, गध और उवटनको भी धारण करते थे, नाचते भी थे, गाते भी थे, वजाते भी थे, लास (=रास) भी करते थे, नाचनेवालीके साथ नाचते भी थे, नाचनेवालीके साथ गाते थे, नाचनेवालीके साथ वजाते थे, नाचनेवालीके साथ ला स करते थे। गानेवालीके साथ नाचते थे, ० गानेवालीके साथ लास करते थे, वजानेवालीके साथ नाचते थे ० वजानेवालीके साथ लास करते थे । लास करनेवालीके साथ नाचते थे ० लास करनेवालीके साथ लास करते थे । अष्टपद (=जुए)को खेलते थे, दशपद=(जुए) को खेलते थे। आकाशमें भी क्रीडा करते थे, प रि हा र प थ में भी खेलते थे। सन्तिका भी खेलते थे, खलिका भी खेलते थे, घटिका भी खेलते थे, शलाकाहस्त[3] भी खेलते थे । अक्ष (=एक प्रकारका जुआ)से भी खेलते थे। पगचीर[3] से भी खेलते थे । वकक[3] से भी खेलते थे । मोक्खचिक्र[3] से भी खेलते थे। त्रिगुलक[3] मे भी खेलते थे। प त्ता ळ्ह क से भी खेलते थे। रथक (=खिलौनेकी गाळी)-से भी खेलते थे, धनुहीसे भी खेलते थे । अक्षरिका[3] से भी खेलते थे । मनेसिका[3] से भी खेलते थे। यथा वज्जा[3] से भी खेलते थे। हाथी-(की विद्या)को भी सीखते थे, घोळे(की विद्या)को भी सीखते थे, रथ(की विद्या)को भी सीखते थे, धनुष(की विद्या)को भी सीखते थे । परशु(की विद्या)को भी सीखते थे। हाथीके आगे आगे भी दौळते थे, घोळेके आगे आगे भी दौळते थे, रथके आगे आगे भी दौळते थे। दौळकर चक्कर भी काटते थे, उस्सोळ्ह[4] भी कहते थे। अप्पोठ[4] भी कहते थे, निब्बुज्झ[4] भी करते थे। मुक्केवाजी भी करते थे। र ग (=थियेटर हाल)के वीचमें सघाटी फैलाकर नाचनेवाली (स्त्री)से

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६ । तर्जनीय कर्मके स्थानमें 'नियस्स कर्म' कर लेना चाहिये ।
[2] मालाओंके नाम हैं । [3] जूओंके नाम । [4] दौळों और व्यायामोंके नाम ।

(५) नियस्स दंड देने योग्य व्यक्ति

१— "भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ नियस्स कर्म करे—(१) झगड़ा करनेवाला, विवाद करनेवाला संघमें अधिकरण करनेवाला होता है ¹।66

६— •—(१) अकेला बुद्धकी निंदा करता है (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है (३) अकेला संघकी निंदा करता है। ।" 71

६: आकांक्षमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका नियस्स कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है—(१) उपसंपदा न देनी चाहिये ² (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (मिश्रण) नहीं करना चाहिये। 72

अठारह नियस्स कर्मके व्रत समाप्त

(७) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

तब संघने—'तुम निश्रय लेकर रहना चाहिये'— (वह) सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म किया। वह संघके नियस्स कर्मसे दंडित हो अच्छे मित्रोंको सेवन करते भजन करते उपासन करते (उनसे) बहुश्रुत (अपने) पूछते हुए बहुश्रुत आगमज्ञ धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर पंडित, चतुर मेधावी लज्जाशील संकोची सीखको चाहनेवाले हो गये। वह ठीकसे बर्ताव करते रोवाँ गिराते थे निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! संघ द्वारा नियस्स कर्मसे दंडित हो मैं ठीकसे बर्तता हूँ रोवाँ गिराता हूँ निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ सेय्यसक भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ करे।" 73

(माफ न करने लायक व्यक्ति)—(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके नियस्स कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(१) उपसंपदा देता है ³ (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग करता है। 76

अठारह प्रतिप्रश्रब्ध न करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसंपदा नहीं देता ³ (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता। 79

अठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह नियस्स किया भिक्षु संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंग कर वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वंदनाकर उकडूँ बैठ ऐसा बोले—

'भन्ते ! मैं संघ द्वारा नियस्स कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तता हूँ नियस्स कर्मकी माफी

---

¹देखो पृष्ठ ३४४।   ²देखो पृष्ठ ३४५।

³देखो पृष्ठ ३४५-४६।

चाहता हूँ।' दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—'भन्ते ! ० नियस्स कर्मकी माफी चाहता हूँ।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[1]।

"—'सघने सेय्य स क भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ कर दिया, सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।" 80

नियस्स कर्म समाप्त ॥२॥

§३-प्रव्राजनीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दडके आरम्भकी कथा

उस समय अ श्व जि त् और पु न र्व सु नामक (दो) भिक्षु की टा गि रि में आवासिक (=सदा आश्रममे रहनेवाले (भिक्षु) थे। वे इस प्रकारका अनाचार करते थे—मालाके पौदेको रोपते, रोपवाते थे, सीचते-सिचाते थे, चुनते-चुनवाते थे, गूंथते-गुंथवाते थे। इकहरी वेंटी माला[2] बनाते भी थे बनवाते भी थे। दोनो ओर से वेंटी माला बनाते भी थे, बनवाते भी थे, मजरिका (=मजरी) बनाते भी थे बनवाते भी थे, विधूतिका बनाते भी थे बनवाते भी थे, वटसक (=अवतसक) बनाते थे बनवाते भी थे, आवेळ (=आपीड) बनाते भी थे, बनवाते भी थे, उरच्छद बनाते भी थे। बनवाते भी थे, वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, बहुओ, दासियोके लिये एक ओरकी वटिक मालाको ले भी जाते थे, लिवा भी जाते थे, दोनो ओरकी वटिकमालाको ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे, ० उ र च्छ द ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे। वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, बहुओ और दासियोंके साथ एक बर्तनमे खाते थे, एक प्यालेमे पीते थे, एक आसनमे बैठते थे, एक चारपाईपर लेटते थे, एक बिस्तरेपर लेटते थे, एक ओढनेमें लेटते थे, एक ओढने बिछौनेमे लेटते थे, विकाल (=दोपहरबाद) भी खाते थे, मद्य भी पीते थे, माला, गध और उबटनको भी धारण करते थे, नाचते भी थे, गाते भी थे, बजाते भी थे, लास (=रास) भी करते थे, नाचनेवालीके साथ नाचते भी थे, नाचनेवालीके साथ गाते थे, नाचनेवालीके साथ बजाते थे, नाचनेवालीके साथ ला स करते थे। गानेवालीके साथ नाचते थे, ० गानेवालीके साथ लास करते थे, बजानेवालीके साथ नाचते थे ० बजानेवालीके साथ लास करते थे। लास करनेवालीके साथ नाचते थे ० लास करनेवालीके साथ लास करते थे। अष्टपद (=जुए)को खेलते थे, दशपद=(जुए) को खेलते थे। आकाशमे भी क्रीडा करते थे, प रि हा र प थ मे भी खेलते थे। सन्तिका भी खेलते थे, खलिका भी खेलते थे, घटिका भी खेलते थे, शलाकाहस्त[3] भी खेलते थे। अक्ष (=एक प्रकारका जुआ)मे भी खेलते थे। पगचीर[3] से भी खेलते थे। वकक[3] से भी खेलते थे। मोक्खचिक[3] से भी खेलते थे। चिंगुलक[3] मे भी खेलते थे। प त्ता ळ् ह क से भी खेलते थे। रथक (=खिलौनेकी गाळी)-से भी खेलते थे, धनुहीसे भी खेलते थे। अक्षरिका[3] से भी खेलते थे। मनेसिका[3] से भी खेलते थे। यथा वज्जा[3] से भी खेलते थे। हाथी-(की विद्या)को भी सीखते थे, घोळे(की विद्या)को भी सीखते थे, रथ(की विद्या)को भी सीखते थे, धनुष(की विद्या)को भी सीखते थे। परशु(की विद्या)को भी सीखते थे। हाथीके आगे आगे भी दौळते थे, घोळेके आगे आगे भी दौळते थे, रथके आगे आगे भी दौळते थे। दौळकर चक्कर भी काटते थे, उस्सोळ्ह[4] भी कहते थे। अप्पोठ[4] भी कहते थे, निब्बुज्झ[4] भी करते थे। मुक्केबाजी भी करते थे। र ग (=थियेटर हाल)के बीचमें सघाटी फैलाकर नाचनेवाली (स्त्री)से

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६। तर्जनीय कर्मके स्थानमें 'नियस्स कर्म' कर लेना चाहिये।
[2] मालाओंके नाम हैं। [3] जूओंके नाम। [4] दौळों और व्यायामोंके नाम।

यह कहते थे—'भगिनी यहाँ नाचो। ललाटिका (एक ललाटका आभूषण)को भी लगाते थे। और नाना प्रकारके अनाचारको करते थे।

उस समय एक भिक्षु काशी (देश)में वर्षावास कर भगवान्‌के दर्शनके लिये (श्रावस्ती) जाते (समय) जहाँ कीटागिरि है वहाँ पहुँचा। तब वह भिक्षु पूर्वाह्णमे पहनकर पात्र चीवर ले श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले गमन-आगमन(के ढंग)से आलोकन-विलोकनसे (हाथके) समेटने-पसारनेसे नीची नजर करके ईर्यापथ¹से युक्त हो कीटागिरिमें प्रविष्ट हुआ। लोग उस भिक्षुको देखकर ऐसा कहने लगे—

'यह कौन निर्बल-दुर्बल जैसा धीरे धीरे भाकुटिक (=पाखंडी) भाकुटिक जैसा है? कौन आनेपर इसको भीख भी देगा? हमारे आर्य अश्वजित् और पुनर्वसु तो स्नेह युक्त सखिल (सखा भाव युक्त) सुख-पूर्वक स=भाषण करने योग्य बोलनेपर पहले जानेवाले 'आओ! स्वागत' बोलनेवाले भौंह न चढानेवाले खुले मुँहवाले पहले बोलनेवाले हैं। उन्हें भिक्षा देनी चाहिये।

एक उपासक उस भिक्षुको कीटागिरिमें भिक्षाटन करते देख जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादन कर यह बोला—

क्या भन्ते! भिक्षा मिली?

'आवुस! भिक्षा नहीं मिली।

'आओ भन्ते! घर चले।

तब वह उपासक उस भिक्षुको (अपने) घर लेजा भोजन करा यह बोला—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायेंगे?

आवुस मैं भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।

'तो भन्ते! मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोंमें शिरसे वन्दना करना और यह कहना—'भन्ते! कीटागिरिका आवास दूषित हो गया है। अश्वजित् और पुनर्वसु नामक (दो) निर्लज्ज पापी भिक्षु कीटागिरिमें आवासिक (=सदा आश्रममें रहनेवाले भिक्षु) हैं। ¹ और नाना प्रकारके अनाचार करते हैं। भन्ते! जो मनुष्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अब अश्रद्धालु—अप्रसन्न हैं। जो कोई पहले संघके लिये दानके रास्ते थे वे भी टूट गये। अच्छे भिक्षु छोड़ जाते हैं। पापी भिक्षु वास करते हैं। अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमें (ऐसे) भिक्षु भेजें जिसमे यह आवास ठीक हो जाय'।"

"अच्छा आवुस! —(कह) वह भिक्षु उस उपासकको उत्तर दे आसनसे उठ जिधर श्रावस्ती है उधर चल दिया। क्रमशः जहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकका आराम जेतवन था जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। बुद्ध भगवानोंका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंके साथ प्रति सम्मोदन (=कुशल-प्रश्न पूछना) करें। तब भगवान्‌ने उस भिक्षुसे कहा—

'भिक्षु! अच्छा तो रहा यापनीय तो रहा तकलीफके बिना रास्तेमे तो आया और भिक्षु! तू कहाँसे आता है?

"अच्छा रहा भगवान्! यापनीय रहा भगवान्! तकलीफके बिना भन्ते! मैं रास्तेमें आया। भन्ते! मैं काशी (देश)में वर्षावास करके भगवान्‌के दर्शनको श्रावस्ती आते कीटागिरिमें पहुँचा। तब मैं भन्ते! पूर्वाह्ण समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले ईर्यापथसे युक्त हो कीटागिरिमें प्रविष्ट हुआ। ¹ अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमें (ऐसे) भिक्षु भेजें जिसमें यह आवास ठीक हो जाय।

¹ देखो पृष्ठ ३४९।

वहाँसे मैं भगवान्! आ रहा हूँ।"

तब भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु सघको एकत्रित कर भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! अ श्व जि त् और पु न र्व सु (दो) निर्लज्ज, पापी भिक्षु ० ? नाना प्रकारके अनाचारको करते है ? और जो मनुष्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अब अश्रद्धालु=अप्रसन्न हैं ० अच्छे भिक्षु छोळ जाते है, पापी भिक्षु वास करते है।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—० नाना प्रकारके अनाचार करते है!! भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह सा रि पु त्र और मो ग्ग ला न को सबोधित किया—

"जाओ सा रि पु त्र! तुम (और मो ग्ग ला न)। की टा गि रि में जा अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि मे प्र व्रा ज नी य कर्म (=निकालनेका दड) करो। वे तुम्हारे स द्धि वि हा री (=शिष्य) थे।" 81

"भन्ते! कैसे हम अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि से प्रव्रजित कर्म करें? वे भिक्षु चड है, परुष (=कठोर) है।"

"तो सारिपुत्र (मोग्गलान) तुम बहुतसे भिक्षुओके साथ जाओ!"

"अच्छा भन्ते!" (कह) सारिपुत्रने भगवान्का उत्तर दिया।

(२) दण्ड देनेको विधि

"और भिक्षुओ! ऐमे प्रव्राजनीय कर्म करना चाहिये—पहले अ श्व जि त् पु न र्व सु भिक्षुओको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाकर आ प त्ति का आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोप कर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते! सघ मेरी सुने! ये अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुल-दूषक (और) पापाचारी है। इनके पापाचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है, और इनके द्वारा कुल दूषित हुए देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। यदि सघ उचित समझे तो सघ—'अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओको की टा गि रि में नही वास करना चाहिये'—(कह) अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि-से प्रव्राजनीय कर्म करे।—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते, सघ मेरी सुने! यह अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुलदूषक और पापाचारी है। सघ—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओको कीटागिरिमें नही वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पु न र्व सु का प्रव्राजनीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्को ० अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओका प्रव्राजनीय कर्म करना पसद है वह चुप रहे, जिसको ० नही पसद है वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी ०।

"(३) 'तीसरी बार भी ०।

"ग धा र णा—सघने—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओको कीटागिरिमें नही वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पुनर्वसुका कीटागिरिसे प्रव्राजनीय कर्म कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 82

(३) नियम-विरुद्ध प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म, अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति)

कराये किया गया होता है। ¹। 94

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछ कर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ¹। 106

बारह धर्म-कर्म समाप्त

(५) प्रव्राजनीय दण्ड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ तर्जनीय कर्म करे—०²।" ४२

छ आकांक्षमान समाप्त

(६) दण्डित व्यक्तिके कर्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये ³।" 113

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायनकी प्रधानतामें भिक्षु संघने कीटागिरिमें जा—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंको कीटागिरिमें नहीं वास करना चाहिये (कह) अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंका कीटागिरिसे प्रव्राजनीय कर्म किया। वे संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बर्ताव नहीं करते थे रोवाँ नहीं गिराते थे निस्तारके लायक (काम) नहीं करते थे भिक्षुओंसे माफी नहीं माँगते थे (बल्कि भिक्षुओंको) निन्दा करते थे परिहास करते थे—भिक्षु छन्द (=स्वेच्छाचार) द्वेष मोह भय (के रास्तेपर) जानेवाले हैं रहते भी हैं चले जाते भी हैं। (भिक्षु-संघ) भी छोड़ जाते हैं। कहते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वे हैरान होते थे—कैसे अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षु संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बर्ताव नहीं करते (भिक्षु वेष) भी छोड़ जाते हैं! तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

सचमुच भिक्षुओ! ?

"(हाँ) सचमुच भगवान्।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ प्रव्राजनीय कर्मको माफ न करे।"

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षु प्रव्राजनीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है ¹।" 116

प्रव्राजनीय कर्ममें अठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१)

---

¹ देखो पृष्ठ ३४७। ² देखो पृष्ठ ३४३। ³ देखो पृष्ठ ३४४।
⁴ देखो पृष्ठ ३४५।

उपसम्पदा नही देता, ०[1]।" 119

प्रव्राजनीय कर्ममें अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(५) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—जिस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया गया है वह संघके पास जाकर ० उकळू बैठ हाथ जोड़ ऐसा बोले—

"'भन्ते ! हम संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्मसे दंडित हो ठीकसे वर्तते हैं ० प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहते है।' दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी ०।

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[2]।" 120

प्रव्राजनीय कर्म समाप्त ॥३॥

§४—प्रतिसारणीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सुधर्म मच्छिकासंड[3]में चित्र गृहपतिके आवासिक (=आश्रम बनानेवाले) हो नवकर्मिक (=नई इमारतकेतत्वावधान करनेवाले) ध्रुव भक्तक (=सदा वही भोजन करनेवाले) थे। जब चित्र गृहपति संघ, या गण या व्यक्तिका निमंत्रण करना चाहता था तो आयुष्मान् सुधर्मको विना पूछे नही करता था। उस समय, आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आयुष्मान् महाकात्यायन, आयुष्मान् महाकोट्ठित (=कोष्टिल), आयुष्मान् महाकप्पिन्, आयुष्मान् महाचुन्द, आयुष्मान अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् उपालि आयुष्मान् आनंद, और आयुष्मान राहुल (आदि) बहुतसे स्थविर काशी (देश)मे चारिका करते, जहाँ मच्छिकासंड था वहाँ पहुँचे।

चित्र गृहपतिने सुना कि स्थविर भिक्षु मच्छिकासंडमे पहुँचे है। तब चित्र गृहपति जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर स्थविर भिक्षुओको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चित्र गृहपतिको आयुष्मान सारिपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब आयुष्मान् सारिपुत्रकी धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो चित्र गृहपतिने स्थविर भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते ! कलका नवागन्तुकका भोजन मेरा स्वीकार करे।"

स्थविर भिक्षुओने मौन रह स्वीकार किया। तब चित्र गृहपति स्थविर भिक्षुओकी स्वीकृति जान, आसनसे उठ, स्थविर भिक्षुओको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर जहाँ आयुष्मान् सुधर्म थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर एक ओर खडा हो गया। एक ओर खळे चित्र गृहपतिने आयुष्मान् सुधर्मसे यह कहा—

"भन्ते ! आर्य सुधर्म (भी) स्थविरोके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६।

[2] देखो पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्म'के स्थानपर 'प्रव्राजनीय कर्म' और 'पण्डुक' तथा 'लोहितक'के स्थानपर 'वह भिक्षु' करके पढना चाहिये।

[3] संभवत जौनपुर जिलेका 'मछली शहर' कस्बा।

कराये किया गया होता है। ०[१]। 94

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछ कर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। [१]।" 106

बारह धर्म-कर्म समाप्त

(५) प्रव्राजनीय दण्ड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ तर्जनीय कर्म करे— [१]।" ४२

छ आकांक्षमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिका कर्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये और वह ठीकसे बरताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये [१]।" 113

तब सारिपुत्र और मोग्गल्लानकी प्रधानतामें भिक्षु संघने कीटागिरिमें जा—'अस्सजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंको कीटागिरिमें नहीं वास करना चाहिये' (कह) अस्सजित् और पुनर्वसु भिक्षुओंका कीटागिरिसे प्रव्राजनीय कर्म किया। वे संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नहीं करते थे रोयाँ नहीं गिराते थे निस्तारके लायक (काम) नहीं करते थे भिक्षुओंसे माफी नहीं माँगते थे (बल्कि भिक्षुओंकी) निंदा करते थे परिहास करते थे—भिक्षु छन्द (=स्वेच्छाचार) द्वेष मोह भय (के रास्तेपर) जानेवाले हैं एसा भी है चले जाते भी हैं। (भिक्षु-वेष) भी छोड़ जाते हैं। कहते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—कैसे अस्सजित् और पुनर्वसु भिक्षु संघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नहीं करते (भिक्षु वेष) भी छोड़ जाते हैं! तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ प्रव्राजनीय कर्मको माफ न करे।

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षु प्रव्राजनीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है । 116

प्रव्राजनीय कर्ममें अठ्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१)

देखो पृष्ठ १४२। [१] देखो पृष्ठ १४३। [१] देखो पृष्ठ १४४।
देखो पृष्ठ १४५।

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"० कैसे तू मोघपुरुष चित्र-गृहपति (जैसे) श्रद्धालु=प्रसन्न, दायक, कारक, सघ-सेवकको छोटी (वात)से खुनसायेगा! छोटी (वात)से नाराज करेगा। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

(२) दण्ड देनेकी विधि

"तो भिक्षुओ! 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) सघ सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे। 121

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (प्रतिसारणीय कर्म) करना चाहिये, पहले सुधर्म भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला कर आपत्तिका आरोप करना चाहिये, आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते! सघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चित्र गृहपति जैसे श्रद्धालु ०को छोटी (वात)से खुनसाया ०, यदि सघ उचित समझे तो सघ—'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! सघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चित्र गृहपति जैसे श्रद्धालु० को छोटी (वात)से खुनसाया ०, सघ 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो'—(कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्को सुधर्म भिक्षुका प्र ति सा र णी य कर्म पसद है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है वह वोले।

"(२) 'दूसरी वार भी ०[1]।

"(३) 'तीसरी वार भी ०।

"ग धा र णा—'सघने सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 122

(३) नियम विरुद्ध प्रतिसारणीय दड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोंसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, अधर्म कर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) विना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[1]।" 134

वारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रतिसारणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, धर्मकर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछ कर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[2]।" 146

वारह धर्म कर्म समाप्त

(५) प्रतिसारणीय दड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (आकखमान) प्रतिसारणीय कर्म

---

[1] देखो पृष्ठ ३४२। [2] देखो पृष्ठ ३४३।

तब आयुष्मान् सुधर्म—'पहले यह चित्र गृहपति सब-काम या व्यक्तिको निमंत्रित करनेकी इच्छा होनेपर बिना मुझसे पूछे नहीं निमंत्रित करता था सो आज (मुझे) बिना पूछे (इसने) स्थविर भिक्षुओंको निमंत्रित किया। अब यह चित्र गृहपति मेरे प्रति विराग युक्त बे परवाह (और) विरक्त सा है'—(सोच) चित्र गृहपतिसे यह कहा—

'नहीं गृहपति! मैं नहीं स्वीकार करता।"

दूसरी बार भी

तीसरी बार भी चित्र गृहपतिने आयुष्मान् सुधर्मसे यह कहा—•।

तब चित्र गृहपति—'आयुष्मान् सुधर्म स्वीकार करके या न स्वीकार करके मेरा क्या करेंगे' (सोच) आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब चित्र गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर स्थविर भिक्षुओंके लिये उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार किया। तब आयुष्मान् सुधर्म—'आओ! स्थविर भिक्षुओंके लिये चित्र गृहपतिकी तैयारी देखें' (सोच) पूर्वाह्णमें (वस्त्र) पहिन पात्र-चीवर ले जहाँ चित्र गृहपतिका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब चित्र गृहपति जहाँ आयुष्मान सुधर्म थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चित्र गृहपतिको आयुष्मान् सुधर्मने यह कहा—

"गृहपति! तूने यह बहुत सा खाद्य-भोज्य तैयार किया है किन्तु एक तिल सगुलिका (=तिलवा) नहीं है।

"भन्ते! बुद्ध-वचनमें बहुत रत्नोंके रहते हुए भी आर्य सुधर्मको यह तिल सगुलिका ही भाषण करनेको मिली। भन्ते! पूर्वकालमें दक्षिणापथ (=Deccan) के व्यापारी पूर्वदेशमें व्यापारके लिये गये। वे वहाँसे (एक) मुर्गी लाये। तब भन्ते! उस मुर्गीने कौएके साथ सहवास किया। और बच्चा पैदा किया। जब भन्ते! वह मुर्गीका बच्चा कौएकी बोली बोलना चाहता था तो 'काक-कुक्कुट' बोलता था जब मुर्गेकी बोली बोलना चाहता था तो 'कुक्कुट-काक' बोलता था। ऐसे ही भन्ते! बुद्ध-वचनमें बहुत रत्नोंके रहते हुए भी आर्य सुधर्मको यह तिल-सगुलिका ही भाषण करनेको मिली।

"गृहपति! तू मेरी निंदा करता है मेरा परिहास करता है। गृहपति! (ले) यह तेरा आवास है मैं जाता हूँ।

"भन्ते! मैं आर्य सुधर्मकी निंदा नहीं करता परिहास नहीं करता। भन्ते! आर्य सुधर्म मच्छिकासंडमें वास करें, अम्बाटक वन सुन्दर है। मैं आर्य सुधर्मके चीवर, भोजन आसन रोगि-पथ्य रोगि औषध-सामानका प्रबन्ध करूँगा।

दूसरी बार भी आयुष्मान सुधर्मने •।

तीसरी बार भी आयुष्मान् सुधर्मने चित्र गृहपतिसे यह कहा—

"गृहपति! तू मेरी निंदा करता है •।

"भन्ते! आर्य सुधर्म कहाँ जायेंगे?"

गृहपति! भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।

"तो भन्ते! जो आपने कहा और जो मैंने कहा वह सब भगवान्‌से कहना। आश्चर्य नहीं भन्ते! कि आर्य सुधर्म फिर मच्छिकासंडमें वापस आयें।

तब आयुष्मान् सुधर्म आसन-वासन सँभाल पात्र चीवर ले जिधर श्रावस्ती है उधर चल दिये। क्रमशः जहाँ श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकका आराम जेतवन था और जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सुधर्मने जो कुछ अपने कहा था और कुछ चित्र गृहपतिने कहा था वह सब भगवान्‌से कह दिया।

रहा है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले भिक्षुका अनुदूत किया जाना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको पसन्द न हो वह बोले।

"'दूसरी बार भी०।

"'तीसरी बार भी०।

"—'सघने इस नामवाले भिक्षुको० अनुदूत दिया, सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! सु ध र्म भिक्षुको उस अनुदूतके साथ म च्छि का म ड जा चि त्र गृहपतिसे—'गृहपति! क्षमा करो, विनती करता हूँ' (कह) क्षमा माँगनी चाहिये। ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो। तुमसे विनती करता हूँ।' ऐसे कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो, मै तुमसे विनती करता हूँ।'—ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! सघके वचनसे इस भिक्षुको क्षमा करो।' ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षु सुधर्म भिक्षुको चि त्र गृहपतिके देखने सुनने भरके स्थानमे एक कधेपर उत्तरासघ करा, उकळूँ बैठा, हाथ जोळवा उस आपत्ति (=अपराध)की देशना (Confession) कराये।"

तब आयुष्मान् सु ध र्म ने अनुदूत भिक्षुके साथ म च्छि का म ड जा चि त्र गृहपतिसे (अपनेको) क्षमा करवाया। (तब) वह ठीक तरहसे बरताव करते थे० भिक्षुओंके पास जा ऐसा कहते थे—'आवुसो! सघ द्वारा दडित हो मै अब ठीकसे बर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये?'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ सु ध र्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करे।" 153

(८) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, ०[1]।" 158

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५ "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ।०[1]।" 173

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(१०) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह सुधर्म भिक्षु, भिक्षु-सघके पास जा० उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०[2]।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३४५।

[2] देखो पृष्ठ ३४६ तर्जनीय कर्मके स्थानमें, प्रतिसारणीय कर्म, तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुके स्थानमें 'सुधर्म' भिक्षुकरके पढना चाहिये।

कर—(१) गृहस्थोंके अलाभ (=हानि)का प्रयत्न करता है (२) गृहस्थोंके अनर्थके लिये प्रयत्न करता है (३) गृहस्थोंके अवास (=निर्वासन)के लिये प्रयत्न करता है (४) गृहस्थोंकी निन्दा करता है परिहास करता है (५) गृहस्थ गृहस्थमें फूट डालता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे। 147

२—"भिक्षुओ! और भी पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) गृहस्थोंसे बुद्धकी निन्दा करता है (२) गृहस्थोंसे धर्मकी निन्दा करता है (३) गृहस्थोंसे संघकी निन्दा करता है (४) गृहस्थोंको नीच (बात)से लजवाता है और नीच (बात)से नाराज करता है (५) गृहस्थोंसे धार्मिक प्रतिश्रव (=वादा पालन)को नहीं सच कराता। भिक्षुओ! इन पाँच 148

३—"भिक्षुओ! पाँच भिक्षुओंका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) अकेला गृहस्थोंके अलाभ (=हानि)का प्रयत्न करता है (५) अकेला गृहस्थ गृहस्थमें फूट डालता है। भिक्षुओ! इन पाँच 149

४— भिक्षुओ! और भी पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुका इच्छा होनेपर संघ प्रतिसारणीय कर्म करे—(१) अकेला गृहस्थोंसे बुद्धकी निन्दा करता है (५) अकेला गृहस्थोंसे धार्मिक प्रतिश्रव (-प्रतिज्ञा?) को नहीं सच कराता। भिक्षुओ! इन पाँच। 150

आकंखमान चार पंचक समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्तव्य

भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये [1]। 151

अट्ठारह प्रतिसारणीय कर्मके व्रत समाप्त

(७) अनुदूत देनेकी विधि

तो भिक्षुओने—तुम चित्त गृहपतिसे जा क्षमा माँगो'—(कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया। संघ द्वारा प्रतिसारणीय कर्मसे दंडित हो मच्छिकासंड में जा मूक हो चित्त गृहपतिसे क्षमा न माँग सके। वे फिर श्रावस्ती लौट गये। भिक्षुओने पूछा—

"आवुस सुधर्म! चित्त गृहपतिसे तुमने क्षमा माँग ली?"

"आवुसो! मैं मच्छिकासंड जा मूक हो चित्त गृहपतिसे क्षमा न माँग सका।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ चित्त गृहपतिसे क्षमा माँगनेके लिये सुधर्म भिक्षुको (एक) अनुदूत (-साथी) दे। 152

"और इस प्रकार देना चाहिये—पहिले (जानेवाले) भिक्षुसे पूछना चाहिये। पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक नामवाले भिक्षुको चित्त गृहपतिसे क्षमा माँगनेके लिये सुधर्म भिक्षुको अनुदूत दे—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघ इस नामवाले भिक्षुको अनुदूत दे

[1] देखो पृष्ठ ३८४।

रहा है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले भिक्षुका अनुदूत किया जाना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको पसन्द न हो वह वोले।

"'दूसरी बार भी०।

"'तीसरी बार भी०।

"—'सघने इस नामवाले भिक्षुको० अनुदूत दिया, सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! सुधर्म भिक्षुको उस अनुदूतके साथ मच्छिकासडा चित्र गृहपतिसे—'गृहपति! क्षमा करो, विनती करता हूँ' (कह) क्षमा माँगनी चाहिये। ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो। तुमसे विनती करता हूँ।' ऐसे कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो, मैं तुमसे विनती करता हूँ।'—ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! सघके वचनसे इस भिक्षुको क्षमा करो।' ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षु सुधर्म भिक्षुको चित्र गृहपतिके देखने सुनने भरके स्थानमें एक कधेपर उत्तरासघ करा, उकळूँ बैठा, हाथ जोळवा उस आपत्ति (=अपराध)की देशना (Confession) कराये।"

तब आयुष्मान् सुधर्मने अनुदूत भिक्षुके साथ मच्छिकासडा चित्र गृहपतिसे (अपनेको) क्षमा करवाया। (तब) वह ठीक तरहसे वरताव करते थे० भिक्षुओंके पास जा ऐसा कहते थे—'आवुसो! सघ द्वारा दडित हो मैं अब ठीकसे बर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये?'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ सुधर्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करे।" 153

(८) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, ०[1]।" 158

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करने लायक व्यक्ति

(१–५ "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ।०[1]।" 173

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(१०) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह सुधर्म भिक्षु, भिक्षु-सघके पास जा० उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०[2]।"

---

[1]देखो पृष्ठ ३४५।

[2]देखो पृष्ठ ३४६ तर्जनीय कर्मके स्थानमें, प्रतिसारणीय कर्म, तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुके स्थानमें 'सुधर्म' भिक्षुकरके पढना चाहिये।

—संघने सुधर्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ कर दिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ। 174

प्रतिसारणीय कर्म समाप्त ॥४॥

§५—आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीयकर्म

२—कौशाम्बी

(१) आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् कौशाम्बीके घोषिताराममें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छन्न आपत्ति (=अपराध) करके उस आपत्तिको देखना (Realisation) नहीं चाहते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वे हैरान होते थे—'कैसे आयुष्मान् छन्न आपत्ति करके उसको देखना नहीं चाहते!'

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही ।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'तो भिक्षुओ! संघ छन्न भिक्षुका आपत्तिके न देखनेसे संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे। 175

(२) दंडके देनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (उत्क्षेपणीय कर्म) करना चाहिये। पहले छन्न भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने। यह छन्न भिक्षु आपत्तिको करके उस आपत्तिको देखना नहीं चाहता। यदि संघ उचित समझे तो आपत्तिके न देखनेके लिये संघ छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको करे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघ आपत्तिके न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्को पसन्द है वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द है वह बोले।

(२) दूसरी बार भी ।

(३) 'तीसरी बार भी[1]।

ग. धा र णा—'संघने छन्न भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ! सारे आवासोंमें कह दो कि आपत्तिके न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।

(३) नियम विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त उत्क्षेपणीय कर्म अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता (२) बिना पूछे किये गया होता है (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है।[1]। 187

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1]देखो पृष्ठ ३४२।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त ०उत्क्षेपणीय कर्म, धर्मकर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति कराके किया गया होता है। ०[1]।" 199

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकखमान) सघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[2]।" 205

छ आकरण मान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये। और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[2] (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवाले)की निन्दा नही करनी चाहिये, (११) प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुसे अभिवादन, (१२) प्रत्युत्थान, (१३) हाथ जोळना, (१४) सामीचि कर्म (=यथायोग्य वर्तना), (१५) आसन ले आना, (१६) शय्या ले आना, (१७) पादोदक, (१८) पादपीठ, (१९) पादकठलिक, (२०) पात्र-चीवर ले आना, (२१) स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो को लेना) चाहिये, (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोप नही लगाना चाहिये, (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोप नही लगाना चाहिये, (२४) बुरी-जीविका-होने-वालेका दोष नही लगाना चाहिये, (२५) भिक्षु-भिक्षुमे फूट नही डालनी चाहिये, (२६) न गृहस्थोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२७) न तीर्थिकोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२८) न तीर्थिकोका सेवन करना चाहिये, (२९) भिक्षुओका सेवन करना चाहिये, (३०) भिक्षुओकी शिक्षा (=नियम) सीखनी चाहिये, (३१) प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नही वास करना चाहिये, (३२) एक छतवाले अनावास (=भिक्षुओके निवास-स्थान से भिन्न घर) में नही रहना चाहिये, (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें नही रहना चाहिये, (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे उठ जाना चाहिये', (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या बाहरसे नाराज़ न करना चाहिये, (३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नही करना चाहिये, (३७) प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये, (३८) बात बोलने लायक (काम) नही करना चाहिये, (३९) अनुवाद (=शिकायत)को नही प्रस्थापित करना चाहिये, (४०) अवकाश नही कराना चाहिये, (४१) प्रेरणा नही करनी चाहिये, (४२) स्मरण नही कराना चाहिये, (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नही करना चाहिये।" 206

तब सघने आपत्ति न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका सघके साथ सहभोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह सघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोळ दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भिक्षुओने न उसका अभिवादन किया, न प्रत्युत्थान किया, न हाथ जोळा, न सामीचि कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) किया, न सत्कार = गुरुकार किया, न सम्मान

---

[1] देखो पृष्ठ ३४३।

[2] देखो पृष्ठ ३४४।

—संघने सुधर्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ कर दिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ। 174

प्रतिसारणीय कर्म समाप्त ॥४॥

§५–आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीयकर्म

२—*कौशाम्बी*

(१) आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् कौशाम्बीके घोषिताराममें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छन्न आपत्ति (=अपराध) करके उस आपत्तिको देखना (Realisation) नहीं चाहते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वे हैरान होते थे—कैसे आयुष्मान् छन्न आपत्ति करके उसको देखना नहीं चाहते!

तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ छन्न भिक्षुका आपत्तिके न देखनेसे संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे। 175

(२) दंडके देनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (उत्क्षेपणीय कर्म) करना चाहिये। पहले छन्न भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने। यह छन्न भिक्षु आपत्तिको करके उस आपत्तिको देखना नहीं चाहता। यदि संघ उचित समझे तो आपत्तिके न देखनेके लिये संघ छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको करे—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। संघ आपत्तिके न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्को पसन्द है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द है वह बोले।

(२) दूसरी बार भी ...[1]।

(३) तीसरी बार भी ...[1]।

ग. धा र णा—'संघने छन्न भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ! सारे आवासोंमें कह दो कि आपत्तिके न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।

(३) नियम विरुद्ध उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त उत्क्षेपणीय कर्म अधर्म कर्म ... (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता (२) बिना पूछे किये गया होता है (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ...[1]। 187

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1]देखो पृष्ठ १४२।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त ०उत्क्षेपणीय कर्म, धर्मकर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति कराके किया गया होता है। ०[1] ।" 199

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकखमान) संघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[2] ।" 205

छ आकरण मान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये। और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[2] (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालो)की निन्दा नही करनी चाहिये, (११) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुसे अभिवादन, (१२) प्रत्युत्थान, (१३) हाथ जोळना, (१४) सामीचि कर्म (=यथायोग्य वर्तना), (१५) आसन ले आना, (१६) शय्या ले आना, (१७) पादोदक, (१८) पादपीठ, (१९) पादकठलिक, (२०) पात्र-चीवर ले आना, (२१) स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो को लेना) चाहिये, (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष नही लगाना चाहिये, (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष नही लगाना चाहिये, (२४) बुरी-जीविका-होने-वालेका दोष नही लगाना चाहिये, (२५) भिक्षु-भिक्षुमें फूट नही डालनी चाहिये, (२६) न गृहस्थोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२७) न तीर्थिकोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२८) न तीर्थिकोका सेवन करना चाहिये, (२९) भिक्षुओका सेवन करना चाहिये, (३०) भिक्षुओकी शिक्षा (=नियम) सीखनी चाहिये, (३१) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नही वास करना चाहिये, (३२) एक छतवाले अनावास (=भिक्षुओके निवास-स्थान से भिन्न घर) में नही रहना चाहिये, (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें नही रहना चाहिये, (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे उठ जाना चाहिये', (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या बाहरसे नाराज न करना चाहिये, (३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नही करना चाहिये, (३७) प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये, (३८) बात बोलने लायक (काम) नही करना चाहिये, (३९) अनुवाद (=शिकायत)को नही प्रस्थापित करना चाहिये, (४०) अवकाश नही कराना चाहिये, (४१) प्रेरणा नही करनी चाहिये, (४२) स्मरण नही कराना चाहिये, (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नही करना चाहिये।" 206

तब संघने आपत्ति न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका संघके साथ सहभोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोळ दूसरे आवासमे चला गया। वहाँ भिक्षुओने न उसका अभिवादन किया, न प्रत्युत्थान किया, न हाथ जोळा, न सामीचि कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) किया, न सत्कार = गुरुकार किया, न सम्मान

---

[1]देखो पृष्ठ ३४३।　　[2]देखो पृष्ठ ३४४।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। [1]। 248

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुकी चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे— [2]। 254

छ आकांक्षमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है—उपसम्पदा न देनी चाहिये [3] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करना चाहिये। 297

तैंतालिस उत्क्षेपणीय कर्मके व्रत समाप्त

तब संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोड़ दूसरे आवासमें चला गया। [4] मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ छन्न भिक्षुके आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे।

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—० [5]। 302

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता [6] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता। 307

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२।　[2] देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४४।
[3] देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४।　[4] बाकी इसी कथाके लिये देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९।　[5] देखो चुल्ल १§५।७ पृष्ठ ३६ ।　[6] देखो चुल्ल १§५।८ पृष्ठ ३६१।

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु सघके पास जा० उकळूं बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०।"[1] 308

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ।। ६ ।।

§७–बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—*श्रावस्ती*

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अनाथपिडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धवाधि-पुब्व (=भूतपूर्व गन्धवाधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृ ष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मैं भगवान्के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नही कर सकते।' तव वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट ! सचमुच ही तुम्हें इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नहीं कर सकते' ?"

"आवुसो ! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते ।"

तव वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट ! मत ऐसा कहो ! मत आवुस अरिष्ट ! ऐसा कहो ! मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्ने आवुस अ रि ष्ट ! अन्तरायिक धर्मोको अन्तरायिक कहा है। 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते हैं'—कहा है। भगवान्ने कामो (=भोगो)को वहुत दु खदायक, वहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें वहुत दुष्परिणाम वतलाये है। भगवान्ने कामोको अ स्थि क का ल[3] समान कहा है, मा स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अ गा र क[4] (भौर) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूपण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्ने कामोको वहुत दुख-दायक, वहुत परेशान करनेवाले, वहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी वुरी दृष्टिको दृढतासे पकळ, ज़िद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

जव वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नही हटा सके तव उन्होने भगवान्के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९ ।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओंके स्थानमें अमुक नाम।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४) ।

[4] इन उपमाओंके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८) ।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१— "भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है।०[1]।" 248

बारह कर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१— भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुके चाहनेपर (=आर्कसमान) संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[2]।" 254

छ आर्कसमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है—उपसम्पदा न देनी चाहिये [3] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करना चाहिये।" 297

तैंतालिस उत्क्षेपणीय कर्मके व्रत समाप्त

उस संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोड़ दूसरे आवासमें चला गया। ० मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ छन्न भिक्षुके आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे।

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

१-५—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—०[4]। 302

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नहीं देता (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।" 307

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १६।१।३ पृष्ठ ३४१।
[2] देखो चुल्ल १६।१।४ पृष्ठ ३४३-४६।
[3] देखो चुल्ल १६।१।५ पृष्ठ ३४४।
[4] बाकी इसे ४३के लिये देखो चुल्ल १६।५।६ पृष्ठ ३५९। देखो चुल्ल १६।५।७ पृष्ठ ३६। देखो चुल्ल १६।५।८ पृष्ठ ३६१।

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छ न्न भिक्षु संघके पास जा० उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०।"[1] 308

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ॥ ६ ॥

§७–बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धबाधि-पुब्ब (=भूतपूर्व गन्धबाधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मैं भगवान्के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नही कर सकते।' तब वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट! सचमुच ही तुम्हे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नहीं कर सकते'?"

"आवुसो! मै भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट! मत ऐसा कहो! मत आवुस अरिष्ट! ऐसा कहो! मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्ने आवुस अ रि ष्ट! अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है। 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते हैं'—कहा है। भगवान्ने कामो (=भोगो)को बहुत दुःखदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं। भगवान्ने कामोको अ स्थि क का ल[3] समान कहा है, मा स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अ गा र क[4] (भौर) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूषण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्ने कामोको बहुत दुख-दायक, बहुत परेशान करनेवाले, बहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी बुरी दृष्टिको दृढ़तासे पकळ, ज़िद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

जब वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नही हटा सके तब उन्होने भगवान्के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओंके स्थानमें अमुक नाम।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४)।

[4] इन उपमाओंके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८)।

किया न पूजन किया। भिक्षुओंसे सत्कार गुरुकार सम्मान पूजा न करनेसे उस आवाससे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया उस आवाससे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया । भिक्षुओंके सत्कार न करने से वह फिर कौशाम्बी लौट आया। (तब) वह ठीकसे वर्तता था रोवाँ गिराता था निस्तारके लायक (काम) करता था भिक्षुओंके पास जाकर ऐसा बोलता था—आवुसो! सब द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्मसे दंडित हो अब मैं ठीकसे वर्तता हूँ रोवाँ गिराता हूँ निस्तारके लायक काम करता हूँ मुझे कैसे करना चाहिये।

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! सघ छन्न भिक्षुके आपत्ति न देखनेके लिए किये गये ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे। 207

(७) दण्ड न माफ करने लायक व्यक्ति

१-५—"भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है (२) निश्रय देता है (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है (४) भिक्षुणियोंको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश देता है। 208

६-१०—"और भी भिक्षुओ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने उत्क्षेपणीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है (७) या उस जैसी दूसरी आपत्तिको करता है (८) या उससे अधिक बुरी आपत्ति करता है (९) कर्म (=फैसला)की निन्दा करता है (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालों)की निन्दा करता है। 209

११-१५—"और भी भिक्षुओ! पाँच०—(११) प्रकृतात्म(=दंडरहित) भिक्षुओंसे अभिवादन (१२) प्रत्युत्थान (१३) हाथ जोड़ना (१४) सामीचि-कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) (१५) आसन ले आना (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है। 210

(१६-२०) "और भी भिक्षुओ! पाँच—प्रकृतात्म भिक्षुसे—(१६) शय्या ले आना (१७) पादोदक (१८) पादपीठ (१९) पाद-कठलिक (२०) पात्र-चीवर लाना (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है। 211

२१-२५—"और भी भिक्षुओ! पाँच—(२१) प्रकृतात्म भिक्षुसे स्नान करते समय पीठ मलने (का काम लेने)की इच्छा रखता है (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है (२४) बुरी-जीविका रखनेका दोष लगाता है (२५) भिक्षु-भिक्षुओंमें फूट डालता है। 212

२६-३०—"और भी भिक्षुओ! पाँच—(२६) गृहस्थोंकी ध्वजा (=वेष) धारण करता है (२७) तीर्थिकोंकी ध्वजा धारण करता है (२८) तीर्थिकोंका सेवन करता है (२९) भिक्षुओंका सेवन नहीं करता (३०) भिक्षुओंकी शिक्षा (=नियम) नहीं सीखता।

(३१-३५) "और भी भिक्षुओ! पाँच—(३१) प्रकृतात्म भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें रहता है (३२) एक छतवाले अनावासमें रहता है (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें रहता है (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे नहीं उठता (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या बाहरसे नाराज करता है। 213

३६-४३—"भिक्षुओ! आठ०—(३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित करता

है, (३७) प्र वा र णा को स्थगित करता है, (३८) वात वोलने लायक (काम) करता है, (३९) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है, (४०) अवकाश कराता है, (४१) प्रेरणा करता है, (४२) स्मरण कराता है, (४३) भिक्षुओके साथ सप्रयोग करता है। 214

तैतालिस न प्रतिप्रश्रव्ध करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ०[1] (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करता।" 222

तैतालिस जिसका प्रतिप्रश्रव्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु-सघके पास जा० उकळूं वैठ, हाथ जोळ ऐसा वोले—०[2]।" 223

आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ॥५॥

§६—आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

(१) आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय वुद्ध भगवान् कौ शा म्बी के घो पि ता रा म में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छ न्न आपत्ति करके उस आपत्तिका प्रतिकार करना नही चाहते थे। ०[3]।

फटकारकर धार्मिक कथा कहकर भगवान्ने भिक्षुओको सवोधित किया—

(२) दंड देनेकी विधि

"तो भिक्षुओ! सघ छ न्न भिक्षुका आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे, और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये०[4]। 224

"भिक्षुओ! सारे आवासोमें कह दो कि आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका सघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया सघमें सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) विना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। • ०[5]।" 236

वारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्म'के स्थानमें 'आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'प डु क' और 'लो हि त क' भिक्षुओंके स्थानमें 'छन्न' भिक्षु करके पढना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १§५।१ पृष्ठ३५८।

[4] देखो चुल्ल १§५।२ पृष्ठ ३५८।

[5] देखो चुल्ल १§५।३ पृष्ठ ३५८।

किया न पूजन किया। भिक्षुओंके सत्कार, सम्मान, पूजा न करनेसे उस आवाससे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया उस आवाससे भी दूसरे आवासमें चला गया। वहाँ भी भिक्षुओंने न उसका अभिवादन किया । भिक्षुओंके सत्कार न करने से वह फिर कौशाम्बी लौट आया। (तब) वह ठीकसे बर्तता था, रोवाँ गिराता था, निस्तारके लायक (काम) करता था, भिक्षुओंके पास आकर ऐसा बोलता था—आवुसो ! सघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्मसे दंडित हो अब मैं ठीकसे बर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक काम करता हूँ, मुझे कैसे करना चाहिये।

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! सघ छन्न भिक्षुके आपत्ति न देखनेके लिए किये गये उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे। 207

(७) दण्ड न माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है (२) निश्रय देता है (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है (४) भिक्षुणियोंको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश देता है। 208

६–१०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने उत्क्षेपणीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है (७) या उस जैसी दूसरी आपत्तिको करता है (८) या उससे अधिक बुरी आपत्ति करता है (९) कर्म (=फैसला)की निन्दा करता है (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालों)की निन्दा करता है। 209

११–१५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच —(११) प्रकृतात्म (=दोषरहित) भिक्षुओंसे अभिवादन (१२) प्रत्युत्थान (१३) हाथ जोड़ना (१४) सामीचि-कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) (१५) आसन ले आना (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है। 210

(१६–२०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच —प्रकृतात्म भिक्षुसे—(१६) शय्या ले आना (१७) पादोदक (१८) पादपीठ (१९) पादकठलिक (२०) पात्र चीवर लाना (इन कामोंके लेने)की इच्छा रखता है। 211

२१–२५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(२१) प्रकृतात्म भिक्षुसे स्नान करते वक्त पीठ मलने (का काम लेने)की इच्छा रखता है (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है (२४) बुरी-जीविका रखनेका दोष लगाता है (२५) भिक्षु-भिक्षुओंमें फूट डालता है। 212

२६–३०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच —(२६) गृहस्थोंकी ध्वजा (=वेष) धारण करता है (२७) तीर्थिकोंकी ध्वजा धारण करता है (२८) तीर्थिकोंका सेवन करता है (२९) भिक्षुओंका सेवन नहीं करता (३०) भिक्षुओंकी शिक्षा (=नियम) नहीं सीखता।

(३१–३५) "और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(३१) प्रकृतात्म भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें रहता है (३२) एक छतवाले अनावासमें रहता है (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमें रहता है (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे नहीं उठता (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या बाहरसे नाराज करता है। 213

३६–४३—"भिक्षुओ ! आठ०—(३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित करता

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु सघके पास जा० उकळूं वेठ, हाथ जोळ ऐसा वोले—०।"[1] 308

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ॥ ६ ॥

§७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धवाधि-पुब्व (=भूतपूर्व गन्धवाधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मै भगवान्के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नही कर सकते।' तब वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट! सचमुच ही तुम्हें इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नही कर सकते'?"

"आवुसो! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

तब वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट! मत ऐसा कहो! मत आवुस अरिष्ट! ऐसा कहो! मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नही है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्ने आवुस अ रि ष्ट! अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है। 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते हैं'—कहा है। भगवान्ने कामो (=भोगो)को बहुत दुखदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं। भगवान्ने कामोको अ स्थि क का ल[3] समान कहा है, मा स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अ गा र क[4] (भौर) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूषण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्ने कामोको बहुत दुख-दायक, बहुत परेशान करनेवाले, बहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी बुरी दृष्टिको दृढ़तासे पकळ, जिद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

जब वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नही हटा सके तब उन्होने भगवान्के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओंके स्थानमें अमुक नाम।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४)।

[4] इन उपमाओंके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८)।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। [1]" 248

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—'भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे— [2]। 254

छ आकांक्षमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्तव्य

'भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीकसे बर्ताव यह है— उपसम्पदा न देनी चाहिये [3] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करना चाहिये। 297

तैंतालिस उत्क्षेपणीय कर्मके व्रत समाप्त

तब संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह संघ द्वारा आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोड़ दूसरे आवासमें चला गया। मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! संघ छन्न भिक्षुके आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये संघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे।

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको नहीं माफ करना चाहिये—०[4]। 302

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये— (१) उपसम्पदा नहीं देता [5] (४३) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग नहीं करता।" 307

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १६।१।३ पृष्ठ ३४२। [2] देखो चुल्ल १६।१।४ पृष्ठ ३४३ ४४। [3] देखो चुल्ल १६।१।५ पृष्ठ ३४४। [4] आगेकी २से ४३के लिये देखो चुल्ल १६।५।६ पृष्ठ ३५९। [5] देखो चुल्ल १६।५।७ पृष्ठ ३६ । देखो चुल्ल १६।५।८ पृष्ठ ३६१।

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु सघके पास जा० उकळूं वैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०।"[1] 308

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ।। ६ ।।

§७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अनाथपिडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय गन्धबाधि-पुब्ब (=भूतपूर्व गन्धबाधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृ ष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मै भगवान्‌के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्‌ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नहीं कर सकते।' तब वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट ! सचमुच ही तुम्हे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नही कर सकते' ?"

"आवुसो ! मैं भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते ।"

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट ! मत ऐसा कहो ! मत आवुस अरिष्ट ! ऐसा कहो ! मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नही है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्‌ने आवुस अ रि ष्ट ! अन्तरायिक धर्मोंको अन्तरायिक कहा है । 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते हैं'—कहा है। भगवान्‌ने कामो (=भोगो)को बहुत दु खदायक, बहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमें बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं। भगवान्‌ने कामोको अ स्थि क का ल[3] समान कहा है, मा स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अ गा र क[4] (भौर) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूषण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्‌ने कामोको बहुत दुख-दायक, बहुत परेशान करनेवाले, बहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये बुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी बुरी दृष्टिको दृढतासे पकळ, ज़िद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मै भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

जब वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे नही हटा सके तब उन्होने भगवान्‌के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९ ।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओंके स्थानमें अमुक नाम ।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४) ।

[4] इन उपमाओंके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८) ।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर अरिष्ट भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच अरिष्ट! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'मैं भगवान्के अन्तराय नहीं कर सकते'?

"हाँ भन्ते! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो आन्तरायिक धर्म भगवान्ने कहे हैं सेवन करनेपर भी वह अन्तराय नहीं कर सकते।

'मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी)! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया जिसे तू ऐसा जानता है—'मैं भगवान् ।' क्यों मोघपुरुष! मैंने तो अनेक प्रकारसे आ न्त रा यि क ध र्मों को आन्तरायिक कहा है, बहुत दुष्परिणाम बतलाये है। और तू मोघपुरुष! अपनी उल्टी धारणासे हम झूठ लगा रहा है, अपनी भी हानि कर रहा है बहुत अपुण्य (=पाप) कमा रहा है। मोघपुरुष! यह चिरकाल तक तेरे लिये अहित और दुःखके लिये होगा। मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।'

फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

'तो भिक्षुओ! संघ अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोड़नेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे।

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये ।[1] 309-389

'भिक्षुओ! सारे वाक्योंमें यह दो कि बुरी दृष्टि न छोड़नेके लिये अरिष्ट भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"[2]

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणाके लिये किया गया उत्क्षेपणीय कर्म अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता (२) बिना पूछे किया गया होता है (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। [3]। 400

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणा न छोड़नेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। [3]। 413

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ बुरी धारणा

---

[1] पृष्ठ ३३३।

[2] देखो चुल्ल १§५।२ पृष्ठ ३५८; 'आपत्तिको न देखने'के स्थानमें "बुरी दृष्टि न छोड़नेके लिये" पढ़ना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १§१।१ पृष्ठ ३४२-४३।

न छोळनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[1] ।" 419

छ आकखमान समाप्त

(६) दण्डित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे ० उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये, और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[2] (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नही करना चाहिये ।" 420

तब सघने० अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेके लिये, सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया । सघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर वह भिक्षु-वेष छोळकर चला गया । तब जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे—वे हैरान होते थे—'कैसे० अरिष्ट भिक्षु सघ द्वारा उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेष छोळकर चला जायगा !' तब उन भिक्षुओने यह बात भगवान्‌से कही । तब भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-सघको एकत्रितकर भिक्षुओंसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० अरिष्ट भिक्षु सघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेप छोळ कर चला गया ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ ! वह मोघपुरुष सघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेष छोळ चला जायगा ! भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ बुरी धारणाके न छोडनेके लिये किये गये० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे ।" 421

(७) दड न माफ करने लायक व्यक्ति

१-५—"भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है०[3] ।" 426

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

१-५—"भिक्षुओ ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता०[4] ।" 431

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ़ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह अमुक भिक्षु सघके पास जा एक कधे पर उत्तरासघकर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमें वन्दनाकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहे—

---

[1]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४४ । देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४ ।
[2]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४ ।　[3]देखो चुल्ल १§१।७ पृष्ठ ३४५ ।
[4]देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५-४६ ।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर अरिष्ट भिक्षुसे पूछा—

'सचमुच अरिष्ट! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—मैं भगवान्के अन्तराय नहीं कर सकते'?

"हाँ भन्ते! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो अन्तरायिक धर्म भगवान्ने कहे हैं सेवन करनेपर भी वह अन्तराय नहीं कर सकते।

"मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी)! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया जिसे तू ऐसा जानता है—'मैं भगवान् । क्या मोघपुरुष! मैंने तो अनेक प्रकारसे अ न्त रा यि क ध र्मों को अन्तरायिक कहा है[1] बहुत दुष्परिणाम बतलाये हैं! और तू मोघपुरुष! अपनी उल्टी धारणासे हम मूठ क्या रहा है अपनी भी हानि कर रहा है बहुत अपुण्य (=पाप) कमा रहा है। मोघपुरुष! यह चिरकाल तक तेरे लिये अहित और दु:ख के लिये होगा। मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है।"

फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! सब अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे सबमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे।

(२) दंड करनेकी विधि

'और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये ।[2] 309-389

'भिक्षुओ! सारे आवासोंमें कह दो कि बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये अरिष्ट भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।

(३) नियम विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणाके लिये किया गया उत्क्षेपणीय कर्म अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नहीं किया गया होता (२) बिना पूछे किया गया होता है (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ' । 400

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणा न छोळनेसे किया गया सबमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ' । 413

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आवश्यकता) सब बुरी धारणा

---

[1] पृष्ठ ३६३।

देखो चुल्ल १५।५।२ पृष्ठ ३५८ 'आपत्तिको न देखने'के स्थानमें "बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये" पढ़ना चाहिये।

[2] देखो चुल्ल १५।१।३ पृष्ठ ३४२-४३।

२—पारिवासिक-स्कंधक

१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य । २—मूलसे-प्रतिकर्षण दड पायेके कर्त्तव्य ।
३—मानत्त्व दड पायेके कर्त्तव्य । ४—मानत्त्व चार दड पायेके कर्त्तव्य ।
५—आह्वान पायेके कर्त्तव्य ।

§१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

१—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे । उस समय पारिवासिक (=जिनको प रि वा स का दड दिया गया है) भिक्षु प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुओके अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोडने, सामीचिकर्म (=कुशल-प्रश्न पूछने), आसन ले आना, शय्या ले आना, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक, पात्र-चीवर ले आना, स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेते थे। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वे हैरान होते थे—कैसे ये पारिवासिक भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० को लेते है !' तव भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही ।

तव भगवान्‌ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें भिक्षु-सघको एकत्रित कर भिक्षुओंसे पूछा ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे पारिवासिक भिक्षु० !"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सवोधित किया—

(२) अदंडितके अभिवादन आदिको ग्रहण न करना चाहिये

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको अदडित भिक्षुओंसे अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को नही लेना चाहिये । जो ले उसको दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको अपने भीतर वृद्धताके अनुसार अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेनेकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको पाँच (वातो) की—वृद्धताके अनुसार (१) उपोसथ, (२) प्रवारणा, (३) वार्षिक साटिका, (४) विसर्जन (=ओणोजना) और (५) (=भोजन भात) ।'

"तो भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुओके, जैसे उन्हे वर्तना चाहिये (वह) व्रत वि धा न करता हूँ—

(३) पारिवासिकके व्रत

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये । और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, (२) नि श्र य नही देना चाहिये, (३) श्रामणेरसे उपस्थान

भन्ते ! मैं संघ द्वारा उत्क्षेपणीय कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तता हूँ, लोम गिराता हूँ, निस्तारके (कामको) करता हूँ, ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफी माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी— भन्ते ! ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफी चाहता हूँ।

(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यह अमुक भिक्षु संघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय-कर्मसे दंडित हो ठीकसे बर्तता है, ० उत्क्षेपणीय-कर्मसे माफी चाहता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ अमुक भिक्षुके ० उत्क्षेपणीय ० कर्मको माफ करे—यह सूचना है।

"ख. अनुश्रावण—(१) 'पूज्यसंघ मेरी सुने ०[1]।

"ग. धारणा—'संघने इस नामवाले भिक्षुके बुरी धारणा न छोड़नेसे किये गये ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ कर दिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।' 432

बुरी धारणा न छोड़नेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त

कम्मक्खन्धक समाप्त ॥१॥

---

[1]देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४८, 'तर्जनीय कर्म' के स्थानमें "बुरी धारणा न छोड़नेसे उत्क्षेपणीय कर्म" तथा "पंडुक" और "लोहितक" भिक्षुओंके स्थानमें "अमुक" नाम वाला भिक्षु करके पढ़ना चाहिये।

२—पारिवासिक-स्कंधक

१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य। २—मूलसे-प्रतिकर्षण दड पायेके कर्त्तव्य।
३—मानत्व दड पायेके कर्त्तव्य। ४—मानत्त्व चार दड पायेके कर्त्तव्य।
५—आह्वान पायेके कर्त्तव्य।

§१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

१—*श्रावस्ती*

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय पारिवासिक (=जिनको परिवासका दड दिया गया है) भिक्षु प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुओके अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोडने, सामीचिकर्म (=कुशल-प्रश्न पूछने), आसन ले आना, शय्या ले आना, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक, पात्र-चीवर ले आना, स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेते थे। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वे हैरान होते थे—कैसे ये पारिवासिक भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० को लेते है!' तब भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमें भिक्षु-सघको एकत्रित कर भिक्षुओसे पूछा।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे पारिवासिक भिक्षु०!"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सवोधित किया—

(२) अदडितके अभिवादन आदिको ग्रहण न करना चाहिये

"भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुको अदडित भिक्षुओंसे अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को नही लेना चाहिये। जो ले उसको दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको अपने भीतर वृद्धताके अनुसार अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेनेकी। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको पाँच (वातो) की—वृद्धताके अनुसार (१) उपोसथ, (२) प्रवारणा, (३) वार्षिक साटिका, (४) विसर्जन (=ओणोजना) और (५) (=भोजन भात)।'

"तो भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुओके, जैसे उन्हे वर्तना चाहिये (वह) व्रत विधान करता हूँ—

(३) पारिवासिकके व्रत

"भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये। और वे ठीकसे वर्ताव यह हैं—

(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, (२) निश्रय नही देना चाहिये, (३) श्रामणेरसे उपस्थान

(=मेवा) नहीं करानी चाहिये (४) भिक्षुओ! भिक्षुणियोंका उपदेशक बनानेके प्रस्तावकी सम्मति नहीं स्वीकार करनी चाहिये (५) संघकी सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोंको उपदेश नहीं देना चाहिये (६) जिस आपत्ति (=अपराध)के लिये संघने परिवास दिया है, उस आपत्तिको नहीं करनी चाहिये (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये (८) या उससे बुरी (आपत्ति)को नहीं करना चाहिये (९) कर्म(=न्याय फैसला)की निन्दा नहीं करनी चाहिये (१) कर्मिकों (=फैसला करनेवालों)की निन्दा नहीं करनी चाहिये (११) प्रकृतात्म (=अदंडित) भिक्षुके उपोसथको स्थगित नहीं करना चाहिये (१२) ( ) की प्रवारणा स्थगित नहीं करनी चाहिये (१३) बात बोलने लायक (काम) नहीं करना चाहिये (१४) अनुवाद (=शिकायत) को नहीं प्रस्थापित करना चाहिये (१५) अवकाश नहीं कराना चाहिये (१६) दोषारोपण (=चोदना) नहीं करनी चाहिये (१७) स्मरण नहीं कराना चाहिये (१८) भिक्षुओंके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नहीं करना चाहिये।

"भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुको अदंडित भिक्षुके सामने (१९) नहीं जाना चाहिये (२) न सामने बैठना चाहिये (२१) संघका जो आसनका सामान, शय्याका सामान, विहारका सामान है उसे देना चाहिये और उसे इस्तेमाल करना चाहिये (२२) भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षु अदंडित भिक्षुका आगे चलनेवाला या पीछे चलनेवाला भिक्षु बन गृहस्थोंके घरमें नहीं जाना चाहिये (२३) और न आरण्यकके काम (=नियम)को लेना चाहिये (२४) न पिंडपातिक (=केवल भिक्षा माँगकर ही गुजारा करनेवाले)का ही नियम लेना चाहिये (२५) न उसके लिये पिंडपात (=भिक्षा) मँगवानी चाहिये जिसमें कि वह उसके (=परिवास दिये जानेकी बातको) जान जायें (२६) भिक्षुओ! पारिवासिक भिक्षुको नई जगह जानेपर (अपने परिवासकी बातको) बतलाना चाहिये (२७) नवागन्तुक (भिक्षु)को बतलाना चाहिये (२८) उपोसथमें बतलाना चाहिये (२९) प्रवारणमें बतलाना चाहिये (३) यदि रोगी है तो दूत-द्वारा कहलाना चाहिये।

"भिक्षुओ! अदंडित भिक्षुके साथ होने या बिना होनेके अतिरिक्त (३१) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवासमें नहीं जाना चाहिये (३२) भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित अन्-आवास (=जो आश्रम भिक्षुओंके रहनेका नहीं है) में नहीं जाना चाहिये (३३) भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (३४) भिक्षु सहित अनावाससे भिक्षु रहित आवासमें नहीं जाना चाहिये (३५) भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (३६) भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (३७) भिक्षुसहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवासमें नहीं जाना चाहिये (३८) भिक्षु सहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु रहित अनावासमें नहीं जाना चाहिये (३) भिक्षु सहित आवास या अनावाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! अदंडित भिक्षुके साथ होने या बिना होनेके अतिरिक्त पारिवासिक भिक्षुको (४) भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते हैं उस भिक्षु सहित आवासमें नहीं जाना चाहिये (४१) भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते हैं उस अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (४२) भिक्षु सहित आवाससे ०[1] भिक्षु सहित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (४३) भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु सहित आवासमें नहीं जाना चाहिये। (४४) भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु सहित आवासमें भिक्षु सहित अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये (४५)० भिक्षु

[1] "जहाँ नाना आवास वाले भिक्षु रहते हैं" यह इन बीचमें हर जगह जोड़ना चाहिये।

महित अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये, (४६) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित आवासमें नहीं जाना चाहिये, (४७) ० भिक्षु-महित आवास या अन्आवासमें भिक्षु-महित अनावासमें नहीं जाना चाहिये (४८) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्आवासमें, जहाँ अनेक आवासवाले भिक्षु हों वैसे भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें नहीं जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! (४९) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु-महित आवासमें, जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हों और जिसके लिये जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकता हूँ वैसे भिक्षु-महित आवासमें जाना चाहिये, (५०) ० भिक्षु-महित आवासमें ०, भिक्षु-महित अन्-आवासमें जाना चाहिये, (५१) ० भिक्षु-महित आवासमें० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये, (५२) ० भिक्षु-महित अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित आवासमें जाना चाहिये, (५३) ० भिक्षु-महित अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित अन्-आवासमें जाना चाहिये, (५४) ० भिक्षु-महित अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये, (५५) ० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित आवासमें जाना चाहिये, (५६) ० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें,० भिक्षु-महित अनावासमें जाना चाहिये, (५७) ० भिक्षु-महित आवास या अनावासमें,० भिक्षु-महित आवास या अन्-आवासमें जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! (५८) पारिवासिक भिक्षुको अदंडित भिक्षुके साथ, एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, (५९) ० एक छतवाले अन्-आवासमें नहीं रहना चाहिये, (६०) ० एक छतवाले आवास या अन्-आवासमें नहीं रहना चाहिये (६१) अदंडित भिक्षुको देखकर आसनसे उठना चाहिये, आसनके लिये निमंत्रण देना चाहिये, एक साथ एक आसनपर नहीं बैठना चाहिये, (६२) अदंडित भिक्षुके नीचे आसनपर बैठे होनेपर ऊँचे आसनपर नहीं बैठना चाहिये, (०) पृथ्वीपर बैठा होनेपर आसनपर नहीं बैठना चाहिये, (६३) एक चंक्रमण (टहलनेकी जगह)पर नहीं टहलना चाहिये, (०) नीचेके चंक्रमपर टहलते वक्त (स्वयं) ऊँचे चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये, (०) पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

"भिक्षुओ! (६४) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, ० (६९) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

"भिक्षुओ! (७०) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मू ल से प्र ति क र्ष णा र्ह भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, ०।

"भिक्षुओ! (७६) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मा न त्वा र्ह भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, ०[1]।

"भिक्षुओ! (८२) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मा न त्व चा रि क भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, ०।

"भिक्षुओ! (८८) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आ ह्वा ना र्ह भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमें नहीं रहना चाहिये, ०[1] (९३) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आह्वानार्ह भिक्षुके भूमिपर टहलते वक्त (स्वयं) चंक्रमपर नहीं टहलना चाहिये।

---

[1] इस पेरामें "जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हों, और जिसके लिए जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकते हैं" सबमें दोहराना चाहिए।

(१४) यदि भिक्षुओ ! पारिवासिकका चौथा बना (भिक्षु-संघ) परिवास दे मूलसे-प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान करे तो वह अकर्म (अन्याय) है करणीय नहीं है।"[1]

पारिवासिकके चौरासी व्रत समाप्त

(४) परिवासमें गिनी और न गिनी जानेवाली रातें

उस समय आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। एक ओर जा अभिवादन कर एक ओर बैठ आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते पारिवासिक भिक्षुकी कौनसी रात कट जाती है (गिनतीमें नहीं आती) ?

"उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी तीन रातें कट जाती है—(१) साथ वास[2] करना (२) विप्र-वास (=अकेला निवास) (३) न बतलाना[2] —उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी ये तीन रातें कट जाती है।

(५) परिवासका निक्षेप (=मुल्तवी रखना)

उस समय श्रा व स्ती में बड़ा भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ था (अपने पारिवासिकके कर्त्तव्योंको पालन करके) पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके निक्षेप (स्थगित) करनेकी। 4

और भिक्षुओ ! इस प्रकार निक्षेप करना चाहिये —वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंगकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

'परिवासका मैं निक्षेप करता हूँ (तो) परिवासका निक्षेप हो जाता है। 'व्रतके (कर्तव्यका) निक्षेप करता हूँ।—(तो) परिवासका निक्षेप होता है।

(६) परिवासका समादान

उस समय भिक्षु श्रावस्तीसे जहाँ तहाँ चले गये। पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर पाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके समादान (ग्रहण) की। और भिक्षुओ ! इस प्रकार समादान करना चाहिये—वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर हाथ जोळ ऐसा कहे— 'परिवासका समादान करता हूँ (तो) परिवासका समादान हो जाता है। व्रतका समादान करता हूँ (तो) परिवासका समादान हो जाता है। 5

पारिवासिक व्रत समाप्त

§२—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मू ल से प्र ति क र्ष णा र्ह भिक्षु प्रकृतिस्थ भिक्षुओंसे अभिवादन स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे।[3]

"भिक्षुओ ! प्रतिकर्षणार्ह भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये और यह ठीकसे बर्ताव यह है— १—उपसम्पदा न देनी चाहिये [4] (४) यदि भिक्षुओ ! मूलसे प्र ति क र्ष णा र्ह

---

[1] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७। [2] चुल्ल २§१।२ (१) पृष्ठ ३६७-६८ [3] "पारिवासिक"के स्थानपर "मूलसे प्रतिकर्षणार्ह"—इस परिवर्तनके साथ। [4] देखो चुल्ल २§१ पृष्ठ ३६७-७; "पारिवासिकके स्थानपर मूलसे-प्रतिकर्षणार्ह इस परिवर्तनके साथ।

भिक्षुको चौथा बना परिवास दे , मूलमे प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान करे, तो वह अकर्म है (=अन्याय)है, करणीय नही है ।" 6

मूलसे प्रतिकर्षणार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§३–मानत्त्व दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वार्ह (=मानत्व दड देने योग्य) भिक्षु अदडित भिक्षुओंके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे।०[1]।

"भिक्षुओ! मानत्वार्ह भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये, और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ० (९४) यदि भिक्षुओ! मानत्वार्ह भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान, करे, तो वह अकम (=न्याय-विरुद्ध) है करणीय नही है।" 7

मानत्त्वार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§४–मानत्त्वचार दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वचारिक (जिसको मानत्व चारका दड दिया गया हो) भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे।०[2]।

"भिक्षुओ! मानत्व-चारिक भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"(१) उपसम्पदा देनी चाहिये, ०[2] (९४) यदि भिक्षुओ! मानत्व-चरिक भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्व-चारिक करे, मानत्वदे, या बीसवाँ बना आह्वान करे, तो वह अकर्म है, करणीय नही है।" 8

मानत्त्वचारिकके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§५–आह्वान पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय आह्वानार्ह भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन ०[3] स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे। ०।

"भिक्षुओ! आह्वानार्ह भिक्षुको ठीकसे वरतना चाहिये और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"१—उपसपदा न देनी चाहिये, ०[4] (९४) यदि भिक्षुओ! आह्वानार्ह भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान् करे, तो वह अकर्म है, करणीय नहीं है।" 9

आह्वानार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

पारिवासिक-क्खन्धक समाप्त ॥२॥

---

[1] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७।

[2] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० 'पारिवासिक'के स्थानपर "मानत्व"के परिवर्तनके साथ।

[3] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७। [4] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० "पारिवासिक"के स्थानपर "आह्वानार्ह"के परिवर्तनके साथ।

(१४) यदि भिक्षुओ ! पारिवासिकका चौथा बना (भिक्षु-संघ) परिवास दे मूलसे-प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान करे तो यह अकर्म (=अन्याय) है करणीय नहीं है।"[1]

पारिवासिकके चौरानबे व्रत समाप्त

(४) परिवासमें गिनी और न गिनी जानेवाली रातें

उस समय आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। एक ओर जा अभिवादन कर एक ओर बैठ आयुष्मान् उपालिने भगवानसे यह कहा—

'भन्ते पारिवासिक भिक्षुकी कौनसी रातें कट जाती हैं (गिनतीमें नहीं आतीं) ?'

"उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी तीन रात कट जाती हैं—(१) साथ वास[2] करना (२) विप्र-वास (=अकेला निवास) (३) न बतलाना —उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी ये तीन रातें कट जाती हैं।

(५) परिवासका निक्षेप (=मुल्तवी रखना)

उस समय श्रा व स्ती में बड़ा भारी भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ था (अपने पारिवासिकके कर्तव्योको पालन करते) पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके निक्षेप (स्थगित) करनेकी। 4

और भिक्षुओ ! इस प्रकार निक्षेप करना चाहिये —वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरा-संगकर उकळूँ बैठ हाथ जोड़ ऐसा कहे—

परिवासका मैं निक्षेप करता हूँ (तो) परिवासका निक्षेप हो जाता है। 'व्रतके (कर्तव्यका) निक्षेप करता हूँ।—(तो) परिवासका निक्षेप होता है।

(६) परिवासका समादान

उस समय भिक्षु श्रावस्तीसे जहाँ तहाँ चले गये। पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नहीं कर पाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके समादान (ग्रहण) की। और भिक्षुओ ! इस प्रकार समादान करना चाहिये—वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर हाथ जोड़ ऐसा कहे—'परिवासका समादान करता हूँ' (तो) परिवासका समादान हो जाता है। व्रतका समादान करता हूँ (तो) परिवासका समादान हो जाता है। 5

पारिवासिक व्रत समाप्त

§२—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मूलसे प्रतिकर्षणाई भिक्षु अर्हित भिक्षुओंसे अभिवादन स्नान करते बक्त पीठ मलना (इन कामोंको) लेते थे।[3]

भिक्षुओ ! प्रतिकर्षणार्ह भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये और वे ठीकसे बर्ताव यह है—"१—उपसम्पदा न देनी चाहिये ... (४) यदि भिक्षुओ ! मूलसे प्रतिकर्षणार्ह

[1] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७। चुल्ल २§१।३ (१) पृष्ठ ३६७-६८ [2] 'पारिवासिक' के स्थानपर "मूलसे प्रतिकर्षणार्ह"—इस परिवर्तनके साथ। [3] देखो चुल्ल २§१ पृष्ठ ३६७-७। "पारिवासिकके स्थानपर" मूलसे प्रतिकर्षणार्ह" इस परिवर्तनके साथ।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

वह मानत्व[1] पूरा करके भिक्षुओंसे बोले—

"आवुसो! मैंने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। तब मैंने संघसे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब संघने मुझे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। अब मैंने मानत्वको पूरा कर दिया। अब मुझे कैसे करना चाहिये?"

क (२) मानत्त्वके बाद आह्वान

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुका आह्वान् करे।

"और भिक्षुओ! आह्वान इस प्रकार करना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको संघके पास जा० ऐसा कहना चाहिये—भन्ते! मैंने० आपत्तिकी।० तब मैंने संघसे ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब संघने मुझे ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। सो मैं भन्ते! मानत्वको पूराकर संघसे आह्वान माँगता हूँ। (दूसरी बार भी) भन्ते! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान माँगता हूँ। (तीसरी बार भी) भन्ते! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान माँगता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने।० इस उदायी भिक्षुने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है०। वह संघसे० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये आह्वान माँगता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उदायी भिक्षुको० आह्वान—यह सूचना है।"

"ख अ नु श्रा व ण—(१)'भन्ते! संघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है०। वह संघसे० आपत्तिके लिये आह्वान चाहता है। संघ उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देता है। जिस आयुष्मान्‌को उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देना पसंद है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है, वह बोले०।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको आह्वान कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

ख (१) एक दिनवाला परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न (=छिपा रक्खी) आपत्ति की थी। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये एक दिनवाला है परिवास दे।

---

[1] मानत्व पानेवालेके कर्तव्यके विषयमें देखो चुल्ल २§३ पृष्ठ ३७१।

३—समुच्चय-स्कन्धक

१—शुक्र-त्यागके दण्ड। २—परिवास-दण्ड। ३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दण्ड। ४—दण्ड भोगते समय नये अपराध करनेपर दण्ड। ५—मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धि। ६—असत्य मूलसे-प्रतिकर्षण। ७—शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण।

§१—शुक्र-त्यागके दण्ड

१—श्रावस्ती

क—(१) छ रातका मानत्त्व

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् उदायीने एक-बार (=अप्रतिच्छन्न) जान बूझ कर शुक्र-त्यागका दोष (अपराध) किया था। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने जान बूझकर शुक्र त्याग की एक न-ढँकी आपत्ति की है। मुझे कैसा करना चाहिये?"

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायीभिक्षुको जान बूझ कर शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्त्व दे।

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको संघके पास जा एक कंधे पर उत्तरासंग कर वृद्ध भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना कर उकडूँ बैठ हाथ जोड़ यह कहना चाहिये—

"भन्ते! मैंने बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है। सो भन्ते! मैं संघसे बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्त्व माँगता हूँ। दूसरी बार भी। तीसरी बार भी।

(तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—भन्ते! संघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है। वह संघसे शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये छ रातका मानत्त्व माँगता है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उदायी भिक्षुको छ रातवाला मानत्त्व दे—यह सूचना है।

"ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है। वह संघसे आपत्तिके लिये छ रातका मानत्त्व चाहता है। संघ उदायी भिक्षुको आपत्तिके लिये मानत्त्व देता है। जिस आयुष्मान्को उदायी भिक्षुको आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्त्व देना पसंद है वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद है वह बोले।

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। संघको पसद है इसलिये चुप है— ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(२) बीचमें फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उन्होंने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी।० संघने० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सो मैंने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिकी है, मुझे कैसा करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको एक आपत्तिक बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करे। 7

"और भिक्षुओ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।—वह उदायी भिक्षु संघके पास जा० यह कहे—

"'मैंने भन्ते! ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० संघने पाँच दिन वाला परिवास दिया। परिवासके बीचमें मैंने ० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी। सो मैं भन्ते! संघसे एक आपत्तिके बीच जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) माँगता हूँ। (दूसरी बार भी)०। (तीसरी बार भी)०।०।

"धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) दे दिया। संघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(३) फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उसने परिवास समाप्त कर मानत्वके योग्य होते हुए बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० संघने ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। मैंने परिवासके बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० संघने० मूलसे-प्रतिकर्षण (दंड) दिया। सो परिवास पूरा करके मा न त्व के योग्य हो बीचमें मैंने जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! उदायी भिक्षुको बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये संघ मूलसे-प्रतिकर्षण दंड करे। 8

"और भिक्षुओ! इस प्रकार मू ल से प्र ति क र्ष ण (दंड) करना चाहिये—०[1]

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण दंड दे दिया। संघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(४) तीनों दोषोंके लिये छ दिन रातका मानत्त्व

उसने परिवास पूराकर ० भिक्षुओंसे कहा—

---

[1] मानत्त्व देनेकी तरह यहाँ भी सू च ना और अ नु श्रा व ण पढ़ना चाहिये, "छ रातका मानत्त्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढना चाहिये। चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु संघके पास जा ऐसा बोले—

'भन्ते! मैंने एक आपत्ति की है सो मैं भन्ते! संघसे एक आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास चाहता हूँ। (दूसरी बार भी)। (तीसरी बार भी)।

'तब चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे— ।

'ध ा र णा—संघने उदायि भिक्षुको आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(२) परिवासके बाद छ रातवाला मानत्व

तब उन्होंने परिवास पूरा करके भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने एक आपत्ति की। संघसे एक दिनका परिवास माँगा। संघने दिया। सो मैंने परिवास पूरा कर लिया। अब मुझे कैसा करना चाहिये?

भगवान्से यह बात कही।—

'तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको जान बूझकर एकदिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये छ रातवाला मानत्व दे।

'और भिक्षुओ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको संघके पास जा ।[1]

'ध ा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(३) मानत्वके बाद आह्वान

वह मानत्व पूरा करके भिक्षुओंसे बोले—०।[2]

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुका आह्वान करे। [2] । 5

"ध ा र णा—'संघने उदायि भिक्षुको आवाहन दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

ग (१) छ पाँच दिनके छिपानेके लिये पाँच दिनका परिवास

१—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर दो दिन वाले प्रतिच्छन्न (=छिपाया) शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी ।[3]

२—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर तीन दिनवाले प्रतिच्छन्न ।[3]

३—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर चार दिनवाले प्रतिच्छन्न ।[3]

४—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी ।

उन्होंने भिक्षुओंसे कहा— ।

'तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको पाँच दिनवाला परिवास दे [4] । 6

---

[1] देखो चुल्ल ३§१।क पृष्ठ ३७० ।   [2] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३ ।
[3] देखो एक दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति चुल्ल ३§१।ख१ पृष्ठ ३७३ ।
[4] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३ । [5] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३-४८३ ।

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सघको पसद है इसलिये चुप है—' ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(२) बीचमें फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उन्होंने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी।० सघने० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सो मने परिवासके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिकी है, मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌ने यह बात कही।—

'तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको एक आपत्तिके बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करे। 7

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।—वह उदायी भिक्षु सघके पास जा० यह कहे—

"'मैंने भन्ते ! ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने पाँच दिन वाला परिवास दिया। परिवासके बीचमें मैंने ० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी। सो मैं भन्ते ! सघसे एक आपत्तिके बीच जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) माँगता हूँ। (दूसरी बार भी)०। (तीसरी बार भी) ०।०।

"धारणा—'सघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(३) फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उसने परिवास समाप्त कर मानत्वके योग्य होते हुए बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो ! मैंने० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। मैंने परिवासके बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने० मूलसे-प्रतिकर्षण (दड) दिया। सो परिवास पूरा करके मा न त्व के योग्य हो बीचमें मैंने जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्‌ने यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! उदायी भिक्षुको बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये सघ मूलसे-प्रतिकर्षण दड करे। 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) करना चाहिये—०[1]

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण दड दे दिया। सघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(४) तीनों दोषोंके लिये छ दिन रातका मानत्त्व

उसने परिवास पूराकर ० भिक्षुओंसे कहा—

---

[1] मानत्त्व देनेकी तरह यहाँ भी सू च ना और अ नु श्रा व ण पढ़ना चाहिये, "छ रातका मानत्त्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढ़ना चाहिये। चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

'आवुसो ! मैंने पाँच दिनवाले शुक्र-त्यागका एक अपराध किया। सबने (क) पाँच दिन का परिवास दिया। (ख) मूलसे प्रतिकर्षण (दंड) किया। (ग) मूलसे प्रतिकर्षण (दंड) दिया। सो मैंने आवुसो ! परिवास पूरा कर लिया। मुझे कैसा करना चाहिये।

भगवान्‌से यह बात कही—

'तो भिक्षुओ ! उदायी भिक्षुको संघ तीनों आपत्तियोंके लिये छ रात का मानत्व दे। और इस प्रकार देना चाहिये— [1] ।9

'धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको तीनों आपत्तियोंके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। संघको पसंद है इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(५) मानत्व पूरा करते फिर उसी दोषके करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षणकर छ रातका मानत्व

उसने मानत्व पूरा करते बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। ।—

तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको बीचमें अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्व दे और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करे—०[2] । 10

'और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—०[3] ।

(६) फिर वही करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्व

उसने मानत्व पूराकर आह्वानके योग्य हो बीचमें जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। ।—

'तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको बीचमें अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षण कर, छ रातका मानत्व दे। और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करे—०[2] । 11

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातका मानत्व दे—०[3] ।

(७) दण्ड पूरा कर लेनेपर आह्वान

उन्होंने मानत्व पूराकर भिक्षुओंसे कहा—

आवुसो ! मैंने पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। संघने (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया। (ख) मूलसे प्रतिकर्षण किया। (ग) मूलसे प्रतिकर्षण किया। (घ) मूलसे प्रतिकर्षण कर छ रातवाला मानत्व दिया। सो मैंने मानत्व पूरा कर लिया अब मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। क पृष्ठ ३७२ है।

[2] धारणाके बक्त अबतककी आपत्तियोंकी छोड़ मानत्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढ़ना चाहिये। "छ रातवाला मानत्व" की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढ़ना चाहिये वही पृष्ठ ३७२-३।

[3] धारणाके बक्त अबतककी आपत्तियोंकी छोड़ मानत्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढ़ना चाहिए। वही पृष्ठ ३७२ ३।

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुका आह्वान करे। और भिक्षुओ! इस प्रकार आह्वान करना चाहिये। 12

"उस उदायी भिक्षुको संघके पास जाकर ० यह कहना चाहिये—'भन्ते! मैंने ० पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। ० संघने (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया। ० (ख) मूलसे-प्रतिकर्षण किया। ० (ग) मूलसे-प्रतिकर्षण किया। ० (घ) मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। ० (ङ) मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। सो भन्ते! मैं मानत्त्व पूरा कर संघसे आह्वानकी याचना करता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]

"ग धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको आह्वान दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

घ (१) पक्षभर छिपायेके लिये पक्ष भरका परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जानबूझकर शुक्रत्यागकी एक पक्षप्रतिच्छन्न[2] आपत्ति की। उन्होंने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने ० शुक्रत्यागकी एक पक्ष प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दे। 13

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु संघके पास जाकर ० ऐसा कहे—'० संघसे पक्षभरका परिवास माँगता हूँ।' तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[3]।

"ग धारणा—'संघने उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

(२) फिर पाँच दिन छिपाये उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर समवधान-परिवास

उसने परिवास करते हुए बीचमें ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। ० संघने पक्षभरका परिवास दिया। परिवास करते हुए मैंने बीचमें ० पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की, अब मुझे कैसे करना चाहिये?" ०।—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान[4] परिवास दे। 14

"और भिक्षुओ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—०[5]।

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। ख, पृष्ठ ३७३-७५ (याचनामें ङ तककी बातोंका समावेश करके)।

[2] दोष करके पक्ष भर छिपा रखना।

[3] सूचना और अनुश्रावणके लिये देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ("छ रातवाला मानत्त्व"की जगह 'पक्ष भरका परिवास' पढना चाहिये)।

[4] देखो पृष्ठ ३७८, ३७९, ३८५, ३८८, ३९१, ३९२।

[5] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'के स्थानपर 'मूलसे-प्रतिकर्षण' रखकर)।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास देना चाहिये—•।"[3]

(३) फिर उसी आपत्तिके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण व समवधान-परिवास

उसने परिवास पूरा कर मानत्वके योग्य होनेपर बीचमें पाँच दिनकी गुप्तस्थानकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। भिक्षुओंसे कहा—

मैंने (क) पक्षभरका परिवास लिया। (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दिया। परिवास पूराकर मानत्वके योग्य होनेपर बीचम मैंने पाँच दिनकी गुप्तस्थानकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। अब मुझे क्या करना चाहिये ? ।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको बीचकी पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न गुप्तस्थानकी आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दे। और इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये— [1]। और इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये— [1]। 15

(४) फिर वही दोष करनेके लिये समवधान-परिवास छ रातका मानत्व

उसने मानत्वको पूरा करते समय बीचमें पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न गुप्तस्थानकी आपत्ति की। ।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षणकर, प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास दे छ रातका मानत्व । 16

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये— [1]। इस प्रकार समवधान परिवास देना चाहिये— [1]। इस प्रकार छ रातका मानत्व देना चाहिये— [1]।

(५) फिर वही दोष न करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षणकर, समवधान-परिवास व छ रातका मानत्व

उसने मानत्व पूराकर आह्वानके योग्य होनेपर बीचमें पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न गुप्तस्थानकी आपत्ति की। ।—

"तो भिक्षुओ ! संघ उदायी भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास दे छ रातका मानत्व दे। 17

और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—•[1]। इस प्रकार समवधान परिवास देना चाहिये— [1]। इस प्रकार छ रातका मानत्व देना चाहिये— [1]।

उसने मानत्व पूराकर भिक्षुओंसे कहा—

(६) मानत्व पूरा करनेपर आह्वान

"मैंने आवुसो ! एक आपत्ति की। मैंने (क) पक्षभरका परिवास लिया। मैंने (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास लिया। मैंने (ग) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास लिया। मैंने (घ) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास व छ रातका मानत्व लिया। मैंने (ङ) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास व छ रातका मानत्व लिया। सो मैंने मानत्व पूरा कर लिया (अब) मुझे क्या करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1]देखो चुल्ल ३§१।८ पृष्ठ ३७२ ('छ रातका मानत्व'के स्थानपर 'समवधान परिवास' रखकर)।

[2]देखो चुल्ल ३§१।५-७, ८ पृष्ठ ३७१ (आपत्तियोंके स्थानपर बीचकी आपत्तियोंको जोड़कर)।

[3]देखो ऊपर।

"तो भिक्षुओ! मघ उदायी भिक्षुका आह्वान करे। 18

"और भिक्षुओ! उस प्रकार आह्वान करना चाहिये—०[1]।

"ग धा र णा—'मघने उदायी भिक्षुका ० आह्वान कर दिया। मघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं उसे समझता हूँ'।"

शुक्र-त्याग समाप्त

§ २—परिवास दंड

(१) अनेक दिनोंके छिपानेमें बहुतसे संघादिसेसके दोषोंमें, छिपाये दिनके अनुसार-परिवास

क १—उस समय एक भिक्षुने म घा दि से सो की बहुतसी आपत्तियाँ की थी—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, एक आपत्ति दो दिनकी०, एक आपत्ति तीन दिनकी०, एक आपत्ति चार दिनकी०, एक आपत्ति पाँच दिनकी०, एक आपत्ति छ दिनकी०, ० सात दिनकी०, ० आठ दिनकी०, ० नौ दिनकी०, (और) एक आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न थी। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने बहुतसी मघादिसेसकी आपत्तियाँ की है—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न है, ०, (और) एक आपत्ति दस-दस दिनकी प्रतिच्छन्न है। मुझे कैसा करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! मघ उस भिक्षुको, उन आपत्तियोंमें जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य स म व धा न - प रि वा स दे। 19

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—उस भिक्षुको सघके पास जा ० ऐसा 'कहना चाहिये—० जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य समवधान-परिवास माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]

"धा र णा—'सघने अमुक नामवाले भिक्षुको, उन आपत्तियोंमें जो दस दिनकी प्रतिच्छन्न आपत्ति है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं (इसे) समझता हूँ'।"

२—उस समय एक भिक्षुने म घा दि से सो की बहुतसी आपत्तियाँ की थी—(जिनमेंसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, दो आपत्तियाँ दो दिनकी प्रतिच्छन्न थी, तीन आपत्तियाँ तीन दिनकी०, चार आपत्तियाँ चार दिनकी०, पाँच आपत्तियाँ पाँच दिनकी०, छ आपत्तियाँ छ दिनकी०, सात आपत्तियाँ सात दिनकी०, आठ आपत्तियाँ आठ दिनकी०, नौ आपत्तियाँ नौ दिनकी०, (और) दस आपत्तियाँ दस दिनकी प्रतिच्छन्न थी। उसने भिक्षुओंसे कहा—०।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ, दस (भिक्षुकी) आपत्तियोंमें जो सबसे अधिक देर तक प्रतिच्छन्न रही है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे। 20

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—० समवधान-परिवास माँगता हूँ।०।० सघको सूचित करे—०[2]।"

---

[1]देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

[2]देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('रातवाला मानत्त्व'की जगहपर 'समवधान-परिवास' पढ़ना चाहिये)।

३—उस समय एक भिक्षुने दो संघादिसेसकी दो मास तक चुप रक्खी गई (=प्रतिच्छन्न) दो आपत्तियाँ की थी। उसको यह हुआ—'मैंने दो (तरहकी) संघादिसेसकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। क्यों न संघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। उसने संघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगा। संघने उसे एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई—'मैंने दो आपत्तियाँ की हैं और (पहिले) मुझे यह हुआ—० क्यों संघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। संघने मुझे एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। तब परिवास करते वक्त मुझे लज्जा मालूम हुई। क्यों न संघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ। उसने भिक्षुओंसे कहा— ।

भगवान्से यह बात कही।—

'तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे। 21

'और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये— दो मासका परिवास माँगता हूँ। । संघको सूचित करे—[1]।

'घ धा र णा— संघने अमुक नामवाले भिक्षुको दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।

'भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 22

४—'यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। [1]। संघने उसे दोनो आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। [1]। संघने उस भिक्षुको दूसरी आपत्ति के लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 23

५—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। (वह उनमेंसे) एक आपत्तिको जानता है दूसरीको नहीं जानता। वह जिस आपत्तिको जानता है उसके लिये संघसे दो मासका परिवास माँगता है। संघ उस भिक्षुको दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। उसको ऐसा होता है—'मैंने दो आपत्तियाँ की हैं। (वह उनमेंसे) एक आपत्तिको मैंने जाना दूसरीको नहीं जाना। मैंने जिस आपत्तिको जाना उसके लिये संघसे दो मासका परिवास माँगा। संघने मुझे दो मासका परिवास दे दिया। । परिवास करते वक्त (अब) मुझे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। क्यों न संघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ। वह संघसे दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगता है। उसे संघ दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देता है। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 24

६—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। (उसे उनमेंसे) एक आपत्ति याद है दूसरी याद नहीं है। उसे जो आपत्ति याद है उसके लिये

---

[1]देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त'की जगहपर 'दो मासका परिवास' रखकर)।

परिवास पानेवाले भिक्षुके कर्तव्यके लिये देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-८ ।

[1]देखो चुल्ल ३§२।१ (३) पृष्ठ ३८ (३)।

मघसे दो मासका परिवास माँगता है। सघ ० दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति याद आती है। ०[1] । सघ उसे ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देना है। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 25

७—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की है। उसे (उनमेंसे) एकके बारेमे सन्देह नहीं है, दूसरेके बारेमें सन्देह है। ०[2] । ० तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 26

८—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँकी है। (उनमेंसे) एकको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=चुप) रक्खी, दूसरीको अनजानमे। ०[2] । सघ ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत, आगमज्ञ०[2] सीख चाहनेवाला भिक्षु आवे । वह ऐसा पूछे—'आवुसो! उस भिक्षुने क्या आपत्ति की, किसके लिये यह प रि वा स कर रहा है?' वह ऐसा कहे—'आवुस! इस भिक्षुने ० दो आपत्तियाँ की। एकको जानबूझकर प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको अनजानमें। ०[2] । सघने ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास दिया है। आवुस! उन दो आपत्तियोको इस भिक्षुने किया है उन्हीके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो! जो आपत्ति कि जानकर प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना धा र्मि क (=न्याय युक्त) है, (किन्तु) जो आपत्ति अनजाने प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना अ-धार्मिक (=अन्याय) है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नही, आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्त्व देने लायक (=मानत्त्वार्ह) है। 27

९—"यदि भिक्षुओ! ० एक आपत्ति याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खी गई, दूसरी न याद रहते। वह सघसे ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगता है। सघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०,[3] आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है। 28

१०—"यदि भिक्षुओ! ० एक आपत्तिको सदेह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको सदेहमे। वह सघसे ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगता है। सघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०[3] आवुसो! यह भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है।" 29

ख १—उस समय एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की थी। उसको ऐसा हुआ—० मैने ० दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की है। चलूँ सघसे ० एक मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगूँ।' उसने सघसे ० दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगा। सघने उसे ० एक मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई—'०[4] । चलूँ सघसे मैं दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।' उसने भिक्षुओसे कहा—०।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनो आपत्तियोके लिये बाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। 30

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—० [5]।

---

[1] ऊपर (४) की बात यहाँ भी समझो। [2] देखो पृष्ठ ३८०। [3] ऊपर (८) जैसा पाठ।
[4] देखो ऊपर पृष्ठ ३८० (३) की तरह।
[5] देखो पृष्ठ ३७२-३ ('छ रात वाला मानत्त्व' की जगह 'एक मासका परिवास' रखकर)।

ग धा र णा—संघने अमुक नामवाले भिक्षुको दूसरे मासका भी परिवास दिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

"तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको पहिले (मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 31

२—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोंकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हों। उसको ऐसा हो— क्यों न संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।—

तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनों आपत्तियोंके लिये बाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। और भिक्षुको पहिले (परिवास दिये मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये।" 32

३— एक मासको जानता हो दूसरे मासको नहीं [1]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी मालूम हो। क्यों न संघसे दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।।। पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 33

४— एक मासको याद रखता हो दूसरे मासके बारेमें नहीं [2]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी याद आये।—क्यों न संघसे दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।।। पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 34

५— एक मासके बारेमें सन्देह हो दूसरे मासके बारेमें नहीं।[3] परिवास करते वक्त वह दूसरे मासके बारेमें भी सन्देह-रहित हो जाये।— क्यों न संघसे दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।।। पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 35

६—" एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो दूसरेको अनजानसे। वह संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। संघ उसे दो मास प्रतिच्छन्न दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास दे। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत भिक्षु आवे। वह ऐसा पूछे—'आवुसो! इस भिक्षुने क्या आपत्ति की जिसके लिये यह परिवास कर रहा है?' वह ऐसा कहे—'आवुस! इस भिक्षुने दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ कीं। इसने एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=छिपा) रक्खा दूसरेको अनजानमें। संघने दो मासका परिवास दिया है। आवुस! उन आपत्तियोंको इस भिक्षुने किया है उन्हींके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो! जिस मासको जान कर इसने प्रतिच्छन्न किया उसके लिये परिवास देना धार्मिक है (किन्तु) जिस मासको अनजाने प्रतिच्छन्न किया उसके लिये परिवास देना अधार्मिक है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नहीं आवुसो! (यह) भिक्षु एक मासके लिये मानत्व देने लायक है।' 36

७— एक मासके याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो दूसरेको न याद रहनेसे। वह संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। । परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत भिक्षु आवे। [4] आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्व देने लायक है। 37

८—" एक मासको सन्देह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो दूसरेको सन्देह रहते। वह संघसे दोनों आपत्तियोंके लिये दो मासका परिवास माँगे। । परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत भिक्षु आवे। आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्व देने लायक है। 38

---

[1] देखो ऊपर (२) और पृष्ठ ३८ (५)।
देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८०-१ (६)। [2] देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८१।
देखो पृष्ठ ३८१ (८)। देखो ऊपर (६) और पृष्ठ ३८१ (९)।
देखो ऊपर और पृष्ठ ३८१ (१)।

(२) शुद्धान्त-परिवास

उस समय एक भिक्षुने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की थीं। वह आपत्तिके पर्यन्त (=परिमाण, संख्या)को नहीं जानता था, रातके परिमाणको नहीं जानता था। आपत्तिके परिमाणको याद न रखता था, रातके परिमाणको याद न रखता था। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता था, रातके परिमाणमें सन्देह रखता था। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने बहुतसी संघादिसेस आपत्तियाँ की हैं।० आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ, रातके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये।'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको शुद्धान्त परिवास दे। 39

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (शुद्धान्त-परिवास) देना चाहिये। वह भिक्षु संघके पास जा ०[1] ऐसा कहे—० मैं संघसे उन आपत्तियोंके लिये शुद्धान्त-परिवास माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]।

"धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको उन आपत्तियोंके लिये शु द्धा न्त - प रि वा स दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(३) शुद्धान्त-परिवास देने योग्य

"भिक्षुओ! इस प्रकार शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! किसको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये?—(१) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, (जिन रातोंमें उससे आपत्ति हुई उन) रातोंके परिमाण (=संख्या)को नहीं जानता। ० नहीं याद रखता ०। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता है, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (२) आपत्तिके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको नहीं जानता। आपत्तिके परिमाणको याद रखता है, रातके परिमाणको याद नहीं रखता। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह नहीं रखता, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (३) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है किसी किसीको नहीं जानता। ० नहीं याद रखता, ० किसी किसीको नहीं याद रखता। ० सन्देह रखता है, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रहित है, किसी किसीमें सन्देह रखता है। ऐसेको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (४) आपत्तिके परिमाणको जानता है रातोंमें किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं। ० याद रखता है, ० किसी किसीको नहीं। ० सन्देह नहीं रखता, ० किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (५) आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको याद रखता ०। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है, किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! ऐसे शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये।" 40

(४) परिवास देने योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ! कैसे प रि वा स देना चाहिये?—(१) आपत्तियोंके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको जानता है। ० याद रखता है ०।०सन्देह-रहित होता है। (२) आपत्तिके परिमाणको नहीं

---

[1]देखो चुल्ल ३६१।क पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'की जगह 'शुद्धान्त-परिवास' रखकर)।

जानता, उतने परिमाणको जानता है। नहीं याद रखता, याद रखता है। निस्सन्देह होता है, सन्देह-युक्त होता है। (३) आपत्तिके परिमाणमें कुछ जानता है कुछ नहीं जानता, उतने परिमाणको जानता है। कुछ नहीं याद रखता, याद रखता है। कुछ सन्देह रखता है, सन्देह नहीं रखता। (ऐसेको) परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार परिवास देना चाहिये। 41

परिवास-समाप्त

§२—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दंड

(१) शेष परिवास

(१) उस समय एक भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड़ चला गया हो और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगे। भिक्षु वेष छोड़ नेके लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक, बाकी (समय)के लिये परिवास करना चाहिये। 42

(२) परिवास करते वक्त (भिक्षुपन छोड़) श्रामणेर बन जाये। श्रामणेरके लिये भिक्षुओ! परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।[1] 43

(३) परिवास करते पागल हो जाये। पागलको परिवास नहीं रहता। यदि फिर उसका पागलपन हट जाये तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।[1] 44

(४) परिवास करते विक्षिप्त हो जाये। विक्षिप्त-चित्तको परिवास नहीं रहता। यदि वह फिर अविक्षिप्त चित्त हो तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।[1] 45

(५) परिवास करते वे द ना ट्ट (=बेहोश) हो जाये।[1] 46

(६) "परिवास करते आपत्तिके न देखनेसे उ त्क्षि प्त क[2] हो जाये।[1] 47

(७) परिवास करते आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये।[1] 48

(८) परिवास करते बुरी दृष्टिके न छोड़नेसे उत्क्षिप्तक[2] हो जाये।[1]" 49

(२) मूलसे-प्रतिकर्षण

(९) भिक्षुओ! कोई भिक्षु मूलसे प्रतिकर्षणके योग्य हो भिक्षु-वेष छोड़ चला जाये और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे। भिक्षु-वेष छोड़कर चले गयेको मूलसे प्रतिकर्षण नहीं रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे तो उसे वही परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है, उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 50

(१०) श्रामणेर हो जाये।[3] 51

(११) पागल हो जाये।[3] 52

(१२) विक्षिप्त-चित्त हो जाये।[3] 53

(१३) वेदनाट्ट हो जाये।[3] 54

(१४) आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये।[3] 55

---

[1] ऊपर (१) जैसा। [2] देखो महावग्ग ९§४।५ पृष्ठ ३१४। [3] ऊपर (१) की भाँति।

(१५) "० आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] । 56

(१६) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] ।" 57

(३) मानत्त्व

(१७) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे ।० भिक्षु-वेष छोळ गयेको मानत्त्व नही। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसके लिये वही पहिला परिवास हो। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है। उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 59

(२४) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[2] ।" 60

(४) मानत्त्वचरण

(२५) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मा न त्त्व का आचरण करते भिक्षु-वेष छोळ चला जाये, ०[2] । 67

(३२) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[2] ।" 68

(५) आह्वान

(३३) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु आह्वानके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये, ०[2] । 69

(४०) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3] ।" 76

चौवालीस समाप्त

§४—दंड भोगते समय नये अपराध करनेपर दंड

क परिवास—

(१) मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमे अ-प्रतिच्छन्न[4] परिमाण-वाली बहुतमी स घा दि से स की आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।" 77

(२) "० प्रतिच्छन्न (और) परिमाणवाली बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये, प्रतिच्छन्नोके आपत्तियोके अनुसार प्रथम आपत्तिके लिये स म व धा न प रि वा स देना चाहिये । 78

(३) "० प्रतिच्छन्न या अ-प्रतिच्छन्न (किन्तु) परिमाणवाली बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये, ०[5] । 79

(४) "० अ-प्रतिच्छन्न (और) अ-परिमाण०[5] । 80

(५) "० अपरिमाण (और) प्रतिच्छन्न०[5] । 81

(६) "० अपरिमाण, प्रतिच्छन्न भी अ-प्रतिच्छन्न भी०[5] । 82

(७) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) अप्रतिच्छन्न०[5] । 83

(८) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) प्रतिच्छन्न०[5] । 84

(९) "० परिमाणवाली भी, अ-परिमाण भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[5] ।" 85

---

[1] ऊपर (१) की भाँति । [2] ऊपर आये मूलसे-प्रतिकर्षणकी भाँति । [3] देखो ऊपर (३) मानत्त्व । [4] दोषको छिपाना । [5] देखो ऊपर (१) ।

(२) मानत्वार्ह

(१) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु मानत्वके योग्य होते समय बीचमें अप्रतिच्छन्न (=प्रकट) परिमाणवाली बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ करे तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये [1]। 99

(१६) परिमाणवाली भी अपरिमाणवाली भी प्रतिच्छन्न भी अप्रतिच्छन्न भी [1]। 103

(३) मानत्वचारिक

(१७) एक भिक्षु मानत्वका आचरण करते समय बीचमें [1]। 112

(२८) परिमाणवाली भी अपरिमाणवाली भी प्रतिच्छन्न भी अप्रतिच्छन्न भी [1]। 121

(४) आह्वानार्ह

(२९) एक भिक्षु आह्वानके योग्य होते (=आह्वानार्ह) समय बीचमें [1]। 130

(३०) परिमाणवाली भी अपरिमाणवाली भी प्रतिच्छन्न भी अप्रतिच्छन्न भी [1]। 139

छत्तीस समाप्त

ख मानत्व—

(१) गृहस्थ बन जाना

क (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु बहुतसी सं घा दि से स की आपत्तियोंको करके (उन्हें) न छिपा गृहस्थ बन जाता है। वह फिर उ प स म्प दा पाकर उन आपत्तियोंका प्रतिच्छादन नहीं करता तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको मानत्व देना चाहिये। 140

(२) *प्रतिच्छादन न कर भिक्षु-वेष छोड़ चला जाता है। वह फिर उपसम्पदा पाकर* उन आपत्तियोंका प्रतिच्छादन करता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्तिसमुदायमें प्रतिच्छन्न (आपत्तियों)की भाँति परिवास दे मानत्व देना चाहिये। 141

(३) प्रतिच्छादनकर । उन आपत्तियोंको नहीं प्रतिच्छादन करता परिवास दे मानत्व देना चाहिये। 142

(४) प्रतिच्छादन कर । उन आपत्तियोंको प्रतिच्छादन करता है उस भिक्षुको पहिलेके भी और पीछेके भी आपत्ति-स्कन्धमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्व देना चाहिये। 143

(५) प्रतिच्छादन कर भी अ-प्रतिच्छादन कर भी । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका फिर प्रतिच्छादन नहीं करता पहिले अ-प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका अ प्रतिच्छादन करता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्ति-स्कन्धमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्व देना चाहिये। 144

(६) प्रतिच्छादन कर भी अप्रतिच्छादन कर भी । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोंका फिर प्रतिच्छादन नहीं करता पहिले प्रतिच्छादित न की गई आपत्तियोंका अब प्रतिच्छादन करता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अबके भी आपत्ति-समूहमें प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्व देना चाहिये। 145

---

[1] परिवासकी तरह यहाँ भी समझो।

[2] पृष्ठ ३८५ में परिवास (१९) की भाँति यहाँ भी समझो।

(७) "० प्रतिच्छादन कर भी, अ-प्रतिच्छानद कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियो का अब भी प्रतिच्छादन करता है, पहिले अ-प्रतिच्छादित आपत्तियोका अब भी प्रतिच्छादन नही करता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अवके भी आपत्ति-स्कधमें प्रतिच्छादनकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 146

(८) "० छिपाकर भी, न छिपाकर भी० । पहिले छिपाई गई आपत्तियोको भी अव छिपाता है, पहिले बे-छिपाई० को अब छिपाता है। ०[1] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 147

ख (९) "० भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने वहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। (उनमें) किन्ही किन्ही आपत्तियोको जानता है, किन्ही किन्हीको नही जानता । जिन आपत्तियोको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता, उन्हे नही छिपाता । गृहस्थ वन फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको उसने पहिले जानकर छिपाया था, उन्हे अब वह जानकर नही छिपाता, जिन आपत्तियोको पहिले न जान नही छिपाया था, उन्हे अब जानकर (भी) नही छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके दोषसमूह (=आपत्ति-स्कध)में छिपाईकी भाँतिके लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 148

(१०) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता, उनका छादन नही करता। ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छादन करता था, अव जानकर उनका छादन नही करता, जिन आपत्तियोको पहिले नही जानकर उनको नही छिपाता था, उन आपत्तियोको अव जानकर छिपाता है। तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी अवके भी आपत्ति-स्कधोमें प्रतिच्छन्न (=छिपाई)की भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 149

(११) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है उन्हे छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे नही छिपाता । ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हे अव (भी) जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोको पहिले नही जान नही छिपाता था, उन्हे अब जानकर नही छिपाता। ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 150

(१२) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है, उन्हे छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे नही छिपाता। ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हे अब भी जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोको पहिले न जानकर नही छिपाता था, उन्हे अब जानकर छिपाता है। ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 151

ग (१३) "०[2] (उनमें) किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद रखता है, और किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद नही रखता। जिन आपत्तियोको याद रखता है उनका छादन करता है, जिन आपत्तियोको नही याद रखता, उनका छादन नही करता। वह भिक्षु-वेष छोळ फिर भिक्षु वन, जिन आपत्तियोको उसने पहिले यादकर छिपाया था, उन्हे अब यादकर नही छिपाता, जिन आपत्तियोको पहिले याद न होनेसे नही छिपाता था उन्हे अब यादकर भी नही छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिले के आपत्ति-स्कध (=आपत्ति-पुज)में छिपाईकी भाँति के लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। ०[3] 154

(१६) "०[3] जिन आपत्तियोको याद रखता है, उन्हे छिपाता है०[4] । 157

---

[1]ऊपर जैसा पाठ । [2]देखो ऊपर (९) ।

[3]ऊपर (१०), (११) की भाँति ("जानने"के स्थानमें "याद करवा" रखकर) ।

[4]देखो ऊपर (१२) ।

ख (१७) "[1] उनमें किन्ही किन्ही आपत्तियोंमें सन्देह नही रखता है किन्ही किन्ही आपत्तियोंमें सन्देह रखता है [1]। 158

(२) [1] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नही रखता उन्हें छिपाता है [1]। 161

(२) श्रामणेर बन जाना

ख (२१) "[1] श्रामणेर बन जाता है [1] (४) [1] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नही रखता उन्हें छिपाता है [1]। 181

(३) पागल हो जाना

क (४१) [1] पागल हो जाता है [1]।" 101

(४) विक्षिप्त-चित्त होना

क (६१) [1] विक्षिप्त-चित्त हो जाता है [1]। 121

(५) वेदनट्ट (=वेदनावास) हो जाना

ख (८१) [1] वेदनट्ट हो जाता है [1]। 141

(१) [1] जिन आपत्तियोंमें सन्देह नही रखता उन्हें छिपाता है [1]। 161

सौ मानत्त्व समाप्त

§५–मूलसे-प्रतिकर्षण दण्डमें शुद्धि

क परिवास—

(१) गृहस्थ होना

ख (१) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमें बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियोंको कर बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको नही छिपाता तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 162

(२) [1] बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको छिपाता है तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। इसकी छिपाई आपत्तियोंकी भाँति पहिलेकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास देना चाहिये। 163

(३) [1] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको नहीं छिपाता तो [1]। 164

(४) "[1] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोंको छिपाता है तो । 165

ग (५) "[1] छिपाकर भी बिना छिपाये भी गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन पहिले छिपाई आपत्तियोंको अब नही छिपाता पहिले नहीं छिपाई आपत्तियोंको अब नहीं छिपाता तो [1]। 166

---

[1]ऊपर पृष्ठ १८७ (१ १२) की भाँति "जानने न जानने" के स्थानमें "न सन्देह करना सन्देह करना" रख। देखो ऊपर पृष्ठ १८७-८८ (१-२) की भाँति। [1]ऊपरकी तरह पाठ। देखो ऊपर (२)। देखो ऊपर २ (५)।

(६) "०[1] भिक्षु वन पहिले छिपाई आपत्तियोको अव नही छिपाता, पहिले न छिपाई आपत्तियोको अव छिपाता है, तो०[2] । 167

(७) "०[1] भिक्षु वन, पहिले छिपाई आपत्तियोको अव (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई आपत्तियोको अव (भी) नही छिपाता, तो०[2]। 168

(८) "०[2] भिक्षु वन, पहिले छिपाई आपत्तियोको अव (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई अपात्तियोको अव छिपाता है, तो०[2] ०। 169

ग (९) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवाम करते समय वीचमें वहुतसी सघादिसेमकी आपत्तियोको करता है। (उनमें) किन्ही किन्ही आपत्तियोको जानता है किन्ही किन्ही आपत्तियोको नही जानता। जिन आपत्तियोको जानता है उन्हे छिपाना है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे छिपाता है। वह गृहस्थ वन फिर भिक्षु हो,जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था,०[3]। तो०[2]। 170

(१०) "०[3] परिवास करते समय०[4] जिन आपत्तियोको जानता है०[4]।० फिर भिक्षु हो, जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[2]। तो०[4]। 171

(११) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोको जानता है०[4]। ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[5]। तो०५। 172

(१२) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोको जानता है०[5]। ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[6]। तो०[7]। 173

घ (१३) "०[7] उनमे किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद रखता है, ०[8]। 174

ङ (१७–२०) "०[10] उनमें किन्ही किन्ही आपत्तियोमे सन्देह नही रखता,०[10]।" 175

(२) श्रामणेर होना

क (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय वीचमें वहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियोको कर विना छिपाये गृहस्थ हो जाता है, ०[10]।" 192

(३) पागल होना

क (१–२०) "० पागल हो जाता है, ०[10]।" 209

(४) विक्षिप्त होना

क (१–२०) "० विक्षिप्त हो जाता है, ०[10]।" 226

(५) वेदनट्ट होना

क (१–२०) "० वेदनट्ट हो जाता है, ०[10]।" 243

ख मानत्त्व (१-१००)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–१००) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो वीचमें वहुतसी सघादि-

---

[1]देखो ऊपर पृष्ठ ३८८ (२)। [2]देखो पृष्ठ ३८२ (९)। [3]देखो पृष्ठ ३८७ (१०)। [4]देखो ऊपर (९)। [5] देखो पृष्ठ ३८७ (१०)। [6]देखो पृष्ठ ३८८ (१८)। [7]देखो पृष्ठ ३८७ (१२)। [8]ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह "याद करके" रखकर)। [9]देखो ऊपर (९)। [10]ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह सन्देह न करना" रखकर)।

सेसकी आपत्तियोंको कर, बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन यदि उन आपत्तियोंको नहीं छिपाता तो उस भिक्षुका मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। '। 343

ग मानत्व-चारिक (११)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–२) 'भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु मानत्वका आचरण करते बीचमें '। 443

घ आह्वानार्ह ११ ०—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–२) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षु आह्वानके योग्य हो बीचमें । 543

ङ परिमाण, अपरिमाण—

१—(क) (१–२) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है जिनमें परिमाणवालीको छिपा और परिमाण रहितको बिना छिपाये एक नामवालीको बिना छिपाये नामवालीको बिना छिपाये समागको बिना छिपाये विसभाग (=अ-समता)को बिना छिपाये व्यवस्थित (=अलगवाली)को बिना छिपाये सम्मिश्र (=मिश्रित)को बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। । 643

२—(क १–२) ' श्रामणेर हो जाता है । 743

३—(क १–२) पागल हो जाता है । 843

४—(क १–२) विक्षिप्त हो जाता है । 943

५—(क १–२) वेदनट्ट हो जाता है । 1043

च दो भिक्षुओंके बोध—

(१) "दो भिक्षुओंने सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघादिसेसको सघादिसेस करके देखते है। (उनमें) एक (आपत्तिको) छिपाता है दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है उसे दुक्कटकी देशना (=Confession) करवानी चाहिये फिर छिपायेकी भाँति परिवास दे दोनोंको मानत्व देना चाहिये। 1044

(२) "दो भिक्षुओंने सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघादिसेसमें सन्देहयुक्त होते है। (उनमें) एक छिपाता है दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है उससे दुक्कटकी देशना करवानी चाहिये फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे दोनोंको मानत्व देना चाहिये। 1045

(३) ' सघादिसेसमें मिश्रित (मिश्रक) दृष्टि रखनेवाले होते है '। 1046

(४) "दो भिक्षुओंने मिश्रक आपत्तियाँ की है वह मिश्रकको सघादिसेसके तौरपर देखते है। । 1047

(५) "दो भिक्षुओंने मिश्रक आपत्तियाँ की है। वह मिश्रकको मिश्रकके तौरपर देखते हैं। '। 1048

(६) "दो भिक्षुओंने शुद्धक आपत्तियाँ की है। वह शुद्धकको सघादिसेसके तौरपर देखते है। । 1049

ऊपर (९ १२)की भाँति ('जानने'की जगह "याद करके" रखकर)।

देखो पृष्ठ १८८-८९ (१२) गृहस्थ होनाकी भाँति।

'देखो पृष्ठ १८८-८९ परिवासकी भाँति (१ भेद)। 'देखो ऊपर (१)।

(७) "दो भिक्षुओने शुद्धक आपत्तियाँ की हैं। वह शुद्धकके तौरपर देखते है। ०[1] दोनोको धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।। 1050

छ दो भिक्षुओकी धारणा—

(१) "दो भिक्षुओने सघादिसेसका अपराध किया है। वह (उस) सघादिसेसको सघादिसेसके तौरपर देखते है। एक कह देना चाहता है, दूसरा नही कहना चाहता। वह पहिले याम (=४ घटा)में भी छिपाता है, दूसरे याम भी छिपाता, तीसरे याम भी छिपाता है, तो लाली (=अरुण) उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। जो छिपाता है, उससे दुक्कटकी दे श ना करवानी चाहिये, फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे, दोनोको मानत्त्व देना चाहिये। 1051

(२) "०[2] सघादिसेसके तौरपर देखते हैं। वह प्रकट करनेके लिये जाते हैं। एकको रास्तेमे न प्रकट करनेका अमरख(=म्रक्षधर्म) उत्पन्न हो जाता है। वह पहिले याम भी छिपाता है, दूसरे याम भी०, तीसरे याम भी०। (तो) लाली उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। ०[3] 1052

(३) "० सघादिसेसके तौरपर देखते है। वह दोनो पागल हो जाते है। पीछे भिक्षुपन छोळ एक (अपने अपराधको) छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है, ०[3]। 1053

(४) "० वह दोनो प्रातिमोक्ष-पाठके वक्त ऐसा कहते है—'इसी वक्त हमें मालूम हुआ, कि यह धर्म (=काम) भी सुत्त (=बुद्धोपदेश, विनय)में आया है, सुत्तसे मिला है, प्रति आधे मास (प्रातिमोक्ष-पाठके वक्त) पाठ (=उद्देश) किया जाता है। (तव) वह सघादिसेसको सघादिसेसके तौरपर देखते हैं। (उनमें) एक छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। ०[4]।" 1054

§६—अशुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

क (१) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली, अपरिमाणवाली, एक नामवाली, अनेक नामवाली भी, सभागवाली (=समान)भी वि-सभागवाली भी, व्यवस्थित (=अलगवाली)भी, सम्भिन्न (=मिलीजुली) भी बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघसे उन आपत्तियोके लिये स म-व धा न परिवास माँगता है। सघ उसे० समवधान-परिवास देता है। वह परिवास करते समय बीचमें बहुतसी परिमाणवाली न-छिपाई सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह सघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। सघ उसे धार्मिक(=न्याययुक्त)=अ-कोप्य, स्थानके योग्य कर्म (=फैसले)से बीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण करता है, धर्म (=नियम) से समवधान-परिवास देता है, अ-धर्म (=नियमविरुद्धसे) मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियो (=अपराधो)से शुद्ध नही है। 1055

(२) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने ०[5] बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह सघसे उन आपत्तियोके लिये समवधान-परिवास माँगता है। ०[5] वह सघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। सघ उसे धार्मिक=अकोप्य, स्थानके योग्य कर्मसे बीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे प्रतिकर्षण करता है, धर्मसे समवधान-परिवास होता है, अधर्मसे मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियोसे शुद्ध नही है। 1056

(३) "०[5] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी न छिपाई भी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। ०[5]। 1057

---

[1]देखो ऊपर (१)। [2]ऊपर (१) की भाँति। [3]देखो ऊपर(१)।
[4]देखो ऊपर (७ और १)। [5]देखो ऊपर (१)।

(४) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाण रहित न छिपाई आपत्तियाँ करता है। [1] । 1058

(५) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई आपत्तियाँ करता है। [1] । 1059

(६) ०[1] भीतर्में बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है [1] । 1060

(७) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी न छिपाई आपत्तियाँ करता है [1] । 1061

(८) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी छिपाई आपत्तियाँ करता है [1] । 1062

(९) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण रहित भी छिपाई भी न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है। [1] । 1063

(क) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

ख (१) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली अपरिमाणवाली [1] बहुतसी सघा-दिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये समवधान-परिवास माँगता है। संघ उसे समवधान-परिवास देता है। वह परिवास करते भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली न छिपाई सघादिसेस की आपत्तियाँ करता है। [1] । 1064

(२) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली छिपाई । [1] 1065

(३) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी न छिपाई भी [1] । 1066

(४) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई [1] । 1067

(५) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई [1] । 1068

(६) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी न छिपाई भी [1] । 1069

(७) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण रहित भी न छिपाई [1] । 1070

(८) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी छिपाई [1] । 1071

(९) [1] भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण रहित भी छिपाई भी न छिपाई भी [1] । 1072

(ख) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

§७—शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली अपरिमाणवाली [1] बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं। वह संघसे उन आपत्तियोंके लिये समवधान-परिवास माँगता है। संघ उसे समवधान-परिवास देता है वह परिवास करते भीतर्में बहुतसी परिमाणवाली न छिपाई सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह संघसे भीतरकी (की गई) आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। संघ उसे ध र्म से (=नियम-विरुद्ध)=कोप्य स्थानके अयोग्य धर्म (+पंचसे)से भीतरकी आपत्तियोंके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करता है अधर्मसे समवधान-परिवास देता है। वह 'यह परिवास है'—जानते हुए (भी) भीतर्में परिमाणवाली और न छिपाई बहुतसी सघादिसेस की आपत्तियाँ

[1] देखो ऊपर (१) । [2] देखो पृष्ठ १९१ (१ और ९) । देखो ऊपर (१) ।
[3] देखो पृष्ठ १९१ (१ और ९) ।

करता है। वह उसी स्थिति (=भूमि)मे रहते पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोको याद करता है। बादवाली आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोको याद करता है। उसको ऐसा होता है—'मैने परिमाणवाली० बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की। ० सघने मुझे० समवधान-परिवास दिया। मैने परिवास करते बीचमें बहुतसी परिमाणवाली० आपत्तियाँ की। ० सघने अधर्म० बीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण किया, अधर्मसे समवधान परिवास दिया। (तब) मैने 'यह परिवास है'—जानते हुए बीचमे परिमाणवाली और न छिपाई बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की। सो मुझे उसी भूमिमें रहते पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियाँ याद है, बादवाली आपत्तियो के बीचकी आपत्तियाँ याद है। चलूँ सघसे पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोके लिये, और बाद वाली आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोके लिये भी, धार्मिक-अकोप्य स्थानके योग्य कर्मद्वारा मूलसे प्रतिकर्षण, धर्मसे समवधान-परिवास, धर्मसे मानत्त्व और धर्मसे आह्वान माँगूँ।' वह सघसे० माँगता है। सघ उसे ० देता है। भिक्षुओ ! वह भिक्षु उन आपत्तियोंसे शुद्ध है। 1073

(२) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली छिपाई सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है ०। । 1074

(३) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी, न छिपाई भी ०[1] । 1075

(४) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित, न छिपाई ०[1] । 1076

(५) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई ०[1] । 1077

(६) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी न छिपाई भी ०[1] । 1078

(७) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी छिपाई ०[1] । 1079

(८) "०[1] बीचमें बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी न छिपाई भी, छिपाई भी ०[1] ।" 1080

नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धियाँ समाप्त

समुच्चयक्खन्धक समाप्त[2] ॥३॥

---

[1]देखो ऊपर (१)।

[2]इस स्कन्धकमें आये प्रकरणोका नाम गिनाते वक्त अन्तमें यह भी लिखा है—"ताम्र-पर्णीद्वीप (=लका)को अनुरक्त (=बौद्ध) बनानेवाले महाविहारवासी विभज्यवादी आचार्योंका सद्धर्मकी स्थितिके लिए (यह) पाठ है।"

४—शमथ-स्कन्धक

१—धर्मवाद-अधर्मवाद। २—स्मृति-विनय आदि छ विनय। ३—चार अधिकरण उनके मूल भेद, नामकरण और शमन।

§१—धर्मवाद-अधर्मवाद

१—श्रावस्ती

(१) उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिण्डिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओंका भी तर्जनीय कर्म नियस्स कर्म प्रव्राजनीय कर्म प्रतिसारणीय कर्म—(यह) कर्म (=फैसला) करते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ (=निर्लोभ) थे वह हैरान होते थे—०। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

भगवान्ने फटकार कर धर्म-सबन्धी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुपस्थित भिक्षुओंका तर्जनीय कर्म —(यह) कर्म नहीं करना चाहिये जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।

(२) अधर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी बहुतसे व्यक्ति अधर्मवादी संघ। धर्मवादी एक व्यक्ति धर्मवादी बहुतसे व्यक्ति धर्मवादी संघ।

क (१) (एक) अधर्मवादी (=नियमोसे अनभिज्ञ) व्यक्ति (दूसरे) धर्मवादी व्यक्तिको समझावें सुझावें प्रेम करावे अनुप्रेम करावें दिखलावें फिर दिखलावें—यह धर्म है यह विनय है यह शास्ता (=बुद्ध)का शासन (=उपदेश) है। इसे ग्रहण करो इसे (दूसरोंको) बतलाओ। इस प्रकार यदि अधिकरण (=मुकदमा) शांत होवे तो वह अधर्मसे सम्मुखे विनयाभाससे शांत होगा। 2

(२) अधर्मवादी व्यक्ति बहुतसे धर्मवादियोंको समझावे [1]। 3

(३) अधर्मवादी व्यक्ति धर्मवादी संघको समझावे [1]। 4

(४) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी व्यक्तिको समझावें [1]। 5

(५) बहुतसे अधर्मवादी बहुतसे धर्मवादियोंको समझावें [1]। 6

(६) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी संघको समझावें [1]। 7

(७) अधर्मवादी संघ धर्मवादी व्यक्तिको समझावें [1]। 8

---

[1] देखो ऊपर (१)।

(८) अधर्मवादी सघ बहुतसे धर्मवादियोको समझावे ०[1] । 9
(९) अधर्मवादी सघ धर्मवादी सघको समझावे ०[1] । 10

नौ कृष्णपक्ष समाप्त

ख (१) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[1] । इस प्रकार यदि अधिकरण शात होवे, तो वह धर्मसे, समुख विनयसे शात होगा । 11
(२) धर्मवादी व्यक्ति बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 12
(३) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 13
(४) बहुतसे धर्मवादी अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[2] । 14
(५) बहुतसे धर्मवादी बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 15
(६) बहुतसे अधर्मवादी अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 16
(७) धर्मवादी सघ अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[2] । 17
(८) धर्मवादी सघ बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 18
(९) धर्मवादी सघ अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 19

नौ शुक्लपक्ष समाप्त

§२—स्मृति विनय-आदि छ विनय

२—राजगृह

(१) स्मृति-विनय

क पूर्वकथा—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र ने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया था, जो कुछ (बुद्धके) श्रावक (=शिष्य)को प्राप्त करना है, सभी उन्हे मिल गया था, और कुछ करनेको न था, न कियेको मिटाना (बाकी) था ।

तब एकान्तमें स्थित हो विचार-मग्न होते समय आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके चित्तमें यह विचार उत्पन्न हुआ—मैंने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया है, जो कुछ श्रावकको प्राप्त करना है, सभी मुझे मिल गया। (अब) और कुछ करनेको नही है, न कियेको मिटाना (बाकी) है। मुझे सघकी क्या सेवा करनी चाहिये ?' तब आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको यह हुआ—'क्यो न मैं सघके शयन-आसनका प्रबध करूँ, और भोजनका नियमन (=उद्देश) करूँ ।

तब आयुष्मान् दर्भ (=दब्ब) मल्लपुत्र सायकाल एकान्त-चिन्तनसे उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर,एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! आज एकान्तमें विचार-मग्न होते समय मेरे चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'मैंने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)में अर्हत्त्व प्राप्त किया है, ०। क्यो न मैं सघके शयनासनका प्रबध करूँ ०।"

---

[1]देखो पृष्ठ ३९४ (१) । [2]देखो ऊपर (१) ।

"साधु, साधु दर्भ ! तो दर्भ ! तू संघके शयन-आसनका प्रबंध कर और भोजनका उद्देश कर।

'अच्छा भन्ते !' —(कह) आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धर्म संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ दर्भ मल्लपुत्रको संघके शयन-आसनका प्रबंधक और भोजनका नियामक (=उद्देशक) चुने। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये—पहिले दर्भ मल्लपुत्रसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

'क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने यदि संघको पसन्द हो तो संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक (प्रबंधक) और भोजनका उद्देशक चुने—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक और भोजनका उद्देशक चुन रहा है जिस आयुष्मान्‌को आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रका शयन-आसन प्रज्ञापक चुना जाना पसन्द है वह चुप रहे जिसको पसन्द नहीं है वह बोले।

(२) भन्ते ! संघ मेरी सुने ।

(३) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने ।

'ग. धा र णा—'संघने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसन प्रज्ञापक (और) भोजन उद्देशक चुन लिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।

संघ द्वारा चुन लिये जाने पर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र हिस्सा हिस्सा करके भिक्षुओंका एक एक स्थानपर शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। (१) जो भिक्षु सू त्रा न्ति क (बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेसे मिलकर सूत्रोंका संगायन करेंगे उनका शयन आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (२) जो भिक्षु वि न य ध र (=भिक्षु नियमोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ वि न य का निश्चय करेंगे उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (३) जो ध र्म क थि क (बुद्धका उपदेशोंकी कथा कहनेवाले) थे (यह सोच कर कि) वह एक दूसरेके साथ धर्म-विषयक संवाद करेंगे उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (४) जो भिक्षु ध्यानी (योगी) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके (ध्यानमें) बाधा न देंगे । (५) जो भिक्षु फजूलकी बातें करनेवाले बहुत कायिक कर्म (बल)वाले थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् रातको यहाँ रहेंगे । (६) जो भिक्षु विकाल (अपराह्ण)में आया करते थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् यह जान विकालमें आते हैं कि हम आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रकी दिव्यशक्ति (=ऋद्धिप्रातिहार्य)को देखेंगे ते जो धा तु की स मा प त्ति (एक प्रकारका ध्यान) करके उसीके प्रकाशमें उनका भी शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। वह आकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे कहते थे—'आवुस दर्भ ! हमारा भी शयन-आसन प्रज्ञापित करो । उनसे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र यह कहते थे—'कहाँ आयुष्मान् चाहते हैं कहाँ प्रज्ञापित करूँ ?' वह जानबूझ कर बतलाते थे—आवुस दर्भ ! हमारा गृ ध्र कू ट पर शयन-आसन प्रज्ञापित करो। हमारा चौ र प्र पा त पर । हमारा ऋ षि गि लि की का ल शि ला पर । हमारा वै भा र (पर्वत)के पास सा त प र्णि गु हा में । हमारा सी त व न के स र्प शौ ण्डि क प्रा ग्भा र (=सर्पशौण्डिक पब्भार) पर । गौ त म क न्द रा में । हमारा क पो त क न्द रा में । त पो दा रा म में । जी व क के आम्रवन में । म द्र कु क्षि मृ ग दा व में । आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र ते जो धा तु की स मा प त्ति में जा, अंगुलीमें आग लगी जैसे उनके आगे आगे जाते थे। वह उसी (तेजोधातुकी समापत्तिके) प्रकाशमें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके पीछे पीछे जाते थे। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनका शयन-आसन

प्रज्ञापित करते थे—'यह चारपाई (=मच) है, यह चौकी (=पीठ) है, यह तकिया (=भिसि) है, यह बिम्वोहन (=मसनद) है, यह पाखाना है, यह पेशावखाना है, यह पीनेका पानी है, यह इस्तेमाल करनेका (पानी) है, यह कत्तरदड (=डडा) है, यह सघका क ति क - स न्था न (=स्थानीय रवाज) है। अमुक समय प्रवेश करना चाहिये, अमुक समय निकलना चाहिये।' आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनके लिये शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे।

उस समय मे त्ति य और भु म्म ज क भिक्षु नये और भाग्यहीन थे। सघके जो खरावसे खराव शयन-आसन (=निवास-स्थान) थे, वह उन्हे मिलते थे, और वैसे ही खरावसे खराव भोजन भी। उस समय रा ज गृ ह के लोग सघको घी, तेल, उत्तरिभग (=भोजनके वादका खाद्य)-अभिसस्कार देना चाहते थे, (किन्तु) मे त्ति य और भुम्मजकको सदाका पका कणाजक (=वुरा अन्न)को विलगक (=विडग अनाज)के साथ देते थे। वह भोजन समाप्त करनेपर स्थविर भिक्षुओसे पूछते थे—'आवुसो! तुम्हारे भोजनमें आज क्या था? तुम्हारे क्या था?' कोई कोई स्थविर वोलते थे—'आवुसो! हमारे भोजनमे घी था, तेल था, उ त्त रि भ ग था।' मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु ऐसा कहते थे—'आवुसो! हमारे (भोजन)में जैसा-तैसा पका विलगके साथ कणाजक था।'

उस समय क ल्या ण भ क्ति क गृहपति सघको नित्य चारो प्रकारका भोजन देता था। वह भोजनके समय (स्वय) पुत्र-स्त्री सहित उपस्थित हो परोसता था—कोई भातके लिये पूछता, कोई सूप (=दाल आदि)के लिये पूछता, कोई तेलके लिये पूछता, कोई उत्तरिभगके लिये पूछता।

एक समय क ल्या ण भ त्ति क गृहपतिके (घर) दूसरे दिन के भोजनके लिये मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओका नाम था। तव कल्याणभक्तिक गृहपति किसी कामसे आराममे गया। (और) वह जहाँ आयुष्मान् दर्भ म ल्ल पुत्र थे, वहाँ जा अभिवादनकर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे कल्याण भक्तिक गृहपतिको आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। तव कल्याण-भक्तिक गृहपतिने ० प्रहर्षित हो आयुष्मान दर्भ मल्लपुत्रसे यह कहा—

"भन्ते! किसका हमारे घर कलका भोजन है?"

"गृहपति! मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओका।"

तव कल्याण-भक्तिक गृहपति असन्तुष्ट हो गया—'कैसे पापभिक्षु (=अभागे भिक्षु) हमारे घर भोजन करेंगे!' (और) घर जा (उसने) दासीको आज्ञा दी—

'रे! जो कल भोजन करेंगे, उन्हे कोठरीमें विलग सहित कणाजक परोसना।"

"अच्छा, आर्य!"—(कह) उस दासीने कल्याण-भक्तिक गृहपतिको उत्तर दिया।

तव मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु—'कल हमारा भोजन कल्याण भक्तिकके गृहपतिके घर वतलाया गया है। कल कल्याण-भक्तिक गृहपति पुत्र-भार्या सहित उपस्थित हो हमारे लिये (भोजन) परोसेगा। कोई भातके लिये पूछेंगे, कोई सूपके लिये०, कोई तेलके लिये०, (और) कोई उत्तरिभगके लिये पूछेंगे,—(सोच) इसी खुशीमें मन भरकर नही सोये।

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ कल्याण भक्तिक गृहपति-का घर था, वहाँ गये। उस दासीने मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको दूरसे ही आते देखा। देखकर उसने कोठरीमे आसन विछा मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओसे यह कहा—

"वैठिये भन्ते!"

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको यह हुआ—"नि सशय अभी भोजन तैयार न हुआ होगा, जिसके लिये हम कोठरीमें वैठाये जा रहे हैं।' तव वह दासी विलगके साथ कणाजक लाई—

"भन्ते! खाइये।"

"साधु, साधु दर्भ ! तो दर्भ ! तू संघके शयन-आसनका प्रबंध कर और भोजनका उद्देश कर।

'अच्छा भन्ते !'—(कह) आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धर्म संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ दर्भ मल्लपुत्रको संघके शयन-आसनका प्रबंधक और भोजनका नियामक (=उद्देशक) चुने। 10

'और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये—पहिले दर्भ मल्लपुत्रसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

'क. ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने यदि संघको पसन्द हो तो संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक (प्रबंधक) और भोजनका उद्देशक चुने—यह सूचना है।

'ख. अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन आसनका प्रज्ञापक और भोजनका उद्देशक चुन रहा है जिस आयुष्मान्‌को आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रका शयन-आसन-प्रज्ञापक चुना जाना पसन्द है वह चुप रहे जिसको पसन्द नहीं है वह बोले।

(२) भन्ते ! संघ मेरी सुने ।

(३) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने ।

ग. धा र णा—'संघने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसन-प्रज्ञापक (और) भोजन उद्देशक चुन लिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।

संघ द्वारा चुन लिये जाने पर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र हिस्सा हिस्सा करके भिक्षुओंका एक एक स्थानपर शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। (१) जो भिक्षु सू त्रा न्ति क (बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेसे मिलकर सूत्रोंका संगायन करेंगे उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (२) जो भिक्षु वि न य ध र (=भिक्षु नियमोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ वि न य का निश्चय करेंगे उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (३) जो ध र्म क थि क (बुद्धके उपदेशोंकी कथा कहनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ ध र्म-विषयक संवाद करेंगे उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (४) जो भिक्षु ध्यानी (योगी) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके (ध्यानमें) बाधा न देंगे । (५) जो भिक्षु फजूलकी बात करनेवाले बहुत शारीरिक कर्म (कड़)वाले थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् रातको यहीं रहेंगे । (६) जो भिक्षु विकाल (अपराह्ण)में आया करते थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् यह जान विकालमें आते हैं कि हम आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रकी दिव्यशक्ति (=ऋद्धिप्रातिहार्य)को देखेंगे ते जो धा तु की स मा प त्ति (एक प्रकारका ध्यान) करके उसीके प्रकाशमें उनका भी शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। वह जाकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे कहते थे—'आवुस द्रव्य ! हमारा भी शयन-आसन प्रज्ञापित करो। उन्हें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र यह कहते थे—'कहाँ आयुष्मान् चाहते हैं कहाँ प्रज्ञापित करूँ?' वह जानबूझ कर बतलाते थे—आवुस द्रव्य ! हमारा गृ ध्र कू ट पर शयन-आसन प्रज्ञापित करो। हमारा ची र प्र पा त पर । हमारा ऋ षि गि रि की का ल शि ला पर । हमारा वै भा र (पर्वत)के पास स प्त प र्णि गु हा में । हमारा सी त व न के स र्प शौ णि क प्रा ग्भा र (=सप्पसोण्डिक पब्भार) पर । गौ त म क न्द रा में । हमारा क पो त क न्द रा में । त पो दा रा म में । जी व क के आम्रवन में । म द्र कु क्षि मृ ग दा व में । आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र ते जो धा तु की स मा प त्ति से जाग अंगुलीमें आग जैसी जैसे उनके आगे आगे जाते थे। वह उसी (तेजो धातुकी समापत्तिके) प्रकाशमें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके पीछे पीछे जाते थे। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनका शयन-आसन

प्रज्ञापित करते थे—'यह चारपाई (=मच) है, यह चौकी (=पीठ) है, यह तकिया (=भिसि) है, यह बिम्बोहन (=मसनद) है, यह पाखाना है, यह पेशावखाना है, यह पीनेका पानी है, यह इस्तेमाल करनेका (पानी) है, यह कत्तरदड (=डडा) है, यह सघका क ति क - स न्था न (=स्थानीय रवाज) है। अमुक समय प्रवेश करना चाहिये, अमुक समय निकलना चाहिये।' आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनके लिये शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे।

उस समय मे त्ति य और भु म्म ज क भिक्षु नये और भाग्यहीन थे। सघके जो खरावसे खराव शयन-आसन (=निवास-स्थान) थे, वह उन्हें मिलते थे, और वैसे ही खरावसे खराब भोजन भी। उस समय रा ज गृ ह के लोग सघको घी, तेल, उत्तरिभग- (=भोजनके बादका खाद्य)-अभिसस्कार देना चाहते थे, (किन्तु) मे त्ति य और भुम्मजकको सदाका पका कणाजक (=बुरा अन्न)को विलगक (=विडग अनाज)के साथ देते थे। वह भोजन समाप्त करनेपर स्थविर भिक्षुओसे पूछते थे—'आवुसो! तुम्हारे भोजनमें आज क्या था? तुम्हारे क्या था?' कोई कोई स्थविर बोलते थे—'आवुसो! हमारे भोजनमे घी था, तेल था, उ त्त रि भ ग था।' मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु ऐसा कहते थे—'आवुसो! हमारे (भोजन)में जैसा-तैसा पका विलगके साथ कणाजक था।'

उस समय क ल्या ण भ क्ति क गृहपति सघको नित्य चारो प्रकारका भोजन देता था। वह भोजनके समय (स्वय) पुत्र-स्त्री सहित उपस्थित हो परोसता था—कोई भातके लिये पूछता, कोई सूप (=दाल आदि)के लिये पूछता, कोई तेलके लिये पूछता, कोई उत्तरिभगके लिये पूछता।

एक समय क ल्या ण भ क्ति क गृहपतिके (घर) दूसरे दिन के भोजनके लिये मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओका नाम था। तब कल्याणभक्तिक गृहपति किसी कामसे आराममें गया। (और) वह जहाँ आयुष्मान् दर्भ म ल्ल पुत्र थे, वहाँ जा अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कल्याण भक्तिक गृहपतिको आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। तब कल्याण-भक्तिक गृहपतिने ० प्रहर्षित हो आयुष्मान दर्भ मल्लपुत्रसे यह कहा—

"भन्ते! किसका हमारे घर कलका भोजन है?"

"गृहपति! मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओका।"

तब कल्याण-भक्तिक गृहपति असन्तुष्ट हो गया—'कैसे पापभिक्षु (=अभागे भिक्षु) हमारे घर भोजन करेंगे!' (और) घर जा (उसने) दासीको आज्ञा दी—

"रे! जो कल भोजन करेंगे, उन्हे कोठरीमें विलग सहित कणाजक परोसना।"

"अच्छा, आर्य!"—(कह) उस दासीने कल्याण-भक्तिक गृहपतिको उत्तर दिया।

तब मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु—'कल हमारा भोजन कल्याण भक्तिकके गृहपतिके घर बतलाया गया है। कल कल्याण-भक्तिक गृहपति पुत्र-भार्या सहित उपस्थित हो हमारे लिये (भोजन) परोसेगा। कोई भातके लिये पूछेंगे, कोई सूपके लिये०, कोई तेलके लिये०, (और) कोई उत्तरिभगके लिये पूछेंगे,—(सोच) इसी खुशीमें मन भरकर नही सोये।

तब मेत्तियभुम्मजक भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ कल्याण भक्तिक गृहपति-का घर था, वहाँ गये। उस दासीने मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको दूरसे ही आते देखा। देखकर उसने कोठरीमें आसन बिछा मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंसे यह कहा—

"बैठिये भन्ते!"

तब मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको यह हुआ—"निःसशय अभी भोजन तैयार न हुआ होगा, जिसके लिये हम कोठरीमें बैठाये जा रहे है।' तब वह दासी विलगके साथ कणाजक लाई—

"भन्ते! खाइये।"

"साधु, साधु दर्भ ! तो दर्भ ! तू संघके शयन-आसनका प्रबंध कर और भोजनका उद्देश कर।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धर्म संबंधी कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! संघ दर्भ मल्लपुत्रको संघके शयन-आसनका प्रबंधक और भोजनका नियामक (=उद्देशक) चुने। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये—पहिले दर्भ मल्लपुत्रसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

क. ज्ञप्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यदि संघको पसन्द हो तो संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक (=प्रबंधक) और भोजनका उद्देशक चुने—यह सूचना है।

ख. अनुश्रावण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, संघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक और भोजनका उद्देशक चुन रहा है, जिस आयुष्मान्को आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रका शयन-आसन प्रज्ञापक चुना जाना पसन्द है वह चुप रहे, जिसको पसन्द नहीं है वह बोले।

(२) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने ...।

(३) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने ...।

ग. धारणा—'संघने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसन प्रज्ञापक (और) भोजन-उद्देशक चुन लिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

संघ द्वारा चुन लिये जाने पर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र हिस्सा हिस्सा करके भिक्षुओंका एक एक स्थानपर शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। (१) जो भिक्षु सूत्रान्तिक (=बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेसे मिलकर सूत्रोंका संगायन करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (२) जो भिक्षु विनयधर (=भिक्षु नियमोंको कंठ रखनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ विनयका विनिश्चय करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (३) जो धर्मकथिक (=बुद्धके उपदेशोंकी कथा कहनेवाले) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ धर्म-विषयक संवाद करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (४) जो भिक्षु ध्यानी (=योगी) थे (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके (ध्यानमें) बाधा न देंगे ...। (५) जो भिक्षु पशुओंकी बात करनेवाले, बहुत कायिक कर्म (=बल)वाले थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् रातको नहीं रहेंगे ...। (६) जो भिक्षु विकाल (=अपराह्ण)में आया करते थे (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् यह जान विकालमें आते हैं कि हम आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रकी ऋद्धिप्राप्ति (=ऋद्धिप्रातिहार्य)को देखेंगे, तेजोधातुकी समापत्ति (=एक प्रकारका ध्यान) करके उसीके प्रकाशमें उनका भी शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। वह जाकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे कहते थे—'आवुस दर्भ ! हमारा भी शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' उनसे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र यह कहते थे—'कहाँ आयुष्मान् चाहते हैं, कहाँ प्रज्ञापित करूँ?' वह जानबूझ कर बतलाते थे—'आवुस दर्भ ! हमारा गृध्रकूट पर शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' ... 'हमारा चोरप्रपात पर ...।' 'हमारा ऋषिगिरिकी कालशिला पर ...।' 'हमारा वैभार (पर्वत)के पास सप्तपर्णि गुहा में ...।' 'हमारा शीतवनमें सर्पशौण्डिक प्राग्भार (=सप्पसोण्डिक पब्भार) पर ...।' 'गौतमकन्दरामें ...।' 'हमारा तपोदकन्दरामें ...।' 'तपोदारामम ...।' 'जीवकके आम्रवनमें ...।' 'मद्रकुक्षि मृगदावमें ...।' आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र तेजोधातुकी समापत्तिमें जाकर अंगुलीमें आग लगी जैसा उनके आगे आगे जाते थे। वह उसी (तेजोधातुकी समापत्तिके) प्रकाशमें आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके पीछे पीछे जाते थे। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनका शयन-आसन

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमें भी मैथुन-सेवन करनेको मैं नही जानता, जागतेकी वात ही क्या ?"

तव भगवान्‌ने भिक्षुओंको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! मेत्तिया भिक्षुणीको नष्ट कर दो (=भिक्षुणी-वेपसे निकाल दो), और इन भिक्षुओपर अभियोग लगाओ ।" 21

—यह कह भगवान् आसनसे उठ विहारमे चले गये ।

तव उन भिक्षुओने मेत्तिया भिक्षुणीको नाश (=निकाल) दिया । तव मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"आवुसो ! मत मेत्तिया भिक्षुणीको निकालो, उसका कोई अपराध नही है ! कुपित असन्तुष्ट हो (दर्भ भिक्षुको) च्युत करानेके अभिप्रायसे हमने इसे उत्साहित किया।"

"क्या आवुसो ! तुमने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोपको लगाया ?"

"हाँ, आवुसो ! "

जो वह भिक्षु अल्पेच्छ ० थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोपको लगायेंगे !'

तव उन भिक्षुओने भगवान्‌से यह वात कही ।

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—"तो भिक्षुओ ! सघ दर्भ मल्लपुत्रको स्मृतिकी विपुलताको प्राप्त होनेसे स्मृ ति - वि न य दे । 22

ख स्मृ ति - वि न य—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृतिविनय) देना चाहिये—द र्भ मल्लपुत्र सघके पास जा एक कधे पर उत्तरा सगकर वृद्ध भिक्षुओके चरणोमें वन्दनाकर उकळूँ वैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

" 'भन्ते ! यह मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु मुझे निर्मूल दुराचारका दोप लगा रहे है । सो मैं भन्ते ! स्मृतिकी विपुलतासे युक्त (हूँ, और) सघसे स्मृ ति वि न य माँगता हूँ । दूसरी वार भी ० । तीसरी वार भी—'भन्ते ! ० सघसे स्मृति विनय माँगता हूँ ।'

"तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क सू च ना—'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(२) दूसरी वार भी 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(३) तीसरी वार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"ग धा र णा—'सघने विपुल स्मृतिसे युक्त आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको स्मृ ति वि न य दे दिया । सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! यह पाँच धार्मिक (=नियमानुकूल) स्मृ ति वि न य के दान है—(१) भिक्षु निर्दोप शुद्ध होता है, (२) उसके अनुवाद (=वातकी पुष्टि) करनेवाले भी होते है, (३) वह (स्मृति-विनय) माँगता है, (४) उसे सघ स्मृति-विनय देता है, (और) (५) ध र्म से स म ग्र[1] हो (देता है) ।" 23

---

[1]महावग्ग ९§१।११ (पृष्ठ ३०३) ।

"भगिनी ! हम समान (=भिक्षु)के भोजनवाले हैं।

"जानती हूँ आर्य लोग समानक भोजन वाले हैं और मुझे गृहपतिने खासतौरसे आज्ञा दी है—'जे ! जो कल भोजन करेंगे उन्हें कोठरीमें बिछाकर आसन पर बैठाकर, कनीके भात और बिलंगिक-सहित परोसना।' खाइये भन्ते !"

तब मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंने—'आवुसो ! कल कल्याण-भक्तिक गृहपति आराममें दर्भ मल्लपुत्रके पास गया था। निःसंशय आवुसो ! दर्भ मल्लपुत्रने हमारे प्रति गृहपतिको भीतर दुर्भाव पैदा कर दिया' (सोच) उसी चित्त-विकारसे मन भरकर नहीं खाया।

तब मेत्तियभुम्मजक भिक्षु भोजन करनेके पश्चात् आराममें जा पात्र चीवर सँभाल बाहर आराम-कोठेमें संघाटी बिछा चुपचाप मूक कन्धा गिरा अधोमुख सोचमें पड़ प्रतिभाहीन हो बैठे। तब मेत्तिया भिक्षुणी जहाँ मेत्तियभुम्मजक भिक्षु थे वहाँ गई। जाकर मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओंसे यह बोली—

"आर्यो ! वन्दना करती हूँ।"

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु न बोले। दूसरी बार भी …। तीसरी बार भी मेत्तिया भिक्षुणीने मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंसे यह कहा—

'आर्यो ! वन्दना करती हूँ।'

तीसरी बार भी मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

'क्या मैंने आर्योंका अपराध किया ? क्या आर्य मुझसे नहीं बोल रहे हैं ?'

क्योंकि भगिनी ! दर्भ मल्लपुत्र द्वारा हमें सताये जाते देखकर भी तू पर्वाह नहीं करती।

(तो) आर्यो ! मैं क्या करूँ ?

भगिनी ! यदि तू चाहे तो आज ही भगवान् दर्भ मल्लपुत्रको नष्टकर देंगे (=भिक्षु संघसे निकाल देंगे)।

"आर्यो ! मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर सकती हूँ।

"आ भगिनी ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान्से यह कह—

'भन्ते ! यह योग्य नहीं है उचित नहीं है। भन्ते ! जो दिशा पहिले ईति रहित (=उपद्रवरहित) भय रहित निरुपद्रव थी वह दिशा (आज) सहसा ईति-सहित भय-सहित उपद्रव-सहित (हो गई) जहाँ वायु न चलती थी वहाँ आँधी (=प्रवात) (आ गई)। पानी जलता सा मालूम पड़ता है। आर्य दर्भ मल्लपुत्रने मुझे दूषित किया है'।

अच्छा आर्यो ! —(कह) मेत्तिया भिक्षुणी जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी हो भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! यह योग्य नहीं है …।"

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें भिक्षु-संघको एकत्रितकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे पूछा—

"दर्भ ! इस तरहका काम करना तुझे याद है जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है ?"

भन्ते ! भगवान् जैसा मुझे जानते हैं।

दूसरी बार भी भगवान्‌ने पूछा— ।

तीसरी बार भी भगवान्‌ने पूछा—

दर्भ ! इस तरहका काम करना तुझे याद है जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है ?

"भन्ते ! भगवान् जैसा मुझे जानते हैं।

"दर्भ ! दर्भ (तुम) ऐसे नहीं खण्डन करते। यदि तूने किया हो तो 'किया' कह, यदि तूने नहीं किया हो तो 'नहीं किया' कह।

किया। तुम भी वैसा करो। मुझे भी यह विहित है, तुम्हे भी यह विहित है।' उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो वह ० दान अधार्मिक है। यह तीन अमूढ-विनयके दान अधार्मिक है। 25

(ग) नियमानुकूल अमूढ-विनय (१) भिक्षुओ ! कौनसे अमूढ-विनयके दान धार्मिक हैं?—"(१) यहाँ भिक्षुओ ! एक भिक्षु पागल० होता है। पागल हो० उसने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचरण किये होते है। उसे सघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की?' वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'आवुसो मुझे याद नही है, कि मैंने इस प्रकारकी आपत्ति की'। उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो यह अमूढ-विनय का दान धार्मिक है। (२) ० वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'याद है मुझे आवुसो ! जैसे कि स्वप्नके बाद। उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो यह दान ० धार्मिक है। (३) ० वह (कहे)—'पागल पागलपनके समय जो करता है, वही मैंने किया, तुम भी वैसा करते। मुझे भी वह विहित था, तुम्हे भी वह विहित है।' उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे तो यह अमूढ-विनयका दान धार्मिक है।—यह तीन अमूढ-विनयके दान धार्मिक हैं।" 26

(३) प्रतिज्ञातकरण

(क) पूर्व कथा—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना प्रतिज्ञात (=स्वीकृति) कराये भिक्षुओके तर्जनीय, नियस्स, प्रव्राजनीय, प्रतिसारणीय, उत्क्षेपणीय —कर्म (=दड) भी करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे—०। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

०फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! विना प्रतिज्ञात कराये भिक्षुओके तर्जनीय० उत्क्षेपणीय-कर्म नही करने चाहिये, जो करे उसे दुक्कटकी आपत्ति हो।" 27

"भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है, और इस प्रकार धार्मिक।

(ख) नियम विरुद्ध प्रतिज्ञातकरण—"कैसे भिक्षुओ ! प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है?—(क) (१) एक भिक्षुने पाराजिक अपराध किया होता है, उसे सघ, बहुतसे या एक व्यक्ति चोदित करते है—'आयुष्मान्ने पाराजिक अपराध किया है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मैंने पाराजिक अपराध नही किया सघादिसेसका अपराध किया है।' उसे (यदि) सघादिसेसका (दड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है। 28

(२) "० सघादिसेस किया है०[१]। 29

(३) "० थुल्लच्चय किया है ०। 30

(४) "० पाचित्तिय किया है'०। 31

(५) "० प्रतिदेशनीय किया है'०। 32

(६) "० दुष्कृत (=दुक्कट) किया है'०। 33

(७) "० दुर्भाषित किया है'०। 34

---

[१] पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है। सम्मति उस समय रगीन लकळीकी शलाकाओंमें ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाका-ग्राहापक कहते थे।

(२) अमूढ़ विनय

क—पूर्व कथा—उस समय गर्ग भिक्षु पागल हो गया था, वह विपर्यस्त (=विक्षिप्त) चित्त हो गया था। उसने पागल चित्त विपर्यस्त हो बहुतसा श्रमणोके आचरणके विरुद्ध भाषित परिकान्त (=कुमती बात) काम किया। भिक्षु (लोग) पागल हो किये गये बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कामोके लिये गर्ग भिक्षुपर दोषारोपण कर प्रेरित करते थे— याद करो आयुष्मान् इस प्रकारकी आपत्तिकी।

वह ऐसा बोलता— आवुसो! मै पागल हो गया था पागल हो मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध काम किये। मुझे वह याद नही मैंने मूढ (=होशमे न हो) वह (काम) किये।

ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद करो'। (तब) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे— उन्होने भगवान्से यह बात कही।—

'सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओको संबोधित किया—

'तो भिक्षुओ! संघ अमूढ (=पागलपनसे छूटा) होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढविनय दे। 24

'और भिक्षुओ! ऐसे देना चाहिये—

'याचना—वह गर्ग भिक्षु संघके पास जा —'मैंने भन्ते! पागल हो बहुत सा श्रमण-विरुद्ध काम किया। मुझे भिक्षु चोदित करते है—याद करो। मै ऐसा बोलता हूँ—'आवुसो! मै पागल हो गया था' कहनेपर भी चोदित करते ही है—'याद करो'। सो मैं भन्ते! अमूढ हूँ संघसे अमूढ-विनय माँगता हूँ।

दूसरी बार भी— माँगता हूँ।

'तीसरी बार भी— माँगता हूँ।

'तब चतुर समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

'ख ज्ञप्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने—०।

(१) दूसरी बार भी 'भन्ते! संघ मेरी सुने— ।

"ग (२) 'भन्ते! संघ मेरी सुने—०।

(३) 'तीसरी बार भी पूज्यसंघ मेरी सुने— ।

घ धारणा—'संघने अमूढ होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढ-विनय दे दिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

"भिक्षुओ! तीन अमूढ-विनयके दान-अधार्मिक है और यह तीन धार्मिक।

"भिक्षुओ! कौनसे तीन अमूढ-विनयके दान अधार्मिक है ?—

'क नियम-विरुद्ध अमूढ-विनय। (१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुने आपत्ति की होती है। उसे संघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की।' वह याद होनेपर भी यह कहे 'आवुसो! मुझे याद नही है कि मैंने इस प्रकार की आपत्तिकी'। उसे संघ यदि अमूढ-विनय दे तो यह अमूढ-विनयका दान अधार्मिक है। (२) वह याद होनेपर भी यह कहे—'याद है मुझे आवुसो! जैसेकि स्वप्नकी बात (स्वप्न देखनेवालेको स्वप्नकी बात याद आती है)। उसे संघ (यदि) अमूढ-विनय दे तो यह दान अधार्मिक है। (३) वह यह बोले—'बिना पागलपनका (आदमी) पागलपनसे समान जो करता है मैंने भी वैसा

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे, तो सघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, सघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला-का ग्र हा प क चुन रहा है, जिस आयुष्मानूको अमुक नामवाले भिक्षुके लिये शलाकाग्रहापक होनेकी सम्मति पसद है, वह चुप रहे, जिसे पसद न हो वह बोले।

"(२) दूसरी बार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने०।'

"(३) 'तीसरी बार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने०।'

"ग धा र णा—'सघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाकाग्रहापक चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

३—"भिक्षुओ ! दस अधार्मिक श ला का ग्र ह ण (=वोट देना) है, दस धार्मिक।"

(ख) न्या य वि रु द्ध स म्म ति दा ता—"कैसे दस अधार्मिक शलाकाग्राह है?—(१)अवेर-मत्तक अधिकरण(=झगळा) होता है, (२) नही गतिमें गया होता है, (३) और नही याद कराया करवाया होता है, (४) जानता है कि अधर्मवादी वहुतर (=अधिक सख्या वहुमत) है, (५) शायद अधर्मवादी वहुतर हो, (६) जानता है, सघ फूट जायेगा, (७) शायद सघ फूट जाये, (८) अ ध र्म[1]से (शलाका) ग्रहण करते हैं, (९) व र्ग[1]मे ग्रहण करते है, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार (शलाका) ग्रहण करते हैं। यह दस अधार्मिक शलाकाग्राह है। 86

(ग) न्या या नु सा र स म्म ति दा न—"कौनसे दस धार्मिक शलाकाग्राह है?—(१) अधिकरण अ वे र म त्त क नही होता, (२) गतिमें गया होता राहसे है, (३) याद करा कर-वाया होता है, (४) जानता है, कि धर्मवादी वहुत हैं, (५) शायद धर्मवादी वहुत हैं, (६) जानता है, सघ नही फूटेगा, (७) शायद सघ नही फूटेगा, (८) ध र्म से (शलाका) ग्रहण करते है, (९) स म ग्र[1] हो (शलाका) ग्रहण करते हैं, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार ग्रहण करते है।—यह दस धार्मिक शलाकाग्राह हैं। 87

(५) तत्पापीयसिक

(क) पू र्व क था—उस समय उ वा ळ भिक्षु सघके बीच आपत्तिके विषयमें जिरह (=उद्योग) करनेपर इन्कारकर स्वीकार करता था, स्वीकार करके इन्कार करता था। दूसरे (प्रकरण) में दूसरी (वात) चला देता था। जानबूझकर झूठ वोलता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे,०। उन्होने भगवान्से यह बात कही।०—

"तो भिक्षुओ ! सघ उ वा ळ भिक्षुका त त्पा पी य सि क कर्म (=दड) करे। 88

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये—पहिले उबाळ भिक्षुको चोदित करना चाहिये, चोदितकर स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्ति आरोप-कर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]।

ग धा र णा—"सघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(ख) नि य मा नु सा र—"भिक्षुओ ! तत्पापीयसिक कर्मका करना इन पाँच (प्रकार)

---

[1] देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

[2] सूचना, तीन अनुश्रावण चुल्ल ४§२१४ (ख) ऊपर जैसा।

२—(१) 'एक भिक्षुने स घा दि से स अपराध किया होता है उसे सघ चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने सघादिसेसका अपराध किया है ? वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मैंने पाराजिक अपराध किया है। उसे (यदि) सघ पाराजिकका (दड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है। '।41

३—(१) थुल्लच्चयका अपराध किया है '। 48

४—(१) पाचित्तिय '। 55

५—(१) प्रतिदेसनीय '। 62

६—(१) दुक्कट '। 69

७—(१) दुर्भाषित '। 76

"—भिक्षुओ ! इस प्रकार अधार्मिक प्रतिज्ञातकरण होता है।"

(ग) धि य मा नु सा र प्र ति ज्ञा त क र ण—कैसे भिक्षुओ ! प्र ति ज्ञा त क र ण धार्मिक होता है ?—

(क) (१) "एक भिक्षु पाराजिक अपराध किया होता है उसे सघ चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने पाराजिक अपराध किया है ? वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! मैंने पाराजिक अपराध किया है। उसे (यदि) सघ पाराजिकका (दड) करे तो यह प्रतिज्ञातकरण धार्मिक है। 77

(२) सघादिसेस । 78

(३) थुल्लच्चय० । 79

(४) पाचित्तिय । 80

(५) प्रतिदेसनीय । 81

(६) दुक्कट । 82

(७) " दुर्भाषित । 83

—भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण धार्मिक होता है।

(४) यद्भूयसिक

उस समय भिक्षु सघके बीच भडन-कलह विवाद करते एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे पीडित कर रहे थे। उस अधिकरण (झगडे)को शान्त न कर सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे अधिकरणको य द्‌ भू य सि का (बहुमत)से शान्त करने की।" 84

(क) श ला का ग्र हा प क की यो ग्य ता और चु ना व— 'भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको श ला का ग्र हा प क[1] चुनना (=सम्मनन-मिलकर राय देना) चाहिये—(१) जो न छ न्द (=स्वेच्छाचार)के रास्ते जानेवाला होता है (२) न द्वेष (३) न मोह (४) न भय (५) जो गृहीत-अगृहीत (=लिये-बेलिये)को जानता है। 85

"भिक्षुओ ! इस प्रकार स म्म न न (=चुनाव) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

---

[1]पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है। सम्मति उस समय रंगीन लकडीकी शलाकाओंसे ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्राहापक कहते थे।

देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, यदि संघ उचित समझे, तो संघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, संघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला- का ग्र हा प क चुन रहा है, जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामवाले भिक्षुके लिये शलाकाग्रहापक होनेकी सम्मति पसंद है, वह चुप रहे, जिसे पसंद न हो वह बोले।

"(२) दूसरी बार भी, 'भन्ते ! संघ मेरी सुने०।'

"(३) 'तीसरी बार भी, 'भन्ते ! संघ मेरी सुने०।'

"ग धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाकाग्रहापक चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

३—"भिक्षुओ ! दस अधार्मिक श ला का ग्र ह ण (=वोट देना) है, दस धार्मिक।"

(ख) न्या य वि रु द्ध स म्म ति दा ता—"कैसे दस अधार्मिक शलाकाग्राह है?—(१)अवेर- मत्तक अधिकरण (=झगळा) होता है, (२) नही गतिमे गया होता है, (३) और नही याद कराया करवाया होता है, (४) जानता है कि अधर्मवादी बहुतर (=अधिक संख्या बहुमत) हैं, (५) शायद अधर्मवादी बहुतर हो, (६) जानता है, संघ फूट जायेगा, (७) शायद संघ फूट जाये, (८) अ ध र्म[1]से (शलाका) ग्रहण करते है, (९) व र्ग[1]से ग्रहण करते है, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार (शलाका) ग्रहण करते है। यह दस अधार्मिक शलाकाग्राह हैं। 86

(ग) न्या या नु सा र स म्म ति दा न—"कौनसे दस धार्मिक शलाकाग्राह है?—(१) अधिकरण अ वे र म त्त क नही होता, (२) गतिमे गया होता राहसे है, (३) याद करा कर- वाया होता है, (४) जानता है, कि धर्मवादी बहुत हैं, (५) शायद धर्मवादी बहुत हैं, (६) जानता है, संघ नही फूटेगा, (७) शायद संघ नही फूटेगा, (८) ध र्म से (शलाका) ग्रहण करते हैं, (९) स म ग्र[1] हो (शलाका) ग्रहण करते हैं, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार ग्रहण करते हैं।—यह दस धार्मिक शलाकाग्राह हैं। 87

(५) तत्पापीयसिक

(क) पू र्व क था—उस समय उ वा ळ भिक्षु संघके बीच आपत्तिके विषयमें जिरह (= उद्योग) करनेपर इन्कारकर स्वीकार करता था, स्वीकार करके इन्कार करता था। दूसरे (प्रकरण) में दूसरी (बात) चला देता था। जानबूझकर झूठ बोलता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे,०। उन्होंने भगवान्‌से यह बात कही।०—

"तो भिक्षुओ ! संघ उ वा ळ भिक्षुका त त्पा पी य सि क कर्म (=दंड) करे। 88

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये—पहिले उवाळ भिक्षुको चोदित करना चाहिये, चोदितकर स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्ति आरोप- कर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[2]।

ग धा र णा—"संघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(ख) नि य मा नु सा र—"भिक्षुओ ! तत्पापीयसिक कर्मका करना इन पांच (प्रकार)

---

[1] देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

[2] सूचना, तीन अनुश्रावण चुल्ल ४§२१४ (ख) ऊपर जैसा।

से धार्मिक होता है—(१) (दोषी व्यक्ति) अशुचि होता है (२) लज्जाहीन होता है (३) अनुवाद (=निन्दा)-सहित होता है (४) उस व्यक्तिका तत्पापीयसिक कर्म संघ धर्मसे करता है (५) समग्र हो करता है। ।89

(ग) नियम विरुद्ध—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म अधर्म कर्म अविनय कर्म ठीकसे न सम्पादित किया (कहा जाता) है—(१) अनुपस्थितिमें (=अ-सम्मुख) किया गया होता है बिना पूछे किया गया होता है प्रतिज्ञा कराये बिना किया गया होता है (२) अधर्मसे किया गया होता है (और) (३) वर्ग[1]से किया गया होता है। [1]।90

(घ) नियमानुसार— भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म विनय कर्म (कहा जाता) है—(१) उपस्थितिमें (२) पूछकर (३) प्रतिज्ञा करा। [1]।91

(ङ) नियम-विरुद्ध— 'भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म विनय कर्म और सुसम्पादित (कहा जाता) है—

१—(१) सामने किया गया होता है (२) पूछताछकर किया गया होता है (३) प्रतिज्ञात कराकर किया गया होता है। [1]।92

(च) दण्डनीय व्यक्ति— 'भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकांक्षमान) संघ तत्पापीयसिक कर्म करे। [1]। 93

ख आकांक्षमान समाप्त

(छ) दण्डितव्यक्तिके कर्तव्य— 'भिक्षुओ! जिस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया गया है उसे ठीकसे बर्ताव करना चाहिये और वह ठीक बर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये [2] (१८) भिक्षुओंके साथ सम्मिश्रण नहीं करना चाहिये। 94

अट्ठारह तत्पापीयसिक कर्मके व्रत समाप्त

तब संघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया।

(६) तिणवत्थारक

उस समय भंडन कलह विवाद करते भिक्षुओंने बहुतसे श्रमण-विरोधी भासित परिकान्त (=कड़ी चुभती बात) अपराध किये थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'भंडन करते हमने बहुतसे श्रमण विरोधी अपराध किये हैं। यदि हम इन आपत्तियोंको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें तो शायद यह अधिकरण (=झगड़ा) और भी कठोरता अवस्थाको प्राप्त हो और फूटका कारण बन जाये। (अब) हमें कैसे करना चाहिये ?

भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! विवाद करते भिक्षुओंने बहुतसे श्रमण-विरोधी अपराध किये हैं और यदि वहाँ भिक्षुओंको यह हो—यदि हम इन आपत्तियोंको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें तो शायद

---

[1]देखो महावग्ग §१ पृष्ठ २९८।
[2]तर्जनीय-कर्म महावग्ग १§१।१ (पृष्ठ ३११)की भाँति विस्तार करना चाहिये।
[3]देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२। [4]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३।
[5]देखो चुल्ल १§१।४ ६ पृष्ठ ३४३–४। [6]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४।

यह ० और भी० फूटका कारण बन जाये, तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसे अ धि क र ण को ति ण-व त्था र क (=तृणसे ढाँकने जैसा) से शान्त करनेकी। 95

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (तिणवत्थारकसे) शान्त करना चाहिये—सबको एक जगह जमा होना चाहिये, जमा हो चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमणविरोधी० अपराध किये हैं,० एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद यह० और भी० फूटका कारण बन जाये। यदि संघको पसंद हो, तो थु ल्ल च्च य और गृहस्थसे संबद्ध (अपराधों)को छोळ, संघ इस अधिकरणको तिणवत्थारकसे शान्त करे।'

"(फिर) एक पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने संघको सूचित करे—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, हमने०। यदि संघको पसंद हो, जो (आप) आयुष्मानोंके अपराध (=आपत्ति) हैं, और जो मेरे अपराध हैं, थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्धको छोळ, आयुष्मानोंके लिये और अपने लिये भी संघके बीच ति ण व त्था र क से उनकी दे श ना (=confession) करूँ।'

"फिर दूसरे पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने संघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०संघके बीच तिणवत्थारकसे उनकी दे श ना करूँ।'

क ज्ञ प्ति—"एक (पहिले) पक्षवालोंमेंसे चतुर समर्थ भिक्षु (सारे) संघको सूचित करे—

"भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमण-विरोधी० अपराध किये हैं०। यदि संघको पसंद हो, तो थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध (अपराधों)को छोड, जो इन आयुष्मानोंके अपराध हैं, और जो मेरे अपराध हैं, इन आयुष्मानोंके लिये और अपने लिये भी संघके बीच उनकी ति ण-व त्था र क से दे श ना करूँ—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! संघ मेरी सुने, ०। थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध अपराधोंको छोड, जो इन आयुष्मानोंके अपराध हैं और जो मेरे अपराध हैं,० संघके बीच ति ण व त्था-र क से उनकी देशना कर रहा हूँ। जिस आयुष्मान्‌को, हमारा० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणव-त्थारक देशना पसंद है, वह चुप रहे जिसको पसंद न हो वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"तब दूसरे पक्षवाले भिक्षुओंमेंसे एक चतुर समर्थ भिक्षु (सारे) संघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! संघ मेरी सुने—०[1]

"ग धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोंकी संघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! इस प्रकार वह भिक्षु, थुल्लच्चय और गृहस्थसे संबद्ध आपत्तियोंको छोड, उन आपत्तियोंसे छूटते हैं।"

§२—चार अधिकरण, उनके मूल, भेद, नाम-करण और शमन

उस समय भी भिक्षु भिक्षुणियोंके साथ विवाद करते थे, भिक्षुणियाँ भी भिक्षुओंके साथ विवाद

---

[1] पहिले पक्षकी भाँति ही यहाँ भी सूचना (=ज्ञप्ति) और अनुश्रावण समझना चाहिए।

करती थी। छः भिक्षु भिक्षुणियोंकी ओर हो भिक्षुणियोंके साथ विवाद करता भिक्षुणियोंका पक्ष ग्रहण करता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—०।

'सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

(१) अधिकरणोंके भेद

"भिक्षुओ! यह चार अधिकरण हैं—(क) विवाद-अधिकरण (ख) अनुवाद-अधिकरण (ग) आपत्ति-अधिकरण (घ) कृत्य-अधिकरण।96

(क) विवाद-अधिकरण—"क्या है विवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु यह धर्म है या अधर्म है। 'यह विनय है या अविनय।' 'यह तथागतका कथित=भाषित है तथागतका कथित=भाषित नहीं है' 'तथागतने ऐसा आचरण किया है आचरण नहीं किया' 'तथागतने विधान किया है तथागतने विधान नहीं किया है' 'आपत्ति (=अपराध) है आपत्ति नहीं है' 'लघुक (=छोटी) आपत्ति है गुरुक (बड़ी) आपत्ति है' 'सावशेष (=कुछ ही) आपत्ति है निरवशेष (=संपूर्ण) आपत्ति है' *दुट्ठुल्ल (=दुष्पोल्य पाराजिक संघादिसेस) आपत्ति है अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'*—यहाँ जो कलह-विग्रह-विवाद नानावाद (=विरुद्धवाद) अन्यथावाद (=उल्टावाद) नाराजगीका व्यवहार, मेधक (कलहभाषी) है यह कहा जाता है विवाद-अधिकरण।97

(ख) अनुवाद अधिकरण—'क्या है अनुवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको शीलभ्रष्ट होने आचारभ्रष्ट होने दृष्टि (=सिद्धान्त)-भ्रष्ट होने बुरी आजीव (रोजी)वाला होनेकी अनुवाद (=दोषारोपण) करते हैं यहाँ जो अनुवाद—अनुवदन—अनुल्लपन—अनुभणन अनुसंप्रवंकता[1]—अभ्युत्साहनता[2] अनुबलप्रदान[3] होता है यह कहा जाता है अनुवाद अधिकरण। 98

(ग) आपत्ति अधिकरण—'क्या कहा जाता है, आपत्ति-अधिकरण?—पाँचों आपत्ति-स्कंध (=दोषोंके समवाय)) आपत्ति अधिकरण है, सातों आपत्ति-स्कंध आपत्ति-अधिकरण है।99

(घ) कृत्य-अधिकरण—"क्या है आपत्ति-अधिकरण?—जो संघके कृत्य=करणीय अवलोकनकर्म ज्ञप्ति-कर्म ज्ञप्ति-द्वितीय कर्म[4] ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म[5] है यह कहा जाता है कृत्य अधिकरण। 100

(२) अधिकरणोंके मूल

क. विवाद-अधिकरणोंके मूल—"विवाद-अधिकरणका क्या मूल है? (क) छ

[1]*साथ बकना जिससे उसीमें लगा रहना।*

दोषारोपणमें उत्साह।

[3]पहिली बातको कारण बता पिछली बातके लिये बल देना।

संघकी सम्मति लिये बिना प्रस्तावकी सूचनाको ज्ञप्ति कहते हैं।

[4]किसी असाधारण परिस्थितिमें एक ज्ञप्ति और एक अनुश्रावणके बादही संघकी सम्मति लेली जाती है उसे ज्ञप्ति-द्वितीयकर्म कहते हैं।

साधारण परिस्थितिमें पहिले एक ज्ञप्ति फिर तीन अनुश्रावण करके संघकी सम्मति ली जाती है, इसे ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म कहते हैं।

विवाद करनेके मूल भी है, (ख) (लोभ-द्वेष-मोह=) तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल है, (ग) (=अलोभ-अद्वेष-अमोह)—तीन कुशल-मूल (=भलाइयोंकी जळ) भी विवाद-अधिकरणके मूल है। 101

(क) "कौनसे छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल हैं?—(१) जब भिक्षुओ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु क्रोधी, उपनाही होता है, (उससे) वह शास्ता (=बुद्ध)में श्रद्धा-सत्कार-रहित हो विहरता है, धर्ममे भी०, सघमे भी०। शिक्षा (=भिक्षुओके नियम)को भी पूर्ण करनेवाला नही होता। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु शास्तामें श्रद्धा-सत्कार रहित हो विहरता है० शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नही होता, वह सघमें विवाद उत्पन्न करता है। और वह विवाद बहुत लोगोके अहित, असुखके लिये होता है, बहुतसे लोगोके अनर्थके लिये (होता है), देव-मनुष्योके अहित और दु खके लिये होता है। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके विवाद-मूलको तुम अपने भीतर या बाहर देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके प्रहाण (=विनाश, त्याग) के लिये उद्योग करना। यदि भिक्षुओ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपने भीतर या बाहर न देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके भविष्यमें न उत्पन्न होने देनेके लिये प्रयत्न करना। इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका विनाश होता है, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका भविष्यमे न उत्पन्न होना होता है। जब भिक्षुओ! भिक्षु (२) म्रक्षी (=अमरखी), पलासी (=प्रदासी—निष्ठुर) होता है,०। ०(३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है,०। ०(४) शठ, मायावी होता है,०। (५) ०पापेच्छ (=बदनीयत), मिथ्यादृष्टि (=बुरी धारणावाला) होता है०। ०(६) सदृष्टि-परामर्शी (=वर्तमानका देखनेवाला), आधान-ग्राही (=डाह रखनेवाला), छोळनेमे मुश्किल करनेवाला होता है। जो भिक्षुओ! भिक्षु सदृष्टिपरामर्शी० होता है, वह शास्तामे भी श्रद्धा सत्कार रहित होता है०।' यह छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल है। 102

(ख) "कौनसे तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोंकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल है? जब भिक्षु लोभ-युक्त चित्तसे विवाद करते हैं, द्वेष-युक्त चित्तसे०, मोह-युक्त चित्तसे विवाद करते हैं—'धर्म है या अधर्म'०[1] अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'। यह तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल है। 101

(ग) कौन से तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल है?—"जब भिक्षु लोभरहित चित्तवाले हो विवाद करते है, द्वेपरहित०, मोहरहित० चित्तवाले हो विवाद करते हैं—'धर्म है या अधर्म',०। यह तीन कुशल-विवाद-अधिकरणके मूल हैं। 103

ख अनुवाद-अधिकरणके मूल—क "अनुवाद-अधिकरणका क्या मूल है?—(क) छ अनुवाद करनेके मूल भी हैं, (ख) तीनो अकुशल-मूल (=लोभ, द्वेष, मोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं, (ग) तीनो कुशल-मूल (=अलोभ, अद्वेप, अमोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं, (घ) काया भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है, (ङ) वचन भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 104

(क) "कौनसे अनुवाद-मूल अनुवाद-अधिकरण-मूल हैं?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (१) क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है०[1] शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नही होता। वह सघमें अनुवाद उत्पन्न करता है। और वह अनुवाद बहुत लोगोके अहित, असुखके लिये होता है।०[1] (६) सदृष्टि-परामर्श, आधानग्राही (=हठी) होता है०[1]। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके अनुवादमूल-को तुम अपने भीतर या बाहर देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी अनुवाद-मूलके प्रहाणके लिये उद्योग

---

[1]सम्मति उस समय रगीन लकळीकी शलाकाओंसे ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्रहापक कहते थे।

करती थी। छ प भिक्षु भिक्षुणियोंकी ओर हो भिक्षुणियोंके साथ विवाद करता भिक्षुणियोंका पक्ष ग्रहण करता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—०।

"सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

(१) अधिकरणोंके भेद

'भिक्षुओ! यह चार अधिकरण हैं—(क) विवाद-अधिकरण (ख) अनुवाद-अधिकरण (ग) आपत्ति-अधिकरण (घ) कृत्य-अधिकरण। 96

(क) वि वा द-अ धि क र ण— 'क्या है विवाद-अधिकरण ?—जब भिक्षुओ! भिक्षु यह धर्म है या अधर्म है। 'यह विनय है या अविनय। 'यह तथागतका कथित=भाषित है तथागतका कथित=भाषित नहीं है' 'तथागतने ऐसा आचरण किया है आचरण नहीं किया' 'तथागतने विधान किया है तथागतने विधान नहीं किया है' 'आपत्ति (=अपराध) है आपत्ति नहीं है' 'लघुक (=छोटी) आपत्ति है गुरुक (बड़ी) आपत्ति है' 'सावशेष (=कुछ ही) आपत्ति है निरवशेष (=संपूर्ण) आपत्ति है' दुट्ठुल्ल (=दु स्थौल्य पाराजिक संघादिसेस) आपत्ति है अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'—वहाँ जो कलह= कलह विग्रह–विवाद नानावाद (=विरुद्धवाद) अन्यथावाद (=उल्टावाद) नाराजगीका व्यवहार, मेधक (कटुभाषी) है यह कहा जाता है वि वा द-अ धि क र ण। 97

(ख) अ नु वा द अ धि क र ण— 'क्या है अनुवाद-अधिकरण ?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको शीलभ्रष्ट होने आचारभ्रष्ट होने दृष्टि (=सिद्धान्त)-भ्रष्ट होने बुरी आजीव (रोजी) वाला होनेको अनुवाद (=दोषारोपण) करते हैं वहाँ जो अनुवाद=अनुवदन=अनुल्लपन=अनुभणन अनुसंप्रवंकन[1] =अभ्युत्सहनता[1] अनुबलप्रदान[1] होता है यह कहा जाता है अ नु वा द अ धि क र ण। 98

(ग) आ प त्ति अ धि क र ण—"क्या कहा जाता है आपत्ति-अधिकरण ?—पाँचों आपत्ति-स्कंध (=दोषोंके समुदाय)) आपत्ति अधिकरण हैं सातों आपत्ति-स्कंध आ प त्ति-अ धि-क र ण है। 99

(घ) कृ त्य-अ धि क र ण—"क्या है आपत्ति-अधिकरण ?—जो संघके कृत्य=करणीय अवलोकनकर्म ज्ञ प्ति-कर्म[2] ज्ञ प्ति-द्वि ती य क र्म[3] ज्ञ प्ति-च तु र्थ क र्म[4] है यह कहा जाता है कृ त्य अ धि क र ण। 100

(२) अधिकरणोंके मूल

क वि वा द-अ धि क र णों के मूल—"विवाद-अधिकरणका क्या मूल है ? (क) छ

[1]काय वचन चित्तसे उसीमें युक्त रहना।
दोषारोपणमें उत्साह।

[2]पहिली बातको प्रारम्भ बता पिछली बातसे लिये बल देना।
संघकी सम्मति लेते वक्त प्रस्तावकी सूचनाको ज्ञप्ति कहते हैं।

[3]किसी असाधारण परिस्थितिमें एक ज्ञप्ति और एक अनुश्रावणके बाद ही संघकी सम्मति लेली जाती है, उसे ज्ञप्ति-द्वितीयकर्म कहते हैं।

[4]साधारण परिस्थितिमें पहिले एक ज्ञप्ति फिर तीन अनुश्रावण करके संघकी सम्मति ली जाती है, इसे ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म कहते हैं।

"(१) ०?—जब० अच्छे चित्तसे शील भ्रष्ट होने० का अनुवाद करते है। (२) ० बुरे चित्तसे०[1]। (३)० न अच्छे-न बुरे चित्तसे०। 113

(ग) आपत्ति-अधिकरणके भेद—"(क्या) आपत्ति-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—आपत्ति-अधिकरण (१) अकुशल भी हो सकता है, (२) अव्याकृत भी०, किन्तु० कुशल नही हो सकता।

"(१) कौनसा० अकुशल है?—जो जान, समझ,सोच, निश्चय करके वीतिक्कम (=व्यतिक्रम) है, यह कहा जाता है अकुशल आपत्ति-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अव्याकृत है?—जो विना जाने विना समझे, विना सोचे, बिना निश्चय किये व्यति-क्रम है, यह कहा जाता है अव्याकृत आपत्ति-अधिकरण। 114

(घ) कृत्य-अधिकरण—"(क्या) कृत्य-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—कृत्य-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल०, (३) अव्याकृत०।

"(१) कौनसा० कुशल है? सघ कुशल (=अच्छे) चित्तसे जो कर्म=अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म करता है, यह कहा जाता है कुशल कृत्य-अधिकरण।

"(२)०?—सघ अकुशल चित्तसे जो कर्म० करता है,०।

"(३)०?—सघ अव्याकृत चित्तसे जो कर्म० करता है,०।" 115

(४) विवाद आदि और उनका अधिकरणसे सबंध

(क)—विवाद और अधिकरण—"(क्या) विवाद विवाद-अधिकरण, विवाद बिना अधि-करण, अधिकरण विना विवाद, और अधिकरण और विवाद (दोनो) (होते है?)—(१) विवाद विवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) विवाद बिना अधिकरणके हो सकता है, (३) अधिकरण बिना विवादके हो सकता है, (४) अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१) कौनसा विवाद विवाद-अधिकरण होता है? —जब भिक्षु विवाद करते हैं—'धर्म है०[2]। वहाँ जो भडन-कलह ०[3] है, यह विवाद विवाद-अधिकरण है। 116

"(२) कौनसा विवाद विना अधिकरणका है?—माताभी पुत्रके साथ विवाद करती है, पुत्र भी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी वहिनके साथ०, वहिन भी भाईके साथ०, मित्रभी मित्रके साथ०। यह विवाद बिना अधिकरणके है। 117

"(३) कौनसा अधिकरण विना विवादका है? अनुवाद-अधिकरण, आपत्ति-अधिकरण और कृत्य-अधिकरण यह अधिकरण विना विवादके है। 118

"(१) कौनसे अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते हैं?—विवाद-अधिकरणमें अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते हैं। 119

(ख)—अनुवाद और अधिकरण—"०?—(१) अनुवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) अनुवाद विना अधिकरण०, (३) अधिकरण विना अनुवाद०, (४) अधिकरण और अनुवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते है।

"(१) कौनसा अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है?—जब भिक्षु (दूसरे) भिक्षुका शील भ्रष्ट ०

---

[1] देखो चुल्ल ४§३।२ पृष्ठ ४०६-७। [2] देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४०६।
[3] देखो ऊपर (विवाद-मूल ख जैसा)।

करता।[1]। भिक्षुओ ! यह छ अनुवाद-मूल अनुवाद-अधिकरणके मूल है। 105

(ख) 'कौनसे तीन अकुशल-मूल अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं ?जब लोभयुक्त चित्तसे द्वेषयुक्त चित्तसे मोहयुक्त चित्तसे अनुवाद करते है—'धर्म' या अधर्म' । 106

(ग) 'कौनसे तीन कुशल-मूल अनुवाद अधिकरणके मूल है ?जब भिक्षु लोभ-रहित चित्त हो अनुवाद करते हैं द्वेषरहित मोह रहित । 107

(घ) *'कौनसा काय अनुवाद अधिकरण का मूल है ?—जब कोई (व्यक्ति) कुरूप दुर्वर्ण—ओकोटिमक (=नाटा) बहुरोगी काना लूला लगड़ा पक्षाघात (=लकवे) वाला होता है और उसे लेकर (दूसरे) उसका अनुवाद करते हैं ऐसी काया अनुवाद-अधिकरणका मूल होती है। 108*

(ङ) 'कौनसी वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है ?—जब दुर्वचन (बोलनेवाला) दुर्मंन हकलाकर बोलनेवाला होता है जिसे लेकर उसका अनुवाद करते है यह वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 109

ग आपत्ति-अधिकरणके मूल—क्या है आपत्ति-अधिकरण का मूल ?—आपत्तियाँ (=दोष) जिनसे उठती है वह छ (आपत्ति-समुत्थान) आपत्ति-अधिकरणके मूल है। (१) (कोई) आपत्ति-कायासे उठती है वचन और चित्तसे नही (२) कोई आपत्ति वचनसे उठती है काया और चित्तसे नही (३) कोई आपत्ति काया और वचन (दोनो)से उठती है चित्तसे नही (४) कोई आपत्ति काया और चित्त (दोनो)से उठती है वचनसे नही (५) कोई आपत्ति चित्त और वचन (दोनो)से उठती है कायासे नही (६) कोई आपत्ति काय वचन और चित्त (तीनो)से उठती है। *यह छ आपत्ति-समुत्थान 'आपत्ति-अधिकरणके मूल है। 110*

घ कृत्य-अधिकरण—"कृत्य-अधिकरणका क्या मूल है ?—कृत्य-अधिकरणका एक मूल है संघ। 111

(३) अधिकरणोंके भेद

(क) विवाद-अधिकरणके भेद— (क्या) विवाद-अधिकरण कुशल (=अच्छा) अकुशल (=बुरा) अव्याकृत (=न अच्छा न बुरा) होता है?—विवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है (२) अकुशल भी (३) अव्याकृत भी हो सकता है ?

(१) कौनसा विवाद-अधिकरण कुशल है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षु अच्छे (=कुशल) चित्त से विवाद करते है—'धर्म है अधर्म है' [1] नाराजगीका व्यवहार. है। यह कहा जाता है कुशल विवाद-अधिकरण।

(२) कौनसा अकुशल है ?—० बुरे (=अकुशल) चित्तसे विवाद करते है—०।

(३) कौनसा अव्याकृत है ?—० अव्याकृत (न अच्छे ही न बुरे ही) चित्तसे विवाद करते है। 112

(ख) अनुवाद अधिकरणके भेद— (क्या) अनुवाद-अधिकरण कुशल अकुशल अव्याकृत होता है ?—अनुवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है (२) अकुशल भी (३) अव्याकृत भी हो सकता है।

---

[1] सम्भवतः उस समय रंगीन लकड़ीकी शलाकाओसे वोट ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्राहक कहते थे। [1] देखो चुल्ल ४§१।१ पृष्ठ ४ १।

"(१) ०?—जब० अच्छे चित्तसे शील भ्रष्ट होने० का अनुवाद करते हैं। (२) ० बुरे चित्तसे०[1]। (३)० न अच्छे-न बुरे चित्तसे०। 113

(ग) आपत्ति-अधिकरणके भेद—"(क्या) आपत्ति-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—आपत्ति-अधिकरण (१) अकुशल भी हो सकता है, (२) अव्याकृत भी०, किन्तु० कुशल नही हो सकता।

"(१) कौनसा० अकुशल है?—जो जान, समझ, सोच, निश्चय करके वीतिक्कम (=व्यतिक्रम) है, यह कहा जाता है अकुशल आपत्ति-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अव्याकृत है?—जो बिना जाने बिना समझे, बिना सोचे, बिना निश्चय किये व्यति-क्रम है, यह कहा जाता है अव्याकृत आपत्ति-अधिकरण। 114

(घ) कृत्य-अधिकरण—"(क्या) कृत्य-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—कृत्य-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल०, (३) अव्याकृत०।

"(१) कौनसा० कुशल है? संघ कुशल (=अच्छे) चित्तसे जो कर्म=अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म करता है, यह कहा जाता है कुशल कृत्य-अधिकरण।

"(२)०?—संघ अकुशल चित्तसे जो कर्म० करता है,०।

"(३)०?—संघ अव्याकृत चित्तसे जो कर्म० करता है,०।" 115

(४) विवाद आदि और उनका अधिकरणसे संबंध

(क)–विवाद और अधिकरण—"(क्या) विवाद विवाद-अधिकरण, विवाद विना अधिकरण, अधिकरण विना विवाद, और अधिकरण और विवाद (दोनो) (होते है?)—(१) विवाद विवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) विवाद विना अधिकरणके हो सकता है, (३) अधिकरण विना विवादके हो सकता है, (४) अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते है।

"(१) कौनसा विवाद विवाद-अधिकरण होता है? —जब भिक्षु विवाद करते हैं—'धर्म है०[2]। वहाँ जो भंडन-कलह ०[3] है, यह विवाद विवाद-अधिकरण है। 116

"(२) कौनसा विवाद विना अधिकरणका है?—माताभी पुत्रके साथ विवाद करती है, पुत्र भी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी बहिनके साथ०, बहिन भी भाईके साथ०, मित्रभी मित्रके साथ०। यह विवाद विना अधिकरणके है। 117

"(३) कौनसा अधिकरण विना विवादका है? अनुवाद-अधिकरण, आपत्ति-अधिकरण और कृत्य-अधिकरण यह अधिकरण विना विवादके है। 118

"(१) कौनसे अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते है?—विवाद-अधिकरणमें अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते है। 119

(ख)—अनुवाद और अधिकरण—"०?—(१) अनुवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) अनुवाद विना अधिकरण०, (३) अधिकरण विना अनुवाद०, (४) अधिकरण और अनुवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१) कौनसा अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है?—जब भिक्षु (दूसरे) भिक्षुका शील भ्रष्ट ०

---

[1] देखो चुल्ल ४§३१२ पृष्ठ ४०६-७। [2] देखो चुल्ल ४§३११ पृष्ठ ४०६।
[3] देखो ऊपर (विवाद-मूल ख जैसा)।

होनेका अनुवाद करते हैं । जो वहाँ अनुवाद होता है यह अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है। 120

"(२) ?—माताभी पुत्रका अनुवाद (=शिकायत) करती है । 121

(३) ?—आपत्ति-अधिकरण कृत्य-अधिकरण विवाद-अधिकरण यह बिना अनुवादके अधिकरण हैं। 122

(४) ?—अनुवाद-अधिकरणमें अधिकरण और अनुवाद (दोनो साथ साथ) होते हैं। 123

(ग) आपत्ति और अधिकरण के— ?—(१) आपत्ति आपत्ति-अधिकरण हो सकती है (२) आपत्ति बिना अधिकरण (३) अधिकरण बिना आपत्ति (४) अधिकरण और आपत्ति (दोनो साथ साथ) हो सकती है।

"(१) कौनसी आपत्ति आपत्ति अधिकरण है?—पाँच आपत्ति स्कंध (=दोषोंके समूह) आपत्ति-अधिकरण हैं सातों आपत्ति-स्कंध आपत्ति-अधिकरण हैं—यह आपत्ति आपत्ति-अधिकरण है। 124

(२) ?—स्रोत-आपत्ति समापत्ति[1] भी यह आपत्ति है किन्तु अधिकरण नहीं।' 125

(३) कौन अधिकरण बिना आपत्तिका है?—कृत्य-अधिकरण विवाद-अधिकरण अनुवाद अधिकरण यह अधिकरण है किन्तु आपत्ति नहीं। 126

(४) ?—आपत्ति-अधिकरण अधिकरण और आपत्ति (दोनो) साथ साथ हैं। 127

(घ) ४—कृत्य-अधिकरण— ?—(१) कृत्य कृत्य-अधिकरण हो सकता है (२) कृत्य बिना अधिकरण (३) अधिकरण बिना कृत्य (४) अधिकरण और कृत्य (दोनो साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१) ?—जो संघका कृत्य करना करणीय करना अपलोकन कर्म ज्ञप्ति-कर्म ज्ञप्ति द्वितीय-कर्म ज्ञप्ति चतुर्थ-कर्म यह कृत्य कृत्य-अधिकरण है। 128

(२) ?—आचार्यका काम (=कृत्य) उपाध्यायका कृत्य एक उपाध्यायवाले (गुरु भाई) का कृत्य एक आचार्यवाले (गुरुभाई) का कृत्य—यह कृत्य है (किन्तु) अधिकरण नहीं। 129

(३) ?—विवाद-अधिकरण अनुवाद अधिकरण आपत्ति-अधिकरण यह अधिकरण है किन्तु कृत्य नहीं। 130

(४) ?—कृत्य-अधिकरण (ही) अधिकरण और कृत्य (दोनो) साथ साथ हैं। 131

(५) अधिकरणोंका शमन

१—विवाद-अधिकरण—"विवाद-अधिकरण कितने शमथों (=झगड़े उपशम करनेके उपाय) से शान्त होता है? विवाद-अधिकरण दो शमथोंसे शांत होता है—(क)—सम्मुख (=उपस्थितिमें)-विनय और (ख) यद्भूयसिकासे भी [illegible]। विवाद-अधिकरण हो सकता है जो यद्भूयसिका बिना (सिर्फ) एक संमुख-विनयसे ही शान्त हो? हो सकता है—कहना चाहिये। 132

I—संमुख विनयसे— किस तरह? जब भिक्षु (आपसमें) विवाद करते हैं—धर्म है [illegible] । यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरणको (आपसमें) शान्त कर सकते हैं तो भिक्षुओ!

---

[1] यहाँ आपत्तिका अर्थ प्राप्ति है। निर्वाणगामी स्रोतमें प्राप्त होनेको स्रोतआपत्ति कहते हैं। समापत्ति आपत्ति (=प्राप्ति)को समापत्ति कहते हैं।

देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४ ३।

यह अधिकरण उपशान्त (=शान्त) कहा जाता है। किसके द्वारा उपशान्त ?—समुख-विनय द्वारा। क्या है वहाँ समुख-विनय ?—(१) सघके समुख होना, (२) धर्मके समुख होना, विनय (=नियम)के समुख होना, (३) व्यक्तिके समुख होना।

"(१) क्या है सघके समुख होना ?—जितने भिक्षु कर्म-प्राप्त (=जिनका न्याय होनेवाला है) है वह आगये हो, (अनुपस्थित) छन्द (=vote) देने लायक भिक्षुओका वोट लाया गया हो, समुख (=उपस्थित) हुए (भिक्षु) प्रतिक्रोश (=कोसना) न करते हो, यह है वहाँ सघका समुख होना। (२) क्या है समुख-विनय होना ?—जिस विनय (=भिक्षु-नियम), जिस धर्म (=बुद्धके उपदेश)=जिस शास्ताके शासनसे वह अधिकरण शान्त होता है, वह विनयका समुख होना है। (३) क्या है व्यक्तिका समुख होना ?—जो विवाद करता है, और जिसके साथ विवाद करता है, दोनो अर्थी-प्रत्यर्थी (=वादी-प्रतिवादी) उपस्थित (=समुखीभूत) रहते हैं, यह है वहाँ व्यक्तिका समुख होना। भिक्षुओ! इस प्रकार शान्त हो गये अधिकरणको यदि कारक (=करनेवाला कोई पुरुष) फिरसे उभाळे (=उत्कोटन करे)तो (उसे), उत्कोटनक-पाचित्तिय (=०प्रायश्चित्तीय) हो, छन्द (=vote) देनेवाला यदि (पीछेसे) पछतावे (=खीयति), तो खीयनक-पाचित्तिय हो। 133

२—"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरण(=मुकदमे)को उसी आवासमें नही शान्त कर सकते, तो उन भिक्षुओको जिस आवास (=मठ)में अधिक भिक्षु हो वहाँ जाना चाहिये। वह भिक्षु यदि उस आवासमें जाते वक्त रास्तेमे उस अधिकरणको शान्त कर सकें, तो भिक्षुओ! वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त कहा जाता है ?—समुख-विनयसे। क्या है वहाँ समुख विनय ?—० तो खीयनक-पाचित्तिय हो। 134

३—"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस आवासमे जाते वक्त रास्तेमे उस अधिकरणको नही शान्त कर सकते, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको उस आवासमें जा आवासिक (=मठ-निवासी) भिक्षुओसे यह कहना चाहिये—आवुसो! यह अधिकरण इस प्रकार पैदा हुआ, इस प्रकार उत्पन्न हुआ, अच्छा हो (आप) आयुष्मान् इस अधिकरणको धर्म विनय-शास्ताके शासनसे जैसे यह अधिकरण शान्त हो, वैसे इसे शान्त कर दें। यदि भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु अधिक वृद्ध हो, और नवागन्तुक (विवाद करनेवाले) भिक्षु अधिक नये, तो आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—तब तक मुहूर्त भर (आप) आयुष्मान् एक ओर रहे, तब तक हम (आपसमें) सलाह (=मन्त्रणा) करें। यदि भिक्षुओ! आवासिक भिक्षु अधिक नये हो, और नवागन्तुक भिक्षु अधिक वृद्ध, तो आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—'तो (आप) आयुष्मान् मुहूर्तभर यही रहे, जब तक कि हम सलाह कर आयें।' यदि भिक्षुओ! (आपसमें) सलाह करते आवासिक भिक्षुओको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासन (=बुद्ध-उपदेश)के अनुसार शान्त नही कर सकते, तो भिक्षुओ! उन आवासिक भिक्षुओको उस अधिकरणको फैसला करनेके लिये नही स्वीकार करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! (आपसमें) सलाह करते आवासिक भिक्षुओको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त कर सकते हैं', तो भिक्षुओ! उन आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओंसे यह कहना चाहिये—'यदि तुम आयुष्मान् यह अधिकरण कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ—यह हमसे कहो, तो हम ऐसे इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त हो जायगा, ऐसा होनेपर हम इस अधिकरणको (फैसलेके लिये)स्वीकार करेंगे, यदि तुम आयुष्मान्, यह अधिकरण कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ,—यह हमसे न कहोगे, तो हम जैसे इस अधिकरणको धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त न होगा। (तब)

होनेका अनुवाद करते हैं। जो वहाँ अनुवाद होता है यह अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है। 120

(२) ?—भागामी पुनका अनुवाद (-शिकायत) करती है। 121

(३) ?—आपत्ति-अधिकरण कृत्य-अधिकरण विवाद-अधिकरण यह बिना अनुवादके अधिकरण है। 122

(४) ?—अनुवाद-अधिकरणमें अधिकरण और अनुवाद (दोनों साथ साथ) होते हैं। 123

(ग) आपत्ति और अधिकरण के—" ?—(१) आपत्ति आपत्ति-अधिकरण हो सकती है (२) आपत्ति बिना अधिकरण (३) अधिकरण बिना आपत्ति (४) अधिकरण और आपत्ति (दोनों साथ साथ) हो सकती है।

"(१) कौनसी आपत्ति आपत्ति अधिकरण है?—पाँच आपत्ति स्कंध (=दोषोंके समूह) आपत्ति-अधिकरण है सातों आपत्ति-स्कंध आपत्ति-अधिकरण है—यह आपत्ति आपत्ति-अधिकरण है। 124

(२) ?—स्रोत-आपत्ति समापत्ति[1] की यह आपत्ति है किन्तु अधिकरण नहीं। 125

(३) कौन अधिकरण बिना आपत्तिका है?—कृत्य-अधिकरण विवाद-अधिकरण अनुवाद अधिकरण यह अधिकरण है किन्तु आपत्ति नहीं। 126

(४) ?—आपत्ति-अधिकरण अधिकरण और आपत्ति (दोनों) साथ साथ है। 127

(घ) ४—कृत्य-अधिकरण— ?—(१) कृत्य कृत्य-अधिकरण हो सकता है (२) कृत्य बिना अधिकरण (३) अधिकरण बिना कृत्य (४) अधिकरण और कृत्य (दोनों साथ साथ) हो सकते हैं।

(१) ?—जो संघका कृत्य करना करणीय करना अवलोकन कर्म ज्ञप्ति-कर्म ज्ञप्ति द्वितीय-कर्म ज्ञप्ति चतुर्थ-कर्म यह कृत्य कृत्य-अधिकरण है। 128

"(२) ?—आचार्यका काम (=कृत्य) उपाध्यायका कृत्य एक उपाध्यायवाले (गुरु भाई) का कृत्य एक आचार्यवाले (गुरुभाई) का कृत्य—यह कृत्य है (किन्तु) अधिकरण नहीं। 129

"(३) ?—विवाद-अधिकरण अनुवाद अधिकरण आपत्ति-अधिकरण यह अधिकरण है किन्तु कृत्य नहीं। 130

(४) ?—कृत्य-अधिकरण (ही) अधिकरण और कृत्य (दोनों) साथ साथ है। 131

(५) अधिकरणोंका शमन

१—विवाद-अधिकरण—"विवाद-अधिकरण कितने शमथों (=शांतिके उपाय मिटानेके उपाय) से शान्त होता है? विवाद-अधिकरण दो शमथोंसे शांत होता है—(क)—सम्मुख (=उपस्थितिमें)-विनयसे और (ख) यद्भूयसिकसे भी क्या ऐसा भी। विवाद-अधिकरण हो सकता है जो यद्भूयसिकके बिना (सिर्फ) एक सम्मुख-विनयसे ही शान्त हो? हो सकता है—कहना चाहिये। 132

I—सम्मुख विनयसे—"किस तरह? जब भिक्षु (आपसमें) विवाद करते हैं—'धर्म है'[2]। यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरणको (आपसमें) शान्त कर सकते हैं तो भिक्षुओ!

---

[1] यहाँ आपत्तिका अर्थ प्राप्ति है। निर्वाणगामी स्रोतमें प्राप्त होनेको स्रोतआपत्ति कहते हैं। समाधिकी आपत्ति (=प्राप्ति)को समापत्ति कहते हैं।

[2] देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४ ६।

(२) "'दूसरी वार भी, भन्ते! सघ०।

(३) "'तीसरी वार भी, भन्ते! स०।

ग धा र णा—"'सघने इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुको चुन लिया। सघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिका (=उव्वाहिका)से उस अधिकरणको शान्त कर सकते है, तो भिक्षुओ! यह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख - वि न न य से।० उक्कोटनिक-पा चि त्ति य हो। 138

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणपर विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्म-कथिक (=धर्मका व्याख्याता) हो, जिसे न सूत्र ही आता हो न सू त्र वि भ ग[1] (=सुत्तविभग विनय) ही, वह अर्थको विना समझे व्यजन (=अक्षर)की छाया पकळ अर्थका अनर्थ करता हो, तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"आयुष्मानो! मेरी सुनो, यह अमुक नामवाला धर्म कथिक भिक्षु है,० अर्थका अनर्थ कर रहा है, यदि आयुष्मानोको पसद हो तो अमुक नामवाले भिक्षुको उठाकर हम वाकी इस अधिकरणको शान्त करें—यह सूचना है।०[2] 139

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख-वि न य द्वारा।०[3] उक्कोटनिक पाचित्तिय हो।

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणका विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्मकथिक हो, जिसे सू त्र आता हो, किन्तु सू त्र-वि भ ग नही। वह अर्थको बिना समझे व्यजनकी छाया पकड अर्थका अनर्थ करता हो, तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति "० आयुष्मानो! मेरी सुनो।० यदि आयुष्मानोको पसद हो, तो अमुक भिक्षुको उठ कर वाकी इस अधिकरणको शान्त करें—यह सूचना है ०।०।

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख-वि न य द्वारा।० उक्कोटनिक-पाचित्तिय हो। 140

III य द् भू य सि का से नि र्ण य —"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिकासे उस अधिकरणको शान्त न कर सकते हो, तो भिक्षुओ! वह (उद्वाहिकावाले) भिक्षु उस अधिकरणको सघके सुपुर्द कर दें—'भन्ते! हम इस अधिकरणको उद्वाहिकासे नही शान्त कर सकते, सघ इस अधिकरणको शान्त करे।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे दस प्रकारके अधिकरणको यद्भूयसिकासे शान्त करनेकी। 141

a शलाकाग्रहापकका चुनाव—"भिक्षुओ! पाँच वातोंसे युक्त भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुनना चाहिये—(१) जो न छन्दके रास्ते जाता हो,०[4]। 142

क ज्ञ प्ति०। (अनुश्रावण)०।

ग धा र णा—"सघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाका-ग्रहापक चुन लिया। सघको पसद

[1] विनयके मूल-नियम या प्रातिमोक्ष (पृष्ठ ५–७०)। [2] देखो चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४१२। [3] देखो ऊपर। [4] चुल्ल ४§२।४ (क) पृष्ठ ४०२।

हम इस अधिकरणको फैसला करनेके लिये नहीं स्वीकार करेंगे। भिक्षुओ! इस प्रकार अच्छी तरह समझा आवासिक भिक्षुओंको यह अधिकरण देना चाहिये। भिक्षुओ! उन नवागन्तुक भिक्षुओंको आवासिक भिक्षुओंसे ऐसा कहना चाहिये—'यह अधिकरण जैसे उत्पन्न हुआ जैसे पैदा हुआ वैसे हम आयुष्मानोंको बतलायेंगे यदि (आप) आयुष्मान् इतने बीचमें इस अधिकरणको धर्म से ऐसे शान्त कर सकें कि यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त हो जाय तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोंको दे दें। यदि आयुष्मान् नहीं कर सकते तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोंको न दें हम ही इस अधिकरणके स्वामी होंगे। भिक्षुओ! इस प्रकार अच्छी तरह समझा नवागन्तुक भिक्षुओंको यह अधिकरण आवासिक भिक्षुओंको देना चाहिये। भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उस अधिकरणको शान्त कर सकते हैं तो यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त?—सम्मुख-विनयसे। की य म क पा पि ति म गी। 135

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणके विचार करते वक्त उन भिक्षुओंमें अनर्गल बातें होने लगती हैं भाषणका अर्थ नहीं समझ पड़ता तो भिक्षुओ! अ नु म ति दे ता हूँ ऐसे अ धि क र ण को उ द्वा हि का (=Select Committee) से श म न क र ने की। 136

II—उद्वाहिका 'भिक्षुओ! दस बातोंसे युक्त भिक्षुको उद्वाहिकाके लिये चुनना चाहिये—(१) सदाचारी (शीलवान्) होता है प्रा ति मो क्ष (=भिक्षु नियमों)के संवर (=संयम)से रक्षित आचार-गोचरसे युक्त छोटे दोषोंमें भी भय खानेवाला हो विहरता है। शिक्षापदों (=आचार-नियमों)को ग्रहणकर अभ्यास करता है। (२) बहुश्रुत—श्रुतधर (उपदेशोंको अच्छी तरह धारण करनेवाला) हो जो वह धर्म आदि-कल्याण मध्य-कल्याण और अन्त-कल्याण है सार्थक सव्यंजन केवल (=विशुद्ध)—परिपूर्ण—परिशुद्ध-ब्रह्मचर्यको बतलाते हैं वह ध र्म उसने बहुत सुने हैं वचनमें धारण किये मनसे परिचित दृ ष्टि (=सिद्धान्त)से परीक्षित होते हैं। (३) भिक्षु-भिक्षुणी दोनों ही प्रा ति मो क्षको विस्तार-पूर्वक याद किये अच्छी तरह विभाजित (=समझे) सुप्रवर्तित (=सुव्याख्यात) सूत्र और अनुव्यंजन (=विस्तार)से सुविनिश्चित =सुमीमांसित होते हैं। (४) और दृढ़ हो विनयमें स्थित हो (५) दोनों ही वादी प्रतिवादी दोनों हीको समझाने बुझाने बतलाने दिखलाने मानने मनवानेमें समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमें चतुर बतलाने दिखलाने मानने मनवानेमें समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमें चतुर हो। (७) अधिकरणको जानता हो। (८) अधिकरणके कारण (=समुदय) । (९) अधिकरणके नाश (=निरोध) (१०) अधिकरणके नाशकी ओर ले जानेवाले मार्ग (=प्रतिपद्)को जानता हो। भिक्षुओ! इन दस बातोंसे युक्त भिक्षुओंके उ द्वा हि का के लिये चुननेकी मैं अनुमति देता हूँ। 137

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये।

(१) या च ना—पहिले उस भिक्षुसे पूछना चाहिये।

'फिर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञ प्ति—"भन्ते! संघ मेरी सुने—हमारे इस अधिकरणपर विचार करते समय अनर्गल बातें होने लगती हैं भाषणका अर्थ नहीं समझ पड़ता यदि संघ उचित समझे तो संघ इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओंको चुने—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! संघ मेरी सुने संघ इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओंको चुन रहा है जिस आयुष्मान्‌को पसंद हो वह चुप रहे जिसको पसंद न हो वह बोले।

२—स क र्ण ज ल्प क श ला का ग्रा ह्—"कैसे भिक्षुओ ! सकर्ण जल्पक-शलाकाग्राह होता है ?—उस शलाकाग्रहापकको एक एक भिक्षुके कानके पास जाकर कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षवालेकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीसे कहना।' यदि (वह) जाने कि अ ध र्म वा दी वहुत है, ०। भिक्षुओ ! इस प्रकार गूढक शलाकाग्राह होता है। 146

३—वि वृ त क श ला का ग्रा ह्—"कैसे भिक्षुओ ! विवृतक शलाकाग्राह होता है ?—यदि (वह) जाने कि धर्मवादी[1] वहुतर (=वहुमतमें) है, तो वेफिक्र हो खुली (=विवृतक) शलाकायें ग्रहण कराये। भिक्षुओ ! इस प्रकार विवृतक शलाकाग्राह होता है।" 147

ख अ नु वा द - अ धि क र ण—अनुवाद-अधिकरण कितने (प्रकारके) शमथोसे शात होता है ?—चार शमथोंसे शात होता है, (१) समुख-विनय, (२) स्मृति-विनय, (३) अमूढ विनय, और (४) तत्पापीयसिक। 148

(क्या कोई) अनुवाद-अधिकरण अमूढ-विनय और तत्पापीयसिकाको छोळ, (सिर्फ) समुख-विनय और स्मृति-विनय दो ही शमथोसे शात होनेवाला हो सकता है ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस तरह ?—जव भिक्षु (एक) भिक्षुको निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते है, तो भिक्षुओ ! पूरी स्मृति रखनेवाला होनेपर उस भिक्षुको स्मृ ति - वि न य देना चाहिये। 149

1 a. स्मृ ति - वि न य दे ने का ढ ग—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृति-विनय) देना चाहिये—उस भिक्षुको सघके पास जा ०[2] ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! भिक्षु मुझे निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते हैं, सो मैं पूरी स्मृति रखनेवाला हो सघसे स्मृति-विनयकी या च ना करता हूँ। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी 'भन्ते ! ०।'

"तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]।

"ग धा र णा—'सघने इस नामवाले पूरी स्मृति रखनेवाले भिक्षुको स्मृति-विनय दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात (=फैसलाशुदा) कहा जाता है। किससे शात ?—समुख विनयसे भी, स्मृति-विनयसे भी। क्या है यहाँ समुख विनय ?—०[3]।

b स्मृ ति वि न य—"क्या है वहाँ स्मृति विनय ?—जो कि स्मृतिविनयवाले कर्मकी क्रिया—करना, उपगमन—अभ्युपगमन, स्वीकार, अपरित्याग है, यह है उसका स्मृतिविनय। भिक्षुओ ! इस प्रकार शात हुये अधिकरणको यदि कारक (=लगानेवाला) फिरसे उभाडे (=उत्कोटन करे), तो दु क्को ट न क - पा चि त्ति य हो। छन्द देनेवाला यदि पछतावे, तो खी य न क- पा चि त्ति य हो। 150

"(क्या किसी) अनुवाद अधिकरणमें स्मृ ति वि न य और त त्पा पी य सि का को छोळ (सिर्फ) समुख-विनय और अमूढ-विनय दो ही शमथ हो सकते हैं ?—हो सकते है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—जव भिक्षु उन्मत्त (=पागल), चित्त-विपर्यास (=विक्षिप्त चित्तता)को प्राप्त होता है, उस उन्मत्त ० भिक्षुने वहुत श्रमण विरुद्ध (आचरण) ० किया होता है। उसे भिक्षु उन्मत्त ० हो किये गये वहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्मोके लिये दोषारोपण कर चोदित करते हैं—याद है आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की ?' वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मैं उन्मत्त ० हो गया था, उन्मत्त ० हो

---

[1] देखो महावग्ग १०§२।१ पृष्ठ ३३४। [2] ज्ञप्ति, और तीन अनुश्रावण करने चाहिये।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

भिक्षुओ! शलाकाग्राहक भिक्षुको शलाका (=बाँटनेकी लकड़ी) बाँटनी चाहिये। बहुमतवाले धर्मवादी भिक्षु जैसा कहें वैसा उस अधिकरणको शान्त करना चाहिये। भिक्षुओ! यह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किससे शान्त?—संमुख विनयसे भी और यद्भूयसिकसे भी। क्या है वहाँ संमुख विनय?—०¹। (क्या है वहाँ यद्भूयसिका?)—जो कि बहुमत (=यद्भूयसिक)से कर्म (=मुकदमे)का करना, निर्धारण करना, प्राप्त करना, स्वीकार करना, न परित्याग करना यह वहाँ यद्भूयसिका है। भिक्षुओ! इस प्रकार शान्त हो गये अधिकरणको (जो) कारकसे उभाड़े उस (को) उत्कोटनिक पाचित्तिय हो। 143

उस समय श्रावस्तीमें इस प्रकार उत्पन्न (एक) अधिकरण था। तब श्रावस्तीके संघके *अधिकरण-शमन (=फैसले)से असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवास (=मठ)में बहुत* बहुश्रुत¹ आगतागम स्थविर विहार करते हैं; यदि वह स्थविर धर्म, विनय, शास्ताके शासनके अनुसार इस अधिकरणको शान्त करें तो इस प्रकार यह अधिकरण अच्छी प्रकार शान्त हो जायेगा।' तब वह भिक्षु उस आवासमें जा उन स्थविरों (=वृद्धों)से यह बोले—

'भन्ते! यह अधिकरण इस प्रकार उत्पन्न हुआ। अच्छा हो भन्ते! (आप सब) स्थविर इस अधिकरणको धर्म...से ऐसे शान्त कर दें जिसमें कि यह अधिकरण अच्छी प्रकार शान्त हो जाये।'

तब उन स्थविरोंने जैसा श्रावस्तीके संघने उस अधिकरणको शान्त किया था और जैसा कि अच्छी तरह फैसला होता, उसी तरह उस अधिकरणको शान्त किया (=फैसला किया)।

तब श्रावस्तीके संघके फैसलेसे भी असन्तुष्ट, बहुतसे स्थविरोंके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवासमें तीन बहुश्रुत... स्थविर विहार करते हैं...।'

तब श्रावस्तीके संघ..., बहुतसे स्थविरों... (और) तीन स्थविरोंके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओंने सुना—'अमुक आवासमें दो बहुश्रुत... स्थविर विहार करते हैं...।'

...एक बहुश्रुत... स्थविर विहार करता है...।

तब श्रावस्तीके संघ..., बहुतसे स्थविरों..., तीन..., दो... (और) एक... स्थविरके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हो वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! यह अधिकरण निहत (=खतम) हो गया, शान्त हो गया, अच्छी प्रकार शान्त हो गया।

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उन भिक्षुओंकी संज्ञप्ति (=समझाने)के लिये तीन (तरहकी) शलाकाओंकी—(१) गूढक (=छिपी) (२) कानमें कहनेके सहित (=सकर्णजल्पक) और (३) विवृतक (=खुली)। 144

I १—गूढक शलाकाग्राह—"भिक्षुओ! कैसे गूढक-शलाकाग्राह होता है? उस शलाकाग्राहक भिक्षुको शलाकायें भिन्न रंगोंकी बना एक एक भिक्षुके पास जाकर ऐसे कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीको दिखलाना'। यदि (वह) जाने कि अधर्मवादी¹ बहुतर हैं तो—'ठीकसे नहीं ग्रहण की गई'—(कह) लौटा लेना चाहिये। यदि जाने धर्मवादी बहुतर हैं तो—ठीकसे ग्रहण की गई—कहना (=अनुश्रावण करना) चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार गूढक शलाका-ग्राह होता है। 145

¹ चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४ १। चुल्ल पृष्ठ ११ ।

२—स क र्ण ज ल्प क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! सकर्ण जल्पक-शलाकाग्राह होता है ?—उस शलाकाग्रहापकको एक एक भिक्षुके कानके पास जाकर कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षवालेकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीसे कहना।' यदि (वह) जाने कि अ ध र्म वा दी वहुत हैं, ०। भिक्षुओ ! इस प्रकार गूढक शलाकाग्राह होता है। 146

३—वि वृ त क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! विवृतक शलाकाग्राह होता है ?—यदि (वह) जाने कि धर्मवादी[1] वहुतर (=वहुमतमें) है, तो वेफिक्र हो खुली (=विवृतक) शलाकायें ग्रहण कराये। भिक्षुओ ! इस प्रकार विवृतक शलाकाग्राह होता है।" 147

ख अ नु वा द - अ धि क र ण—अनुवाद-अधिकरण कितने (प्रकारके) शमथोंसे शात होता है ?—चार शमथोसे शात होता है, (१) समुख-विनय, (२) स्मृति-विनय, (३) अमूढ विनय, और (४) तत्पापीयसिक। 148

(क्या कोई) अनुवाद-अधिकरण अमूढ-विनय और तत्पापीयसिकाको छोळ, (सिर्फ) समुख-विनय और स्मृति-विनय दो ही शमथोंसे शात होनेवाला हो सकता है ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस तरह ?—जव भिक्षु (एक) भिक्षुको निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते है, तो भिक्षुओ ! पूरी स्मृति रखनेवाला होनेपर उस भिक्षुको स्मृ ति - वि न य देना चाहिये। 149

1 a स्मृ ति - वि न य दे ने का ढ ग—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृति-विनय) देना चाहिये—उस भिक्षुको सघके पास जा ०[2] ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! भिक्षु मुझे निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते हैं, सो मैं पूरी स्मृति रखनेवाला हो सघसे स्मृति-विनयकी या च ना करता हूँ। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी 'भन्ते ! ०।'

"तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]।

"ग धा र णा—'सघने इस नामवाले पूरी स्मृति रखनेवाले भिक्षुको स्मृति-विनय दे दिया। सघको पमद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात (=फैसलाशुदा) कहा जाता है। किससे शात ?—समुख विनयसे भी, स्मृति-विनयसे भी। क्या है यहाँ समुख विनय ?—०[3]।

b स्मृ ति वि न य—"क्या है वहाँ स्मृति विनय ?—जो कि स्मृतिविनयवाले कर्मकी क्रिया—करना, उपगमन—अभ्युपगमन, स्वीकार, अपरित्याग है, यह है उसका स्मृतिविनय। भिक्षुओ ! इस प्रकार शात हुये अधिकरणको यदि कारक (=लगानेवाला) फिरसे उभाडे (=उत्कोटन करे), तो दु क्को ट न क - पा चि त्ति य हो। छन्द देनेवाला यदि पछतावे, तो खी य न क-पा चि त्ति य हो। 150

"(क्या किसी) अनुवाद अधिकरणमें स्मृ ति वि न य और त त्पा पी य सि का को छोळ (सिर्फ) समुख-विनय और अमूढ-विनय दो ही शमथ हो सकते हैं ?—हो सकते है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—जव भिक्षु उन्मत्त (=पागल), चित्त-विपर्यास (=विक्षिप्त चित्तता)को प्राप्त होता है, उस उन्मत्त ० भिक्षुने वहुत श्रमण विरुद्ध (आचरण) ० किया होता है। उसे भिक्षु उन्मत्त ० हो किये गये वहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्मोके लिये दोषारोपण कर चोदित करते हैं—याद है आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की ?' वह ऐसा वोलता है—'आवुसो ! मैं उन्मत्त ० हो गया था, उन्मत्त ० हो

---

[1] देखो महावग्ग १०§२।१ पृष्ठ ३३४। [2] ज्ञप्ति, और तीन अनुश्रावण करने चाहिये।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्म किये । मुझे वह याद नहीं मैंने मूढ़ (=होशमें न हो) यह (काम) किये। ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद है । भिक्षुओ! ऐसे अमूढ़ भिक्षुको अमूढ़ विनय देना चाहिये। [1] । 151

घ धा र णा—'संघने अमूढ़ होनेसे इस नामके भिक्षुको अ मू ढ़ वि न य दे दिया। सबको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं धारणा करता हूँ।

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत कहा जाता है?—संमुख-विनयसे और अमूढ़-विनयसे। क्या है वहाँ संमुख-विनयमें? [2]। क्या है वहाँ अमूढ़-विनयमें? —जो अमूढ़ विनयवाले कर्मकी क्रिया—करना यह है वहाँ अमूढ़ विनयमें। [2] प्री य न पा चि त्ति य हो। 152

(क्या किसी) अनुवाद-अधिकरणमें स्मृति-विनय और अमूढ़-विनयको छोड़ (सिर्फ) संमुख-विनय और तत्पापीयसिक-विनय दो ही शमन हो सकते हैं?—हो सकते हैं—कहना चाहिये। किस प्रकार?—जब भिक्षु (एक) भिक्षुपर संघके बीच गु रु क आ प त्ति (=भारी अपराध)का आरोप कर चोदित करते हैं—'याद है आयुष्मान्! तुमने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है जैसे कि—पा रा जि क और पाराजिकके समीपकी? फिर छुड़ानेका प्रयास करते उसको उससे फिर घेरते पूछते हैं—'अच्छा आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है ? वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे नहीं याद है, कि मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिकी है ? हाँ आवुसो! मुझे याद है कि मैंने छोटी सी आपत्तिकी। छुड़ानेका प्रयास करते उसको फिर घेरते है—'अच्छा! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है ? वह ऐसा कहता है—'आवुसो! इस छोटी आपत्तिको मैंने करके इस बिना पूछे भी मैं (जब) स्वीकार करता हूँ तो क्या इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति जैसे कि पाराजिक या पाराजिकके समीपकी करके पूछनेपर मैं स्वीकार न करूँगा? वह ऐसा कहते है—'आवुस! इस छोटी आपत्तिको तुमने करके उसे बिना पूछे ही स्वीकार कर लिया तो भला इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति करके पूछनेपर तुम स्वीकार न करोगे? अच्छा! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिको तुमने की है ? वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे याद है मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है। दव (=मस्ती)से मैंने यह कहा रव (=गफलत)से मैंने यह कहा—'आवुसो! मुझे नहीं याद है । तो भिक्षुओ! उस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म करना चाहिये। 153

II त त्पा पी य सि क—"और भिक्षुओ! इस प्रकार (उसे) करना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

'क. ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामके इस भिक्षुने संघके बीच गुरुक-आपत्तिके बारेमें पूछनेपर इनकार करके स्वीकार किया स्वीकार करके इनकार किया दूसरा इसका बहाना किया जान बूझकर झूठ कहा। यदि संघ उचित समझे तो संघ इस नामके भिक्षुका तत्पापीयसिक-कर्म करे—यह सूचना है। [3]।

घ धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया। सबको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।'

'भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत?—संमुख-विनय और तत्पापीय

---

[1] देखो चुल्ल ४§२।२ पृष्ठ ४ ।
[2] देखो ऊपर ।
[3] देखो चुल्ल ४§३।५ (I) पृष्ठ ४१ -११ ।
[4] तीन अनुश्रावण भी पढ़ना चाहिये ।

सिकासे। क्या है वहाँ समुख-विनयमे ? ०[1]। क्या है वहाँ तत्पापीयसिकामे ? जो वह पापीयसिका-कर्मकी क्रिया=करना ०। खीयन-पाचित्तिय हो। 153

(ग) आपत्ति-अधिकरणका शमन—"आपत्ति-अधिकरण कितने शमथोंमे शात होता है ?—समुख-विनय, प्रतिज्ञातकरण, और तिणवत्थारकमे ।

"(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक तिणवत्थारक शमथको छोळ (बाकी) समुख-विनय और प्रतिज्ञातकरण दो शमथोंमे शात हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ एक भिक्षुने लघुक-आपत्ति (=छोटे अपराध)की होती है। तब भिक्षुओ ! वह भिक्षु एक भिक्षुके पास जा एक कधेपर उत्तरासग कर (अपनेमे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमें वन्दना कर, उँकळू बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! मैंने इस नामके भिक्षुने आपत्ति की है, उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=Confession) करताहूँ ।'

"उस भिक्षुको कहना चाहिये—'देखते (=दिलमे अनुभव करते) हो (उस आपत्तिको)' ?"

'हाँ देखता हूँ ।'

'भविष्यमे सयम करना ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात ? समुख-विनयसे और प्रतिज्ञातकरण (=स्वीकार)से। क्या है वहाँ समुख-विनयमें ? ०[1]। क्या है वहाँ प्रतिज्ञातकरणमे ?—जो (यह) प्रतिज्ञातकरण-कर्मकी क्रिया—करना ० दुक्कोटक-पाचित्तिय हो ।

"ऐसा कर पाये, तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको बहुतसे भिक्षुओके पास जा ० ऐसा कहना चाहिये— ०— उस आपत्तिकी प्रतिदेशना करता हूँ ।'

"उन भिक्षुओको कहना चाहिये—'देखते हो' ?"

'हाँ, देखता हूँ।'

'भविष्यमें सयम करना।'

" ० दुक्कोटिक-पाचित्तिय हो ।

"ऐसा कर पाये तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको सघके पास जा ० ऐसे कहना चाहिये—०[1] खीयनक-पाचित्तिय हो ।" 154

(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक प्रतिज्ञातकरण शमथको छोळ (बाकी) समुख-विनय और तिणवत्थारक दो शमथोंसे शान्त हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ भडन, कलह, ०[2] करते भिक्षुओने बहुतसे श्रमण-विरोधी—अपराध किये है ०[2]।

० धारणा—'हमने ० इन आपत्तियोकी सघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससेशात ?—समुख-विनय और तिणवत्थारकसे। क्या है वहाँ समुख-विनयमें ?—०[3]। क्या है वहाँ तिणवत्थारकमें ?—जो कि तिणवत्थारक-कर्मकी क्रिया=करना ० खीयनक-पाचित्तिय हो। 155

(घ) कृत्य-अधिकरण—"कृत्य-अधिकरण कितने शमथोंसे शात होता है ?—कृत्य-अधिकरण समुख-विनय एक शमथसे शात होता है।" 156

चतुर्थ समथक्खंधक समाप्त ॥४॥

---

[1] ऊपर ही जैसा ।　　[2] देखो चुल्ल० ४§२।६ पृष्ठ ४०४-५ ।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११ ।

मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्म किये ...। मुझे वह याद नहीं मैंने मूढ (=होशमें न हो) यह (काम) किये। ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद है ...'। भिक्षुओ! ऐसे अमूढ भिक्षुको अमूढ-विनय देना चाहिये।[1] 151

"ग. धारणा—'संघने अमूढ होनेसे इस नामके भिक्षुको अमूढ विनय दे दिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं धारणा करता हूँ।

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत कहा जाता है?—संमुख-विनय और अमूढ-विनयसे। क्या है यहाँ संमुख-विनयमें? ...[2]। क्या है यहाँ अमूढ-विनयमें?—जो अमूढ विनयवाले कर्मकी क्रिया—करना यह है यहाँ अमूढ-विनयमें। ...[3] खीयन पाचित्तिय हो। 152

(क्या किसी) अनुवाद-अधिकरणमें स्मृति-विनय और अमूढ-विनयको छोड़ (सिर्फ) संमुख विनय और तत्पापीयसिक-विनय द्वारा ही शमन हो सकते हैं?—हो सकते हैं—कहना चाहिये। किस प्रकार?—जब भिक्षु (एक) भिक्षुपर संघके बीच गुरुक आपत्ति (=भारी अपराध) का आरोप कर चोदित करते हैं—'याद है आयुष्मान्! तुमने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है जैसे कि—पाराजिक और पाराजिक समीपकी?' फिर छुड़ानेका प्रयास करते उसको उससे फिर फेरते पूछते हैं—'अच्छा आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक आपत्ति तुमने की है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे नहीं याद है कि मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है? हाँ आवुसो! मुझे याद है कि मैंने छोटी सी आपत्ति की।' छुड़ानेका प्रयास करते उसको फिर कहते हैं—'अच्छा! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! इस छोटी आपत्तिको मैंने करके इसे बिना पूछे भी मैं (जब) स्वीकार करता हूँ तो क्या इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति जैसे कि पाराजिक या पाराजिक समीपकी करके पूछनेपर मैं स्वीकार न करूँगा?' वह ऐसा कहते हैं—'आवुस! इस छोटी आपत्तिको तुमने करके उसे बिना पूछे ही स्वीकार कर लिया तो भला इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति करके पूछनेपर तुम स्वीकार न करोगे? अच्छा! आवुस! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिको तुमने की है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मुझे याद है मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है। दव (=मस्ती) से मैंने यह कहा रव (=गफलत) से मैंने यह कहा—आवुसो! मुझे नहीं याद है ...।' तो भिक्षुओ! उस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म करना चाहिये। 153

II तत्पापीयसिक—और भिक्षुओ! इस प्रकार (उसे) करना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—भन्ते! संघ मेरी सुने, इस नामके इस भिक्षुने संघके बीच गुरुक-आपत्तिके बारेमें पूछनेपर इन्कार करके स्वीकार किया, स्वीकार करके इन्कार किया, दूसरा दूसरा बहाना किया, जान बूझकर झूठ कहा। यदि संघ उचित समझे तो संघ इस नामके भिक्षुका तत्पापीयसिक-कर्म करे—यह सूचना है। ...।

"ग. धारणा—'संघने इस नामवाले भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शांत कहा जाता है। किससे शांत?—संमुख-विनय और तत्पापीय

---

[1] देखो चुल्ल ४§३।२ पृष्ठ ४ ...।
[2] देखो चुल्ल ४§३।५ (I) पृष्ठ ४१०–११। तीन अनुश्रावण भी कहना चाहिये।
[3] देखो ऊपर।

सिकासे। क्या है वहाँ समुख-विनयमे ? ०[1]। क्या है वहाँ तत्पापीयसिकामे ? जो वह पापीयसिका-कर्मकी क्रिया=करना ०। खीयन-पाचित्तिय हो। 153

(ग) आपत्ति-अधिकरणका शमन—"आपत्ति-अधिकरण कितने शमथोंसे शात होता है ?—समुख-विनय, प्रतिज्ञातकरण, और तिणवत्थारकसे।

"(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक तिणवत्थारक शमथको छोळ (वाकी) समुख-विनय और प्रतिज्ञातकरण दो शमथोसे शात हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ एक भिक्षुने लघुक-आपत्ति (=छोटे अपराध)की होती है। तव भिक्षुओ ! वह भिक्षु एक भिक्षुके पास जा एक कधेपर उत्तरासग कर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमें वन्दना कर, उँकळू वैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! मैंने इस नामके भिक्षुने आपत्ति की है, उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=Confession) करताहूँ।'

"उस भिक्षुको कहना चाहिये—'देखते (=दिलसे अनुभव करते) हो (उस आपत्तिको)' ?"

'हाँ देखता हूँ।'

'भविष्यमे सयम करना।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात ? समुख-विनयसे और प्रतिज्ञातकरण (=स्वीकार)से। क्या है वहाँ समुख-विनयमें ? ०[1]। क्या है वहाँ प्रतिज्ञातकरणमें ?—जो (यह) प्रतिज्ञातकरण-कर्मकी क्रिया—करना ० दुक्कोटक-पाचित्तिय हो।

"ऐसा कर पाये, तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको वहुतसे भिक्षुओके पास जा ० ऐसा कहना चाहिये— ०— उस आपत्तिकी प्रतिदेशना करता हूँ।'

"उन भिक्षुओको कहना चाहिये—'देखते हो' ?"

'हाँ, देखता हूँ।'

'भविष्यमें सयम करना।'

"० दुक्कोटिक-पाचित्तिय हो।

"ऐसा कर पाये तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको सघके पास जा ० ऐसे कहना चाहिये—०[1] खीयनक-पाचित्तिय हो।" 154

(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक प्रतिज्ञातकरण शमथको छोळ (वाकी) समुख-विनय और तिणवत्थारक दो शमथोंसे शान्त हो सके ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—यहाँ भडन, कलह, ०[2] करते भिक्षुओने वहुतसे श्रमण-विरोधी—अपराध किये है ०[2]।

ग धारणा—'हमने ० इन आपत्तियोकी सघके वीच तिणवत्थारक देशना कर दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा में इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससेशात ?—समुख-विनय और तिणवत्थारकसे। क्या है वहाँ समुख-विनयमें ?—०[3]। क्या है वहाँ तिणवत्थारकमें ?—जो कि तिणवत्थारक-कर्मकी क्रिया=करना ० खीयनक-पाचित्तिय हो। |155

(घ) कृत्य-अधिकरण—"कृत्य-अधिकरण कितने शमथोंसे शात होता है ?—कृत्य-अधिकरण समुख-विनय एक शमथसे शात होता है।" 156

चतुत्थ समथक्खंधक समात्त ॥४॥

---

[1] ऊपर ही जैसा।

[2] देखो चुल्ल० ४§२।६ पृष्ठ ४०४-५।

[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

५—क्षुद्रकवस्तु स्कन्धक

१—स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिंगच्छेद, पात्र-चीवर, थैली आदि। २—विहारमें चबूतरे, घासका(?) कोठरी, आसन आदि। ३—पंखा, छाता, छींका, दण्ड, नख-केश-कनखोदनी, अंजनदानी। ४—संघाटी, कमरबन्द, मुण्डी मुद्री(?) वस्त्र पहिननेका ढंग। ५—बोझ ढोना, दातवन, आग-पशुसे रक्षा। ६—बुद्ध-वचनकी भाषा, अपनी-अपनी, व्यर्थकी विद्याका न पढ़ना, समानें(?) बैठनेके नियम, लहसुनका निषेध। ७—पाखाना, वृक्ष-रोपण, बर्तन-चारपाई आदि सामान।

§१—स्नान, लेप, गीत, आम खाना, सर्प-रक्षा, लिगच्छेद पात्र-चीवर, थैली आदि

१—राजगृह

(१) स्नान

१—उस समय बुद्ध भगवान्[1] राजगृहमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते हुए वृक्षसे शरीरको रगळते थे, जंघाको, बाहुको, छातीको, पेटको भी। लोग खिन्न होते धिक्कारते थे—'कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण नहाते हुए वृक्षसे जैसे कि मल्ल (=पहलवान्) और मालिश करनेवाले'। । भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! नहाते हुए भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगळना चाहिये, जो रगळे उसको 'दुक्कट'की आपत्ति है। 1

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते समय खम्भेसे शरीरको भी रगळते थे। —

'भिक्षुओ! नहाते समय भिक्षुको खम्भेसे शरीरको न रगळना चाहिये, जो रगळे उसको दुक्कट (दुष्कृति)की आपत्ति है। 2

३— षड्वर्गीय भिक्षु दीवारसे शरीरको भी रगळते थे। —

भिक्षुओ! दीवारसे शरीरको न रगळना चाहिये, दुक्कटकी आपत्ति है। 3

४— षड्वर्गीय भिक्षु अस्थान (=अट्टान)[2] पर नहाते थे। लोग हैरान होते थे— ( ) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। भगवान्से यह बात कही। —

"भिक्षुओ! अट्टान पर नहीं नहाना चाहिये, दुक्कट। 4

---

[1] छोटे छोटोंकी बातोंका अध्याय।

[2] काष्ठके चार पायोंवाली खड़ी-खड़ी चौकियाँ घाटपर रक्खी रहती थीं, जिनपर नहानेके सुगंधित चूर्णको बिखेरकर उनपर लेटकर शरीर रगळते थे (—अट्ठकथा)।

५—० षड्वर्गीय भिक्षु गधर्व-हस्त (=ग न्ध ब्ब ह त्थ)से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान्‌से यह बात कही ० ।—

"भिक्षुओ ! ग ध ब्ब ह त्थ से नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 5

६—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कु रु वि न्द क सु त्ति (=कुरुविन्दक शुक्ति)[1] से नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 6

७—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! एक दूसरेके शरीरसे रगळकर नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 7

८—० षड्वर्गीय भिक्षु म ल्ल क[2] से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! म ल्ल क से नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 8

९—०उससमय एक भिक्षुको दाद (=कच्छुरोग)की बीमारी थी, मल्लक बिना उसे अच्छा न होता था । भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगीको बिना गढे म ल्ल क की ।" 9

१०—उस समय बुढापेसे कमजोर एक भिक्षु नहाते वक्त स्वय अपने शरीरको नही रगळ सकता था । भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दु क्का सि का (=कपळा ऐंठकर बनाया रगळनेका कोळा)-की ।" 10

११—उस समय भिक्षु पीठ रगळनेमें हिचकिचाते थे ।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हाथसे रगळनेकी ।" 11

(२) आभूषण

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु वाली, पा म ग (=लटकन), कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अगूठी धारण करते थे । ० काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! वाली, लटकन, कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अगूठीको नही धारण करना चाहिये, दुक्कट ० ।" 12

० षड्वर्गीय लबे केश रखते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

(३) केश, कघी दर्पण आदि

१—"भिक्षुओ ! लम्बे केश नही रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष है । दो मासके या दो अगुल (लम्बे केशो)की अनुमति देता हूँ ।" 13

२—० षड्वर्गीय भिक्षु कोच्छ (=थकरी)से केशोको सँवारते थे, फण (=कघी)से०, हाथकी कघीसे०, खली (मिले) तेलसे०, पानी (मिले) तेलसे केशोको चिकनाते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कोच्छ०, कघी०, हाथकी कघी०, खली-तेल०, पानी-तेलसे केशोको नही सँवारना

[1] चूर्ण लगाकर शरीर घिसनेका लकळीका हाथ ।

[2] कुरुविन्दक पत्थरके चूर्णको लाखसे पिण्डी बाँध गुलियाँ बनाई जाती थीं, जिससे नहाते वक्त शरीरको रगळा जाता था ।

[3] मकरकी नाकको काटकर बनाया ।

५—क्षुद्रकवस्तु-स्कन्धक

१—स्नान लेप गीत आम-खाना सर्प-रक्षा लिंगच्छेद पात्र-चीवर थैली आदि। २—विहारमें चबूतरे घासका कोठरी आसन आदि। ३—पंखा छाता छींका दण्ड नख-केश-कनखोदनी, अंजनदानी। ४—संघाटी, कमरबन्द घुण्डी मुद्धी वस्त्र पहिननेका ढंग। ५—बोझ ढोना दतवन, आग-पशुसे रक्षा। ६—बुद्ध-वचनकी भाषा अपनी-अपनी भाषामें सिखाना न पढ़ना सभामें बैठनेके नियम लहसुनका निषेध। ७—पाखाना वृक्ष-रोपण बर्तन-चारपाई आदि सामान।

§१—स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिगच्छेद पात्र-चीवर, थैली आदि

१—राजगृह

(१) स्नान

१—उस समय बुद्ध भगवान्[1] राजगृहमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते हुए वृक्षसे शरीरको रगड़ते थे जंघाको बाहुको छातीको पटको भी। लोग खिन्न होते धिक्कारते थे—कैसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण नहाते हुए वृक्षसे जैसे कि मल्ल (=पहलवान्) और मालिश करनेवाले'। । भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! नहाते हुए भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगड़ना चाहिये जो रगड़े उसको 'दुक्कट'की आपत्ति है। 1

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते समय खम्भेसे शरीरको भी रगड़ते थे ।—

"भिक्षुओ! नहाते समय भिक्षुको खम्भेसे शरीरको न रगड़ना चाहिये जो रगड़े उसको दुक्कट (दुष्कृत)की आपत्ति है।" 2

३—० षड्वर्गीय भिक्षु दीवारसे शरीरको भी रगड़ते थे ।—

"भिक्षुओ! दीवारसे शरीरको न रगड़ना चाहिये दुक्कटकी आपत्ति है।" 3

४—० षड्वर्गीय भिक्षु अस्थान (=अट्टान)[2] पर नहाते थे। लोग हैरान होते थे— ( ) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ! अट्टान पर नहीं नहाना चाहिये दुक्कट ।" 4

---

[1]छोटे दोषोंकी बातोंका अध्याय।

[2]नहानेके घाट पर चारों ओरसे छोटी-छोटी चौकियाँ घाटपर रक्खी रहती थीं जिनपर नहानेके चूर्णको बिखेरकर उनपर लेटकर शरीर रगड़ते थे (—अट्ठकथा)।

(६) शौकके वस्त्र

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु बा हि र लो मी (=बाहर रोम निकला ओढना) । ऊनी (चद्दर)को धारण करते थे। ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! बाहिर लोमी ऊनीको नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 22

(७) आम खाना

१—उस समय म ग ध रा ज सेनिय बिम्बिसारके बागमे आम फले हुए थे। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने अनुमति दे रक्खी थी—'आर्य (लोग) इच्छानुसार आम खावें।' पड्वर्गीय भिक्षुओंने कच्चे आमोहीको तुळवाकर खा डाला। मगधराज ०को आमकी जरूरत हुई, उसने आदमियोंसे कहा—

"जाओ, भणे ! आरामसे आम लाओ !"

"अच्छा देव !"—(कह) मगधराज० को उत्तर दे, आराममें जा उन्होंने बागवानोंसे यह कहा—

"भणे ! देवको आमोकी जरूरत है, आम दो !"

"आर्यो ! आम नही है, कच्चे ही आमोको तुळवाकर भिक्षुओंने आम खा डाले।"

तब उन मनुष्योंने जाकर मगधराज०से वह बात कह दी।—

"भणे ! अच्छा हुआ, आर्योने खा लिया। और भगवान्ने (खानेकी) मात्रा भी कही है।"

लोग हैरान० होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण मात्राको बिना जाने राजाके आम खाते है !'

०भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! आम नही खाना चाहिये, जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 23

२—उस समय एक पू ग[1] ने सघको भोज दिया था, दालमे आमकी फारियाँ (=पेशिका) भी डाली हुई थी। भिक्षु हिचकिचाते उसे नही ग्रहण करते थे।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ, अनुमति देता हूँ, आमकी फारियोकी।" 24

३—उस समय एक पू ग ने सघको भोज दिया था। वह आमोकी फारी नही बना सके, इसलिये परोसनेके वक्त पूरे आमको ले पाँतीमें फिरते थे। भिक्षु हिचकिचाते न ग्रहण करते थे।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच श्रमणोके योग्य फलको खाने की आगसे छिलका उतारे, हथियारसे छिले, नखसे छिले, बेगुठलीके, और पाँचवे निब्बट्ठ बीज (=बीजवाला फल)को। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँच श्रमणोके योग्य फलको खानेकी।" 25

(८) सर्पसे रक्षा

१—उस समय एक भिक्षु साँपके काटनेसे मर गया था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुने चार स र्प-रा जो के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें नही रक्खा। यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने चार सर्प-राजो (=अ हि रा जो)के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें रक्खा होता, तो वह भिक्षु साँपके काटनेसे न मरता। कौनसे चार अहि-राज कुल हैं ?—(१) वि रु पा क्ष अहि-राज-कुल, (२) ए रा प थ (=ऐरावत)अहिराजकुल, (३) छ व्या पु त्त अहिराजकुल, (४) कण्हा-गोतमक (=कृष्ण गोतमक) अहिराजकुल। भिक्षुओ ! जरूर उस भिक्षुने इन चार सर्पराजकुलोके प्रति०। "भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन चार अहिराज-कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें करनेकी, अपनी

---

[1] वणिक्-मडली।

चाहिये दुक्कट । 14

३— षड्वर्गीय भिक्षु दर्पणमें भी जल भरे पात्रमें भी मुखके प्रतिबिम्बको देखते थे । कामभोगी गृहस्थ । भगवान् ।—

'भिक्षुओ ! दर्पण या जलपात्रमें मुखके प्रतिबिम्बको नहीं देखना चाहिये दुक्कट । 15

४—उस समय एक भिक्षुके मुखमें घाव था । उसने भिक्षुओंसे पूछा—'आवुसो ! मेरा घाव कैसा है ?' भिक्षुओंने कहा—'आवुस ! ऐसा है ।' वह नहीं विश्वास करता था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर दर्पण या जलपात्रमें मुँहकी छायाको देखनेकी । 16

(४) लेप, मालिश आदि

१— षड्वर्गीय भिक्षु मुखपर लेप करते थे, मुखपर मालिश करते थे, मुखपर चूर्ण डालते थे, मैनसिलसे मुखको अंकित करते थे, अंगराग (=शरीरमें लगानेका रंग) लगाते थे, मुखराग लगाते थे, अंगराग और मुखराग (दोनों) लगाते थे । जैसे कामभोगी गृहस्थ । भगवान् ।—

भिक्षुओ ! मुखपर लेप, मालिश नहीं करनी चाहिये, मुखपर चूर्ण नहीं डालना चाहिये, मेनसिल (=मन:शिला)से मुखको अंकित नहीं करना चाहिये, अंगराग, मुखराग, अंगराग और मुखराग नहीं लगाना चाहिये, जो लगाये उसे दुक्कटका दोष है । 17

२—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था । भगवान्से यह बात कही ।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर मुखपर लेप करनेकी । 18

(५) नाच-तमाशा

१—उस समय राजगृहमें गिरग्ग-समज्ज (=पहाड़के पास मेला) था । षड्वर्गीय भिक्षु गिरग्ग-समज्ज देखने गये । जैसे कामभोगी गृहस्थ । भगवान् ।—

भिक्षुओ ! नाच गीत बाजेको देखने नहीं जाना चाहिये, दुक्कट । 19

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बे गानेके स्वरसे धर्म (=बुद्धके उपदेश-सूत्र)को गाते थे । लोग हैरान होते थे—जैसे हम गाते हैं वैसे ही लम्बे गानेके स्वरसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण (=साधु) भी धर्मको गाते हैं । सचमुच । भगवान् ।—

'भिक्षुओ ! लम्बे गानेके स्वरसे धर्मके गानेमें यह पाँच दोष हैं—(१) अपने भी उस स्वरमें रागयुक्त होता है (२) दूसरे भी उस स्वरमें रागयुक्त होते हैं (३) गृहस्थ लोग भी होते हैं (४) आलाप लेनेकी कोशिश करनेमें समाधि-भंग होती है (५) आनेवाली जनता उनका अनुसरण करती है ।—भिक्षुओ ! यह पाँच दोष ।

"भिक्षुओ ! लम्बे गानेके स्वरसे धर्मको नहीं गाना चाहिये, जो गाये उसे दुक्कटका दोष है । 20

३—उस समय भिक्षु स्वरभण्यक[1] (साथ सूत्र पढ़ने)में हिचकिचाते थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्वरभण्यकी । 21

---

[1] वेदपाठियोंकी भाँति स्वरसहित पाठ ।

(६) शौकके वस्त्र

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वा हि र लो मी (=बाहर रोम निकला ओढना) । ऊनी (चद्दर)को धारण करते थे। ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ! वाहिर लोमी ऊनीको नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 22

(७) आम खाना

१—उस समय म ग ध रा ज सेनिय बिम्बिसारके बागमे आम फले हुए थे। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने अनुमति दे रक्खी थी—'आर्य (लोग) इच्छानुसार आम खावे।' षड्वर्गीय भिक्षुओंने कच्चे आमोहीको तुळवाकर खा डाला। मगधराज ०को आमकी ज़रूरत हुई, उसने आदमियोसे कहा—

"जाओ, भणे! आरामसे आम लाओ!"

"अच्छा देव!"—(कह) मगधराज० को उत्तर दे, आराममें जा उन्होंने बागवानोंसे यह कहा—

"भणे! देवको आमोकी ज़रूरत है, आम दो!"

"आर्यो! आम नही है, कच्चे ही आमोको तुळवाकर भिक्षुओने आम खा डाले।"

तब उन मनुष्योंने जाकर मगधराज०से वह बात कह दी।—

"भणे! अच्छा हुआ, आर्योंने खा लिया। और भगवान्ने (खानेकी) मात्रा भी कही है।"

लोग हैरान० होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण मात्राको विना जाने राजाके आम खाते है!'

०भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! आम नही खाना चाहिये, जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 23

२—उस समय एक पू ग[1] ने संघको भोज दिया था, दालमें आमकी फारियाँ (=पेशिका) भी डाली हुई थी। भिक्षु हिचकिचाते उसे नही ग्रहण करते थे।—

"भिक्षुओ! ग्रहण करो, खाओ, अनुमति देता हूँ, आमकी फारियोकी।" 24

३—उस समय एक पू ग ने संघको भोज दिया था। वह आमोकी फारी नही बना सके, इसलिये परोसनेके वक्त पूरे आमको ले पाँतीमें फिरते थे। भिक्षु हिचकिचाते न ग्रहण करते थे।—

"भिक्षुओ! ग्रहण करो, खाओ। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच श्रमणोके योग्य फलको खाने की आगसे छिलका उतारे, हथियारसे छिले, नखसे छिले, बेगुठलीके, और पाँचवें निब्बट्ट बीज (=बीजवाला फल)को। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन पाँच श्रमणोके योग्य फलको खानेकी।" 25

(८) सर्पसे रक्षा

१—उस समय एक भिक्षु साँपके काटनेमे मर गया था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुने चार स र्प-रा जो के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें नही रक्खा। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने चार सर्प-राजो (=अ हि रा जो)के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें रक्खा होता, तो वह भिक्षु साँपके काटनेसे न मरता। कौनसे चार अहि-राज कुल हैं?—(१) वि रु पा क्ष अहि-राज-कुल, (२) ए रा प थ (=ऐरावत)अहिराजकुल, (३) छ ब्या पु त्त अहिराजकुल, (४) कण्हा-गोतमक (=कृष्ण गोतमक) अहिराजकुल। भिक्षुओ! ज़रूर उस भिक्षुने इन चार सर्पराजकुलोके प्रति०। "भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन चार अहिराज-कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमें करनेकी, अपनी

[1] वणिक्-मंडली।

गुप्ती—अपनी रक्षाके लिये आत्म-परित्र (= रक्षावाक्य) करनेकी। 26

२—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परित्र=परित्त) करनी चाहिये—

विरूपाक्षसे मेरी मित्रता (है) एरापथसे मेरी मित्रता

छब्यापुत्तसे मेरी मित्रता कण्हा-गोतमकसे मेरी मित्रता ॥(१)॥

अपादकों[1]से मेरी मित्रता (है) द्विपादकों[2]से मेरी मित्रता।

चौपायोंसे मेरी मित्रता बहुपदों[3]से मेरी मित्रता ॥(२)॥

मुझे अपादक पीड़ा न दें मुझे द्विपादक पीड़ा न दें।

चतुष्पद मुझे पीड़ा न दें मुझे बहुपद पीड़ा न दें ॥(३)॥

सभी सत्त्व—सभी प्राणी और सभी सकल भूत।

सभी कल्याणको देखें किसीके पास बुराई न जावे ॥(४)॥

'बुद्ध अप्रमाण (=जिसका परिमाण नहीं कहा जा सकता) है धर्म अप्रमाण है संघ अप्रमाण है साँप बिच्छू कनखजूरा मकड़ी छिपकली चूहे—(आदि) सभी सरीसृप (=रेंगनेवाले प्राणी) प्रमाणवान् (=परिमित) है। मैंने रक्षा कर ली मैंने परित्त कर लिया भूत (=प्राणी) चले जायें। सो मैं भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ सातों सम्यक् सम्बुद्धोंको नमस्कार करता हूँ।"

(९) लिंगच्छेदन

उस समय एक भिक्षुने वासनासे पीड़ित हो अपने लिंगको काट दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! दूसरेको काटना था उस मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी)ने दूसरेको काट दिया।

'भिक्षुओ ! अपने लिंगको न काटना चाहिये जो काटे उसे थुल्लच्चयका दोष हो। 27

(१०) पात्र

(क) पूर्वकथा—उस समय राजगृहके श्रेष्ठीको एक महार्घ चन्दन-सारकी चन्दन गाँठ मिली थी। तब राजगृहके श्रेष्ठीके मनमें हुआ—'क्यों न मैं इस चन्दनगाँठका पात्र खरदवाऊँ चूरा मेरे कामका होगा और पात्र दान दूँगा। तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस चन्दन-गाँठका पात्र खरदवाकर, सीकेमें रख बाँसके सिरेपर बाँध एकके ऊपर एक बाँसोंको बँधवाकर कहा—"जो श्रमण ब्राह्मण अर्हत् या ऋद्धिमान् हो (वह इस दान) दिये हुए पात्रको उतार ले।

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था वहाँ गये। और जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—'गृहपति ! मैं अर्हत् हूँ ऋद्धिमान् भी हूँ। मुझे पात्र दो।

"भन्ते ! यदि आयुष्मान् अर्हत् और ऋद्धिमान् हैं तो दिया ही हुआ है पात्रको उतार लें।

तब मक्खली गोसाल (=मस्करी गोपाल)। अजित केशकम्बली। प्रकुध कात्यायन। संजय बेलट्ठिपुत्त। निगंठ नाथपुत्त। जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी था वहाँ गये। जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृहपति ! मैं अर्हत् हूँ और ऋद्धिमान् भी मुझे पात्र दो।

"भन्ते ! यदि आयुष्मान् अर्हत्।

उस समय आयुष्मान् मौद्गल्यायन और आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पूर्वाह्न समय सु-आच्छादित हो पात्र चीवर ले राजगृहमें पिंड (=भिक्षा)के लिये प्रविष्ट हुए। तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आयुष्मान् मौद्गल्यायनसे कहा—

---

[1]बिना पैरवाले—सर्प। [2]दो पैरवाले—मनुष्य। [3]कनखजूरा आदि।

"आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् है, और ऋद्धिमान् भी जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन ! इस पात्रको उतार लाइये। आपके लिये ही यह पात्र है।"

"आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज अर्हत् है, और ऋद्धिमान् भी० ।"

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमे उळकर, उस पात्रको ले, तीन वार राजगृहका चक्कर दिया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोळ, नमस्कार करते हुए अपने घरपर खळे हो—

"भन्ते ! आर्य-भारद्वाज ! यही हमारे घरपर उतरे।"

आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उतरे (-प्रतिष्ठित हुए)। तब राजगृहके श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके हाथमे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भरकर उन्हे दिया। आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाज पात्र-सहित आराम (=निवास-स्थान)को गये। मनुष्योने सुना—आर्य-पिंडोल भारद्वाजने राजगृहके श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे। भगवान्ने हल्लेको सुना, सुनकर आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—"आनन्द ! यह क्या हल्ला-गुल्ला है ?"

"आयुष्मान् पि डो ल भा र द्वा ज ने भन्ते ! रा ज गृ ह के श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। लोगोने (इसे) सुना०। भन्ते ! इसीमे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिंडोल-भारद्वाजके पीछे पीछे लगे है। भगवान् वही यह हल्ला है।"

तब भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें, भिक्षु-सघको जमा करवा, आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजसे पूछा—

"भारद्वाज ! क्या तूने सचमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?"

"सचमुच भगवान् !"

भगवान्ने धिक्कारते हुए कहा—

"भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिकूल=अ-प्रतिरूप, श्रमणके अयोग्य, अविधेय=अकरणीय है। भारद्वाज ! मुवे लकळीके वर्तनेके लिये कैसे तू गृहस्थोको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखायेगा। । भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।" (इस प्रकार) धिक्कारते (हुए) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये उसको 'दुष्कृत'की आपत्ति। भिक्षुओ ! इस पात्रको तोळ, टुकळा-टुकळाकर, भिक्षुओको अजन पीसनेके लिये दे दो। भिक्षुओ ! लकळीका वर्तन न धारण करना चाहिये। ०'दुष्कृत'।"

"भिक्षुओ ! सुवर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय०, वैदुर्यमय०, स्फटिकमय०, कसमय, काँचमय, राँगेका० सीसेका०, ताम्रलोह (=ताँबा) का०, 'दुष्कृत'। भिक्षुओ ! लोहेके और मिट्टीके—दो पात्रोकी अनुज्ञा देता हूँ।" 28

उस समय पा त्र (=भिक्षापात्र)की पेंदी घिस जाती थी। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पा त्र म ड ल (=पात्रके नीचे रखनेकी गेडुरी)की।" 29

(ख) नि य म—उस समय षड् व र्गी य भिक्षु सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मडलको धारण करते थे। ०जैसे कामभोगी गृहस्थ। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मडलको नही धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ राँगे और सीसे इन दो प्रकारके पात्रमडलकी।" 30

३—अधिक म ड ल ठीक न आते थे।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रेखा डालनेकी । 31

४—सिकल (=वलि) पळ जाती थी।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ म क र द त (=मगरदन्ती खूँटी) काटनेकी। 32

५—उस समय षड्वर्गीय रूप (=मूर्ति) खींचे हुए, भित्तिकर्म किये (=रंगसे चित्र खींचे) चित्र (विचित्र) पा त्र-म ळ क को धारणकर सळकपर घूमते थे। लोग हैरान होते थे । भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! रूप खींचे हुए, रंगसे चित्र खींचे पात्र-मळकको न धारण करना चाहिये जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प्र कृ ति म ळ क की । 33

६—उस समय भिक्षु पानीसहित पात्रको सँभाल रखतेथे पात्रमें दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! पानीसहित पात्रको नहीं रख छोड़ना चाहिये जो रख छोड़े उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ धूप दिखाकर पात्रको रखनेकी । 34

७—पानी सहित पात्रको तपाते थे पात्रमें दुर्गन्ध आती थी। भगवान्से यह बात कही।—

पानीसहित पात्रको न तपाना चाहिये दुक्कट । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पानी हटाकर धूप दिखला पात्रको रखनेकी। 35

८—धूपमें पात्रको डालते थे पात्रका रंग विकृत होता है। —

धूपमें पात्रको नहीं डालना चाहिये दुक्कट । अनुमति देता हूँ मुहूर्तभर धूपमें रख पात्र को रख देनेकी। 36

९—उस समय बहुतसे पात्र खुली जगहमें आधारके बिना रखते थे बवंडरने आकर पात्रोंको तोळ दिया। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ पात्र आधारकी। 37

१०— उस समय भिक्षु बारीपर पात्रको रखते थे गिरकर पात्र टूट जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बारीपर पात्रको न रखना चाहिये दुक्कट । 38

११—उस समय भूमिपर पात्रको औंधा देते थे पात्रोंकी बारी घिस जाती थी। भगवान्।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (नीचे) तृण बिछानेकी। 39

१२—तृणके बिछौनेको कीळे खा जाते थे। ।—

अनुमति देता हूँ चो ळ क (=चादर)की। 40

१३—चो ळ क को कीळे खा जाते थे। ।—

अनुमति देता हूँ पा त्र-मा ळ क (=तिपाई? मळघड़ी)की। 41

१४—पात्र-माळकसे गिरकर पात्र टूट जाते थे। ।—

अनुमति देता हूँ पा त्र-क ण्डो लि का (=गोंड्रुल)की। 42

१५—पात्र-कण्डोलिकामें पात्र घिस जाते थे। ।—

" अनुमति देता हूँ पात्रके थैले (=थविका)की। 43

१६—कंधबंद (=गर्दन बाँधनेका बंधन) न था। भगवान्। —

अनुमति देता हूँ कंधबंदकी और बाँधनेकी सुतलीकी। 44

१७—उस समय भिक्षु भीतकी खूँटीपर, ना ग द न्त क (=हाथीदन्ती खूँटी)पर भी पात्रको लटका देते थे गिरकर पात्र टूट जाता था। ।—

"०पात्रको नही लटकाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 45

१८—उस समय भिक्षु चारपाईपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे चारपाईपर बैठते समय उतरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको चारपाईपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 46

१९—०चौकीपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे०।०।—

"०पात्रको चौकीपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 47

२०—उस समय भिक्षु पात्रको अक (=गोद)मे ले रखते थे, याद न रहने ०।०।—

"०अकमें पात्र नही रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 48

२१—० छत्तेपर पात्रको रख देते थे, आधी आनेपर छत्तेके उठ जानेमे पात्र गिरकर टूट जाता था। ०।—

"० छत्तेपर पात्रको न रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 49

२२—उस समय भिक्षु पात्रको हाथमें लिये किवाळको खोलते थे, किवाळसे लगकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"० पात्रको हाथमे ले किवाळ न खोलना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 50

२३—उस समय भिक्षु तूंबेके खप्परको ले भिक्षा मांगने जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कि तीर्थिक। ०।—

"० तूंबेके खप्परमें भिक्षा मांगने नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। 51

२४—० घळेके खप्परमें ०। ० जैसे तीर्थिक। ०।—

"० घळेके खप्परमें भिक्षा मांगने नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 52

(११) चीवर

१—उस समय एक भिक्षु सर्वपासुकूलिक (=जिसके सभी कपळे रास्तेके फेंके चीथळोको सीकर बने हो)था, उसने मुर्देकी खोपळीका पात्र धारण किया। एक स्त्री देख डरके मारे चिल्ला उठी—'अभ्भु[1] मे! अभ्भु मे!! यह पिशाच है रे!!!' लोग हैरान ० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण मुर्देकी खोपळीके पात्रको धारण करेंगे, जैसेकि पिशाचिल्लकामें। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० मुर्देकी खोपळीका पात्र नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 53

भिक्षुओ! सर्व पासुकूलिक नही होना चाहिये, ० दुक्कट ०। 54

२—उस समय भिक्षु चलको (=चाभ कर फेंकी चीजो को भी) (खाकर फेकदी गई) हड्डियोको भी, जूठे पानीको भी पात्रमें ले जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जिसमे खाते हैं, वही इनका प्रतिग्रह (=दान) है। ०।—

"० पात्रमें चलक, हड्डी (और) जूठे पानीको नही ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रहकी।" 55

३—उस समय भिक्षु हाथसे फाळकर चीवरको सीते थे, चीवर ठीक नही (=विलोम) होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ सत्थक (=कैंची) और नमतक (=वस्त्र-खड) की।" 56

---

[1] डरके वक्त निकला शब्द (—अट्ठकथा)।

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रेखा डालनेकी। 31

४—शिकन (=बलि) पळ जाती थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ म क र द न्त (=मकरदन्ती बूँटी) काटनेकी। 32

५—उस समय षड्वर्गीय रूप (=मूर्ति) खींचे हुए, भित्तिकर्म किये (=रंगसे चित्र खींचे) चित्र (विचित्र) पात्र-मण्डलको धारणकर सळकपर घूमते थे। लोग हैरान होते थे। भगवानुसे यह बात कही।—

"भिक्षुओ! रूप खींचे हुए, रंगसे चित्र खींचे पात्र-मंडलको न धारण करना चाहिये जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्र कृ ति म ण्ड ल की। 33

६—उस समय भिक्षु पानीसहित पात्रको सँभाल रखते थे पात्रमें दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवानुसे यह बात कही।—

'भिक्षुओ! पानीसहित पात्रको नहीं रख छोळना चाहिये जो रख छोळे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धूप दिखलाकर पात्रको रखनेकी। 34

७—पानी सहित पात्रको तपाते थे पात्रमें दुर्गन्ध आती थी। भगवानुसे यह बात कही।—

पानीसहित पात्रको न तपाना चाहिये दुक्कट। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पानी खाली कर धूप दिखला पात्रको रखनेकी। 35

८—धूपमें पात्रको डाहते थे पात्रका रंग विकृत होता है।—

धूपमें पात्रको नहीं डाहना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ मुहूर्तभर धूपमें रख पात्रको रख देनेकी। 36

९—०उस समय बहुतसे पात्र खुली जगहमें आधारके बिना रक्खे थे बवंडरने आकर पात्रोंको तोळ दिया। भगवानुसे यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ पात्रके आधारकी। 37

१०—०उस समय भिक्षु बारीपर पात्रको रखते थे गिरकर पात्र टूट जाते थे। भगवानुसे यह बात कही।—

'भिक्षुओ! बारीपर पात्रको न रखना चाहिये दुक्कट। 38

११—उस समय भूमिपर पात्रको औंधा देते थे पात्रकी बारी घिस जाती थी। भगवान्—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (नीचे) तृण बिछानेकी। 39

१२—तृणके बिछौनेको कीळे खा जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ चो ल क (=पोतन)की। 40

१३—चोलकको कीळे खा जाते थे।—

अनुमति देता हूँ पात्र-माल क (=तिपाई? अलमारी)की। 41

१४—पात्र-मालकसे गिरकर पात्र टूट जाते थे।—

अनुमति देता हूँ पात्र-कण्डोलिका (=गोंळुक)की। 42

१५—पात्र-कण्डोलिकासे पात्र घिस जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ, पात्रके थैल (=स्थविका)की। 43

१६—अवबन्ध (=थैला बाँधनेका बन्धन) न था। भगवान्—

०अनुमति देता हूँ अवबन्धकी और बाँधनेकी सुतलीकी। 44

१७—उस समय भिक्षु भीतकी खूँटीपर, ना ग द न्त क (=हथिदन्ती खूँटी)पर भी पात्रको लटका देते थे गिरकर पात्र टूट जाता था।—

बाँधनेकी रस्सी, बाँधनेके सूतसे बाँधकर चीवरके सीनेकी।" 70

सु त्ता न्त रि का यें (=टाँके) बराबर न होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, कलम्बक (=पटियाना)की।" 71

सूत टेढ़े हो जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मो घ सु त्त क (=लगर)की।" 72

उस समय भिक्षु बिना पैर धोये क ठि न पर च ढ ते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०बिना पैर धोये कठिनपर नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 73

उस समय भिक्षु गीले पैरो कठिनपर चढ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०गीले पैरो कठिनपर नहीं चढना चाहिये, ०दुक्कट०।" 74

उस समय भिक्षु पैरमें जूता पहिने कठिनपर चढ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०पैरमे जूता पहिने कठिनपर न चढना चाहिये, ०दुक्कट०।" 75

(ग) मि ज्रा व कैं ची आ दि—उस समय भिक्षु चीवर सीते वक्त अँगुलीसे पकळते थे, अँगुलियाँ रुक्ष (=खुर्दरी) हो जाती थी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह (=मिज्राव)की।" 76

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके प्र ति ग्र ह को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०।—

"० सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके परिग्रहको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी,०[1] शखके (प्रतिग्रह)की।" 77

उस समय स त्थ क (=कैंची) और प्र ति ग्र ह (=मिज्राव) दोनो खो जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, आवेसन-वित्थक (=सियनी)की।" 78

आवेसन-वित्थक उलझ जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह की थैलीकी।" 79

कधे (पर थैलीको लटकाने)का बधन न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कधेपर बाँधनेके सूतकी।" 80

(घ) क ठि न शा ला—उस समय भिक्षु खुली जगहमें चीवर सीते थे। भिक्षु सर्दीसे भी तकलीफ पाते थे, गर्मीसे भी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिनशालाकी, कठिन-मडपकी।" 81

कठिनशाला नीची कुर्सीकी थी, पानी भर जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीके ऊँची बनानेकी।" 82

चुनावट गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीनकी चुनाईकी।" 83

चढनेमें दु ख पाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीन प्रकारकी सीढ़ीकी।" 84

चढ़ते वक्त गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ आलम्बन-बाहुकी।" 85

---

[1] देखो चुल्ल० ५§१।१२ (२) पृष्ठ ४२६।

(१२) शस्त्र आदि

१—उस समय संघको दंड-सत्थक (=चुक्काली) मिला था। ।—

"अनुमति देता हूँ दंड-सत्थककी।" 57

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके सत्थक दंड (=हथियार) को धारण करते थे। जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०भगवान् ।—

भिक्षुओ! सोने-रूपे (आदि) तरह तरहके सत्थक-दंडोंको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नल (=नरकट), बाँस, काठ, लाख, फल, लोह (=लोहा), शंखनाभि (=शंख)के धारनेकी। 58

३—उस समय भिक्षु मुर्गेके पंखसे भी बाँसकी सलाईसे भी चीवरको सीते थे, चीवर ठीकसे न सिलता था। ।—

"अनुमति देता हूँ सूईकी। 59

४—सूइयों मुर्चा लग जाती थी।—

अनुमति देता हूँ सूई (रखनेके लिए) नालीकी। 60

नालियोंमें होनेपर भी मुर्चा लग जाती थी।—

०अनुमति देता हूँ किण्व (=चूर्ण)से भरनेकी। 61

५—किण्व होनेपर भी मुर्चा लग जाती थी।

"अनुमति देता हूँ सत्तूसे भरनेकी। 62

६—सत्तूसे भी मुर्चा लग जाती थी।—

"अनुमति देता हूँ सरितक (=पाषाण-चूर्ण)की।" 63

७—सरितकसे भी मुर्चा लग जाती थी।—

अनुमति देता हूँ मोमसे मलनेकी। 64

८—सरितक टूट जाता था।—

"अनुमति देता हूँ सरितकको सिपाटिका (=थैली)की।" 65

(१३) कठिन-चौपर

(क) कठिन बनाना—उस समय वहाँ वहाँ खूँटा गाड़कर (उनसे) बाँध चीवरको सीनेसे चीवर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता था। ।—

अनुमति देता हूँ कठिन और कठिन-रज्जुकी, उनसे बाँधकर चीवर सीना चाहिये। 66

ऊबड़-खाबड़ (भूमि)पर कठिनको फैलानेसे कठिन टूट जाता था। ।—

"ऊबड़-खाबड़ (भूमि)पर कठिनको नहीं फैलाना चाहिये, ०दुक्कट०। 67

भूमिपर कठिनको फैलानेसे कठिनमें धूल लग जाती थी। ।—

अनुमति देता हूँ तृण बिछानेकी।" 68

कठिनका छोर जीर्ण हो जाता था। ।—

"अनुमति देता हूँ उसको दोहराकर अनुवात (...)से बाँधनेकी। 69

(ख) कठिन छोटा था।—कठिन न पूरा हो सकता था।—

"अनुमति देता हूँ दण्ड कठिन (=चौखटा) बिदलक (=...)

*देखो पृष्ठ।

"हाँ, आवुसो!"

जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०। —सचमुच०" ।०—

"भिक्षुओ! रास्तेमें जाते जलछाका माँगनेपर देनेसे इन्कार नहीं करना चाहिये, जो न दे उसे दुक्कटका दोष हो। 95

"भिक्षुओ! बिना जलछन्नेके रास्तेमें नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 96

"यदि जलछाका न हो, तो संघाटीके कोनेसे ही छानकर पीनेका इरादा रखना चाहिये।"

§२—विहार-निर्माण

(१) नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)

तब भगवान् क्रमशः चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। उस समय भिक्षु नवकर्म (=नई इमारत बनवाना) करते थे, जलछक्का काम न दे सकता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, डंडेमें लगे जलछक्केकी।" 97

डंडेमें लगा जलछक्का भी काम न दे सकता था।०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओत्थरक (=छन्ना)की।" 98

उस समय भिक्षु मच्छरोंसे सताये जाते थे।०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, मसहरीकी।" 99

उस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ था। भिक्षु अच्छे अच्छे भोजोंको खाकर शरीरके अभिसन्न (=सन्न) होनेसे बहुत बीमार रहा करते थे। तब जीवक कौमारभृत्य किसी कामसे वैशाली गया। जीवक कौमारभृत्यने —होनेसे बीमार पळे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ है। भिक्षु० बहुत बीमार पळे हुए हैं। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये चंक्रम (=टहलनेकी जगह) और जन्ताघर (=स्नानगृह)की अनुमति दें, इस प्रकार भिक्षु बीमार न पळेंगे।"

तब भगवान्ने जीवक कौमारभृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सम्प्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य० प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओ को सबोधित किया—

(२) चंक्रम, जन्ताघर

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चक्रम और जताघरकी।" 100

उस समय भिक्षु ऊभळ खाभळ चक्रमपर टहलते थे, पैर दर्द करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, समतल करनेकी।" 101

चक्रम नीची कुर्सीका था, पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुर्सीके करनेकी।" 102

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ ईंट, पत्थर और लकळी—तीन प्रकारकी चुनाईकी।" 103

कठिनशालामें धूल चूर्ण गिर जाता था।—

०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन (=लेवारना) करके सफेद काला गेरूसे रँगने माला कर्म मकरदन्त पाँच पातीके चीवरके बाँस चीवरकी रस्सीकी। 86

उस समय भिक्षु चीवर सीकर कठिन (=फट्टा) को वहीं छोड़ चल जाते थे गिरकर कठिन टूट जाता था। —

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भीतकी खूँटीपर नागदन्त(=हथिदन्ती खूँटी)पर लटकाने-की। 87

२—वैशाली

तब भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर जिधर वैशाली है उधर चारिकाके लिये चल पड़े। उस समय भिक्षु सूई भी सत्थक (=कैंची) भी भैषज्य भी पात्रमें लेकर जाते थे। —

(१४) थैली

०अनुमति देता हूँ, भैषज्यकी थैली (=थविका)की। 88

कंधे (पर लटकानेका) बंधन न होता था।—

अनुमति देता हूँ कंधेके बंधनकी बंधनके सूतकी। 89

उस समय एक भिक्षु कायबंधन (=कमरबंद)से जूतेको बाँध गाँवमें भिक्षाके लिये गया। एक उपासकका सिर वंदना करते वक्त जूतेसे लग गया। वह भिक्षु मूक हो गया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

“०अनुमति देता हूँ जूता (रखने)की थैलीकी। 90

कंधे (पर लटकानेका) बंधन न होता था।—

०अनुमति देता हूँ, कंधेके बंधनकी बंधनके सूतकी। 91

(१५) जलछक्का

उस समय रास्तेमें (चलते) पानी अकल्प्य (=व्यवहारके अयोग्य था और) जलछक्का (=परिस्रावण) न था। —

“अनुमति देता हूँ जलछक्केकी। 92

चोलक (=कपड़ा) ठीक न आता था।—

अनुमति देता हूँ (लकड़ीके मेखलेमें मढ़कर बने) कलछी जैसे जलछक्केकी। 93

चोलकसे काम न चलता था।—

अनुमति देता हूँ धर्मकरक (=गडुए)की। 94

उस समय दो भिक्षु कोसल देशमें रास्तेमें जा रहे थे। एक भिक्षु अनाचार (=ठीक आचार न) करता था। दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे यह कहा—

“आवुस! मत ऐसा कर, यह विहित नहीं है।

उसने उसके प्रति गाँठ बाँध ली। तब प्याससे पीड़ित हो उस भिक्षुने गाँठ बाँध लिये भिक्षुसे यह कहा—

“आवुस! मुझे जलछक्का दो पानी पिऊँगा।

गाँठ बाँधे भिक्षुने न दिया। वह भिक्षु प्याससे मारे मर गया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही।—

“क्या आवुस! माँगनेपर तूने जलछक्का नहीं दिया?

"हाँ, आवुसो !"

जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०। —सचमुच०" ।०—

"भिक्षुओ ! रास्तेमें जाते जलछक्का माँगनेपर देनेसे इन्कार नही करना चाहिये, जो न दे उसे दुक्कटका दोष हो। 95

"भिक्षुओ ! विना जलछक्केके रास्तेमें नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 96

"यदि जलछक्का न हो, तो संघाटीके कोनेसे ही छानकर पीनेका इरादा रखना चाहिये।"

§२—विहार-निर्माण

(१) नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)

तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। उस समय भिक्षु नवकर्म (=नई इमारत बनवाना) करते थे, जलछक्का काम न दे सकता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, डंडेमें लगे जलछक्केकी।" 97

डंडेमें लगा जलछक्का भी काम न दे सकता था।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ओत्थरक (=छन्ना)की।" 98

उस समय भिक्षु मच्छरोंसे सताये जाते थे।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, मसहरीकी।" 99

उस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ था। भिक्षु अच्छे अच्छे भोजोको खाकर शरीरके अभिसन्न (=सन्न) होनेसे बहुत बीमार रहा करते थे। तब जीवक कौमारभृत्य किसी कामसे वैशाली गया। जीवक कौमारभृत्यने —होनेसे बीमार पळे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! इस समय वैशालीमें अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ है। भिक्षु० बहुत बीमार पळे हुए हैं। अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये चक्रम (=टहलनेकी जगह) और जन्ताघर (=स्नानगृह)की अनुमति दें, इस प्रकार भिक्षु बीमार न पळेंगे।"

तब भगवान्ने जीवक कौमारभृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सम्प्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य० प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी संबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओ को संबोधित किया—

(२) चंक्रम, जन्ताघर

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चक्रम और जंताघरकी।" 100

उस समय भिक्षु ऊभळ खाभळ चक्रमपर टहलते थे, पैर दर्द करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, समतल करनेकी।" 101

चक्रम नीची कुर्सीका था, पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुर्सीके करनेकी।" 102

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ ईंट, पत्थर और लकळी—तीन प्रकारकी चुनाईकी।" 103

चढ़नेमें तकलीफ होती थी।—

अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईंटकी सीढ़ी पत्थरकी सीढ़ी लकड़ीकी सीढ़ीकी। 104

चढ़ते समय गिर पड़ते थे।—

अनुमति देता हूँ बाही (=आलम्बन बाहु)की। 105

उस समय भिक्षु टहलते वक्त गिर पड़ते थे। ।—

अनुमति देता हूँ चंक्रमकी वेदीकी। 106

उस समय भिक्षु चौड़ेमें टहलते सर्दी गर्मीसे तकलीफ पाते थे। ।—

अनुमति देता हूँ घेरकर (ओगुम्बेत्वा) लीपने पोतनेकी सफेद काला (या) गेरूसे रँगनेकी माला लता मकरदन्त पंचपटिका (=पाँच पाटीके चीवरके पास) चीवर टाँगनेके अर्गल (=बाँस रस्सी)के बनानेकी। 107

जन्ताघर नीची कुर्सीका होता था (बरसातमें) पानी लग जाता था। ।—

अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीका करनेकी। 108

चिनाई गिर पड़ती थी।—

अनुमति देता हूँ, ईंट पत्थर और लकड़ी—तीन प्रकारकी चिनाईकी। 109

चढ़नेमें तकलीफ होती थी।—

अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईंटकी सीढ़ी पत्थरकी सीढ़ी (और) लकड़ीकी सीढ़ीकी। 110

चढ़ते समय गिर पड़ते थे।—

" अनुमति देता हूँ बाहीकी। 111

जन्ताघरमें किवाड़ न होता था।—

"अनुमति देता हूँ किवाड़, पृष्ठ-संघाट (=बिलाई) उदुक्खल (=देहरी) उत्तरपाशक (=सरदल) अर्गलवर्तिक (=कपाट) कपिशीर्षक (=खूँटी) सूची (=सूई) घटिक (=ताला) ताल-छिद्र (=तालेका छिद्र) आविञ्छनछिद्र (=रस्सीका छिद्र) आविञ्छनरज्जु (=लटकन रस्सी)की। 112

जन्ताघरकी भीतकी जड़ गिराती (=घिसती) थी। —

" अनुमति देता हूँ मेंडरी बनानेकी। 113

जन्ताघरमें धूमनेत्र (=धुँआ निकलनेकी चिमनी) न था। ।—

अनुमति देता हूँ धूमनेत्रकी। 114

उस समय भिक्षु छोटे जन्ताघरके बीचमें आगका स्थान भी बनाते थे। आने जानेका अवकाश न रहता था।—

" अनुमति देता हूँ छोटे जन्ताघरमें एक ओर आगका स्थान बनानेकी और बड़े जन्ताघरमें बीचमें। 115

जन्ताघरमें अग्गिमुख (=मुख) जल जाता था।—

अनुमति देता हूँ मुँहपर मिट्टी देनेकी।" 116

हाथमें मिट्टी भिगाते थे।—

" अनुमति देता हूँ मिट्टीके (भिगानेके लिये) डोनेकी। 117

मिट्टीमें दुर्गन्ध आती थी।—

"०अनुमति देता हूँ मिट्टीको वारनेकी।" 118

जन्ताघरमें आग कायाको जलाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ पानी लाकर रखनेकी।" 119

थालीमें भी पात्रमें भी पानी लाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके स्थान (=उदकाधान)को, शराव (=पुरवे)की।" 120

तृणसे छाया जन्ताघर तृळेसे भर जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ घेरकर लीपने-पोतनेकी।" 121

जन्ताघरमे कीचळ हो जाती थी—

"०अनुमति देता हूँ ईट, पत्थर और लकळी—(इन) तीन प्रकारके बिछावकी।" 122

"०अनुमति देता हूँ, धोनेकी।" 123

पानी लग जाता था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 124

उस समय भिक्षु जन्ताघरमे जमीनपर बैठते थे, शरीरमे खुजली होती थी।—

"०अनूमति देता हूँ, जन्ताघरकी चौकीकी।" 125

उस समय जन्ताघर घिरा न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर और लकळी (इन) तीनके प्राकारोंमे (जन्ताघरको) घेरने की।" 126

(३) कोष्ठक

कोष्ठक (=द्वारका कोठा) न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ कोष्ठककी।" 127

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीके (कोष्ठक)की।" 128

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर और लकळी तीन प्रकारकी चिनाईकी।" 129

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढियोकी—ईटकी सीढी, पत्थरकी सीढी और लकळीकी सीढीकी।" 130

"०अनुमति देता हूँ बाँहीकी।" 131

"०अनुमति देता हूँ किवाळ०[1] आविञ्जनरज्जुकी।" 132

"०अनुमति देता हूँ मेडरी बनानेकी।" 133

उस समय कोष्ठकमे तिनकोका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[2] पचपटिकाकी।" 134

कीचळ होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=चूर्ण) फैलानेकी।" 135

नही पूरा पडता था—

"०अनुमति देता हूँ पदरसिला (=गिट्टी) बिछानेकी।" 136

पानी पळा रहता था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 137

---

[1]चुल्ल० ५§२१२ पृष्ठ ४३० (112)। [2]चुल्ल० ५§२१२ पृष्ठ ४३० (107)।

उस समय भिक्षु नंगे होने एक दूसरेकी बन्दना करते कराते थे। एक दूसरेकी मालिश करते थे, एक दूसरे को (चीजें) देते थे, ग्रहण करते थे, खाते थे, आस्वादन करते थे, पीते थे। ।—

"भिक्षुओ! नंगा होने एक दूसरेकी बन्दना न करनी करानी चाहिये। एक दूसरेकी मालिश न करनी चाहिये, एक दूसरेको देना न चाहिये, ग्रहण न करना चाहिये, न खाना आस्वादन करना (और) पीना चाहिये। जो करना करे, पावे उसे दुक्कटका दोष हो।" 138

उस समय भिक्षु जन्ताघरमें भूमिपर चीवर रखते थे, चीवरमें धूल लग जाती थी।—

अनुमति देता हूँ जन्ताघरमें चीवर (टाँगनेके) बाँस और रस्सीकी। 139

वर्षा होनेपर चीवर भीग जाते थे।—

"अनुमति देता हूँ जन्ताघर-शालाकी। 140

अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीकी करनेकी। 141

अनुमति देता हूँ [1] चिननेकी। 142

अनुमति देता हूँ [2] सीढ़ीकी। 143

अनुमति देता हूँ बाँहीकी। 144

जन्ताघरकी शालामें तिनकेका चूरा पड़ता था—

अनुमति देता हूँ ओगुम्बनकर [3] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीके बनानेकी। 145

उस समय भिक्षु जन्ताघरमें और पानीमें नंगे हो मालिश करनेमें हिचकिचाते थे। ।—

"अनुमति देता हूँ तीन प्रकारके पर्दे (में नंगे होने)की—जन्ताघरका पर्दा, पानीका पर्दा (और) वस्त्रका पर्दा। 146

(४) पानीके स्थान

उस समय जन्ताघरमें पानी नहीं रहता था।—

अनुमति देता हूँ उदपान (=पिठौनी)की। 147

उदपानका कूल (=बारी) टूटता था।—

अनुमति देता हूँ ईंट पत्थर और लकड़ीकी चिनाईकी। 148

"अनुमति देता हूँ ऊँची कुरसी बनानेकी।" 149

अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी। 150

"अनुमति देता हूँ बाँहीकी। 151

उस समय भिक्षु बल्लीसे भी कमरबन्दसे भी पानी निकालते थे—

"अनुमति देता हूँ, पानी निकालनेके (=कूएँ)की रस्सीकी। 152

हाथमें दर्द होने लगता था—

अनुमति देता हूँ, तुला (=ढेंकली) करकटक (=पुर) और चक्रवट्टक (=रहट)की। 153

बर्तन बहुत टूटते थे—

"अनुमति देता हूँ तीन वारकों (=रस्सा)की—लोहवारक, काष्ठवारक और चर्म खण्डकी।" 154

उस समय भिक्षु खुली जगहमें पानी निकालते शीतमें भी घाममें भी कष्ट पाते थे।—

"अनुमति देता हूँ भिक्षुओ उदपान-शाला (=कूएँ परकी छाजन)की।" 155

---

[1] देखो पृष्ठ ५१०-११ (107 127)। [2] देखो पृष्ठ ५११ (129)।
[3] देखो पृष्ठ ५११ (130)।

उदपान-शालामें तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्वनकर०[१] पचपटिका, चीवर (टाँगने)के वाँस रस्सीकी।" 156

उदपान (=कुआँ) ढँका न होता था, तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पिहान (पिधान, ढक्कन)की।" 157

पानीका वर्तन न था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके दोनके, पानीके कड़ारकी।" 158

उस समय भिक्षु आराममे जहाँ तहाँ नहाते थे, उन्हे उसमे आराममें कीचळ (=चिक्खल्ल) हो जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, च न्द नि का (=हौज)की।" 159

चन्दनिका ढँकी न होती थी।, भिक्षु नहानेमें लजाते थे—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळी—तीन प्रकारके प्राकारोंसे घेरनेकी।" 160

चन्दनिकामें कीचळ हो जाता था।—

"०अनुमनि देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळी इन तीन प्रकारके विछावकी।" 161

पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 162

उस समय भिक्षुओके शरीर भीगे रहते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ अगोछे (=उदकपुछन चोलक)से सुखानेकी।" 163

उस समय एक उपासक सघके लिये पुष्करिणी वनवाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पुष्करिणीकी।" 164

पुष्करिणीका कूल (=किनारा) गिर जाता था—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 165

"०अनुमति देता हूँ, सीढीकी—०।" 166

"०अनुमति देता हूँ, बाहीकी।" 167

पानी पुराना हो जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी, पानीकी नहरकी।" 168

उस समय एक भिक्षु सघके लिये निल्लेख (=मुँडेरेवाला) जन्ताघर बनाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, निल्लेख जन्ताघरकी।" 169

(५) आसन, शय्या

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु चौमासे भर आसनी (=निषीदन)ले प्रवास करते थे।०—

"०भिक्षुओ! चौमासे भर आसनी ले प्रवास न करना चाहिये, जो प्रवास करे, उसे दुक्कटका दोष हो।" 170

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु फूल विखेरी शय्यापर सोते थे। लोग विहारमें घूमते वक्त (उसे) देखकर हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"०भिक्षुओ! फूल विखेरी शय्यापर न सोना चाहिये,० दुक्कट०।" 171

उस समय लोग गधकी माला भी लेकर आराममें आते थे। भिक्षु सदेहमे पळ नही लेते थे।०—

---

[१] देखो पृष्ठ ४३० (107)।

अनुमति देता हूँ गंधको ग्रहणकर किवाड़में पाँच अँगुलियोंकी छाप (=पंचांगुलिक) देनेकी और फूलोंको ग्रहण कर विहारके एक ओर रख देनेकी। 172

उस समय संघको न म त क (=बरतन-भाड़)मिला था। —

अनुमति देता हूँ नमतककी। 173

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या नमतकका इस्तेमाल (=अधिष्ठान) करना चाहिये या विकल्प (=बारीसे इस्तेमाल) करना चाहिये ? —

'भिक्षुओ ! नमतकका न अधिष्ठान करना चाहिये न विकल्प करना चाहिये। 174

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु आसिक्तउपधान (=सोने चाँदीके तारसे खचित तकिये) को इस्तेमाल करते थे —जैसे कामभोगी गृहस्थ। —

'भिक्षुओ ! आसिक्त-उपधानको नहीं इस्तेमाल करना चाहिये, दुक्कट। 175

उस समय एक भिक्षु रोगी था वह भोजन करते वक्त हाथमें पात्र न रख सकता था।—

अनुमति देता हूँ म लो रि क (=आधार-घड़ेके आधार)की। 176

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु एक बर्तनमें खाते थे एक प्यालेमें भी पीते थे एक चारपाईपर भी लेटते थे एक बिछौनेपर भी लेटते थे एक ओढ़नेमें भी लेटते थे। एक ओढ़ने-बिछौनेमें भी लेटते थे। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।—

'भिक्षुओ ! एक बर्तनमें नहीं खाना चाहिये एक प्यालेमें नहीं पीना चाहिये एक चारपाईपर नहीं लेटना चाहिये एक बिछौनेपर नहीं लेटना चाहिये एक ओढ़नेमें नहीं लेटना चाहिये एक ओढ़ने-बिछौनेमें नहीं लेटना चाहिये। जो खाये लेटे उसे दुक्कटका दोष हो। 177

(६) वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र औंधना

उस समय व ड्ढ लि च्छ वी मे त्ति य औ र भु म्म ज क भिक्षुओंका मित्र था। तब वड्ढ लिच्छवी जहाँ मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओंसे यह बोला—

"आर्यो ! वन्दना करता हूँ।

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

दूसरी बार भी वड्ढ लिच्छवी ।

तीसरी बार भी वड्ढ लिच्छवी यह बोला—

'आर्यो ! वन्दना करता हूँ।

तीसरी बार भी मेत्तिय और भुम्मजक भिक्षु नहीं बोले।

'क्या मैंने आर्योंका अपराध किया ? क्यों आर्य मुझसे नहीं बोल रहे हैं ?

'क्योंकि आवुस वड्ढ ! द र्भ म ल्ल पु त्र[1] द्वारा हमें सताये जाते देखकर भी तुम पर्वाह नहीं करते।

(तो) आर्यो ! मैं क्या करूँ ?

"आवुस वड्ढ ! यदि तुम चाहो तो आजही भगवान् आयुष्मान् दर्भमल्लपुत्रको नाश (निकाल) देंगे।

'आर्यो ! मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर सकता हूँ ?

'आओ आवुस वड्ढ ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान्‌से यह कहो—

---

[1] देखो चुल्ल ४§२।१ पृष्ठ ३९५-९६।

'भन्ते ! यह योग्य नहीं०[1] पानी जलतासा मालूम पळता है। आर्य दर्भमल्लपुत्रने मेरी स्त्री को दूषित किया।'

"अच्छा आर्या !"—०[1] ।

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमें भी मैथुन सेवन करनेको मै नही जानता, जागनेकी तो बात ही क्या ?"

तब भगवान्ने भिक्षुओको संबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ वड्ढ लिच्छवी पुत्रका पत्त-निकुज्जन करे ।

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त उपासकके लिये, पत्तनिकुज्जन (=उसकी भिक्षा आनेपर उसे न लेनेपर पात्रको मूँद दिया जाय) करना चाहिये—(१) भिक्षुओंके अलाभ (=हानि)के लिये प्रयत्न करता है, (२) भिक्षुओंके अनर्थके लिये प्रयत्न करता है, (३) भिक्षुओंके अवास (=न रहने)के लिये प्रयत्न करता है, (४) भिक्षुओका आक्रोश (=निंदा) परिहास करता है, (५) भिक्षुओकी आपसमें फूट कराता है, (६) बुद्धकी निंदा करता है, (७) धर्मकी निन्दा करता है, (८) सघकी निन्दा करता है।—भिक्षुओ ! उन पाँच० । 178

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-निक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ भि क्षु सघको सूचित करे।—

"क ज्ञ प्ति ०। ख अ नु श्रा व ण ०।

"ग धा र णा—'सघने व ड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र ढाँक दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर ले जहाँ वड्ढ लिच्छवीका घर था, वहाँ गये। जाकर वड्ढ लिच्छवीसे यह बोले—

"आवुस वड्ढ ! सघने तेरे लिये पात्र ढाँक दिया, सघके उपयोगके तुम अयोग्य हो ।"

तब वड्ढ लिच्छवी—'सघने मेरे लिये पात्र ढाँक दिया, मैं सघके उपयोगके अयोग्य हूँ'—(सोच) वहीं मूर्छित हो गिर पळा। तब वड्ढ लिच्छवी मित्र-अमात्य, जाति-विरादरीवाले वड्ढ लिच्छवीसे यह बोले—

"बस आवुस वड्ढ ! मत शोक करो, मत खेद करो। हम भगवान् और भिक्षु-सघको मनावेंगे।"

तब वड्ढ लिच्छवी स्त्री-पुत्र सहित, मित्र-अमात्य जाति-विरादरीवालो सहित भीगे वस्त्रो भीगे केशो सहित, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के पैरोमें शिरसे पळकर भगवान्से यह बोला—

"भन्ते ? बाल (=मूर्ख)सा, मूढसा, अचतुरसा हो मैंने जो अपराध किया, जोकि मैंने आर्य दर्भ, मल्लपुत्रको निर्मूल शील-भ्रष्टताका दोष लगाया, सो भन्ते ! भगवान् भविष्यमें सवर (=रोक करने) के लिये मेरे उस अपराधको अत्ययके तौरपर स्वीकार करें।"

"आवुस ! जो तूने बालसा हो अपराध किया०। चूँकि आवुस ! तू अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है, इसलिये हम उसे स्वीकार करते हैं। आवुस ! वड्ढ आर्य विनयमें यह वृद्धि (की बात) है, जो कि (किये) अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार (उसका) प्रतीकार करना, और भविष्यके सवरके लिये प्रयत्नशील होना।"

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्रको उघाळ दे।

[1] देखो चुल्ल० ४§२।१ पृष्ठ ३९५-६।

"भिक्षुओ! आठ बातोंसे युक्त उपासकके लिये संघ पत्त-उक्कुज्जन (=पात्र उघाड़ना) करे—(१) भिक्षुओंके अलाभके लिये (२) अनर्थके लिये (३) अवासके लिये प्रयत्न नहीं करता (४) भिक्षुओंकी आक्रोश परिहास नहीं करता (५) भिक्षुओंको आपसमें फूट नहीं करता (६) बुद्धकी निन्दा नहीं करता (७) धर्मकी निन्दा नहीं करता (८) संघकी निन्दा नहीं करता।—इन पाँच। 179

"और भिक्षुओ! इस प्रकार पत्त-उक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति। ख. अनुश्रावण।

"ग. धारणा—'संघने वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र उघाड़ दिया। संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

३—सुंसुमारगिरि

तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर भर्ग है उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ भर्ग था वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भर्ग (देश)के सुंसुमारगिरिके भेसकलावनके मृगदावमें विहार करते थे।

(७) बोधिराजकुमारका सत्कार

उस समय बोधि राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे कोकनद नामक प्रासादको हालहीमें बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ तुम सौम्य! संजिकापुत्र! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अल्प-आतंक, लघु-उत्थान (=शरीरकी कार्यक्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते! बोधि-राजकुमार भगवान्के चरणोंमें शिरसे वन्दनाकर आरोग्य पूछता है' और यह भी कहो—'भन्ते! भिक्षु-संघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।'"

"अच्छा हो (=भो)" कह संजिका-पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से (कुशल प्रश्न) पूछ एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर संजिका-पुत्र माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें । बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब संजिका-पुत्र माणवक भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था वहाँ गया। जाकर बोधि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैंने उन गौतमको कहा—हे गौतम! बोधि राजकुमार । श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमें उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा कोकनद प्रासादको सफेद (अवदात) धुस्साससे सीढ़ीके नीचे तक बिछवा संजिकापुत्र माणवकको संबोधित किया—

"आओ सौम्य! संजिकापुत्र! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाकर भगवान्को काल कहो—'भन्ते! काल है भात (=भोजन) तैयार हो गया।'

---

¹देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ४१७-१९।

"अच्छा भो !" काल कह ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर(=निवेसन) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्‌की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वारकोष्ठक (=नौवत-खाना)के बाहर खडा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखते ही अगवानीकर भगवान्‌की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया। तब भगवान् निचली सीढीके पास खळे हो गये। बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोपर चले। सुगत ! धुस्सोपर चले, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

(८) पाँवळेका निषेध

१—ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने०। तीसरी बार भी०।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा। आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राजकुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोको समेट लो। भगवान् पाँवळे (=चैल-पंक्ति)पर न चढेंगे। तथागत आनेवाली जनताका ख्याल कर रहे हैं।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सोको समेटवाकर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन बिछवाये। भगवान् कोकनद-प्रासादपर चढ, सघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब बोधि-राजकुमारने बुद्धसहित भिक्षुसघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय(पदार्थो)से सर्तपित किया, सतुष्ट किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खीच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे बोधिराजकुमारको भगवान् धार्मिक कथासे समुत्तेजित सप्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाँवळेपर नही चलना चाहिये, जो चले, उसे दुक्कटका दोष हो।" 180

२—उस समय एक अपगतगर्भा (=लळायन) स्त्रीने भिक्षुओको निमत्रित कर कपळा (=दुस्स) बिछा यह कहा—

"भन्ते ! कपडेपर चले।"

भिक्षु हिचकिचाकर नही चल रहे थे।

"भन्ते ! मगलके लिये कपडेपर चले।"

भिक्षु हिचकिचाकर कपडेपर न चले। तब वह स्त्री हैरान ० होती थी—'कैसे आर्य लोग मगलके लिये याचना करनेपर भी पाँवडेपर नही चलते !' भिक्षुओने उस स्त्रीके हैरान ० होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने यह बात भगवान्‌से कही।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ लोग (मगल। होनेवाले कामोके) करनेवाले होते हैं। 181

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोंके मगलके लिये याचना करनेपर पाँवळेपर चलनेकी।" 182

§३—पंखा, छींका, छत्ता, दण्ड, नख-केश, कन-खोदनी, अंजन-दानी

४—श्रावस्ती

(१) घळा, झाळू

तब भगवान्‌ने भर्ग (देश)में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है, उधर चारिकाके

लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथ पिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। तब विशाखा मृगारमाता घड़े कतक (=झाँवाँ) और झाड़ू लिया जहाँ भगवान् थे वहाँ गई, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्से यह कहा—

'भन्ते! भगवान् मेरे घड़े कतक और झाड़ूको स्वीकार करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।

भगवान्ने घड़े और झाड़ूको ग्रहण किया, किन्तु कतकको नहीं ग्रहण किया। भगवान्ने विशाखा मृगारमाताको धार्मिक कथा द्वारा ... समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। ... भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया।—

अनुमति देता हूँ घड़े और झाड़ूकी। भिक्षुओ! कतकका इस्तेमाल न करना चाहिये, दुक्कट। 183

अनुमति देता हूँ (पत्थरके) ढेले, कठल (=काठ) और समुद्रफेन—इन तीन प्रकारके पैर-घिसनाकी। 184

(२) पंखा

तब विशाखा मृगारमाता बेने और ताळके पंखेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। ...—

भन्ते! भगवान् मेरे बेने और ताळके पंखेको स्वीकार करें, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।

भगवान्ने बेने और ताळके पंखेको स्वीकार किया। ...—

अनुमति देता हूँ बेने और ताळके पंखेकी। 185

उस समय संघको मच्छर हाँकनेकी बिजनी मिली थी। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ मच्छरकी बिजनीकी। 186

चँवरकी बिजनी (=चमरीकी बिजनी) मिली थी। —

'भिक्षुओ! चँवरकी बिजनी नहीं धारण करनी चाहिये, दुक्कट। 187

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी बिजनियोंकी—छालकी, खसकी और मोरपंखकी। 188

(३) छत्ता

उस समय संघको छत्ता मिला था। —

अनुमति देता हूँ छतेकी। 189

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु छत्ता लेकर टहलते थे। उस समय एक (बौद्ध) उपासक बहुतसे आजीवकोंके अनुयायियोंके साथ बागमें गया था। उन आजीवक-अनुयायियोंने दूसरे षड्वर्गीय भिक्षुओंको छत्ता धारण किये आते देखा। देखकर उस उपासकसे यह कहा—

"आवुसो! यह तुम्हारे भदन्त हैं, छत्ता धारण करके आ रहे हैं, जैसे कि गणक महामात्य (=हिसाब निरीक्षक)!!

"आर्यो! यह भिक्षु नहीं हैं, यह परिव्राजक हैं।

'भिक्षु हैं, भिक्षु नहीं हैं'—इसके लिये उन्होंने बाजी (=अद्भुत) लगाई। तब पासमें आनेपर पहिचानकर वह उपासक हैरान होता था—कैसे भदन्त छत्ता धारण कर टहलते हैं!

भिक्षुओंने उस उपासकके हैरान होने ० को सुना। तब उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—
"सचमुच ०।—

"भिक्षुओ! छत्ता न धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 190

उस समय भिक्षु रोगी था, छत्तेके विना उसे अच्छा न होता था।०—

"० अनुमति देता हूँ रोगीको छत्तेकी।" 191

उस समय भिक्षु—भगवान्‌ने रोगीको ही छत्ता धारण करनेके लिये यही विधान किया है, अरोगीको नहीं—(सोच) आराममें और आरामके बागमें (भी) छत्ता धारण करनेमें हिचकिचाते थे।०—

"० अनुमति देता हूँ अरोगीको आराममें और आरामके पास छत्ता धारण करनेकी।" 192

(४) छींका, दंड

उस समय एक भिक्षु सीके (=सिक्का)में पात्रको डाल डंडेमें लटका अपराह्णमें एक गाँवके द्वारसे जा रहा था।—लोग—यह आर्यो! चोर है, तलवार इसकी दीख रही है—कह दौड़े, (पीछे) पहिचानकर (उन्होंने) छोड़ दिया। तब भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही।—

"क्या आवुस! तूने सीका-डंडा धारण किया था?"

"हाँ, आवुसो!"

०अल्पेच्छ० हैरान होते थे।० सचमुच०।०—

"भिक्षुओ! सीका-डंडा न धारण करना चाहिये,० दुक्कट०।" 193

उस समय एक भिक्षु बीमार था, डंडे विना चल न सकता था।०—

"भिक्षुओ! रोगी भिक्षुको डंड रखनेकी सम्मति देनेकी अनुमति देता हूँ। 194

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देना चाहिये—याचना—(१) "वह रोगी भिक्षु संघके पास जा[1]० याचना करे—'भन्ते! मैं रोगी हूँ विना डंडेके चल नहीं सकता। सो मैं भन्ते! संघसे डंडेकी सम्मति माँगता हूँ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति०।

"ख अनुश्रावण०।

"ग धारणा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको डंडा (रखने)की सम्मति दे दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

उस समय एक भिक्षु रोगी था, विना सीकेके पात्र नहीं ले चल सकता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको सीकेके लिये सम्मति देनेकी।" 195

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[2]।"

उस समय एक भिक्षु बीमार था, विना डंडेके चल नहीं सकता था, विना सीकेके पात्र नहीं ले चल सकता था।०—

"०अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको सीका-डंडाके लिये सम्मति देनेकी।" 196

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[2]।"

---

[1] ऊपर दण्डकी सम्मतिकी भाँति ही।

[2] ऊपरकी तरह।

उस समय भिक्षुओ ! एक जुगाली करनेवाला भिक्षु था वह जुगाली कर करके खाता था। भिक्षु हैरान होते थे—'यह भिक्षु अपराह्न बाद (विकाल)में भोजन करता है !' भगवान्‌से यह बात कही—

'भिक्षुओ ! यह भिक्षु हालहीमें गायकी योनिसे (यहाँ) पैदा हुआ है।

अनुमति देता हूँ रोमन्थक (=जुगाली करनेवाले)को जुगाली करनेकी। किन्तु भिक्षुओ ! मुखके द्वारपर लाकर नहीं खाना चाहिये जो खाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। । 197

उस समय एक पूग (=धनियोंका संघ)ने संघको भोज दिया था। (भिक्षुओंने) चौकेमें बहुत जूठ बिखेर दिया। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण भोजन देनेपर सत्कारपूर्वक नहीं ग्रहण करते ! एक एक कणिका भी कामसे बनता है। भिक्षुओंने सुना। ।—

अनुमति देता हूँ देते वक्त जो गिरे, उसे स्वयं लेकर खानेकी। भिक्षुओ ! उसे दायकोंने प्रदान किया है। 198

(५) नख काटना

उस समय एक भिक्षु लम्बा नख (बढ़ाये) भिक्षाचार करता था। एक स्त्रीने देखकर उस भिक्षुसे यह कहा—

"आओ भन्ते ! मैथुन सेवन करो।

"नहीं भगिनी ! यह (हमारे लिये) विहित नहीं है।

'भन्ते ! यदि तुम न सेवन करोगे इसी समय मैं अपने नखोंसे शरीरको नोचकर (तुम्हें) चिल्लाऊँगी—यह भिक्षु मुझे दूषित कर रहा है।

'जैसा समझो भगिनी !

तब वह स्त्री अपने नखोंसे अपने शरीरको नोचकर चिल्लाई—'यह भिक्षु मुझे दूषित कर रहा है। लोगोंने दौड़कर उस भिक्षुको पकड़ लिया। (तब) उन मनुष्योंने उस स्त्रीके नखोंमें खून भी चमड़ा भी लगा देखा। देखकर—'इसी स्त्रीका यह कर्म है भिक्षुने कुछ नहीं किया—(सोच) उस भिक्षुको छोड़ दिया। तब उस भिक्षुने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही।—

"क्या आवुस ! तूने लम्बा नख बढ़ाया है ?

"हाँ आवुस !

अल्पेच्छ ।०—

'भिक्षुओ ! लम्बे नख नहीं धारण करने चाहिये दुक्कट । 199

उस समय भिक्षु नखसे भी नखको काटते थे मुखसे भी नखको काटते थे दीवारसे भी नखको घिसते थे—अंगुलियाँ पीड़ा देती थी। —

अनुमति देता हूँ नहनी (=नखच्छेदन)की। 200

खून सहित नखको काटते थे अंगुलियोंमें दर्द होता था—

अनुमति देता हूँ मांसके बराबर तक नख काटनेकी। 201

उस समय षड्‌वर्गीय भिक्षु बीसतिमट्ठ कटाते (बीसों नखोंमें लिखाते) थे। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ। —

"भिक्षुओ ! बीसतिमट्ठ नहीं कटाने चाहिये दुक्कट । अनुमति देता हूँ मैल मात्रको निकालनेकी। 202

(६) केश कटना

उस समय भिक्षुओंके केश लम्बे होते थे। —

"भिक्षुओ ! क्या भिक्षु एक दूसरेके केशको काट सकते हैं ?

"हाँ काट सकते हैं, भन्ते !"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें० भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छुरे, छुरेकी सिल, छुरेकी सिपाटिका (=चमोटी) नमतक (=नहन्नी ?) सभी छुरेके सामानकी।" 203

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु मूंछ कटवाते थे, मूंछ बढ़ाते थे, गोलोमिका (=बकरे जैसी दाढ़ी) रखवाते थे, चौकोर (=चतुरस्रक) करते थे, परिमुख (=छातीका बाल कटवाना) कराते थे, अड्डुरक (=पेटके बालोंमें रोम पंक्ति छोड़ना) करते थे, दाढ़ी (=दाठिका) रखते थे, गुह्य स्थानके रोम कटवाते थे। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! मूंछ नहीं कटवानी चाहिये, मूंछ बढ़ानी न चाहिये, गोलोमिका०, चतुरस्रकर्म, परिमुख, अड्डुरक, नहीं कटवाना चाहिये, दाढ़ी नहीं रखनी चाहिये, गुह्य स्थानके रोमको नहीं कटवाना चाहिये, जो० कटवाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 204

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कर्तरिका (=कैंची)से बाल कटाते थे।०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! कैंचीसे बाल नहीं कटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 205

उस समय एक भिक्षुके शिरमें घाव था, छुरेसे बाल मुंड़वा न, सकता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, रोगके कारण कैंचीसे बाल कटवानेकी।" 206

उस समय भिक्षु नाकमें लम्बे लम्बे केश धारण करते थे।०—जैसे कि पिशाच (=पिशाचिल्लिका)।०—

"भिक्षुओ ! नाकमें लम्बे लम्बे केश न धारण करना चाहिये, ।० दुक्कट ०।" 207

उस समय भिक्षु ठीकरीसे भी मोमसे भी, नाकके केशोंको उखळवाते थे, नाक दर्द करती थी।०—

"० अनुमति देता हूँ, चिमटी (=सडास)की।" 208

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु पके बालोंको निकलवाते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! पके बालोंको न निकलवाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 209

(७) कन-खोदनी

उस समय एक भिक्षुका कान मैलसे भरा हुआ था।०—

"० अनुमति देता हूँ कर्णमल-हरणीकी।" 210

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नानाप्रकारकी कर्णमलहरणियाँ रखते थे सुनहली भी, रुपहली भी। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! सुनहली रुपहली (आदि) नाना प्रकारकी कर्णमलहरणियाँ नहीं रखनी चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नरकट, बाँस, काठ, लाख, फल, ताँबे और शसकी (कर्णमलहरणियोंकी)।" 211

(८) ताँबे काँसेके बर्तन

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुतसे ताँबे (=लोह) काँसेके भाँडोका सचय करते थे। लोग विहारमें घूमते वक्त देखकर हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण बहुतसे ताँबे, काँसेके भाँडोको सचय करते हैं, जैसे कि कसपत्थरिका (=कसेरा)। भगवानसे यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! ताँबे, काँसेके भाँडोका सचय नहीं करना चाहिये, ० दुक्कट ०। 212

(९) अंजनदानी

उस समय भिक्षु अंजनदानीको भी अंजन सलाईको भी कर्णमलहरणीको भी अंजनको भी गलेमें लटकाये फिरते थे। —

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीकी अंजन सलाईकी कर्णमलहरणीकी अंजन थैलीकी। 213

§४—संघाटी, आयोग-पट्ट, घुंडी, मुद्धी, वस्त्र पहिननेके ढंग

(१) संघाटी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघाटी(के सहित) पलथी मार बैठते थे संघाटीके पास रखा जाते थे। —

"भिक्षुओ! संघाटी पलथीसे नहीं बैठना चाहिये दुक्कट । 214

(२) आयोग-पट्ट

उस समय एक भिक्षु रोगी था वह बिना आयोग[1] उस ठीक न होता था। —

अनुमति देता हूँ आयोगकी। 215

(क) आयोग बुनने का सामान—तब भिक्षुओंको यह हुआ—कैसे आयोगको बुनना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ तांत (=तन्तक) वेमक (=?) वट्ट (=साप) सलाका और सभी तांत (=कर्घे)के सामानकी। 216

(३) कमरबंद

१—उस समय एक भिक्षु बिना कमरबंद (=कायबंधन) बाँधे ही गाँवमें भिक्षाके लिये गया मार्गपर उसका अन्तरवासक खिसककर गिर गया। लोगोंने ताली पीटी। वह भिक्षु मूक हो गया। उसने आराममें आकर भिक्षुओंसे यह बात कही। —

बिना कमरबंदके गाँवमें भिक्षाके लिये नहीं प्रवेश करना चाहिये दुक्कट । अनुमति देता हूँ कमरबंदकी। 217

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कलाबुक[2] देड्डुभक[3] मुरज मद्दवीण[4] नाना प्रकारके कमरबंद धारण करते थे। —जैसे कामभोगी गृहस्थ।—

"भिक्षुओ! कलाबुक देड्डुभक मुरज मद्दवीण—नाना प्रकारके कमरबंदको नहीं धारण करना चाहिये दुक्कट । 218

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो प्रकारके कमरबन्दकी—पट्टीकी[5] और सूअरकी आँत जैसी।

३—कमरबंदके किनारे छिन्न जाते थे।—

अनुमति देता हूँ मुरज और मद्दवीणकी। 219

४—कमरबंदके छोर छिन्न जाते थे।—

---

[1] उकड़ूँ बैठे पीठ-पैरमें बाँधनेका अंगोछा। [2] गोल। [3] पानीके साँपके फन जैसा। मृदंग जैसा। [4] कार्णिकके आकारका।
[5] साधारणतया बुनी या मछलीके काँटे जैसी बुनी (—अट्ठकथा)।

" ० अनुमति देता हूँ शो भ क (=स्पेटदार सिलाई), और गु ण क (=मृदंगकी भाँति सिलाई) की ।" 220

५—कमरबंदका पत्ता छिन जाता था ।—

" ० अनुमति देता हूँ वीठ (=बिठई) की ।" 221

६—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी वीठ धारण करते थे ।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ ।०—

"भिक्षुओ ! सोने रूप नाना प्रकारकी वीठ नहीं धारण करनी चाहिये, ० दुक्कट ० । अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शंख और सूतकी ।" 222

(४) घुण्डी मुद्धी

१—उस समय आयुष्मान् आ न न्द हल्की संघाटी पहिन गाँवमें भिक्षाके लिये गये। हवाके झोंकेने संघाटीको उड़ा दिया। आयुष्मान् आनन्दने आराममें जा भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही—

" ० अनुमति देता हूँ घुण्डी, मुद्धीकी ।" 223

२—० षड्वर्गीय भिक्षु सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी घुण्डियाँ धारण करते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ ।०—

"भिक्षुओ ! सोने रूपे नाना प्रकारकी घुण्डीको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शंख और सूतकी (घुण्डीकी) ।" 224

३—उस समय भिक्षु घुण्डी भी मुद्धी भी चीवरमें ही लगाते थे, चीवर जीर्ण हो जाता था ।०—

" ० अनुमति देता हूँ, (चीवरमें) घुण्डी और मुद्धीके चकत्तेको लगानेकी ।" 225

४—घुण्डी और मुद्धीके चकत्तेको (चीवरके) छोरपर लगाते थे, कोना खुल जाता था ।०—

" ० अनुमति देता हूँ घुण्डीके चकत्तेको अंतमें लगानेकी, मुद्धीके चकत्तेको सात आठ अंगुल भीतर हटकर ।" 226

(५) वस्त्र पहिननेके ढंग

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु गृहस्थों जैसे वस्त्र पहिनते थे—ह स्ति शौं डि क[2] भी, म त्स्य वा ल क[3] भी, च तु ष्क र्ण क[4], ता ल वृ न्त क[5], श त व ल्लि क[6] भी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ ०।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोंकी भाँति—हस्तिशौंडिक, मत्स्यवालक, चतुष्कर्णक, तालवृन्तक, शतवल्लिक-वस्त्र नहीं पहिनना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 227

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कछनी काछते थे।०—जैसे कि राजाकी मुंडवट्टी (=वाहक) । ०—

---

[1] पृष्ठ ४४१ (211) ।

[2] चोल (देश)की स्त्रीकी भाँति नाभीसे नीचे तक लटकाना (—अट्ठकथा) ।

[3] किनारी और छोरको चुनकर मछलीकी पूँछकी भाँति पहिनना ।

[4] ऊपर दो, नीचे दो इस प्रकार चारो कोनोको दिखाते कपळोका पहिनना ।

[5] तालके पत्तेकी भाँति चुनकर लटकाना ।

[6] सैंकळो चुनावोंको दिखाते पहिनना ।

(९) अंजनदानी

उस समय भिक्षु अंजनदानीको भी अंजन सलाईको भी कर्णमलहरणीको भी बंधनको भी रखनेमें हिचकिचाते थे। —

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अंजनदानीकी अंजन सलाईकी कर्णमलहरणीकी बंधन मालाकी। 213

§४—संघाटी, आयोग-पट्ट, घुंडी मुद्धी, वस्त्र पहिननेके ढंग

(१) संघाटी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु संघाटी (के सहित) पलथी मार बैठते थे। संघाटीसे पाल रखा जाते थे। —

'भिक्षुओ! संघाटी पलथीसे नहीं बैठना चाहिये, दुक्कट०। 214

(२) आयोग-पट्ट

उस समय एक भिक्षु रोगी था, वह बिना आयोग[1] उसे ठीक न होता था।०—

अनुमति देता हूँ आयोगकी। 215

(क) आयोग बुननेका सामान—तब भिक्षुओंको यह हुआ—कैसे आयोगको बुनना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ तांत (=तन्तक) वेमक (=बै) पट्ट (=नाप) सलाका और सभी तांत (=करघे)के सामानकी। 216

(३) कमरबंद

१—उस समय एक भिक्षु बिना कमरबंद (=कायबन्धन) बांधे ही गाँवमें भिक्षाके लिये गया। सड़कपर उसका अन्तरवासक खिसककर गिर गया। लोगोंने ताली पीटी। वह भिक्षु मूक हो गया। उसने आराममें जाकर भिक्षुओंसे यह बात कही। —

बिना कमरबंद गाँवमें भिक्षाके लिये नहीं प्रवेश करना चाहिये, दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कमरबंदकी। 217

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कलाबुक[2] देड्डुभक[3] मुरज, मद्दवीण[4] नाना प्रकारके कमरबंद धारण करते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ। —

'भिक्षुओ! कलाबुक देड्डुभक मुरज मद्दवीण—नाना प्रकारके कमरबंदोंको नहीं धारण करना चाहिये, दुक्कट०। 218

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो प्रकारके कमरबन्दोंकी—पट्टीकी[5] और सूअरके आंत जैसेकी।

३—कमरबंदके किनारे छिन्न जाते थे।—

" अनुमति देता हूँ मुरज और मद्दवीणकी। 219

४—कमरबंदके छोर छिन्न जाते थे।—

---

[1] उकडूँ बैठे पीठ-पैरमें बांधनेका अंगोछा। [2] गोल। [3] पानीके सांपके फन जैसा। मृदंग जैसा। [4] धागेके आकारका।

[5] साधारणतया बुनी या मछलीके कांटे जैसी बुनी (—अट्ठकथा)।

(४) वृक्षपर चढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वृक्षपर चढते थे।०—जैसे वानर।०—

"भिक्षुओ! वृक्षपर न चढना चाहिये, दुक्कट०।" 236

२—उस समय एक भिक्षुके कोसल देशमें श्रावस्ती जाते समय रास्तेमे एक हाथी निकला। तब वह भिक्षु दौळकर वृक्षके नीचे गया, किन्तु सन्देहमे पळकर पेळपर न चढ सका। वह हाथी दूसरी ओर चला गया। तब उस भिक्षुने श्रावस्तीमे जा यह बात भिक्षुओमे कही। ०—

"०अनुमति देता हूँ, काम होनेपर पोरिसाभर और आपत्कालमे यथेच्छ वृक्षपर चढनेकी।" 237

§६—बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें, झूठी विद्या न पढ़ना, सभामे बैठनेका नियम, लहसुनका निषेध

(१) बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें

उस समय यमेळ य मे ळ ते कु ल नामक ब्राह्मण जातिके सुन्दर (=कल्याण) वचनवाले, सुन्दर वचन बोलनेवाले दो भाई भिक्षु थे। वह जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति कुल, के (पुरुष) प्रव्रजित होते हैं, वह अपनी भाषामें बुद्धवचनको (कहकर उसे) दूषित करते हैं। अच्छा हो भन्ते! हम बुद्धवचनको छन्द[1] में बना दें।"

भगवान्ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! बुद्ध-वचनको छन्दमे न करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 238

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अपनी भाषामें[2] बुद्धवचनके सीखनेकी।" 239

(२) झूठी विद्याओंका न पढना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लोकायत(-शास्त्र)[3] सीखते थे। लोग हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०।—

"भिक्षुओ! लोकायत नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 240

२—उस समय षड्वर्गीय लोकायतको पढाते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! लोकायत नही पढाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 241

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु तिरच्छान-विद्या[4] पढते थे।०—कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 242

४—"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही पढानी चाहिये, ०दुक्कट०।" 243

---

[1] वेदकी भाँति संस्कृतमें (—अट्ठकथा)।

[2] अपनी भाषासे यहाँ मगधकी भाषासे मतलब है (—अट्ठकथा)।

[3] सामुद्रिक आदि।

"भिक्षुओ! कक्षमी नहीं काटनी चाहिये, दुक्कट ०।" 228

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु गृहस्थोंकी भाँति कपड़ा ओढ़ते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ। —

"भिक्षुओ! गृहस्थोंकी भाँति कपड़ा नहीं ओढ़ना चाहिये, दुक्कट ०।" 229

६५—बाँक ढोना, दतवन, आग-पशुसे रक्षा

(१) बँहगी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (कपड़ेको) दोनों ओर बँहगी (=काज) ले जाते थे। —जैसे राजाकी मुँडहरी। —

"भिक्षुओ! दोनों ओर बँहगी नहीं ले जाना चाहिये, दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक ओर बँहगीकी, बीचमें या बगलकी, सिरपर मारकी, कन्धे मारकी, कमरपर मारकी, लटका कर (भार ले जानेकी)।" 230

(२) दतवन

१—उस समय भिक्षु दतवन नहीं करते थे, मुँहसे दुर्गन्ध आती थी। —

"भिक्षुओ! यह पाँच दतवन न करनेके दोष हैं—(१) आँखको नुकसान होता है, (२) मुखमें दुर्गन्ध आती है, (३) रस ले जानेवाली नाड़ियाँ शुद्ध नहीं होती, (४) कफ और पित्त भोजनमें लिपट जाते हैं, (५) भोजनमें रुचि नहीं होती। भिक्षुओ! यह पाँच दोष हैं दतवन न करनेमें। भिक्षुओ! यह पाँच गुण हैं दतवन करनेमें—(१) आँखको लाभ होता है, (२) मुखमें दुर्गन्ध नहीं होती, (३) रसवाहिनी नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, (४) कफ और पित्त भोजनसे नहीं लिपटते, (५) भोजनमें रुचि होती है। भिक्षुओ! यह पाँच गुण हैं दतवन करनेमें।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दतवनकी।" 231

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बी दतवन करते थे और उसीसे श्रामणेरोंको पीटते थे। —

"भिक्षुओ! लम्बी दतवन नहीं करनी चाहिये, दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आठ अंगुल तककी दतवनकी। उससे श्रामणेरको नहीं पीटना चाहिये, दुक्कट ०।" 232

३—उस समय एक भिक्षुको अतिमटाहक (=बहुत छोटी) दतवन करनेसे कंठमें विलग्ग (=अटक) हो गया। —

"अतिमटाहक दतवन न करनी चाहिये, दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कमसे कम चार अंगुलकी दतवनकी।" 233

(३) आगसे रक्षा

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दाव (=वन)को लीपते थे।०—जैसे दावदाहक (=वन जलानेवाले)।०—

"भिक्षुओ! दावको नहीं लीपना चाहिये, दुक्कट ०।" 234

२—उस समय विहार तृणोंसे भर गया था। जंगल जलाते वक्त विहार भी जल जाता था।०—"अनुमति देता हूँ, जंगलके जलाये जाते वक्त अग्निसे रोक और रक्षा करनेकी।" 235

(४) वृक्षपर चढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वृक्षपर चढते थे।०—जैसे वानर।०—

"भिक्षुओ! वृक्षपर न चढना चाहिये, दुक्कट०।" 236

२—उस समय एक भिक्षुके को स ल देशमें श्रावस्ती जाते समय रास्तेमें एक हाथी निकला। तब वह भिक्षु दौळकर वृक्षके नीचे गया, किन्तु सन्देहमे पळकर पेळपर न चढ सका। वह हाथी दूसरी ओर चला गया। तव उस भिक्षुने श्रावस्तीमें जा यह बात भिक्षुओसे कही। ०—

"०अनुमति देता हूँ, काम होनेपर पोरिसाभर और आपत्कालमे यथेच्छ वृक्षपर चढनेकी।"237

§६–बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें, झूठी विद्या न पढ़ना, सभामें बैठनेका नियम, लहसुनका निषेध

(१) बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामे

उस समय यमेळ य मे ळ ते कु ल नामक ब्राह्मण जातिके सुन्दर (=कल्याण) वचनवाले, सुन्दर वचन बोलनेवाले दो भाई भिक्षु थे। वह जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति कुल, के (पुरुष) प्रब्रजित होते हैं, वह अपनी भाषामें बु द्ध व च न को (कहकर उसे) दूषित करते है। अच्छा हो भन्ते! हम बुद्धवचनको छ न्द[1] में बना दें।"

भगवान्ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! बुद्ध-वचनको छ न्द में न करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 238

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अपनी भाषामें[2] बुद्धवचनके सीखनेकी।" 239

(२) झूठी विद्याओंका न पढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लो का य त(-शास्त्र)[3] सीखते थे। लोग हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०।—

"भिक्षुओ! लो का य त नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 240

२—उस समय षड्वर्गीय लो का य त को पढाते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! लो का य त नही पढाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 241

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ति र च्छा न - वि द्या[4] पढते थे।०—कामभोगी गृहस्थ। ०—

"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 242

४—"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही पढानी चाहिये, ०दुक्कट०।" 243

---

[1] वेदकी भाँति सस्कृतमें (—अट्ठकथा)।

[2] अपनी भाषासे यहाँ मगधकी भाषासे मतलब है (—अट्ठकथा)।

[3] सामुद्रिक आदि।

(३) छींक आदिके मिथ्या विश्वास

१—उस समय बड़ी भारी परिषद्से घिरे धर्मोपदेश करते भगवान्‌ने छींका। भिक्षुओंने—'भन्ते! भगवान् जीते रहें सुगत जीते रहें'—(कह) ऊँचा शब्द (=आवाज़) महान् शब्द किया। उस शब्दसे धर्मकथामें विक्षेप हुआ। तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! छींकनेपर 'जीते रहो' कहनेसे क्या उसके कारण (पुरुष) जीयेगा मरेगा?'

'नहीं भन्ते!'

"भिक्षुओ! छींकनेपर 'जीते रहो' नहीं कहना चाहिये, दुक्कट।" 244

—उस समय भिक्षुओंके छींकनेपर लोग 'जीते रहें भन्ते!' कहते थे। भिक्षु सन्देहयुक्त हो नहीं बोलते थे। लोग हैरान होते थे—"कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण छींकनेपर 'जीते रहें भन्ते!' कहनेपर नहीं बोलते!" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! गृहस्थ मांगलिक होते हैं, भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोंके 'जीते रहें भन्ते!' कहनेपर 'चिरजीव' कहनेकी।" 245

(४) लहसुन खानेका निषेध

१—उस समय भगवान् बड़ी परिषद्के बीच बैठे धर्मोपदेश करते थे। एक भिक्षुने लहसुन खाया था। भिक्षु न टोकें इस (विचार)से वह एक ओर (अलग) बैठा था। भगवान्‌ने उस भिक्षुको अलग बैठे देखा। देखकर भिक्षुओंसे कहा—

'भिक्षुओ! क्या वह भिक्षु अलग बैठा है?'

'भन्ते! इस भिक्षुने लहसुन खाया है। भिक्षु न टोकें इस (विचार)से यह अलग बैठा हुआ है।'

"भिक्षुओ! क्या वह खाने लायक (चीज़) है जिसे खाकर इस प्रकारकी परिषद्से बाहर रहना पड़े?"

"नहीं भन्ते!"

"भिक्षुओ! लहसुन नहीं खाना चाहिये, दुक्कट।" 246

२—उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रके पेटमें दर्द था। तब आयुष्मान् महामोग्गल्लान जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह बोले—

'आवुस सारिपुत्र! तुम्हारा पेटका दर्द किससे अच्छा होता है?'

'लहसुनसे आवुस!'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर लहसुन खानेकी।" 247

§७—पेशाबखाना, पाखाना, वृक्षरोपण, बर्तन-चारपाई आदि सामान

(१) पेशाबखाना

१—उस समय भिक्षु आराममें जहाँ तहाँ पेशाब (=प्रस्राव) कर देते थे, आराम गंदा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक ओर पेशाब करनेकी।" 248

—आराममें दुर्गंध होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पेसावदानकी।" 249

३—तकलीफके साथ पेसाब करते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, पेसावके पावदान (=पस्साव-पादुका)की।" 250

४—पेसावका पावदान खुली (जगहमें) था। भिक्षु पेसाब करनेमें लजाते थे। ०—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चहारदीवारी (=प्राकार)मे घेरनेकी।" 251

५—पेसावदान खुला रहनेसे दुर्गंध करता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पिहानकी।" 252

(२) पाखाना

१—उस समय भिक्षु आराममें जहाँ तहाँ पाखाना करते थे, आराम गंदा होता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, एक ओर पाखाना करनेकी।" 253

२—"०अनुमति देता हूँ, सडास (=वच्चकूप)की।" 254

३—सडासका किनारा टूटता था। ०—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 255

४—सडास नीची मनका था, पानी भर जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मनको ऊँची करनेकी।" 256

५—चिनाई गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 257

६—चढनेमें तकलीफ पाते थे।—

"अनुमति देना हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढी वनानेकी।" 258

७—चढते वक्त गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, बाँही लगानेकी।" 259

८—भीतर बैठकर पाखाना होते गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, फर्श वनाकर बीचमें छेद रख पाखाना होनेकी।" 260

९—तकलीफके साथ बैठे पाखाना होते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके पायदानकी।" 261

वाहर पेसाव करते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, पेसावकी नाली वनानेकी।" 262

१०—अवलेखण (=पोछनेका) काष्ठ न था।—

"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण काष्ठकी।" 263

११—अवलेखण-पिठर (=०ढेला) न था।—

"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण-पिठरकी।" 264

१२—सडास खुला रहनेसे दुर्गंध देता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पिहान (=ढक्कन)की।" 265

१३—खुली जगहमें पाखाना होते सर्दीमें भी गर्मीमें भी पीळित होते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, वच्च-कुटी (=पायखानेके घर)की।" 266

१४—वच्चकुटीमें किवाळ न था।—

"०अनुमति देता हूँ, किवाळ, पिट्ठिसघाट (=विलाई), उदुक्खलिक (=मलइ), उत्तर-पासक (=पटदेहर), अग्गलवट्टि (=पटदेहरका छेद), कपिसीसक (=वनरमूळीखूटी), सूचिक

(=झिटकिनी) घटिक (=बिलाई) तालच्छिद्द (=तालेका छेद) आविञ्छनच्छिद्द आविञ्छनरज्जु (=रस्सीकी सिकड़ी)की। 267

१५—जन्ताघरमें तिनकोंका चूरा पळता था।—

अनुमति देता हूँ ओगुम्फन करके [1] चीवर (टाँगने)के बाँस और रस्सीकी। 268

१६—उस समय एक भिक्षु बुढ़ापेकी वजह दुर्बलताके कारण पाखाना हो उठते समय गिर पळा। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अवलम्बनकी। 269

१७—जन्ताघरकी घिरी न थी।—

अनुमति देता हूँ ईंट पत्थर या काष्ठके प्राकारसे घेरनेकी। 270

१८—कोष्ठक (=बरांडा) न था।—

अनुमति देता हूँ कोष्ठककी। 271

१९—कोष्ठकमें किवाळ न था।—

अनुमति देता हूँ किवाळ [2] आविञ्छनरज्जुकी। 272

२०—कोष्ठकमें तृणका चूरा गिरता था।—

अनुमति देता हूँ, ओगुम्फन करके [3] पञ्चपटिकाकी। 273

२१—परिवेणमें (=पाखानेके आँगन)में कीचळ होता था।—

अनुमति देता हूँ मरुम्ब (=चूर्ण)के बिखेरनेकी। 274

२२—पानी लगता था।—

अनुमति देता हूँ पानीकी नालीकी। 275

२३—(पाखानेके) पानीका घळा न था।—

अनुमति देता हूँ, पाखानेके पानीके घळेकी। 276

२४—पाखानेका सराव (=मे'ग्गिया) न थी।—

अनुमति देता हूँ, पाखानेके सरावकी। 277

२५—सकसीपक साथ बैठकर पानी लेते थे।—

अनुमति देता हूँ, पानी लेनेके पायदानकी। 278

२६—पानी लेनेके पायदान बेपर्द थे भिक्षु पानी लेनेमें लजाते थे।—

अनुमति देता हूँ ईंट पत्थर या लकळीके प्राकारसे घेरनेकी। 279

पाखानेका मटका बिना ढक्कनका था तिनकेका चूरा भीतर पळता था।—

अनुमति देता हूँ ढक्कनकी। 280

(३) वृक्षका रोपना आदि

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु इस प्रकारका अनाचार करते थे—मालावच्छ (=फूलके पौधे) को रोपते रोपाते थे सींचते सिंचाते थे चुनते चुनाते थे गूँथते गुँथवाते थे। एक ओर की डंडी माला बनाते बनवाते थे। दोनों ओरसे डंडी माला। मंजरीक बनाते बनवाते थे। विधूतिक बनाते बनवाते थे। वटंसक बनाते बनवाते थे। आवेळक बनाते बनवाते थे। उरच्छद बनाते बनवाते थे। और

[1] देखो ऊपर पृष्ठ ४३ (107)।

[2] देखो पृष्ठ ४३ (107)।

[3] देखो चुल्ल० ५§३।१ पृष्ठ ३४९-५०।

[4] मालाओंके भेद।

नाना प्रकारके अनाचार को करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! नाना प्रकारके अनाचार नहीं करने चाहियें। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" २८१

(४) तांबे, लकड़ी मट्टीके भांडे

उस समय आयुष्मान् उरुवेल काश्यपके प्रव्रजित होनेपर संघको बहुतसे ताँबे (=लोह), लकड़ी मिट्टीके भाँडे मिले थे। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या भगवान्ने ताँबेके बर्तनकी अनुमति दी है या नहीं दी है? लकड़ीके बर्तनकी० ? मिट्टीके बर्तनकी० ?' भगवान्से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रहरणी (=मारनेके हथियार)को छोड़ सभी लोहेके भाँडोंकी, आसन्दी (=कुर्सी) पलँग लकड़ीके पात्र और लकड़ीके खड़ाऊँको छोड़ सभी लकड़ीके भाँडोंकी, कतक (=झाँवा) और कुम्भकारिका (=मिट्टीके पक्के घड़े)को छोड़ सभी मिट्टीके भाँडोंकी।" २८२

खुद्दकवत्थुक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—शयन-आसन स्कन्धक

१—विहार और उसका सामान। २—विहारके रंगादि और नाना प्रकारके घर। ३—नया मकान बनवाना, अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति जेतवन-स्वीकार। ४—विहारकी चीजोंके उपयोग अधिकार आसनग्रहणके नियम। ५—विहार और उसके लिये सामानका बनवाना, न बाँटनेकी वस्तुएँ, वस्तुओंका हटाना या परिवर्तन सफाई। ६—संघके बारह कर्मचारियोंका चुनाव।

§१—विहार और उसका सामान

१—राजगृह

(१) राजगृह श्रेष्ठीका विहार बनवाना

१—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके वेणुवन कलन्दकनिवापमें विहार करते थे। उस समय (तक) भगवान्ने भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका विधान न किया था और वह भिक्षु जहाँ तहाँ—जंगल, वृक्षके नीचे, पर्वत, कंदरा, गिरिगुहा, श्मशान, वनप्रस्थ (=जंगल), चौड़े (मैदान), पुआलके गंजमें विहार करते थे। वह समयपर जंगल, पुआलके पुंज, वहाँसे सुन्दर गमन-आगमन, अवलोकन-विलोकन, (अंगोंके) समेटने-पसारनेके साथ नीचे नजर करके ईर्यापथ[1] से युक्त हो निकलते थे।

तब राजगृहक श्रेष्ठी[2] पूर्वाह्णमें बागको गया। राजगृहक श्रेष्ठीने पूर्वाह्णमें उन भिक्षुओंको जंगलसे ईर्यापथसे युक्त हो निकलते देखा। देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। तब राजगृहक श्रेष्ठी जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोला—

"भन्ते! यदि मैं विहार बनवाऊँ तो क्या मेरे विहारमें (आप सब) वास करेंगे?

"गृहपति! भगवान्ने विहारोंका विधान नहीं किया है।

"तो भन्ते! भगवान्से पूछकर मुझसे कहना।

'अच्छा गृहपति!' —(कह) राजगृहक श्रेष्ठीको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्से यह कहा—

'भन्ते! राजगृहक श्रेष्ठी विहार बनवाना चाहता है। भन्ते! कैसे करना चाहिये?

भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच (प्रकारकी) लेनों (=लयनों—निवास-स्थानों)की—(१) विहार, (२) अड्ढयोग (=गरुड़की तरह टेढ़ा मकान) (३) प्रासाद (४) हर्म्य (ऊपरका कोठा)

---

[1] अच्छी रहन-सहन।

[2] नागरिक राजकीय पदाधिकारी Sheriff.

और (५) गुहा[१]।"

तव वह भिक्षु जहाँ राजगृहक श्रेष्ठी था, वहाँ गये, जाकर राजगृहक श्रेष्ठीसे वोले—

"गृहपति ! भगवान्ने विहारकी आज्ञा दे दी, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

तव राजगृहक श्रेष्ठीने एकही दिनमें साठ विहार बनवाये। तव राजगृहक श्रेष्ठीने विहारोको तैयार करा जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठा । एक ओर वैठे राजगृहक श्रेष्ठीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु सघसहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तव राजगृहक श्रेष्ठी भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तव राजगृहके श्रेष्ठीने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।"

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ राजगृहक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये, जाकर भिक्षु-सघके साथ विछे आसनपर वैठे। तव राजगृहका श्रेष्ठी बुद्धप्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा सर्तापित=सप्रवारितकर, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर वैठ गया। एक ओर वैठे राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! पुण्यकी इच्छासे स्वर्गकी इच्छासे मैंने यह साठ विहार बनवाये है, भन्ते ! मुझे उन विहारोके वारेमें कैसे करना चाहिये ?"

(२) तीनों काल और चारों दिशाओंके सघको विहारका दान

"तो गृहपति ! तू उन साठ विहारोको आगत-अनागत (=तीनो कालके) चातुर्दिश (=चारो दिशाओ अर्थात् सारी दुनियाके) भिक्षु-सघके लिये प्रतिष्ठापित कर।"

"अच्छा, भन्ते !" (कह) राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्को उत्तर दे उन साठ विहारोको आगत-अनागत चातुर्दिश सघको प्रदान कर दिया। तव भगवान्ने इन गाथाओंसे राजगृहके श्रेष्ठी (के दान) को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है, और क्रूर जानवरोको भी,
सरीसृप और मच्छरोको, और शिशिरमें वर्षाको भी॥(१)॥
जव घोर हवा पानी आनेपर रोकता है,
लयन (=आश्रय)के लिये, सुखके लिये ध्यान और विपश्यन (=ज्ञान)के लिये॥(२)॥
सघके लिये विहारका दान बुद्धने श्रेष्ठ कहा है,
इसलिये पडित पुरुप अपने हितको देखते॥(३)॥
रमणीय विहारोको वनवाये, और वहाँ वहुश्रुतोका वास कराये,
और उन्हे सरलचित्त (भिक्षुओ)को अन्न-पान, वस्त्र और शयन-आसन
प्रसन्न चित्तसे प्रदान करे॥(४)॥
(तव) वह उसे सारे दुःखोके दूर करनेवाले धर्मको उपदेशते है,
जिस धर्मको यहाँ जानकर (पुरुप) मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है"॥(५)॥

---

[१]चार प्रकारकी गुहायें होती हैं—ईंटकी गुहा, पत्थरकी गुहा, लकळीकी गुहा, मिट्टीकी गुहा।

तब भगवान् राजगृहके श्रेष्ठीको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये।

लोगोंने सुना—भगवान्‌ने विहारकी अनुमति दे दी है और (वह) सत्कारसहित विहार बनवाने लगे। (उस समय) वह विहार बिना किवाळके थे। साँप भी बिच्छू भी कनखजूरे भी घुस जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

(३) किवाळ और किवाळके सामान

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ किवाळकी। 2

भीतमें छेदकर बल्लीसे या रस्सीसे किवाळको बाँधते थे उन्हें चूहे भी दीमक भी खा जाते थे बन्धनोंके खाये जानेपर किवाळ गिर पळता था।—

अनुमति देता हूँ पिट्ठि-संघाट (=चौखटे) उदुक्खलिक (=अर्गल) और उत्तर पासक (=बासो)की। 3

किवाळ नहीं जुळते थे।—

अनुमति देता हूँ आविञ्छन-छिद्र और आविञ्छनकी रस्सीकी। 4

किवाळ भेळे न जा सकते थे।—

अनुमति देता हूँ अग्गळवट्टिक (-अर्गल फसाव) कपिसीस (=किर्टकिनी लगाने का छिद्र) सूचिक और घटिक (=बेला)की। 5

उस समय भिक्षु किवाळको बन्द न कर सकते थे।—

अनुमति देता हूँ तालेके छिद्रकी लोहे (=साँचे)के ताले काठके ताले और सींगके ताले इन तीन तालोंकी। 6

जो कोई भी खोलकर घुस जाते थे विहार अरक्षित रहता था।—

अनुमति देता हूँ यूपिका (=कुंजी) और यन्त्रक (—ताले)की। 7

उस समय विहार तृणसे छाये होते थे (जिससे) शीतकालमें शीतल और उष्णकालमें उष्ण (होते थे)।—

अनुमति देता हूँ ओगुम्बन कर लीपने-पोतनेकी। 8

(४) जँगला

उस समय विहार बिना जँगले (=वातायन)के थे (जिससे) देखनेमें अयोग्य तथा दुर्गंधयुक्त (होते थे)।—

"अनुमति देता हूँ तीन (प्रकारके) जँगलों (=वातायन)की—(१) वेदिका—वातायन जालीदार वातायन और (२) छळोंवाले वातायनकी। 9

जँगलोंके भीतरसे काळक (=पक्षी विशेष) भी वग्गुलियाँ (—बगुले) भी घुस आती थीं।—

"अनुमति देता हूँ जँगलोंके पर्द (=चक्कलिका)की। 10

चक्कलिकाके बीचसे भी काळक और वग्गुलियाँ घुस आती थीं।—

अनुमति देता हूँ जँगलके किवाळकी जँगलकी भिसिका (=गद्दा)की। 11

(५) चारपाई चौकी आदि

उस समय भिक्षु भूमिपर सोते थे देह भी वस्त्र भी धूसर होते थे।—

"अनुमति देता हूँ तृणके बिछौनेकी। 12

तृणके बिछौनेको कीळे (=दीमक) खा जाते थे।—

अनुमति देता हूँ मीढ (=चटाई ?)की। 13

मीडीसे देह दुखने लगती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ वेतकी चारपाईकी।" 14

उस समय सघको स्मशान मे फेंकी मसारक (=गद्दीदार बेच) चारपाई मिली थी। ०—

"०अनुमति देता हूँ, मसारक मचे (=चारपाई)की।" 15

"०अनुमति देता हूँ, मसारक चौकी (=पीठ)की।" 16

उस समय सघको स्मशानवाली वुन्दिका (=चादर)से बँधी चारपाई मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, वुन्दिकाबद्ध चारपाईकी।" 17

"०अनुमति देता हूँ, वुन्दिकाबद्ध चौकीकी।" 18

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक[1] चारपाईकी।" 19

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक चौकीकी।" 20

"०अनुमति देता हूँ, आहच्च-पादक[2] मचेकी।" 21

"०अनुमति देता हूँ, आहच्चपादक पीठकी।" 22

उस समय सघको आसन्दिका (=चौकोर पीठ) मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, आसन्दिकाकी।" 23

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची आसन्दिकाकी।" 24

"०अनुमति देता हूँ, सप्ताग (=कुर्सी ?)की।" 25

"०अनुमति देता हूँ, ऊँचे सप्तागकी।" 26

"०अनुमति देता हूँ, भद्रपीठ (=बेंतकी चौकी)की।" 27

"०अनुमति देता हूँ, पीठिका[1] की।" 28

"०अनुमति देता हूँ, एलकपादक[2]की।" 29

"०अनुमति देता हूँ, आमलकवण्टिक[3]की।" 30

"०अनुमति देता हूँ, फलक (=तख्त)की।" 31

"०अनुमति देता हूँ, कोच्छक (=खस या मूँज)की।" 32

"०अनुमति देता हूँ, पुआलके पीढेकी।" 33

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऊँची चारपाईपर सोते थे। लोग विहारमें घूमते समय देखकर हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! ऊँची चारपाईपर न सोना चाहिये, जो सोये उसे दुक्कटका दोष हो।"34

उस समय एक भिक्षुको नीची चारपाईपर सोते वक्त साँपने काट खाया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, चारपाईमें ओट (देने)की।"35

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऊँचे चारपाईके ओट रखते थे, और चारपाईके ओटोके साथ सोते थे।०—

"भिक्षुओ! ऊँचे चारपाईके ओटोको नही रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष हो। ०अनुमति देता हूँ, आठ अगुल तकके चारपाईके ओटकी।"36

---

[1]वेदी और चौकोर वेदीकी भाँति।

[2]गद्दीदार चौकी।

[3]आँवलेके आकारकी बहुतसे पैरोवाली चौकी।

(६) सूत, बिस्तरा आदि

उस समय संघको सूत मिला था। —

०अनुमति देता हूँ (सूतसे) चारपाई बुननेकी। 37

अंगोंमें बहुतसा सूत लग जाता था।—

अनुमति देता हूँ अंगोंको बींधकर अष्टपदक (=शतरंजी) बुननेकी। 38

चोलक (=कपळा) मिला था।—

अनुमति देता हूँ, चिलिमिका (=छालके छालका बना कपळा) बनानेकी। 39

तूलिक (=कपास) मिली थी।—

०अनुमति देता हूँ बटा सुलझा तकिया (=बिम्बोहन) बनानेकी। तूल (=कपास तीन हैं—वृक्षतूल (=सेमल आदिका) लतातूल (=मदार आदिका) पोटकी-तूल (=कपास)। 40

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अर्धकायिक (=आधा शरीर लम्बी) तकिया धारण करते थे। लोग विहारमें घूमते देखकर हैरान होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ। —

"भिक्षुओ! अर्धकायिक तकियेको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ सिरके बराबरके तकियेकी। 41

उस समय राजगृहमें गिरग्गसमज्ज (=मेला) था। लोग महामात्यों (=राजमंत्रियों) के लिये ऊन (लत्ते) छाल तृण पत्तेके गद्दे (=भिसि) तय्यार कराते थे। समज्जा (=मेले)के खतम हो जानेपर वह खोल उतारकर ले जाते थे। भिक्षुओंने समज्जाके स्थानपर बहुतसे ऊन लत्ते छाल तृण और पत्तोंको फेंका देखा। देखकर भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ ऊन लत्ता छाल तृण और पत्ता इन पाँचके गद्देकी। 42

उस समय संघको शयन-आसनके उपयोगी दुस्स (=थान) मिला था।—

अनुमति देता हूँ (उससे) गद्दा सीनेकी। 43

उस समय भिक्षु चारपाईके गद्देको चौकीपर बिछाते थे, चौकीके गद्देको चारपाईपर बिछाते थे। गद्दे टूट जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ, गद्दीदार चारपाई और गद्दीदार चौकीकी। 44

अस्तर (=उल्लोक) बिना दिये बिछाते थे, नीचेसे गिरने लगता था।—

अनुमति देता हूँ अस्तर देकर, बिछाकर गद्देको (चारपाईपर) सीनेकी। 45

खोल खींचकर ले जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ (रंग) छिड़कनेकी। 46

(फिर) भी ले जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ भत्तिकम्म (=रंगना)की। 47

(फिर) भी ले जाते थे।—

०अनुमति देता हूँ हस्त-भत्ति (=छाप देना)की। 48

§२—विहारकी रंगाई, और नाना प्रकारके घर

(१) भीतके रंग

उस समय तीर्थिकों (=अन्य मतके साधुओं)की शय्या सफेद होती थी, जमीन काली और भीतपर गेरूका काम किया होता था। बहुतसे लोग शय्या देखने आया करते थे। —

"०अनुमति देता हूँ, विहारमें सफेद, काला और गेरूका काम करनेकी।" 49

उस समय कळी भूमिपर श्वेत रंग नहीं चढ़ता था।०—

"०अनुमति देता हूँ भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर सफेद रंग करनेकी।" 50

सफेद रंग रुकता न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, चिकनी मिट्टी दे हाथसे चिकनाकर सफेद रंग करनेकी।" 51

सफेद रंग न रुकता था।—

"०अनुमति देता हूँ, गोंद और लाही (देने)की।" 52

उस समय कहीं कहीं भीतपर गेरू नहीं चढ़ता था।—

"०अनुमति देता हूँ, भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर गेरू रंगनेकी। 53

"० ०, खली मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर गेरू करनेकी।" 54

"० ०, सरसोंकी खली और मोमके तेलकी।" 55

उस समय रूखी (=परुष) भीतपर काला रंग नहीं चढ़ता था।—

"० ०, भूसीके पिंडको देकर, हाथसे चिकनाकर काला रंग करनेकी।" 56

"० ०, केंचुयेकी मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर काला रंग करनेकी।" 57

"० ०, गोंद और (हर्रा आदिके) कषायकी।" 58

(२) भीतमें चित्र

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विहारमें स्त्री, पुरुष आदिके चित्र अंकित करते थे। लोग विहार में घूमते समय देखकर हैरान होते थे०—जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०—

"भिक्षुओ! स्त्री, पुरुषके चित्र[1] नहीं बनवाना चाहिये, जो बनवावे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, माला, लता, मकरदन्त (=त्रिकोणोंकी झालर), पचपट्टिका (=फर्शकी पटिया) की।" 60

(३) सीढ़ी आदि

उस समय विहारोंकी कुर्सी नीची होती थी, पानी भरता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 61

चिनाई गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 62

चढ़नेमें तकलीफ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढ़ीकी।" 63

(४) कोठरी

चढ़ते वक्त गिर पड़ते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, आलम्बन बाँहीकी।" 64

उस समय भिक्षुओंके विहार एक आँगनवाले थे। भिक्षु लेटनेमें लजाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, पर्दे (=तिरस्करिणी)की।" 65

तिरस्करिणीको उठाकर देखते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, आधी दीवारकी।" 66

---

[1]श्रद्धा, वैराग्य उत्पन्न करनेवाले जातकोंके चित्र बनवाये जा सकते हैं (—अट्ठकथा)।

आधी दीवारके ऊपरसे देखते थे।—

अनुमति देता हूँ शिविका-गर्भ (=बराबर लम्बाई चौड़ाईकी कोठरी) नालिकागर्भ (=लम्बी कोठरी) और हर्म्य-गर्भ (=कोठेपरकी कोठरी)—इन तीन (प्रकारके) गर्भों (=कोठरियों)की। 67

उस समय भिक्षु छोटे विहारके बीचमें गर्भ (=कोठरी) बनाते थे, रास्ता न रहता था।—

अनुमति देता हूँ छोटे विहारमें एक ओर गर्भ बनानेकी और बड़े विहारमें बीचमें। 68

उस समय विहारकी भीतका पाया जीर्ण हो जाता था।—

अनुमति देता हूँ कुलुंक-पादक[1]की। 69

उस समय (वर्षामें) विहारकी भीत बहती है।—

“अनुमति देता हूँ रक्षा करनेकी टट्टी और उद्सुधा की। 70

उस समय एक तृणकी छतसे भिक्षुके कंधेपर साँप गिरता था। वह डरके मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओंने दौड़कर उस भिक्षुसे यह पूछा।—

“आवुस! क्या तुम चिल्लाये?

उसने भिक्षुओंसे यह बात कह दी। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ वितान (=चाँदनी)की। 71

उस समय भिक्षु चारपाईके पायोंमें भी चौकीके पायोंमें भी थैला लटकाते थे। उन्हें चूहे भी खा जाते थे दीमक भी खा जाते थे।—

अनुमति देता हूँ भीतके कीलकी नागदन्त (=खूँटी)की। 72

उस समय भिक्षु चारपाईपर भी चौकीपर भी चीवर लटकाते थे, चीवर फट जाता था।—

अनुमति देता हूँ, चीवर (टाँगने)के बाँस और रस्सी(=अर्गनी की)। 73

(५) आलिन्द ओसारा

उस समय विहारोंमें आलिन्द (=ड्योढ़ी) और ओसारे न होते थे।—

अनुमति देता हूँ आलिन्द प्रघण (=देहली) प्रकुड्य (=कोठरीकी दीवारके भीतर) और ओसारे (=ओसरक)की।” 74

आलिन्द खुले थे, भिक्षु वहाँ लेटनेमें लजाते थे।—

अनुमति देता हूँ संसरण (=खिंच)किटिक और उद्घाटन किटिककी। 75

(६) उपस्थानशाला

उस समय भिक्षु खुली जगहमें भोजन करते थे और जाड़े गर्मीसे तकलीफ पाते थे।—

अनुमति देता हूँ, उपस्थानशालाकी। 76

अनुमति देता हूँ, कुर्सीको ऊँची करनेकी। 77

अनुमति देता हूँ ईंट पत्थर या लकड़ीकी चिनाईकी। 78

अनुमति देता हूँ ईंट पत्थर या लकड़ीकी सीढ़ीकी। 79

अनुमति देता हूँ, आलम्बनबाहु (=कटहरा)की। 80

---

[1]काटकर जोड़के लिए वहाँ लगी चूलकी बैठी।

बालूके गोबर और राखको मिलाकर बनाया पलस्तर (—अट्ठकथा)।

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन[1] करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 81
उस समय भिक्षु खुली जगहमें चीवर पसारते थे। चीवर धूसर होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, खुली जगहमें चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 82

(७) पानी शाला

पानी तप जाता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानी-शाला और पानी-मण्डपकी।" 83
"०अनुमति देता हूँ, कुर्सी ऊँची करनेकी।" 84
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 85
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 86
"०अनुमति देता हूँ आलम्बनबाहुकी।" 87
"०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 88
पानीका बर्तन न था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानीके शरव (=चुक्का ?) और पानीके शराव (=पुरवा)की।" 89

(८) विहार

उस समय विहार (दीवारसे) घिरा न होता था।—
"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळी (इन) तीन (तरह)के प्राकारोंसे।" 90
कोष्ठक (=द्वारपरका कोठा) न था।—
"०अनुमति देता हूँ, कोष्ठककी।" 91
"० ०, कुर्सी ऊँची करनेकी।" 92
कोष्ठकमें किवाळ न थे।—
"०अनुमति देता हूँ, किवाळ,० आविञ्जनच्छिद्दकी।" 93
कोष्ठकमें तिनकेका चूरा गिरता था।—
"० ०, ओगुम्बन करके०[2] पचपट्टिकाकी।" 94

(९) परिवेण

उस समय परिवेण (=आँगन)में कीचळ होता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=बालू) बिखेरनेकी।" 95
नहीं ठीक होता था।—
"०अनुमति देता हूँ, प्रदरशिला बिछानेकी।" 96
पानी लगता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 97
उस समय भिक्षु परिवेणमें जहाँ तहाँ आग जलाते थे। परिवेण मैला होता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, एक ओर अग्निशाला बनानेकी।" 98
"० ०, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 99
"० ०, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 100
"० ०, ईंट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 101

---

[1] लम्बी लकळियोंको गाळ काँटेकी शाखा बाँधकर बनाया रुँधान। [2] पृष्ठ ४५२।

आलम्बन-बाहुकी। 102

अग्निशालामें किवाड़ न था।—

किवाड़[1] आविञ्छन-रज्जुकी। 103

अग्निशालामें तिनकेका चूरा गिरता था।—

ओगुम्बन करके[2] चीवर (टाँगने)के बाँस रस्सीकी। 104

(१०) आराम

आराम (=भिक्षु-आश्रम) घिरा न होता था। भेड़ बकरी आकर रोपे (पौधों)को नुकसान करते थे।—

अनुमति देता हूँ बाँसकी बाड़ या काँटेकी बाड़ (=बाड़) अथवा परिखा (खाई)से रखनेकी। 105

कोष्ठक (=फाटक) न था।—और उसी प्रकार भेड़ बकरी आकर रोपे (पौधों)को नुकसान करते थे।—

अनुमति देता हूँ कोष्ठक (=फाटक) आगेसे ५ जोड़े किवाड़ तोरण और परिघ (=पहियेवाली किवाड़)की। 106

कोष्ठक (=नौबतखाना)में तिनकेका चूरा गिरता था।—

अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके[1] पञ्चपटिकाकी। 107

आराममें कीचड़ होता था।—

अनुमति देता हूँ मरुम्ब बिखेरनेकी। 108

नहीं ठीक होता था।—

अनुमति देता हूँ पदरशिला (=पत्थरकी पट्टी) बिछानेकी। 109

पानी लगता था।—

अनुमति देता हूँ पानीकी नालीकी। 110

(११) *प्रासाद-छत*

उस समय मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार संघके लिये चूना मिट्टी (=सुधामत्तिका)से लिपा प्रासाद बनाना चाहता था। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'क्या भगवान्ने छतकी अनुमति दी है या नहीं।' भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच प्रकारके छतोंकी—ईंटकी छत, शिलाकी छत, चूने (=सुधा)की छत, तिनकेकी छत और पत्तेकी छत। 111

प्रथम भाणवार समाप्त

§२—अनाथपिंडिककी दीक्षा, नवकर्म (=नया मकान बनवाना) अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति, तित्तिर जातक, जेतवन-स्वीकार

(१) अनाथपिंडिककी दीक्षा

[3]उस समय अनाथ-पिंडिक गृहपति (जो) राजगृहके श्रेष्ठीका बहनोई था किसी काम

---

[1]देखो पृष्ठ ४५२। [2]देखो पृष्ठ ४५२।

[3]मधु नि ११।१।८ भी।

मे राजगृह गया। उस समय राजगृहक-श्रेष्ठीने संघ-सहित बुद्धको दूसरे दिनके लिये निमंत्रण दे रक्खा था। इसलिये उसने दासों और कम-करोंको आज्ञा दी—

"तो भणे! समयपर ही उठकर खिचड़ी पकाओ, भात पकाओ, । सूप (=तेमन) तैयार करो ।" तब अनाथपिंडिक गृहपतिको ऐसा हुआ—"पहिले मेरे आनेपर यह गृह-पति, सब काम छोळकर मेरेही आव-भगतमे लगा रहता था। आज विक्षिप्तसा दासों और कमकरोंको आज्ञा दे रहा है—"तो भणे! समयपर०।" क्या इस गृहपतिके (यहां) आ वा ह होगा, या वि वा ह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोग-बाग-सहित मगध-राज श्रे णि क बि म्बि सा र कलके लिये निमंत्रित किये गये है ?"

तब राज-गृहक श्रेष्ठी दासों और कमकरोंको आज्ञा देकर, जहां अनाथ-पिंडिक गृहपति था, वहा आया। आकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिके साथ प्र ति स म्मो द न (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, राजगृहक श्रेष्ठीको अनाथ-पिंडिक गृहपतिने कहा—"पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति! ०।"

"गृहपति! मेरे (यहां) न आवाह होगा, न विवाह होगा, न ० मगध-राज० निमंत्रित किये गये है। बल्कि कल मेरे यहां बळा यज्ञ है। संघ-सहित बुद्ध (=बुद्ध-प्रमुख संघ) कलके लिये निमंत्रित है।"

"गृहपति! तू 'बुद्ध' कह रहा है ?"

"गृहपति! हां 'बुद्ध' कह रहा हूं।'

"गृहपति! 'बुद्ध'० ?"

"गृहपति! हां 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध'० ?'

"गृहपति! हां 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध' यह शब्द (=घो ष) भी लोकमे दुर्लभ है। गृहपति! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है ?"

"गृहपति! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्संबुद्धके दर्शनार्थ जानेका नही है।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपति—"अब कल समयपर उन भगवान्०के दर्शनार्थ जाऊँगा" इस बु द्ध-वि ष य क स्मृ ति को (मनमे) ले सो रहा। रातको सवेरा समझ तीन बार उठा। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहां (रा ज गृ ह नगरका) शि व द्वा र था, (वहां) गया। अ-म नु ष्यो (=देव आदि) ने द्वार खोल दिया। तब अ ना थ-पि डि क०के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकाश अन्तर्धान हो गया, अन्धकार प्रादुर्भूत हुआ। (उसे) भय, जळता और रोमाच उत्पन्न हुआ। वहींसे उसने लौटना चाहा। तब शिवक यक्षने अन्तर्धान होते हुये शब्द सुनाया "सौ हाथी, सौ घोळे, (और) सौ खच्चरीके रथ, मणि कुंडल पहिने सौ हजार कन्यायें एक पदके कथनके सोलहवें भागके मूल्यके बराबर भी नही है। चल गृहपति! चल गृहपति! चलना ही श्रेयस्कर है लौटना नही।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिका अंधकार नष्ट हो गया, प्रकाश उग आया। जो भय, जळता और रोमाच उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी अनाथ-पिंडिक गृहपतिको प्रकाश अन्तर्धान हो गया० रोमाच उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहां सीत-वन (है वहां) गया। उस समय भगवान् रातके प्र त्यू ष (=भिनसार) कालमें उठकर चौळेमे टहल रहे थे। भगवान्ने अनाथ-पिंडिक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा। देखकर च ङ्क म ण (=टहलनेकी जगह)से उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिसे कहा—"आ सु द त्त।"

अनाथ-पिंडिक गृहपति यह (सोच) "भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे है" हृष्ट=उ द ग्र

(=चला न समाता) हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे पकड़कर बोला—

भन्ते ! भगवान्‌को निद्रा सुखसे तो आई ?

"निर्वाण प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है।
जोकि शीतल और दोष रहित हो काम वासनाओंमें लिप्त नहीं होता॥
सारी आसक्तियोंको खंडितकर हृदयसे डरको हटाकर।
चित्तकी शान्तिको प्राप्तकर उपशान्त हो (वह) सुखसे सोता है॥"

तब भगवान्‌ने अनाथपिंडिक गृहपतिको आनुपूर्वी[1] कथा कही। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरह रंग पकड़ता है, ऐसे ही अनाथपिंडिक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध धर्म है' यह विरज=विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ। तब दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, संदेह रहित, वाद-विवाद रहित, शास्ताके शासन (=बुद्ध-धर्म)में स्वतंत्र हो अनाथपिंडिक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाड़ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अंधकारमें तेलका प्रदीप रख दे जिसमें आँखवाले रूप देखें, ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघकी (शरण जाता हूँ)। आजसे भन्ते भगवान् मुझे अंजलिबद्ध शरण-आया उपासक ग्रहण करें। भगवान् भिक्षु-संघ सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब अनाथ पिंडिक भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। राजगृहके श्रेष्ठीने सुना—अनाथ पिंडिक गृहपतिने कलको भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है। तब राजगृहके श्रेष्ठीने अनाथ-पिंडिक गृहपतिसे कहा—

"गृहपति ! तुमने कलके लिये भिक्षु-संघ-सहित बुद्धको निमंत्रित किया है और तुम आगंतुक (=पाहुना अतिथि) हो। इसलिये गृहपति ! मैं तुझे खर्च देता हूँ, जिससे तुम बुद्ध-सहित भिक्षु-संघके लिये भोजन (तैयार) करो?"

"नहीं, गृहपति ! मेरे पास खर्च है, जिससे मैं बुद्ध-सहित भिक्षु-संघका भोजन (तैयार) करूँगा।"

राजगृहके नैगमने सुना—अनाथ पिंडिक ...। तब राजगृहके नैगमने अनाथ पिंडिकको यह कहा— "मैं तुझे खर्च देता हूँ।"

"नहीं, आर्य ! मेरे पास खर्च है।"

मगध राज ने सुना— ...। तब मगध राज ने अनाथ पिंडिकको कहा— "... मैं तुझे खर्च देता हूँ।"

"नहीं, देव ! मेरे पास खर्च है।"

तब अनाथ पिंडिक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा भगवान्‌को कालकी सूचना दिलवाई— "समय है भन्ते ! भोजन तैयार हो गया।" तब भगवान् पूर्वाह्न समय सु-आच्छादित हो पात्र चीवर हाथमें ले जहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका मकान

[1] देखो पृष्ठ ८४।

[illegible]

था, वहाँ गए। जाकर भिक्षुसघ सहित विछाये आसनपर बैठे। तव अनाथ-पिंडिक गृह-पति वुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथमे उत्तम खाद्य भोज्यसे सतर्पित कर, पूर्णकर, भगवान्के भोजनकर, पात्रमे हाथ खीच लेनेपर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने भगवान्से कहा—

"भिक्षु-सघके साथ भगवान् श्रा व स्ती में व र्षा - वा स स्वीकार करे।"

"शून्य-आगारमे गृहपति! तथागत अ भि र म ण (=विहार) करते है।"

"समझ गया भगवान्! समझ गया सु ग त!"

उस समय अनाथ-पिंडिक गृह-पति वहु-मित्र=वहु-सहाय, और प्रामाणिक था। रा ज गृ ह म (अपने) कामको खतमकर, अनाथ-पिंडिक गृह-पति श्रावस्तीको चल पळा। मार्गमे[1] उसने मनुष्योको कहा—"आर्यो! आ रा म वनवाओ, वि हा र (=भिक्षुओके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो। लोकमे वुद्ध उत्पन्न हो गये है, उन भगवान्को मैने निमन्त्रित किया है, (वह) इसी मार्गसे आवेगे।"

तव अनाथ-पिंडिक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योने आराम वनवाये, विहार प्रतिष्ठित किये दा न (=सदाव्रत) रक्खे।

तव अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारो ओर नजर दौळाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न वहुत दूर हो, न वहुत समीप, चाहनेवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योके पहुँचने लायक हो। दिनको कम भीळ, रातको अल्प-शब्द=अ ल्प - नि र्घो ष, वि - ज न-वात (=आदमियोकी हवासे रहित), मनुष्योसे एकान्त, ध्यानके लायक हो।" अनाथ-पिंडिक गृहपतिने (ऐसी जगह) जे त रा ज कु मा र का उद्यान देखा, (जो कि) गाँवसे न वहुत दूर था०। देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आ र्य - पु त्र! मुझे आराम वनानेके लिये (अपना) उद्यान दीजिये!"

"गृहपति! 'को टि - स न्था र से भी, (वह) आराम अ-देय है।"

"आर्य-पुत्र! मैने आराम ले लिया।"

"गृहपति! तूने आराम नही लिया।"

'लिया या नही लिया', यह उन्होने व्य व हा र - अ मा त्यो (=न्यायाध्यक्ष)से पूछा। महामात्योने कहा—

"आर्य-पुत्र! क्योकि तूने मोल किया, (इसलिये) आराम ले लिया।"

तव अनाथ-पिंडिक गृहपतिने गाळियोपर हि र ण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'को टि-स न्था र' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया[2]। एक वारके लाये (हिरण्य)से (द्वारके) कोठेके चारो ओरका थोळासा (स्थान) पूरा न हुआ। तव अनाथ-पिंडिक गृहपतिने (अपने) मनुष्योको आज्ञा दी—

"जाओ भणे! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाँकेंगे।" तव जे त रा ज कु मा र को (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्त्वका न होगा, जिसमें कि यह गृहपति वहुत हिरण्य खर्च कर रहा है।" (और) अनाथ-पिंडिक गृहपतिको कहा—

---

[1]जो धनी थे उन्होंने अपने वनाया, जो कम धनी या निर्धन थे, उन्हे धन दिया। इस प्रकार वह पैंतालीस योजन रास्तेमें योजन योजनपर विहार वनवा श्रावस्ती गया (—अट्ठकथा)।

[2]इस प्रकार अठारह करोळका एक चहवच्चा खाली हो गया। दूसरे आठ करोळसे आठ करीस भूमिमें यह विहार आदि वनवाये (—अट्ठकथा)।

"बस गृहपति! तू इस खाली जगहको मत देना। यह खाली-जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिने 'यह जेत कुमार गण्य-मान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। इस धर्म विनय (=धर्म)में ऐसे आदमीका प्रेम होना लाभदायक है।' (सोच) वह स्थान जेत राजकुमारको दे दिया। तब जेत-कुमारने उस स्थानपर कोठा बनवाया। अनाथ-पिंडिक गृहपतिने जेतवनमें विहार (=भिक्षु विश्राम-स्थान) बनवाये। परिवेण (=आँगन सहित घर) बनवाये। कोठरियाँ। उपस्थान शालायें (=सभा-गृह)। अग्नि शालायें (=पानी-गर्म करनेका घर)। कल्पिक कुटियाँ (=भण्डार)। पाखाने। पेशाबखाने। चंक्रमण (=टहलनेका स्थान)। चंक्रमण शालायें। प्याउ। प्याउ-घर। जन्ताघर (=स्नानागार)। जन्ताघर शालायें। पुष्करिणियाँ। मंडप।

२—वैशाली

(२) नवकर्म

भगवान् राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर जिधर वैशाली थी उधर चारिका (=रामत) को चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुये जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागार शालामें विहार करते थे।

उस समय लोग सत्कार-पूर्वक नव कर्म (=नये घरका निर्माण) कराते थे। जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे वह भी (१) चीवर (=वस्त्र) (२) पिंडपात (=भिक्षान्न) (३) शयनासन (=घर) (४) ग्लान प्रत्यय (=रोगि-पथ्य) भैषज्य (=औषध) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होते थे। तब एक दरिद्र तन्तुवाय (=जुलाहा)को (मनमें) हुआ—'यह छोटा काम न होगा जो कि यह लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म कराते हैं, क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ?' तब उस गरीब तन्तुवायने स्वयं ही कीचड़ तैयारकर ईंटें चिन भीत खड़ीकी। अजानकारीसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी। दूसरी बार भी उस गरीब ०। तीसरी बार भी उस गरीब ०। तब वह गरीब तन्तुवाय खिन्न हुआ था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोंको जो चीवर देते हैं उन्हींके नव-कर्मोंकी देख-रेख करते हैं। मैं गरीब हूँ इसलिये कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है और न नव-कर्मकी देख रेख करता है।"

भिक्षुओंने उस गरीब तन्तुवायको खिन्न होते सुना। तब उन्होंने इस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

"भिक्षुओ! नव कर्म देनेकी आज्ञा करता हूँ। नव कर्मिक (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तैयारीका ख्याल करना चाहिये। (उस) टूटे फूटेकी मरम्मत करानी चाहिये।

"और भिक्षुओ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे।

"भन्ते! संघ मेरी सुने। यदि संघको पसन्द है तो अमुक गृहपतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाये। यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

"भन्ते! संघ मेरी सुने। अमुक गृहपतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्को पसन्द है कि अमुक-गृहपतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाये वह चुप रहे, जिसको पसन्द न हो वह बोले।

"दूसरी बार भी ०। "तीसरी बार भी ०।

"संघने नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया, संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं समझता हूँ।"

भगवान् वै शा ली मे इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले। उस समय छ - व र्गी य भिक्षुओंके शिष्य, बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके आगे आगे जाकर, विहारोको दखलकर लेते थे, शय्याय दखलकर लेते थे—"यह हमारे उपाध्यायोके लिये होगा, यह हमारे आचार्योके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा।" आयुष्मान् सा रि पु त्र, बुद्ध-सहित सघके पहुँचनेपर, विहारोके दखल हो जानेपर, शय्याओके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। भगवान्ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा। आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भी खाँसा।

"कौन यहा है?"

"भगवान्! मै सारिपुत्र!"

"सारि-पुत्र! तू क्यो यहा बैठा है?"

तब आयुष्मान् सारि-पुत्रने सारी बात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी सबधमे—इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको जमा करवा, भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! छ-वर्गीय भिक्षुओंके अ न्ते वा सी (=शिष्य) बुद्ध-सहित सघके आगे आगे जाकर० दखलकर लेते है?"

"सचमुच भगवान्!"

भगवान्ने धिक्कारा—"भिक्षुओ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध-सहित सघके आगे०? भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रसन्नोको अधिक प्रसन्न करनेके लिये है, बल्कि अ-प्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नो (=श्रद्धालुओ)मेसे भी किसी किसीके उलटा (अप्रसन्न) हो जानेके लिये है।"

धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया—

(३) अग्रासन अग्रपिडके योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसा (=अ ग्र - पिं ड)के योग्य कौन है?"

किन्ही भिक्षुओने कहा—"भगवान्! जो क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित हुआ हो, वह योग्य है।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान् जो ब्राह्मण कुलमे प्रव्रजित हुआ है, वह०।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो गृ ह - प ति (=वैश्य) कुलसे।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो सौ त्रा ति क (=सूत्र-पाठी) हो०।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो वि न य - ध र (=विनय-पाठी) हो०।"

किन्ही भिक्षुओने कहा—"भगवान् जो ध र्म - क थि क (=धर्मव्याख्याता) हो०।"

किन्ही०—"जो प्रथम ध्यानका लाभी (=पानेवाला) हो०।"

किन्ही०—"जो द्वितीय ध्यानका लाभी।" "जो तृतीय ध्यानका०।" "जो चतुर्थ ध्यानका०।" "जो सो ता प न्न (स्रोतआपन्न) हो०।" "जो स कि दा गा मी (=सकृदागामी)०।" "जो अ ना गा मी०।" "जो अ र्ह त्०।" "जो त्रै वि द्य हो०।" "जो षड्-अ भि ज्ञ०।"

(४) तित्तिर जातक

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"पूर्वकालमें भिक्षुओ! हिमालयके पासमें एक बळा बर्गद था। उसको आश्रयकर, तित्तिर, वानर और हाथी तीन मित्र रहते थे। वह तीनो एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करते हुये, रहते थे। भिक्षुओ! उन मित्रोको ऐसा (विचार) हुआ—'अहो! जानना चाहिये, (कि हममे कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे बळा जानें, उसका सत्कार करें, गौरव करें, मानें, पूजें, और उसकी सीखमें रहे।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिर और मर्कट (=बानर)ने हस्ति-नागसे पूछा—

'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

'सौम्यो! जब मैं बच्चा था तो इस न्यग्रोध (बर्गद) को जाँघोंके बीचमें करके लाँघ जाता था। इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी। सौम्यो! यह पुरानी बात मुझे स्मरण है।'

'तब भिक्षुओ! तित्तिर और हस्ति-नागने बानरसे पूछा—

'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

'सौम्यो! जब मैं बच्चा था भूमिमें बैठकर इस बर्गदकी फुनगीके अंकुरोंको खाता था। सौम्यो! यह पुरानी ।'

"तब भिक्षुओ! बानर और हस्ति-नागने तित्तिरसे पूछा—

'सौम्य! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है?'

'सौम्यो! उस जगहपर महान् बर्गद था उससे फल खाकर इस जगह मैंने विष्ठा की उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ। उस समय सौम्यो! मैं जन्मसे बहुत सयाना था।'

'तब भिक्षुओ! हाथी और बानरने तित्तिरको यो कहा—

'सौम्य! तू जन्ममें हम सबसे बहुत बळा है। तेरा हम सत्कार करेंगे गौरव करेंगे मानेंगे पूजेंगे और तेरी सीखमें रहेंगे।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिरने बानर और हस्ति-नागको पाँच शील[1] ग्रहण कराये आप भी पाँच शील ग्रहण किये। वह एक दूसरेका गौरव करते सहायता करते साथ जीविका करते हुये विहारकर काया छोळ मरनेके बाद सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये। यही भिक्षुओ! तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य हुआ—

'धर्मको जानकर जो मनुष्य बूढ़का सत्कार करते हैं।

(उनकी निन्दा) इसी जन्ममें प्रशंसा है और परलोकमें सुगति।'

'भिक्षुओ! वह तिर्यग् (=पशु) योनिके प्राणी (थे तो भी) एक दूसरेका गौरव करते सहायता करते साथ जीवन-यापन करते हुये विहार करते थे। और भिक्षुओ! यहाँ क्या यह शोभा देगा कि तुम ऐसे सु-व्याख्यात धर्म-विनयमें प्रव्रजित होकर भी एक दूसरेका गौरव न करते सहायता न करते साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।'

फिर भगवान्ने धार्मिक कथा कहकर उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन प्रत्युत्थान (=देखकर सामने खड़ा होना) हाथ जोळना कुशल-प्रश्न प्रथम-आसन प्रथम-जल प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ। सांघिक वृद्धपनके अनुसारवालेको न रोकना चाहिये जो रोके उसको दुक्कट[2]की आपत्ति (होगी)।

भिक्षुओ! यह दस अ-वन्दनीय हैं—

(५) वन्दनाका क्रम

'पूर्वके उपसम्पन्नको पीछेका उपसम्पन्न[3] अ-वन्दनीय है। अन्-उपसम्पन्न अवन्दनीय है। नाना सह-वासी वृद्ध-तर अ-धर्म-वादी । स्त्रियाँ । नपुंसक । 'परिवास'[4] दिया गया ।

---

[1]अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद्य-वर्जन। [2]भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा पाप है। [3]भिक्षुकी दीक्षाको प्राप्त। [4]अपराधके कारण संघ द्वारा कुछ दिनके लिये दूर करना।

'मू ल से प्र ति - क र्ष णा हैं०। 'मा न त्वा हैं०[1]। 'मानत्व-चारिक०। 'आह्वा ना हैं०। भिक्षुओ! यह तीन वदनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिलेका उपसम्पन्न वन्दनीय है, नाना सहवास वाला वृद्धतर धर्मवादी०। देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक-सम्बुद्ध वन्दनीय है।

३—श्रावस्ती

(६) जेतवन स्वीकार

क्रमश चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ श्रा व स्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमे भगवान् अनाथ-पि डि क के आराम 'जे त - व न' में विहार करते थे। तब अ ना थ - पि डि क गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिडिक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु-सघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया। तब अनाथ-पिंडिक० भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। अनाथ-पिंडिकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करवा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध - सहित भि क्षु - स घ को उत्तम खाद्य भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्से बोला—

"भन्ते! भगवान्! मैं जेतवनके विषयमें कैसे करूँ?"

"गृहपति! जेतवन आ ग त - अ ना ग त चा तु दि श स घ के लिये प्रदान कर दे?"

अनाथ-पिंडिकने 'ऐसा ही भन्ते!' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षुसघको प्रदान कर दिया।

तब भगवान्ने इन गाथाओसे अ ना थ पिं डि क गृहपति (के दान)को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है०[2]।

"० मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है"॥(५)॥

तब भगवान् अनाथपिडिक गृहपति (के दान)को इन गाथाओंसे अनुमोदितकर आसनसे उठ चले गये।

§४—विहारकी चीजोंके उपयोगका अधिकार आसन-ग्रहणके नियम

(१) विहारकी चीजोंके उपयोगमें क्रम

उस समय लोग सघके लिये मडप, सन्थार (=विछौना), अवकाश तैयार करते थे। प ड् - व र्गी य भिक्षुओंके शिष्य—भगवान् सघ (की चीज)के लिये ही वृद्धपनके अनुसार अनुमति दी है, (सघके) उद्देशसे कियेके लिये नही—(सोच) बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके आगे आगे जा मडपो, सन्थारो, और अवकाशोको दखलकर लेते थे—यह हमारे उपाध्यायोके लिये होगा, यह हमारे आचार्योके लिये और यह हमारे लिये होगा। आयुष्मान् सा रि पु त्र बुद्ध-सहित भिक्षुसघके पीछे पीछे जाकर, मडपो, सन्थारो और अवकाशोके ग्रहणकर लिये जानेपर, अवकाश न मिलनेसे एक वृक्षके नीचे बैठे। तब भगवान्ने रातके भिनसारको खाँसा, आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।—

"कौन है यहाँ?"

"भगवान्! मैं सारिपुत्र।"

---

[1] यह भी एक दड है। [2] देखो चुल्ल ६§१।२ पृष्ठ ४५१।

"तब भिक्षुओ ! तित्तिर और मर्कट (=वानर)ने हस्ति-नागसे पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! जब मैं बच्चा था तो इस न्यग्रोध (बर्गद)को जाँघोंके बीचमें करके लाँघ जाता था। इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी। सौम्यो ! यह पुरानी बात मुझे स्मरण है।'

'तब भिक्षुओ ! तित्तिर और हस्ति-नागने वानरसे पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! जब मैं बच्चा था भूमिमें बैठकर इस बर्गदकी फुनगीके अंकुरोंको खाता था। सौम्यो ! यह पुरानी (बात मुझे याद है)।'

'तब भिक्षुओ ! वानर और हस्ति-नागने तित्तिरसे पूछा—

'सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी (बात) याद है ?'

'सौम्यो ! उस जगहपर महान् बर्गद था उससे फल खाकर इस जगह मैंने विष्ठा की उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ। उस समय सौम्यो ! मैं जन्ममें बहुत सयाना था।'

"तब भिक्षुओ ! हाथी और वानरने तित्तिरको यह कहा—

'सौम्य ! तू जन्ममें हम सबमें बहुत बड़ा है। तेरा हम सत्कार करेंगे गौरव करेंगे मानेंगे पूजेंगे और तेरी सीखमें रहेंगे।'

तब भिक्षुओ ! तित्तिरने वानर और हस्ति-नागको पाँच शील[1] ग्रहण कराये आप भी पाँच शील ग्रहण किये। वह एक दूसरेका गौरव करते सहायता करते साथ जीविका करते हुये विहारकर काया छोड़ मरनेके बाद सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुये। यही भिक्षुओ ! तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य हुआ—

'धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धका सत्कार करते हैं।

(उनकी लिये) इसी जन्ममें प्रशंसा है और परलोकमें सुगति।'

'भिक्षुओ ! वह तिर्यक् (=पशु) योनिके प्राणी (थे तो भी) एक दूसरेका गौरव करते सहायता करते साथ जीवन-यापन करते हुये विहार करते थे। और भिक्षुओ ! यहाँ क्या यह शोभा देगा कि तुम ऐसे सु-व्याख्यात धर्म-विनयमें प्रव्रजित होकर भी एक दूसरेका गौरव न करते सहायता न करते साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो। भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ।

धिक्कारकर धार्मिक कथा कहकर उन भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन प्रत्युत्थान (बड़ेके सामने खड़ा होना) हाथ जोड़ना कुशल-प्रश्न प्रथम-आसन प्रथम जल प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ। साँघिक वृद्धपनके अनुसारको न तोड़ना चाहिये जो तोड़े उसको 'दुक्कट' की आपत्ति (होगी)।

भिक्षुओ ! यह दस अ-वन्दनीय हैं—

(२) वन्दनाका क्रम

'पूर्वके उपसम्पन्नको पीछेका उपसम्पन्न[2] अ-वन्दनीय है। अन्-उपसम्पन्न अवन्दनीय है। नाना सह-वासी वृद्ध-तर अ-धर्म-वादी । स्त्रियाँ । नपुंसक । 'परिवास'[3] दिया गया ।

---

[1] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद्य-वर्जन। भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा बड़ा है।

[2] भिक्षुकी दीक्षाको प्राप्त। [3] अपराधके कारण संघ द्वारा कुछ दिनके लिये पृथक्करण।

'मूल से प्र ति - क र्ष णा र्ह०। 'मा न त्वा र्ह०[1]। 'मानत्व-चारिक०। 'आह्वा ना र्ह०। भिक्षुओ ! यह तीन वदनीय हैं—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिलेका उपसम्पन्न वन्दनीय है, नाना सहवास वाला वृद्धतर धर्मवादी०। देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक-सम्बुद्ध वन्दनीय हैं।

३—श्रावस्ती

(६) जेतवन स्वीकार

क्रमश चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ श्रा व स्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमें भगवान् अनाथ-पिं डि क के आराम 'जे त - व न' में विहार करते थे। तब अ ना थ - पिं डि क गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिंडिक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु-सघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौन रह स्वीकार किया। तब अनाथ-पिंडिक० भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। अनाथ-पिंडिकने उस रातके वीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करवा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध - सहित भि क्षु - स घ को उत्तम खाद्य भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्‌के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्‌से वोला—

"भन्ते ! भगवान् ! मै जेतवनके विषयमें कैसे करूँ ?"

"गृहपति ! जेतवन आ ग त - अ ना ग त चा तु र्दि श स घ के लिये प्रदान कर दे ?"

अनाथ-पिंडिकने 'ऐसा ही भन्ते !' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षुसघको प्रदान कर दिया।

तव भगवान्‌ने इन गाथाओसे अ ना थ पिं डि क गृहपति (के दान)को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है०[2]।

"० मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है" ॥(५)॥

तव भगवान् अनाथपिंडिक गृहपति (के दान)को इन गाथाओसे अनुमोदितकर आसनसे उठ चले गये।

§४—विहारकी चीजोंके उपयोगका अधिकार आसन-ग्रहणके नियम

(१) विहारकी चीजोंके उपयोगमें क्रम

उस समय लोग सघके लिये मडप, सन्थार (=बिछौना), अवकाश तैयार करते थे। ष ड् - व र्गी य भिक्षुओंके शिष्य—भगवान् सघ (की चीज)के लिये ही वृद्धपनके अनुसार अनुमति दी है, (सघके) उद्देशसे कियेके लिये नही—(सोच) बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके आगे आगे जा मडपो, सन्थारो, और अवकाशोको दखलकर लेते थे—यह हमारे उपाध्यायोके लिये होगा, यह हमारे आचार्योके लिये और यह हमारे लिये होगा। आयुष्मान् सा रि पु त्र बुद्ध-सहित भिक्षुसघके पीछे पीछे जाकर, मडपो, सन्थारो और अवकाशोके ग्रहणकर लिये जानेपर, अवकाश न मिलनेसे एक वृक्षके नीचे बैठे। तव भगवान्‌ने रातके भिनसारको खाँसा, आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।—

"कौन है यहाँ ?"

"भगवान् ! मै सारिपुत्र।"

---

[1] यह भी एक दड है।

[2] देखो चुल्ल ६§१।२ पृष्ठ ४५१।

'सारिपुत्र ! तू क्या यहाँ बैठा है ?'

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने सारी बात भगवान्से कह दी—।[1]।

धिक्कारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (संघके) उद्देशसे किये में भी वृद्धपनके अनुसार (चीजोंके ग्रहणकरनेके नियम)को नहीं उल्लंघन करना चाहिये जो उल्लंघनकरे उसे दुक्कटका दोष हो।" 113

(२) महार्घ शय्याका निषेध

उस समय लोग भोजनके समय अपने आराम ऊँचे शयन महाशयन बिछाते थे—जैसे कि आसन्दी पलंग गोनक (=रोमेंदार कम्बल) चित्रक (=नक्शेदार) पटिक (=सीतलपाटी ?) पटलिक (=फूलदार) तूलिक (=रूईदार) विकतिक (=सिंह व्याघ्रादिके चित्रवाला) उद्दलोमी (=ऊनी चादर जिसके दोनों ओर झालर लगे हो) एकन्तलोमी (=ऊनी चादर जिसके एक ओर झालर लगी है) कट्ठिस्स (=कामदार रेशम) कौशेय कम्बल कुत्तक (=एक प्रकारका सूती कपड़ा) हाथीका बिछौना (=झूल) घोड़ेका बिछौना रथका बिछौना मृगछाला (=अजिनप्पवेनी) कादलि-मृगप्रत्यास्तरण (=बिछौना) ऊपरकी चादर और (=सिरहाने पैरहाने) दोनों ओर लाल तकियावाला। भिक्षु सन्देहमें पड़ नहीं बैठे थे। भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! आसन्दी पलंग और तूलिक इन तीनको छोड़ बाकी सभी गृहस्थोंके (आसनोंपर) बैठनेकी और उनपर लेटनेकी अनुमति देता हूँ। 114

उस समय लोग भोजनके समय अपने घरमें रुई डाले मञ्चको भी पीठको भी बिछाते थे। नहीं बैठते थे। —

अनुमति देता हूँ, गृहस्थोंके बिछौनेपर बैठने और लेटने की। 115

(३) आसन देना लेना

उस समय एक आजीवक-अनुयायी महामात्य (=राजमंत्री)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रने पीछे आ भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा दिया। भोजन स्थानमें हल्ला हो गया। तब वह महामात्य हैरान होता था—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण पीछे आ भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा देते हैं जिससे कि भोजन स्थानमें हल्ला मचता है। दूसरी जगह बैठकर भी तो यथेच्छ (भोजन) किया जा सकता है ?' भिक्षुओंने उस महामात्यके हैरान होनेको सुना। अल्पेच्छ-भिक्षु भगवान्से कहा।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! भोजन करते समय भिक्षुको उठाना न चाहिये जो उठाये उसको दुक्कटका दोष हो। 116

यदि उठाता है और (वह भिक्षु) भोजन समाप्तकर चुका है तो कहना चाहिये—जाओ पानी लाओ। यदि ऐसा (करने अवसर) मिल जाय तो ठीक न हो तो कवलको अच्छी तरह निगलकर अपनेसे वृद्धको आसन देना चाहिये। 117

---

[1]देखो पृष्ठ ४६४।

"भिक्षुओ ! मै किसी प्रकारसे (अपनेसे) वृद्धके आसन हटानेके लिये नही कहता, जो हटाये उसे दुक्कटका दोप हो।" 118

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु रोगी भिक्षुओको उठाते थे। रोगी ऐसा कहते थे—'आवुसो ! हम रोगी है, उठ नही सकते।' 'हम आयुष्मानोको उठावेहीगे'—(कह) पकळकर उठा खळे होनेपर छोळ देते थे। रोगी मूर्छित हो गिर पळते थे। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! रोगीको न उठाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 119

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु—हम रोगी है, उठाये नही जा सकते—(कह) अच्छे आसनो पर वैठते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगीको (उसके योग्य) आसन देनेकी।" 120

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु जरामे (शिर दर्द)से भी शयन-आसन हटाते थे।०—

"०जरामे शयन-आसनसे नही हटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 121

(४) सांघिक विहार

उस समय सप्तदशवर्गीय भिक्षु—यहाँ हम वर्पावास करेगे—(विचार) एक छोर वाले विहारकी मरम्मत करवा रहे थे। पड्वर्गीय भिक्षुओने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओको विहारकी मरम्मत कराते देखा। देखकर ऐसा कहा—

"आवुसो ! यह सप्तदश वर्गीय भिक्षु एक विहारकी मरम्मत करा रहे है, आओ ! इन्हे हटावें।"

तव पड्वर्गीय भिक्षुओने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओसे यह कहा—

"आवुसो ! उठो (यहाँसे) इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"तो आवुसो ! पहिले ही कहना चाहिए था, जिसमे कि हम दूसरे विहारकी मरम्मत करते ?"

(पड्०)—"आवुसो ! साघिक (=सघका) विहार है न ?"

(सप्तदश)—"हाँ, आवुसो ! साघिक विहार है।"

(पड्०)—"उठो आवुसो ! इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"आवुसो ! विहार वळा है, तुम भी वास करो, हम० भी वास करेंगे।"

(पड्०)—"उठो आवुसो ! इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो गर्दनसे पकळकर निकालते थे।

निकालनेपर वह रोते थे। भिक्षुओने पूछा—

"आवुसो ! किसलिये तुम रोते हो ?"

"आवुसो ! यह पड्वर्गीय भिक्षु कुपित असन्तुष्ट हो हमें साघिक विहारसे निकालते हैं।"

०अल्पेच्छ भिक्षु०। भगवान्‌से यह बात वोले।० सचमुच०।—

"भिक्षुओ ! कुपित असन्तुष्ट हो (किसी) भिक्षुको साघिक विहारसे नही निकालना चाहिये, जो निकाले उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ शयन-आसनके ग्रहण करानेकी।" 122

तव भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये ?' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पाँच अगोसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन ग्रहापक (=शयन-आसनको ग्रहण करानेवाला अधिकारी) चुनने (=सम्मन्त्रण करने)की—(१) जो न स्वेच्छाचार

(=छन्द)के रास्ते जाये (२) न द्वेष (३) न भय (४) न मोह (५) जाने जानेको जाने। 123

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर चतुर-समर्थ भिक्षु-संघको सूचित करे—

क. ज्ञ प्ति ।

ख. अ नु श्रा व ण ।

ग. धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको शयन-आसन-ग्राहापक चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।'

(५) शयन आसन-ग्राहापक

तब शयन-आसन-ग्राहापक भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पहिले भिक्षुओंको गिननेकी, भिक्षुओंको गिनकर शय्या (Seats) गिननेकी, शय्या गिनकर प्रथमकी (अच्छी) शय्यासे ग्रहण करानेकी। 124

प्रथमकी शय्यासे ग्रहण कराते हुए शय्याओंको बँचा लिया।—

अनुमति देता हूँ प्रथमके विहारसे ग्रहण करानेकी। 125

प्रथमके विहारसे ग्रहण कराते हुए विहारोंको बँचा लिया।—

अनुमति देता हूँ प्रथमके परिवेणसे ग्रहण करानेकी। 126

अनुमति देता हूँ अतिरिक्त भाग भी देनेकी, अतिरिक्त भाग दे देनेपर दूसरा भिक्षु आजाये तो इच्छाके बिना नहीं देना चाहिये। 127

उस समय भिक्षु सीमासे बाहर ठहरेको शयन-आसन ग्रहण कराते थे।—

"भिक्षुओ! सीमासे बाहर ठहरेको शयन-आसन नहीं ग्रहण कराना चाहिये, ०दुक्कट ०। 128

उस समय भिक्षु शयन-आसन ग्रहण करा सब समयके लिये रोक रखते थे।—

"शयन-आसन ग्रहण करा सब समयके लिये नहीं रोकना चाहिये, ०दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ वर्षाके तीन मासों तक रोक रखनेकी, और (बाकी) ऋतुओंके समय नहीं रोकनेकी।" 129

तब भिक्षुओंको यह हुआ—'शयन-आसनके ग्रहण कितने (प्रकारके) हैं?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसनके ग्रहण हैं—(१) पहिला, (२) पिछला, (३) बीचमें न छोड़ा। (१) आषाढ़ पूर्णिमाके एक दिन जानेपर प हि ला (शयन-आसन) ग्रहण कराना चाहिये; (२) आषाढ़ पूर्णिमाके मासभर बीत जानेपर पिछला; (३) प्रवारणा (आश्विन पूर्णिमा)के एक दिन जानेपर आनेवाले वर्षावासके लिये बीचमें न छोड़ा ग्रहण कराना चाहिये।—भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसन-ग्राह हैं। 130

द्वितीय भाणवार समाप्त ॥२॥

(६) एकका दो स्थान लेना निषिद्ध

उस समय आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्र श्रावस्तीमें शयन-आसन ग्रहणकर एक गाँवके आवासमें गये। वहाँ भी (उन्होंने) शयन-आसन ग्रहण किया। तब भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! यह आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र भंडन करनेवाले, विवाद करनेवाले और संघमें झगड़ा करनेवाले हैं। यदि यह यहाँ वर्षावास करेंगे तो हम सुखपूर्वक न वास कर सकेंगे। अच्छा हो इन्हें पूछें।' तब उन भिक्षुओंने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रसे यह कहा—

"आवुस उपनन्द ! आपने श्रावस्तीमें शयन-आसन ग्रहण किया है न ?"

"हाँ, आवुसो !"

"क्या आवुस उपनन्द ! आप अकेले दो (आसनो)को रखे हुए है ?"

"आवुसो ! मैं इसे छोळता हूँ, उसे ग्रहण करता हूँ।"

०अल्पेच्छ० भिक्षु०। भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमें भिक्षुसघको जमाकर आयुष्मान् उपनन्द० से यह पूछा—

"सचमुच उपनन्द ! तू अकेले दो (आसनो)को रखे है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे तू मोघपुरुष ! अकेले दो (स्थानो)को रखता है। मोघपुरुष ! तूने वहाँका रखा, यहाँका छोळ दिया, यहाँका रखा, वहाँका छोळ दिया। इस प्रकार मोघपुरुष ! तू दोनो से बाहर हुआ। मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एकको दो (स्थान) नही रोक रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 131

(७) एक आसनपर बैठना

उस समय भगवान् अनेक प्रकारसे भिक्षुओको विनयकी कथा कहते थे, विनयकी प्रशसा करते थे, विनयके आचरणकी प्रशसा करते थे आयुष्मान् उपालिकी प्रशसा करते थे। भिक्षु—भगवान् अनेक प्रकारसे विनयकी कथा कहते है,० आयुष्मान् उपालिकी प्रशसा करते है—(सोच), आओ आवुसो ! हम आयुष्मान् उपालिसे विनय सीखें। (और) बहुतसे वृद्ध मध्यम (वयस्क) भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास विनय सीखते थे। स्थविर भिक्षुओके गौरवके ख्यालसे आयुष्मान् उपालि खळे खळे पढाते थे। स्थविर भिक्षु भी धर्मके गौरवसे खळेही खळे बँचवाते थे। उससे स्थविर भिक्षु भी तकलीफ पाते थे, आयुष्मान् उपालि भी। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ (अपनेसे) कमके भिक्षुके पढते समय बराबर या ऊँचे आसनपर बैठनेकी, स्थविर भिक्षु बँचवाते समय धर्मके गौरवसे बराबर बैठें, या धर्मके गौरवसे (उससे) निचले आसनपर।" 132

उस समय बहुतसे भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास खळे खळे पाठ सुनते तकलीफ पाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ समान आसनवालोको एक साथ बैठनेकी।" 133

तब भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे समान-आसनवाला होता है ?' ०—

"०अनुमति देता हूँ, तीन वर्षके भीतर (के भिक्षुओ)को एक साथ बैठनेकी।" 134

उस समय बहुतसे समान-आसनवाले (भिक्षुओ)ने चारपाईपर एक साथ बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठको तोळ दिया। ०—

"०अनुमति देता हूँ, त्रिवर्ग (=तीनके समुदाय)को (एक साथ) चारपाईपर (बैठनेकी), त्रिवर्गको पीठ (पर बैठनेकी)।" 135

त्रिवर्गने भी चारपाईपर बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठ तोळ दी।—

"०अनुमति देता हूँ, द्विवर्ग (=दो आदमियो) को चारपाईकी, द्विवर्गको पीठकी।" 136

उस समय भिक्षु अ-समान-आसनवालोके साथ लम्बे आसनपर बैठनेमें सकोच करते थे।०—

अनुमति देता हूँ पंडक स्त्री और (स्त्री पुरुष) दोनों लिंगवालेको छोड़ स-समान-आसन वालोंके साथ लम्बे आसनपर बैठनेकी। 137

तब भिक्षुओंको हुआ—'कितने तक (लम्बा) लम्बा आसन (कहा) जाता है?'—

अनुमति देता हूँ जो तीनसे नहीं पूरा होता उसे लम्बा आसन (मानने) की। 138

§५—विहार और उसके सामानको बनवाना, बाँटने योग्य वस्तुयें, वस्तुओंका हटाना या परिवर्तन, सफाई

(१) साधिक वस्तु

उस समय विशाखा मृगार-माता संघके लिये आलिन्द (=बरांडी) सहित हस्तिनख प्रासाद बनवाना चाहती थी। तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या भगवान्‌ने प्रासादके उपयोगकी अनुमति दी है या नहीं? ०—

अनुमति देता हूँ सभी प्रासादके उपयोगकी। 139

उस समय कोसलराज प्रसेनजित्‌की माता (=अय्यका) मरी थी। उसके मरनेसे संघको बहुतसी अ-विहित वस्तुएँ मिलीं जैसे कि आसन्दी पलंग गोनक (=रोयेंदार कम्बल) ¹ दोनो ओर लाल तकियोंके साथ कादलीमृगका उत्तम बिछौना। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ आसन्दीके पैरको काटकर इस्तेमाल करनेकी, पलंगके बालको तोड़कर इस्तेमाल करनेकी, तूल (=रूई)की गुल्थियोंको फोड़कर तकिया बनानेकी और बाकीको भूमिका बिछौना बनानेकी। 140

(२) पाँच अ-देय

¹—उस समय श्रावस्तीके पासके एक ग्रामके आवासके भिक्षु आनेवाले भिक्षुओंके लिये शयन आसनका प्रबन्ध करते करते तंग आ गये थे। तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—'आवुसो! हम इस वक्त आनेवाले भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका प्रबन्ध करते करते तंग आ गये हैं। आओ आवुसो! हम सभी सांघिक शयन आसनको एकको दे दें और उस(से माँग)कर इस्तेमाल करेंगे।' (तब) उन्होंने सभी सांघिक शयन आसन एकको दे दिया। नवागन्तुक भिक्षुओंने उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"आवुसो! हमारे लिये शयन-आसन बतलाओ।"

"आवुसो! सांघिक शयन-आसन नहीं हैं। हमने सब (शयन-आसन) एकको दे दिये।"

"क्या आवुसो! तुमने सांघिक शयन-आसनको दे डाला?"

"हाँ आवुसो!"

अल्पेच्छ भिक्षु ...हैरान होते थे—०। भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ! वह मोघपुरुष सांघिक शयन-आसनको दे डालेंगे!! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

¹देखो पृष्ठ ४११।

"भिक्षुओ! यह पाँच अदेय है, उन्हे मघ, गण या व्यक्ति (किसीको) देनेका (हक) नही है, दे डालनेपर भी यह विना दिये जैसे होते है। जो दे उसे थुल्लच्चयका दोप हो।" 141

"कौनसे पाँच?—(१) आराम और आरामके मकान, यह पहिले अदेय है० जो दे उसे थुल्लच्चयका दोप हो। (२) विहार और विहारका मकान०। (३) चौपाई-चौकी गद्दा तकिया०। (४) लोह-कुभक, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, बँसूला, फरसा, कुदाल, खनती। (५) वल्ली, वेणु, मूंज, वल्वज (=भाभळ), तृण, मिट्टी, लकळीका वर्तन, मट्टीका वर्तन—यह पाँच अदेय है०।"

४—कीटागिरि

तव भगवान् श्रा व स्ती मे इच्छानुसार विहारकर सारिपुत्र-मौद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षुमघके माथ जिधर की टा गि रि है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओने मुना—भगवान् सारिपुत्र मौद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षु-मघके साथ कीटागिरि आ रहे है।

"तो आवुसो! (आओ) हम सब मघके शयन-आसनको वाँट ले। सा रि पु त्र मौ द् ग ल्या य न पाप (=बुरी)-इच्छाओमे युक्त है। हम उन्हे शयन-आसन न देगे।" यह सोच उन्होने सभी साधिक[1] शयन-आसनोको वाँट लिया।

तव भगवान् क्रमश चारिका करते, जहाँ कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे। तव भगवान्‌ने वहुतसे भिक्षुओको कहा—

"जाओ भिक्षुओ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओके पास जाकर ऐसा कहो—'आवुसो! ० भगवान् आ रहे हैं। आवुसो! भगवान्‌के लिये शयन-आसन ठीक करो, सघके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी'।"

"अच्छा भन्ते!" कह उन भिक्षुओने जाकर अ श्व जि त्, पु न र्व सु भिक्षुओसे यह कहा—"०"। (उन्होने कहा)—

"आवुसो! (यहाँ) साधिक शयन-आसन नही है, हमने सभी वाँट लिया। स्वागत है आवुसो! भगवान्‌का। जिस विहारमे भगवान् चाहे, उस विहारमे वास करे। (किन्तु) पापेच्छु है सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हे शायनासन नही देगे।"

"क्या आवुसो! तुमने साधिक शयनासन (=घर, सामान) वाँट लिया?"

"हाँ आवुस!"

तव उन भिक्षुओने जाकर यह बात भगवान्‌से कही। भगवान्‌ने धिक्कारकर भिक्षुओसे कहा—

(३) पाँच अ-विभाज्य

"भिक्षुओ! यह पाँच अ-विभाज्य हैं, सघ-गण या पुद्गल (=व्यक्ति) द्वारा न वाँटने योग्य है। वाँटनेपर भी यह अविभक्त (=विना बँटे) ही रहते हैं, जो वाँटता है, उसे स्थूल-अत्ययका अपराध लगता है। कौनसे पाँच? (१) आराम या आराम-वस्तु (=आरामका घर) । (२) विहार या विहार-वस्तु । (३) मच, पीठ, गद्दा, तकिया । (४) लोह-कुम, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, वासी (=बँसूला), फरसा, कुदाल, निखादन (=खननेका औज़ार) । (५) वल्ली, वाँस, मूंज, वल्वज, तृण, मिट्टी, लकडीका वर्तन, मिट्टीका वर्तन ।" 142

[1] सारे सघकी सम्पत्ति, एक व्यक्ति नहीं।

४—आळवी

(४) नवकर्म

तब भगवान् कीटागिरिमें इच्छानुसार विहारकर जिधर आळवी[1] है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ आळवी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् आळवीके अग्गाळव चैत्यमें विहार करते थे। उस समय आळवीके निवासी भिक्षु इस प्रकारके नवकर्म (=गृह निर्माण) देते थे। पिंड रखने मात्रके लिये भी नवकर्म देते थे, भीत लीपने मात्रके लिये भी, द्वार स्थापित करने मात्रके लिये भी, अर्गल (=बेंळा)की घट्टी करने मात्रके लिये भी, आलोक-संधि (=रोशनदान करने), सफेदी करने, काला रंग करने, गेरूसे रँगने, छाजन करने, बाँधने, गण्डिका (=लकळी) रखने, टूटे-फूटेकी मरम्मत करने, परिभण्ड (=पेटी) करने मात्रके लिये भी नवकर्म देते थे। बीस वर्षके लिये भी, तीस वर्षके लिये भी, जिन्दगी भरके लिये भी नवकर्म देते थे। धूएँसे कालिख लगे विहारका भी नवकर्म देते थे। ०अल्पेच्छ भिक्षु हैरान होते थे—०।—

"भिक्षुओ! पिंड रखने मात्रके लिये ० धूएँके कालिख लगे विहारका नवकर्म नहीं देना चाहिये, जो दे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ न किये या बेठीकसे किये विहारका नवकर्म देनेकी। अड्डयोग (=अटारी) में काम देखकर साढ़े भी वर्षके लिये नवकर्म देनेकी, बळे विहार या प्रासादमें (उस भिक्षुके) कामको देखकर दस बारह वर्षके लिये नवकर्म देने की।" 143

उस समय भिक्षु सारे विहारका नवकर्म देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! सारे विहारका नवकर्म नहीं देना चाहिये, दुक्कट ०।" 144

उस समय भिक्षु एकको दो (इमारतों)का नवकर्म देते थे।—

"भिक्षुओ! एकको दोका नवकर्म नहीं देना चाहिये, दुक्कट ०।" 145

उस समय भिक्षु नवकर्म ग्रहणकर दूसरेको बसाते थे।०—

"भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर दूसरेको न बसाना चाहिये, ०दुक्कट ०।" 146

उस समय भिक्षु नवकर्म लेकर सांघिक (विहार)को रोक रखते थे।—

"भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर सांघिकको नहीं रोक रखना चाहिये, दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, एक अच्छी शय्या लेनेकी।" 147

उस समय भिक्षु सीमासे बाहर ठहरनेवालेको नवकर्म देते थे।—

"० सीमासे बाहर ठहरनेवालेको नवकर्म नहीं देना चाहिये, दुक्कट ०।" 148

उस समय भिक्षु नवकर्म ग्रहणकर सब कालके लिये रखते थे।०—

"० नवकर्म ग्रहणकर सब कालके लिये नहीं रख लेना चाहिये, दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ वर्षाके तीन मास भर रखनेकी (बाकी) ऋतुकालके समय न रखनेकी।" 149

उस समय भिक्षु नवकर्म ग्रहणकर चले भी जाते थे, गृहस्थ भी हो जाते थे, मर भी जाते थे, श्रामणेर भी बन जाते थे, (भिक्षु-)शिक्षाको अस्वीकार करनेवाले भी बन जाते थे, अन्तिम अपराध (पाराजिक)के अपराधी भी हो जाते थे, उन्मत्त भी, विक्षिप्त-चित्त भी, वेदनाट्ट (=मूर्च्छा प्राप्त) भी, आपत्ति (=अपराध)के न देखनेसे उत्क्षिप्तक भी, आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्तक भी, बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक भी, पंडक भी, चोरके साथ रहनेवाले भी, तीर्थिक-

---

[1] अरवल (कानपुरमें कन्नौजके समीपस्थ)।

के पास चले गये भी०, तिर्यग्योनिमे चले गये भी०, मातृघातक भी०, पितृघातक भी०, अर्हद्घातक भी०, भिक्षुणी-दूषक भी०, सघमें फूट डालनेवाले भी०, (बुद्धके शरीरसे) खून निकालनेवाले भी०, (स्त्री-पुरुष) दोनोके लिंगवाले भी वन जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु नवकर्म ग्रहण कर चला जाये० (स्त्री-पुरुष) दोनोके लिगवाला वन जाये, तो जिसमें सघ (के काम) का हर्ज न हो, (वह काम) दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर ठीकसे (काम) न कर चला जाये० दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर उसे पूरा करके चला जाये तो वह उसीका (काम) है। यदि भिक्षुओ! नवकर्म ग्रहणकर पूरा करके गृहस्थ हो जाये, मर जाये, श्रामणेर वन जाये, शिक्षाको अस्वीकार करनेवाला०, अन्तिम अपराध का अपराधी हो जाये तो सघ मालिक है। यदि० पूरा करके उन्मत्त०, विक्षिप्त चित्त०, वेदनट्ट०, ०उत्क्षिप्तक वन जाये, तो वह उसीका (काम) है। यदि० पूरा करके पडक०,० (स्त्री-पुरुष) दोनोके लिगवाला वन जाये, तो सघ मालिक है।" 150

(५) विहारके सामानका हटाना

उस समय भिक्षु एक उपासकके विहारमे उपयुक्त होनेवाले शय्या, आसनको दूसरे स्थानपर (ले जाकर) इस्तेमाल करते थे। वह उपासक हैरान० होता था—कैसे भदन्त (लोग) दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान) को दूसरे स्थानपर इस्तेमाल करेंगे।०—

"भिक्षुओ! दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान) को दूसरे स्थानपर नही इस्तेमाल करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 151

उस समय भिक्षु उपोसथ के स्थानपर भी आसन ले जानेमें सकोच करते थे, भूमिपर ही बैठते थे।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, कुछ समयके लिये ले जानेकी।" 152

उस समय सघका (एक) महाविहार गिर रहा था भिक्षु सकोच करते शय्या, आसनको नही हटाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रक्षाके लिये (सामानको) हटानेकी।" 153

(६) वस्तुओंका परिवर्तन

उस समय शय्या-आसनके कामका एक वहुमूल्य कम्बल सघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फातिकम्म (=सुभरता) के लिये (उसे) वदल लेने की।" 154

उस समय शय्या-आसनके कामका एक वहुमूल्य दुस्स (=थान) सघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फातिकम्म के लिये (उसे) वदल लेनेकी।" 155

(७) आसन, भीतको साफ रखना

उस समय सघको भालूका चमळा मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ पापोश (=पाद-पुछन) वनानेकी।" 156

चक्कली (=?) मिली थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश वनानेकी।" 157

चोळक (=चोलक=लत्ता) मिला था।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश वनानेकी।" 158

उस समय भिक्षु विना धोये पैरोंसे शय्या-आसनपर चढते थे, शय्या-आसन मैले होते थे।०—

भिक्षुओ! पैर धोये बिना शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, दुक्कट०। 159

उस समय भीगे पैरों शय्या-आसनपर चढ़ते थे ०मलिन०।—

"०भीगे पैरों शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, दुक्कट०। 160

०जूते सहित शय्या-आसनपर चढ़ते थे ०मलिन०।—

०जूते सहित शय्या-आसनपर नहीं चढ़ना चाहिये, दुक्कट०। 161

काम की हुई भूमिपर थूकते थे, रंग खराब होता था।०—

०काम की गई भूमिपर नहीं थूकना चाहिये, दुक्कट०। अनुमति देता हूँ थूकदान (=खेळ-मल्लक)की। 162

चारपाईके पाये भी चौकीके पाये भी काम की हुई भूमिको कुरेदते थे।—

०अनुमति देता हूँ (पायोंपर) कपड़ेसे लपेटनेकी। 163

उस समय काम की हुई भीतपर ओठँगते थे, रंग खराब होता था।०—

काम की हुई भूमिपर नहीं ओठँगना चाहिये, दुक्कट०। अनुमति देता हूँ ओठँगनेके तख्तेकी। 164

ओठँगनेका तख्ता नीचेसे भूमिको कुरेदता था और ऊपरसे भीतको नुकसान पहुँचाता था।०—

अनुमति देता हूँ ऊपरसे भी नीचेसे भी कपड़ा लपेटनेकी। 165

उस समय भिक्षु पैर धो लेटनेमें संकोच करते थे।—

०अनुमति देता हूँ बिछाकर लेटनेकी। 166

§६—संघके बारह कर्मचारियोंका चुनाव

१—राजगृह

(१) भक्त-उद्देशक

तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर राजगृह है उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें वेणुवन कलन्दक निवापमें विहार करते थे। उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था। लोग संघको भोज नहीं दे सकते थे; उद्देश-भोज, शलाका-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (=पूर्णिमा अमावस्याका) प्रातिपदिक (=प्रतिपदका) (भोज) कराना चाहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ, संघ-भोज, उद्देश-भोज, शलाका-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (और) प्रातिपदिक (भोज)की। 167

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्वयं अच्छा अच्छा भोजन ले खराब खराब (अन्न) भिक्षुओंको देते थे।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको भक्त-उद्देशक (=भोजके लिए भिक्षुओंको भेजनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारके रास्ते जाये (२) न द्वेष (३) न भय (४) न मोह (५) उद्देश किये और उद्देश न कियेको जाने। 168

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

'क. ज्ञप्ति।

"ख अनुश्रावण०।

"ग धारणा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको भक्त-उद्देशक चुन लिया। संघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।"

तब भक्त-उद्देशक भिक्षुओंको यह हुआ—'कैसे भक्त (=भोज)का उद्देश (=वितरण) करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, सलाका[1] (=सलाई)से या पट्टिका (=पटिया)से उपनिबंधन (=लिख) कर, ओपुञ्छन (=रला)कर उद्देश करने (चिट्ठी डालने)की।" 169

(२) शयनासन-प्रज्ञापक

उस समय संघका शयन-आसन-प्रज्ञापक (=आसन बाँटनेवाला) न था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन-प्रज्ञापक चुननेकी—०[2]।" 170

(३) भाण्डागारिक

उस समय संघका भाण्डागारिक (=भंडारी) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको भाण्डागारिक चुननेकी।—०[2]।" 171

(४) चीवर-प्रतिग्राहक

उस समय संघका चीवर-प्रतिग्राहक (=दान मिले चीवरोंका रखनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाच बातोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुननेकी—०[2]।" 172

(५) चीवर-भाजक

उस समय संघका चीवर-भाजक (=चीवर वितरण करनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको चीवर-भाजक चुननेकी—०[2]।" 173

उस समय संघका यवागू-भाजक (=खिचळी बाँटनेवाला) न था।०—

(६) यवागू-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको यवागू-भाजक चुननेकी—०[2]।" 174

उस समय संघका फल-भाजक (=फल बाँटनेवाला) न था।०—

(७) फल-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको फल-भाजक चुननेकी—०[2]।" 175

उस समय संघका खाद्य-भाजक (=खानेकी चीजोंका बाँटनेवाला) न था।०—

(८) खाद्य-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको खाद्य-भाजक चुननेकी—०[2]। 176

(९) अल्पमात्रक-विसर्जक

उस समय संघके भंडारमें थोळासा (=अल्पमात्रक) सामान मिला था।०—

---

[1]वृक्षके सारकी शलाका या बाँस या तालपत्रकी पट्टिकापर भोज देनेवालेका नाम लिख कर, सब शलाकाओंको ऊपर नीचे हिला एकमें मिलाकर स्थविरके आसनसे ही देना शुरू करना चाहिये (—अट्ठकथा)।

[2] भक्त-उद्देशकी तरह यहाँ भी (पृष्ठ ४७४)।

" अनुमति देता हूँ, पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको अल्पमात्रक-विसर्जक (=छोटी-मोटी चीज़ोंका बाँटनेवाला) चुननेकी—[1]।" 177

उस अल्पमात्रक-विसर्जक भिक्षुको एक एकके लिये सुई देनी चाहिये सत्थक (=कैंची) जूता कमरबंद अंसबंधक (=कंधेसे लटकानेका बंधन) परिस्रावण धर्मकरक (=पञ्जुआ) कुसि (=पटिया) अर्धकुसि (=आधी पटिया) मण्डल (=गोलाई) अर्धमण्डल० अनुवात परिभण्ड (=पेटी) देना चाहिये। यदि संघके पास घी तेल मधु खाँड हो तो खानेके लिये एक बार देना चाहिये यदि फिर प्रयोजन हो तो फिर देना चाहिये।

(१०) शाटिक ग्राहापक

उस समय संघका शाटिक-ग्राहापक (=शाटक बाँटनेवाला) न था। —

" अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको शाटिक-ग्राहापक चुननेकी— [1]। 178

(११) आरामिक-प्रेषक

उस समय संघका आरामिक-प्रेषक (=आरामके नौकरोंका अफ़सर) न था। —

अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको आरामिक-प्रेषक चुननेकी— [1]। 179

(१२) श्रामणेर-प्रेषक

उस समय संघके पास श्रामणेर-प्रेषक (=श्रामणेरोंका अफ़सर) न था। —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुको श्रामणेर-प्रेषक चुननेकी— [1]। 180

तृतीय भाणवार (समाप्त) ॥३॥

सेनासनक्खन्धक समाप्त ॥६॥

---

[1] भक्त-उद्देशककी तरह यहाँ भी (पृष्ठ ४३८)।

७—संघभेदक-स्कंधक

१—देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान। २—देवदत्तका अजातशत्रुको बहकाना, बुद्धपर आक्रमण, और संघमें फूट डालना। ३—संघराजी, संघभेद और संघसामग्रीकी व्याख्या। ४—नरकगामी और अचिकित्स्य व्यक्ति।

§१—देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान

१—अनूपिय

(१) अनुरुद्ध आदिके साथ देवदत्तकी प्रव्रज्या

उस समय भगवान् म ल्लो के कस्बे (=निगम) अ नू पि या में विहार करते थे। उस समय कुलीन कुलीन शा क्य - कु मा र भगवान्‌के प्रव्रजित होनेपर अनु-प्रव्रजित हो रहे थे। उस समय म हा ना म शाक्य और अ नु रु द्ध-शाक्य दो भाई थे। अनुरुद्ध सुकुमार था, उसके तीन महल थे—एक जाळेके लिये, एक गर्मीके लिये, एक वर्षाके लिये। वह वर्षाके चार महीनोमें वर्षा-प्रासादके ऊपर अ-पुरुष-वाद्योके साथ सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था। तव महानाम शाक्यके (चित्तमें) हुआ—आज-कल कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान्‌के प्रव्रजित होनेपर अनुप्रव्रजित हो रहे है। हमारे कुलसे कोई भी घर छोड बेघर हो प्रव्रजित नही हुआ है। क्यो न मै या अनुरुद्ध प्रव्रजित हो। तव महानाम, जहाँ अनुरुद्ध शाक्य था, वहाँ गया। जाकर अनुरुद्ध शाक्यसे वोला—"तात! अनुरुद्ध! इस समय० हमारे कुलसे कोई भी० प्रव्रजित नही हुआ। इसलिये तुम प्रव्रजित हो या मै प्रव्रजित होऊँ।"

"मै सुकुमार हूँ, घर छोळ बेघर हो प्रव्रजित नही हो सकता, तुम्ही प्रव्रजित होओ।"

"तात! अनुरुद्ध! आओ तुम्हे घर-गृहस्थी समझा दूँ।—पहिले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर बोवाना चाहिये। बोवाकर पानी भरना चाहिये। पानी भरकर निकालना चाहिये, निकाल कर सुखाना चाहिये, सुखवाकर कटवाना चाहिये, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये, ऊपर ला सीधा करवाना चाहिये, सीधा करा मर्दन करवाना (=मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयालको हटाकर भूसी हटानी चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षोमें भी करना चाहिये। काम (=आवश्यकतायें) नाश नही होते, कामोका अन्त नही जान पळता।"

"कव काम खतम होगे, कव कामोका अन्त जान पळेगा? कव हम बे-फिकर हो, पाँच प्रकारके कामोपभोगोमे युक्त हो विचरण करेंगे?"

"तात! अनुरुद्ध! काम खतम नही होते, न कामोका अन्त ही जान पळता है। कामोको विना खतम किये ही पिता और पितामह मर गये।"

"तुम्ही घर गृहस्थी सँभालो, हम ही प्रव्रजित होवेंगे।"

तव अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी वहाँ गया, जाकर मातासे बोला—

"अम्मा ! मैं घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मुझे प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दे।"

ऐसा कहनेपर अनुरुद्ध शाक्यकी माताने अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात ! अनुरुद्ध ! तुम दोनों मेरे प्रिय=मनआप-अप्रतिकूल पुत्र हो, मरनेपर भी (तुमसे) अनिच्छुक नहीं होऊँगी, भला जीते जी प्रव्रज्याकी स्वीकृति कैसे दूँगी ?"

दूसरी बार भी अनुरुद्ध शाक्यने मातासे यों कहा ।

तीसरी बार भी ।

उस समय भद्दिय नामक शाक्य-राजा शाक्योंपर राज्य करता था, (वह) अनुरुद्ध शाक्यका मित्र था। तब अनुरुद्ध शाक्यकी माताने (यह सोच)—यह भद्दिय (=भद्रिक) शाक्यराजा अनुरुद्धका मित्र शाक्योंपर राज्य करता है, वह घर छोळ प्रव्रजित होना नहीं चाहेगा—और अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात ! अनुरुद्ध यदि भद्दिय शाक्य राजा प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ भद्दिय शाक्य राजा था, वहाँ गया, जाकर भद्दिय शाक्य-राजासे बोला—

"सौम्य ! मेरी प्रव्रज्या तेरे अधीन है।"

"यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है, तो वह अधीनता मुक्त हो। । सुखसे प्रव्रजित होओ।"

"आ सौम्य दोनों प्रव्रजित होवें।"

"सौम्य ! मैं प्रव्रजित होनेमें समर्थ नहीं हूँ। तेरे लिये और जो मैं कर सकता हूँ वह करूँगा। तू प्रव्रजित हो जा।"

"सौम्य ! माताने मुझे ऐसा कहा है—यदि तात अनुरुद्ध ! भद्दिय शाक्य-राजा प्रव्रजित हो तो तुम भी प्रव्रजित होना। सौम्य ! तू यह बात कह चुका है—'यदि सौम्य ! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है तो वह अधीनता मुक्त हो। । सुखसे प्रव्रजित होओ।' आ सौम्य ! दोनों प्रव्रजित होवें।"

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य प्रतिज्ञ होते थे। तब भद्दिय शाक्य-राजाने अनुरुद्ध शाक्यको भी कहा—

"सौम्य ! सात वर्ष ठहर। सात वर्ष बाद दोनों प्रव्रजित होवेंगे।"

"सौम्य ! सात वर्ष बहुत चिर है। मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता।"

"सौम्य ! छ वर्ष ठहर ।"

" नहीं ठहर सकता।"

"पाँच वर्ष । चार वर्ष ।" "तीन वर्ष । दो वर्ष "। " एक वर्ष । सात मास । छ मास । पाँच मास । चार मास । तीन मास "। "दो मास । एक मास । आध मास बाद दोनों प्रव्रजित होवें।"

"सौम्य ! आध मास बहुत चिर है। मैं इतनी देर नहीं ठहर सकता।"

"सौम्य ! सप्ताहभर ठहर, जिसमें कि मैं पुत्रों और भाइयोंको राज्य सौंप दूँ।"

"सौम्य ! सप्ताह अधिक नहीं है, ठहरूँगा।"

(२) उपालि भी साथ

तब भद्दिय शाक्य-राजा, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और सातवें उपालि हजाम जैसे पहिले चतुरंगिनी-सेना-सहित बगीचे जाते थे, वैसे ही चतुरंगिनी-सेना-सहित निकले। वह दूर तक जा, सेनाको लौटा, दूसरे राज्यमें पहुँच, आभूषण उतार, उत्तरासंग (=चादर) में बाँध, उपालि हजामसे यों बोले —

"भणे ! उपालि ! तुम लौटो। तुम्हारी जीविकाके लिये इतना काफी है।" तब उपालि नाईको लौटने वक्त यो हुआ—

"शाक्य चंड (=क्रोधी) होते है। 'इसने कुमार मार डाले', (समझ) मुझे मरवा डालेंगे। यह राजकुमार हो, प्रव्रजित होंगे, तो फिर मुझे क्या ?"

उसने गँठरी खोलकर, आभरणोंको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसको दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया। उन शाक्य-कुमारोंने दूरसे ही देखा कि उपालि नाई आ रहा है। देखकर उपालि नाईसे कहा—

"भणे ! उपालि ! किसलिये लौट आये ?"

"आर्य-पुत्रो ! लौटते वक्त मुझे यो हुआ—शाक्य चंड होते है०। इसलिये आर्य-पुत्रो ! मै गँठरी खोलकर, आभूषणोंको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ।"

"भणे ! उपालि ! अच्छा किया, जो लौट आये। शाक्य चंड होते है। 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते।"

तब वह शाक्य-कुमार उपालि हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान्‌की वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते है। यह उपालि नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित करायें। (जिसमे) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (=सम्मानार्थ खळा होना), हाथ जोळना करे। इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा।"

तब भगवान्‌ने उपालि हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोंको। तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनो विद्याओंको साक्षात् किया। आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको०। आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको०। देवदत्तने पृथग्जनो(=अनार्यो)वाली ऋद्धिको सम्पादित किया।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमे रहते हुए भी, पेळके नीचे रहते हुए भी, शून्य गृहमे रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो ! सुख ! ! अहो ! सुख ! !" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओंने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमे रहते०। निःसशय भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य चरण कर रहे है। उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमें रहते०।"

तब भगवान्‌ने एक भिक्षुको सबोधित किया—"आ, भिक्षु ! तू जाकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षुको कह—आवुस भद्दिय ! तुमको शास्ता बुलाते हैं।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियसे बोला—"आवुस भद्दिय ! तुम्हें शास्ता बुला रहे है।"

"अच्छा आवुस !" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्‌ने कहा—

"भद्दिय ! क्या सचमुच तुम अरण्यमें रहते हुए भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते ! हाँ !"

"भद्दिय ! किस बातको देख अरण्यमें रहते हुये भी०।"

"भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्तःपुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी०। नगर-बाहर भी०। देश-भीतर भी०। देश-बाहर भी०। सो मैं भन्ते ! इस प्रकार

रक्षित गोपित होते हुये भी भीत उद्विग्न स-शंक त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते! अकेला अरण्यमें रहते हुये भी शून्य-गृहमें रहते हुये भी निडर अनुद्विग्न अ-शंक अ-त्रास-युक्त बेफिकर विहार करता हूँ। इस बातको देख भन्ते! अरण्यमें रहते ।

तब भगवान्‌ने इस बातको जान उसी समय यह उदान कहा—

'जिसके भीतर कोप नाम गया होने न होनेसे जो दूर हो गया।
उस निर्भय सुखी शोक-रहित (पुरुष)का देवता भी साक्षात्कार नहीं पा सकते।'

२—कौशाम्बी

(३) देवदत्तकी लाभ-सत्कारके लिए चाह

[1]तब भगवान् अनूपियामें इच्छानुसार विहार कर जिधर कौशाम्बी है उधर चारिकाके लिये चल पड़े। क्रमशः चारिका करते जहाँ कौशाम्बी है वहाँ पहुँचे।

वहाँ भगवान् कौशाम्बीमें घोषिताराममें विहार करते थे। उस समय देवदत्तको एकान्तमें बैठे विचारमें बैठे चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'किसको मैं प्रसादित करूँ जिसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ सत्कार पैदा हो।' तब देवदत्तको हुआ—'यह अजातशत्रु कुमार तरुण है और भविष्यमें उत्तम (=भद्र) है, क्यों न मैं अजातशत्रु कुमारको प्रसादित करूँ, उसके प्रसन्न होनेपर मुझे बड़ा लाभ सत्कार पैदा होगा।'

तब देवदत्त शयनासन सँभालकर पात्र चीवर ले जिधर राजगृह था उधर चला। क्रमशः जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचा। तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण)को अन्तर्धान कर कुमार (=बालक)का रूप बना साँपकी मेखला (=तगळी) पहिन अजातशत्रु कुमारकी गोदमें प्रादुर्भूत हुआ। अजातशत्रु कुमार भीत-उद्विग्न उत्शंकित-उत्त्रस्त हो गया। तब देवदत्तने अजातशत्रु कुमारसे कहा—

'कुमार! तू मुझसे भय खाता है?'

'हाँ, भय खाता हूँ, तुम कौन हो?'

'मैं देवदत्त हूँ।'

'भन्ते! यदि तुम आर्य देवदत्त हो तो अपने रूप (=वर्ण)से प्रकट होओ।'

तब देवदत्त कुमारका रूप छोड़ संघाटी पात्र चीवर धारण किये अजातशत्रु कुमारके सामने खड़ा हुआ। तब अजातशत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य)से प्रसन्न हो पाँच सौ रथोंके साथ साँझ प्रातः उपस्थान (=हाजिरी)को जाने लगा। पाँच सौ स्थालीपाक भोजनके लिये ले जाये जाने लगे।

३—राजगृह

(४) देवदत्तको महन्ताईकी इच्छा

तब लाभ सत्कार श्लोकसे अभिभूत—आदत्त-चित्त देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—'मैं भिक्षु-संघकी (महन्ताई) ग्रहण करूँ।' यह (विचार) चित्तमें आते ही देवदत्तका (वह) योग बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।

तब भगवान् कौशाम्बीमें इच्छानुसार विहारकर चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमें कलन्दकनिवापके वेणुवनमें विहार करते थे।

---

[1]स नि १६।४।६।

तब बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्को कहा—

"भन्ते! अजातशत्रु नो रथोंके साथ० ।"

"भिक्षुओ! देवदत्तके लाभ, सत्कार श्लोक(=तारीफ)की मत स्पृहा करो। जब तक भिक्षुओ! अजातशत्रु कुमार साथ प्रात ० उपस्थानको जायेगा, पाँच सौ स्थाली-पाक भोजनके लिये जायेंगे, देवदत्तकी (उससे) कुशल-धर्मों (=धर्मों)में हानि ही समझनी चाहिये, वृद्धि नहीं। भिक्षुओ! जैसे चंड कुक्कुरके नाकपर पित्त चढ़े, उस प्रकार वह कुक्कुर और भी पागल हो, अधिक चंड हो।"

"भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार श्लोक आत्म-वधके लिये उत्पन्न हुआ है।० पराभवके लिये०, जैसे भिक्षुओ! केला आत्म-वधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! बाँस आत्म-वधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! नरकट आत्म-वधके लिये०। जैसे भिक्षुओ! अश्वतरी (=खचरी) आत्म-वधके लिये गर्भ धारण करती है, पराभवके लिये गर्भ धारण करती है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०।

"फल ही केलेको मारता है, फल बाँसको, फल नरकटको (भी)।

सत्कार कुपुरुषको (वैसे ही) मारता है, जैसे गर्भ खचरीको।"(९)॥

उस समय आयुष्मान् म हा मौ द्‌ ग ल्या य न का सेवक क कु ध नामक कोलियपुत्र हाल ही में मरकर एक म नो म य (देव) लोकमें उत्पन्न हुआ था। उसका इतना बळा शरीर था, जितना कि दो या तीन म ग ध के गाँवोंके खेत। वह उसका (उतना बळा) शरीर न अपने न दूसरोकी पीळाके लिये था। तब ककुध-देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन थे, वहाँ आया, आकर आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनको अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने आयुष्मान् महामौद्‌गल्यान से यह कहा—

"भन्ते! लाभ, सत्कार, श्लोक (=प्रशंसा)से अभिभूत=आदत्तचित, दे व द त्त को इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—'मैं भिक्षु-संघ (की महताई)को ग्रहण करूँ।' यह (विचार) चित्तमें आते ही देवदत्तका (वह) योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।"

ककुध देवपुत्रने यह कहा—यह कह आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अन्तर्धान हो गया।

तब आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! मेरा उपस्थाक (=सेवक) क कु ध नामक कोलिय-पुत्र हालही में मरकर एक मनोमय (देव-)लोकमें उत्पन्न हुआ है।०। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! ० देवदत्तका योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।' वही अन्तर्धान हो गया।"

"क्या मौद्‌गल्यायन! तूने (योगबलसे) अपने चित्त द्वारा विचारकर जाना, कि जो कुछ ककुध देवपुत्रने कहा वह सब वैसा ही है, अन्यथा नहीं?"

"भन्ते! मैंने अपने चित्त द्वारा विचारकर ककुध देवपुत्रको जाना है, कि जो कुछ ककुध देवपुत्रने कहा, वह सब वैसा ही है, अन्यथा नहीं।"

(५) पाँच प्रकारके गुरु

'मौद्गल्यायन ! रहने दो इस वचनको, रहने दो इस वचनको अब वह मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी) स्वयं ही अपनेको प्रकट करेगा। मौद्गल्यायन लोकमें यह पाँच (प्रकारके) गुरु (शास्ता) होते हैं। कौनसे पाँच ?—(१) यहाँ मौद्गल्यायन ! एक शास्ता अशुद्ध-शील (=आचार) वाला होने पर भी मैं शुद्ध-शीलवाला हूँ मेरा शील शुद्ध=अवदात (=उज्ज्वल) निर्मल है—दावा करता है। उसके बारेमें (उसके) श्रावक (=शिष्य) जानते हैं—'यह आप शास्ता अशुद्ध-शीलवाले होनेपर भी दावा करते हैं। यदि हम गृहस्थोंको (उसे) कह दें तो यह इनके लिये अच्छा न होगा। जो इनके लिये अच्छा नहीं उसे हम क्या कहें। यह चीवर पिंडपात (=भिक्षान्न) शय्या-आसन रोगीके पथ्य भैषज्यके सामानसे भी तो (हमारा) सम्मान करते हैं। जो जैसा करेगा वैसा वह जानेगा'। मौद्गल्यायन ! इस प्रकारके गुरुके शील-शिष्य गोपन करते हैं। इस प्रकारका शास्ता शिष्योंसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा रखता है। (२) और फिर मौद्गल्यायन ! यहाँ एक शास्ताकी आजीविका अशुद्ध होनेपर भी मैं शुद्ध आजीविका वाला हूँ। (३) एक शास्ताका धर्म-उपदेश अशुद्ध होनेपर भी मैं शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ। (४) एक शास्ताका व्याकरण (=भविष्य वचन) अशुद्ध होनेपर भी—मैं शुद्ध व्याकरण वाला हूँ। (५) एक शास्ताका ज्ञान-दर्शन (=ज्ञानका साक्षात्कार) अशुद्ध होनेपर भी—मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ। मौद्गल्यायन ! लोकमें यह पाँच (प्रकारके) गुरु होते हैं।

(१) मौद्गल्यायन ! शील शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध शीलवाला हूँ मेरा शील शुद्ध=अवदात निर्मल है—यह दावा करता हूँ। मेरे शील शिष्य गोपन नहीं करते। मैं शिष्योंसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा नहीं रखता। (२) आजीविका शुद्ध होनेपर मैं शुद्ध आजीविकावाला हूँ। (३) धर्म उपदेश शुद्ध होनेपर मैं शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ। (४) व्याकरण शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध व्याकरण वाला हूँ। (५) ज्ञान-दर्शन शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ।

(६) देवदत्तका प्रकाशनीय कर्म

उस समय राजासहित बड़ी परिषद्से घिरे भगवान् धर्म-उपदेश कर रहे थे। तब देवदत्त आसनसे उठ एक कंधेपर उत्तरासंग करके जिधर भगवान् थे उधर अंजलि जोड़ भगवान्से यह बोला—

'भन्ते ! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय-अनुप्राप्त हैं। भन्ते ! अब भगवान् निश्चिन्त हो इस जन्मके सुख-विहारके साथ विहरें। भिक्षु-संघको मुझे दें मैं भिक्षु-संघको ग्रहण करूँगा।

'अलम् (=बस ठीक नहीं) देवदत्त ! मत तुझे भिक्षुसंघका ग्रहण रुचे।

दूसरी बार भी देवदत्तने । तीसरी बार भी देवदत्तने ।

'देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनको भी मैं भिक्षुसंघको नहीं देता तुझ मुर्दे थूकको तो क्या ?"

तब देवदत्तने—'राजासहित परिषद्में मुझे भगवान्ने फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र मौद्गल्यायनको बढ़ाया' (सोच) कुपित असंतुष्ट हो भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। यह देवदत्तका भगवान्के साथ पहिला आघात (=द्रोह) हुआ।

तब भगवान्ने भिक्षुसंघको आमंत्रित किया—

'भिक्षुओ ! संघ राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशनीय-कर्म करे—पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय वचनसे करे उसका बुद्ध धर्म संघ जिम्मेवार

नही। देवदत्त ही जिम्मेवार है। और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्र का श नी य कर्म) करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे— 1

"क ज्ञप्ति ०। ख अनुश्रावण ०।

"ग धा र णा—'सघने देवदत्तका राजगृहमे प्रकाशनीय कर्म कर दिया—पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय-वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म और सघ जिम्मेवार नही, देवदत्त ही जिम्मेवार है। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।"

तव भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्रको सबोधि किया—

"तो सारिपुत्र ! देवदत्त का तू राजगृहमे प्रकाशन कर।"

"भन्ते ! मैने पहिले राजगृहमे देवदत्तकी प्रशसा की—गो धि-पु त्त (=देवदत्त) मर्हाद्धिक (=दिव्य शक्तिधारी)=महानुभाव है गोधि-पुत्र। कैसे मै भन्ते ! राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करूँ?"

"सारिपुत्र ! तूने तो यथार्थ ही देवदत्तकी प्रशसा की थी न—गोधिपुत्त मर्हाद्धिक है ० ?"

"हाँ, भन्ते !"

"इसी प्रकार सारिपुत्र ! यथार्थ ही देवदत्तका राजगृहमें प्रकाशन कर।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को उत्तर दिया।"

तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ सारिपुत्रको राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये चुने—पहिले देवदत्त ०। 2

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये। पहिले सारिपुत्रको पूछना चाहिये। फिर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति०। ख अ नु श्रा व ण ०।

"ग धा र णा—'सघने राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये ० आयुष्मान् सारिपुत्रको चुन लिया। सघको पसद है। इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ'।"

सघके द्वारा चुन लिये जानेपर, आयुष्मान् सारिपुत्रने बहुतसे भिक्षुओके साथ राजगृहमें प्रवेश कर राजगृहमें दे व द त्त का प्रकाशन किया—'पूर्वमें देवदत्त अन्य प्रकृतिका था ०। जो मनुष्य कि श्रद्धालु=अप्रसन्न, पडित, बुद्धिमान थे वह (सोचते थे)—'जिस तरह (कि) भगवान् राजगृहमें देवदत्त का प्रकाशन करवा रहे है, उससे यह छोटी बात न होगी।'

§२—देवदत्तका विद्रोह

(१) अजातशत्रुको बहकाकर पितासे विद्रोह कराना

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर अजातशत्रु कुमारसे बोला—

"कुमार पहिले मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु। हो सक्ता है, कि तुम कुमार रहते ही मर जाओ। इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा होओ, मै भगवान्को मारकर बुद्ध होऊँगा।"

तब अजात-शत्रु कुमार जाँघमें छुरा बाँधकर भयभीत, उद्विग्न, शकित, त्रस्त (की तरह) मध्याह्नमें सहसा अन्त पुरमें प्रविष्ट हुआ। अन्त पुरके उपचारक (=रक्षक) महामात्योने ० अजात-

शत्रु कुमारको अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देखा। देखकर पकड़ लिया। कुमारसे कहा—

'कुमार तुम क्या करना चाहते थे ?

'पिताको मारना चाहता था।

'किसने उत्साहित किया ?

'आर्य देवदत्तने।

किन्ही किन्ही महामात्योंने यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये देवदत्तको भी भिक्षुओंको भी।

किन्ही किन्ही ने —'न कुमारको मारना चाहिये न देवदत्तको न भिक्षुओंको राजाको कहना चाहिये जैसा राजा कहे वैसा करेंगे।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगध राज श्रेणिक बिंबिसार था वहाँ गये जाकर बिंबिसारको यह बात कह सुनाई।

"भणे! महामात्योंने क्या सम्मति दी है ?

'किन्ही किन्ही महामात्योंने देव! यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये जैसा राजा कहे वैसा करेंगे।

'भणे! बुद्ध धर्म संघका क्या दोष है। भगवान्‌ने तो पहिले ही राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करवा दिया है— ।

तब जिन महामात्योंने यह सलाह दी थी—'कुमारको भी मारना चाहिये उन्हें पदसे पृथक् कर दिया और जिन महामात्योंने यह सलाह दी थी—'न कुमारको मारना चाहिये उन्हें ऊँचे पदपर स्थापित किया।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगधराज श्रेणिक बिंबिसार था वहाँ गये। जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई।

तब राजा ने अजात-शत्रु कुमारको कहा—

'कुमार! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था ?

'देव! राज्य चाहता हूँ।

'कुमार! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है। यह अजात-शत्रु कुमारको राज्य दे दिया।

(२) बुद्धके मारनेके लिये आदमी भेजना

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था वहाँ गया। जाकर कहा—

'महाराज! आदमियोंको हुकुम दो कि श्रमण गौतमको जानसे मार दें।

तब अजात-शत्रु कुमारने मनुष्योंसे कहा—

'भणे! जैसा आर्य देवदत्त कहे वैसा करो।

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

'जाओ आवुस! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर इस रास्ते आओ।

उस रास्तेमें दो आदमियोंको बैठाया— जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आवे उसे जानसे मारकर इस मार्गसे आओ।"

उस रास्तेमें चार आदमियोंको बैठाया— 'जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें उन्हें जानसे मार कर, इस मार्गसे आओ।

उस मार्गमें आठ आदमी बैठाये—"जो चार पुरुष० ।"

उस मार्गमे सोलह आदमी बैठाये—० ।

तब वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढा, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के अविदूरमें भयभीत, उद्विग्न० शून्य-शरीरसे खळा हुआ । भगवान्‌ने उस पुरुषको भीत० शून्य शरीर खळे हुये देखा । देखकर उस पुरुषको कहा—

"आओ, आवुस ! मत डरो ।"

तब वह पुरुष ढाल-तलवार एक ओर (रख) तीर-कमान छोळकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्‌के चरणोंमे शिरसे पळकर भगवान्‌से बोला—

"भन्ते ! बाल (=मूर्ख)सा मूढसा, अकुशल (=अ-चतुर)सा मैंने जो अपराध किया है, जो कि मैं दुष्ट-चित्त हो वध-चित्त हो, यहाँ आया, उसे क्षमा करें । भन्ते ! भगवान् भविष्यमे संवर (=रोक करने)के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय)को अत्यय (=बीते)के तौरपर स्वीकार करें ।"

"आवुस ! जो तूने अपराध किया,० वध-चित्त हो यहाँ आया । चूँकि आवुस ! अत्यय (=अपराध)को अत्ययके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है । (इसलिये) उसे हम स्वीकार करते हैं । ।"

तब भगवान्‌ने उस पुरुषको आनुपूर्वी-कथा कही०[1] । (और) उस पुरुषको उसी आसनपर० धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ ।०।

तब वह पुरुष भगवान्‌से बोला—

"आश्चर्य ! भन्ते !।० भन्ते ! आजसे भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।"

तब भगवान्‌ने उस पुरुषसे—

"आवुस ! तुम उस मार्गसे मत जाओ, इस मार्गसे जाओ" (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया ।

तब उन दो पुरुषोंने—'क्यो वह पुरुष देर कर रहा है' (सोच) ऊपरकी ओर जाते, भगवान्‌को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। उन्हे भगवान्‌ने आनुपूर्वी-कथा कही० । ० । "आवुसो ! मत तुम लोग उस मार्गसे जाओ, इस मार्गसे जाओ" ।

तब उन चार पुरुषोंने ० । ० । तब उन आठ पुरुषोंने ० । ० । तब उन सोलह पुरुषोंने ० । ० "आजसे भन्ते ! भगवान् हमें अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करें ।"

तब वह अकेला पुरुष जहाँ दे व द त्त था, वहाँ गया । जाकर देवदत्तसे बोला—

"भन्ते ! मैं उन भगवान्‌को जानसे नहीं मार सकता । वह भगवान् महा-ऋद्धिक=महानुभाव है ।"

(३) देवदत्तका बुद्धपर पत्थर मारना

"जाने दे आवुस ! तू श्रमण गौतमको जानसे मत मार, मैं ही जानसे मारूँगा ।"

उस समय भगवान् गृध्रकूट पर्वतकी छायामें टहलते थे । तब देवदत्तने गृध्रकूट पर्वतपर चढ कर—'इससे श्रमण गौतमको जानसे मारूँ'—(सोच) एक बळी शिला फेंकी । दो पर्वतकूटोंने आकर उस शिलाको रोक दिया । उससे (निकली) पपळीके उछलकर (लगनेसे) भगवान्‌के पैरसे रुधिर बह निकला ।

---

[1] पृष्ठ ८४ ।

शत्रु कुमारको अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देखा। देखकर पकळ लिया। कुमारसे कहा—

'कुमार तुम क्या करना चाहते थे ?

'पिताको मारना चाहता था।

'किसने उत्साहित किया ?

'आर्य देवदत्तने।

किन्हीं किन्हीं महामात्योंने यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये देवदत्तको भी भिक्षुओंका भी।

किन्हीं किन्हीं ने —'न कुमारको मारना चाहिये न देवदत्तको न भिक्षुओंको राजाको कहना चाहिये जैसा राजा कहे वैसा करेंगे।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगध राज श्रेणिक बिंबिसार था वहाँ गये जाकर बिंबिसारको यह बात कह सुनाई।

"भणे ! महामात्यने क्या सम्मति दी है ?

'किन्हीं किन्हीं महामात्योंने देव ! यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये जैसा राजा कहे वैसा करेंगे।

"भणे ! बुद्ध धर्म संघका क्या दोष है। भगवान्ने तो पहिले ही राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करवा दिया है— ।

तब जिन महामात्योंने यह सलाह दी थी—'कुमारको भी मारना चाहिये उन्हें पदसे पृथक् कर दिया और जिन महामात्योंने यह सलाह दी थी—'न कुमारको मारना चाहिये उन्हें ऊँचे पदपर स्थापित किया।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगधराज श्रेणिक बिंबिसार था वहाँ गये। जाकर राजा को यह बात कह सुनाई।

तब राजा ने अजात-शत्रु कुमारको कहा—

'कुमार ! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था ?

'देव ! राज्य चाहता हूँ।

'कुमार ! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है। कह अजात-शत्रु कुमारको राज्य दे दिया।

(२) बुद्धके मारनेके लिये आदमी भेजना

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था वहाँ गया। जाकर कहा—

'महाराज ! आदमियोंको हुकुम दो कि श्रमण गौतमको जानसे मार दें।

तब अजात-शत्रु कुमारने मनुष्योंसे कहा—

'भणे ! जैसा आर्य देवदत्त कहे वैसा करो।

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

'जाओ आवुस ! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर इस रास्तेसे आओ।

उस रास्तेमें दो आदमियोंको बैठाया— 'जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आवे उसे जानसे मारकर इस मार्गसे आओ।

उस रास्तेमें चार आदमियोंको बैठाया— 'जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें उन्हें जानसे मार कर इस मार्गसे आओ।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमे पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान् उसी सळकपर आये। उन पीलवानोंने भगवान्को उस सळकपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोळकर, सळकपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँळको चलाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौळा। उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्से कहा—

"भन्ते! यह चंड, मनुष्य-घातक ना ला गि रि हाथी इस सळकपर आ रहा है, हट जायें भन्ते! भगवान्, हट जायें सुगत!"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योंपर, छतोंपर, चढ गये थे। उनमे जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—"देर तक जी! नाग[1] नाग (=बुद्ध)से, संग्राम करेगा।"

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना)युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खळा हुआ। तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया) ।

"आओ भिक्षुओ! मत डरो। भिक्षुओ! इसका स्थान नहीं० तथागत (परके) उपक्रमसे नही (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते है।"

दूसरी बार भी भगवान्ने नालागिरि० स्पर्श किया।

स्पर्शकर नालागिरि हाथीसे गाथाओंसे कहा—

"कुंजर! मत नाग[1]को मारो, कुंजर! नागका मारना दुःख (मय) है।
क्योंकि कुंजर! ना ग[1]को मारनेवालेकी न यहाँ सुगति होती, न परलोकमे ही॥(२)॥
मत मदको मत प्रमादको प्राप्त हो, इसके कारण प्रमादी सुगतिको नही प्राप्त होते।
तू ही ऐसा कर, जिससे कि तू सुगतिको प्राप्त हो"॥ (३)॥

तब ना ला गि रि हाथीने सूँडसे भगवान्की चरण-धूलिको ले शिरपर डाल, जब तक भगवान्को देखता रहा पीठकी ओरसे लौटता रहा। तब नालागिरि हाथी हथसारमे जा अपने स्थान पर खळा हुआ। इस प्रकार नालागिरि हाथीका दमन हुआ। उस समय मनुष्य यह गाथा गाते थे—

"कोई कोई दडसे, अंकुश और कशासे दमन करते थे।
महर्षिने विना दंड विना शस्त्र नागको दमन किया"॥ (४)॥

लोग हैरान होते थे—'कैसा पापी अलक्षणी देवदत्त है, जो कि ऐसे महर्द्धिक (=तेजस्वी) ऐसे महानुभाव श्रमण गौतमके वधकी कोशिश करता है!!'

देवदत्तका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया, भगवान्का लाभ-सत्कार बढा।

(६) देवदत्तके सम्मानका ह्रास

उस समय दे व द त्त लाभ-सत्कारसे हीन होनेसे घरोंसे माँग माँगकर खाता था। लोग हैरान० होते थे—

'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण घरोंसे माँग माँग कर खाते है!!'

---

[1] न+अग =पापरहित=बुद्ध ।

तब भगवान्‌ने ऊपर देख देवदत्तसे यह कहा—

"मोघ पुरुष! तूने बहुत अ-पुण्य (=पाप) कमाया, जो कि तूने दुष्ट-चित्त, वधक-चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! देवदत्तने यह प्रथम आनन्तर्य (=मोक्षका बाधक) कर्म जमा किया, जो कि दुष्ट-चित्त, वधक-चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

(४) तथागतकी अकाल मृत्यु नहीं

भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की। तो वह भिक्षु भगवान्‌के विहार (=निवास स्थान) के चारों ओर टहलते, ऊँची आवाजसे, बड़ी आवाजसे भगवान्‌की रक्षा=आवरण=गुप्तिके लिये स्वाध्याय (=सूत्र-पाठ) करते थे। भगवान्‌ने ऊँची आवाज, बड़ी आवाजसे स्वाध्यायके शब्दको सुना। भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको संबोधित किया—

"आनन्द! यह क्या ऊँची आवाज, बड़ी आवाज, स्वाध्याय-शब्द है?"

"भन्ते! भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की, स्वाध्याय कर रहे हैं। वही यह भगवान्! स्वाध्याय-शब्द है।"

"तो आनन्द! मेरे वचनसे उन भिक्षुओंको कहो— आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा भन्ते!"—(कह) भगवान्‌को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्द जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोले—

"आवुसो! आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।"

"अच्छा आवुस!"—(कह) आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे भगवान्‌ने यह कहा—

"भिक्षुओ! इसका स्थान नहीं, यह संभव नहीं कि दूसरेके प्रयत्नसे तथागतका जीवन छूटे। भिक्षुओ! तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।

भिक्षुओ! लोकमें यह पाँच (प्रकारके) (गुरु) (=शास्ता) होते हैं[1]।

'भिक्षुओ! शील-शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध शीलवाला हूँ' [1] (५) मैं शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ।

"भिक्षुओ! इसका स्थान नहीं, तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं। भिक्षुओ! जाओ तुम अपने अपने विहारको, तथागतोंकी रक्षाकी आवश्यकता नहीं।

(५) देवदत्तका बुद्धपर नालागिरि हाथीका छुड़वाना

उस समय राजगृहमें नालागिरि नामक मनुष्य-घातक चंड हाथी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेशकर हथसारमें जा फीलवानोंसे कहा—

"जब श्रमण गौतम इस सड़कपर आये, तब तुम नालागिरि हाथीको छोड़कर इस सड़कपर कर देना।"

"अच्छा भन्ते!"

---

[1] देखो ७§१।५ (पृष्ठ ४८२)।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमें पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान् उसी सळकपर आये। उन पीलवानोंने भगवान्‌को उस सळकपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोळकर, सळकपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखकर सूँळको खळाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौळा। उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! यह चंड, मनुष्य-घातक नालागिरि हाथी इस सळकपर आ रहा है, हट जायें भन्ते ! भगवान्, हट जायें सुगत !"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योंपर, छतोंपर, चढ़ गये थे। उनमें जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो ! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पंडित थे, उन्होंने ऐसा कहा—"देर तक जी ! नाग[1] नाग (=बुद्ध)से, संग्राम करेगा।"

तब भगवान्‌ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना)युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्‌के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खळा हुआ। तब भगवान्‌ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया) ।

"आओ भिक्षुओ ! मत डरो। भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं० तथागत (परके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।'

दूसरी बार भी भगवान्‌ने नालागिरि० स्पर्श किया।

स्पर्शकर नालागिरि हाथीसे गाथाओंमें कहा—

"कुंजर ! मत नाग[1]को मारो, कुंजर ! नागका मारना दुःख (मय) है।
क्योंकि कुंजर ! नाग[1]को मारनेवालेकी न यहाँ सुगति होती, न परलोकमें ही ॥(२)॥
मत मदको मत प्रमादको प्राप्त हो, इसके कारण प्रमादी सुगतिको नहीं प्राप्त होते।
तू ही ऐसा कर, जिससे कि तू सुगतिको प्राप्त हो" ॥ (३)॥

तब नालागिरि हाथीने सूँडसे भगवान्‌की चरण-धूलिको ले शिरपर डाल, जब तक भगवान्‌को देखता रहा पीठकी ओरसे लौटता रहा। तब नालागिरि हाथी हथसारमें जा अपने स्थान पर खळा हुआ। इस प्रकार नालागिरि हाथीका दमन हुआ। उस समय मनुष्य यह गाथा गाते थे—

"कोई कोई दंडसे, अंकुश और कशासे दमन करते थे।
महर्षिने विना दंड विना शस्त्र नागको दमन किया" ॥ (४)॥

लोग हैरान होते थे—'कैसा पापी अलक्षणी देवदत्त है, जो कि ऐसे महर्द्धिक (=तेजस्वी) ऐसे महानुभाव श्रमण गौतमके वधकी कोशिश करता है ! !'

देवदत्तका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया, भगवान्‌का लाभ-सत्कार बढा।

(६) देवदत्तके सम्मानका ह्रास

उस समय देवदत्त लाभ-सत्कारसे हीन होनेसे घरोंसे माँग माँगकर खाता था। लोग हैरान० होते थे—

'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण घरोंसे माँग माँग कर खाते हैं ! !'

---

[1] न+अग =पापरहित=बुद्ध ।

तब भगवान्ने ऊपर देख देवदत्तसे यह कहा—

"मोघ पुरुष ! तूने बहुत अ-पुण्य (=पाप) कमाया जो कि तूने द्वेष-युक्त चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! देवदत्तने यह प्रथम आनन्तर्य (=मोक्षका बाधक) कर्म जमा किया जोकि द्वेष-युक्त चित्तसे वधक चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।

(४) तथागतकी अकाल मृत्यु नहीं

भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की तो वह भिक्षु भगवान्‌के विहार (=निवास-स्थान)के चारो ओर टहलते ऊँची आवाज बळी आवाजमें भगवान्‌की रक्षा=आवरण=गुप्तिके लिये स्वाध्याय (=सूत्र-पाठ) करते थे। भगवान्ने ऊँची आवाज बळी आवाज स्वाध्यायके शब्दको सुना। भगवान्ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया—

'आनन्द ! यह क्या ऊँची आवाज बळी आवाज स्वाध्याय शब्द है ?

"भन्ते ! भिक्षुओंने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की स्वाध्याय कर रहे हैं। वही यह भगवान् स्वाध्याय शब्द है।

'तो आनन्द ! मेरे वचनसे उन भिक्षुओंको कहो— 'आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।

अच्छा भन्ते ! —(कह) भगवान्‌को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्द जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोले—

'आवुसो ! आयुष्मानोंको शास्ता बुला रहे हैं।

अच्छा आवुस ! —(कह) आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंसे भगवान्ने यह कहा—

'भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं यह संभव नहीं कि दूसरेके प्रयत्नसे तथागतका जीवन छूटे भिक्षुओ ! तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।

'भिक्षुओ ! लोकमें यह पाँच (प्रकारके) (गुरु) (=शास्ता) होते हैं [1]।

"भिक्षुओ ! शील-शुद्ध होनेपर—मैं शुद्ध शीलवाला हूँ [1](५) मैं शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ ।

'भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नहीं (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं। भिक्षुओ ! जाओ तुम अपने अपने विहारको तथागतोंकी रक्षाकी आवश्यकता नहीं ।

(५) देवदत्तका बुद्धपर नालागिरि हाथीका छुळवाना

उस समय राजगृहमें नाला-गिरि नामक मनुष्य-घातक चंड हाथी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेशकर हथसारमें जा फीलवानोंसे कहा—

जब श्रमण गौतम इस सळकपर आये तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोलकर, इस सळक पर कर देना।

'अच्छा भन्ते !

---

[1] देखो ७§१।५ (पृष्ठ ४८२)।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, बहुतसे भिक्षुओके साथ राजगृहमे पिडचारके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान् उसी सळकपर आये। उन फीलवान्ने भगवान्को उस सळकपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोळकर, सळकपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँळको खळाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौळा। उन भिक्षुओने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्से कहा—

"भन्ते ! यह चड, मनुष्य-घातक ना ला गि रि हाथी इस सळकपर आ रहा है, हट जायें भन्ते ! भगवान्, हट जायें सुगत !"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोपर, हर्म्योपर, छतोपर, चढ गये थे। उनमें जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो ! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पडित थे, उन्होने ऐसा कहा—"देर तक जी ! नाग [1] नाग (=बुद्ध)से, सग्राम करेगा।"

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना)युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खळा हुआ। तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया)।

"आओ भिक्षुओ ! मत डरो। भिक्षुओ ! इसका स्थान नही० तथागत (परके) उपक्रमसे नही (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते है।"

दूसरी बार भी भगवान्ने नालागिरि० स्पर्श किया।

स्पर्शकर नालागिरि हाथीसे गाथाओमे कहा—

"कुँजर ! मत नाग [1]को मारो, कुँजर ! नागका मारना दुख (मय) है।
क्योकि कुजर ! ना ग [1]को मारनेवालेकी न यहाँ सुगति होती, न परलोकमे ही ॥(२)॥
मत मदको मत प्रमादको प्राप्त हो, इसके कारण प्रमादी सुगतिको नही प्राप्त होते।
तू ही ऐसा कर, जिससे कि तू सुगतिको प्राप्त हो" ॥ (३)॥

तब ना ला गि रि हाथीने सूँडसे भगवान्की चरण-धूलिको ले शिरपर डाल, जब तक भगवान्को देखता रहा पीठकी ओरसे लौटता रहा। तब नालागिरि हाथी हथसारमें जा अपने स्थान पर खळा हुआ। इस प्रकार नालागिरि हाथीका दमन हुआ। उस समय मनुष्य यह गाथा गाते थे—

"कोई कोई दडसे, अकुश और कशासे दमन करते थे।
महर्षिने विना दड विना शस्त्र नागको दमन किया" ॥ (४)॥

लोग हैरान होते थे—'कैसा पापी अलक्षणी देवदत्त है, जो कि ऐसे महर्द्धिक (=तेजस्वी) ऐसे महानुभाव श्रमण गौतमके वधकी कोशिश करता है !!'

देवदत्तका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया, भगवान्का लाभ-सत्कार बढा।

(६) देवदत्तके सम्मानका ह्रास

उस समय दे व द त्त लाभ-सत्कारसे हीन होनेसे घरोंसे माँग माँगकर खाता था। लोग हैरान० होते थे—

'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण घरोंसे माँग माँग कर खाते है !!'

---

[1] न+अग =पापरहित=बुद्ध ।

अस्सेच्च भिक्षु भगवान्‌से बोले।—

'सचमुच भिक्षुओ! ?

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

'तो भिक्षुओ! कुलोंमें भिक्षुओंके लिये तीन (प्रकार)के भोजनका विधान करता हूँ तीन मतलबसे—(१) कुत्सित (=दुर्मुख) व्यक्तियोंके निग्रहके लिये (२) अच्छे भिक्षुओंके ठीकसे विहारके लिये (३) (और जिसमें कि) बुरी नियतवाले पक्ष या संघमें फूट न डाल दें। कुलोंके अनुदर्शनके लिये धर्मानुसार गण-भोजन (=जमातका भोज) कराना चाहिये।"

(७) संघमें फूट डालना

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोरतिस्सक और खण्डदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे वहाँ गया। जाकर बोला—

'आओ आवुसो! हम श्रमण गौतमका संघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करें। आओ हम श्रमण गौतमके पास चलकर पाँच वस्तुएँ माँगें। —'अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें जो गाँवमें बसे उसे दोष हो। (२) जिन्दगी भर पिंडपातिक (=भिक्षा माँगकर खानेवाले) रहें जो निमंत्रण खाये उसे दोष हो। (३) जिन्दगी भर पांसुकूलिक (=फेंके चीथड़े सीकर पहननेवाले) रहें जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो। (४) जिन्दगी भर वृक्ष-मूलिक (=वृक्षके नीचे रहनेवाले) रहें, जो छायाके नीचे जाये वह दोषी हो। (५) जिन्दगी भर मछली मांस न खायें जो मछली मांस खाये उसे दोष हो। श्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा। तब हम इन पाँच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे।

तब देवदत्त परिषद्-सहित जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठा। एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्‌से कहा—

अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक हो ...।

"अलम् देवदत्त! जो चाहे आरण्यक हो जो चाहे ग्राममें रहे। जो चाहे पिंडपातिक हो जो चाहे निमंत्रण खाये। जो चाहे पांसुकूलिक हो जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहने। देवदत्त! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (=वृक्ष-मूल-शयनासन)की अनुज्ञा दी है। अदृष्ट[1] अ-श्रुत[2] अ-परिशंकित[3] इन तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है।

तब देवदत्त—भगवान् इन पाँच बातोंकी अनुमति नहीं देते हैं—(सोच) हर्षित=उदग्र हो परिषद्-सहित आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब देवदत्त परिषद्-सहित राजगृहमें प्रवेशकर (उन) पाँच बातोंसे लोगोंको समझाता था—'आवुसो! हमने श्रमण गौतमके पास जा पाँच बातोंकी याचना की—भन्ते! भगवान् अनेक प्रकारसे अल्पेच्छ सन्तुष्ट सल्लेख (=तप) धुत(=त्यागमय रहन सहन) प्रासादिक अपचय(=त्याग) वीर्यारम्भ (=उद्योग)के प्रशंसक हैं। भन्ते! यह पाँच बातें अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता वीर्यारम्भताके लिये हैं। अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें ...। इन पाँच बातोंकी श्रमण गौतम अनुमति नहीं देता। और हम इन पाँचों बातोंको लेकर वर्तते हैं। वहाँ जो आदमी अश्रद्धालु=अप्रसन्न

---

[1] 'मेरे लिये मारा गया'—यह देखा न हो।   [2] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सुना न हो।
[3] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सन्देह न हो।

दुर्बुद्धि थे वह ऐसा बोलते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अवधूत, सल्लेखवृत्ति (=तपस्वी) है। श्रमण गौतम बटोरू है, बटोरने के लिये चेताता है। और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पडित, बुद्धिमान् थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे देवदत्त, भगवान्के सघ भेदके लिये, चक्रभेदके लिये कोशिश कर रहा है।'

भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान० होनेको सुना—०।

तव उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

"बस देवदत्त! तुझे सघमें फूट डालना मत पसद होवे। देवदत्त! सघ-भेद भारी (अपराध) है। देवदत्त! जो एकमत सघको फोळना है, वह कल्प भर रहनेवाले पापको कमाता है, कल्प भर नरक मे पकता है। देवदत्त! जो फूटे सघको मिलाता है, वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है, कल्प भर स्वर्गमे आनन्द करता है। बस देवदत्त! तुझे सघमें फूट डालना मत पसद होवे, देवदत्त! सघभेद भारी (अपराध) है।"

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले राजगृहमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। देवदत्तने आयुष्मान् आनन्दको राजगृहमे भिक्षाचार करते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे यह बोला—

"आजसे आवुस आनन्द! मै भगवान्से अलग ही भिक्षु-सघसे अलग ही उपोसथ करूँगा, अलग ही सघ-कर्म करूँगा।"

तब आयुष्मान् आनन्द भोजनकर भिक्षासे निवृत्त हो जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"आज मै भन्ते! पूर्वाह्ण समय० राजगृहमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुआ।० अलग ही सघ-कर्म करूँगा। भन्ते! आज देवदत्त सघको फोळेगा।"

तब भगवान्ने इस बातको जान उसी समय इस उदानको कहा—

"साधु (=भले मनुष्य)के साथ भलाई सुकर है, पापीके साथ भलाई दुष्कर है।
पापीके साथ पाप सुकर है, आर्योंके साथ पाप दुष्कर है" ॥(५)॥

द्वितीय भाणवार समाप्त

(८) देवदत्तका सघसे अलग होजाना

तब देवदत्तने उस दिन उपोसथ[1]को आसनसे उठकर शलाका[2] (=वोटकी लकळी) पकळवाई—"हमने आवुसो! श्रमण-गौतमको जाकर पाँच वस्तुएँ माँगी—०। उन्हे श्रमण गौतमने नही स्वीकार किया। सो हम (इन) पाँच वस्तुओको लेकर वर्तेंगे। जिस आयुष्मान्को यह पाँच बाते पसद हो, वह शलाका ग्रहण करें।"

उस समय वैशालीके पाँच सौ वज्जिपुत्तक नये भिक्षु असली बातको न समझनेवाले थे। उन्होने—'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=गुरुका उपदेश) है'—(सोच) शलाका ले ली। तब देवदत्त सघको फोळ (=भेद) कर, पाँच सौ भिक्षुओको ले, जहाँ गयासीस[3] था वहाँको चल दिया।

---

[1]कृष्ण चतुर्दशी या पूर्णिमा। [2]वोट (=मत पाली, छन्द) लेनेकी आसानीके लिये जैसे आजकल पुर्जी (बैलट) चलती है, वैसे ही पूर्वकालमें छन्द-शलाका चलती थी। [3]ब्रह्मयोनि पर्वत (गया)।

अल्पेच्छ भिक्षु भगवान्से बोले।—

"सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"हो भिक्षुओ! कुलोंमें भिक्षुओंके लिये तीन (प्रकार)के भोजनका विधान करता हूँ तीन मतलबसे—(१) कुटिल (=दुर्मकू) व्यक्तियोंके निग्रहके लिये (२) अच्छे भिक्षुओं के ठीकसे विहारके लिये (३) (और जिसमें कि) बुरी नियतवाले पक्ष या संघमें फूट मत डाल दें। कुलोंके अनुवर्तनके लिये धर्मानुसार गण-भोजन (=जमातका भोज) कराना चाहिये।

(७) संघमें फूट डालना

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोरतिस्सक और खण्डदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे वहाँ गया। जाकर बोला—

'आओ आवुसो! हम श्रमण गौतमका संघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करें। आओ हम श्रमण गौतमके पास चलकर पाँच वस्तुएँ माँगें। —अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें जो गाँवमें बसे उसे दोष हो। (२) जिन्दगी भर पिंडपातिक (=भिक्षा माँगकर खानेवाले) रहें जो निमंत्रण खाये उसे दोष हो। (३) जिन्दगी भर पांसुकूलिक (=फेंके चीथड़े सीकर पहननेवाले) रहें जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे उसे दोष हो। (४) जिन्दगी भर वृक्ष-मूलिक (=वृक्ष के नीचे रहनेवाले) रहें जो छायाके नीचे जाये वह दोषी हो। (५) जिन्दगी भर मछली मांस न खायें जो मछली मांस खाये उसे दोष हो। श्रमण गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा। तब हम इन पाँच बातोंसे लोगोंको समझायेंगे।

तब देवदत्त परिषद्-सहित जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्से कहा—

अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक हो ।

"अलम् देवदत्त! जो चाहे आरण्यक हो जो चाहे ग्राममें रहे। जो चाहे पिंडपातिक हो जो चाहे निमंत्रण खाये। जो चाहे पांसुकूलिक हो जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहने। देवदत्त! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (=वृक्ष-मूल-शयनासन)की अनुज्ञा दी है। अदृष्ट[1] अ-श्रुत[2], अ-परिशंकित[3] इस तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है।

तब देवदत्त—भगवान इन पाँच बातोंकी अनुमति नहीं देते हैं—(सोच) हर्षित=उदग्र हो परिषद्-सहित आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

तब देवदत्त परिषद्-सहित राजगृहमें प्रवेशकर (उन) पाँच बातोंसे लोगोंको समझाता था—'आवुसो! हमने श्रमण गौतमके पास जा पाँच बातोंकी याचना की—भन्ते! भगवान् अनेक प्रकारसे अल्पेच्छ संतुष्ट सल्लेख (=तप) धुत(=त्यागमय रहन सहन) प्रासादिक अपचय(=त्याग) वीर्यारम्भ (=उद्योग)के प्रशंसक हैं। भन्ते! यह पाँच बातें अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता वीर्यारम्भता के लिये हैं। अच्छा हो भन्ते! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहें । इन पाँच बातोंकी श्रमण गौतम अनुमति नहीं देता। और हम इन पाँचों बातोंको लेकर वर्तते हैं। वहाँ जो आदमी अश्रद्धालु=अप्रसन्न

---

[1] 'मेरे लिये मारा गया'—यह देखा न हो। [2] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सुना न हो।
[3] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सन्देह न हो।

"अच्छा हो भन्ते ! फूट डालनेवाले अनुयायी भिक्षु फिर उपसपदा पावे।"

"नही, सारिपुत्र ! मत तुझे रुचे फूटके अनुयायी भिक्षुओकी उपसम्पदा। तो सारिपुत्र ! तू फूटके अनुयायी भिक्षुओको थुल्लच्चयकी देशना (=क्षमापन) करा। सारिपुत्र ! कैसे देवदत्त तेरे साथ पेश आया ?"

"जैसे भन्ते ! भगवान् बहुत रात तक भिक्षुओको धर्म कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित ० कर मुझको आज्ञा देते है—'सारिपुत्र ! चित्त और शरीरके आलस्यसे रहित है भिक्षुसघ। सारिपुत्र ! तू भिक्षुओको धार्मिक कथा कह। पीठ मेरी अगिया रही, सो मै लम्बा पळूंगा।' ऐसे ही भन्ते ! देवदत्तने भी मेरे साथ किया।"

हाथी और गीदळकी कथा

तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पूर्वकालमे जगलमे एक महासरोवर (था, जिसके) आश्रयसे हाथी (=नाग) रहते थे। वह महासरोवरमें घुसकर सूंळसे भसीड और मृणालको निकाल, अच्छी तरह धो, विना कीचळका कर खाते थे। वह उनके वलके लिये भी सौन्दर्यके लिये भी होता था। उनके कारण मरण या मरण-समान दुःखको न प्राप्त होते थे। भिक्षुओ ! उन्ही हाथियोकी नकल करते थे तरुण स्यारके वच्चे। वह उस सरोवरमें घुस मूंळसे भसीड और मृणालको निकाल। अच्छी तरह धोये विना, विना कीचळका किये विना खाते थे। वह उनके वलके लिये, सौन्दर्यके लिये नही होता था उनके कारण वह मरण या मरण समान दुःखको प्राप्त होते थे। ऐसे ही भिक्षुओ। देवदत्त मेरी नकल कर कृपण (हो) मरेगा।—

"धरती खोद नदीमें धो भसीड खाते महावराहकी भाँति कीचड खाते स्यारकी भाँति मेरी नकल कर (वह) कृपण मरेगा॥ (६)"॥

(९) दूतके लिये अपेक्षित गुण

"भिक्षुओ ! आठ वातोसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षु (१) श्रोता होता है, (२) श्रावयिता (=सुनानेवाला), (३) उद्गृहीता (=ग्रहण करनेवाला), (४) धारयिता (=स्मरण रखनेवाला), (५) विज्ञाता, (६) विज्ञापयिता, (७) हित अहितमें कुशल (=चतुर), और (८) कलहकारक नही होता। भिक्षुओ ! इन आठ वातोसे युक्त भिक्षु दूत भेजन लायक है। 4

"भिक्षुओ ! आठ वातोंसे युक्त होनेसे सारिपुत्र दूत भेजने लायक हैं। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षुओ ! सारिपुत्र (१) श्रोता है, ० (८) हित अहितमें कुशल है।०।

"जो उग्रवादी परिषद्को पा पीडित नही होता।
(किसी) वचनको न छोळता है, और न भाषणको ढाँकता है॥ (७)॥
विना वतलाये कहता है, पूछनेपर कोप नही करता।
यदि ऐसा भिक्षु है, तो वह दूत बनकर जाने लायक है" ॥(८)॥

(१०) देवदत्तके पतनके कारण

"भिक्षुओ ! आठ अ-सद्धर्मोसे अभिभूत=पर्यादत्त-चित्त (=लिप्त चित्त) हो देवदत्त अपायिक=नारकीय कल्पभर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! देवदत्त लाभसे अभिभूत=पर्यादत्तचित्त ० चिकित्साके अयोग्य है, (२) अलाभसे०, (३) यशसे०, (४) अयशसे०, (५) सत्कारसे०, (६) असत्कारसे०, (७) पापेच्छता (=वद-

आयुष्मान सा रि पु त्र और मौ द्ग ल्या य न जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । । आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! देवदत्त संघको फोळकर पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ ग या सी स है वहाँ चला गया।

'सारिपुत्र ! तुम लोगोंको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र ! तुम लोग उन भिक्षुओंने आपद्में पळनेसे पूर्वही जाओ।

'अच्छा भन्ते !

उस समय बळी परिषद्के बीच बैठा देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। दे व द त्त ने दूरसे सारिपुत्र मौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमन्त्रित किया।—

इन्हो भिक्षुओ ! कितना सु-आख्यात (सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गौतमके अग्र श्रावक सारिपुत्र मौद्गल्यायन हैं वह भी मेरे पास आ रहे मेरे धर्मको मानते हैं।

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्तसे कहा—

आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र मौद्गल्यायन बदनीयत (—पापेच्छ) है पापक (—बुरी) इच्छाओंके वशम है।

आवुस नहीं उनका स्वागत है क्योंकि वह मेरे धर्मपर विश्वास करते हैं।

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमन्त्रित किया—

आओ आवुस ! सारिपुत्र ! यहाँ बैठो।

आवुस ! नहीं (कह) आयुष्मान सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर बैठ गये। तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा (कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रसे बोला—

'आवुस ! सारिपुत्र ! (इस समय) भिक्षु आलस्य-प्रमाद रहित हैं तुम आवुस सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-देसना करो मेरी पीठ अगिया रही है सो मैं लम्बा पळूँगा।

'अच्छा आवुस !

तब देवदत्त चौपेती संघाटीको बिछाकर दाहिनी बगलसे लेट गया। स्मृति रहित सप्रजन्य रहित(होनेसे) उसे मुहूर्त भरमें ही निद्रा आ गई। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेशना प्रातिहार्य (=व्याख्यान चमत्कार) और अनुशासनीय-प्रातिहार्यके साथ तथा आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि प्रातिहार्य (=योग-बलके चमत्कार)के साथ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश किया अनुशासन किया। तब उन भिक्षुओंको विरज-विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ—जो कुछ समुदय धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध-धर्म (=विनाश होनेवाला) है ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमन्त्रित किया—

आवुसो ! चलो भगवान्के पास चलें जो उन भगवान्के धर्मको पसंद करता है वह आवे।

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ वेणुवन था वहाँ चले गये। तब कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

आवुस देवदत्त ! उठो मैंने कहा न था—आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। ।

तब देवदत्तके वहीं मुखसे गर्म खून निकल पळा।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"अच्छा हो भन्ते ! फूट डालनेवाले अनुयायी भिक्षु फिर उपसपदा पावे।"

"नही, सारिपुत्र ! मत तुझे रुचे फूटके अनुयायी भिक्षुओकी उपसम्पदा। तो सारिपुत्र ! तू फूटके अनुयायी भिक्षुओको थुल्लच्चयकी देशना (=क्षमापन) करा। सारिपुत्र ! कैसे देवदत्त तेरे साथ पेश आया ?"

"जैसे भन्ते ! भगवान् बहुत रात तक भिक्षुओको धर्म कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित ० कर मुझको आज्ञा देते है—'सारिपुत्र ! चित्त और शरीरके आलस्यसे रहित है भिक्षुसघ। सारिपुत्र ! तू भिक्षुओको धार्मिक कथा कह। पीठ मेरी अगिया रही, सो मै लम्बा पळूँगा।' ऐसे ही भन्ते ! देवदत्तने भी मेरे साथ किया।"

हाथी और गीदळकी कथा

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पूर्वकालमे जगलमें एक महासरोवर (था, जिसके) आश्रयसे हाथी (=नाग) रहते थे। वह महासरोवरमें घुसकर सूँळसे भसीड और मृणालको निकाल, अच्छी तरह धो, बिना कीचळका कर खाते थे। वह उनके बलके लिये भी सौन्दर्यके लिये भी होता था। उनके कारण मरण या मरण-समान दु खको न प्राप्त होते थे। भिक्षुओ ! उन्ही हाथियोकी नकल करते थे तरुण स्यारके बच्चे। वह उस सरोवरमें घुस सूँळसे भसीड और मृणालको निकाल। अच्छी तरह धोये बिना, बिना कीचळका किये बिना खाते थे। वह उनके बलके लिये, सौन्दर्यके लिये नही होता था उनके कारण वह मरण या मरण समान दु खको प्राप्त होते थे। ऐसे ही भिक्षुओ। देवदत्त मेरी नकल कर कृपण (हो) मरेगा।—

"धरती खोद नदीमें धो भसीड खाते महावराहकी भाँति कीचड खाते स्यारकी भाँति मेरी नकल कर (वह) कृपण मरेगा॥ (६)"॥

(९) दूतके लिये अपेक्षित गुण

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षु (१) श्रोता होता है, (२) श्रावयिता (=सुनानेवाला), (३) उद्गृहीता (=ग्रहण करनेवाला), (४) धारयिता (=स्मरण रखनेवाला), (५) विज्ञाता, (६) विज्ञापयिता, (७) हित अहितमे कुशल (=चतुर), और (८) कलहकारक नही होता। भिक्षुओ ! इन आठ बातोसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। 4

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त होनेसे सारिपुत्र दूत भेजने लायक हैं। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षुओ ! सारिपुत्र (१) श्रोता हैं, ० (८) हित अहितमें कुशल है।०।

"जो उग्रवादी परिषद्को पा पीडित नही होता।
(किसी) वचनको न छोळता है, और न भाषणको ढाँकता है॥ (७)॥
बिना बतलाये कहता है, पूछनेपर कोप नही करता।
यदि ऐसा भिक्षु ह, तो वह दूत बनकर जाने लायक है" ॥(८)॥

(१०) देवदत्तके पतनके कारण

"भिक्षुओ ! आठ अ-सद्धर्मोसे अभिभूत=पर्यादत्त-चित्त (=लिप्त चित्त) हो देवदत्त अपायिक=नारकीय कल्पभर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! देवदत्त लाभसे अभिभूत=पर्यादत्तचित्त ० चिकित्साके अयोग्य है, (२) अलाभमे०, (३) यशसे०, (४) अयशसे०, (५) सत्कारसे०, (६) असत्कारसे०, (७) पापेच्छता (=बद-

आयुष्मान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। । आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—

'भन्ते ! देवदत्त संघको फोळकर पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ गयासीस है वहाँ चला गया।

'सारिपुत्र ! तुम लोगोको उन नये भिक्षुओंपर दया भी नहीं आई ? सारिपुत्र ! तुम लोग उन भिक्षुओंके आपद्‌में पळनेसे पूर्वही जाओ।

'अच्छा भन्ते !

उस समय बळी परिषद्‌के बीच बैठा देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। देवदत्तने दूरसे सारिपुत्र मौद्गल्यायनको आते देखा। देखकर भिक्षुओंको आमंत्रित किया।—

"देखो भिक्षुओ ! कितना सु-आख्यात (सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गौतमके अग्र श्रावक सारिपुत्र मौद्गल्यायन है वह भी मेरे पास आ रहे मेरे धर्मको मानते है।

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्तसे कहा—

'आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र मौद्गल्यायन बदनीयत (=पापेच्छ) है पापक (=बुरी) इच्छाओंके वशमें है।

'आवुस नहीं उनका स्वागत है क्योंकि वह मेरे धर्मपर विश्वास करते है।

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमंत्रित किया—

'आओ आवुस ! सारिपुत्र ! यहाँ बैठो।

"आवुस ! नहीं" (कह) आयुष्मान् सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर बैठ गये। आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भी एक आसन लेकर बैठ गये। तब देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओंको धार्मिक कथा (कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रसे बोला—

'आवुस ! सारिपुत्र ! (इस समय) भिक्षु आलस-प्रमाद-रहित है तुम आवुस सारिपुत्र ! भिक्षुओंको धर्म-देशना करो मेरी पीठ अगिया रही है सो मैं लम्बा पळूँगा।

अच्छा आवुस !

तब देवदत्त चौपेती संघाटीको बिछवाकर दाहिनी करवटसे लेट गया। स्मृति-रहित सप्रजन्य-रहित(होनेसे) उसे मुहूर्त भरमें ही निद्रा आ गई। तब आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेशना-प्रातिहार्य (=व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनीय प्रातिहार्यके साथ तथा आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने ऋद्धि प्रातिहार्य (=योग-बलके चमत्कार)के साथ भिक्षुओंको धर्म-उपदेश किया अनुशासन किया। तब उन भिक्षुओंको विरज–विमल धर्म चक्षु उत्पन्न हुआ—जो कुछ समुदय धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध-धर्म (=विनाश होनेवाला) है ।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओंको निमंत्रित किया—

'आवुसो ! चलो भगवान्‌के पास चले जो उस भगवान्‌के धर्मको पसंद करता है वह आवे।

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पाँच सौ भिक्षुओंको लेकर जहाँ वेणुवन था वहाँ चले गये। तब कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

"आवुस देवदत्त ! उठो मैंने कहा न था—आवुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो। ।

तब देवदत्तको वहीं मुखसे गर्म खून निकल पळा।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

"अच्छा हो भन्ते ! फूट डालनेवाले अनुयायी भिक्षु फिर उपसम्पदा पावे।"

"नहीं, सारिपुत्र ! मत तू दे फूटके अनुयायी भिक्षुओंको उपसम्पदा। तो सारिपुत्र ! तू फूटके अनुयायी भिक्षुओंसे थुल्लच्चयकी देशना (=क्षमापन) करा। सारिपुत्र ! कैसे देवदत्त तेरे साथ पेश आया ?"

"जैसे भन्ते ! भगवान् बहुत रात तक भिक्षुओंको धर्म कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित ० कर मुझको आज्ञा देते हैं—'सारिपुत्र ! चित्त और शरीरके आलस्यसे रहित है भिक्षुसंघ। सारिपुत्र ! तू भिक्षुओंको धार्मिक कथा कह। पीठ मेरी अगिया रही, सो मैं लम्बा पड़ूँगा।' ऐसे ही भन्ते ! देवदत्तने भी मेरे साथ किया।"

हाथी और गीदड़की कथा

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पूर्वकालमें जंगलमें एक महासरोवर (था, जिसके) आश्रयसे हाथी (=नाग) रहते थे। वह महासरोवरमें घुसकर सूंड़से भसीड़ और मृणालको निकाल, अच्छी तरह धो, बिना कीचड़का कर खाते थे। वह उनके बलके लिये भी सौन्दर्यके लिये भी होता था। उनके कारण मरण या मरण-समान दुःखको न प्राप्त होते थे। भिक्षुओ ! उन्हीं हाथियोंकी नकल करते थे तरुण स्यारके बच्चे। वह उस सरोवरमें घुस सूंड़से भसीड़ और मृणालको निकाल। अच्छी तरह धोये बिना, बिना कीचड़का किये बिना खाते थे। वह उनके बलके लिये, सौन्दर्यके लिये नही होता था उनके कारण वह मरण या मरण समान दुःखको प्राप्त होते थे। ऐसे ही भिक्षुओ। देवदत्त मेरी नकल कर कृपण (हो) मरेगा।—

"धरती खोद नदीमे धो भसीड खाते महावराहकी भाँति कीचड खाते स्यारकी भाँति मेरी नकल कर (वह) कृपण मरेगा॥ (६)"॥

(९) दूतके लिये अपेक्षित गुण

"भिक्षुओ ! आठ बातोंसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षु (१) श्रोता होता हे, (२) श्रावयिता (=सुनानेवाला), (३) उद्गृहीता (=ग्रहण करनेवाला), (४) धारयिता (=स्मरण रखनेवाला), (५) विज्ञाता, (६) विज्ञापयिता, (७) हित अहितमें कुशल (=चतुर), और (८) कलहकारक नही होता। भिक्षुओ ! इन आठ बातोसे युक्त भिक्षु दूत भेजन लायक है। 4

"भिक्षुओ ! आठ बातोंमे युक्त होनेसे सारिपुत्र दूत भेजने लायक हैं। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षुओ ! सारिपुत्र (१) श्रोता है, ० (८) हित अहितमे कुशल है।०।

"जो उग्रवादो परिषद्‌को पा पीडित नही होता।
(किसी) वचनको न छोड़ता है, और न भाषणको ढाँकता है ॥ (७) ॥
विना बतलाये कहता है, पूछनेपर कोप नही करता।
यदि ऐसा भिक्षु ह, तो वह दूत बनकर जाने लायक है" ॥(८)॥

(१०) देवदत्तके पतनके कारण

"भिक्षुओ ! आठ अ-सद्धर्मोसे अभिभूत=पर्यादत्त-चित्त (=लिप्त चित्त) हो देवदत्त अपायिक=नारकीय कल्पभर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! देवदत्त लाभसे अभिभूत=पर्यादत्तचित्त ० चिकित्साके अयोग्य है, (२) अलाभसे०, (३) यशसे०, (४) अयशसे०, (५) सत्कारसे०, (६) असत्कारसे०, (७) पापेच्छता (=बद-

मीयती)स (८) पापमित्रतासे । भिक्षुओ ! इन आठ ।

'अच्छा हो भिक्षुओ ! भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहार करें प्राप्त अलाभ प्राप्त यश प्राप्त अयश प्राप्त सत्कार प्राप्त असत्कार प्राप्त पापेच्छता प्राप्त पापमित्रता ।

भिक्षुओ ! क्या बात देख भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करें प्राप्त पाप मित्रताकी उपेक्षा करके विहार करे ?—भिक्षुओ ! प्राप्त लाभकी उपेक्षा किये बिना विहार करते समय जो पीळा-दाह करनेवाले आस्रव (=चित्त-मल) उत्पन्न होते हैं प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करनेपर वह पीळा-दाह करनेवाले आस्रव नहीं उत्पन्न होते। प्राप्त अलाभकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त यशकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त अयशकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त सत्कारकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त असत्कारकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त पापेच्छताकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा किये बिना । भिक्षुओ ! यह बात देख । इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हें सीखना चाहिये— । प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा।

'भिक्षुओ ! तीन असद्धर्मोंसे लिप्त-पर्यादत्त चित्त हो देवदत्त आपायिक—नारकीय कल्प भर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे तीन ?—(१) पापेच्छता (२) पाप मित्रता (३) थोळीसी विशेषता प्राप्त होनेसे अन्तराव्यवसान (=हतराना) करना । भिक्षुओ ! इन तीन असद्धर्मोंसे लिप्त ।—

"लोकमें मत कोई पापेच्छ उत्पन्न हो
सो इससे जानो जैसी कि पापेच्छोंकी गति होती है ॥(९)॥
'पंडित है' ऐसा प्रसिद्ध है' 'भावितात्मा' होनेकी मान्यता है
मैंने सुना—अग्निकी भाँति देवदत्तमें यश (आदि) आठ हैं ॥(१)॥
तथागतसे द्रोह करके उसने प्रमाद किया
चार द्वारवाले भयानक नरक अवीचिको प्राप्त हुआ ॥(११)॥
पाप कर्मको न करनेवाले द्वेषरहित (पुरुष)का जो द्रोह करता है
आदरहीन द्वेष-युक्त उसी पापीको वह लगता है ॥(१२)॥
यदि (कोई) विषके घळेसे (सारे) समुद्रको दूषित करना चाहे
(तो) उससे वह दूषित नहीं हो सकता क्योंकि समुद्र महान् है ॥(१३)॥
इसी प्रकार जो तथागतको वाद (विवाद)से पीळित करना चाहे
(तो उन) सम्यक्त्वको प्राप्त शान्त-चित्त (तथागत)को (वह) वाद नहीं लग सकता ॥(१४)॥
पंडित (जन) वैसेको मित्र करे, और वैसेका सेवन करे ।
जिसके मार्गका अनुसरण करके भिक्षु दुःख-विनाशको प्राप्त कर सके" ॥(१५)॥

३–संघमें फूट (व्याख्या)

तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

(१) सघ-राजीकी व्याख्या

"भन्ते ! मघ-राजी (=मघमे पार्टी होना) सघ-राजी[1] कही जाती है, कैसे भन्ते ! मघ-राजी होती है, और मघ-भेद नही होता है, और कैसे भन्ते ! मघ-राजी भी होती है, मघ-भेद भी होता है ?"

"उपालि ! (१) एक ओर एक होता है, एक ओर दो, (और) चौथा (भिक्षु) अ नु श्रा व ण[2] करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह ध र्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=उपदेश) है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो।' इस प्रकार उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (२) एक ओर दो (भिक्षु) होते है, एक ओर दो, (और) पाँचवाँ (भिक्षु) अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! मघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (३) एक ओर उपालि ! दो होते है, एक ओर तीन और छठाँ अ नु श्रा व ण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! मघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (४) एक ओर उपालि ! तीन होते है, एक ओर तीन, और सातवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु मघ-भेद नही होता। (५) एक ओर उपालि ! तीन होते है, एक ओर चार, और आठवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! मघ-राजी होती है, किन्तु सघ-भेद नही होता। (६) एक ओर उपालि चार होते है, एक ओर चार और नवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार उपालि ! सघ-राजी भी होती है मघ-भेद भी। उपालि ! नव (भिक्षुओके होने)से या नवसे अधिक होनेसे मघ-राजी भी होती है, सघ-भेद भी। उपालि ! न भिक्षुणी, सघमे भेद (=फूट) करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। उपालि ! न शि क्ष मा णा, सघमें भेद करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। ०न श्रामणेर०। ०न श्रामणेरी ०। ०न उपासक ०। ०न उपासिका ०। उपालि ! अपराध-रहित (=प्रकृतस्थ) एक आवासवाले एक सीमामें स्थित भिक्षु सघ भेद करते है।" 5

(२) सङ्घ-भेदकी व्याख्या

"भन्ते ! सघ-भेद सघ-भेद कहा जाता है, कैसे कितनेसे भन्ते ! सघ भि न्न (=फूटा हुआ) होता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अ ध र्म (=वुद्धका जो उपदेश नही)को धर्म कहते है, (२) ध र्म को अ-धर्म कहते है। (३) अ-विनयको वि न य कहते हैं, और (४) विनयको अ-विनय कहते है। (५) तथागतके अ-भाषित अ-लपितको तथागतका भाषित लपित कहते है, (६) तथागतके भाषित, लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित कहते हैं। (७) तथागतके अन्-आचीर्ण (=आचरण न किये कामो)को ० आचीर्ण कहते है, (८) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहते है। (९) ० न विधान किये (=अ-प्रज्ञप्त)को ० प्रज्ञप्त ०, (१०) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहते हैं। (११) अन्-आपत्ति (=जो अपराध नही)को आपत्ति ० (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहते है। (१३) लघुक-आपत्ति (=छोटे गिने जानेवाले अपराध)को गुरुक (=वळी) आपत्ति कहते है, (१४) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहते है। (१५) सावशेष (=जिसके अतिरिक्त भी आपत्तियाँ वची है)-आपत्तियोको निरवशेष-आपत्तियाँ कहते है, (१६) निरवशेष-आपत्तियाँको सावशेष-आपत्तियाँ कहते हैं। (१७)

---

[1] कोरम्से कममें फूट होनेपर सघ-राजी और कोरम् पूरा होनेपर (उसे सघ और तबकी) फूटको सघ-भेद कहते हैं।

[2] सघकी सम्मति लेकर प्रस्ताव जिन शब्दोंमें रखा जाता है उसे अनुश्रावण कहते हैं।

नीयती)से (८) पापमित्रतासे । भिक्षुओ! इन आठ ।

'अच्छा हो भिक्षुओ! भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहार करे प्राप्त अलाभ प्राप्त यश प्राप्त अयश प्राप्त सत्कार प्राप्त असत्कार० प्राप्त पापेच्छता प्राप्त पापमित्रता ।

'भिक्षुओ! क्या बात देख भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करे प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा करके विहार करे?—भिक्षुओ! प्राप्त लाभकी उपेक्षा किये बिना विहार करते समय जो पीड़ा-दाह करनेवाले आस्रव (=चित्त-मल) उत्पन्न होते हैं प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करनेपर वह पीड़ा-दाह करनेवाले आस्रव नहीं उत्पन्न होंगे। प्राप्त अलाभकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त यशकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त अयशकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त सत्कारकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त असत्कारकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त पापेच्छताकी उपेक्षा किये बिना प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा किये बिना । भिक्षुओ! यह बात देख । इसलिये भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये— । प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा।

भिक्षुओ! तीन असद्धर्मोंसे लिप्त-पर्यादत्त चित्त हो देवदत्त अपायिक—नारकीय कल्प भर (नरकमें रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे तीन?—(१) पापेच्छता (२) पापमित्रता (३) थोड़ीसी विशेषता प्राप्त होनेसे अन्तराव्यवसान (=छोड़ना) करना। भिक्षुओ! इन तीन असद्धर्मोंसे लिप्त ।—

'कोइम मत कोई पापेच्छ उत्पन्न हो
सो इससे जानो जैसी कि पापेच्छोंकी गति होती है ॥(९)॥
'पण्डित है' ऐसा प्रसिद्ध है 'भावितात्मा' होनेकी मान्यता है
मैंने सुना—यशकी भाँति देवदत्तमें भय (आदि) आठ है ॥(१०)॥
तथागतसे द्रोह करके उसने प्रमाद किया
चार द्वारवाले भयानक नरक अवीचिको प्राप्त हुआ ॥(११)॥
पाप कर्मको न करनेवाले द्वेषरहित (पुरुष)का जो द्रोह करता है
आदरहीन द्वेष-युक्त उसी पापीको वह लगता है ॥(१२)॥
यदि (कोई) विषके घड़ेसे (सारे) समुद्रको दूषित करना चाहे
(तो) उससे वह दूषित नहीं हो सकता क्योंकि समुद्र महान् है ॥(१३)॥
इसी प्रकार जो तथागतको वाद (विवाद)से पीड़ित करना चाहे
(तो उस) सम्यक्त्वको प्राप्त शान्त-चित्त (तथागत)को (वह) वाद नहीं लग सकता ॥(१४)॥
पण्डित (जन) वैसेको मित्र करे और वैसेका सेवन करे।
जिसके मार्गका अनुसरण करके भिक्षु दुःख-विनाशको प्राप्त कर सके" ॥(१५)॥

३—अधम पृट (व्याख्या)

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

"क्या भन्ते ! संघ-भेदक (ऐसा भी) हो सकता है। (जो कि) नहीं कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य है?"

"हो सकता है, उपालि ! (जो कि) नहीं कल्प भर०।"

"भन्ते ! कौनसा संघभेदक कल्प भर अपाय नरकमें रहनेवाला, अचिकित्स्य होता है?"

१—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टि (=धारणा) की फूट (=भेद) में अधर्म-दृष्टिवाला हो, (वैसी) क्षान्ति रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो। उपालि ! यह (कहनेवाला) संघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमें रहनेवाला, अ-चिकित्स्य (=लाइलाज) है। (२) और फिर उपालि ! जो भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टिके भेदमें धर्म दृष्टिवाला हो, (वैसी)०। (३) ० उस अधर्म दृष्टि-भेदमें संदेह युक्त हो, (वैसी)०।

ख "(४) और फिर उपालि ! जो भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है, उस अधर्म दृष्टिमें धर्म-दृष्टि-भेदको धारणाकर दृष्टिको धारणाकर, क्षान्ति=रुचि=भावको रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण करता है—यह धर्म है०। (५) ० धर्म-दृष्टि-भेदमें धर्म-दृष्टि रखकर०। (६) ० उस धर्म दृष्टि-भेदमें सन्देह युक्त होकर०।

ग "(७) ० उस संदेहवाले भेदमें अधर्म दृष्टिवाला होकर०। (८) ० उस संदेहवाले भेद में धर्म दृष्टिवाला होकर०। (९) ० उस संदेहवाले भेदमें संदेह-युक्त हो०।[1]

२—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) धर्मको अधर्म कहता है, उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें अधर्म दृष्टिवाला हो (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—०[1]। (९) ० उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें संदेह-युक्त हो ०।

३—क "० (१) अविनयको विनय कहता है, उस अविनय-दृष्टिके भेदमें अविनय दृष्टिवाला हो (वैसी) ०[1]।

४—क "० (१) विनयको अविनय कहता है ०[2]।

५—क "० (१) तथागतके अ-भाषित=अ-लपितको तथागतका भाषित=लपित कहता है, ०[3]।

६—क "० (१) ० भाषित=लपितको ० अभाषित=अलपित कहता है, ०[3]।

७—क "० (१) ० अन्-आचीर्णको ० आचीर्ण कहता है, ०[3]।

८—क "० (१) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहता है, ०[3]।

९—क "० (१) ० अ-प्रज्ञप्तको ० प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

१०—क "० (१) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

११—क "० (१) अन्-आपत्तिको आपत्ति कहता है, ०[3]।

१२—क "० (१) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१३—क "० (१) लघुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१४—क "० (१) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१५—क "० (१) स-अवशेष आपत्तियोको निर्-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१६—क "० (१) निर्-अवशेष आपत्तियोको स-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१७—क "० (१) दुट्ठुल्ल आपत्तियोको, अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

---

[1] देखो ऊपर अठारह।   [2] ऊपरकी नव कोटियोको दुहराओ।

[3] पृष्ठ ४९३–९४ के २–१७ तकको भी ऐसेही दुहराना चाहिये।

दुट्ठुल्ल (=दुःस्थौल्य)-आपत्तियोंको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते हैं (१८) अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियोंको दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते हैं। वह इन अठारह बातोंसे अपकासन (=अननुज्ञात)का विपकासन (=अनुज्ञान) करते हैं, आवेणि (=स्थानीय संघकी परम्परासे आया)-उपोसथ करते हैं आवेणिप्रवारणा करते हैं आवेणि-संघ कर्म करते हैं।—इतनेसे उपालि ! संघ भिन्न (=फूट गया) होता है। 6

(३) संघ-सामग्रीकी व्याख्या

"भन्ते ! संघ-सामग्री (=संघमें एकता) संघ-सामग्री कही जाती है कितनेसे भन्ते ! संघ समग्र (=एकताको प्राप्त) कहा जाता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहते हैं (२) धर्मको धर्म कहते हैं। (३) अविनयको अविनय (४) विनयको विनय। (५) तथागतके अ-भाषित=अ-कथितको तथागतका अ-भाषित अ-कथित (६) भाषित=कथितको भाषित=कथित। (७) अन्-आचीर्णको अन्-आचीर्ण (८) आचीर्णको आचीर्ण। (९) अ-प्रज्ञप्तको अ-प्रज्ञप्त (१०) प्रज्ञप्तको प्रज्ञप्त। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति (१२) आपत्तिको आपत्ति। (१३) लघुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति (१४) गुरुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति। (१५) स-अवशेष आपत्तिको सावशेष-आपत्ति (१६) अन्-अवशेष-आपत्तिको अन्-अवशेष-आपत्ति। (१७) दुट्ठुल्ल-आपत्तिको दुट्ठुल्ल-आपत्ति (१८) अ-दुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल-आपत्ति कहते हैं। वह इन अठारह बातोंसे न अपकासन करते हैं न विपकासन करते हैं न आवेणि-उपोसथ करते हैं न आवेणि प्रवारणा करते हैं न आवेणि-संघ-कर्म करते हैं।—इतनेसे उपालि ! संघ समग्र होता है। 7

§४—नरकगामी, अचिकित्स्य व्यक्ति

(१) संघमें फूट डालनेका पाप

"भन्ते ! समग्र संघको भिन्न (=फूटा) करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! समग्र संघको भिन्न करके कल्पभर रहनेवाला पाप कमाता है कल्पभर नरकमें रहता है। 8

'संघ-भेदक (पुरुष) कल्प भर अपाय—नरकमें रहनेवाला होता है।
वर्ग (पार्टीबाजी)में रत अ-धर्ममें स्थित (अपने) योग-क्षेमका नाश करता है।
समग्र संघको भिन्न करके कल्प भर नरकमें रहता है' ॥(१६)॥

"भन्ते ! भिन्न संघको समग्र करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! भिन्न संघको समग्र करके वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है कल्पभर स्वर्गमें आनन्द करता है। 9—

'संघकी समग्रता (=एकता) सुखमय है और समग्रोंका अनुग्रह (भी)।
समग्रतामें रत धर्ममें स्थित (पुरुष अपने) योग-क्षेमका नाश नहीं करता।
संघमें समग्र करके कल्प भर (वह) स्वर्गमें आनन्द करता है' ॥(१७)॥

(२) कैसा संघमें फूट डालनेवाला नरकगामी और अचिकित्स्य होता है, और कैसा नहीं

क्या भन्ते ! संघ-भेदक (=संघमें फूट डालनेवाला) (कोई) कल्पभर अपाय—नरकमें रहनेवाला है अचिकित्स्य (=जिसका इलाज नहीं हो सकता जो सुधर नहीं सकता) है ?

"है उपालि ! संघ-भेदक अ-चिकित्स्य।

"क्या भन्ते ! सघ भेदक (ऐसा भी) हो सकता है। (जो कि) नही कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य है ?"

"हो सकता है, उपालि ! (जो कि) नही कल्प भर ०।"

"भन्ते ! कौनसा सघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, अचिकित्स्य होता है ?"

१—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टि (=धारणा)की फूट (=भेद)में अधर्म-दृष्टिवाला हो, (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो। उपालि ! यह (कहनेवाला) सघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, अ-चिकित्स्य (=लाइलाज) है। (२) और फिर उपालि ! एक भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टिके भेदमें धर्म दृष्टिवाला हो, (वैसी)०। (३)० उस अधर्म दृष्टि-भेदमें सदेह युक्त हो, (वैसी)०।

ख "(४) और फिर उपालि ! जो भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है, उस अधर्म दृष्टिमे धर्म-दृष्टि-भेदको धारणकर दृष्टिको धारणकर, क्षान्ति=रुचि=भावको रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण करता है—यह धर्म है ०। (५) ० धर्म-दृष्टि-भेदमें धर्म-दृष्टि रखकर ०। (६) ० उस धर्म दृष्टि-भेदमें सन्देह युक्त होकर ०।

ग "(७) ० उस सदेहवाले भे द में अधर्म दृष्टिवाला होकर ०। (८) ० उस सदेहवाले भेद मे धर्म दृष्टिवाला होकर०। (९) ० उस सदेहवाले भेदमें सदेह-युक्त हो ०।[1]

२—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) धर्मको अधर्म कहता है, उस अधर्म-दृष्टिके भे द में अधर्म दृष्टिवाला हो (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—०[1]। (९) ० उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें सदेह-युक्त हो ० ।

३—क "० (१) अविनयको विनय कहता है, उस अविनय-दृष्टिके भेदमे अविनय दृष्टिवाला हो (वैसी) ०[1]।

४—क "० (१) विनयको अविनय कहता है ०[2]।

५—क "० (१) तथागतके अ-भाषित=अ-लपितको तथागतका भाषित=लपित कहता है, ०[3]।

६—क "० (१) ० भाषित=लपितको ० अभाषित=अलपित कहता है, ०[3]।

७—क "० (१) ० अन्-आचीर्णको ० आचीर्ण कहता है, ०[3]।

८—क "० (१) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहता है, ०[3]।

९—क "० (१) ० अ-प्रज्ञप्तको ० प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

१०—क "० (१) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

११—क "० (१) अन्-आपत्तिको आपत्ति कहता है, ०[3]।

१२—क "० (१) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१३—क "० (१) लघुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१४—क "० (१) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१५—क "० (१) स-अवशेष आपत्तियोको निर्-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१६—क "० (१) निर्-अवशेष आपत्तियोको स-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१७—क "० (१) दुट्ठुल्ल आपत्तियोको, अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

---

[1] देखो ऊपर अठारह। [2] ऊपरकी नव कोटियोंको दुहराओ।

[3] पृष्ठ ४९३–९४ के २–१७ तकको भी ऐसेही दुहराना चाहिये।

१८—क "और फिर उपालि! जो भिक्षु (१) अदुट्ठुल्ल आपत्तियोंको दुट्ठुल्ल कहता है। उस अधर्म-दृष्टिके भेदमें अधर्म दृष्टि रख दृष्टि क्षान्ति=रुचि=भावको रख अनुश्रावण करता है शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह भी संघ-भेदक आपायिक है।[1] (२) उस सन्देहवाले भेदमें संदेह युक्त हो । 10

"भन्ते! कौन सा संघ भेदक न अपायमें—न नरकमें जानेवाला न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला न अ-चिकित्स्य होता है?"

१—"उपालि! जो भिक्षु धर्मको धर्म कहता है। उस धर्म-दृष्टि-भेद (=धर्मके सिद्धान्तक मतभेद)में धर्म-दृष्टि हो दृष्टि क्षान्ति=रुचि=भावको न छोड़ अनुश्रावण करता है शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह संघ-भेदक न अपायमें न नरकमें जानेवाला न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला न अ-चिकित्स्य होता है।[1]

१८—"उपालि! जो भिक्षु अदुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहता है। उस धर्म-दृष्टिभेदमें धर्म-दृष्टि हो दृष्टि=क्षान्ति=रुचि=भावको न छोड़ अनुश्रावण करता है शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है इसका व्याख्यान करो।' उपालि! यह संघ-भेदक न अपायमें—न नरकमें जानेवाला न (उसमें) कल्प भर रहनेवाला न अ-चिकित्स्य होता है। 11

संघभेदकक्खन्धक समाप्त ॥७॥

---

[1]पृष्ठ ४९१ १८के २-१७ तकको भी ऐसे ही दुहराना चाहिये।

८—व्रत-स्कन्धक

१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य । २—भोजन-सबधी नियम । ३—भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य । ४—आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम । ५—शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्त्तव्य ।

§१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य

१—श्रावस्ती

उस समय वुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे ।

(१) नवागन्तुकके व्रत

उस समय नवागन्तुक भिक्षु जूता पहिने भी आराममें घुसते थे, छत्ता लगाये भी०, शरीर ढँके (=अवगुटित) भी०, शिरपर चीवर रक्खे भी० । पीनेके (पानी)से भी पैर धोते थे, (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुको भी अभिवादन न करते थे, न (उनसे) शय्या-आसनके लिये पूछते थे । एक नवागन्तुक भिक्षु सूने विहार (=कोठरी)में घटिका (=साकल) उघाळ, किवाळ खोल एक दम भीतर घुस गया । उसके ऊपर बैठा साँप (उसके) कधेपर गिरा । वह डरके मारे चिल्ला उठा । भिक्षुओने दौळकर उससे पूछा—

"आवुस ! क्यो तू चिल्लाया ?"

तब उस भिक्षुने उन भिक्षुओसे वह बात कह दी ।

जो अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे नवागतुक भिक्षु जूता पहिने आराममे घुस जाते है ! ० शय्या-आसनके लिये नही पूछते !!'

उन्होने यह बात भगवान्से कही ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर, भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! नवागन्तुकोंके व्रत (=कर्तव्य)का विधान करता हूँ, जैसे कि नवागन्तुक भिक्षुओको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ ! नवागन्तुक भिक्षुको आराममें प्रवेश करते वक्त जूतेको निकाल, नीचे करके फटफटाकर (हाथमें) ले, छत्तेको उतार, शिरको खोल, शिरके चीवरको कधेपर कर ठीक तरहसे विना जल्दी किये आराममें प्रवेश करना चाहिये ।

"आराममें प्रवेश करते वक्त देखना चाहिये कि कहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण (=आना-

खाना) कर रहे हैं। उपस्थान-शाला मंडप या वृक्ष-छाया जहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण कर रहे हों वहाँ जाकर एक ओर पात्र रखकर एक ओर चीवर रखकर योग्य आसन ले बैठना चाहिये। पीनेके (पानी) और इस्तेमालके (पानी)को पूछना चाहिये—कौन पीनेका (पानी) है कौन इस्तेमालका है? यदि पीनेके (पानी)का प्रयोजन हो तो पानीय लेकर पीना चाहिये। यदि इस्तेमालके (पानी)का प्रयोजन हो तो उसे लेकर पैर धोना चाहिये। पैर धोते वक्त एक हाथसे पानी डालना चाहिये दूसरे हाथसे पैर धोना चाहिये। उसी हाथसे पानी डालना और उसी हाथसे पैर धोना न करना चाहिये। जूता पोंछनेके कपळेको माँगकर जूता पोंछना चाहिये। जूता पोंछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोंछना चाहिये पीछे गीलेसे। जूता पोंछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आवासिक भिक्षु (अपनेसे भिक्षु होनेमें) वृद्ध हो तो अभिवादन करना चाहिये। यदि नवक (=अपनेसे कम समयका भिक्षु) हो तो अभिवादन करवाना चाहिये। (अपने लिये) शयन-आसन (कहाँ है) पूछना चाहिये। गोचर (=भिक्षाके ग्राम) पूछना चाहिये अ-गोचर शैक्ष सम्मत[1] कुलोंको पाखानेका स्थान (=वच्चट्ठान) पेशाबका स्थान (=पस्सावट्ठान) पीनेका (पानी) धोनेका पानी (=परि भोजनीय) कत्तरदंड (=लाठी) संघके कतिक संस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) (कतिक-संस्थानमें) किस समय प्रवेश करना चाहिये किस समय निकलना चाहिये (—पूछना चाहिये)। यदि विहार (बहुत समयसे) खाली रहा हो तो किवाळको खटखटाकर थोळी देर ठहरना घटिका (=अरगल)को उघाळ किवाळको खोल बाहर खळे ही खळे देखना चाहिये। यदि विहार साफ न हो चारपाईपर चौकी रक्खी हो चौकीपर चौकी रक्खी हो ऊपर शयनासन (=शय्या आसन) जमा कर दिया गया हो तो यदि कर सकता हो तो साफ करना चाहिये।

"विहार साफ करते वक्त पहिले भूमिके फर्शको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। (चारपाईके पाये)के ओरको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। तकिये-गद्दे को। आसन बिछौनेकी चद्दरको। चारपाईको नवाकर बिना रगळे ठीकसे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। चौकी (=पीठ)को नवाकर बिना रगळे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये।[2] सिरहानेके पटरे (=ओठंगनेके पटरे)को धूपमें तपा साफकर ले जाकर उसके स्थानपर रखना चाहिये। पात्र चीवरको रखना चाहिये। पात्रको रखते वक्त एक हाथमें पात्र ले दूसरे हाथसे नीचे चारपाई या चौकीको टटोलकर पात्र रखना चाहिये। बिना ढँकी भूमिपर पात्र नहीं रखना चाहिये। चीवरको रखते वक्त एक हाथमें चीवर ले दूसरे हाथसे चीवर (टाँगने)के बाँस चीवर (टाँगने)की रस्सीको झाळकर पहली ओर किनारे और और उरली ओर सिरेको करके चीवर रखना चाहिये।

"यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो यदि पाखानेकी मटकीमें पानी न हो तो पानी भर कर रखना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह नवागन्तुक भिक्षुओंका व्रत है, जैसे कि आगन्तुक भिक्षुओंको बर्तना चाहिये। 1

(२) आवासिकका व्रत

उस समय आवासिक भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओंको देख नहीं आसन देते थे न पैर धोनेका जल (=पादोदक) न पादपीठ, न पादकठलिक (=पैर घिसनेकी लकळी) रखते थे। न अगवानी करके

---

[1]परम श्रद्धालु किन्तु अत्यन्त दरिद्र कुल जिनके कष्टको ख्यालकर भिक्षुको उनके घर भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाना चाहिये।

[2]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १ २)।

पात्र-चीवर ग्रहण करते थे। न पीनेके (पानी) के लिये पूछते थे। (अपनेसे) वृद्ध आगन्तुक भिक्षुका अभिवादन नही करते थे। न शय्या-आसन प्रज्ञापन (=विछाना) करते थे। जो अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वह हैरान ० होते थे—० । ०—

"तो भिक्षुओ ! आवासिकोके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आवासिक भिक्षुओको वतना चाहिये—

"भिक्षुओ ! यदि आगन्तुक भिक्षु अपनेमे वृद्ध हो, तो आसन प्रदान करना चाहिये, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक पास रखना चाहिये। अगवानी करके पात्र-चीवर ग्रहण करना चाहिये। पीनेके (पानी)के लिये पूछना चाहिये। यदि सकता हो (बीमार आदि न हो) तो जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये, पीछे गीलेमे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आगन्तुक भिक्षु वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये। गोचर०, अ-गोचर०, शैक्ष-सम्मत कुलोको०, ०[1] सघका कतिक-सस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) बतलानी चाहिये—किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय जाना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। (अधिक समयसे) वास किया है या वास नही किया है—यह बतलाना चाहिये। यदि आगन्तुक (भिक्षु) नवक (=नवही) है, तो अभिवादन करने देना चाहिये, शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। ०[1]किस समय जाना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह आवासिक भिक्षुओके व्रत है, ०।" 2

(३) गमिक[2] के व्रत

उस समय गमिक भिक्षु लकळी-मिट्टीके वर्तनोको विना सँभाले, खिळकी, दर्वाज़ेको खोले ही छोळ शयन-आसनके लिये पूछे (=सँभलवाये) विना चले जाते थे। लकळी-मिट्टीका वर्तन नष्ट हो जाता था। शयन-आसन अ-रक्षित होता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—० ।०।—

"तो भिक्षुओ ! गमिक[2] भिक्षुओके व्रतको बतलाता हूँ, जैसे कि गमिक भिक्षुओको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! गमिक भिक्षुको लकळी-मिट्टीके वर्तनको सँभालकर, खिळकी दर्वाज़ोको बन्दकर शयन-आसन के लिये पूछकर जाना चाहिये। यदि भिक्षु न हो तो श्रामणेरसे पूछना चाहिये, यदि श्रामणेर न हो तो आरामिक (=आरामके सेवक)को पूछना चाहिये। यदि भिक्षु हो, न श्रामणेर ही, न आरामिक ही, तो चार पत्थरोपर चारपाईको विछाकर, चारपाईपर, चारपाई, चौकीपर चौकी रखकर ऊपर शयन-आसनको जमा करे। लकळी-मिट्टीके वर्तनोको सँभालकर, खिळकी-दर्वाज़ोको वन्द करके जाना चाहिये। यदि विहार चूता है, तो समर्थ होनेपर छा देना चाहिये, या (उसके लिये) यत्न करना चाहिये —जिसमें विहार छा जाये। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, यदि न हो सके, तो जिस स्थानपर न चूता हो वहाँ चार पत्थरोपर चारपाईको विछाकर,० खिळकी-दर्वाज़ोको वन्द करके जाना चाहिये। यदि सारा ही विहार चूता हो, तो यदि समर्थ हो, तो शयन-आसनको गाँवमें ले जाना चाहिये, या प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें कि शयन-आसन गाँवमें चला जाये। यदि ऐसा करनेको मिले तो ठीक, न मिले, तो चार पत्थरो पर चारपाईको विछाकर०[3] लकळी-मिट्टीके वर्तनोको सँभाल, घास या पत्तेमे ढाँककर जाना चाहिये, जिसमें कि कुछ भाग तो वच जाये। भिक्षुओ ! यह गमिक भिक्षुओका व्रत हैं, ०।"

---

[1]देखो पृष्ठ ४९८। [2]यात्रापर जानेवाला।
[3]देखो ऊपर।

जाना) कर रहे हैं। उपस्थान-शाला मंडप या वृक्ष-छाया जहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण कर रहे हों वहाँ जाकर एक ओर पात्र रखकर एक ओर चीवर रखकर योग्य आसन ले बैठना चाहिये। पीनेके (पानी) और इस्तेमालके (पानी)को पूछना चाहिये—कौन पीनेका (पानी) है कौन इस्तेमालका है? यदि पीनेके (पानी)का प्रयोजन हो तो पानीय लेकर पीना चाहिये। यदि इस्तेमालके (पानी)का प्रयोजन हो तो उसे लेकर पैर धोना चाहिये। पैर धोते वक्त एक हाथसे पानी डालना चाहिये दूसरे हाथसे पैर धोना चाहिये। उसी हाथसे पानी डालना और उसी हाथसे पैर धोना न करना चाहिये। जूता पोछनेके कपड़ेको माँगकर जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपड़ेसे पोछना चाहिये पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपड़ेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आवासिक भिक्षु (अपनेसे भिक्षु होनेमें) वृद्ध हो तो अभिवादन करना चाहिये। यदि नवक (=अपनेसे कम समयका भिक्षु) हो तो अभिवादन करवाना चाहिये। (अपने लिये) शयन-आसन (कहाँ है) पूछना चाहिये। गोचर (=भिक्षाके ग्राम) पूछना चाहिये अ-गोचर शैक्ष सम्मत[1] कुलोंको पाखानेका स्थान (=वच्चट्ठान) पेशाबका स्थान (=पस्सावट्ठान) पीनेका (पानी) धोनेका पानी (=परिभोजनीय) कत्तरदंड (=डंडा) संघके कतिक सण्ठान (=स्थानीय नियमकी बातें) (कतिक-सण्ठानमें) किस समय प्रवेश करना चाहिये किस समय निकलना चाहिये (—पूछना चाहिये)। यदि विहार (बहुत समयसे) खाली रहा हो तो किवाड़को खटखटाकर थोड़ी देर ठहरना चाहिये (=परत्)को उघाड़ किवाड़को खोल बाहर खड़े ही खड़े देखना चाहिये। यदि विहार साफ न हो चारपाईपर चौकी रक्खी हो चौकीपर चौकी रक्खी हो ऊपर शयनासन (=शय्या आसन) जमा कर दिया गया हो तो यदि कर सकता हो तो साफ करना चाहिये।

"विहार साफ करते वक्त पहिले भूमिके फर्शको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। (चारपाईके पाये)के ओटको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। तकिये-गद्दे को । आसन बिछौनेकी चद्दरको । चारपाईको नवाकर बिना रगड़े ठीकसे बिना किवाड़से टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। चौकी (=पीठ)को नवाकर बिना रगड़े बिना किवाड़से टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। [2] सिरहानेके पटरे (=ओठँगनेके पटरे)को धूपमें तपा साफकर ले जाकर उसके स्थानपर रखना चाहिये। पात्र-चीवरको रखना चाहिये। पात्रको रखते वक्त एक हाथमें पात्र ले दूसरे हाथसे नीचे चारपाई या चौकीको टटोलकर पात्र रखना चाहिये। बिना ढँकी भूमिपर पात्र नहीं रखना चाहिये। चीवरको रखते वक्त एक हाथमें चीवर ले दूसरे हाथसे चीवर (टाँगने)के बाँस चीवर (टाँगने)की रस्सीको झाड़कर पहली ओर किनारा छोर और उरली ओर सिरको करके चीवर रखना चाहिये।

"यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो ... यदि पाखानेकी मटकीमें पानी न हो तो पानी भर कर रखना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह नवागन्तुक भिक्षुओंका व्रत है जैसे कि आगन्तुक भिक्षुओंको बर्तना चाहिये। 1

(२) आवासिकके व्रत

उस समय आवासिक भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओंको देख नहीं आसन देते थे न पैर धोनेका जल (=पादोदक) न पादपीठ न पादकठलिक (=पैर घिसनेकी ठिकरी) रखते थे। न अगवानी करके

---

[1]परम श्रद्धालु निर्धन अत्यन्त दरिद्र कुल जिनके घरको स्वीकार कर भिक्षुओंको उनके घर भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाना चाहिये।

[2]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १ २)।

पात्र-चीवर ग्रहण करते थे। न पीनेके (पानी) के लिये पूछते थे। (अपनेसे) वृद्ध आगन्तुक भिक्षुका अभिवादन नही करते थे। न शय्या-आसन प्रज्ञापन (=बिछाना) करते थे। जो अल्पेच्छ ० भिक्ष थे, वह हैरान ० होते थे—० । ०—

"तो भिक्षुओ ! आवासिकोके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आवासिक भिक्षुओको वतना चाहिये—

"भिक्षुओ ! यदि आगन्तुक भिक्षु अपनेसे वृद्ध हो, तो आसन प्रदान करना चाहिये, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक पास रखना चाहिये। अगवानी करके पात्र-चीवर ग्रहण करना चाहिये । पीनेके (पानी)के लिये पूछना चाहिये। यदि सकता हो (बीमार आदि न हो) तो जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आगन्तुक भिक्षु वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये। गोचर०, अ-गोचर०, शैक्ष-सम्मत कुलोको०, ०[1] संघका कतिक-सस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) बतलानी चाहिये—किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय जाना चाहिये । शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। (अधिक समयसे) वास किया है या वास नही किया है—यह बतलाना चाहिये। यदि आगन्तुक (भिक्षु) नवक (=नवही) है, तो अभिवादन करने देना चाहिये, शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। ०[1]किस समय जाना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह आवासिक भिक्षुओंके व्रत है, ०।" 2

(३) गमिक[2] के व्रत

उस समय गमिक भिक्षु लकळी-मिट्टीके बर्तनोको बिना सँभाले, खिळकी, दर्वाज़ेको खोले ही छोळ शयन-आसनके लिये पूछे (=सँभलवाये) बिना चले जाते थे। लकळी-मिट्टीका बर्तन नष्ट हो जाता था। शयन-आसन अ-रक्षित होता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—० ।०।—

"तो भिक्षुओ ! गमिक[2] भिक्षुओके व्रतको बतलाता हूँ, जैसे कि गमिक भिक्षुओको बर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! गमिक भिक्षुको लकळी-मिट्टीके बर्तनको सँभालकर, खिळकी दर्वाज़ोको बन्दकर शयन-आसन के लिये पूछकर जाना चाहिये। यदि भिक्षु न हो तो श्रामणेरसे पूछना चाहिये, यदि श्रामणेर न हो तो आरामिक (=आरामके सेवक)को पूछना चाहिये। यदि भिक्षु हो, न श्रामणेर ही, न आरामिक ही, तो चार पत्थरोपर चारपाईको बिछाकर, चारपाईपर, चारपाई, चौकीपर चौकी रखकर ऊपर शयन-आसनको जमा करे। लकळी-मिट्टीके बर्तनोको सँभालकर, खिळकी-दर्वाज़ोको बन्द करके जाना चाहिये। यदि विहार चूता है, तो समर्थ होनेपर छा देना चाहिये, या (उसके लिये) यत्न करना चाहिये —जिसमें विहार छा जाये। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, यदि न हो सके, तो जिस स्थानपर न चूता हो वहाँ चार पत्थरोपर चारपाईको बिछाकर,० खिळकी-दर्वाज़ोको बन्द करके जाना चाहिये। यदि सारा ही विहार चूता हो, तो यदि समर्थ हो, तो शयन-आसनको गाँवमें ले जाना चाहिये, या प्रयत्न करना चाहियें, जिसमें कि शयन-आसन गाँवमें चला जाये। यदि ऐसा करनेको मिले तो ठीक, न मिले, तो चार पत्थरो पर चारपाईको बिछाकर०[3] लकळी-मिट्टीके बर्तनोको सँभाल, घास या पत्तेसे ढाँककर जाना चाहिये, जिसमें कि कुछ भाग तो बच जाये। भिक्षुओ ! यह गमिक भिक्षुओका व्रत हैं, ०।"

---

[1]देखो पृष्ठ ४९८। [2]यात्रापर जानेवाला।
[3]देखो ऊपर।

पाखाना) कर रहे हैं। उपस्थान-शाला मंडप या वृक्ष-छाया जहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण कर रहे हों वहाँ जाकर एक ओर पात्र रखकर एक ओर चीवर रखकर योग्य आसन ले बैठना चाहिये। पीनेके (पानी) और इस्तेमालके (पानी)को पूछना चाहिये—कौन पीनेका (पानी) है कौन इस्तेमालका है? यदि पीनेके (पानी)का प्रयोजन हो तो पानीय लेकर पीना चाहिये। यदि इस्तेमालके (पानी)का प्रयोजन हो तो उसे लेकर पैर धोना चाहिये। पैर धोते वक्त एक हाथसे पानी डालना चाहिये दूसरे हाथसे पैर धोना चाहिये। उसी हाथसे पानी डालना और उसी हाथसे पैर धोना न करना चाहिये। जूता पोछनेके कपळेको माँगकर जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आवासिक भिक्षु (अपनेसे भिक्षु होनेमें) वृद्ध हो तो अभिवादन करना चाहिये। यदि नवक (=अपनेसे कम समयका भिक्षु) हो तो अभिवादन करवाना चाहिये। (अपने लिये) शयन-आसन (कहाँ है) पूछना चाहिये। गोचर (=भिक्षाके ग्राम) पूछना चाहिये अ-गोचर शैक्ष सम्मत[1] कुलोंको पाखानेका स्थान (=वच्चट्ठान) पेशाबका स्थान (=पस्सावट्ठान) पीनेका (पानी) धोनेका पानी (=परिभोजनीय) कत्तरदंड (=डंडा) संघके कतिक संस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) (कतिक-संस्थानमें) किस समय प्रवेश करना चाहिये किस समय निकलना चाहिये (—पूछना चाहिये)। यदि विहार (बहुत समयसे) खाली पड़ा हो तो किवाळको खटखटाकर थोळी देर ठहरना घटिका (=अरगल्)को उघाळ किवाळको खोल बाहर खळे ही खळे देखना चाहिये। यदि विहार साफ न हो चारपाईपर चौकी रक्खी हो चौकीपर चौकी रक्खी हो ऊपर शयनासन (=शय्या आसन) जमा कर दिया गया हो तो यदि कर सकता हो तो साफ करना चाहिये।

"विहार साफ करते वक्त पहिले भूमिके फर्शको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। (चारपाईके पाये)के ओटको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। तकिये-गद्दे को ०। आसन बिछौनेकी चद्दरको०। चारपाईको नवाकर बिना रगळे ठीकसे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। चौकी (=पीठ)को नवाकर बिना रगळे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये।[2] सिरहानेके पटरे (=ओठँगनेके पटरे)को धूपमें तपा साफकर ले जाकर उसके स्थानपर रखना चाहिये। पात्र-चीवरको रखना चाहिये। पात्रको रखते वक्त एक हाथमें पात्र ले दूसरे हाथसे नीचे चारपाई या चौकीको टटोलकर पात्र रखना चाहिये। बिना ढँकी भूमिपर पात्र नहीं रखना चाहिये। चीवरको रखते वक्त एक हाथमें चीवर ले दूसरे हाथसे चीवर (टाँगने)के बाँस चीवर (टाँगने)की रस्सीको झाळकर पहली ओर पिछले छोर और उरकी ओर घिरको करके चीवर रखना चाहिये।

"यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो ०। यदि पाखानेकी मटकीमें पानी न हो तो पानी भर कर रखना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आगन्तुक भिक्षुओंका व्रत है, जैसे कि आगन्तुक भिक्षुओंको बर्तना चाहिये।" 1

(२) आवासिकके व्रत

उस समय आवासिक भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओंको देख नहीं आसन देते थे न पैर धोनेका जल (=पादोदक) न पादपीठ न पादकठलिक (=पैर घिसनेकी लकळी) रखते थे। न अगवानी करके

---

[1] करन महान् किन्तु अत्यन्त दरिद्र कुल जिनके श्रद्धाको ख्यालकर भिक्षुको उनके घर भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाना चाहिये।

[2] देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १ २)।

पात्र-चीवर ग्रहण करते थे। न पीनेके (पानी) के लिये पूछते थे। (अपनेसे) वृद्ध आगन्तुक भिक्षुका अभिवादन नही करते थे। न शय्या-आसन प्रज्ञापन (=बिछाना) करते थे। जो अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०।०—

"तो भिक्षुओ! आवासिकोंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आवासिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ! यदि आगन्तुक भिक्षु अपनेसे वृद्ध हो, तो आसन प्रदान करना चाहिये, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक पास रखना चाहिये। अगवानी करके पात्र-चीवर ग्रहण करना चाहिये। पीनेके (पानी)के लिये पूछना चाहिये। यदि सकता हो (बीमार आदि न हो) तो जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आगन्तुक भिक्षु वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये। गोचर०, अ-गोचर०, शैक्ष-सम्मत कुलोंको०, ०[1] संघका कतिक-संस्थान (=स्थानीय नियमकी बातें) बतलानी चाहिये—किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय जाना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। (अधिक समयसे) वास किया है या वास नही किया है—यह बतलाना चाहिये। यदि आगन्तुक (भिक्षु) नवक (=नवही) है, तो अभिवादन करने देना चाहिये, शयन-आसन बतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। ०[1] किस समय जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आवासिक भिक्षुओंके व्रत हैं, ०।" 2

(३) गमिक[2] के व्रत

उस समय गमिक भिक्षु लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको बिना सँभाले, खिळकी, दर्वाजेको खोले ही छोळ शयन-आसनके लिये पूछे (=सँभलवाये) बिना चले जाते थे। लकळी-मिट्टीका वर्तन नष्ट हो जाता था। शयन-आसन अ-रक्षित होता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०।०।—

"तो भिक्षुओ! गमिक[2] भिक्षुओंके व्रतको बतलाता हूँ, जैसे कि गमिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ! गमिक भिक्षुको लकळी-मिट्टीके वर्तनको सँभालकर, खिळकी दर्वाजोंको बन्दकर शयन-आसन के लिये पूछकर जाना चाहिये। यदि भिक्षु न हो तो श्रामणेरसे पूछना चाहिये, यदि श्रामणेर न हो तो आरामिक (=आरामके सेवक)को पूछना चाहिये। यदि भिक्षु हो, न श्रामणेर ही, न आरामिक ही, तो चार पत्थरोंपर चारपाईको बिछाकर, चारपाईपर, चारपाई, चौकीपर चौकी रखकर ऊपर शयन-आसनको जमा करे। लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको सँभालकर, खिळकी-दर्वाजोंको बन्द करके जाना चाहिये। यदि विहार चूता है, तो समर्थ होनेपर छा देना चाहिये, या (उसके लिये) यत्न करना चाहिये —जिसमें विहार छा जाये। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, यदि न हो सके, तो जिस स्थानपर न चूता हो वहाँ चार पत्थरोंपर चारपाईको बिछाकर,० खिळकी-दर्वाजोंको बन्द करके जाना चाहिये। यदि सारा ही विहार चूता हो, तो यदि समर्थ हो, तो शयन-आसनको गाँवमें ले जाना चाहिये, या प्रयत्न करना चाहिये, जिसमें कि शयन-आसन गाँवमें चला जाये। यदि ऐसा करनेको मिले तो ठीक, न मिले, तो चार पत्थरो पर चारपाईको बिछाकर०[3] लकळी-मिट्टीके वर्तनोंको सँभाल, घास या पत्तेसे ढाँककर जाना चाहिये, जिसमें कि कुछ भाग तो बच जाये। भिक्षुओ! यह गमिक भिक्षुओंका व्रत है, ०।"

---

[1] देखो पृष्ठ ४९८।
[2] यात्रापर जानेवाला।
[3] देखो ऊपर।

§२—भोजन-सम्बन्धी नियम

(१) भोजनका अनुमोदन

उस समय भिक्षु भोजनके समय (दानका) अनुमोदन न करते थे। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण भोजनके समय अनुमोदन नहीं करते। भिक्षुओंने सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनके समय अनुमोदन करनेकी।

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भोजनके समय अनुमोदन करना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही। —

(२) भोजनके समयके नियम

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको अनुमोदन करनेकी।

उस समय एक पूग (=बनियोंका समुदाय)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् सारिपुत्र संघ-स्थविर (=संघमें सबसे पुराने भिक्षु) थे। भिक्षु—स्थविर भिक्षुको भगवान्‌ने भोजनके समय अनुमोदन करनेकी अनुमति दी है—(सोच) आयुष्मान् सारिपुत्रको अकेले छोळ चले गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उन मनुष्योंका (दानका) अनुमोदनकर पीछे अकेले ही चले। भगवान्‌ने आयुष्मान् सारिपुत्रको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

सारिपुत्र! भोजन ठीक तो हुआ?

"भोजन ठीक हुआ भन्ते! मुझे भन्ते! अकेले छोळ भिक्षु चले आये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनकी पाँतमें चार पाँच (उपसम्पदाके क्रमसे) स्थविरों अनुस्थविरोंको (अनुमोदन कर लेने तक) प्रतीक्षा करनेकी।

उस समय एक स्थविरने पाखानेकी इच्छा रहते प्रतीक्षा की। पाखानेको रोकनेसे मूर्छित हो गिर पळा। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काम होनेपर पासवाले भिक्षुको पूछकर जानेकी।"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना ठीकसे पहिने-ढँके भोजनकी पाँतमें जाते थे। स्थविर भिक्षुओंको भी धक्का देकर बैठते थे नये भिक्षुओंको भी आसनसे रोकते थे। संघाटीको भी बिछाकर बैठते थे। [illegible] भिक्षु [illegible]।—

तो भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ—जैसे कि भिक्षुओंको भोजनकी पाँतमें बर्तना चाहिये।

यदि आराममें कालकी सूचना आई हो तो तीन मंडलोंको ढाँकते[1] परिमंडल (चीवर) पहिन कमरबन्द (=काय-बन्धन) बाँध चौपेत (=समुच्चय) कर संघाटीको पहिन मुद्धी दे पात्रको ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये। आगे बढ़कर स्थविर भिक्षुओंके आगे आगे नहीं जाना चाहिये।

(नियम १) भली भाँति सुप्रतिच्छन्न (=अच्छी तरह ढँके शरीरवाला) होकर जाना

[1]भिक्खु-पातिमोक्ख §७।२ (पृष्ठ ३३)।
देखो भिक्खुनी-पातिमोक्ख §७।१ (पृष्ठ ७४)।

चाहिये, खूब संयम (=मुसवर)के साथ०, नीची निगाह करके०, शरीरको उतान नही करके घरके भीतर जाना चाहिये, उज्जग्घिका (=हँसी, मज़ाक)के साथ नही०, चुपचाप घरमे जाना चाहिये, देह भाँजते नही०, बाँह भाँजते नही, शिर हिलाते नही०, खम्भेकी तरह खळे नही०, (देहको) अवगुंठित (किये) नही०, निहुरे नही, (गृहस्थके) घरके भीतर जाना चाहिये। सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर बैठना चाहिये, खूब संयमके साथ०, नीची निगाह करके, ०, अवगुण्ठित नही०, पलथी मारकर नही०, स्थविर भिक्षुओको धक्का देकर नही०, नये भिक्षुओको आसनसे हटाकर नही बैठना चाहिये, संघाटी बिछाकर नही बैठना चाहिये, पानी लेते वक्त दोनो हाथसे पात्र पकळ पानीको लेना चाहिये। नवाकर अच्छी तरह बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेकनेका वर्तन (=उदक-प्रतिग्राहक) हो, तो नवाकर (धोये पानी)को उदक-प्रतिग्राहकमे डाल देना चाहिये, उदक-प्रतिग्राहकको नही भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक नही हो तो नीचे करके भूमिपर पानी डालना चाहिये, जिसमे कि पासके भिक्षुओपर पानीका छींटा न पळे, संघाटीपर पानीका छींटा न पळे। भात परोसते वक्त दोनो हाथोंमे पात्रको पकळकर भातको लेना चाहिये, सूप(=तेमन)के लिये जगह बनानी चाहिये। यदि घी, तेल या उत्तरि-भंग (=पीछेका स्वादिष्ट भोजन) हो तो स्थविरको कहना चाहिये—सबको बराबर दीजिये। सत्कार-पूर्वक भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये। मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको०। समतल (रक्खे) भिक्षान्नको०। जब तक सबको भात नही पहुँच जाये, स्थविरको नही खाना चाहिये। सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते०। एक ओरसे०। मात्राके अनुसार सूपके साथ०।

"पिंड[1] (=स्तूप=पुरिया)को मीज मीजकर नही खाना चाहिये।
अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (=व्यंजन)को भातसे नही ढाँकना चाहिये।
नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नही भोजन करना चाहिये।
न अवज्ञा (=उज्झान)के ख्यालसे दूसरेके पात्रको देखना चाहिये।
न बहुत बळा ग्रास बनाना चाहिये।
ग्रासको गोल बनाना चाहिये।
ग्रासको बिना मुख तक लाये मुखके द्वारको नही खोलना चाहिये।
भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें नही डालना चाहिये।
ग्रास पळे मुखसे बात नही करनी चाहिये।
ग्रासको उछाल उछालकर नही खाना चाहिये।
ग्रासको काट काटकर नही खाना चाहिये।
गाल फुला फुलाकर नही खाना चाहिये।
हाथ झाळ झाळकर नही खाना चाहिये।
जूठ बिखेर बिखेरकर नही खाना चाहिये।
जीभ निकाल निकालकर नही खाना चाहिये।
चप चपकर नही खाना चाहिये।
सुळसुळाकर नही खाना चाहिये।
हाथ चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

[1] मिलाओ भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

§२—भोजन-सम्बन्धी नियम

(१) भोजनका अनुमोदन

उस समय भिक्षु भोजनके समय (दानका) अनुमोदन न करते थे। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण भोजनके समय अनुमोदन नहीं करते। भिक्षुओंने सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनके समय अनुमोदन करनेकी।

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भोजनके समय अनुमोदन करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही। —

(२) भोजनके समयके नियम

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको अनुमोदन करनेकी।

उस समय एक पूग (=बनियोंका समुदाय)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् सारिपुत्र संघ-स्थविर (=संघमें सबसे पुराने भिक्षु) थे। भिक्षु—स्थविर भिक्षुको भगवान्ने भोजनके समय अनुमोदन करनेकी अनुमति दी है—(सोच) आयुष्मान् सारिपुत्रको अकेले छोळ चले गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उन मनुष्योंसे (दानका) अनुमोदनकर पीछे अकेले ही चले। भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

'सारिपुत्र! भोजन ठीक तो हुआ?

'भोजन ठीक हुआ भन्ते! मुझे भन्ते! अकेले छोळ भिक्षु चले आये।

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनकी पाँतिमें चार पाँच (उपसंपदाके क्रमसे) स्थविरों अनु-स्थविरोंको (अनुमोदन कर लेने तक) प्रतीक्षा करनेकी।

उस समय एक स्थविरने पाखानेकी इच्छा रहते प्रतीक्षा की। पाखानेको वह रोकते मूर्छित हो गिर पळा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काम होनेपर अपने पासवाले भिक्षुको पूछकर जानेकी।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना ठीकसे पहिने-ढँके भोजनकी पाँतमें जाते थे। स्थविर भिक्षुओंको भी धक्का देकर बैठते थे। नवक भिक्षुओंको भी आसनसे रोकते थे। संघाटीको भी बिछाकर बैठते थे। अल्पेच्छ भिक्षु ।—

"तो भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ—जैसे कि भिक्षुओंको भोजनकी पाँतमें बर्तना चाहिये।

"यदि आराममें कालकी सूचना आई हो तो तीनों मंडलोंको ढाँकते[1] परिमंडल[2] (चीवर) पहिन कमरबंद (=काय-बन्धन)को बाँध चौपेत (=चौगुन)कर संघाटीको पहिन मुद्धी दे पात्र ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये। आगे बढ़कर स्थविर भिक्षुओंके आगे आगे नहीं जाना चाहिये।

(गृहस्थोंके)[1] घरके भीतर सुप्रतिच्छन्न (=अच्छी तरह ढँके शरीरवाला) होकर जाना

---

[1]भिक्खु पातिमोक्ख §७।२ (पृष्ठ ११)।

[2]देखो भिक्खु-पातिमोक्ख §७।१ (पृष्ठ १४)।

चाहिये, खूब सयम (=गुमवर) के साथ०, नीची निगाह करके०, शरीरको उनान नहीं करके घरके भीतर जाना चाहिये, उज्जग्घिका (=हँसी, मजाक) के साथ नही०, चुपचाप घरमे जाना चाहिये, देह भाँजते नही०, बाँह भाँजते नही, सिर हिलाते नही०, खम्भेकी तरह खळे नही०, (देहको) अवगुंठित (किये) नही०, निहुरे नही, (गृहस्थके) घरके भीतर जाना चाहिये। सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर बैठना चाहिये, खूब सयमके साथ०, नीची निगाह करके, ०, अवगुण्ठित नही०, पलथी मारकर नही०, स्थविर भिक्षुओको धक्का देकर नही० नये भिक्षुओको आसनसे हटाकर नही बैठना चाहिये, सघाटी बिछाकर नही बैठना चाहिये, पानी लेते वक्त दोनो हाथसे पात्र पकळ पानीको लेना चाहिये। नवाकर अच्छी तरह बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका बर्तन (=उदक-प्रतिगाहक) हो, तो नवाकर (धोये पानी) को उदक-प्रतिग्राहकमे डाल देना चाहिये, उदक-प्रतिग्राहकको नही भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिगाहक नही हो तो नीचे करके भूमिपर पानी डालना चाहिये, जिसमे कि पासके भिक्षुओपर पानीका छींटा न पळे, सघाटीपर पानीका छींटा न पळे। भात परोसते वक्त दोनो हाथोमे पात्रको पकळकर भातको लेना चाहिये, सूप (=तेमन) के लिये जगह बनानी चाहिये। यदि घी, तेल या उत्तरिभग (=पीछेका स्वादिष्ट भोजन) हो तो स्थविरको कहना चाहिये—सबको बराबर दीजिये। सत्कारपूर्वक भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये। मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको०। समतल (रक्खे) भिक्षान्नको०। जब तक सबको भात नही पहुँच जाये, स्थविरको नही खाना चाहिये। सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते०। एक ओरसे०। मात्राके अनुसार सूपके साथ०।

"पिंड[1] (=स्तूप=पुरिया) को मीज मीजकर नही खाना चाहिये।
अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (=व्यजन) को भातमे नही ढाँकना चाहिये।
नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नही भोजन करना चाहिये।
न अवज्ञा (=उत्क्षान) के ख्यालसे दूसरेके पात्रको देखना चाहिये।
न बहुत बळा ग्रास बनाना चाहिये।
ग्रासको गोल बनाना चाहिये।
ग्रासको बिना मुख तक लाये मुखके द्वारको नही खोलना चाहिये।
भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमे नही डालना चाहिये।
ग्रास पळे मुखसे बात नही करनी चाहिये।
ग्रासको उछाल उछालकर नही खाना चाहिये।
ग्रासको काट काटकर नही खाना चाहिये।
गाल फुला फुलाकर नही खाना चाहिये।
हाथ झाळ झाळकर नही खाना चाहिये।
जूठ बिखेर बिखेरकर नही खाना चाहिये।
जीभ निकाल निकालकर नही खाना चाहिये।
चप चपकर नही खाना चाहिये।
सुळसुळाकर नही खाना चाहिये।
हाथ चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

---

[1] मिलाओ भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

§२—भोजन-सम्बन्धी नियम

(१) भोजनका अनुमोदन

उस समय भिक्षु भोजनके समय (दानका) अनुमोदन न करते थे। लोग हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण भोजनके समय अनुमोदन नहीं करते। भिक्षुओंने सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक-कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनके समय अनुमोदन करनेकी।"

तब उन भिक्षुओंको यह हुआ—किस भोजनके समय अनुमोदन करना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही।—

( ) भोजनके समयके नियम

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको अनुमोदन करनेकी।

उस समय एक पूग (=कमिटी [illegible] समुदाय)ने संघको भोज दिया था। आयुष्मान् सारिपुत्र संघ-स्थविर (=सबसे बड़े पुराने भिक्षु) थे। भिक्षु—स्थविर भिक्षुको भगवान्‌ने भोजनके समय अनुमोदन करनेकी अनुमति दी है—(सोच) आयुष्मान् सारिपुत्रको अकेले छोड़ चले गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उन मनुष्योंसे (दानका) अनुमोदनकर पीछे अकेले ही चले। भगवान्‌ने आयुष्मान् सारिपुत्रको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

सारिपुत्र! भोजन ठीक तो हुआ?

"भोजन ठीक हुआ भन्ते! किन्तु भन्ते! अकेला छोड़ भिक्षु चले आये।

तब भगवान्‌ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भोजनकी पाँतमें चार पाँच (उपसंपदाके क्रमसे) स्थविरों अनुस्थविरोंको (अनुमोदन कर चुकने तक) प्रतीक्षा करनेकी।

उस समय एक स्थविरने पाखानेकी इच्छा रहते प्रतीक्षा की। पाखानेको रोकनेसे मूर्छित हो गिर पड़ा। भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काम होनेपर उसके बादवाले भिक्षुको पूछकर जानेकी।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना ठीकसे पहिने-ढँके भोजनकी पाँतमें जाते थे। स्थविर भिक्षुओंको भी धक्का देकर बैठते थे, नये भिक्षुओंको भी आसनसे रोकते थे। संघाटीको भी बिछाकर बैठते थे। अल्पेच्छ भिक्षु [illegible]।—

"तो भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंके वास्ते नियम करता हूँ—जैसे कि भिक्षुओंको भोजनकी पाँतमें जाना चाहिये।

यदि आराममें कालकी सूचना आई हो तो तीन मंडलोंको ढाँकते[1] परिमंडल[2] (चारों ओर) ठीक पहन कमरबंद (=काय-बंधन) बाँध चौपेत (=लपेट)कर संघाटीको पहिन मुद्धी दे धोकर पात्र ले ठीकसे—ऐसा अच्छी तरह गाँवमें प्रवेश करना चाहिये। आगे बढ़कर स्थविर भिक्षुओंके आगे आगे नहीं जाना चाहिये।

([illegible])[2] घरमें भीतर सुप्रतिच्छन्न (=अच्छी तरह ढँके शरीरवाला) होकर जाना

[1]भिक्खु-पातिमोक्ख §७।१ (पृष्ठ ३३)।

[2]देखो भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

चाहिये, खूब संयम (=सुसंवृत)के साथ०, नीची निगाह करके०, शरीरको उतान नहीं करके घरके भीतर जाना चाहिये, उज्जग्घिका (=हँसी, मजाक)के साथ नहीं०, चुपचाप घरमें जाना चाहिये, देह भाँजते नहीं०, बाँह भाँजते नहीं सिर हिलाते नहीं०, खम्भेकी तरह खळे नहीं०, (देहको) अवगुंठित (किये) नहीं०, निहुरे नहीं, (गृहस्थोंके) घरके भीतर जाना चाहिये। सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर बैठना चाहिये, खूब संयमके साथ०, नीची निगाह करके, ०, अवगुण्ठित नहीं०, पल्थी मारकर नहीं०, स्थविर भिक्षुओंको धक्का देकर नहीं०, नये भिक्षुओंको आसनसे हटाकर नहीं बैठना चाहिये, संघाटी बिछाकर नहीं बैठना चाहिये, पानी लेते वक्त दोनों हाथसे पात्र पकळ पानीको लेना चाहिये। नवाकर अच्छी तरह बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका बर्तन (=उदक-प्रतिग्राहक) हो, तो नवाकर (धोये पानी)को उदक-प्रतिग्राहकमें डाल देना चाहिये, उदक-प्रतिग्राहकको नहीं भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक नहीं हो तो नीचे करके भूमिपर पानी डालना चाहिये, जिसमें कि पासके भिक्षुओंपर पानीका छींटा न पळे, संघाटीपर पानीका छींटा न पळे। भात परोसते वक्त दोनों हाथोंसे पात्रको पकळकर भातको लेना चाहिये, सूप (=तेमन) के लिये जगह बनानी चाहिये। यदि घी, तेल या उत्तरिभंग (=पीछेका स्वादिष्ट भोजन) हो तो स्थविरको कहना चाहिये—सबको बराबर दीजिये। सत्कारपूर्वक भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये। मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको०। समतल (रक्खे) भिक्षान्नको०। जब तक सबको भात नहीं पहुँच जाये, स्थविरको नहीं खाना चाहिये। सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते०। एक ओरसे०। मात्राके अनुसार सूपके साथ० ।

"पिंड[1] (=स्तूप=पुरिया)को मीज मीजकर नहीं खाना चाहिये।
अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (=व्यंजन)को भातसे नहीं ढाँकना चाहिये।
नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नहीं भोजन करना चाहिये।
न अवज्ञा (=उज्झान)के ख्यालसे दूसरेके पात्रको देखना चाहिये।
न बहुत बळा ग्रास बनाना चाहिये।
ग्रासको गोल बनाना चाहिये।
ग्रासको बिना मुख तक लाये मुखके द्वारको नहीं खोलना चाहिये।
भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमें नहीं डालना चाहिये ।
ग्रास पळे मुखसे बात नहीं करनी चाहिये ।
ग्रासको उछाल उछालकर नहीं खाना चाहिये।
ग्रासको काट काटकर नहीं खाना चाहिये।
गाल फुला फुलाकर नहीं खाना चाहिये।
हाथ झाळ झाळकर नहीं खाना चाहिये ।
जूठ बिखेर बिखेरकर नहीं खाना चाहिये ।
जीभ निकाल निकालकर नहीं खाना चाहिये।
चप चपकर नहीं खाना चाहिये।
सुळसुळाकर नहीं खाना चाहिये।
हाथ चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।

---

[1] मिलाओ भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

पात्र चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।
ओठ चाट चाटकर नहीं खाना चाहिये।
जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन नहीं पकळना चाहिये।
जब तक सब न खा चुके (तबतक) स्थविरको पानी नहीं लेना चाहिये।
पानी दिये जाते वक्त दोनों हाथोंसे पात्रको पकळकर पानी लेना चाहिये।

'नवा कर बिना बैठे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका बर्तन हो तो नवाकर उसे बर्तनमें डाल देना चाहिये। उदक प्रतिग्राहक (=पानी छोळनेके बर्तन)को नहीं भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक न हो तो नवाकर भूमिपर पानी डाल देना चाहिये जिसमें कि पासके भिक्षुओंपर पानीका छींटा न पळे। संघाटीपर पानीका छींटा न पळे।

'जूठे सहित पात्रके धोवनको घरके भीतर नहीं फेंकना चाहिये।

लौटते वक्त नवक भिक्षुओंको पहिले लौटना चाहिये स्थविर भिक्षुओंको पीछे।

सुप्रतिच्छन्न हो (गृहस्थके) घरमें जाना चाहिये। [१]

शिकुळे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

'भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओंका यह व्रत है, जैसे कि भिक्षुओंको भोजनके समय बर्तना चाहिये। [१]

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

६२—भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य

(१) भिक्षाचारी (=पिंडचारिक)के व्रत

उस समय पिंडचारिक[२] भिक्षु बिना ठीकसे पहिने—ढँके बुरी सूरतमें पिंडचार(=भिक्षाचार) करते थे। बिना जाने भी घरके भीतर प्रवेश करते थे। बिना जाने निकलते थे। बळी जल्दी जल्दी घरमें प्रवेश करते थे बळी जल्दी (घरसे) निकलते थे। बहुत दूर भी खळे होते थे बहुत समीप भी खळे होते थे। बहुत देर तक (भिक्षाके लिये द्वारपर) खळे रहते थे बहुत जल्दी भी लौट पळते थे। एक पिंडचारिक पुरुषने बिना जाने घरमें भीतर प्रवेश किया। द्वार समझते हुए वह एक कमरेमें चला गया। उस कमरेमें (कोई) स्त्री नगी उत्तान लेटी हुई थी। उस भिक्षुने उस स्त्रीको नगे उत्तान लेटे देखा। देखकर—यह द्वार नहीं है कमरा है—(सोच) उस कमरेसे निकल आया। उस स्त्रीके पतिने उसे नगे उत्तान लेटी देखा। इस भिक्षुने मेरी स्त्रीको दूषित किया—(सोच) उसने उस भिक्षुको पकळकर पीटा। तब उस स्त्री ने (मारकी) आवाजसे जागकर उस पुरुषसे यह कहा—

"किसलिये आर्य! तुम इस भिक्षुको पीटते हो?

"इस भिक्षुने तुझे दूषित किया है।

"आर्य! इस भिक्षुने मुझे दूषित नहीं किया। इस भिक्षुने कुछ नहीं किया। —(कह) उस भिक्षुको छुळवा दिया।

तब उस भिक्षुने आराममें जाकर यह बात भिक्षुओंसे कही।

भगवान्‌से भिक्षु। ।—

---

[१] देखो पिछले पृष्ठ (५) पर।
[२] भिक्षाके लिये गाँवमें घूमनेवाला।

"तो भिक्षुओ ! पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि पिंडचारिक भिक्षुओको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! पिंडचारिक भिक्षुको ग्राममे प्रवेश करते समय तीनो मंडलोको ढाँकते परिमंडल (चीवर) पहिन, कमरबन्दको बाँध चौपेतकर संघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीक से—विना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये०[1]।

"निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये ।

"घरमें प्रवेश करते समय—इससे प्रवेश करूँगा, इससे निकलूँगा—यह सोच लेना चाहिये। बहुत जल्दीमें नही प्रवेश करना चाहिये ।

"बहुत जल्दीमें नही निकलना चाहिये।

न बहुत दूर खळा होना चाहिये।

न बहुत समीप खळा होना चाहिये ।

न बहुत देर तक खळा रहना चाहिये ।

न बहुत जल्द लौट जाना चाहिये ।

"खळे रहते समय जानना चाहिये, कि (घरवाली) भिक्षा देना चाहती है, या नही देना चाहती। यदि (हाथका) काम छोळ देती है, आसनसे उठती है, कलछी पकळती है, वर्तन पकळती या रखती है, तो देना चाहती सी है (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा देते वक्त बाये हाथसे संघाटी हटाकर, दाहिने हाथसे पात्रको निकाल, दोनो हाथोसे पात्रको पकळ, भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

"भिक्षा देनेवालीके मुँहकी ओर नही देखना चाहिये।

"ख्याल करना चाहिये, सूप (=दाल)को देना चाहती है या नही देना चाहती। यदि कलछी पकळती है, वर्तनको पकळती या रखती है, तो देना चाहती है, (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा दे दी जानेपर संघाटीसे पात्रको ढाँक, अच्छी तरह—विना जल्दीके लौटना चाहिये।

"सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर जाना चाहिये। ०3

निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पहिले लौटे, उसे आसन बिछाना चाहिये, पादोदक पाद-पीट, पाद-कठलिक रखने चाहिये। कूळे (=अवक्कार)की थाली धोकर रखना चाहिये। पीनेके और धोनेके (पानी) को रखना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पीछे लौटे, (वह) भोजन (मेंसे जो) बचा हो, यदि चाहे, तो खाये, यदि नही चाहे तो (ऐसे) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो छोळ दे, या प्राणीरहित पानीमें छोळ दे। (वह) आसनोको समेटे। पीनेके पानीको समेटे। कूळेकी थाली धोकर समेटे। खानेकी जगहपर झाळू दे। पानीके घळे, पीनेके घळे, या पाखानेके घळेमें जिसे खाली देखे, उसे (भरकर) रख दे। यदि वह उससे होने लायक नही हो, तो हाथके इशारेसे, हाथके संकेतसे दूसरेको बुलाकर, पानीके घळेको (भरकर) रखवा दे। उसके लिये वाग्-युद्ध नही करना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रत है, ०।" 4

(२) आरण्यकके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु अरण्यमें विहार करते थे। वह न पीनेके या धोनेके (पानी)को उपस्थित रखते थे, न आगको उपस्थित रखते थे। न अ र णी के साथ०। न नक्षत्रो (=तारो)के मार्गको जानते

---

[1]देखो पीछे ८§२।२ (पृष्ठ ५००)।

पात्र चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

ओठ चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन नही पकळना चाहिये।

जब तक सब न खा चुके (सबके) स्थविरको पानी नही लेना चाहिये।

पानी पिये जाते वक्त दोनो हाथोसे पात्रको पकळकर पानी लेना चाहिये।

नवा कर बिना जैसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेंकनेका बर्तन हो तो नवाकर उसे बर्तनमें डाल देना चाहिये। उदक प्रतिग्राहक (=पानी छोळनेके बर्तन)को नही भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक न हो तो नवाकर भूमिपर पानी डाल देना चाहिये जिसमें कि पासके भिक्षुओपर पानीका छीटा न पळे। संघाटीपर पानीका छीटा न पळे।

जूठे सहित पात्रके धोवनको घरके भीतर नही फेंकना चाहिये।

लौटते वक्त नवक भिक्षुओको पहिले लौटना चाहिये स्थविर भिक्षुओको पीछे।

सुप्रतिच्छन्न हो (गृहस्थके) घरमें जाना चाहिये। [1]

निहुर नही घरके भीतर जाना चाहिये।

'भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओका यह व्रत है जैसे कि भिक्षुओको भोजनके समय बर्तना चाहिये। [1]

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§२—भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य

(१) भिक्षाचारी (=पिंडचारिक)के व्रत

उस समय पिंडचारिक[2] भिक्षु बिना ठीकसे पहिने—ढँके बुरी सूरतमें पिंडचार(=भिक्षाचार) करते थे। बिना जाने भी घरके भीतर प्रवेश करते थे। बिना जाने निकलते थे। बळी जल्दी जल्दी घरमें प्रवेश करते थे बळी जल्दी (घरसे) निकलते थे। बहुत दूर भी खळे होते थे बहुत समीप भी खळे होते थे। बहुत देर तक (भिक्षाके लिये द्वारपर) खळे रहते थे बहुत जल्दी भी लौट पळते थे। एक पिंडचारिक पुरुषने बिना जाने घरके भीतर प्रवेश किया। द्वार समझते हुए वह एक कमरे में चला गया। उस कमरेमें (कोई) स्त्री नगी उत्तान लेटी हुई थी। उस भिक्षुने उस स्त्रीको नगे उत्तान लेटे देखा। देखकर—यह द्वार नही है कमरा है—(सोच) उस कमरेसे निकल आया। उस स्त्रीके पतिने उसे नगी उत्तान लेटी देखा। इस भिक्षुने मेरी स्त्रीको दूषित किया—(सोच) उसने उस भिक्षुको पकळकर पीटा। तब उस स्त्री ने (मारकी) आवाजसे जागकर उस पुरुषसे यह कहा—

किसलिये आर्य! तुम इस भिक्षुको पीटते हो?

"इस भिक्षुने तुझे दूषित किया है।

"आर्य! इस भिक्षुने मुझे दूषित नही किया। इस भिक्षुने कुछ नही किया। —(कह) उस भिक्षुको छुळवा दिया।

तब उस भिक्षुने आराममें जाकर यह बात भिक्षुओसे कही।

अल्पेच्छ भिक्षु ।—

---

[1]देखो पिछले पृष्ठ (५) पर।

[2]भिक्षाके लिये गाँवमें घूमनेवाला।

"तो भिक्षुओ! पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि पिंडचारिक भिक्षुओंको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ! पिंडचारिक भिक्षुको ग्राममें प्रवेश करते समय तीनो मडलोको ढाँकते परिमडल (चीवर) पहिन, कमरबन्दको बाँध चौपेतकर सघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीक से—बिना जल्दीके गाँवमे प्रवेश करना चाहिये०[1]।

"निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये ।

"घरमें प्रवेश करते समय—इससे प्रवेश करूँगा, इससे निकलूँगा—यह सोच लेना चाहिये। बहुत जल्दीमें नही प्रवेश करना चाहिये ।

"बहुत जल्दीमें नही निकलना चाहिये।

न बहुत दूर खळा होना चाहिये।

न बहुत समीप खळा होना चाहिये ।

न बहुत देर तक खळा रहना चाहिये ।

न बहुत जल्द लौट जाना चाहिये ।

"खळे रहते समय जानना चाहिये, कि (घरवाली) भिक्षा देना चाहती है, या नही देना चाहती। यदि (हाथका) काम छोळ देती है, आसनसे उठती है, कलछी पकळती है, वर्तन पकळती या रखती है, तो देना चाहती सी है (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा देने वक्त बायें हाथसे सघाटी हटाकर, दाहिने हाथसे पात्रको निकाल, दोनो हाथोंसे पात्रको पकळ, भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

"भिक्षा देनेवालीके मुँहकी ओर नही देखना चाहिये।

"ख्याल करना चाहिये, सूप (=दाल)को देना चाहती है या नही देना चाहती। यदि कलछी पकळती है, वर्तनको पकळती या रखती है, तो देना चाहती है, (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा दे दी जानेपर सघाटीसे पात्रको ढाँक, अच्छी तरह—बिना जल्दीके लौटना चाहिये।

"सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर जाना चाहिये। ०3

निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पहिले लौटे, उसे आसन बिछाना चाहिये, पादोदक पाद-पीट, पाद-कठलिक रखने चाहिये। कूळे (=अवक्कार)की थाली धोकर रखना चाहिये। पीनेके और धोनेके (पानी) को रखना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पीछे लौटे, (वह) भोजन (मेंसे जो) बचा हो, यदि चाहे, तो खाये, यदि नही चाहे तो (ऐसे) स्थानमें, जहाँ हरियाली न हो छोळ दे, या प्राणीरहित पानीमें छोळ दे। (वह) आसनोको समेटे। पीनेके पानीको समेटे। कूळेकी थाली धोकर समेटे। खानेकी जगहपर झाळू दे। पानीके घळे, पीनेके घळे, या पाखानेके घळेमे जिसे खाली देखे, उसे (भरकर) रख दे। यदि वह उससे होने लायक नही हो, तो हाथके इशारेसे, हाथके सकेतसे दूसरेको बुलाकर, पानीके घळेको (भरकर) रखवा दे। उसके लिये वाग्-युद्ध नही करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह पिंडचारिक भिक्षुओंके व्रत है, ०।" 4

(२) आरण्यकके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु अरण्यमें विहार करते थे। वह न पीनेके या धोनेके (पानी)को उपस्थित रखते थे, न आगको उपस्थित रखते थे। न अ र णी के साथ०। न नक्षत्रो (=तारो)के मार्गको जानते

---

[1]देखो पीछे ८§२।२ (पृष्ठ ५००)।

थे। न दिशाओंको जानते थे। चोरोंने आकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते ! पीनेका (पानी) है ?

"नहीं है आवुसो !

'भन्ते ! धोनेका (पानी) है ?

'नहीं है आवुसो !

"भन्ते ! आग है ?

'नहीं है आवुसो !

"भन्ते ! अरणीका सामान है ?

'नहीं है आवुसो !

'भन्ते ! नक्षत्रोंका मार्ग (मालूम) है ?

'नहीं जानते आवुसो !

'भन्ते ! दिशा (मालूम) है ?

'नहीं जानते आवुसो !

भन्ते ! आज किस (तारे)से युक्त (चन्द्रमा) है ?

'नहीं जानते आवुसो !

तब उन चोरोंने—न इनके पास पीनेका (पानी) है न दिशाको जानते हैं—यह (सोच)—यह चोर हैं भिक्षु नहीं हैं—(कह) पीटकर चले गये।

तब उन भिक्षुओंने यह बात भिक्षुओंसे कही। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

'तो भिक्षुओ ! आरण्यक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ जैसे कि आरण्यक भिक्षुओंको बर्तना चाहिये।

'भिक्षुओ ! आरण्यक भिक्षुको समयसे उठकर पात्रको थैलेमें रख कंधेपर लटका चीवरको कंधेपर रख जूता पहिन लकड़ी-मिट्टीके बर्तन सँभाल खिड़की-दर्वाजोंको बन्दकर शयन-आसनसे उतरना चाहिये। अब गाँवमें प्रवेश करना है—(सोच) जूता उतार नीचेकर फटफटाकर थैलेमें रख कंधेसे लटका तीनों मंडलोंको ढाँकते परिमंडल (चीवर) पहिन कमरबन्दको बाँध चौपतकर संघाटीको पहिन मुद्धी दे धोकर पात्र ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये [1]।

'भिक्षुने नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

'गाँवसे निकलकर पात्रको थैलेमें रख कंधेसे लटका चीवरको समेट सिरपर कर जूता पहिन चलना चाहिये।

भिक्षुओ ! आरण्यक भिक्षुको पीने धोनेके पानीको रखना चाहिये। आग रखनी चाहिये। (सामान) सहित अरणी रखनी चाहिये। कत्तरदंड (=बैसाखी) रखना चाहिये। सभी या कुछ नक्षत्रोंके मार्ग सीखने चाहिये। [2] दिशाओंका जाननेवाला होना चाहिये।

'भिक्षुओ ! यह आरण्यक भिक्षुओंके व्रत हैं जैसे । ५

§४—आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम

(१) शयन-आसनके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें चीवर (सीने)का काम कर रहे थे। ष ड् व र्गी य भिक्षुओं

---

[1] देखो पीछे ८§२।२ पृष्ठ ५ ।   [2] देखो ऊपर।

ने आँगनमें इनके ऊपर शय्या-आसन फटफटाये। भिक्षु धूलसे भर गये। ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

'तो भिक्षुओ! भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका व्रत बतलाता हूँ जैसाकि भिक्षुओंको शयन-आसनके सम्बन्धमें बर्तना चाहिये।

"जिस विहारमें भिक्षु वास करता है, यदि वह विहार साफ न हो, और समर्थ हो तो साफ करना चाहिये। विहारकी सफाई करते वक्त पहिले पात्र-चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये०[1] यदि पासानेकी मटकीमें जल न हो०।

"यदि वृद्धके साथ एक विहारमें रहना हो, तो वृद्धसे बिना पूछे उद्देश नहीं (=प्रस्ताव) देना चाहिये, परिपृच्छा (=प्रश्न पूछना) नहीं देनी चाहिये, स्वाध्याय (=दूसरोंको देने स्वर से पाठ) नहीं करना चाहिये, न धर्म-भाषण करना चाहिये, न दीपक जलाना चाहिये, न दीपक बुझाना चाहिये, न खिळकी खोलनी चाहिये, न खिळकी बन्द करनी चाहिये। यदि वृद्धके साथ एकही चंक्रम (=टहलनेके स्थान) पर टहलता हो तो जिधर वृद्ध टहलता हो, उधरसे घूम जाना चाहिये। वृद्धकी संघाटीके कोनेको नहीं रगळना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंके शयन-आसनका व्रत है, जैसे०।" 6

(२) जन्ताघर[2]के व्रत

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ठ रखकर आग डाल द्वार बन्दकर बाहर बैठते थे। भिक्षु गर्मीसे तप्त हो (निकलनेके लिये) द्वार न पा मूर्छित हो गिर पळते थे। ०अल्पेच्छ०भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ठ रखकर आग न डालनी चाहिये, जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।

"भिक्षुओ! द्वार बन्दकर बाहर न बैठना चाहिये, जो बैठे उसे दुक्कटका दोष हो।

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओंका जन्ताघरका व्रत प्रज्ञापन करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओंको जन्ताघरमें बर्तना चाहिये।

"जो पहिले जन्ताघरमें जाय, यदि राख जमा हो, तो उसे फेंक देना चाहिये। यदि जन्ता-घर मैला हो, तो जन्ताघरमें झाळू देना चाहिये। यदि परिभंड (=गच) मैला हो, तो परिभंडमें झाळू देना चाहिये। यदि परिवेण (=आँगन) मैला हो०। यदि कोष्ठक (=कोठरी) मैला हो०। यदि जन्ताघर-शाला मैली हो०। (स्नानके) चूर्णको भिगोना चाहिये, मिट्टीको भिगोना चाहिये। पानीकी द्रोणी (=टब्)में पानी भरना चाहिये। जन्ताघरमें प्रवेश करना चाहिये। जताघरमें प्रवेश करते समय मुखको ले मिट्टी मल, आगे पीछे ढाँककर जताघरके पीठ (=चौकी या पीढा)पर जताघरमें प्रवेश करना चाहिये। स्थविर भिक्षुओंको धक्का देते नहीं बैठना चाहिये। (अपनेसे पीछे-पीछे नये भिक्षुओंको आसनसे नहीं उठाना चाहिये। यदि सकना हो, तो जताघरमें (नहाते) स्थविर भिक्षुओंका शरीर मलना चाहिये। जताघरसे निकलते समय, जताघरके पीठको लेकर आगे पीछे (वाले शरीरको) ढाँक कर निकलना चाहिये। यदि सके तो पानीमें भी स्थविर भिक्षुओंका शरीर मलना चाहिये। स्थविर भिक्षुओंके आगे नहाना चाहिये, ऊपर नहीं नहाना चाहिये। नहाकर निकलते वक्त भीतर उतरनेवालोंको रास्ता देना चाहिये। जो पीछे जताघरसे निकले, यदि जन्ताघरमें कीचळ हो गया हो, (तो वह उसे) धोये, मिट्टीसे द्रोणीको धोकर जन्ताघरके पीठको सभाल आगको बुझा

---

[1]देखो महावग्ग पृष्ठ १०१–२। [2]स्नानगृह।

थे। न दिशाओंको जानते थे। चोरोंने आकर उन भिक्षुओंसे यह कहा—

'भन्ते! पीनेका (पानी) है?

"नहीं है आवुसो!

"भन्ते! धोनेका (पानी) है?

'नहीं है आवुसो!

'भन्ते! आग है?

'नहीं है आवुसो!

'भन्ते! अरणीका सामान है?

'नहीं है आवुसो!

'भन्ते! नक्षत्रोंका मार्ग (मालूम) है?

"नहीं जानते आवुसो!

'भन्ते! दिशा (मालूम) है?

'नहीं जानते आवुसो!

भन्ते! आज किस (तारे)से युक्त (चन्द्रमा) है?

'नहीं जानते आवुसो!

तब उन चोरोंने—न इनके पास पीनेका (पानी) है, न दिशाको जानते हैं—यह (सोच)—यह चोर हैं भिक्षु नहीं हैं—(कह) पीटकर चले गये।

तब उन भिक्षुओंने यह बात भिक्षुओंसे कही। उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुओंके व्रतका विधान करता हूँ जैसे कि आरण्यक भिक्षुओंको बर्तना चाहिये।

'भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको समयसे उठकर पात्रको थैलेमें रख कंधेपर लटका चीवरको कंधेपर रख जूता पहिन लकड़ी-मिट्टीके बर्तन सँभाल खिड़की-दर्वाजोंको बन्दकर शयन-आसनसे उतरना चाहिये। अब गाँवमें प्रवेश करता हूँ—(सोच) जूता उतार नीचेकर फटफटाकर थैलेमें रख कंधेसे लटका तीनों मंडलोंको ढाँकते परिमंडल (चीवर) पहिन कमरबन्दको बाँध चौपेतकर संघाटीको पहिन मुद्धी दे धोकर पात्र ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमें प्रवेश करना चाहिये [1]।

'निहुरे नहीं घरके भीतर जाना चाहिये।

'गाँवसे निकलकर पात्रको थैलेमें रख कंधेसे लटका चीवरको समेट सिरपर कर जूता पहिन चलना चाहिये।

'भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको पीने धोनेके पानीको रखना चाहिये। आग रखनी चाहिये। (सामान) सहित अरणी रखनी चाहिये। कत्तरदंड (=बैसाखी) रखना चाहिये। सभी या कुछ नक्षत्रोंके मार्ग सीखने चाहिये।[2] दिशाओंका जाननेवाला होना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आरण्यक भिक्षुओंका व्रत है, जैसे ।" ५

§४–आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम

(१) शयन-आसनके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमें चीवर (सीने)का काम कर रहे थे। ष ड् व र्गी य भिक्षुओं

[1]देखो पीछे ८§२।२ पृष्ठ ५ ।   [2]देखो ऊपर।

ने आँगनमें इधर उधर शय्या-आसन पटपटाये। भिक्षु धूलसे भर गये। ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

'तो भिक्षुओ! भिक्षुओंके लिये शयन-आसनका व्रत बतलाता हूँ, जैसे कि भिक्षुओंको शयन-आसनके संबंधमें वर्तना चाहिये।

'जिस विहारमें भिक्षु वास करता है, यदि वह विहार साफ न हो, और समर्थ हो तो साफ करना चाहिये। विहारकी सफाई करते वक्त पहिले पात्र-चीवर निकालकर एक ओर रखना चाहिये०[1] यदि पाखानेकी मटकीमें जल न हो०।

"यदि वृद्धोंके साथ एक विहारमें रहना हो, तो वृद्धसे बिना पूछे उद्देश नहीं (=प्रस्ताव) देना चाहिये, परिपृच्छा (=प्रश्न पूछना) नहीं देनी चाहिये, स्वाध्याय (=सूत्रोंका ऊँचे स्वरसे पाठ) नहीं करना चाहिये, न धर्म-भाषण करना चाहिये, न दीपक जलाना चाहिये, न दीपक बुझाना चाहिये, न खिळकी खोलनी चाहिये, न खिळकी बन्द करनी चाहिये। यदि वृद्धके साथ एक ही चक्रम (=टहलनेका स्थान) पर टहलना हो, तो जिधर वृद्ध टहलता हो, उधरसे घूम जाना चाहिये। वृद्धकी संघाटीके कोनेसे नहीं रगळना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंके शयन-आसनके व्रत हैं, जो०।' 6

(२) जन्ताघर[2]के व्रत

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ठ रख आग डाल द्वार बन्दकर बाहर बैठते थे। भिक्षु गर्मीसे तप्त हो (निकलनेके लिये) द्वार न पा मूर्छित हो गिर पळते थे। ०अल्पेच्छ०भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुओंके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमें बहुतसा काष्ठ रखकर आग न डालनी चाहिये, जो डाले उसे दुक्कटका दोष हो।

"भिक्षुओ! द्वार बन्दकर बाहर न बैठना चाहिये, जो बैठे उसे दुक्कटका दोष हो।

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओंको जन्ताघरका व्रत प्रज्ञापन करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओंको जन्ताघरमें वर्तना चाहिये।

"जो पहिले जन्ताघरमें जाये, यदि राख जमा हो, तो उसे फेंक देना चाहिये। यदि जन्ताघर मैला हो, तो जन्ताघरमें झाळू देना चाहिये। यदि परिभंड (=गच) मैला हो, तो परिभंडमें झाळू देना चाहिये। यदि परिवेण (=आँगन) मैला हो०। यदि कोष्ठक (=कोठरी) मैला हो०। यदि जन्ताघर-शाला मैली हो०। (स्नानके) चूर्णको भिगोना चाहिये, मिट्टीको भिगोना चाहिये। पानीकी द्रोणी (=टब्)में पानी भरना चाहिये। जन्ताघरमें प्रवेश करना चाहिये। जताघरमें प्रवेश करते समय मुखको लेप मिट्टी मल, आगे पीछे ढाँककर जताघरके पीठ (=चौकी या पीढा)पर जताघरमें प्रवेश करना चाहिये। स्थविर भिक्षुओंको धक्का देते नहीं बैठना चाहिये। (अपनेसे पीछे-पीछे नये भिक्षुओंको आसनसे नहीं उठाना चाहिये। यदि सकता हो, तो जताघरमें (नहाते) स्थविर भिक्षुओंका शरीर मलना चाहिये। जताघरसे निकलते समय, जताघरके पीठको लेकर आगे पीछे (वाले शरीरको) ढाँक कर निकलना चाहिये। यदि सके तो पानीमें भी स्थविर भिक्षुओंका शरीर मलना चाहिये। स्थविर भिक्षुओंके आगे नहाना चाहिये, ऊपर नहीं नहाना चाहिये। नहाकर निकलते वक्त भीतर उतरनेवालोंको रास्ता देना चाहिये। जो पीछे जताघरसे निकले, यदि जन्ताघरमें कीचळ हो गया हो, (तो वह उसे) धोये, मिट्टीसे द्रोणीको धोकर जन्ताघरके पीठको सभाल आगको बुझा

---

[1]देखो महावग्ग पृष्ठ १०१-२। [2]स्नानगृह।

चाहर बद कर जाना चाहिये।

भिक्षुओ ! यह भिक्षुओका शयनासन वत्त है जैसे कि ।" —

(३) वच्चकुटी-वत्त

उस समय ब्राह्मण जाति का एक भिक्षु शौच हो पानी नहीं लेना चाहता था (यह सोचकर कि) कौन इस बुरे (और) दुर्गन्धवाले को छुए। उसके शौच स्थानमें कीड़े पड़ गये थे। तब उस भिक्षुने भिक्षुओसे यह बात कही।

क्या तू आवुस ! शौच हो पानी नहीं लेता ?

हाँ आवुसो !

भगवान् ने कहा :—

भिक्षुओ ! शौच हो पानी रहते बिना पानी लिये नहीं रहना चाहिये। जो पानी न छुए उसे दुक्कटका दोष हो।

उस समय भिक्षु पाखानेमें बड़ापनके अनुसार शौच करते थे। नये (नव) भिक्षु पहिले ही आकर शौचके लिये इन्तिजार करते थे। पाखानेमें रोकते हुए ही गिर पड़ते थे। भगवान्से यह बात कही।—

सचमुच भिक्षुओ ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान् !

तब भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाखानेमें बड़ापनके अनुसार शौच नहीं करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ। भिक्षुओ ! आनेके क्रमसे शौच करनेकी।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जल्दी जल्दी पाखानेमें जाते थे। पाखाना करते (=उभिमजियमाना) भी। निःश्वास लेते भी शौच करते थे। दातुवन करते भी। पाखानेके शौच-कोष्ठ (=गमला) के बाहर भी। पेशाबके कोनार (=नाली) के बाहर भी पाखाना करते थे। पेशाबकी नालीमें भी थूकते थे। कठोर काष्ठसे भी साफ (=पोछना) करते थे। साफ करनेके काष्ठको गड्ढेमें डाल देते थे। जल्दी दौड़ाते (थोड़ा हुये) पाखानेसे निकलते थे। शौच होते ही निकलते थे। चपचप करते पानी छूते थे। पानी लेनेके गगरे (=कुंभिया) में भी पानी छोड़ देते थे। भगवान्ने कहा।—

"तो भिक्षुओ ! भिक्षुओके लिये वच्चकुटी (=पाखाने) का वत्त प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि भिक्षुओ को वच्चकुटीमें बर्तना चाहिये।

"जो वच्चकुटी जाये बाहर खड़े हो उसे खाँसना चाहिये। भीतर बैठेको भी खाँसना चाहिये। चीवर (टांगन) पर बाँस या रस्सीपर चीवरको रख अच्छी तरह—बिना जल्दीके पाखानेमें जाना चाहिये। न बहुत जल्दीसे प्रवेश करना चाहिये न खींच ढाले प्रवेश करना चाहिये। पाखानेके पायदान पर बैठकर शौच करना चाहिये। निःश्वास छोड़ते नहीं शौच करना चाहिये। दातुवन करते नहीं। पाखानेकी नालीसे बाहर नहीं। पेशाबकी नालीके बाहर नहीं पेशाब करना चाहिये। पेशाबकी नालीमें थूक नहीं फेंकना चाहिये। कठोर काष्ठसे अपलेखन नहीं करना चाहिये। अपलेखनको गड्ढेमें नहीं डालना चाहिये। पाखानेके पायदानपर खड़े हो (अपने शरीरको) ढाँक लेना चाहिये। बहुत जल्दी में नहीं निकलना चाहिये। न खींच कर निकलना चाहिये। पानी लेनेके पायदानपर स्थित हो आचमन (=जल-सिंचन) करना चाहिये। चप चप करके पानी नहीं छूना चाहिये।

---

[1]पाखाना।

पानी छूनेके शरावमे पानी नही छोळ डालना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर खळे हो ढाक लेना चाहिये। यदि पाखाना गदा हो गया हो तो धो देना चाहिये। यदि अपलेखन (काष्ठ फेंकने)की टोकरी पूरी हो गई हो, तो अपलेखन काष्ठको फेंक देना चाहिये। यदि वच्चकुटीमे उकलाप हो, तो झाळ देना चाहिये। यदि परिभण्ड०। यदि परिवेण उक्लाप हो तो परिवेणको झाळ देना चाहिये। यदि कोष्ठक गदा हो, तो० झाळ देना चाहिये। यदि पानी छूनेके घळे मे पानी न हो, तो (उसमे) पानी भर देना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओका वच्चकुटीका व्रत है, जैसे कि०।" 8

§५–शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्तव्य

(१) शिष्य-व्रत[1]

उस समय शिष्य उपाध्यायके साथ ठीकसे वर्ताव न करते थे।

०अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्योका उपाध्यायोके प्रति व्रत प्रज्ञापित करते है, जैसे कि शिष्योको उपाध्यायोके प्रति वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ!—शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यका उपाध्यायके प्रति व्रत, जैसे कि०।" 9

(२) उपाध्याय-व्रत[2]

उस समय (१) उपाध्याय शिष्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [1]अल्पेच्छ०।०—

"तो भिक्षुओ! शिष्यके प्रति उपाध्यायके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि उपाध्यायोको शिष्योके साथ वर्तना चाहिये। ०

"भिक्षुओ! यह उपाध्यायका शिष्यके प्रति व्रत है, जैसे कि०।" 10

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) अन्तेवासी-व्रत[3]

उस समय अन्तेवासी (=शिष्य) आचार्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [2]अल्पेच्छ० भिक्षु ०।०।—

"तो भिक्षुओ! आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि अन्तेवासीको आचार्यके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! अन्तेवासीको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रत हैं, जैसे कि०।" 11

(४) आचार्य-व्रत[4]

उस समय आचार्य अन्तेवासियोके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु[3]।०।—

"तो भिक्षुओ! अन्तेवासीके प्रति आचार्यके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि आचार्यको

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)। [2]देखो महावग्ग १§२।२ (पृष्ठ १०३)।
[3]देखो महावग्ग १§२।८ (पृष्ठ १०९)। [4]देखो महावग्ग १§२।९ (पृष्ठ ११०)।

द्वार बंद कर जाना चाहिये।

भिक्षुओ! यह भिक्षुओका अन्तावर-व्रत है जैसे कि । 7

(३) वच्चकुटी[1] का व्रत

उस समय ब्राह्मण जातिका एक ब्राह्मण शौच हो पानी नहीं लेना चाहता था (यह ख्याल कर कि) कौन इस बुरे (=नीच) दुर्गंधको छुये। उसके शौच-मार्गमें कीड़े रहते थे। तब उस भिक्षुने भिक्षुओसे यह बात कही।

'क्या तू आवुस! शौच हो पानी नहीं लेता?'

'हाँ आवुसो!'

०अल्पेच्छ भिक्षु ।०—

'भिक्षुओ! शौच हो पानी रहते बिना पानी छुये नहीं रहना चाहिये जो पानी न छुये उसे दुक्कटका दोष हो।

उस समय भिक्षु पाखानेमें वृद्धताके अनुसार शौच करते थे। नये (हुये) भिक्षु पहिले ही आकर शौचका किये इन्तिजार करते थे। रोकनेसे मूर्छित हो गिर पड़ते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

'सचमुच भिक्षुओ! ?

(हाँ) सचमुच भगवान्!

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

भिक्षुओ! पाखानेमें वृद्धपनके अनुसार शौच नहीं करना चाहिये जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! आनेके क्रमसे शौच होनेकी।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुत शीघ्रतासे पाखानेमें जाते थे पाखाना होते (=उब्भिज्जित्वा) भी। चिल्लाते पड़ते भी शौच करते थे। दातवन करते भी। पाखाने के द्रोण (=गमला) के बाहर भी। पेशाबके द्रोणक (=नाली) के बाहर भी पेशाब करते थे। पेशाबकी द्रोणीमें भी थूकते थे। कठोर काठसे अवलेखन (=पोंछना) करते थे। अवलेखनके काष्ठको सडासमें डाल देते थे। जल्दी शीघ्रतासे (दौड़ते हुये) पाखानेसे निकलते थे। शौच होते ही निकलते थे। चपचप करते पानी छूते थे। पानी छूनेके बरतन (=कूल्हिया) मे भी पानी छोड़ देते थे। अल्पेच्छ भिक्षु ।०—

तो भिक्षुओ! भिक्षुओको वच्चकुटी (=पाखाने) का व्रत प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि भिक्षुओ को वच्चकुटीमें वर्तना चाहिये।

"जो वच्चकुटी जाये बाहर खड़े हो उसे खाँसना चाहिये। भीतर बैठेको भी खाँसना चाहिये। चीवर (टाँगने) के बाँस या रस्सीपर चीवरको रख अच्छी तरह—बिना स्वराके पाखानेमें जाना चाहिये। न बहुत जल्दीसे प्रवेश करना चाहिये न शौच होते प्रवेश करना चाहिये। पाखानेके पायदान पर बैठकर शौच करना चाहिये। हिलते हुये नहीं शौच करना चाहिये। दातवन करते नहीं। पाखानेकी नालीके बाहर नहीं। पेशाबकी नालीके बाहर नहीं पेशाब करना चाहिये। पेशाबकी नालीमें थूक नहीं फेंकना चाहिये। कठोर काष्ठसे अवलेखन नहीं करना चाहिये। अवलेखनको सडासमें नहीं डालना चाहिये। पाखानेके पायदानपर खड़े हो (अपने शरीरको) ढाँक लेना चाहिये। बहुत जल्दी में नहीं निकलना चाहिये। न कूद कर निकलना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर स्थित हो उक्लिखन (=अव-लिखन) करना चाहिये। चप-चप करते पानी नहीं छूना चाहिये।

---

[1] पाखाना।

पानी छूनेके घरावमें पानी नहीं छोळ डालना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर मळे हो ढांक लेना चाहिये। यदि पाखाना गंदा हो गया हो तो धो देना चाहिये। यदि अपलेखन (काष्ठ फेंकने)की टोकरी पूरी हो गई हो, तो अपलेखन काष्ठको फेंक देना चाहिये। यदि वच्चकुटीमें उक्लाप हो, तो झाळ् देना चाहिये। यदि परिभण्ड०। यदि परिवेण उक्लाप हो तो परिवेणको झाळ् देना चाहिये। यदि कोष्ठक गंदा हो, तो० झाळ देना चाहिये। यदि पानी छूनेके घळेमें पानी न हो, तो (उसमें) पानी भर देना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंका वच्चकुटीका व्रत है, जैसे कि०।" 8

§५–शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्तव्य

(१) शिष्य-व्रत[1]

उस समय शिष्य उपाध्यायके साथ ठीकसे वर्ताव न करते थे।

०अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्योंका उपाध्यायोंके प्रति व्रत प्रज्ञापित करते हैं, जैसे कि शिष्योंको उपाध्यायोंके प्रति वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ!—शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यका उपाध्यायके प्रति व्रत, जैसे कि०।" 9

(२) उपाध्याय-व्रत[2]

उस समय (१) उपाध्याय शिष्योंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [1]अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्यके प्रति उपाध्यायके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि उपाध्यायोको शिष्योंके साथ वर्तना चाहिये। ०

"भिक्षुओ! यह उपाध्यायका शिष्यके प्रति व्रत है, जैसे कि०।" 10

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) अन्तेवासी-व्रत[3]

उस समय अन्तेवासी (=शिष्य) आचार्योंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [2]अल्पेच्छ० भिक्षु ०।०।—

"तो भिक्षुओ! आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि अन्तेवासीको आचार्यके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! अन्तेवासीको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रत हैं, जैसे कि०।" 11

(४) आचार्य-व्रत[4]

उस समय आचार्य अन्तेवासियोंके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु[3]।०।—

"तो भिक्षुओ! अन्तेवासीके प्रति आचार्यके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि आचार्यको

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)। [2]देखो महावग्ग १§२।२ (पृष्ठ १०३)।
[3]देखो महावग्ग १§२।८ (पृष्ठ १०९)। [4]देखो महावग्ग १§२।९ (पृष्ठ ११०)।

द्वार बंद कर जाना चाहिये।

'भिक्षुओ! यह भिक्षुओंका स्नानघर-व्रत है, जैसे कि ।' 7

(३) वच्चकुटी[1]का व्रत

उस समय ब्राह्मण जातिका एक भिक्षु शौच हो पानी नहीं लेना चाहता था (यह ख्याल कर कि) कौन इस वृषल (=नीच) दुर्गन्धको छुयेगा। उसके शौच-मार्गमें कीड़े रहते थे। तब उस भिक्षुने भिक्षुओंसे यह बात कही।

'क्या तू आवुस! शौच हो पानी नहीं लेता?'

'हाँ आवुसो!'

अल्पेच्छ भिक्षु ।।—

'भिक्षुओ! शौच हो पानी रहते बिना पानी छुये नहीं रहना चाहिये, जो पानी न छुये उसे दुक्कटका दोष हो।'

उस समय भिक्षु पाखानेमें बड़प्पनके अनुसार शौच करते थे। नये (हुये) भिक्षु पहिले ही आकर शौचके लिये इन्तिज़ार करते थे। रोकनेसे मूर्छित हो गिर पड़ते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ!"

(हाँ) सचमुच भगवान्!

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

भिक्षुओ! पाखानेमें बुड्ढापनके अनुसार शौच नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! आनेके क्रमसे शौच होनेकी।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुत शीघ्रतासे पाखानेमें जाते थे, पाखाना होते (=उब्भजित्वा) भी। गिरते पड़ते भी शौच होते थे। दातुवन करते भी। पाखाने के द्रोण (=नाली) के बाहर भी। पेशाबके द्रोण (=नाली) के बाहर भी पेशाब करते थे। पेशाबकी दोणीमें भी थूकते थे। कठोर काठसे अवलेखन (=पोंछना) करते थे। अवलेखन काष्ठको सण्डासमें डाल देते थे। बड़ी शीघ्रतासे (धोळते हुये) पाखानेसे निकलते थे। शौच होते ही निकलते थे। चपचप करते पानी छूते थे। पानी छूनेके शराव (=कुम्भिका) में भी पानी छोड़ देते थे। अल्पेच्छ भिक्षु ।।—

'तो भिक्षुओ! भिक्षुओंको वच्चकुटी (=पाखाने) का व्रत प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओंको वच्चकुटीमें बर्तना चाहिये।

"जो वच्चकुटी जाये, बाहर खड़े हो उसे खाँसना चाहिये। भीतर बैठनेको भी खाँसना चाहिये। चीवर (टाँगने)के बाँस या रस्सीपर चीवरको रख अच्छी तरह—बिना जल्दीके पाखानेमें जाना चाहिये। न बहुत जल्दीसे प्रवेश करना चाहिये, न शौच होते प्रवेश करना चाहिये। पाखानेके पायदान पर बैठकर शौच करना चाहिये। हिलते हुये नहीं शौच करना चाहिये। दातुवन करते नहीं। पाखानेकी नालीके बाहर नहीं। पेशाबकी नालीके बाहर नहीं पेशाब करना चाहिये। पेशाबकी नालीमें थूक नहीं फेंकना चाहिये। कठोर काष्ठसे अवलेखन नहीं करना चाहिये। अवलेखनको सण्डासमें नहीं डालना चाहिये। पाखानेके पायदानपर खड़े हो (अपने शरीरको) ढाँक लेना चाहिये। बहुत जल्दी में नहीं निकलना चाहिये। न कूद कर निकलना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर स्थित हो अविज्ञप्त (=खट-सिवत) करना चाहिये। चप चप करते पानी नहीं छूना चाहिये।

[1] पाखाना।

पानी छूनेके शरावमें पानी नही छोळ डालना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर खळे हो ढांक लेना चाहिये। यदि पाखाना गदा हो गया हो तो धो देना चाहिये। यदि अपलेखन (काष्ठ फेंकने)की टोकरी पूरी हो गई हो, तो अपलेखन काष्ठको फेंक देना चाहिये। यदि वच्चकुटीमें उकलाय हो, तो झाळ देना चाहिये। यदि परिभण्ड०। यदि परिवेण उक्लाप हो तो परिवेणको झाळू देना चाहिये। यदि कोष्ठक गदा हो, तो० झाळ् देना चाहिये। यदि पानी छूनेके घळे मे पानी न हो, तो (उसमें) पानी भर देना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओंका वच्चकुटीका व्रत है, जैसे कि०।" 8

§५—शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्तव्य

(१) शिष्य-व्रत[1]

उस समय शिष्य उपाध्यायके साथ ठीकसे वर्ताव न करते थे।

०अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्योका उपाध्यायोके प्रति व्रत प्रज्ञापित करते है, जैसे कि शिष्योको उपाध्यायोके प्रति वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ!—शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यका उपाध्यायके प्रति व्रत, जैसे कि०।" 9

(२) उपाध्याय-व्रत[2]

उस समय (१) उपाध्याय शिष्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [1]अल्पेच्छ०।०—

"तो भिक्षुओ! शिष्यके प्रति उपाध्यायके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि उपाध्यायोको शिष्योके साथ वर्तना चाहिये। ०

"भिक्षुओ! यह उपाध्यायका शिष्यके प्रति व्रत है, जैसे कि०।" 10

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) अन्तेवासी-व्रत[3]

उस समय अन्तेवासी (=शिष्य) आचार्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [2]अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि अन्तेवासीको आचार्यके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! अन्तेवासीको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रत हैं, जैसे कि०।" 11

(४) आचार्य-व्रत[4]

उस समय आचार्य अन्तेवासियोके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु[3]।०।—

"तो भिक्षुओ! अन्तेवासीके प्रति आचार्यके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि आचार्यको

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)। [2]देखो महावग्ग १§२।२ (पृष्ठ १०३)।
[3]देखो महावग्ग १§२।८ (पृष्ठ १०९)। [4]देखो महावग्ग १§२।९ (पृष्ठ ११०)।

अन्तेवासीके साथ बर्तना चाहिये।

भिक्षुओ! आचार्यको अन्तेवासीके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये।

भिक्षुओ! यह शिष्योंके प्रति आचार्यका व्रत है जैसा कि[1]। 12

अष्टम वत्तक्खन्धक समाप्त[2] ॥८॥

---

[1] देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ २)।

[2] अन्तमें पाँच गाथायें हैं—जो व्रतको नहीं पूरा करता वह शीलको नहीं पूरा करता।
अशुद्धशील दुष्प्रज्ञ (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको नहीं प्राप्त होता ॥(१)॥
विक्षिप्त चित्त एकाग्रता रहित (पुरुष) ठीकसे धर्मको नहीं देखता।
सद्धर्मको बिना देखे दुःखसे नहीं छूट सकता ॥(२)
व्रतको पूरा करनेवाला शीलको भी पूरा करता है।
विशुद्धशील प्रज्ञावान् (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होता है ॥(३)॥
अ-विक्षिप्त चित्त एकाग्रता युक्त (पुरुष) ठीकसे धर्मको देखता है।
सद्धर्मको देखकर वह दुःखसे छूट जाता है ॥(४)॥
इसलिये चतुर जिन-पुत्र (=बौद्ध) व्रतको पूरा करे।
(यह) श्रेष्ठ बुद्धका उपदेश है उससे निर्वाणको प्राप्त होगा ॥(५)॥

९—प्रातिमोक्ष-स्थापन स्कन्धक

१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये ? २—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना । ३—अपराध योंही स्वीकारना, और दोषारोप ।

§१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये

१—श्रावस्ती

(१) उपोसथमें पापी भिक्षु

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें मृ गा र मा ता के प्रासाद पू र्वा रा म में विहार करते थे। उस समय भगवान् उपोसथके दिन भिक्षु-संघके साथ बैठे थे। तब आयुष्मान् आ न न्द रात चली जानेपर, प्रथम याम बीत जानेपर उत्तरासंगको एक कंधेपर कर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळ भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई, पहिला याम बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश (=० पाठ) करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और) रात चली जानेपर बिचले यामके भी बीत जानेपर दूसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। बिचला याम भी बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और भी) रात चली जानेपर अन्तिम यामके भी बीत जानेपर तीसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। अन्तिम याम भी बीत गया। अरुण निकल आया, नन्दीमुखा (=उषा) रात है। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

"आनन्द ! (यह) परिषद् शुद्ध नहीं है।"

तब आयुष्मान् म हा मौद्‌गल्यायनको यह हुआ—'किस व्यक्तिके लिये भगवान्‌ने यह कहा—आनन्द ! परिषद् शुद्ध नहीं है', तब आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनने (अपने) चित्तसे ध्यान करते भिक्षु-संघको देखा, और (तब) आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनने उस पापी, दुःशील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे कर्म वाले श्रमण होनेके दावेदार अ-श्रमण होते, ब्रह्मचारी न होते ब्रह्मचारी होनेका दावा करनेवाले भीतर-सळे, (पीव) भरे, कल्प रूप उस व्यक्तिको संघके बीचमें बैठे देखा। देख कर जहाँ वह पुरुष था वहाँ गये, जाकर उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस ! उठ, भगवान्‌ने तुझे देख लिया। (अब) तेरा भिक्षुओंके साथ वास नहीं हो सकता।"

ऐसा कहनेपर वह पुरुष चुप रहा।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

अष्टम [illegible] समाप्त ॥८॥

---

¹देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १२)।

²अन्तमें पाँच गाथायें हैं—जो व्रतको नहीं पूरा करता वह शीलको नहीं पूरा करता।
अशुद्धशील दुष्प्रज्ञ (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको नहीं प्राप्त होता ॥(१)॥
विक्षिप्त चित्त एकाग्रता रहित (पुरुष) ठीकसे धर्मको नहीं देखता।
सद्धर्मको बिना देखे दुःखसे नहीं छूट सकता ॥(२)
व्रतको पूरा करनेवाला शीलको भी पूरा करता है।
विशुद्धशील प्रज्ञावान् (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होता है ॥(३)॥
अ-विक्षिप्त चित्त एकाग्रता युक्त (पुरुष) ठीकसे धर्मको देखता है।
सद्धर्मको देखकर वह दुःखसे छूट जाता है ॥(४)॥
इसलिये चतुर जिन-पुत्र (=बौद्ध) व्रतको पूरा करे।
(यह) श्रेष्ठ बुद्धका उपदेश है उससे निर्वाणको प्राप्त होगा ॥(५)॥

९—प्रातिमोक्ष-स्थापन स्कन्धक

१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये ? २—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना । ३—अपराध योंही स्वीकारना, और दोषारोप ।

§१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये

१—श्रावस्ती

(१) उपोसथमे पापी भिक्षु

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमे मृगारमाताके प्रासाद पूर्वाराममे विहार करते थे। उस समय भगवान् उपोसथके दिन भिक्षु-संघके साथ बैठे थे। तब आयुष्मान् आनन्द रात चली जानेपर, प्रथम याम बीत जानेपर उत्तरासंगको एक कंधेपर कर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळ भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई, पहिला याम बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश (=० पाठ) करे।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और) रात चली जानेपर बिचले यामके भी बीत जानेपर दूसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। बिचला याम भी बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करे।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और भी) रात चली जानेपर अन्तिम यामके भी बीत जानेपर तीसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! रात चली गई। अन्तिम याम भी बीत गया। अरुण निकल आया, नन्दीमुखा (=उषा) रात है। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करे।"

"आनन्द ! (यह) परिषद् शुद्ध नही है।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको यह हुआ—'किस व्यक्तिके लिये भगवान्ने यह कहा—आनन्द ! परिषद् शुद्ध नही है, तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने (अपने) चित्तमे ध्यान करते भिक्षु-संघको देखा, और (तब) आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने उस पापी, दुःशील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे कर्म वाले श्रमण होनेके दावेदार अ-श्रमण होते, ब्रह्मचारी न होते ब्रह्मचारी होनेका दावा करनेवाले भीतर-सळे, (पीब) भरे, कलुष रूप उस व्यक्तिको संघके बीचमे बैठे देखा। देख कर जहाँ वह पुरुष था वहाँ गये, जाकर उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस ! उठ, भगवान्ने तुझे देख लिया। (अब) तेरा भिक्षुओंके साथ वास नही हो सकता।"

ऐसा कहनेपर वह पुरुष चुप रहा।

भिक्षुओ! अब इसके बाद मैं उपोसथ नहीं करूँगा, प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) नहीं करूँगा। इसके बाद भिक्षुओ! तुम्हीं उपोसथ करना, प्रातिमोक्षका उद्देश करना। भिक्षुओ! इसके लिये जगह नहीं, यह संभव नहीं कि तथागत अशुद्ध परिषद्‌में उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें।

"भिक्षुओ! दोषयुक्त (भिक्षु)को प्रातिमोक्ष नहीं सुनना चाहिये, जो सुने उसको दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, जो दोषयुक्त होकर प्रातिमोक्ष सुने उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करनेकी। 1

"और भिक्षुओ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पूर्णमासीके दिन उपोसथके दिन वह व्यक्ति दिखाई दे, संघके बीच कहना चाहिये—'भन्ते! संघ मेरी सुने, इस नामवाला व्यक्ति दोषयुक्त है, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं होना चाहिये।' (ऐसा कहनेपर) प्रातिमोक्ष स्थगित होता है। 2

§२—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते थे। दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते थे—'आवुसो! इस इस नामवाले षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते हैं।' षड्वर्गीय भिक्षुओंने सुना—दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते हैं—०। तब अच्छे भिक्षुओं द्वारा उनके प्रातिमोक्षके स्थगित किये जानेसे पूर्व ही वह शुद्ध दोषरहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित करते थे। अल्पेच्छ भिक्षु ०।—

"भिक्षुओ! शुद्ध दोष रहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट ०। 3

"भिक्षुओ! प्रातिमोक्ष स्थगित करना एक अधार्मिक (=धर्म-विरुद्ध) है और एक धार्मिक (धर्मानुसार)। दो अधार्मिक हैं दो धार्मिक। तीन अ-धार्मिक हैं तीन धार्मिक। चार अ-धार्मिक हैं चार धार्मिक ०। पाँच अधार्मिक पाँच धार्मिक ०। छ अ-धार्मिक हैं छ धार्मिक। सात अ-धार्मिक हैं सात धार्मिक। आठ अ-धार्मिक हैं आठ धार्मिक। नौ अ-धार्मिक हैं नौ धार्मिक। दस अ-धार्मिक हैं दस धार्मिक। 4

(१) नियम-विरुद्ध प्रातिमोक्ष स्थगित करना

१—"कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना अधार्मिक है?—निर्मूलक शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करना है। यह एक प्रातिमोक्ष स्थगित करना अ-धार्मिक है। कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना धार्मिक है?—स-मूलक (=कारण सहित) शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करना है। 5

२—"कौनसे दो प्रातिमोक्ष स्थगित करने अ-धार्मिक हैं?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे ०। (२) निर्मूलक आचार भ्रष्टतासे ०। 6

कौनसे दो धार्मिक हैं?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे ० (२) समूलक आचार भ्रष्टतासे ०। 7

३—"कौनसे तीन अ-धार्मिक हैं?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे ०। (२) निर्मूलक आचार भ्रष्टतासे ०। (३) निर्मूलक दृष्टि-भ्रष्टता (=अच्छी धारणासे च्युत होने)से ०। कौनसे तीन धार्मिक हैं?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे ०। (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे ०। (३) समूलक दृष्टि-भ्रष्टतासे ०। 8

४—"कौनसे चार ० अ-धार्मिक है?—०[१]। (४) निर्मूलक भ्रष्ट-आजीविकता (=जीव-यापनका जरिया भ्रष्ट होने)मे ०। ० चार ० धार्मिक है?—०[१]। (४) समूलक भ्रष्ट-आजीविकता से ०।०।9

५—"कौनसे पाँच ० अ-धार्मिक है?—०[१]। (५) निर्मूलक दु क्क ट(का दोष लगाने)-से ०। ० पाँच ० धार्मिक है?—०[१]। (५) ममूलक दु क्क ट से ०।०।10

६—"कौनमे छ ० अ-धार्मिक है?—(१) अमूलक (=निर्मूलक) (और) न की हुई शील-भ्रष्टतासे ०। (२) अमूलक, (किंतु)की हुई शील-भ्रष्टतामे ०। (३) अमूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतामे०। (४) अमूलक (किन्तु)की हुई आचार-भ्रष्टतामे०। (५) अमूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतामे०। (६) अमूलक (किन्तु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे०। कौनसे छ ० धार्मिक है?—(१) ममूलक (और) न की हुई शील भ्रष्टतामे०। (२) समूलक (किन्तु)की हुई शील-भ्रष्टतामे०। (३) ममूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे०। (४) समूलक (किंतु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे ०। (५) समूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ०। (६) समूल (किंतु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतामे ०।०।11

७—"कौनमे सात० अ-धार्मिक है?—(१) अमूलक पा रा जि क(के दोष)से ०। (२) अमूलक सघादिसेसमे०। (३) अमूलक थु ल्ल च्च य से०। (४) अमूलक पा चि त्ति य से०। (५) अमूलक प्रा ति दे श नी य से०। (६) अमूलक दु क्क ट से०। (७) अमूलक दु र्भा पि त से०। कौनसे सात ० धार्मिक है?—(१) समूलक पाराजिकसे। ०। (७) समूलक दुर्भापितसे ०।०।12

८—"कौनसे आठ० अ-धार्मिक है?—(१) अमूलक, अकृत (=न की हुई) शील-भ्रष्टतासे०। (२) अमूलक, कृत (=की हुई) शील भ्रष्टतासे०। (३) अमूलक अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक कृत आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक अकृत दृष्टि भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक कृत दृष्टि भ्रष्टतामे०। (७) अमूलक अकृत भ्रष्टाजीविकतासे०। (८) अमूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे०। कौनसे आठ० धार्मिक है?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतामे०।०। (८) समूलक कृत भ्रष्टा-जीविकतासे०।०।13

९—"कौनसे नौ० अधार्मिक है?—(१) अमूलक अकृत शीलभ्रष्टतासे०। (२) अमूलक, कृत शील-भ्रष्टतासे०। (३) अमूलक, कृत-अकृत शील-भ्रष्टतामे०। (४) अमूलक, अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक, कृत आचार-भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक, कृत-अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (७) अमूलक, अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (८) अमूलक, कृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (९) अमूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतामे०।०। कौनसे नौ ० धार्मिक है?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे०।०। (९) ममूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०।०।14

१०—"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक है?—(१) न पाराजिक-दोषी उस परिषद्में बैठा होता है, (२) न पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है, (३) न (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्मे बैठा होता है, (४) न शिक्षाको प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है, (५) न धार्मिक (सघकी) सामग्री (=एकता)में (वह भिक्षु) जाता है, (६) न धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना) करता है, (७) न धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है, (८) न (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है, (९) न

[१]पहिलेको लेकर।

दूसरी बार भी आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषसे यह बोले—

आवुस ! उठ भगवान्ने तुझे देख लिया ।।

दूसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा ।

तीसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषको हाथसे पकड़कर द्वार कोठक(=प्रधान द्वार)से बाहर निकाल(निकालकर)किवाड़(=सूची घटिका)दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह बोले—

'भन्ते ! मैंने उस पुरुषको निकाल दिया परिषद् शुद्ध है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।

आश्चर्य है मौद्गल्यायन ! अद्भुत है मौद्गल्यायन !! जो हाथ पकड़नेपर वह मोघ पुरुष गया !!!

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) बुद्ध-धर्ममें आठ अद्भुत गुण

भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य अद्भुत गुण (=धर्म) हैं जिन्हें देख असुर (लोग) महासमुद्रमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा (=निम्न)=क्रमशः प्रवण (=नीचा) क्रमशः प्राग्भार (=झुका) होता है एकदम किनारेसे खड़ा गहरा नहीं होता। जो कि भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा यह भिक्षुओ ! महासमुद्रमें—प्रथम आश्चर्य अद्भुत गुण है जिसे देख असुर । (२) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है—किनारेको नहीं छोड़ता। जो कि । (३) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नहीं वास करता। महासमुद्रमें जो मरा-मुर्दा होता है उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है या स्थलपर फेंक देता है। जो कि । (४) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई महानदियाँ हैं जैसे कि गंगा यमुना अचिरवती (=राप्ती) सरभू (=सरयू घाघरा) और मही (=मइम) वह सभी महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोड़ देती हैं महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती हैं। जो कि । (५) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई भी संसारमें बहनेवाली (=पानीकी धारें) समुद्रमें आती हैं और जो कोई अन्तरिक्षसे (वर्षाकी) धारा गिरती हैं उससे महासमुद्रकी ऊनता (=कमी) या पूर्णता नहीं दीख पड़ती। जो कि । (६) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र एक रस है लवण (ही उसका) रस है। जो कि । (७) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र बहुतसे रत्नों-वाला है। रत्न यह हैं जैसे कि—मोती मणि वैदूर्य (=हीरा) शंख शिला मूँगा चाँदी सोना लो हितांक (=रक्तवर्ण मणि) मसारगल्ल (=एक मणि)। जो कि । (८) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र महान् प्राणियों (=भूतों) का निवास-स्थान है। प्राणी ये हैं जैसे कि तिमि तिमिंगिल तिमिरपिंगल असुर नाग गंधर्व। महासमुद्रमें सौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं दोसौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं तीन सौ योजनवाले चार सौ योजनवाले । पाँच सौ योजनवाले भी शरीरधारी हैं। जो कि । भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य-अद्भुत गुण हैं ।

ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म-विनय (=बुद्ध धर्म)में आठ आश्चर्य अद्भुत धर्म (=गुण) हैं जिन्हें देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा क्रमशः प्रवण क्रमशः प्राग्भार है एक दम किनारेसे खड़ा गहरा नहीं होता ! ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म विनयमें क्रमशः शिक्षा क्रमशः क्रिया क्रमशः मार्ग (=प्रतिपद्) है एक दम (शुरूही) से आज्ञा (=अर्हत्पद)का प्रतिवेध (=साक्षात्कार) नहीं है। जो कि भिक्षुओ ! इस

धर्म-विनयमे क्रमश शिक्षा, क्रमश क्रिया, क्रमश मार्ग है, एक दम (शुरूही)मे आज्ञा का प्रतिवेध नहीं, यह भिक्षुओ! इस धर्म-विनयमे प्रथम आश्चर्य=अद्भुत धर्म है, जिसे देख देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयम अभिरमण करते है। (२) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है=किनारेको नही छोळता, ऐसे ही भिक्षुओ! जो मैंने श्रावको (=शिष्यों)के लिये शिक्षा-पद (=आचार-नियम) प्रज्ञापित (=विहित) किये, उन्हे मेरे श्रावक प्राणके लिये भी अति-क्रमण नही करते। जो कि०। (३) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नही वास करता। महासमुद्रमे जो मरा मुर्दा होता है उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है, या स्थलपर फेंक देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! जो व्यक्ति (=पुद्गल) पापी, दु शील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे-कर्मान्त (=० पेशे)वाला, अश्रमण होता श्रमण होनेका दावेदार, अब्रह्मचारी होते ब्रह्मचारी होनेका दावेदार, भीतर सब, (पीळा) भरा, कलुषरूप होता है, उसके साथ सघ नही वास करता। शीघ्र ही एकत्रित हो उसे निकालता (=उत्क्षेपण करता) है। चाहे वह भिक्षु-सघके बीचमे बैठा हो, तो भी वह सघसे दूर है, और सघ उससे (दूर है)। जो कि ०। (४) जैसे भिक्षुओ! ० महानदियाँ ० महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती है, महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती है, ऐसे ही भिक्षुओ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य (और) शूद्र—यह चारो वर्ण तथागत जतलाये धर्म-विनयमे घरसे बेघर प्रव्रजित (=सन्यासी) हो पहिलेके नाम-गोत्रको छोळते है, शाक्य पुत्रीय श्रमणके ही (नामसे) प्रसिद्ध होते है। जो कि ०। (५) जैसे भिक्षुओ! जो भी ससारमे बहनेवाली (पानीकी धारें) समुद्रमे जाती है, और जो अन्तरिक्ष (=आकाश)से (वर्षाकी) धारायें गिरती है, उससे समुद्रकी ऊनता या पूर्णता नहीं दीख पळती, ऐसे ही भिक्षुओ! चाहे बहुतसे भिक्षु अनुपादिशेष (=उपादि जिसमें शेष नही रहती) निर्वाण धातु (=निर्वाणपद)को प्राप्त हो, उससे निर्वाण-धातुकी ऊनता या पूर्णता नही दीख पळती। जो कि०। (६) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र एक-रस है, लवण (ही उसका) एक रस है, ऐसे ही भिक्षुओ! यह धर्म-विनय एक रस है विमुक्ति (=मुक्ति ही इसका एक)रस है, जो कि ०। (७) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र बहुतसे रत्नोवाला है, ०, ऐसे ही भिक्षुओ! यह धर्म-विनय बहुतसे रत्नोवाला है, अनेक रत्नोवाला है। वहाँपर रत्न है जैसे कि[1]—चार [१–४] स्मृ ति - प्र स्था न, चार [५–८] स म्य क प्र धा न, चार [९–१२] ऋ द्धि पा द, पाँच [१३–१७] इ न्द्रि य, पाँच [१८–२२] ब ल, सात [२३–२९] बो ध्य ग, [३०–३७] आ र्य अ ष्टा गि क मा र्ग। जो कि ०। (८) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्रमे महान् प्राणियोका निवास-स्थान है०, ऐसे ही भिक्षुओ! यह धर्म-विनय महान् प्राणियोका निवास है। वहाँ यह प्राणी है जैसे कि—स्रो त - आ प न्न=(निर्वाणके) स्रोतकी प्राप्ति (रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त, स कृ दा - गा मी=एक ही वार (इस ससारमे) आकर (निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त, अ ना गा मी=(इस ससारमें) न आकर (दूसरे लोक हीमें निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्ग प्राप्त, अर्हत्—अर्हत्त्व (=मुक्तपन) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त। जो कि ०।"

तब भगवान्ने इस अर्थका ख्यालकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"ढाँकनेकी बुद्धि रखनेवाला (फिर) दोष करता है, खुले (दिल)वाला नही दोष करता।
इसलिये ढँकेको खोल दे, जिसमें कि अधिक दोष न करे ॥(१)॥"

(३) बुद्धका फिर उपोसथमें नही शामिल होना

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

[1]यही सैंतीस बोधिपक्षीय धर्म कहे जाते हैं।

दूसरी बार भी आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषसे यह बोले—

आवुस ! उठ भगवान्‌ने तुझे देख लिया । ।

दूसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा ।

तीसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषको हाथमें पकळकर द्वार कोष्ठक(=प्रधान द्वार) से बाहर निकाल(निकाळ्म)सिमाई(=सूची घटिका) दे जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जा कर भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते ! मैंने उस पुरुषको निकाल दिया परिषद् शुद्ध है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।

'आश्चर्य है मौद्गल्यायन ! अद्भुत है मौद्गल्यायन !! जो हाथ पकळनेपर वह मोघ पुरुष गया !!!

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) बुद्ध-धर्ममें आठ अद्भुत गुण

भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य अद्भुत गुण (=धर्म) हैं जिन्हें देख असुर (लोग) महासमुद्रमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा (=निम्न)=क्रमशः प्रवण (=नीचा) क्रमशः प्राग्भार (=झुका) होता है एकदम किनारेसे बळा गहरा नहीं होता। जो कि भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा यह भिक्षुओ ! महासमुद्रमें—प्रथम आश्चर्य अद्भुत गुण है जिसे देख असुर । (२) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है—किनारेको नहीं छोळता। जो कि । (३) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नहीं वास करता। महासमुद्रमें जो मरा-मुर्दा होता है उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है या स्थलपर फेंक देता है। जो कि । (४) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई महानदियाँ हैं जैसे कि गंगा यमुना अचिरवती (=राप्ती) सरभू (=सरयू घाघरा) और मही (=गंडक) वह सभी महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती हैं महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती हैं। जो कि । (५) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई भी संसारमें बहनेवाली (=पानीकी धारें) समुद्रमें जाती है और जो कोई अन्तरिक्षसे (वर्षाकी) धारा गिरती है उससे महासमुद्रकी ऊनता (=कमी) या पूर्णता नहीं दीख पळती। जो कि । (६) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र एक रस है लवण (ही उसका) रस है। जो कि । (७) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र बहुतसे रत्नों-वाला है। रत्न यह हैं जैसे कि—मोती मणि वैदूर्य (=हीरा) शंख शिला मूँगा चाँदी सोना लोहितांक (=रक्तवर्ण मणि) मसारगल्ल (=एक मणि)। जो कि । (८) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र महान् प्राणियों (=भूतों) का निवास-स्थान है। प्राणी ये हैं जैसे कि तिमि तिमिंगिल तिमिरपिंगल असुर नाग गन्धर्व। महासमुद्रमें सौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं, दोसौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं तीन सौ योजनवाले चार सौ योजनवाले । पाँच सौ योजनवाले भी शरीरधारी हैं। जो कि । भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य-अद्भुत गुण हैं ।

ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म-विनय (=बुद्धधर्म)में आठ आश्चर्य अद्भुत धर्म (=गुण) हैं जिन्हें देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा क्रमशः प्रवण क्रमशः प्राग्भार है एक दम किनारेसे बळा गहरा नहीं होता ! ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म-विनयमें क्रमशः शिक्षा क्रमशः क्रिया क्रमशः मार्ग (=प्रतिपद्) है एक दम (शुरूही) से आज्ञा (=मुक्तिपद) का प्रतिवेध (=साक्षात्कार) नहीं है। जो कि भिक्षुओ ! इस

४—"कौनसे चार ० अ-धार्मिक है ?—०[१] । (४) निर्मूलक भ्रष्ट-आजीविकता (=जीवयापनका जरिया भ्रष्ट होने)से ० । ० चार ० धार्मिक है ?—०[१] । (४) समूलक भ्रष्ट-आजीविकता से ० । ० । 9

५—"कौनसे पाँच ० अ-धार्मिक है ?—०[१] । (५) निर्मूलक दुक्कट(का दोष लगाने)से ० । ० पाँच ० धार्मिक है ?—०[१] । (५) समूलक दुक्कट से ० । ० । 10

६—"कौनसे छ ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक (=निर्मूलक) (और) न की हुई शील-भ्रष्टतासे ० । (२) अमूलक, (कितु)की हुई शील-भ्रष्टतासे ० । (३) अमूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक (किन्तु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक (किन्तु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे० । कौनसे छ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक (और) न की हुई शील भ्रष्टतासे० । (२) समूलक (किन्तु)की हुई शील-भ्रष्टतासे० । (३) समूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (४) समूलक (कितु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे ० । (५) ममूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ० । (६) समूल (कितु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ० । ० । 11

७—"कौनमे सात० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक पाराजिक(के दोष)से ० । (२) अमूलक सघादिसेससे० । (३) अमूलक थुल्लच्चयमे० । (४) अमूलक पाचित्तियसे० । (५) अमूलक प्रातिदेशनीयसे० । (६) अमूलक दुक्कटसे० । (७) अमूलक दुर्भापितसे० । कौनसे सात ० धार्मिक है ?—(१) समूलक पाराजिकसे । ० । (७) समूलक दुर्भाषितसे ० । ० । 12

८—"कौनसे आठ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक, अकृत (=न की हुई) शील-भ्रष्टतासे० । (२) अमूलक, कृत (=की हुई) शील भ्रष्टतासे० । (३) अमूलक अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक कृत आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक अकृत दृष्टि भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक कृत दृष्टि भ्रष्टतामे० । (७) अमूलक अकृत भ्रष्टाजीविकतासे० । (८) अमूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे० । कौनसे आठ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे० । ० । (८) समूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे० । ० । 13

९—"कौनसे नौ० अधार्मिक है ?—(१) अमूलक अकृत शीलभ्रष्टतासे० । (२) अमूलक, कृत शील-भ्रष्टतासे० । (३) अमूलक, कृत-अकृत शील-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक, अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक, कृत आचार-भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक, कृत-अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (७) अमूलक, अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (८) अमूलक, कृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (९) अमूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतामे० । ० । कौनसे नौ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे० । ० । (९) समूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । ० । 14

१०—"कौनमे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक है ?—(१) न पाराजिक-दोपी उस परिषद्में बैठा होता है, (२) न पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है, (३) न (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्मे बैठा होता है, (४) न शिक्षाको प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है, (५) न धार्मिक (सघकी) सामग्री (=एकता)मे (वह भिक्षु) जाता है, (६) न धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना) करता है, (७) न धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है, (८) न (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है, (९) न

[१]पहिलेको लेकर ।

भिक्षुओ ! अब इसके बाद मैं उपोसथ नहीं करूँगा, प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) नहीं करूँगा। इसके बाद भिक्षुओ ! तुम्हीं उपोसथ करना, प्रातिमोक्षका उद्देश करना। भिक्षुओ ! इसके लिये जगह नहीं, यह संभव नहीं कि तथागत अशुद्ध परिषद्‌में उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें।

भिक्षुओ ! दोषयुक्त (भिक्षु)को प्रातिमोक्ष नहीं सुनना चाहिये, जो सुने उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, जो दोषयुक्त होते प्रातिमोक्ष सुने, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करनेकी। 1

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पूर्णमासीके दिन उपोसथके दिन वह व्यक्ति दिखाई दे, सबके बीच कहना चाहिये—'भन्ते ! संघ मेरी सुने, इस नामवाला व्यक्ति दोषयुक्त है, इसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। इसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं होना चाहिये। (ऐसा कहनेपर) प्रातिमोक्ष स्थगित होता है। 2

§२—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते थे। दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते थे—'आवुसो ! इस इस नामवाले षड्वर्गीय भिक्षु—हमें कोई नहीं जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते हैं। षड्वर्गीय भिक्षुओंने सुना—दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते हैं—। तब अच्छे भिक्षुओं द्वारा उनके प्रातिमोक्षको स्थगित किये जानेसे पूर्व ही वह शुद्ध दोषरहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित करते थे। अल्पेच्छ भिक्षु ।—

भिक्षुओ ! शुद्ध दोष-रहित भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट । 3

भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष स्थगित करना एक अधार्मिक (=धर्म-विरुद्ध) है और एक धार्मिक (धर्मानुसार)। दो अधार्मिक हैं दो धार्मिक। तीन अ-धार्मिक हैं तीन धार्मिक। चार अ-धार्मिक हैं चार धार्मिक। पाँच अधार्मिक पाँच धार्मिक। छ अ-धार्मिक हैं छ धार्मिक। सात अ-धार्मिक हैं सात धार्मिक। आठ अ-धार्मिक हैं आठ धार्मिक। नौ अ-धार्मिक हैं नौ धार्मिक। दस अ-धार्मिक हैं दस धार्मिक। 4

(१) नियम विरुद्ध प्रातिमोक्ष स्थगित करना

१—कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना अधार्मिक है?—निर्मूलक शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करना है। यह एक प्रातिमोक्ष स्थगित करना अ-धार्मिक है। कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक है?—स-मूलक (=कारण सहित) शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करना है। 5

२—कौनसे दो प्रातिमोक्ष स्थगित करने अ-धार्मिक हैं?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे । (२) निर्मूलक आचार भ्रष्टतासे । 6

कौनसे दो धार्मिक हैं?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे (२) समूलक आचार भ्रष्टतासे । 7

३—कौनसे तीन अ-धार्मिक हैं?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे । (२) निर्मूलक आचार भ्रष्टतासे । (३) निर्मूलक दृष्टि भ्रष्टता (=अच्छी धारणासे च्युत होने)से । कौनसे तीन धार्मिक हैं?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे । (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे । (३) समूलक दृष्टि-भ्रष्टतासे । 8

४—"कौनसे चार ० अ-धार्मिक है ?—०[1] । (४) निर्मूलक भ्रष्ट-आजीविकता (=जीव-यापनका जरिया भ्रष्ट होने)मे ० । ० चार ० धार्मिक है ?—०[1] । (४) समूलक भ्रष्ट-आजीविकता मे ०।०।9

५—"कौनसे पांच ० अ-धार्मिक है ?—०[1] । (५) निर्मूलक दुक्कट(का दोष लगाने)-से ०।० पाँच ० धार्मिक है ?—०[1] । (५) समूलक दुक्कट से ०।०। 10

६—"कौनसे छ ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक (=निर्मूलक) (और) न की हुई शील-भ्रष्टतामे ०। (२) अमूलक, (किन्तु) की हुई शील-भ्रष्टतामे ०। (३) अमूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतामे०। (४) अमूलक (किन्तु)की हुई आचार-भ्रष्टतामे०। (५) अमूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतामे०। (६) अमूलक (किन्तु) की हुई दृष्टि-भ्रष्टतामे०। कौनसे छ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक (और) न की हुई शील भ्रष्टतामे०। (२) समूलक (किन्तु)की हुई शील-भ्रष्टतामे०। (३) समूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतामे०। (४) समूलक (किंतु)की हुई आचार-भ्रष्टतामे ०। (५) समूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ०। (६) समूल (किंतु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतामे ०।०। 11

७—"कौनसे सात० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक पाराजिक(के दोष)से ०। (२) अमूलक संघादिसेसमे०। (३) अमूलक थुल्लच्चयमे०। (४) अमूलक पाचित्तियमे०। (५) अमूलक प्रातिदेशनीयमे०। (६) अमूलक दुक्कटमे०। (७) अमूलक दुर्भाषितसे०। कौनसे सात ० धार्मिक है ?—(१) समूलक पाराजिकमे।०। (७) समूलक दुर्भाषितसे ०।०। 12

८—"कौनसे आठ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक, अकृत (=न की हुई) शील-भ्रष्टतामे०। (२) अमूलक, कृत (=की हुई) शील भ्रष्टतामे०। (३) अमूलक अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक कृत आचार-भ्रष्टतामे०। (५) अमूलक अकृत दृष्टि भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक कृत दृष्टि भ्रष्टतामे०। (७) अमूलक अकृत भ्रष्टाजीविकतासे०। (८) अमूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे०। कौनसे आठ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे०।०। (८) समूलक कृत भ्रष्टा-जीविकतासे०।०। 13

९—"कौनसे नौ० अधार्मिक है ?—(१) अमूलक अकृत शीलभ्रष्टतासे०। (२) अमूलक, कृत शील-भ्रष्टतासे०। (३) अमूलक, कृत-अकृत शील-भ्रष्टतासे०। (४) अमूलक, अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (५) अमूलक, कृत आचार-भ्रष्टतासे०। (६) अमूलक, कृत-अकृत आचार-भ्रष्टतासे०। (७) अमूलक, अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (८) अमूलक, कृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०। (९) अमूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतामे०।०। कौनसे नौ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे०।०। (९) समूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे०।०। 14

१०—"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक है ?—(१) न पाराजिक-दोषी उस परिषद्में बैठा होता है, (२) न पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है, (३) न (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्मे बैठा होता है, (४) न शिक्षाको प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है, (५) न धार्मिक (संघकी) सामग्री (=एकता)मे (वह भिक्षु) जाता है, (६) न धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना) करता है, (७) न धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है, (८) न (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है, (९) न

[1]पहिलेको लेकर।

भिक्षुओ ! अब इसके बाद मैं उपोसथ नहीं करूँगा, प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) नहीं करूँगा। इसके बाद भिक्षुओ ! तुम्हीं उपोसथ करना, प्रातिमोक्षका उद्देश करना। भिक्षुओ ! इसका स्थान नहीं, यह संभव नहीं कि तथागत अशुद्ध परिषद्में उपोसथ करें, प्रातिमोक्षका उद्देश करें।

भिक्षुओ ! आपत्तिवाले (भिक्षु)को प्रातिमोक्ष नहीं सुनना चाहिये, जो सुने उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ [illegible] आपत्तिवाला होते प्रातिमोक्ष सुने, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करनेकी। 1

और भिक्षुओ ! [illegible] इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पूर्णमासीके दिन उपोसथके दिन उस व्यक्तिके रहते संघके बीच कहना चाहिये—'भन्ते ! संघ मेरी सुने [illegible] नामवाला व्यक्ति आपत्ति सहित है, इसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। इसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं होना चाहिये।' (ऐसा कहनेपर) प्रातिमोक्ष स्थगित होता है। 2

९०—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—'हमें कोई नहीं जानता'—(सोच) आपत्ति रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते थे। दूसरोंके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते थे—'आवुसो ! [illegible] नामवाले षड्वर्गीय भिक्षु—"हमें कोई नहीं जानता"—(सोच) आपत्ति रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते हैं।' षड्वर्गीय भिक्षुओंने सुना—'हमारे चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओंसे कहते हैं—'। तब उन्होंने भिक्षुओं द्वारा उनके प्रातिमोक्षके स्थगित किये जानेसे पूर्व ही बेकसूर शुद्ध भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित करते थे। [illegible] भिक्षु [illegible]—

भिक्षुओ ! शुद्ध बेकसूर भिक्षुओंके प्रातिमोक्षको बिना बात बिना कारण स्थगित नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कट। 3

भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष स्थगित करना एक अधार्मिक (=धर्म-विरुद्ध) है और एक धार्मिक (धर्मानुसार)। दो अधार्मिक हैं, दो धार्मिक। तीन अधार्मिक हैं, तीन धार्मिक। चार अधार्मिक हैं, चार धार्मिक। पाँच अधार्मिक हैं, पाँच धार्मिक। छः अधार्मिक हैं, छः धार्मिक। सात अधार्मिक हैं, सात धार्मिक। आठ अधार्मिक हैं, आठ धार्मिक। नौ अधार्मिक हैं, नौ धार्मिक। दस अधार्मिक हैं, दस धार्मिक। 4

(१) नियम-विरुद्ध प्रातिमोक्ष स्थगित करना

१—कौन सा एक प्रातिमोक्ष स्थगित करना अधार्मिक है ?—निर्मूल [illegible] (के [illegible]) [illegible] अधार्मिक है। [illegible] 5

[illegible]—(१) [illegible] 6

[illegible] —(१) [illegible] (२) [illegible]

[illegible]—(१) [illegible] (२) [illegible] (३) [illegible]

'आवुस ! मैंने शिक्षाका प्रत्याख्यान कर दिया।' तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 18

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

क "कैसे धार्मिक सामग्रीमे नही जाता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० मे भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमे नही जाते देखता है। (२) भिक्षु (स्वय) उस भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमें जाते नही देखता है, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा है—आवुस ! इस नाम-वाला भिक्षु धार्मिक सामग्रीमे नही जाता। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैं धार्मिक सामग्रीमे नही जाता'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर०[2] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 19

["भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।]

ख "कैसे धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना?) होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० मे भिक्षुने (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करते देखा। (२) ० दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! इस नामवाले भिक्षुने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया है'। (३) न ० स्वयं देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैंने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होने-पर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 20

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

ग "कैसे शील-भ्रष्टतामें देखा (=दृष्ट) सुना (=श्रुत) शका किया (=परिशकित होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो०से भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको शील-भ्रष्टतामे देखा-सुना-शका किया देखता है। (२) भिक्षुने (स्वय) ० नही देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! इस नामवाला भिक्षु शील भ्रष्टतामे दृष्ट-श्रुत-परिशकित है'। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, वल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! मै शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशकित हूँ'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[2] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 21

घ "कैसे आचार-भ्रष्टतामें दृष्टश्रुत-परिशकित होता है?—०[3] । 22

ङ "कैसे दृष्टि-भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशकित होता है?—०[3] ।" 23

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥ १ ॥

§२–अपराधोंका यों ही स्वीकारना और दोषारोप

तव आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) आत्मादान

"भन्ते ! आ त्मा दा न[4] लेनेवाले भिक्षुको किन बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये?"

---

[1]ऊपर पृष्ठ ५१४(१७)की तरह। [2]देखो पृष्ठ ५१४(१६) (पाराजिक शब्द बदलकर)। [3]शील-भ्रष्टताकी तरह यहाँ भी समझना। [4]धर्मकी शुद्धिके विचारसे, भिक्षु जिस अधिकरण (=मुकदमे)को अपने ऊपर ले लेता है, उसे आत्मादान कहते हैं।

(उसकी) आचार भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१) न (उसकी) दृष्टि भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है।—यह दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक हैं।

(२) नियमानुसार प्रातिमोक्ष-स्थगित करना

"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगितकरने धार्मिक हैं?—(१) पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है (२) या पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है (३) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है (४) या शिक्षाके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है (५) धार्मिक सामग्रीके लिये (वह भिक्षु) जानेवाला होता है (६) धार्मिक सामग्रीका प्रत्याख्यान करता है (७) धार्मिक सामग्रीके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है (८) (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (९) (उसकी) आचार भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१०) (उसकी) दृष्टि भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है। यह दस प्रातिमोक्ष स्थगित करने धार्मिक हैं। 15

(क) पाराजिक दोषी परिषद्में हो—

(क) "कैसे पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है?—(१) यहाँ भिक्षुओ! जिन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे पाराजिक दोष (=धर्म)का दोषी होता है उन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको पाराजिक दोष करते देखा। (२) भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुको कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया'। (३) न भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा— आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया' बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! मैंने पाराजिक दोष किया'। तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर (वह) भिक्षु उस (१) देखे (२) उस सुने और (३) उस शंकासे चतुर्दशी या पूर्णमासीके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सबके बीच कह दे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोष किया है उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसके उपस्थित न होनेपर प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। (वह) प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक (=नियमानुकूल) है। 16

'भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर राजा चोर, आग पानी मनुष्य अ-मनुष्य (=भूत प्रेत) जंगली जानवर सरीसृप (=साँप आदि) प्राणसंकट या धर्मसंकट—इन आठ अन्तरायों (=विघ्नों)में से किसी विघ्नके कारण यदि परिषद् (=बैठक) उठ जावे तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर भिक्षु उस आवासमें या दूसरे आवासमें उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुके पाराजिककी बात चल रही थी वह बात अभी तै न हो पाई है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उस बात (=वस्तु, मुकदमे)का विनिश्चय (=फैसला) करे। इस प्रकार यदि (अभीष्ट) प्राप्त हो सके तो ठीक नहीं तो अमावास्या या पूर्णिमाके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस नामके भिक्षुके पाराजिककी कथा चल रही थी उस बातका फैसला नहीं हुआ। उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं करना चाहिये। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 17

(ख) शिक्षा प्रत्याख्यान कर्ता परिषद्में हो—"कैसे शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है?—(१) यदि भिक्षुओ! उन आकारों से भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको शिक्षाका प्रत्याख्यान करते देखा। (२) भिक्षुने (स्वयं) शिक्षाका प्रत्याख्यान करते नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने शिक्षाका प्रत्याख्यान किया है। (३) न स्वयं देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा— बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—

'आवुस ! मैंने शिक्षाका प्रत्याख्यान कर दिया।' तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 18

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

ख "कैसे धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों ० से भिक्षु (स्वयं) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाते देखता है। (२) भिक्षु (स्वयं) उस भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमें जाते नहीं देखता है, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा है—आवुस ! इस नाम-वाला भिक्षु धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैं धार्मिक सामग्रीमें नहीं जाता'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 19

["भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।]

ग "कैसे धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना?) होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों ० से भिक्षुने (स्वयं) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करते देखा। (२) ० दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! इस नामवाले भिक्षुने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया है'। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैंने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होने-पर ०[1]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 20

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है ।

ग "कैसे शील-भ्रष्टतामें देखा (=दृष्ट) सुना (=श्रुत) शंका किया (=परिशंकित होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारों०से भिक्षु (स्वयं) (उस) भिक्षुको शील-भ्रष्टतामें देखा-सुना-शंका किया देखता है। (२) भिक्षुने (स्वयं) ० नहीं देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! इस नामवाला भिक्षु शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित है'। (३) न ० स्वयं देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! मैं शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित हूँ'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 21

घ "कैसे आचार-भ्रष्टतामें दृष्टश्रुत-परिशंकित होता है?—०[3]। 22

ङ "कैसे दृष्टि-भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशंकित होता है?—०[3]।" 23

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥ १ ॥

§३—अपराधोंका यों ही स्वीकारना और दोषारोप

तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

(१) आत्मादान

"भन्ते ! आ त्मा दा न[4] लेनेवाले भिक्षुको किन बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये?"

---

[1]ऊपर पृष्ठ ५१४(१७)की तरह। [2]देखो पृष्ठ ५१४(१६) (पाराजिक शब्द बदलकर)। [3]शील-भ्रष्टताकी तरह यहाँ भी समझना। [4]धर्मकी शुद्धिके विचारसे, भिक्षु जिस अधिकरण (=मुकदमे)को अपने ऊपर ले लेता है, उसे आत्मादान कहते हैं।

(उसकी) आचार भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१०) न (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है।—यह दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक हैं।

(२) नियमानुसार प्रातिमोक्ष-स्थगित करना

"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगितकरने धार्मिक हैं?—(१) पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक) में बैठा होता है (२) या पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है (३) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है (४) या शिक्षाके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है (५) धार्मिक सामग्रीके लिये (वह भिक्षु) जानेवाला होता है (६) धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करता है (७) धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है (८) (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (९) (उसकी) आचार भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१०) (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है। यह दस प्रातिमोक्ष स्थगित करने धार्मिक हैं। I5

(क) पाराजिक दोषी परिषद्में हो—

(क) "कैसे पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक) में बैठा होता है?—(१) यहाँ भिक्षुओ! जिन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे पाराजिक दोष (=धर्म) का दोषी होता है, उन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको पाराजिक दोष करते देखा। (२) भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुको कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया'। (३) न भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया' बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! मैंने पाराजिक दोष किया'। तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर (वह) भिक्षु उस (१) देखे (२) उस सुने और (३) उस शंकासे चतुर्दशी या पूर्णमासीके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सबके बीच कह दे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोष किया है उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ।' उसके उपस्थित न होनेपर प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। (यह) प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक (=नियमानुकूल) है। I6

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर, राजा चोर, आग पानी मनुष्य अ-मनुष्य (=भूत प्रेत) जंगली जानवर सरीसृप (=साँप आदि) प्राणसंकट या ब्रह्मचर्यसंकट—इन आठ अन्तरायों (=विघ्नों) में से किसी विघ्नके कारण यदि परिषद् (=बैठक) उठ जावे तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर भिक्षु उस आवासमें या दूसरे आवासमें उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सबके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुकी पाराजिककी बात चल रही थी वह बात अभी तै न हो पाई है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उस बात (=वस्तु, मुकदमे) का विनिश्चय (=फैसला) करे। इस प्रकार यदि (अभीष्ट) प्राप्त हो सके तो ठीक नहीं तो अमावास्या या पूर्णिमाके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सबके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस नामके भिक्षुके पाराजिककी कथा चल रही थी उस बातका फैसला नहीं हुआ। उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ।' उसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं करना चाहिये। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। I7

(ख) शिक्षा प्रत्याख्यानकर्ता परिषद्में हो—"कैसे शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है?—(१) यदि भिक्षुओ! उन आकारों से भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको शिक्षाका प्रत्याख्यान करते देखा। (२) भिक्षुने (स्वयं) शिक्षाका प्रत्याख्यान करते नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने शिक्षाका प्रत्याख्यान किया है।' (३) न स्वयं देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा— बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—

'आवुस ! मैने शिक्षाका प्रत्याख्यान कर दिया।' तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 18

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

क "कैसे धार्मिक सामग्रीमे नही जाता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० से भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमे नही जाते देखता है। (२) भिक्षु (स्वय) उस भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमे जाते नही देखता है, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा है—आवुस ! इस नामवाला भिक्षु धार्मिक सामग्रीमे नही जाता। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मै धार्मिक सामग्रीमें नही जाता'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 19

["भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।]

ख "कैसे धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना?) होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० से भिक्षुने (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करते देखा। (२) ० दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! इस नामवाले भिक्षुने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया है'। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैंने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 20

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है ।

ग "कैसे शील-भ्रष्टतामें देखा (=दृष्ट) सुना (=श्रुत) शका किया (=परिशकित होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो०से भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको शील-भ्रष्टतामे देखा-सुना-शका किया देखता है। (२) भिक्षुने (स्वय) ० नही देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! इस नामवाला भिक्षु शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशकित है'। (३) न ० स्वय देखा, नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! मै शील भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशकित हूँ'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 21

घ "कैसे आचार-भ्रष्टतामें दृष्टश्रुत-परिशकित होता है?—०[3]। 22

ङ "कैसे दृष्टि-भ्रष्टतामें दृष्ट-श्रुत-परिशकित होता है?—०[3]।" 23

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥ १ ॥

§२—अपराधोंका यों ही स्वीकारना और दोषारोप

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) आत्मादान

"भन्ते ! आत्मादान[4] लेनेवाले भिक्षुको किन बातोसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये?"

---

[1]ऊपर पृष्ठ ५१४(१७)की तरह। [2]देखो पृष्ठ ५१४(१६) (पाराजिक शब्द बदलकर)। [3]शील-भ्रष्टताकी तरह यहाँ भी समझना। [4]धर्मकी शुद्धिके विचारसे, भिक्षु जिस अधिकरण (=मुकदमे)को अपने ऊपर ले लेता है, उसे आत्मादान कहते हैं।

(उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१०) न (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है।—यह दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक हैं।

(२) नियमानुसार प्रातिमोक्ष-स्थगित करना

"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने धार्मिक हैं?—(१) पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है (२) या पाराजिककी बात वहाँ चल्ती होती है (३) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है (४) या शिक्षाके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चल्ती होती है (५) धार्मिक सामग्रीके लिये (वह भिक्षु) जानेवाला होता है (६) धार्मिक सामग्रीका प्रत्याख्यान करता है (७) धार्मिक सामग्रीके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चल्ती होती है (८) (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (९) (उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है (१०) (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शंकित होती है। यह दस प्रातिमोक्ष स्थगित करने धार्मिक हैं। 15

(क) पाराजिक दोषी परिषद्में हो—

(क) "कैसे पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)में बैठा होता है?—(१) यहाँ भिक्षुओ! जिन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे पाराजिक दोष (=धर्म)का दोषी होता है उन आकारों=लिंगों=निमित्तोंसे भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको पाराजिक दोष करते देखा। (२) भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुको कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया'। (३) न भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वयं) देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया' बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! मैंने पाराजिक दोष किया'। तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर (वह) भिक्षु उस (१) देखे (२) उस सुने और (३) उस शंकासे चतुर्दशी या पूर्णमासीके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कह दे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोष किया है उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसके उपस्थित न होनेपर प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। (वह) प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक (=नियमानुकूल) है। 16

भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर राजा चोर आग पानी मनुष्य अ-मनुष्य (=भूत प्रेत) जंगली जानवर, सरीसृप (=साँप आदि) प्राणसंकट या धर्मसंकट—इन आठ अन्तरायों (=विघ्नों)में से किसी विघ्नके कारण यदि परिषद् (=बैठक) उठ जावे तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर भिक्षु उस आवासमें या दूसरे आवासमें उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने इस नामवाले भिक्षुके पाराजिककी बात चल रही थी वह बात अभी तै न हो पाई है। यदि संघ उचित समझे तो संघ उस बात (=वस्तु, मुकदमे)का विनिश्चय (=फैसला) करे। इस प्रकार यदि (अभीष्ट) प्राप्त हो सके तो ठीक नहीं तो अमावास्या या पूर्णिमाके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर संघके बीच कहे—'भन्ते! संघ मेरी सुने—इस नामके भिक्षुके पाराजिककी कथा चल रही थी उस बातका फैसला नहीं हुआ। उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसकी उपस्थितिमें प्रातिमोक्षका उद्देश नहीं करना चाहिये। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 17

(ख) शिक्षा प्रत्याख्यान कर्त्ता परिषद्में हो—"कैसे शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है?—(१) यदि भिक्षुओ! उन आकारों से भिक्षुने (स्वयं) उस भिक्षुको शिक्षाका प्रत्याख्यान करते देखा। (२) भिक्षुने (स्वयं) शिक्षाका प्रत्याख्यान करते नहीं देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने शिक्षाका प्रत्याख्यान किया है।' (३) न स्वयं देखा नहीं दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा— बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—

बखानते है, वैसे धर्मको मैंने बहुत सुना, धारण किया, वचनसे परिचित किया (=समझा) मनसे जाँचा, दृ ष्टि से अच्छी तरह समझा है न ? यह धर्म मुझमे है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षु बहुश्रुत ० नही है, तो उसे कहनेवाले होगें—पहिले आयुष्मान् आ ग म को पढे (५) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—(भिक्षु भिक्षुणी) दोनोके प्रा ति मो क्षो को मैंने विस्तारके साथ हृदयस्थ किया, सविभक्त किया, सुप्पवत्ती, सू त्रो और अनुव्यजनोसे अच्छी तरह विनिश्चित किया है न ? यह धर्म मुझमें है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षुने दोनो प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृदयस्थ किया ० अच्छी तरह नही विनिश्चित किया है, तो—इसे भगवान् ने कहाँपर कहा ?—(पूछनेपर) उत्तर न दे सकेगा। फिर उसे कहनेवाले होगें—पहिले आयुष्मान् विनयको पढें। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर यह पाँच बातें (पहिले) अपने भीतर प्रत्यवेक्षण करके दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये।" 25

२—"भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातो (=धर्मों)को अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये—(१) समयपर बोलूँगा, बेसमय नही, (२) यथार्थ बोलूँगा, अयथार्थ नही, (३) मधुरताके साथ बोलूँगा, कठोरताके साथ नही, (४) सार्थक बोलूँगा, निरर्थक नही, (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे बोलूँगा, भीतर द्वेष रखकर नही। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको० इन पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये।" 26

३—"भन्ते ! अधर्ममे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे (=विप्रतिसार) पछतावा लाना चाहिये ?"

"उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे पछतावा लाना चाहिये—(१) आयुष्मान् असमयसे दोषारोप करते हैं समयसे नही, आपका पछतावा व्यर्थ। (२) ०अयथार्थ बोलते है, यथार्थ नही०। (३) ० कठोरताके साथ दोषारोप करते हैं, मधुरताके साथ नही०। (४) ०निरर्थक दोषारोप करते है, सार्थक नही०। (५) ०भीतर द्वेष रखकर दोषारोप करते है, मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही०। उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे विप्रतिसार (=पछतावा) दिलाना चाहिये। सो क्यो ? जिसमें दूसरे भिक्षु भी असत्य दोषारोप करनेकी इच्छा न करें।" 27

४—'भन्ते ! अधर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे अ-विप्रतिसार (=न पछतावा) धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारमे अ-विप्रतिसार धारण करना चाहिये—(१) बेसमय आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया, समयमे नही, आपको विप्रतिसार (=पछतावा) नही करना चाहिये। (२) असत्यसे आयुष्मान्पर दोषारोप किया गया, सत्यसे नही, ०। (३) कठोरतासे०, मधुरतासे नही, ०। (४) ०निरर्थकसे०, सार्थकसे नही,०। (५) भीतर द्वेष रखकर० मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही,०। ऐसे पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार कराना चाहिये।" 28

५—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे अविप्रतिसार धारण करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे०—(१) समयसे आयुष्मान्ने दोषारोप किया, बेसमयसे नही, तुम्हे पछताना नही चाहिये। (२) सत्यमे०, अ-सत्यमे नही, ०। (३) मधुरतासे०, कठोरतासे नही, ०। (४) सार्थकसे०, निरर्थकसे नही, ०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तमे०, भीतर द्वेष रखकर नही, तुम्हे पछताना

"उपालि! आत्मादान लेनेवाले भिक्षुको पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये। (१) आत्मादान लेनेकी इच्छावाले भिक्षुको यह सोचना चाहिये—जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ, क्या उसका काल है या नहीं। यदि उपालि! सोचते हुए यह समझे—यह इस आत्मादानका अकाल है, काल नहीं है, तो उपालि! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (२) किन्तु यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—यह इस आत्मादानका काल है, अकाल नहीं है, तो उपालि! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या वह भूत (=यथार्थ) है या नहीं है। यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अभूत है, भूत नहीं है, तो उपालि! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (३) किन्तु यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान भूत है, अभूत नहीं, तो उपालि! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ, क्या यह आत्मादान अर्थ-सहित (=सार्थक) है या नहीं। यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अनर्थक है, सार्थक नहीं, तो उपालि! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (४) किन्तु यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान सार्थक है, अनर्थक नहीं, तो उपालि! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको धर्म और विनयके अनुसार सहायक पाऊँगा या नहीं। यदि उपालि! सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको धर्म और विनयके अनुसार मैं सहायक न पा सकूँगा, तो उपालि! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (५) किन्तु यदि उपालि! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको धर्म और विनयके अनुसार मैं सहायक पा सकूँगा, तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'क्या इस आत्मादानके लेनेपर उसके कारण संघमें भंडन—कलह, विवाद, संघ-भेद, संघ राजी, संघ-व्यवस्थान (=संघमें झगड़ा-बिलगी=अलग-नानाकरण) होगा या नहीं? यदि उपालि! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लेनेपर उसके कारण संघमें कलह होगा, तो उपालि! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। किन्तु यदि उपालि! भिक्षु सोचते हुये यह समझे— उसके कारण संघमें कलह नहीं होगा, तो उपालि! वैसे आत्मादानको लेना चाहिये। उपालि! इस प्रकार पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेनेपर पीछे भी पछतावा नहीं करना होगा। 24

(२) दोषारोपकके लिये अपेक्षित बातें

१—"भन्ते! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त कितनी बातोंके बारेमें अपने भीतर प्रत्यवेक्षण (=अच्छी तरह देख भाल) कर दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये?"

(१) उपालि! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध कायिक आचरणवाला हूँ न? छिद्ररहित मलरहित परिशुद्ध कायिक आचरणसे युक्त हूँ न? यह धर्म मुझमें है या नहीं है? यदि उपालि! भिक्षु शुद्ध कायिक आचरणवाला नहीं है ...। तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—आयुष्मान् (पहिले स्वयं तो) कायिक (आचार)का अभ्यास करें। (२) और फिर उपालि! ... इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध वाचिक आचरणवाला हूँ न? ...। (३) और फिर उपालि! ... इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—सब्रह्मचारियोंमें द्रोह-रहित मैत्री भाव युक्त मेरा चित्त बना रहता है न? यह धर्म मुझमें है या नहीं। यदि उपालि! भिक्षुका सब्रह्मचारियोंमें द्रोह-रहित मैत्रीभावयुक्त चित्त बना नहीं रहता तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—'आयुष्मान् पहिले सब्रह्मचारियोंमें मैत्रीभाव तो कायम करें।' (४) और उपालि! ... इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं बहुश्रुत श्रुतधर श्रुत-संचयी तो हूँ न? जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण है, (जो) अर्थ और व्यंजनके सहित, केवल परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको

बखानते है, वैसे धर्मको मैंने बहुत सुना, धारण किया, वचनसे परिचित किया (=समझा) मनसे जाँचा, दृष्टिसे अच्छी तरह समझा है न ? यह धर्म मुझमें है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षु बहुश्रुत ० नहीं है, तो उसे कहनेवाले होंगे—पहिले आयुष्मान् आगमको पढे (५) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—(भिक्षु भिक्षुणी) दोनोंके प्रातिमोक्षोको मैंने विस्तारके साथ हृदयस्थ किया, सविभक्त किया, सुप्रवत्ती, सूत्रो और अनुव्यजनोंसे अच्छी तरह विनिश्चित किया है न ? यह धर्म मुझमे है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षुने दोनों प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृदयस्थ किया ० अच्छी तरह नहीं विनिश्चित किया है, तो—इसे भगवान् ने कहाँपर कहा ?—(पूछनेपर) उत्तर न दे सकेगा। फिर उसे कहनेवाले होगे—पहिले आयुष्मान् विनयको पढे। उपालि ! दोपारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोपारोप करनेकी इच्छा होनेपर यह पाँच बाते (पहिले) अपने भीतर प्रत्यवेक्षण करके दूसरेपर दोपारोपण करना चाहिये।" 25

२—"भन्ते ! दोपारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोपारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातो (=धर्मो)को अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोपारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! दोपारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोपारोप करनेकी इच्छा होनेपर पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोपारोप करना चाहिये—(१) समयपर बोलूँगा, बेसमय नही, (२) यथार्थ बोलूँगा, अयथार्थ नहीं, (३) मधुरताके साथ बोलूँगा, कठोरताके साथ नही, (४) सार्थक बोलूँगा, निरर्थक नहीं, (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे बोलूँगा, भीतर द्वेप रखकर नही। उपालि ! दोपारोपक भिक्षुको० इन पाँच बातोंको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोपारोप करना चाहिये।" 26

३—"भन्ते ! अधर्मसे दोपारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे (=विप्रतिसार) पछतावा लाना चाहिये ?"

"उपालि ! अधर्मसे दोपारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे पछतावा लाना चाहिये—(१) आयुष्मान् असमयसे दोपारोप करते है समयसे नही, आपका पछतावा व्यर्थ। (२) ०अयथार्थ बोलते है, यथार्थ नही०। (३) ० कठोरताके साथ दोपारोप करते है, मधुरताके साथ नही०। (४) ०निरर्थक दोपारोप करते है, सार्थक नही०। (५) ०भीतर द्वेप रखकर दोपारोप करते है, मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही०। उपालि ! अधर्मसे दोपारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे विप्रतिसार (=पछतावा) दिलाना चाहिये। सो क्यो ? जिसमें दूसरे भिक्षु भी असत्य दोपारोप करनेकी इच्छा न करे।" 27

४—'भन्ते ! अधर्मपूर्वक दोपारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे अ-विप्रतिसार (=न पछतावा) धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार धारण करना चाहिये—(१) बेसमय आयुष्मान् पर दोपारोप किया गया, समयसे नही, आपको विप्रतिसार (=पछतावा) नही करना चाहिये। (२) असत्यसे आयुष्मान्पर दोषारोप किया गया, सत्यसे नही, ०। (३) कठोरतासे०, मधुरतासे नही, ०। (४) ०निरर्थकसे०, सार्थकसे नही,०। (५) भीतर द्वेप रखकर० मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही,०। ऐसे पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार कराना चाहिये।" 28

५—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोपारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे अविप्रतिसार धारण करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे०—(१) समयसे आयुष्मान्ने दोपारोप किया, बेसमयसे नही, तुम्हे पछताना नही चाहिये। (२) सत्यसे०, अ-सत्यसे नही, ०। (३) मधुरतासे०, कठोरतासे नही, ०। (४) सार्थकसे०, निरर्थकसे नही, ०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे०, भीतर द्वेप रखकर नही, तुम्हें पछताना

उपालि ! आत्मादान लेनेवाले भिक्षुको पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये। (१) आत्मादान लेनेकी इच्छावाले भिक्षुको यह सोचना चाहिये—जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या उसका काल है या नहीं। यदि उपालि ! सोचते हुए यह समझे—यह इस आत्मादानका अकाल है काल नहीं है तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (२) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह इस आत्मादानका काल है अकाल नहीं है तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या वह भूत (=यथार्थ) है या नहीं है। यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अ-भूत है भूत नहीं है तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (३) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान भूत है अभूत नहीं तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये— जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या यह आत्मादान अर्थ-सहित (=सार्थक) है या नहीं। यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अनर्थक है सार्थक नहीं तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (४) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान सार्थक है अनर्थक नहीं तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मैं लेना चाहता हूँ क्या इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार सहायक पाऊँगा या नहीं। यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार मैं सहायक न पा सकूँगा तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। (५) किन्तु यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमें सम्भ्रान्त भिक्षुओंको ध र्म और वि न य के अनुसार मैं सहायक पा सकूँगा तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'क्या इस आत्मादानके लेनेपर, उसके कारण संघमें भंडन—कलह विवाद संघ भेद सं घ रा जी संघ-व्यवस्थान (=संघमें अलग-बिलगी—संघका-नानाकरण) होगा या नहीं ? यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लेनेपर उसके कारण संघमें कलह होगा तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नहीं लेना चाहिये। किन्तु यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे— उसके कारण संघमें कलह नहीं होगा तो उपालि ! वैसे आत्मादानको लेना चाहिये। उपालि ! इस प्रकार पाँच बातोंसे युक्त आत्मादानको लेनेपर पीछे भी पछतावा नहीं करना होगा। 24

(२) दोषारोपके लिये अपेक्षित बातें

१— भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त कितनी बातोंके बारेमें अपने भीतर प्रत्यवेक्षण (=अच्छी तरह देख-भाल) कर दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये ?

(१) उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध कायिक आचरणवाला हूँ न ? छिद्ररहित मलरहित परिशुद्ध कायिक आचरणसे युक्त हूँ न ? यह धर्म मुझमें है या नहीं है ? यदि उपालि ! भिक्षु शुद्ध कायिक आचरणवाला नहीं है । तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—'आयुष्मान् (पहिले स्वयं तो) कायिक (आचार)का अभ्यास करें। (२) और फिर उपालि ! इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं शुद्ध वाचिक आचरण वाला हूँ न ? । (३) और फिर उपालि ! इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—सब्रह्मचारियोंमें द्रोह रहित मैत्री भाव युक्त मेरा चित्त सदा रहता है न ? यह धर्म मुझमें है या नहीं। यदि उपालि ! भिक्षुका सब्रह्मचारियोंमें द्रोह-रहित मैत्रीभावयुक्त चित्त सदा नहीं रहता तो उसके लिये कहनेवाले होंगे—'आयुष्मान् पहिले सब्रह्मचारियोंमें मैत्रीभाव तो कायम करें। (४) और उपालि ! इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मैं बहुश्रुत श्रुतधर श्रुत-संचयी तो हूँ न ? जो वह धर्म आदि-कल्याण मध्य कल्याण पर्यवसान-कल्याण हैं (जो) अर्थ और व्यंजन सहित केवल—परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको

बखानते हैं, वैसे धर्मको मैंने वहुत सुना, धारण किया, वचनसे परिचित किया (=समझा) मनसे जाँचा, दृष्टि से अच्छी तरह समझा है न ? यह धर्म मुझमे है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षु बहुश्रुत ० नही है, तो उसे कहनेवाले होंगे—पहिले आयुष्मान् आ ग म को पढे (५) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—(भिक्षु भिक्षुणी) दोनोके प्रा ति मो क्षो को मैंने विस्तारके साथ हृदयस्थ किया, सविभक्त किया, सुप्पवत्ती, सू त्रो और अनुव्यजनोंसे अच्छी तरह विनिश्चित किया है न ? यह धर्म मुझमें है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षुने दोनो प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृदयस्थ किया ० अच्छी तरह नही विनिश्चित किया है, तो—इसे भगवान् ने कहाँपर कहा ?—(पूछनेपर) उत्तर न दे सकेगा। फिर उसे कहनेवाले होगे—पहिले आयुष्मान् विनयको पढे। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर यह पाँच बातें (पहिले) अपने भीतर प्रत्यवेक्षण करके दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये।" 25

२—"भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातो (=धर्मों)को अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये—(१) समयपर बोलूँगा, बेसमय नही, (२) यथार्थ बोलूँगा, अयथार्थ नही, (३) मधुरताके साथ बोलूँगा, कठोरताके साथ नही, (४) सार्थक बोलूँगा, निरर्थक नही, (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे बोलूँगा, भीतर द्वेष रखकर नही। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको० इन पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये।" 26

३—"भन्ते ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे (=विप्रतिसार) पछतावा लाना चाहिये ?"

"उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे पछतावा लाना चाहिये—(१) आयुष्मान् असमयसे दोषारोप करते हैं समयसे नही, आपका पछतावा व्यर्थ। (२) ०अयथार्थ बोलते है, यथार्थ नही०। (३) ० कठोरताके साथ दोषारोप करते है, मधुरताके साथ नही०। (४) ०निरर्थक दोषारोप करते है, सार्थक नही०। (५) ०भीतर द्वेष रखकर दोषारोप करते हैं, मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही०। उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे विप्रतिसार (=पछतावा) दिलाना चाहिये। सो क्यो ? जिसमें दूसरे भिक्षु भी असत्य दोषारोप करनेकी इच्छा न करें।" 27

४—'भन्ते ! अधर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे अ-विप्रतिसार (=न पछतावा) धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार धारण करना चाहिये—(१) बेसमय आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया, समयसे नही, आपको विप्रतिसार (=पछतावा) नही करना चाहिये। (२) असत्यमे आयुष्मान्पर दोषारोप किया गया, सत्यसे नही, ०। (३) कठोरतासे०, मधुरतासे नही, ०। (४) ०निरर्थकसे०, सार्थकसे नही,०। (५) भीतर द्वेप रखकर० मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही,०। ऐसे पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार कराना चाहिये।" 28

५—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे अविप्रतिसार धारण करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे०—(१) समयसे आयुष्मान्ने दोषारोप किया, बेसमयमे नही, तुम्हे पछताना नही चाहिये। (२) सत्यसे०, अ-सत्यसे नही, ०। (३) मधुरतामे०, कठोरतासे नही, ०। (४) सार्थकसे०, निरर्थकमे नही, ०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तमे०, भीतर द्वेप रखकर नही, तुम्हे पछताना

नहीं चाहिये। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकार अविप्रतिसार धारण करना चाहिये। 29

६— 'भन्ते ! धर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये ?

'उपालि ! पाँच प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये—(१) समयसे आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया है असमयसे नहीं नाराज (=विप्रतिसार) नहीं होना चाहिये। (२) सत्यसे असत्यसे नहीं। (३) मधुरताके साथ कठोरताके साथ नहीं। (४) सार्थक निरर्थक नहीं। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे भीतर द्वेष रखकर नहीं। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे। 30

७— 'भन्ते ! दोषारोप करनेवाले भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातोंको अपने भीतर मनमें करके दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये ?

'उपालि ! पाँच बातोंको —(१) कारुणिकता (२) हितैषिता (३) अनुकम्पकता (४) आपत्तिसे उद्धार होना (५) विनय पुरस्सर होना। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे। 31

८— 'भन्ते ! दोषारोप किये गये भिक्षुको कितनी बातें (=धर्म) (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये ?

'उपालि ! दोषारोप किये गये भिक्षुको सत्य और अकोप्य (=अटलपना) ये दो बातें (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये। 32

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

नवाँ पातिमोक्खट्ठपनक्खन्धक समाप्त ॥९॥

१०—भिक्षुणी-स्कंधक

१—भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या, उपसम्पदा और भिक्षुओके साथ अभिवादन । २—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, आपत्ति-प्रतिकार, सघ-कर्म, अधिकरण-शमन, और विनय-वाचन । ३—अभद्र परिहास । ४—उपदेश-श्रवण, शरीरका सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना । ५—आसन, वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ स्थगित करना, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा । ६—अरण्य-वास-निषेध, भिक्षुणी-निवास निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दडितको साथिन देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान ।

§१—भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या-उपसम्पदा, और भिक्षुओंके साथ अभिवादन और भिक्षुणियोंके शिक्षापद

१—*कपिलवस्तु*

उस समय बुद्ध भगवान् शा क्यो(के देश)में क पि ल व स्तु के न्य ग्रो धा रा म में विहार करते थे ।

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई। आकर भगवान्को वन्दनाकर, एक ओर खळी हो गई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्से कहा—"भन्ते ! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म)में घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावें।"

"नही गौतमी ! मत तुझे (यह) रुचै—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें०।"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

तब म हा प्र जा प ती गौ त मी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म)में स्त्रियोको घर छोळ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने)की अनुज्ञा नही करते—जान, दु:खी=दुर्मना अश्रु-मुखी (हो) रोती, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

२—*वैशाली*

(१) स्त्रियोंका भिक्षुणी होना

भगवान् क पि ल-व स्तु मे इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वै शा ली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये। क्रमश चारिका करते हुए, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी, केशोको कटाकर काषायवस्त्र पहिन, बहुतमी 'शाक्य-स्त्रियो'के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली। क्रमश चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी (वहाँ) पहुँची। महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे, दु:खी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बडा द्वार, जिसपर कोठा होता था)के बाहर जा खळी हुई। आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती०को खळा देखकर पूछा—

नहीं चाहिये। उपालि! ऐसे पाँच प्रकार अविप्रतिसार धारण करना चाहिये। 29

६—'भन्ते! धर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये?

"उपालि! पाँच प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये—(१) समयसे आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया है असमयसे नहीं नाराज (=विप्रतिसार) नहीं होना चाहिये। (२) सत्यसे असत्यसे नहीं। (३) मधुरताके साथ कठोरताके साथ नहीं। (४) सार्थक निरर्थक नहीं। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे भीतर द्वेष रखकर नहीं। उपालि! ऐसे पाँच प्रकारसे। 30

७—"भन्ते! दोषारोप करनेवाले भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातोंको अपने भीतर मनमें करके दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये?

'उपालि! पाँच बातोंको—(१) कारुणिकता (२) हितैषिता (३) अनुकम्पकता (४) आपत्तिसे उद्धार होना (५) विनय पुरस्सर होना। उपालि! ऐसे पाँच प्रकारसे। 31

८—'भन्ते! दोषारोप किये गये भिक्षुको कितनी बातें (=धर्म) (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये?

'उपालि! दोषारोप किये गये भिक्षुको सत्य और अकोप्य (=अटलपना) ये दो बातें (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये। 32

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

नवाँ पातिमोक्खट्ठपनक्खन्धक समाप्त ॥९॥

——

१०—भिक्षुणी-स्कंधक

१—भिक्षुणियोकी प्रव्रज्या, उपसम्पदा और भिक्षुओके साथ अभिवादन। २—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, आपत्ति-प्रतिकार, सघ-कर्म, अधिकरण-शमन, और विनय-वाचन। ३—अभद्र परिहास। ४—उपदेश-श्रवण, शरीरका सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना। ५—आसन, वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ स्थगित करना, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा। ६—अरण्य-वास-निषेध, भिक्षुणी-निवास निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दडितको साथिन देना, दुवारा उपसम्पदा, शौच-स्नान।

§१—भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या-उपसम्पदा, और भिक्षुओंके साथ अभिवादन और भिक्षुणियोंके शिक्षापद

१—कपिलवस्तु

उस समय बुद्ध भगवान् शाक्यो(के देश)में कपिलवस्तुके न्यग्रोधाराममें विहार करते थे।

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई। आकर भगवान्को वन्दनाकर, एक ओर खळी हो गई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्से कहा—"भन्ते! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म)मे घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावें।"

"नही गौतमी! मत तुझे (यह) रुचै—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें०।"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

तब महाप्रजापती गौतमी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म)में स्त्रियोको घर छोळ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने)की अनुज्ञा नही करते—जान, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी (हो) रोती, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

२—वैशाली

(१) स्त्रियोंका भिक्षुणी होना

भगवान् कपिलवस्तुमे इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वैशाली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये। क्रमश चारिका करते हुए, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशालीमें महावनकी कूटागारशालामें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी, केशोको कटाकर काषायवस्त्र पहिन, बहुतसी 'शाक्य-स्त्रियों'के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली। क्रमश चलकर वैशालीमें जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी (वहाँ) पहुँची। महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे, दुःखी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बडा द्वार, जिसपर कोठा होता था)के बाहर जा खळी हुई।

आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती०को खळा देखकर पूछा—

'गौतमी ! तू क्या फूले पैरो ?

'भन्ते ! आनन्द ! तथागत प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंको घर छोड़ बेघर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नहीं देते।

'गौतमी ! तू यहीं रह, बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से बोले—

'भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खड़ी है (कि)—भगवान् (बुद्ध-धर्ममें) स्त्रियोंकी प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको (बुद्ध-धर्ममें) प्रव्रज्या मिले।

"नहीं आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या।

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द । तीसरी बार भी ।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—भगवान् तथागत प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नहीं देते क्यों न मैं दूसरे प्रकारसे प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो स्त्रियाँ स्रोत-आपत्तिफल सकृदागामि-फल अनागामि-फल अर्हत्व-फलको साक्षात् कर सकती हैं ?

'साक्षात् कर सकती है आनन्द ! तथागत प्रवेदित ।

'यदि भन्ते ! तथागत प्रवेदित धर्म-विनयमें प्रव्रजित हो स्त्रियाँ अर्हत्व-फलको साक्षात् करने योग्य हैं। जो भन्ते ! अभिभाविका पोषिका क्षीर-दायिका हो भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको प्रव्रज्या मिले।

(२) भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म

'आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=कड़ी शर्तों)को स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसम्पदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान अंजलि जोड़ना सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्कार पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुणी) उपगमन (=वर्षावासके आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म ।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-संघसे पर्येषण (प्रार्थना) करना चाहिये। यह ।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको (भिक्षु, भिक्षुणी) दोनों संघोंमें देखे सुने जाने तीनों स्थानोंसे प्रवारणा करनी चाहिये।

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों संघोंमें पक्ष-मानता करनी चा ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे। यह भी ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ ।

(८) लेकिन भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कहनेका रास्ता खुला है। यह ।

'यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे तो उसकी उपसम्पदा हो।

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पास, इन आठ गुरु-धर्मोंको समझ (=उद्ग्रहण=पढ)कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये। जाकर महाप्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी! तू इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)०।"

"भन्ते! आनन्द! जैसे शौकीन शिरसे नहाये अल्प-वयस्क, तरुण स्त्री या पुरुष उत्पल की माला, वार्षिक (=जूही)की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया)की मालाको पा, दोनो हाथोमे ले, (उसे) उत्तम-अग शिरपर रखता है। ऐसे ही भन्ते! मै इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करती हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्‌से बोले—

"भन्ते! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार किया।"

"आनन्द! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पाती, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्ष तक ठहरता। लेकिन चूँकि आनन्द! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुई, अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा। आनन्द! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोळे पुरुषोवाले कुल, चोरो द्वारा, भँडियाहो (=कुम्भ-चोरो) द्वारा आसानीसे ध्वसनीय (=सु-प्र-ध्वस्य) होते है, इसी प्रकार आनन्द! जिस धर्म-विनयमे स्त्रियाँ ०प्रव्रज्या पाती है, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नही होता। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार,) लहलहाते धानके खेतमें सेतट्ठिका (=सफेदा)नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द! जिस धर्म-विनय में०। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार) ऊखके खेतमें माजेष्ठिका (=लाल रोग) नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द०। आनन्द! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, बळे तालावकी रोक-थामके लिये, मेड (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द! मैंने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोके जीवनभर अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्थापित किया।"

भिक्षुणियोके आठ गुरु धर्म समाप्त

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! इन शाक्यनियोके साथ मुझे कैसे करना चाहिये?"

तब भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा महाप्रजापती गौतमीको सदर्शित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। तब भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित सप्रहर्षित हो महाप्रजापती गौतमी भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई। तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

(३) भिक्षुणियोंकी उपसम्पदा

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाकी।" 2

तब भिक्षुणियोने महाप्रजापती गौतमीसे यह कहा—

"आर्याकी उपसम्पदा नही है, हम सबको उपसम्पदा मिली है। भगवान्‌ने इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गई। जाकर आयुष्मान आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"भन्ते आनन्द! यह भिक्षुणियाँ मुझसे यह कहती है—आर्याको उपसम्पदा नहीं है, हम सबको

"गौतमी ! तू क्या धूल पैरो ?

'भन्ते ! आनन्द ! तथागत-प्रवेदित धर्म विनयमें स्त्रियोंको घर छोळ बेघर प्रव्रज्याकी भ
वान् अनुज्ञा नही देते।

'गौतमी ! तू यहीं रह बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये मै भगवान्से प्रार्थना करता हू

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर
ओर बैठ भगवान्से बोले—

'भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे दु खी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती
द्वार-कोष्ठकके बाहर खळी है (कि)—भगवान् (बुद्ध-धर्ममे) स्त्रियोकी प्रव्रज्याकी अ
नही देते। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोको (बुद्ध-धर्ममे) प्रव्रज्या मिले।

'नही आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममें स्त्रियोकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द । तीसरी बार भी ।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—भगवान् तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे स्त्रियोकी घ
बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नही देते क्यो न मैं दूसरे प्रकारसे प्रव्रज्याकी अनुज्ञा मॉगू। तब आयुष्
आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! क्या तथागत प्रवेदित धर्ममे घरसे बेघर प्रव्रजित हो स्त्रियॉ स्रोत-आपत्तिफ
सकृदागामि-फल अनागामि-फल अर्हत्व-फलको साक्षात् कर सकती है ?

'साक्षात् कर सकती है आनन्द ! तथागत प्रवेदित ।

'यदि भन्ते ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे प्रव्रजित हो स्त्रियॉ अर्हत्व-फलको साक्ष
करने योग्य है। तो भन्ते ! अभिभाविका पोषिका क्षीर-दायिका हो भगवान्की मौसी महाप्रजाप
गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते
अच्छा हो स्त्रियोको प्रव्रज्या मिले।

(२) भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म

"आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=कळी शर्तों)को स्वीकार करे,
उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसम्पदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्
भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान अजलि जोळना सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्का
पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुका) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म ।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-सघसे पर्येषण (प्रार्थना) करना चाहिये। यह ।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको (भिक्षु भिक्षुणी) दोनो सघोमे देखे सुने श
तीनो स्थानासे प्रवारणा करनी चाहिये।

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनो सघोमे पक्ष-मानता करनी चा ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे। यह भी ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोका भिक्षुओको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ ।

(८) लेकिन भिक्षुओका भिक्षुणियोको कहनेका रास्ता खुला है। यह ।

यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करे, तो उसकी उ
सम्पदा हो।

तव आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पास, इन आठ गुरु-धर्मोको समझ (=उद्ग्रहण=पढ)कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये। जाकर महाप्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी! तू इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)०।"

"भन्ते! आनन्द! जैसे शौकीन शिरसे नहाये अल्प-वयस्क, तरुण स्त्री या पुरुष उत्पल की माला, वार्षिक (=जूही)की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया)की मालाको पा, दोनो हाथोमे ले, (उसे) उत्तम-अग शिरपर रखता है। ऐसे ही भन्ते! मै इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करती हूँ।"

तव आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्‌से बोले—

"भन्ते! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार किया।"

"आनन्द! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पाती, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्ष तक ठहरता। लेकिन चूँकि आनन्द! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुई, अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा। आनन्द! जैसे वहुत स्त्रीवाले और थोळे पुरुषोवाले कुल, चोरो द्वारा, भँडियाहो (=कुम्भ-चोरो) द्वारा आसानीसे ध्वसनीय (=सु-प्र-ध्वस्य) होते है, इसी प्रकार आनन्द! जिस धर्म-विनयमे स्त्रियाँ ०प्रव्रज्या पाती है, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नही होता। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार,) लहलहाते धानके खेतमे सेतट्ठिका (=सफेदा)नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द! जिस धर्म-विनय में०। जैसे आनन्द! सम्पन्न (=तैयार) ऊखके खेतमें मञ्जेष्ठिका (=लाल रोग) नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द०। आनन्द! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, वळे तालावकी रोक-थामके लिये, मेड (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द! मैने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोके जीवनभर अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्थापित किया।"

भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म समाप्त

तव म हा प्र जा प ती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! इन शा क्य नि यो के साथ मुझे कैसे करना चाहिये?"

तव भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा महाप्रजापती गौतमीको सदर्शित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। तव भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित सप्रहर्षित हो महाप्रजापती गौतमी भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई। तव भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

(३) भिक्षुणियोंकी उपसम्पदा

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाकी।" 2

तव भिक्षुणियोने महाप्रजापती गौतमीसे यह कहा—

"आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सवको उपसम्पदा मिली है। भगवान्‌ने इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तव महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आ न न्द थे, वहाँ गई। जाकर आयुष्मान आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"भन्ते आनन्द! यह भिक्षुणियाँ मुझसे यह कहती है—आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सवकी

'गौतमी ! तू क्या फूले पैरो ?'

'भन्ते ! आनन्द ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंको घर छोळ बेघर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नही देते।'

'गौतमी ! तू यहीं रह बुद्ध-धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ।'

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खळी है (कि)—भगवान् (बुद्ध-धर्ममें) स्त्रियोंकी प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नही देते। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको (बुद्ध-धर्ममें) प्रव्रज्या मिले।

'नहीं आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके बतलाये धर्ममें स्त्रियोंकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या।'

दूसरी बार भी आयुष्मान आनन्द । तीसरी बार भी ।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—भगवान तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रियोंकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नही देते क्यों न मैं दूसरे प्रकारसे प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

'भन्ते ! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममें घरसे बेघर प्रव्रजित हो स्त्रियाँ स्रोत-आपत्तिफल सकृदागामि-फल अनागामि-फल अर्हत्व-फलको साक्षात् कर सकती हैं ?'

'साक्षात् कर सकती हैं आनन्द ! तथागत-प्रवेदित ।'

'यदि भन्ते ! तथागत प्रवेदित धर्म-विनयमें प्रव्रजित हो स्त्रियाँ अर्हत्व-फलको साक्षात् करने योग्य हैं। तो भन्ते ! अभिभाविका पोषिका क्षीर-दायिका हो भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोंको प्रव्रज्या मिले।

(२) भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म

"आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मों (=कळी शर्तों)को स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसम्पदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान अंजलि जोळना सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्कार पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुका) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म ।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-संघसे पर्येषण (प्रार्थना) करना चाहिये। यह ।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको (भिक्षु भिक्षुणी) दोनो संघोंमें देखे सुने जाने तीनो स्थानोंमें प्रवारणा करनी चाहिये।

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनों संघोंमें पक्ष-मानता करनी चा ।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे। यह भी ।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ ।

(८) किन्तु भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको कहनेका रास्ता खुला है। यह ।

'यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे तो उसकी उपसम्पदा हो।

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पास, इन आठ गुरु-धर्मोको समझ (उद्ग्रहण=पढ़)कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये। जाकर महाप्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी ! तू इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)०।"

"भन्ते ! आनन्द ! जैसे शौकीन सिरसे नहाये अल्प-वयस्क, तरुण स्त्री या पुरुष उत्पल की माला, वार्षिक (=जूही)की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया)की मालाको पा, दोनो हाथोंमें ले, (उसे) उत्तम-अंग शिरपर रखता है। ऐसे ही भन्ते ! मै इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करती हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्से बोले—

"भन्ते ! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार किया।"

"आनन्द ! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमें स्त्रिया प्रव्रज्या न पाती, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्ष तक ठहरता। लेकिन चूंकि आनन्द ! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुई, अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा। आनन्द ! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोळे पुरुषोवाले कुल, चोरो द्वारा, भँडियाहो (=कुम्भ-चोरो) द्वारा आसानीसे ध्वसनीय (=सु-प्र-ध्वस्य) होते है, इसी प्रकार आनन्द ! जिस धर्म-विनयमे स्त्रियाँ ०प्रव्रज्या पाती है, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नही होता। जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तैयार,) लहलहाते धानके खेतमे सेतट्टिका (=सफेदा)नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द ! जिस धर्म-विनय में०। जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तैयार) ऊखके खेतमे मजेष्ठिका (=लाल रोग) नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द०। आनन्द ! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, बळे तालावकी रोक-थामके लिये, मेड (=आरी) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोंके जीवनभर अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्थापित किया।"

भिक्षुणियोंके आठ गुरु धर्म समाप्त

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! इन शाक्यनियोके साथ मुझे कैसे करना चाहिये ?"

तब भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा महाप्रजापती गौतमीको सदर्शित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। तब भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित सप्रहर्षित हो महाप्रजापती गौतमी भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

(३) भिक्षुणियोंकी उपसम्पदा

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाकी।" 2

तब भिक्षुणियोने महाप्रजापती गौतमीसे यह कहा—

"आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सबको उपसम्पदा मिली है। भगवान्ने इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गई। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"भन्ते आनन्द ! यह भिक्षुणियाँ मुझसे यह कहती हैं—आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सबकी

उपसम्पदा मिली है। भगवान्ने इस प्रकार भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियोंकी उपसम्पदाका विधान किया है।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द ! यह भिक्षुणियाँ मुझसे ऐसा कहती हैं—आर्याकी उपसम्पदा नहीं है, हम सबको उपसम्पदा मिली है ।"

"आनन्द ! जिस समय महाप्रजापती गौतमीने आठ गुरु-धर्म ग्रहण किये तभी उस(की) उपसम्पदा प्राप्त हो गई।"

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको अभिवादन

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर खड़ी हो यह बोली—

"भन्ते आनन्द ! मैं भगवान्से एक वर माँगती हूँ, अच्छा हो भन्ते ! भगवान् भिक्षुओं और भिक्षुणियोंमें (परस्पर) (उपसम्पदाके) बूढ़ेपनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ने, सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) करनेकी अनुमति दे दें।"

तब आयुष्मान् आनन्द जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द ! मैं भगवान्से एक वर माँगती हूँ ।"

"आनन्द ! इसकी जगह नहीं, इसका अवकाश नहीं, कि तथागत स्त्रियों (=मातृग्राम)को अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोड़ने, सामीचि-कर्म करनेकी अनुमति दें। आनन्द ! यह तीर्थिक (=दूसरे मतवाले साधु) भी जिनका धर्म ठीकसे नहीं कहा गया है, वह भी स्त्रियोंको अभिवादन करनेकी अनुमति नहीं देते, तो भला कैसे तथागत स्त्रियोंको अभिवादन करनेकी अनुमति दे सकते हैं ?"

तब भगवान्ने इसी संबंधमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

(१) भिक्षुओ ! स्त्रियोंको अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोड़ना, सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। 3

(५) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके समान और भिन्न शिक्षापद

तब महाप्रजापती गौतमी जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी (हो) भगवान्से यह बोली—

"भन्ते ! जो शिक्षापद (=आचार-नियम) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके एकसे हैं, भन्ते ! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये ?"

"गौतमी ! जो शिक्षापद एकसे हैं, उनका जैसे भिक्षु अभ्यास करते हैं, वैसेही तुम भी अभ्यास करो।"

"भन्ते ! जो शिक्षापद भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके पृथक् हैं, भन्ते ! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये ?"

"गौतमी ! जो शिक्षापद पृथक् हैं, विधानके अनुसार उनको सीखना (=अभ्यास करना) चाहिये।"

(६) धर्मका सार

तब महाप्रजापती गौतमीने जाकर भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! अच्छा हो (यदि) भगवान् सक्षेपसे धर्मका उपदेश करें, जिसे भगवान्से सुनकर, एकाकी=उपकृष्ट, प्रमाद-रहित हो (मैं) आत्म-सयमकर विहार करूँ।"

"गौतमी! जिन धर्मोको तू जाने कि, वह (धर्म) स-रागके लिये है, विरागके लिये नही। सयोगके लिये है, वि-स यो ग (=वियोग=अलग होना)के लिये नही। जमा करनेके लिये है, विनाशके लिये नही। इच्छाओको वढ़ानेके लिये है, इच्छाओको कम करनेके लिये नही। असन्तोपके लिये है, सन्तोपके लिये नही। भीळके लिये है, एकान्तके लिये नही। अनुद्योगिताके लिये है, उद्योगिता (=वीर्यारम)के लिये नही। दुर्भरता (=कठिनाई)के लिये है, सुभरताके लिये नही। तो तू गौतमी! सोलहो आने (=ए का से न) जान, कि न वह धर्म है, न विनय है, न शास्ता (=वुद्ध)का शा स न (=उपदेश) है।

"और गौतमी! जिन धर्मोको तू जाने, कि वह विरागके लिये है, सरागके लिये नही। वियोग के लिये०। उद्योगके लिये०। विनाश०। इच्छाओको अल्प करनेके लिये०। सन्तोष के लिये०। एकान्तके लिये०। उद्योगके लिये०। सु भ र ता (=आसानी)के लिये०। तो तू गौतमी! सोलहो आने जान, कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।"

§२–प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, दोष-प्रतिकार, संघ-कर्म, अधिकरण-शमन और विनय-वाचन

(१) प्रातिमोक्ष[1]की आवृत्ति

१—उस समय भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षका पाठ (=उद्देश) न होता था। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-प्रातिमोक्षके[2] उद्देश करनेकी।" 4

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—किसे भिक्षुणी-प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये? भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओको भिक्षुणियोके (लिये) प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 5

३—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोके आश्रम (=उपश्रय)में जाकर भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षका उद्देश करते थे। लोग हैरान होते थे—'यह इनकी जायायें (=भार्यायें) हैं, यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) हैं। अव यह इनके साथ मौज करेंगे।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान० होनेको सुना। तव उन भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोको प्रातिमोक्षका उद्देश नही करना चाहिये,० दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 6

४—भिक्षुणियाँ न जानती थी, कैसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओंसे भिक्षुणियोको सीखनेकी—ऐसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये।" 7

(२) दोपका प्रतिकार

१—उस समय भिक्षुणियाँ आपत्तियो(=दोपो)का प्रतिकार नही करती थी।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको आपत्तियोका न-प्रतिकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट।' ०। 8

२—भिक्षुणियाँ न जानती थी, कि कैसे आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये।०—

---

[1] देखो भिक्खुणीपातिमोक्ख (पृष्ठ ३९–७०) भी। [2] देखो वहीं पृष्ठ ३९–७०।

उपसम्पदा मिली है। भगवान्ने इस प्रकार भिक्षुओं द्वारा भिक्षुणियोंकी उपसम्पदाका विधान किया है।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द ! यह भिक्षुणियाँ मुझसे ऐसा कहती हैं—आर्याको उपसम्पदा नहीं है हम सबको उपसम्पदा मिली है ।

'आनन्द ! जिस समय महाप्रजापती गौतमीने आठ गुरु-धर्म ग्रहण किये तभी उसे उपसम्पदा प्राप्त हो गई।

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंका अभिवादन

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर खड़ी हो यह बोली—

'भन्ते आनन्द ! मैं भगवान्से एक वर माँगती हूँ अच्छा हो भन्ते ! भगवान् भिक्षुओं और भिक्षुणियोंमें (परस्पर) (उपसम्पदाके) बुढ़पनके अनुसार अभिवादन प्रत्युत्थान हाथ जोड़ने-सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) करनेकी अनुमति दे दें।"

तब आयुष्मान् आनन्द जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द ! मैं भगवान्से एक वर माँगती हूँ ।

"आनन्द ! इसकी जगह नहीं इसका अवकाश नहीं कि तथागत स्त्रियों (=मातृग्राम)को अभिवादन प्रत्युत्थान हाथजोड़ने सामीचि-कर्म करनेकी अनुमति दें। आनन्द ! यह तीर्थिक (=दूसरे मतवाले साधु) भी जिनका धर्म ठीकसे नहीं कहा गया है वह भी स्त्रियोंको अभिवादन करनेकी अनुमति नहीं देते तो भला कैसे तथागत स्त्रियोंको अभिवादन करनेकी अनुमति दे सकते हैं ?"

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमें इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया

(१) "भिक्षुओ ! स्त्रियोंको अभिवादन प्रत्युत्थान हाथजोड़ना सामीचि-कर्म (यथोचित सत्कारादि) नहीं करना चाहिये जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। ३

(५) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके समान और भिन्न शिक्षापद

तब महाप्रजापती गौतमी जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी (हो) भगवान्से यह बोली—

"भन्ते ! जो शिक्षापद (=आचार-नियम) भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके एकसे हैं भन्ते ! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये ?

"गौतमी ! जो शिक्षापद एकसे हैं उनका जैसे भिक्षु अभ्यास करते हैं वैसेही तुम भी अभ्यास करो।

"भन्ते ! जो शिक्षापद भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके पृथक् हैं भन्ते ! उनके विषयमें हमें कैसे करना चाहिये ?

"गौतमी ! जो शिक्षापद पृथक् हैं विधानके अनुसार उनको सीखना (=अभ्यास करना) चाहिये।

(६) धर्मका सार

तब महाप्रजापती गौतमीने जाकर भगवान्से यह कहा—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर कर्मका आरोपकर भिक्षुणियोंको देनेकी, भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी, भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियोंको देनेकी, भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।" 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उत्पलवर्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) विनय सीखनेके लिये सात वर्षसे भगवान्का अनुबंध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते हैं। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—'मैं सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्का अनुबंध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुबंध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके लिये विनय वाचनकी।" 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§३—अभद्र परिहास

३—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तब भगवान् वैशाली में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भिक्षुणियोंपर पानी-कीचळ डालते थे, जिसमें कि वह उनकी ओर आसक्त हों। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंपर कीचळ-पानी नहीं डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दंडकर्म करनेकी।" 20

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-संघ द्वारा न-वंदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोंको दिखलाते थे, उरु०, पुरुष-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोंसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोंके पास (पुरुषोंको बुरी इच्छासे) भेजते थे—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हों। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुष-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोंको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुणियोंके पास (पुरुषोंको बुरी इच्छासे) भेजना नहीं चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दंड-कर्म करनेकी। । उस भिक्षुको भिक्षुणी-संघ द्वारा न-वंदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षुओंपर पानी-कीचळ डालती थीं०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको भिक्षुओंपर कीचळ-पानी नहीं डालना चाहिये,०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दंड-अकर्म करनेकी।" 23

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये। 9

३—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंके प्रतिकार (=Confession)को स्वीकार करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके प्रतिकारको स्वीकार करनेकी। 10

४—उस समय भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूह (=गली)में भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपरकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ आपत्तिका प्रतिकार करती थी। लोग हैरान होते थे—यह इनकी जाया है यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) है रातको नाराज करके अब क्षमा करा रही है। —

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको नहीं स्वीकार करना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको ग्रहण करनेकी। 11

५—भिक्षुणियाँ न जानती थी कैसे आपत्तिका स्वीकार करना चाहिये। —

•अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिके (प्रतिकार) को स्वीकार करना चाहिये। 12

(३) संघ-कर्म

१—उस समय भिक्षुणियोंमें कर्म (=तर्जनीय आदि) न होता था। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको कर्म करनेकी। 13

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंका कर्म करना चाहिये। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी। 14

३—उस समय जिनका कर्म (=दंड) हो गया होता था वह भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूहमें भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपर कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ—ऐसा करना चाहिये—(सोच) क्षमा कराती थी। लोग हैरान होते थे—'यह इनकी जाया है यह इनकी जारियाँ है रातको नाराजकर अब क्षमा करा रही है। —

"भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म नहीं कराना चाहिये दुक्कट। 15

४—भिक्षुणियाँ न जानती थी ।•—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार कर्म करना चाहिये। 16

(४) अधिकरण-शमन

१—उस समय भिक्षुणियाँ संघके बीच भंडन—कलह विवाद करती एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्ति (=शस्त्र)से पीळित कर रही थी। उस अधिकरण (=झगळे)को शान्त न कर सकती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला (शान्त) करनेकी। 17

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला करते थे। उस अधिकरणके विनिश्चय (फैसले)के समय कर्मको प्राप्त भी दोषी भी भिक्षुणियाँ देखी जाती थीं। भिक्षुणियोंने यह कहा—

अच्छा होता आर्यो! आर्याएँ ही भिक्षुणियोंके कर्मको करतीं आर्याएँ ही भिक्षुणियोंकी आपत्तिको स्वीकार करतीं। (किन्तु) भगवान्‌ने अनुमति दी है भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणको शान्त करनेकी।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोपर रखकर आरोपकर भिक्षुणियोको देनेकी, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके समक्ष करनेकी, भिक्षुओको भिक्षुणियोपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियोको देनेकी, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।' 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उत्पलवर्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) विनय सीखनेके लिये सात वर्ष भगवान्का अनुबंध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते हैं। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—'मैं सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्का अनुबंध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुबंध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोके लिये विनय वाचनेकी।' 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§३—अभद्र परिहास

३—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमशः चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमें अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भिक्षुणियोपर पानी-कीचळ डालते थे, जिसमें कि वह उनकी ओर आसक्त हो। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दडकर्म करनेकी।" 20

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—क्या दड-कर्म करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोको दिखलाते थे, उरु०, पुरुष-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोंसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजते थे—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुष-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोको नही दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोसे दिल्लगी नही करनी चाहिये, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजना नही चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दड-कर्म करनेकी। । उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षुओपर पानी-कीचळ डालती थी०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको भिक्षुओपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये,०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दड-अकर्म करनेकी।" 23

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये। 9

३—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किस भिक्षुणियोंके प्रतिकार (=Confession)का स्वीकार करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके प्रतिकारका स्वीकार करनेकी। 10

४—उस समय भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूह (=भिड़)में भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपर कर उकडूँ बैठ हाथ जोळ आपत्तिका प्रतिकार करती थीं। लोग हैरान होते थे—यह इनकी जाया है यह इनकी जारिणी (=रखेलियाँ) हैं रातको नाराज करके अब क्षमा करा रही हैं। —

"भिक्षुओ ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको नहीं स्वीकार करना चाहिये दुक्कट । ०अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको ग्रहण करनेकी। 11

५—भिक्षुणियाँ न जानती थीं कैसे आपत्तिका स्वीकार करना चाहिये। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिके (प्रतिकार) को स्वीकार करना चाहिये। 12

(३) संघ-कर्म

१—उस समय भिक्षुणियोंमें कर्म (=चनाव आदि) न होता था। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको कर्म करनेकी। 13

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंका कर्म करना चाहिये। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी। 14

३—उस समय जिनका कर्म (=दंड) हो गया होता था वह भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूहमें भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपर कर उकडूँ बैठ हाथ जोळ—ऐसा करना चाहिये—(सोच) क्षमा कराती थीं। लोग हैरान होते थे—यह इनकी जाया है यह इनकी जारिणियाँ हैं रातको नाराजकर अब क्षमा करा रही हैं। —

"भिक्षुओ ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म नहीं करना चाहिये दुक्कट । 15

४—भिक्षुणियाँ न जानती थीं । —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार कर्म करना चाहिये। 16

(४) अधिकरण-शमन

१—उस समय भिक्षुणियाँ संघके बीच भंडन—कलह विवाद करती एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्ति (=शस्त्र)से पीड़ित कर रही थीं। उस अधिकरण (=झगळे)को शान्त न कर सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला (=शान्त) करनेकी। 17

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला करते थे। उस अधिकरणके विनिश्चय (=देखने)के समय कर्मको प्राप्त भी आपी भी भिक्षुणियाँ वहाँ आती थीं। भिक्षुणियोंने यह कहा—

"अच्छा होता भन्ते ! आर्यायें ही भिक्षुणियोंके कर्मको करतीं आर्यायें ही भिक्षुणियोंकी आपत्तिको स्वीकार करतीं (किन्तु) भगवान्‌ने अनुमति दी है भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणको शान्त करनेकी।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कर्म का आरोपकर भिक्षुणियोको देने की, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके कर्मके करनेकी, भिक्षुओको भिक्षुणियोपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियो को देनेकी, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।" 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उ त्प ल व र्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) वि न य सीखनेके लिये सात वर्षसे भगवान्‌का अनुवध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते है। तब उस भिक्षुणीसे यह हुआ—'मै सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्‌का अनुवध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुवध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोके लिये वि न य बाँचनेकी।" 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§३—अभद्र परिहास

३—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तब भगवान् वै शा ली में इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अ ना थ - पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु भिक्षुणियोपर पानी-कीचळ डालते थे, जिसमे कि वह उनकी ओर आसक्त हो। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दडकर्म करनेकी।" 20

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—क्या दड-कर्म करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोको दिखलाते थे, उरु०, पुरुष-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजते थे—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुष-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोको नही दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोसे दिल्लगी नही करनी चाहिये, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजना नही चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दड-कर्म करनेकी। । उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ भिक्षुओपर पानी-कीचळ डालती थी०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको भिक्षुओपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये,०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दड-अकर्म करनेकी।" 23

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये। 9

३—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किस भिक्षुणियोंके प्रतिकार (=Confession)को स्वीकार करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके प्रतिकारको स्वीकार करनेकी। 10

४—उस समय भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूह (=भिड़)में भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपरकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ आपत्तिका प्रतिकार करती थी। लोग हैरान होते थे—यह इनकी जाया है यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) हैं रातको नाराज करके अब क्षमा करा रही है। —

भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको नहीं स्वीकार करना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको भिक्षुणियोंके आपत्ति प्रतिकारको ग्रहण करनेकी। 11

५—भिक्षुणियाँ न जानती थी कैसे आपत्तिको स्वीकार करना चाहिये। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिके (प्रतिकार) को स्वीकार करना चाहिये। 12

(३) संघ-कर्म

१—उस समय भिक्षुणियोंमें कर्म (–चनाव आदि) न होता था।०—

अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी। 13

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोंका कर्म करना चाहिये।०—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म करनेकी। 14

३—उस समय जिनका कर्म (=दंड) हो गया होता था वह भिक्षुणियाँ सळकपर भी व्यूहमें भी चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासंगको एक कंधेपर कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ—ऐसा करना चाहिये—(सोच) क्षमा कराती थी। लोग हैरान होते थे—'यह इनकी जाया है यह इनकी जारियाँ हैं रातको नाराजकर अब क्षमा करा रही है। —

भिक्षुओ! भिक्षुओंको भिक्षुणियोंका कर्म नहीं करना चाहिये दुक्कट। 15

४—भिक्षुणियाँ न जानती थी। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंसे भिक्षुणियोंको सीखनेकी—इस प्रकार कर्म करना चाहिये। 16

(४) अधिकरण-शमन

१—उस समय भिक्षुणियाँ संघके बीच भंडन=कलह विवाद करती एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्ति (=शस्त्र)से पीड़ित कर रही थी। उस अधिकरण (=झगळे)को शान्त न कर सकती थीं। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला (शान्त) करनेकी। 17

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके अधिकरणका फैसला करते थे। उस अधिकरणके विनिश्चय (देखने)के समय कर्मका प्राप्त भी दाखी भी भिक्षुणियाँ दिखाई जाती थीं। भिक्षुणियोंने यह कहा—

"अच्छा होता भन्ते! आर्यायें ही भिक्षुणियोंके कर्मको करतीं, आर्यायें ही भिक्षुणियोंकी आपत्तियोंको स्वीकार करतीं। (किन्तु) भगवान्ने अनुमति दी है भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके अधिकरणको शान्त करनेकी।

भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हू भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कर्मका आरोपकर भिक्षुणियोको देने की, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके कर्मके करनेकी, भिक्षुओको भिक्षुणियोपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियोको देनेकी, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।" 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उत्पलवर्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) विनय सीखनेके लिये सात वर्षसे भगवान्‌का अनुबध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते है। तब उस भिक्षुणीसे यह हुआ—'मै सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्‌का अनुबध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुबध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोके लिये विनय बाँचनेकी।" 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§२—अभद्र परिहास

२—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रावस्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिडिकके आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भिक्षुणियोपर पानी-कीचळ डालते थे, जिससे कि वह उनकी ओर आसक्त हो। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दडकर्म करनेकी।" 20

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—क्या दड-कर्म करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोको दिखलाते थे, उरु०, पुरुष-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजते थे—जिससे कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुष-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोको नही दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोसे दिल्लगी नही करनी चाहिये, भिक्षुणियोके पास (पुरुषोको बुरी इच्छासे) भेजना नहीं चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दड-कर्म करनेकी। । उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षुओपर पानी-कीचळ डालती थी०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको भिक्षुओपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दड-अकर्म करनेकी।" 23

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रुककर देना) करनेकी।" 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थी। —

अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वंचित करनेकी। 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थी, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थी, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थी—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो। —

"भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये, ०दुक्कट । अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी। ।26

२— अनुमति देता हूँ आवरण करनेकी। ।27

अनुमति देता हूँ उपदेशसे वंचित करनेकी। 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेशसे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं ? —

'भिक्षुओ ! उपदेशसे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये। 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान होती थीं—कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये ! ! भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट । 30

२—उस समय मूढ अजान उपदेश स्थगित करते थे। —

'भिक्षुओ ! मूढ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट । 31

३—उस समय भिक्षु बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित करते थे। ०—

भिक्षुओ ! बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट । 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे। ०—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, ०दुक्कट । 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद) में न जाती थीं। —

"भिक्षुओ ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने) के लिये जाता था। लोग हैरान होते थे—

यह इन (भिक्षुओं)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओं)के साथ मौज करेंगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-संघको उपदेशके लिये नहीं जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोंको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थीं। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०। ०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोंको उपदेशके लिये नहीं जाना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोंको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग करके चरणोंमें वंदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-संघ भिक्षु-संघके चरणोंमें वंदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-संघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियों का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोंका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—'इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-संघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-संघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-संघको उपदेश नहीं देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-संघका उपदेशक नहीं चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-संघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओंका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नहीं करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोंने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मैं अजान हूँ, कैसे मैं उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नहीं करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियों ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मैं रोगी हूँ, कैसे मैं उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु गमिक (=यात्रापर जानेवाला)था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था। ०।—

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—
"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रहकर देना) करनेकी।" 24
३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थी। —
अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वंचित करनेकी। 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थीं, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थीं, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थीं—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये, दुक्कट । ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी।" 126

२— अनुमति देता हूँ आवरण करनेकी। 127

अनुमति देता हूँ उपदेशसे वंचित करनेकी। 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेशसे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं ? ०—

"भिक्षुओ ! उपदेशसे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये। 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान होती थीं—'कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये !' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, दुक्कट । 30

२—उस समय मूढ़ अजान उपदेश स्थगित करते थे। —

"भिक्षुओ ! मूढ़ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट । 31

३—उस समय भिक्षु बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित करते थे। ०—

"भिक्षुओ ! बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट । 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे। ०—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, दुक्कट । 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद)में न जाती थीं। ०—

"भिक्षुओ ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न-जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने)के लिये जाता था। लोग हैरान होते थे—

यह इन (भिक्षुओ)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओ)के साथ मौज करेंगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०।०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग करके चरणमे वदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-सघ भिक्षु-सघके चरणोमें वदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियो का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-सघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-सघको उपदेश नही देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक नही चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-सघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओंका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मै अजान हूँ, कैसे मै उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नही करना चाहिये।"

भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियो ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मै रोगी हूँ, कैसे मै उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्‌ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु ग मि क (=यात्रापर जानेवाला) था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रुकावट देना) करनेकी। 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थीं। —

अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेससे वंचित करनेकी। 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थीं, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थीं, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थीं—जिसमें कि वह उसपर आसक्त हो। —

'भिक्षुओ! भिक्षुणीको शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये, दुक्कट। अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी। ।26

२— अनुमति देता हूँ आवरण करनेकी। ।27

अनुमति देता हूँ उपदेससे वंचित करनेकी। 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेससे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं?०—

'भिक्षुओ! उपदेससे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये। 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान होती थीं—'कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये!' भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, दुक्कट। ।30

२—उस समय मूढ़ अजान उपदेश स्थगित करते थे।०—

भिक्षुओ! मूढ़ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट। ।31

३—उस समय भिक्षु बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित करते थे।०—

'भिक्षुओ! बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट। ।32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे। —

"भिक्षुओ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, दुक्कट। ।33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद)में न जाती थीं।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न-जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने)के लिये जाता था। लोग हैरान होते थे—

यह इन (भिक्षुओ)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओं)के साथ मौज करेगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०।०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासग करके चरणमे वदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-सघ भिक्षु-सघके चरणोमें वदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियो का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-सघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-सघको उपदेश नही देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक नही चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-सघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओंका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मै अजान हूँ, कैसे मै उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नही करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियो ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मै रोगी हूँ, कैसे मै उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु ग मि क (=यात्रापर जानेवाला) था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रुकावट देना) करनेकी। 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थीं। —

अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वंचित करनेकी। 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थीं, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थीं, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थीं—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो।—

भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये; दुक्कट। अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी। 26

२—अनुमति देता हूँ आवरण करनेकी। 27

अनुमति देता हूँ उपदेशसे वंचित करनेकी। 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेशसे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं ? —

"भिक्षुओ ! उपदेशसे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये। 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान होती थीं—कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये ! ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, दुक्कट। 30

२—उस समय मूढ़ अजान उपदेश स्थगित करते थे। —

"भिक्षुओ ! मूढ़ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट। 31

३—उस समय भिक्षु बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित करते थे। —

"भिक्षुओ ! बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट। 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, दुक्कट। 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद)में न जाती थीं। —

"भिक्षुओ ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न-जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने)के लिये जाता था। लोग हैरान होते थे—

यह इन (भिक्षुओ)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओ)के साथ मौज करेंगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०।०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०।०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग करके चरणमें वदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-सघ भिक्षु-सघके चरणोमे वदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियो का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-सघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-सघको उपदेश नही देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक नही चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-सघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओंका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मै अजान हूँ, कैसे मै उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नही करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियो ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मैं रोगी हूँ, कैसे मै उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु गमिक (=यात्रापर जानेवाला) था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

२—तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या दंड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रुकावट करना) करनेकी।" 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थीं।•—

अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वंचित करनेकी। 25

(४) भिक्षुणियोंका भिक्षुओंको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको दिखलाती थीं, भिक्षुओंसे दिल्लगी करती थीं, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) भेजती थीं—जिसमें कि वह उनपर आसक्त हो।—

'भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर, स्तन, उरु, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओंको नहीं दिखलाना चाहिये, भिक्षुओंसे दिल्लगी नहीं करनी चाहिये, भिक्षुओंके पास (स्त्रीको) नहीं भेजना चाहिये, दुक्कट०। अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीका दंड-कर्म करनेकी। 26

२—अनुमति देता हूँ आवरण करनेकी। 27

•अनुमति देता हूँ उपदेशसे वंचित करनेकी। 28

तब भिक्षुओंको यह हुआ—क्या उपदेशसे वंचित की गई भिक्षुणियोंके साथ उपोसथ करना विहित है या नहीं ?•—

भिक्षुओ ! उपदेशसे वंचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नहीं करना चाहिये जब तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये। 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान होती थीं—कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये !! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नहीं जाना चाहिये, दुक्कट०। 30

२—उस समय मूढ अजान उपदेश स्थगित करते थे।—

'भिक्षुओ ! मूढ अजानको उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट०। 31

३—उस समय भिक्षु बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित करते थे।—

"भिक्षुओ ! बिना (कोई) बातके अकारण उपदेश स्थगित नहीं करना चाहिये, दुक्कट०। 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे।—

'भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नहीं चाहिये, •दुक्कट०। 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद)में न जाती थीं।•—

'भिक्षुओ ! भिक्षुणियोंको उपदेशमें न-जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-संघ उपदेश (सुनने)के लिये जाता था। लोग हैरान होते थे—

यह इन (भिक्षुओ)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओ)के साथ मौज करेंगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पांच भिक्षुणियोको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पांच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०।०—

"भिक्षुओ! चार पांच भिक्षुणियोको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग करके चरणमे वदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-सघ भिक्षु-सघके चरणोमे वदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियो का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-सघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-सघको उपदेश नही देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक नही चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-सघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मैं अजान हूँ, कैसे मैं उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नही करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियो ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मैं रोगी हूँ, कैसे मैं उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु ग मि क (=यात्रापर जानेवाला)था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

०अनुमति देता हूँ आरण्यक भिक्षुको उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करनेकी और दूसरे स्थानपर प्रतिहार (=प्रतीक्षा) करनेका संकेत करनेकी।" 41

६—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार कर नहीं उपदेश करते थे। ०—

"भिक्षुओ! उपदेश-न-करना नहीं चाहिये दुक्कट।" 42

उस समय भिक्षु उपदेशको स्वीकारकर प्रत्याहरण (=पालन करना) नहीं करते थे। —

भिक्षुओ! उपदेशका न प्रत्याहार नहीं करना चाहिये दुक्कट। 43

(४) भिक्षुणियोंका उपदेश सुननेके लिए न जानेपर दण्ड

उस समय भिक्षुणियाँ (उपदेशके लिये) बतलाये स्थानपर नहीं जाती थीं।०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बतलाये स्थानपर न जाना नहीं चाहिये, जो न जाये उसे दुक्कटका दोष हो। 44

(५) कमरबन्द

उस समय भिक्षुणियाँ लम्बे कायबंधन (=कमरबंद)को धारण करती थीं। उन्हींसे पोछ (=फासुका) लटकाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। ०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको लम्बा काय-बंधन नहीं धारण करना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको एक फेरा कायबंधनकी, उससे पोछ नहीं लटकानी चाहिये, जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 45

(६) सँवारनेके लिए कपड़ा लटकाना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ बीलिव (=बाँसके बने) पट्टकी पोछ लटकाती थीं, चर्मपट्टकी, दुस्स (=थान) पट्ट, दुस्स-वेणी (=कपड़ेका गूँथकर), दुस्स-वट्टी (=नाकर), चोल-पट्ट (=मागीरा बनाकर), चोल-वेणी, चोल-वट्टी, सूतकी वेणी, सूतकी वट्टी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। ०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बीलिव-पट्ट, चर्म-पट्ट, दुस्स-पट्ट, दुस्स-वेणी, दुस्स-वट्टी, चोल-पट्ट, चोल-वेणी, चोल-वट्टी, सूतकी वेणी, सूतकी वट्टीकी पोछ नहीं लटकानी चाहिये, जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 46

(७) सँवारनेके लिए मालिश करना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ (गायकी जाँघकी) हड्डीसे जाँघको मसलवाती थीं, गायके हनुक (=(मोर्चे जबड़ेकी हड्डी))से पछीत्रा करकी लगवाती थीं, हाथ, हाथकी मुगुर, पैर, पैरके ऊपरी भाग, जाँघ, मुख, दाँतके मसूड़ेको करकी लगवाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। —

भिक्षुणियोंको हड्डीसे जाँघको नहीं मसलवाना चाहिये, गायके हनुकसे पैरोंको नहीं करकी लगवानी चाहिये, हाथ, हाथकी मुगुर, पैर, पैरके ऊपरी भाग, जाँघ, मुख, दाँतके मसूड़ेमें करकी नहीं लगवानी चाहिये, जो लगवाये उसे दुक्कटका दोष हो। 47

(८) मुखका लेप, चूर्ण, मालिश निषिद्ध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थीं, मुखकी मालिश करती थीं, मुखपर चूर्ण डालती थीं, मनसिलसे मुखपर तिलक करती थीं, अंगराग (=उबटन) लगाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। ०—

"०भिक्षुणियोंको मुखपर लेप नही करना चाहिये, मुखकी मालिश नहीं करनी चाहिये, मुख पर चूर्ण नही डालना चाहिये, मुखको मैनसिलसे लाछित नही करना चाहिये, अगराग नही लगाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 48

(९) अजन देने, नाच तमाशा, दूकान व्यापार करनेका निषेध

उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ अपाग (=आँजन) करती थी, (कपोलपर) विशेषक (=चिह्न) करती थी। झरोखेसे झाँकती थी। द्वारपर शरीर दिखाती खळी होती थी। समज्या (=नाच-नाटक) कराती थी। वेश्या बैठाती थी। दूकान लगाती थी। पान-आगार (=शरावखाना) चलाती थी। मासकी दूकान करती थी। सूदपर (रुपया) लगाती थी। व्यापारमें (रुपया) लगाती थी। दास रखती थी। दासी रखती थी। नौकर (=कर्मकर) रखती थी। नौकरानी रखती थी। तिर्यग्योनि-वालोंको रखती थी। हरी पाक (पसारीकी दूकान) पसारती थी, नमतक (=वस्त्र-खड) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

"०भिक्षुणियोंको आँजन नही करना चाहिये,० नमतक नही धारण करना चाहिये, ० ०दुक्कट०।" 49

(१०) बिलकुल नीले, पीले आदि चीवरोंका निषेध

उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ सारे ही नीले[1] चीवरोको धारण करती थी, सारे ही पीले०, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारगसे रगे, सारे ही हल्दीसे रँगे चीवरोंको धारण करती थी। कटी किनारीवाले०, लम्बी किनारीवाले०, फूलदार किनारीवाले०, फण(की शकल)की किनारीवाले चीवरोंको धारण करती थी। कचुक धारण करती थी, तिरीटक (=वृक्षकी छाल) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ!" भगवान्‌से यह बात कही।—

"०भिक्षुणियोको सारे ही नीले चीवरोको नही धारण करना चाहिये, सारे ही पीले०,०, तिरी-टक नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 50

(११) भिक्षुणियोंके दायभागी

उस समय एक भिक्षुणीने मरते समय यह कहा—मेरा सामान (=परिष्कार) सघका हो। वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनो विवाद करती थी—'हमारा होता है, हमारा होताहै।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! भिक्षुणीने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षु-सघ उसका मालिक नही, भिक्षुणी-सघका ही वह होता है। यदि शिक्षमाणाने ०। यदि श्रामणेरीने०। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षुणी-सघ उसका मालिक नही, भिक्षु-सघका ही वह होता है। यदि श्रामणेरने०। यदि उपासकने०। यदि उपासिकाने० भिक्षु-सघका ही वह होता है।" 51

(१२) भिक्षुको ढकेलनेका निषेध

उस समय एक भूतपूर्व पहलवान स्त्री (=मल्ली) भिक्षुणियोमें प्रव्रजित हुई थी। वह सळकमें दुर्बल भिक्षुको देख असकूट (=दाहिना कधा खुला जाकट)से प्रहार दे गिरा देती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—कैसे भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार देगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] मिलाओ महावग्ग, चीवरक्खधक ८ (पृष्ठ ३५३)।

अनुमति देता हूँ आरण्यक भिक्षुको उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करनेकी और दूसरे स्थानपर प्रतिहार (=प्रतीक्षा) करनेका संकेत करनेकी। 41

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार कर नहीं उपदेश करते थे। ०—

'भिक्षुओ! उपदेश-न-करना नहीं चाहिये दुक्कट। 42

उस समय भिक्षु उपदेशको स्वीकारकर प्रत्याहरण (=पालन करना) नहीं करते थे।०—

'भिक्षुओ! उपदेशका न प्रत्याहार नहीं करना चाहिये दुक्कट। 43

(४) भिक्षुणियोंका उपदेश सुननेके लिए न जानेपर दण्ड

उस समय भिक्षुणियाँ (उपदेशके लिये) बतलाये स्थानपर नहीं जाती थीं। —

'भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बतलाये स्थानपर न जाना नहीं चाहिये जो न जाये उसे दुक्कटका दोष हो। 44

(५) कमरबन्द

उस समय भिक्षुणियाँ लम्बे कायबन्धन (=कमरबंद)को धारण करती थीं। उन्हींकी पोछ (=फासुका) लटकाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको लम्बा काय-बन्धन नहीं धारण करना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको एक फेरा कायबन्धनकी उसकी पोछ नहीं लटकानी चाहिये जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 45

(६) सँवारनेके लिए कपड़ा लटकाना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ वीलिव (=बाँसके बने) पट्टकी पोछ लटकाती थीं चर्मपट्टकी दुस्स (=थान) पट्ट दुस्स-वेणी (=कपड़ेको गूँथकर) दुस्स-वट्टी (=झालर) चोल-पट्ट (=साड़ीका कुनाव) चोल-वेणी चोल-वट्टी सूतकी वेणी सूतकी वट्टी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। —

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको वीलिव-पट्ट चर्म-पट्ट दुस्स-पट्ट दुस्स-वेणी दुस्स-वट्टी चोल-पट्ट चोल-वेणी चोल-वट्टी सूतकी वेणी सूतकी वट्टीकी पोछ नहीं लटकानी चाहिये जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 46

(७) सँवारनेके लिये मालिश करना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ (गायकी चौपकी) हड्डीसे जाँघको मलमलाती थीं, गायके हनुक (=जीभके जबड़ेकी हड्डी)से पेडुलीको थपकी लगाती थीं हाथ हाथकी मुसुक पैर पैरके ऊपरी भाग जाँघ मुख दाँतके मसूढ़ेको थपकी लगाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! —

भिक्षुणियोंको हड्डीसे जाँघको नहीं मलमलाना चाहिये गायके हनुकसे पेडुलीको नहीं थपकी लगानी चाहिये हाथ हाथकी मुसुक पैरके ऊपरी भाग जाँघ मुख दाँतके मसूढ़ेमें थपकी नहीं लगानी चाहिये जो लगाये उसे दुक्कटका दोष हो। 47

(८) मुखका लेप चूर्ण आदिका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थीं मुखकी मालिश करती थीं मुखपर चूर्ण डालती थीं मुखको मैनसिलसे लाञ्छित करती थीं अंगराग (=उबटन) लगाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)!! —

"०भिक्षुणियोको मुखपर लेप नही करना चाहिये, मुखकी मालिश नही करनी चाहिये, मुख पर चूर्ण नही डालना चाहिये, मुखको मैनसिलसे लाछित नही करना चाहिये, अगराज नही लगाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 48

(९) अंजन देने, नाच तमाशा, दूकान व्यापार करनेका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ अपाग (=आँजन) करती थी, (कपोलपर) विशेषक (=चिह्न) करती थी। झरोखेसे झाँकती थी। द्वारपर शरीर दिखाती खळी होती थी। समज्या (=नाच-नाटक) कराती थी। वेश्या बैठाती थी। दूकान लगाती थी। पान-आगार (=शराबखाना) चलाती थी। मासकी दूकान करती थी। सूदपर (रुपया) लगाती थी। व्यापारमे (रुपया) लगाती थी। दास रखती थी। दासी रखती थी। नौकर (=कर्मकर) रखती थी। नौकरानी रखती थी। तिर्यग्योनि-वालोको रखती थी। हरी पाक (पसारीकी दूकान) पसारती थी, नमतक (=वस्त्र-खड) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

"०भिक्षुणियोको आँजन नही करना चाहिये,० नमतक नही धारण करना चाहिये, ० ०दुक्कट०।" 49

(१०) बिलकुल नीले, पीले आदि चीवरोका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सारे ही नीले[1] चीवरोको धारण करती थी, सारे ही पीले०, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारगमे रगे, सारे ही हल्दीसे रँगे चीवरोंको धारण करती थी। कटी किनारीवाले०, लम्बी किनारीवाले०, फूलदार किनारीवाले०, फण(की शकल)की किनारीवाले चीवरोको धारण करती थी। कचुक धारण करती थी, तिरीटक (=वृक्षकी छाल) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ!" भगवान्से यह बात कही।—

"०भिक्षुणियोको सारे ही नीले चीवरोको नही धारण करना चाहिये, सारे ही पीले०,०, तिरीटक नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 50

(११) भिक्षुणियोंके दायभागी

उस समय एक भिक्षुणीने मरते समय यह कहा—मेरा सामान (=परिष्कार) सघका हो। वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनो विवाद करती थी—'हमारा होता है, हमारा होता है।' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! भिक्षुणीने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षु-सघ उसका मालिक नही, भिक्षुणी-सघका ही वह होता है। यदि शिक्षमाणाने ०। यदि श्रामणेरीने०। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षुणी-सघ उसका मालिक नही, भिक्षु-सघका ही वह होता है। यदि श्रामणेरने०। यदि उपासकने०। यदि उपासिकाने० भिक्षु-सघका ही वह होता है।" 51

(१२) भिक्षुको ढकेलनेका निषेध

उस समय एक भूतपूर्व पहलवान स्त्री (=मल्ली) भिक्षुणियोमें प्रव्रजित हुई थी। वह सळकमें दुर्बल भिक्षुको देख असकूट (=दाहिना कधा खुला जाकट)से प्रहार दे गिरा देती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—कैसे भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार देगी। भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] मिलाओ महावग्ग, चीवरक्खधक ८ (पृष्ठ ३५३)।

"अनुमति देता हूँ आरण्यक भिक्षुको उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करनेकी और दूसरे स्थानपर प्रतिहार (=प्रतीक्षा) करनेका संकेत करनेकी। 41

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार कर नहीं उपदेश करते थे।०—

भिक्षुओ! उपदेश-न-करना नहीं चाहिये दुक्कट। 42

उस समय भिक्षु उपदेशको स्वीकारकर प्रत्याहरण (=पालन करना) नहीं करते थे।०—

भिक्षुओ! उपदेशका न प्रत्याहार नहीं करना चाहिये दुक्कट। 43

(४) भिक्षुणियोंको उपदेश सुननेके लिए न जानेपर दण्ड

उस समय भिक्षुणियाँ (उपदेशके लिये) बतलाये स्थानपर नहीं जाती थी।०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बतलाये स्थानपर न जाना नहीं चाहिये जो न जाये उसे दुक्कटका दोष हो। 44

(५) कमरबन्द

उस समय भिक्षुणियाँ लम्बे कायबन्धन (=कमरबंद)को धारण करती थी। उन्हींकी पाछ (=फाँसुका) लटकाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)!०—

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको लम्बा काय-बन्धन नहीं धारण करना चाहिये दुक्कट। अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको एक फेरा कायबन्धनकी उसकी पोछ नहीं लटकानी चाहिये जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 45

(६) सँवारनेके लिए कपड़ा लटकाना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ बीलिव (=बाँसके बने) पट्टकी पोछ लटकाती थी चर्मपट्टकी दुस्स (=थान) पट्ट दुस्स-वेणी (=कपड़ेको गूँथकर) दुस्स-वट्टी (=झालर) चोल-पट्ट (=साड़ीका घुमाव) चोल-वेणी चोल-वट्टी सूतकी वेणी सूतकी वट्टी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! —

भिक्षुओ! भिक्षुणियोंको बीलिव-पट्ट चर्म-पट्ट दुस्स-पट्ट दुस्स-वेणी दुस्स-वट्टी चोल-पट्ट चोल-वेणी चोल-वट्टी सूतकी वेणी सूतकी वट्टीकी पोछ नहीं लटकानी चाहिये जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो। 46

(७) सँवारनेके लिए मालिश करना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ (गायकी जाँघकी) हड्डीसे जाँघको मसलवाती थी गायके हनुक (=(=नीचेके जबड़ेकी हड्डी)से पेडुलीको थपकी लगवाती थी हाथ हाथकी मुसुक पैर पैरके ऊपरी भाग जाँघ मुख दाँतके मसूढ़ेको थपकी लगवाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! —

भिक्षुणियोंको हड्डीसे जाँघको नहीं मसलवाना चाहिये गायके हनुकसे पेडुलीको नहीं थपकी लगवानी चाहिये हाथ हाथकी मुसुक पैरके ऊपरी भाग जाँघ मुख दाँतके मसूढ़ेमें थपकी नहीं लगवानी चाहिये जो लगवाये उसे दुक्कटका दोष हो। 47

(८) मुखके लेप चूर्ण आदिका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थी मुखकी मालिश करती थी मुखपर चूर्ण डालती थी मुखको मैनसिलसे लाञ्छित करती थी अंगराग (=उबटन) लगाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)!! —

"०भिक्षुणियोको मुखपर लेप नही करना चाहिये, मुखकी मालिश नही करनी चाहिये, मुख पर चूर्ण नही डालना चाहिये, मुखको मैनसिलसे लाछित नही करना चाहिये, अगराज नही लगाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 48

(९) अजन देने, नाच तमाशा, दूकान व्यापार करनेका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ अपाग (=आँजन) करती थी, (कपोलपर) विशेषक (=चिह्न) करती थी। झरोखेसे झाँकती थी। द्वारपर शरीर दिखाती खळी होती थी। समज्या (=नाच-नाटक) कराती थी। वेश्या बैठाती थी। दूकान लगाती थी। पान-आगार (=शराबखाना) चलाती थी। मासकी दूकान करती थी। सूदपर (रुपया) लगाती थी। व्यापारमें (रुपया) लगाती थी। दास रखती थी। दासी रखती थीं। नौकर (=कर्मकर) रखती थी। नौकरानी रखती थी। तिर्यग्योनि-वालोको रखती थी। हर्रा पाक (पसारीकी दूकान) पसारती थी, नमतक (=वस्त्र-खड) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

"०भिक्षुणियोको आँजन नही करना चाहिये,० नमतक नही धारण करना चाहिये, ० ०दुक्कट०।" 49

(१०) बिलकुल नीले, पीले आदि चीवरोका निषेध

उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सारे ही नीले[१] चीवरोको धारण करती थी, सारे ही पीले०, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारगसे रगे, सारे ही हल्दीसे रँगे चीवरोंको धारण करती थी। कटी किनारीवाले०, लम्बी किनारीवाले०, फूलदार किनारीवाले०, फण(की शकल)की किनारीवाले चीवरोको धारण करती थी। कचुक धारण करती थी, तिरीटक (=वृक्षकी छाल) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ!" भगवान्‌से यह बात कही।—

"०भिक्षुणियोको सारे ही नीले चीवरोको नही धारण करना चाहिये, सारे ही पीले०,०, तिरी-टक नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 50

(११) भिक्षुणियोंके दायभागी

उस समय एक भिक्षुणीने मरते समय यह कहा—मेरा सामान (=परिष्कार) सघका हो। वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनो विवाद करती थी—'हमारा होता है, हमारा होता है।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! भिक्षुणीने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षु-सघ उसका मालिक नही, भिक्षुणी-सघका ही वह होता है। यदि शिक्षमाणाने ०। यदि श्रामणेरीने०। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षुणी-सघ उसका मालिक नही, भिक्षु-सघका ही वह होता है। यदि श्रामणेरने०। यदि उपासकने०। यदि उपासिकाने० भिक्षु-सघका ही वह होता है।" 51

(१२) भिक्षुको ढकेलनेका निषेध

उस समय एक भूतपूर्व पहलवान स्त्री (=मल्ली) भिक्षुणियोमें प्रव्रजित हुई थी। वह सळकमें दुर्बल भिक्षुको देख असकूट (=दाहिना कधा खुला जाकट)मे प्रहार दे गिरा देती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—कैसे भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार देगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[१] मिलाओ महावग्ग, चीवरक्खधक ८ (पृष्ठ ३५३)।

"भिक्षुओ ! भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार न देवे ० दुक्कट । अनुमति देता हूँ भिक्षुणीको भिक्षु दूर हट (उसे) मार्ग देना ।" 52

(१३) भिक्षुको पात्र खोलकर दिखलाना चाहिये

१—उस समय एक स्त्रीका पति परदेश चला गया था और उसे जारसे गर्भ हो गया। उसने गर्भ गिराकर (बराबर) घर आनेवाली भिक्षुणीसे यह कहा—अच्छा हो आर्ये ! इस गर्भको पात्रमें बाहर ले जाओ। तब वह उस भिक्षुणीने उस गर्भको पात्रमें रख संघाटीसे ढाँक चली गई। उस समय एक पिण्डचारिक (=निमंत्रण न ले सदा भिक्षा माँगकर खानेवाला) भिक्षुने प्रतिज्ञा की थी—मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। तब उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको देख यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।

"नहीं आर्य !

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर ।

"नहीं आर्य !

"भगिनी ! मैंने समादान (=प्रतिज्ञा) की है मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।

तब उस भिक्षु-द्वारा अत्यन्त बाध्य किये जानेपर उस भिक्षुणीने पात्र निकालकर दिखला दिया—

"देखो आर्य ! पात्रमें गर्भ है। मत किसीसे कहना।

तब वह भिक्षु हैरान होता था—"कैसे भिक्षुणी पात्रमें गर्भ ले जायगी"। तब उस भिक्षुने भिक्षुओंको यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु ।०—

"भिक्षुणीको पात्रमें गर्भ नहीं ले जाना चाहिये ० दुक्कट । अनुमति देता हूँ भिक्षुको देख कर भिक्षुणीको पात्र निकालकर दिखलानेकी ।" 53

२—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदीको दिखलाती थीं। भिक्षु हैरान होते थे— ।

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुणियोंको भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदी नहीं दिखलानी चाहिये ० दुक्कट । अनुमति देता हूँ भिक्षुणीको भिक्षु देख पात्रको उघाड़कर दिखलानेकी और जो पात्रमें भोजन हो उसके लिये निमंत्रित करनेकी ।" 54

(१४) पुरुष-व्यंजन देखनेका निषेध

उस समय श्रावस्तीमें नगरद्वार पुरुष-व्यंजन (=लिंग) पड़ा हुआ था। भिक्षुणियाँ बड़े गौरसे देखने लगीं। मनुष्योंने ताना (=उपहास) मारा। वह भिक्षुणियाँ (लज्जासे) मूक मूक हो गईं। तब उन भिक्षुणियोंने उपाश्रय (=आश्रम) में जा भिक्षुणियोंसे यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थीं वह हैरान होती थीं—कैसे भिक्षुणियाँ पुरुष-व्यंजनको गौरसे देखेंगी !! तब उन भिक्षुणियोंने भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुणियोंको पुरुष-व्यंजन गौरसे देखना नहीं चाहिये ० दुक्कट ।" 55

(१५) भिक्षुओंका भिक्षुणियोको परस्पर भोजन देनेमें नियम

१—उस समय लोग भिक्षुओको भोजन (=आमिष) देते थे। भिक्षु (उसे), भिक्षुणियोको दे देते थे। लोग हैरान ० होते थे—'कैसे भदन्त (लोग) अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको देंगे ! क्या हम दान देना नही जानते ?' ०—

"भिक्षुओ ! अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नही देना चाहिये।० दुक्कट ०।" 56

२—उस समय भिक्षुओके पास अधिक भोजन (=आमिष) जमा हो गया था। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, सघको देनेकी।" 57

३—बहुत ही अधिक जमा हो गया था।०—

"० अनुमति देता हूँ, व्यक्तिके लिये भी देनेकी।" 58

४—उस समय भिक्षुओको जमा किया भोजन मिला था।०—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोके जमा किये (पदार्थ)को भिक्षुओको दिलवाकर खानेकी।" 59

५—उस समय लोग भिक्षुणियोको भोजन देते थे ०।—

"० भिक्षुणियोको अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नही देना चाहिये,० दुक्कट ०।"० 60

६—"० अनुमति देता हूँ सघको देनेकी।"० 61

७—"० अनुमति देता हूँ व्यक्तिके लिये भी देनेकी।"० 62

८—"० अनुमति देता हूँ भिक्षुओंके जमा किये हुये (पदार्थ)को भिक्षुणियोको दिलवाकर खानेकी।" 63

§५—आसन-वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ-स्थान, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको आसन आदि देना

उस समय भिक्षुओके पास शयन-आसन (=आसन-बिछौना) अधिक था, भिक्षुणियोके पास न था। भिक्षुणियोने भिक्षुओके पास सन्देश भेजा—"अच्छा हो भन्ते ! आर्य (लोग) हमें कुछ समयके लिये शयन-आसन दें। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोको कुछ समयके लिये शयन-आसन देनेकी।" 64

(२) ऋतुमती भिक्षुणीके नियम

१—उस समय ऋतुमती भिक्षुणियाँ गद्दीदार चारपाइयो गद्दीदार चौकियोपर बैठती भी लेटती भी थी। शयन-आसन खूनसे सन जाता था।०—

"० ऋतुमती भिक्षुणियोको गद्दीदार चारपाइयो गद्दीदार चौकियोपर नही बैठना चाहिये, लेटना चाहिये,० दुक्कट ०।"

भिक्षुओ ! भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार न देवे दुक्कट । अनुमति देता हूँ भिक्षुणीको भिक्षु देख दूर हट (उसे) मार्ग देना । 52

(१३) भिक्षुको पात्र खोलकर दिखलाना चाहिये

१—उस समय एक स्त्रीका पति परदेश चला गया था और उसे जारसे गर्भ हो गया। उसने गर्भ गिराकर (कराकर) घर आनेवाली भिक्षुणीसे यह कहा अच्छा हो आर्ये ! इस गर्भको पात्रमें बाहर ले जाओ। तब वह उस भिक्षुणीने उस गर्भको पात्रमें रख संघाटीसे ढाँक चली गई। उस समय एक पिंडचारिक (=निमंत्रण न ले सदा भिक्षा माँगकर खानेवाला) भिक्षुने प्रतिज्ञा की थी— मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। तब उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको देख यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।

"नहीं आर्य !

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको यह कहा—

'हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।

'नहीं आर्य !

"भगिनी ! मैंने समारंभ (=प्रतिज्ञा)की है मैं जो भिक्षा पहिले पाऊँगा उसे भिक्षु या भिक्षुणीको बिना दिये नहीं खाऊँगा। हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।

तब उस भिक्षु-द्वारा अत्यन्त बाध्य किये जानेपर उस भिक्षुणीने पात्र निकालकर दिखला दिया—

"देखो आर्य ! पात्रमें गर्भ है। मत किसीसे कहना।

तब वह भिक्षु हैरान होता था—'कैसे भिक्षुणी पात्रमें गर्भ ले जायेगी'। तब उस भिक्षुने भिक्षुओंको यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु ।०—

भिक्षुणीको पात्रमें गर्भ नहीं ले जाना चाहिये दुक्कट । अनुमति देता हूँ भिक्षुको देख कर भिक्षुणीको पात्र निकालकर दिखलानेकी। 53

२—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदीको दिखलाती थीं। भिक्षु हैरान होते थे— ।

भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुणियोंको भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदी नहीं दिखलानी चाहिये दुक्कट । अनुमति देता हूँ, भिक्षुणीको भिक्षु देख पात्रको उघाड़कर दिखलानेकी और जो पात्रमें भोजन हो उससे लिये निमंत्रित करनेकी। 54

(१४) पुरुष-व्यंजन देखनेका निषेध

उस समय श्रावस्तीमें सड़कपर पुरुष व्यंजन (=लिंग) फेंका हुआ था। भिक्षुणियाँ बड़े गौरसे देखने लगीं। मनुष्योंने ताना (=उत्कुट्टि) मारा। वह भिक्षुणियाँ (लज्जासे) चुप मूक हो गईं। तब उन भिक्षुणियोंने उपाश्रय (=आश्रम) में जा भिक्षुणियोंसे यह बात कही। जो वह अल्पेच्छ भिक्षुणियाँ थी वह हैरान होती थीं—कैसे भिक्षुणियाँ पुरुष-व्यंजनको गौरसे देखेंगी ! ! तब उन भिक्षुणियोंने भिक्षुओंसे यह बात कही। भिक्षुओंने भगवान्‌से यह बात कही।—

भिक्षुणियोंको पुरुष-व्यंजन नहीं गौरसे देखना चाहिये दुक्कट । 55

थी, उत्तर नही दे सकती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोके पूछनेकी।"

वही सघके बीचमे अ नु शा स न करते। उपसपदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थी, मूक हो जाती थी, उत्तर न दे सकती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोके अ नु शा स न करनेकी, और सघके बीचमे पूछनेकी और भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पा त्र - ची व र को बतलाना चाहिये—

"यह तेरा पात्र है, यह सघाटी, यह उत्तरा-सग, यह अन्तरवासक, यह सकच्चिक (=अगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र) है। जा उस स्थानमे खळी हो।"

तब उस उपसपदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली! सुनती हो? यह तुम्हारा सत्यका काल=भूतका काल है। जो जानता है सघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" करना चाहिये, नही होनेपर "नही" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (सघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेगे—

(१) तू निमित्त-रहित तो नही है,०, (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (सख्यामे) पूरे तो है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

३ (उस समय अनुशासिका और उपसपदा चाहनेवाली दोनो) एक साथ (सघमें) आती थी। (भगवान्‌से यह बात कही)।—

"भिक्षुओ! एक साथ नही आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर सघको सूचित करे—

क आर्यो! सघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैने उसको अनुशासन किया है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कधेपर उ त्त रा स ग को करवाकर भिक्षुणियोंके चरणोमे वदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उपसपदा के लिये याचना करवानी चाहिये—

या च ना (१) आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको ज्ञापित करे—

भन्ते! सघ मेरी सुने—

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार) से विघ्नकारक बातोको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

अनुमति देता हूँ आयसक चीवर[1]की। 65

२—(आयसक चीवर) ढुलक जाता था।—

अनुमति देता हूँ आणि चोळक (=गोटू-सोल) की। 66

३—आणि चोळक गिर जाता था। —

अनुमति देता हूँ सूतमें बाँधकर उससे बाँधनेकी। 67

४—सूत टूट जाता था। —

अनुमति देता हूँ ऐंठे (=संवल्लिय) कटि-सूत्रकी। 68

—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!! —

भिक्षुणियोंको सर्वदा कटि-सूत्र नहीं धारण करना चाहिये ... दुक्कट। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी। 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) उपसम्पदाके लिये शारीरिक दोषका ख्याल रखना

१—उस समय उपसम्पदा प्राप्त (भिक्षुणियों)में देखी जाती थीं—निमित्त (=स्त्री चिह्न) रहित भी निमित्तमात्रा (=हिजड़िन) भी आलोहिता[1] भी ध्रुवलोहिता[1] भी ध्रुवचोळा[1] भी पग्घरन्ती भी सिखरिणी भी स्त्रीपण्डक (=हिजड़िन) भी वेपुरिसिका भी सम्भिन्न भी (स्त्री पुरुष) दोनोंके व्यञ्जनवाली भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उपसम्पदा देते वक्त चौबीस अ न्त रा यि क (=विघ्नकारक) धर्मों (=बातों) के पूछनेकी। 70

"और ऐसे पूछना चाहिये—'(१) तू निमित्त रहित तो नहीं है? (२) निमित्त-मात्र ? (३) आलोहिता ? (४) ध्रुवलोहिता ? (५) ध्रुवचोळा ? (६) पग्घरन्ती ? (७) सिखरिणी ? (८) स्त्री-पण्डक ? ( ) वेपुरिसिका ? (१) सम्भिन्ना ? (११) दोनों व्यञ्जनवाली ? क्या तुझे ऐसी बीमारी है? जैसे कि (१२) कोढ़ (१३) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोड़ा) गंड (=एक प्रकारका फोड़ा) (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग) (१५) सोस (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१९) तू स्वतन्त्र (=अदासी) है? (२०) तू उऋण है? (२१) तू राज भटी (=राजाकी सैनिक स्त्री) तो नहीं है? (२२) तुझे माता पिता और पतिने अनुमति दी है (निकलनेकी)? (२३) तू पूरे बीस वर्षकी हो गई है? (२४) तेरे पास पात्र चीवर (=सामान) पूरे हैं? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंसे अ न्त रा यि क धर्मोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली लजाती थीं, चुप हो जाती थीं, उत्तर नहीं दे सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ (पहिले) एक (भिक्षुणी-संघ)में उपसम्पन्न हुई (अन्तरायिक दोषोंसे) शुद्धको (फिर) भिक्षु-संघमें उपसम्पदा देनेकी। 71

अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसम्पदा चाहनेवालीसे भिक्षु लोग (भेदक) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली लज्जित हो जाती थीं, मूक हो जाती

[1][illegible]। ऋतुविकारवाली स्त्रियोंके भेद।

[1]मिलाओ महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ ११३)।

थी, उत्तर नहीं दे सकती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोंके पूछनेकी।"

वहीं संघके बीचमें अनुशासन करते। उपसम्पदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थी, मूक हो जाती थी, उत्तर न दे सकती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंके अनुशासन करनेकी, और संघके बीचमें पूछनेकी। और भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—

"यह तेरा पात्र है, यह संघाटी यह उत्तरा-संग यह अन्तरवासक, यह संकच्चिक (=अंगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र) है। जा उस स्थानमें खड़ी हो।'

तब उस उपसम्पदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली! सुनती हो? यह तुम्हारा सत्यका काल—भूतका काल है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये, नहीं होनेपर "नहीं" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—

(१) तू निमित्त-रहित तो नहीं है,०, (२८) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूरे तो है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

३ (उस समय अनुशासिका और उपसम्पदा चाहनेवाली दोनों) एक साथ (संघमें) आती थीं। (भगवान्‌ने यह बात कही)।—

"भिक्षुओ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर संघको सूचित करे—

क आर्यो! संघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उत्तरासंघ को करवाकर भिक्षुणियोंके चरणोंमें वंदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उपसंपदा के लिये याचना करवानी चाहिये—

याचना (१) आर्ये! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—आर्ये! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको ज्ञापित करे—

भन्ते! संघ मेरी सुने—

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार) से विघ्नकारक बातोंको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

अनुमति देता हूँ आवसथ चीवर[1]की। 65

२—(आवसथ चीवर) सबसे सब जाता था। —

अनुमति देता हूँ आणि चोळ (=गोह-सोल) की। 66

३—आणि चोळक गिर जाता था। —

अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर उससे बाँधनेकी। 67

४—सूत टूट जाता था। —

अनुमति देता हूँ ऐंठे (=संवेल्लिय) कटि-सूत्रकी। 68

—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!! —

भिक्षुणियोंको सर्वदा कटिसूत्र नहीं धारण करना चाहिये ० दुक्कट। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी। 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) उपसम्पदाके लिये शारीरिक दोषका ख्याल रखना

१—उस समय उपसम्पदा प्राप्त (भिक्षुणियाँ)में देखी जाती थी—निमित्त (=स्त्री चिह्न) रहित भी, निमित्तमात्रा (=हिजड़िन) भी, आलोहिता[2] भी, ध्रुवलोहिता[2] भी, ध्रुवचोळा[2] भी, पग्घरन्ती[2] भी, सिखरिणी भी, स्त्रीपण्डक (=हिजड़िन) भी, वेपुरुषिका भी, सम्भिन्ना भी, (स्त्री पुरुष) दोनोंके लक्षणवाली भी। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उपसम्पदा देते वक्त चौबीस अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्मों (=बातों) पूछनेकी। 70

"और ऐसे पूछना चाहिये—[3](१) तू निमित्त-रहित तो नहीं है? (२) निमित्त-मात्र ? (३) आलोहिता ? (४) ध्रुवलोहिता ? (५) ध्रुवचोळा ? (६) पग्घरन्ती ? (७) सिखरिणी ? (८) स्त्री-पण्डक ? (९) वेपुरुषिक ? (१०) सम्भिन्ना ? (११) दोनों लक्षणवाली ? क्या तुझे ऐसी बीमारी है, जैसे कि (१२) कोढ़ (१३) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोड़ा) गंड (=एक प्रकारका फोड़ा) (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग) (१५) सोष (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१९) तू स्वतंत्र (=अदासी) है? (२०) तू उऋण है? (२१) तू राजभटी (=राजाकी सैनिक स्त्री) तो नहीं है? (२२) तुझे माता पिता और पतिने अनुमति दी है (भिक्षुणी बननेकी)? (२३) तू पूरे बीस वर्षकी हो गई है? (२४) तेरे पास पात्र चीवर (संख्यामें) पूरे हैं? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंसे अन्तरायिक धर्मोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली लजाती थी, चुप हो जाती थी, उत्तर नहीं दे सकती थी। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ (पहिले) एक (भिक्षुणी-संघ)में उपसम्पन्न हुई (अन्तरायिक दोषोंसे) शुद्धको (फिर) भिक्षु-संघमें उपसम्पदा देनेकी। 71

अनुशासन—उस समय अनुशासन न किये ही उपसम्पदा चाहनेवालीसे भिक्षु लोग ([illegible]) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली चुप हो जाती थी, मूक हो जाती

[1] ऋतुकालके उपयोगके लिये कपड़ा। [2] ऋतुविकारवाली स्त्रियोंकी संज्ञा।

[3] मिलाओ महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ ११२)।

थी, उत्तर नही दे सकती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोके पूछनेकी।"

वही सघके बीचमे अनुशासन करते। उपसपदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थी, मूक हो जाती थी, उत्तर न दे सकती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोके अनुशासन करनेकी, और सघके बीचमे पूछनेकी और भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—

"यह तेरा पात्र है, यह सघाटी, यह उत्तरा-सग, यह अन्तरवासक, यह सकच्चिक (=अगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र) है। जा उस स्थानमे खळी हो।"

तब उस उपसपदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली! सुनती हो? यह तुम्हारा सत्यका काल=भूतका काल है। जो जानता है सघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" करना चाहिये, नही होनेपर "नहीं" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (सघमे) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—

(१) तू निमित्त-रहित तो नही है,०, (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (सख्यामें) पूरे तो है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

३ (उस समय अनुशासिका और उपसपदा चाहनेवाली दोनो) एक साथ (सघमें) आती थी। (भगवान्से यह बात कही)।—

"भिक्षुओ! एक साथ नही आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर सघको सूचित करे—

क आर्यो! सघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कधेपर उत्तरासघ को करवाकर भिक्षुणियोके चरणोमें वदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उपसपदा के लिये याचना करवानी चाहिये—

याचना (१) आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको ज्ञापित करे—

भन्ते! सघ मेरी सुनें—

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार) से विघ्नकारक बातोको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

अनुमति देता हूँ आवसथ चीवर[1]की। 65

२—(आवसथ चीवर) खसके गिर जाता था। —

अनुमति देता हूँ आणि-चोळ (=कोहू-सोक) की। 66

३—आणि चोळक गिर जाता था। —

अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर उससे बाँधनेकी। 67

४—सूत टूट जाता था। —

अनुमति देता हूँ ऐंठे (=संवेल्लिय) कटि-सूत्रकी। 68

५—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!! —

भिक्षुणियोंको सर्वदा कटिसूत्र नहीं धारण करना चाहिये, दुक्कट। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी। 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) उपसम्पदाके लिये शारीरिक दोषका ख्याल रखना

१—उस समय उपसम्पदा प्राप्त (भिक्षुणियाँ)में दखी जाती थीं—निमित्त (=स्त्री चिह्न) रहित भी निमित्तमात्रा (=हिजड़िन) भी आलोहिता[2] भी ध्रुवलोहिता[2] भी ध्रुवचोळा[2] भी पग्घरन्ती[2] भी सिखरिणी भी स्त्रीपंडक (=हिजड़िन) भी वेपुरुषिका भी सम्भिन्न भी (स्त्री पुरुष) दोनोंके लक्षणवाली भी। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उपसम्पदा देते वक्त चौबीस अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्मों (=बातोंके) पूछनेकी। 70

'और ऐसे पूछना चाहिये—[3] (१) तू निमित्त रहित तो नहीं है? (२) निमित्त-मात्र ? (३) आलोहिता ? (४) ध्रुवलोहिता ? (५) ध्रुवचोळा ? (६) पग्घरन्ती ? (७) सिखरिणी ? (८) स्त्री-पंडक ? (९) वेपुरुषिक ? (१) सम्भिन्ना ? (११) दोनो लक्षणवाली ? क्या तुझे ऐसी बीमारी है, जैसे कि (१२) कोढ़ (१३) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोड़ा) गंड (=एक प्रकारका फोड़ा) (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग) (१५) शोष (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१९) तू स्वतंत्र (=अदासी) है (२) तू उऋण है? (२१) तू राज-भटी (=राजाकी सैनिक स्त्री) तो नहीं है? (२२) तुझे माता पिता और पतिने अनुमति दी है (भिक्षुणी बननेकी)? (२३) तू पूरे बीस वर्षकी की है? (२४) तेरे पास पात्र चीवर (संख्यामें) पूरे हैं? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंसे अन्तरायिक धर्मोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली लजाती थीं चुप हो जाती थी उत्तर नहीं दे सकती थी। भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ (पहिले) एक (भिक्षुणी-संघ)में उपसम्पन्न हुई (अन्तरायिक दोषोंसे) शुद्ध को (फिर) भिक्षु-संघमें उपसम्पदा देनेकी। 71

अनुशासन—उस समय अनुशासन न किये ही उपसम्पदा चाहनेवालीसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोंको पूछते थे। उपसम्पदा चाहनेवाली चुप हो जाती थी मूक हो जाती

[1] ऋतुकालमें उपयोगके लिये कपड़ा। [2] ऋतुविकारवाली स्त्रियोंकी संज्ञा। [3] मिलाओ महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ ११२)।

थी, उत्तर नही दे सकती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बातोंके पूछनेकी।"

वहीं संघके बीचमें अनुशासन करते। उपसम्पदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थी, मूक हो जाती थी, उत्तर न दे सकती थी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोंके अनुशासन करने-की, और संघके बीचमें पूछनेकी और भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवर को बतलाना चाहिये—

'यह तेरा पात्र है, यह संघाटी, यह उत्तरासंग, यह अन्तरवासक, यह संकच्चिक (=अंगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र) है। जा उस स्थानमें खळी हो।"

तब उस उपसम्पदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली! सुनती हो? यह तुम्हारा सत्यका काल=भूतका काल है। जो जानता है संघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये, नहीं होनेपर "नहीं" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (संघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—

(१) तू निमित्त-रहित तो नहीं है,० (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (संख्यामें) पूरे तो हैं? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

३ (उस समय अनुशासिका और उपसम्पदा चाहनेवाली दोनो) एक साथ (संघमें) आती थी। (भगवान्‌ने यह बात कही)।—

"भिक्षुओ! एक साथ नहीं आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर संघको सूचित करे—

क आर्यो! संघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि संघ उचित समझे तो इस नाम-वाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कंधेपर उत्तरासंघ को करवाकर भिक्षुणियोंके चरणोंमें वंदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उप-संपदा के लिये याचना करवानी चाहिये—

याचना (१) आर्ये! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—आर्ये! संघसे उपसंपदा माँगती हूँ। आर्ये! संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको ज्ञापित करे—

भन्ते! संघ मेरी सुने—

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसंपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार) से विघ्नकारक बातोंको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

अनुमति देता हूँ आयसम चीवरकी। 65
२—(आयसम चीवर) उसमें सन जाता था।—
अनुमति देता हूँ आणि चोळ (=मोहू-मोल) की। 66
—आणि चोळ गिर जाता था।—
अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर उसमें बाँधनेकी। 67
४—सूत टूट जाता था।—
अनुमति देता हूँ तेरे (=ऋतुस्राव) कटि-सूत्रकी। 68
—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!—

भिक्षुणियोंको सदा कटि-सूत्र नहीं धारण करना चाहिये, दुक्कट। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी। 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

( ) उपसम्पदाके लिये शारीरिक बाधाएँ स्थान रखना

१—उस समय उपसम्पदा प्राप्त (भिक्षुणियों)में देखी जाती थीं—निमित्त (=स्त्री चिन्ह) रहित भी, निमित्तमात्रा (...)भी, अलोहिता भी, ध्रुवलोहिता भी, ध्रुवचोळा भी, पगघरनी भी, शिखरणी भी, स्त्रीपंडक (=हिजड़िन) भी, वेपुरिसिका भी, सम्भिन्ना भी, (स्त्री पुरुष) दोनों लिंगवाली भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उपसम्पदा देते वक्त चौबीस अन्तरायिक (विघ्नकारक) धर्मों (=बातों) पूछनेकी। 70

"और इसे पूछना चाहिये—(१) तू निमित्त रहित तो नहीं है? (२) निमित्त-मात्र? (३) अलोहिता? (४) ध्रुवलोहिता? ( ) ध्रुवचोळा? (६) पगघरनी? (७) शिखरणी? (८) स्त्री-पंडक? ( ) वेपुरिसिका? (१) सम्भिन्ना? (११) दोनों लिंगवाली? क्या तुझे ऐसी बीमारियाँ हैं? जैसे कि (१२) कोढ़ (१३) गंड (=एक प्रकारका बुरा फोड़ा) [illegible] (=एक प्रकारका [illegible]) (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग) (१५) शोष (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१) तू स्वतंत्र (=अदासी) है? ( ) तू उऋण है? (२१) तू राज भटी (=सरकारी नौकर स्त्री) तो नहीं है? (२२) तुझे माता पिता और पति अनुमति दी है (छुट्टी दी है)? ( ) तू पूरे बीस वर्षकी हो गई है? (२४) तेरे पात्र चीवर (पास) पूरे हैं? क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?"

—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंसे अन्तरायिक बातोंको पूछते थे। उपसम्पदाकी चाहवाली [illegible] [illegible] [illegible] नहीं दे सकती थीं। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ (भिक्षु) संघ (भिक्षुणी-संघ)में उपसम्पदा हुई (अन्तरायिक बातों) [illegible] [illegible] [illegible]। 71

[illegible]—उस समय अन्तराय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

मिलकर स्वर सहित पाठ) करती समय बिताती थी। भगवान्से यह बात कही—

"० अनुमति देता हूँ आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी)।" 76

२—उस समय भिक्षुणियाँ —भगवान्ने आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी) आज्ञा दी है—(सोच) सभी जगह आठ ही भिक्षुणियाँ वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा करती थी, और बाकी आनेके क्रमके अनुसार (चली जाती थी)। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके समय आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार। और सब जगह वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा नही करनी चाहिये,० दुक्कट ०।" 77

(५) प्रवारणाके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ प्र वा र णा[1] नही करती थी।०—

"० भिक्षुणियोको प्रवारणा-न-करना नही चाहिये, जो प्रवारणा न करे उसका धर्मके अनुसार (दड) करना चाहिये।" 78

२—० भिक्षुणियाँ अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षु-सघमें प्रवारणा नही करती थी।०—

"० भिक्षुणियोका अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षुसघमे प्रवारणा न करना ठीक नही, जो न करे उसे धर्मके अनुसार (दड) करना चाहिये।" 79

३—० भिक्षुणियोने भिक्षुओके साथ एक समय प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको भिक्षुओके साथ एक समय प्रवारणा नही करनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 80

४—० भिक्षुणियाँ भोजनसे पहिले प्रवारणा करती थी, (उसमें उन्होने भोजनके) कालको बिता दिया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके बाद प्रवारणा करनेकी।" 81

५—भोजनके बाद प्रवारणा करते विकाल हो गया।०—

"० अनुमति देता हूँ, आज (अपने सघमें) प्रवारणा करके कल भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेकी।" 82

(६) प्रतिनिधि भेज भिक्षु-सङ्घमे प्रवारणा

उस समय सारे भिक्षुणी-सघने (भिक्षुसघमें जा) प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे प्रवारणा करनेके लिये एक चतुर समर्थ भिक्षुणीको चुननेकी।" 83

"और इस प्रकार चुनाव (=सम्मत्रण) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुणीसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'आर्या सघ! मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे, तो भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१)'आर्या सघ! मेरी सुने—सघ भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें

---

[1] मिलाओ महावग्ग, प्रवारणा-स्कन्धक (पृष्ठ १८५)।

अन्तराय है कहना नहीं । अन्तराय नहीं है कहना । क्या (१) तू निमित्त-रहित तो नहीं तेरे पात्र चीवर (पूरा-सम्पूर्ण) है ? तेरा क्या नाम है ? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है ?

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—आर्ये ! संघ मेरी (बात) सुने यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदा चाहनेवाली (शिष्या) विघ्नकारक बातोंसे शुद्ध है । (इसका) पात्र चीवर परिपूर्ण है । (यह) इस नामवाली (उम्मीदवार) इस नामवाली (भिक्षुणीको) प्रवर्तिनी बना संघसे उपसम्पदा चाहती है । यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करे—यह सूचना ।

"ख. अनुश्रावण—(१) आर्ये ! संघ मेरी सुने । यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदा चाहनेवाली शिष्या अन्तरायिक बातोंसे परिशुद्ध है । (इसका) पात्र-चीवर परिपूर्ण है । (यह) इस नामवाली उम्मीदवार इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा चाहती है । संघ इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा देता है । जिस आर्याको इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा पसन्द है वह चुप रहे । जिसको पसन्द नहीं है वह बोले । (२) दूसरी बार भी इसी बात को कहती हूँ—आर्ये ! संघ मेरी सुने... । (३) तीसरी बार भी इस बातको कहती हूँ—आर्ये ! संघ मेरी सुने... जिसको पसन्द नहीं है वह बोले ।

"ग. धारणा—इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

(४) उसी समय उसे लेकर भिक्षु-संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंग करवा भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना करवा उकड़ूँ बैठवा हाथ जोड़वा उपसम्पदा मँगवानी चाहिये—

याचना—(१) आर्यो ! मैं इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदाकी (शिष्या) एक ओर (भिक्षुणी-संघमें) उपसम्पदा पाई भिक्षुणी-संघमें (पूछे गये अन्तरायिक बातोंसे) शुद्ध हूँ । आर्यगणसे मैं उपसम्पदा माँगती हूँ । आर्य-संघ अनुकम्पा करके मेरा उद्धार करे । (२) दूसरी बार भी आर्यो ! मैं इस नामवाली... । तीसरी बार भी आर्यो ! मैं इस नामवाली... ।

तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञप्ति । [illegible] अनुश्रावण ।

फिर चतुर समर्थ भिक्षु—[illegible] नहीं है वह बोले ।

"ग. (धारणा)—"इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली आर्याके प्रवर्तिनीत्वमें उपसम्पदा हो गई । संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ ।"

५—उसी समय (छाया नापनेके लिये) छाया नापनी चाहिये । ऋतु-प्रमाण बतलाना चाहिये । दिनका भाग बतलाना चाहिये । [illegible] बतलानी चाहिये । (भिक्षुणियोंको) कहना चाहिये—'इसे [illegible] और [illegible] बतलाना ।'

(४) [illegible] नियम

१—उस समय [illegible] (भुक्ताकी) [illegible] (—[illegible]

[illegible]

[illegible] ५३८ [illegible]

मिलकर स्वर सहित पाठ) करती समय बिताती थीं। भगवान्‌ने यह बात कही—

"० अनुमति देता हूँ आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी)।" 76

२—उस समय भिक्षुणियाँ —भगवान्‌ने आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी) आज्ञा दी है—(सोच) सभी जगह आठ ही भिक्षुणियाँ वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा करती थी, और बाकी आनेके क्रमके अनुसार (चली जाती थीं)। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके समय आठ भिक्षुणियोंको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार। और सब जगह वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये,० दुक्कट ०।" 77

(५) प्रवारणाके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ प्र वा र णा[1] नहीं करती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको प्रवारणा-न-करना नहीं चाहिये, जो प्रवारणा न करे उसका धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 78

२—० भिक्षुणियाँ अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षु-सघमें प्रवारणा नहीं करती थी।०—

"० भिक्षुणियोंका अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षुसघमें प्रवारणा न करना ठीक नहीं, जो न करे उसे धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 79

३—० भिक्षुणियोंने भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोंको भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा नहीं करनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 80

४—० भिक्षुणियाँ भोजनसे पहिले प्रवारणा करती थीं, (उससे उन्होंने भोजनके) कालको बिता दिया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके बाद प्रवारणा करनेकी।" 81

५—भोजनके बाद प्रवारणा करते विकाल हो गया।०—

"० अनुमति देता हूँ, आज (अपने सघमें) प्रवारणा करके कल भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेकी।" 82

(६) प्रतिनिधि भेज भिक्षु-सङ्घमें प्रवारणा

उस समय सारे भिक्षुणी-सघने (भिक्षुसघमें जा) प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये एक चतुर समर्थ भिक्षुणीको चुननेकी।" 83

"और इस प्रकार चुनाव (=सम्मन्त्रण) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुणीसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'आर्या सघ! मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे, तो भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'आर्या सघ! मेरी सुने—सघ भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें

---

[1] मिलाओ महावग्ग, प्रवारणा-स्कन्धक (पृष्ठ १८५)।

होनेपर 'है' कहना नहीं होनेपर 'नहीं है' कहना। क्या (१) तू निमित्त-रहित तो नहीं तेरे पात्र चीवर (पूरा-सम्पूर्ण) है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी संघको सूचित करे—

"क. ज्ञप्ति—आर्ये! संघ मेरी (बात) सुने यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदा चाहनेवाली (शिष्या) विघ्नकारक बातोंसे शुद्ध है। (इसके) पात्र चीवर परिपूर्ण है। (यह) इस नामवाली (उम्मीदवार) इस नामवाली (भिक्षुणीको) प्रवर्तिनी बना संघसे उपसम्पदा चाहती है। यदि संघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा दे—यह सूचना।

"ख. अनुश्रावण—(१) आर्ये! संघ मेरी सुने। यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदा चाहनेवाली शिष्या अन्तरायिक बातोंसे परिशुद्ध है, (इसके) पात्र चीवर परिपूर्ण है। (यह) इस नामवाली उम्मीदवार इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा चाहती है। संघ इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा देता है। जिस आर्याको इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा पसंद है वह चुप रहे। जिसको पसंद नहीं है वह बोले। (२) दूसरी बार भी इसी बातको कहती हूँ—आर्ये! संघ मेरी सुने . . .। (३) तीसरी बार भी इस बातको कहती हूँ—आर्ये! संघ मेरी सुने . . . जिसको पसंद नहीं है वह बोले।

"ग. धारणा— इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा संघने दी। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

(४) उसी वक्त उस भिक्षुणी-संघके पास जा एक कंधेपर उत्तरासंग करवा भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दना करवा उकडूँ बैठवा हाथ जोड़वा उपसम्पदा मँगवानी चाहिये—

"याचना— (१) आर्यो! मैं इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसम्पदापेक्षी (=शिष्या) एक ओर (भिक्षुणी-संघम) उपसम्पदा पाई भिक्षुणी-संघम (पूछे गये अन्तरायिक बातोंसे) शुद्ध हूँ। आर्यसंघसे मैं उपसम्पदा माँगती हूँ। आर्य-संघ अनुकंपा करके मेरा उद्धार करे। (२) दूसरी बार भी आर्यो! मैं इस नामवाली . . .।

"तीसरी बार भी आर्यो! मैं इस नामवाली . . .।

तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

ज्ञप्ति। . . . द्वि . . . तृ . . . अनुश्रावण।

फिर चतुर समर्थ भिक्षु—'पसंद नहीं है वह बोले।

"घ. (धारणा)—"इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली आर्याके प्रवर्तिनीत्वमें संघने उपसम्पदा दी। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करता हूँ।

५—उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये। ऋतु-प्रमाण बतलाना चाहिये। दिनका भाग बतलाना चाहिये। संगीति[1] बतलानी चाहिये। भिक्षुणियोंको कहना चाहिये—इसे तीन निश्रय और आठ अकरणीय बतलाओ।

(५) भोजनसम्बन्धी नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ भोजनके समय आसनपर (बैठी) बकवाद (=आप

स्त्राया ऋतु और दिनका भाग इन तीनोंको इकट्ठा करनेको संगीति कहते हैं।

[1]महावग्ग पृष्ठ ११४-१५ (बातें नीचे लिखानेको छोड़कर)।

निकाल कर चलि गई) उनकी समय बिताती थी। भगवान्‌से यह बात कही—

"० अनुमति देता हूँ आठ भिक्षुणियोंको वृद्धतर क्रमसे आसन पानेकी। अन्योंको आगे आनेके अनुसार (बैठनेकी)। 76

३—उस समय भिक्षुणियाँ—भगवानने आठ भिक्षुणियोंको वृद्धतर क्रमसे और बाकीको आगे आनेके अनुसार (बैठनेकी) आज्ञा दी है—(सोच) सभी जगह आठ ही भिक्षुणियोंको वृद्धतर क्रमसे प्रतीक्षा करती थीं, और बाकी आगे आनेके अनुसार (करती थीं)।[1] भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ भोजनके समय आठ भिक्षुणियोंको वृद्धतर क्रमसे और बाकीको आगे आनेके अनुसार। और सब जगह वृद्धतर क्रमसे प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये,० दुक्कट ०।" 77

(५) प्रवारणाके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ प्रवारणा[1] नहीं करती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंको प्रवारणा न-करना नहीं चाहिये, जो प्रवारणा न करे उसका धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 78

२—० भिक्षुणियाँ अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षु-सघमें प्रवारणा नहीं करती थीं।०—

"० भिक्षुणियोंका अपनेमें प्रवारणा करके भिक्षुसघमें प्रवारणा न करना ठीक नहीं, जो न करे उसे धर्मके अनुसार (दंड) करना चाहिये।" 79

३—० भिक्षुणियोंने भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोंको भिक्षुओंके साथ एक समय प्रवारणा नहीं करनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 80

४—० भिक्षुणियाँ भोजनसे पहिले प्रवारणा करती थीं, (उसमें उन्होंने भोजनके) कालको बिता दिया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके बाद प्रवारणा करनेकी।" 81

५—भोजनके बाद प्रवारणा करते विकाल हो गया।०—

"० अनुमति देता हूँ, आज (अपने सघमें) प्रवारणा करके कल भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेकी।" 82

(६) प्रतिनिधि भेज भिक्षु-सङ्घमे प्रवारणा

उस समय सारे भिक्षुणी-सघने (भिक्षुसघमें जा) प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये एक चतुर समर्थ भिक्षुणीको चुननेकी।" 83

"और इस प्रकार चुनाव (=सम्मत्रण) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुणीसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'आर्या सघ! मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे, तो भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१)'आर्या सघ! मेरी सुने—सघ भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें

---

[1]मिलाओ महावग्ग, प्रवारणा-स्कन्धक (पृष्ठ १८५)।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है जिस आर्याको पसन्द हो वह चुप रहे जिस आर्याको पसन्द न हो वह बोले ।

(२) दूसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने— ।

(३) तीसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने— ।

ग धा र णा—'सघने भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है इसलिये चुप है'—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-सघको (साथ) ले भिक्षु सघके पास जा उत्तरासगको एक कधेपर कर भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) "आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे सुने और शका किये (सभी दोषोंके लिये) भिक्षु-सघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो ! कृपा करके भिक्षु-सघ भिक्षुणी-सघको (उसके दोष) कहे देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा ।

(२) दूसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे ।

(३) तीसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे ।

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओंके उपोसथको स्थगित करती थी प्रवारणा स्थगित करती थी बात मारती (=सवचनीय करती) थी अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थी अवकाश करवाती थी दोषारोप करती थी स्मरण दिलाती थी ।०—

भिक्षुणियोंका भिक्षुओंका उपोसथ स्थगित नही करना चाहिये (उनका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोष होगा। प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये बात नही मारनी चाहिये अनुवाद प्रस्थापित नही करना चाहिये अवकाश नही करवाना चाहिये दोषारोप नही करना चाहिये स्मरण नही दिलाना चाहिये स्मरण दिलाया भी न-स्मरण दिलाया होगा स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोष होगा। 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करते थे स्मरण दिलाते थे। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करनेकी स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा और स्थगित करनेवालेको दोष नही होगा स्मरण दिलानेकी स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा और स्मरण दिलानेवालेको दोष नही होगा। 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त पुरुषवाले पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाले यान (=सवारी)से जाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे गगाका मेला (=गगामहिया)। भगवान्से यह बात कही—

" भिक्षुणीको यानसे नही जाना चाहिये जो जाये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। 86

२—० एक भिक्षुणी बीमार थी पैरसे नही चल सकती थी। —

अनुमति देता हूँ बीमारको यानकी। 87

तब भिक्षुणियोंको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुष-युक्त (यान)की ? भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ स्त्री-युक्त पुरुष-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथसे खीचे)की। 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानमें उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ।०—

"० अनुमति देता हूँ, शिविका, (और) पाटकी (=पालकी)की ।" 89

(९) दूत भेजकर उपसम्पदा

१—उस समय अ ड्‌ ढ का सी (=आढच-काशी, काशी देशकी धनिक) गणिका भिक्षुणियोमे प्रव्रजित हुई थी। वह भगवान्‌के पास जा उपसम्पदा पानेकी इच्छासे श्रा व स्ती जाना चाहती थी। बदमाशो (=धूर्तो)ने सुना—आ ढच का शी गणिका श्रावस्ती जाना चाहती है। वह मार्गमे जा लगे। आढचकाशी गणिकाने सुना—मार्गमे बदमाश लगे है। उसने भगवान्‌के पास दूत भेजा—'मै उपसम्पदा लेना चाहती हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दूत द्वारा उपसम्पदा देनेकी।" 90

२—भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 91

३—शिक्षमाणा-दूत भेजकर०।

४—श्रामणेर-दूत भेजकर ०।

५—श्रामणेरी-दूत भेजकर ०।

६—मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ! मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा नही करनी चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर समर्थ भिक्षुणीको दूत (बना) भेजकर उपसम्पदा देनेकी। 92

"उस भिक्षुणी-दूतको सघके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग कर भिक्षुओके चरणोमें वन्दना कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—"(१) आर्यो! इस नामवाली (भिक्षुणी)की इस नाम-वाली उपसम्पदा चाहनेवाली है। एक ओरसे उपसम्पदा पा चुकी, भिक्षुणी-सघमे (दोषोसे) शुद्ध है। वह किसी अन्तराय (=विघ्न)से नही आ सकती। (वह) इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है। आर्यो! कृपा करके सघ उसका उद्धार करे।

"(२) आर्यो! इस नामवाली०। दूसरी बार भी इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है।

"(३) आर्यो! इस नामवाली०। तीसरी बार भी ०।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति०। ख अ नु श्रा व ण०। ग धा र णा०।

"उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये०[1]। ०—इसे तीन निश्रय और आठ अ-करणीय बतलाओ।"

§६—अरण्यवास निषेध, भिक्षुणी-विहारका निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दण्डिताको साथिनी देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान

(१) अरण्यवासका निषेध

उस समय भिक्षुणियाँ अरण्य (=जगल)में वास करती थी। बदमाश बलात्कार करते थे।०—

[1]देखो पृष्ठ ५३४।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है जिस आर्याको पसद हो वह चुप रहे जिस आर्याको पसद न हो वह बोले ।

(२) दूसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने—० ।

(३) तीसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने—० ।

'ग ध ा र णा—सघने भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघसे प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ' ।

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-सघको (साथ) ले भिक्षु सघके पास जा उत्तरा सघको एक कंधेपर कर भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे सुने और शंका किये (सभी दोषोके लिये) भिक्षु-सघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो ! कृपा करके भिक्षु-सघ भिक्षुणी-सघको (उसके दोष) कहे देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा ।

(२) दूसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे ।

(३) तीसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे ।

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओंके उपोसथको स्थगित करती थी प्रवारणा स्थगित करती थी *बात मारती (=अवचनीय करती) थी अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थी अवकाश करवाती* थी दोषारोप करती थी स्मरण दिलाती थी ।—

भिक्षुणियोंको भिक्षुओंका उपोसथ स्थगित नहीं करना चाहिये (उनका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोष होगा। प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये बात नही मारनी चाहिये अनुवाद प्रस्थापित नही करना चाहिये अवकाश नही करवाना चाहिये दोषारोप नहीं करना चाहिये स्मरण नही दिलाना चाहिये स्मरण दिलाया भी न-स्मरण दिलाया होगा स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोष होगा। 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करते थे स्मरण दिलाते थे। —

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करनेकी स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा और स्थगित करनेवालेको दोष नहीं होगा स्मरण दिलानेकी स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा और स्मरण दिलानेवालेको दोष नहीं होगा। 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त सवारी पुरुषयुक्त पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाली यान (=सवारी)से जाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे गगामें मही (=गगामहिया)। भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुणीको यानसे नहीं जाना चाहिये जो जाय उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। 86

२—० एक भिक्षुणी बीमार थी पैदल नहीं चल सकती थी। —

अनुमति देता हूँ बीमारको यानकी।" 87

तब भिक्षुणियोंको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुष-युक्त (यान)की ? भगवान्‌से यह बात कही।—

" अनुमति देता हूँ स्त्री-युक्त पुरुष-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथ खींच)की। 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानके उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ। —

"० अनुमति देता हूँ, शिविका, (और) पाटकी (=पालकी)की ।" 89

(९) दूत भेजकर उपसम्पदा

१—उस समय अड्ढकासी (=आढ्य-काशी, काशी देशकी धनिक) गणिका भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी। वह भगवान्‌के पास जा उपसम्पदा पानेकी इच्छासे श्रावस्ती जाना चाहती थी। बदमाशो (=धूर्तो)ने सुना—आढ्यकाशी गणिका श्रावस्ती जाना चाहती है। वह मार्गमे जा लगे। आढ्यकाशी गणिकाने सुना—मार्गमे बदमाश लगे है। उसने भगवान्‌के पास दूत भेजा—'मै उपसम्पदा लेना चाहती हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

तब भगवान्‌ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दूत द्वारा उपसम्पदा देनेकी ।" 90

२—भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ ! भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 91

३—शिक्षमाणा-दूत भेजकर० ।

४—श्रामणेर-दूत भेजकर ० ।

५—श्रामणेरी-दूत भेजकर ० ।

६—मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा करते थे ।०—

"भिक्षुओ ! मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा नही करनी चाहिये, ० दुक्कट ० । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर समर्थ भिक्षुणीको दूत (बना) भेजकर उपसम्पदा देनेकी । 92

"उस भिक्षुणी-दूतको सघके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग कर भिक्षुओके चरणोमें वन्दना कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—"(१) आर्यो ! इस नामवाली (भिक्षुणी)की इस नाम-वाली उपसम्पदा चाहनेवाली है। एक ओरसे उपसम्पदा पा चुकी, भिक्षुणी-सघमे (दोषोंसे) शुद्ध है। वह किसी अन्तराय (=विघ्न)से नही आ सकती। (वह) इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है। आर्यो! कृपा करके सघ उसका उद्धार करे।

"(२) आर्यो ! इस नामवाली० । दूसरी बार भी इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है।

"(३) आर्यो ! इस नामवाली० । तीसरी बार भी ० ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति० । ख अनुश्रावण० । ग धारणा० ।

"उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये०[1] । ०—इसे तीन निश्रय और आठ अ-करणीय बतलाओ ।"

§६—अरण्यवास निषेध, भिक्षुणी-विहारका निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दण्डिताको साथिनी देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान

(१) अरण्यवासका निषेध

उस समय भिक्षुणियाँ अरण्य (=जगल)में वास करती थी ! बदमाश बलात्कार करते थे।०—

---

[1]देखो पृष्ठ ५३४ ।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है जिस आर्याको पसंद हो वह चुप रहे जिस आर्याको पसंद न हो वह बोले ।

(२) दूसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने— ।

(३) तीसरी बार भी आर्या सघ ! मेरी सुने— ।

ग धा र णा—'सघने भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया । सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ ।

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-सघको (साथ) ले भिक्षु सघके पास जा उत्तरा-सगको एक कधेपर कर भिक्षुओके चरणोंमे वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) "आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे सुने और शका किये (सभी दोषोंके लिये) भिक्षु-सघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो ! कृपा करके भिक्षु-सघ भिक्षुणी-सघको (उसके दोष) कहे देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा ।

(२) दूसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ दखे ।

(३) तीसरी बार भी आर्यो ! भिक्षुणी-सघ दखे ।

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओके उपोसथको स्थगित करती थी प्रवारणा स्थगित करती थी बात मारती (=सवचनीय करती) थी अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थी अवकाश करवाती थी दोषारोप करती थी स्मरण दिलाती थी ।०—

भिक्षुणियोंको भिक्षुओका उपोसथ स्थगित नही करना चाहिये (उसका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोष होगा । प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये बात नही मारनी चाहिये अनुवाद प्रस्थापित नही करना चाहिये अवकाश नही करवाना चाहिये दोषरोप नही करना चाहिये स्मरण नही दिलाना चाहिये स्मरण दिलाया भी न-स्मरण-दिलाया होगा स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोष होगा। 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करते थे स्मरण दिलाते थे ।०—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करनेकी स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा और स्थगित करनेवालेको दोष नही होगा स्मरण दिलानेकी स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा और स्मरण दिलानेवालेको दोष नही होगा। 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त दूसरे पुरुषवाले पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाले यान (=सवारी)से जाती थी । लोग हैरान होते थे—जैसे गगाका मेला (=गगामहिया) ! भगवान्से यह बात कही—

भिक्षुणीको यानसे नही जाना चाहिये जो जाये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये । 86

२— एक भिक्षुणी बीमार थी पैरसे नही चल सकती थी । —

अनुमति देता हूँ बीमारको यानकी। 87

तब भिक्षुणियोंको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुष-युक्त (यान)की ? भगवान्से यह बात कही ।—

अनुमति देता हूँ स्त्री-युक्त पुरुष-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथसे खींचे)की । 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानके उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ ।०—

"०अनुमति देता हूँ, शिविका, (और) पाटकी (=पालकी)की ।" 89

(९) दूत भेजकर उपसम्पदा

१—उस समय अड्ढकासी (=आढ्य-काशी, काशी देशकी धनिक) गणिका भिक्षुणियोमें प्रव्रजित हुई थी। वह भगवान्‌के पास जा उपसम्पदा पानेकी इच्छासे श्रावस्ती जाना चाहती थी। वदमाशो (=धूर्तो)ने सुना—आढ्यकाशी गणिका श्रावस्ती जाना चाहती है। वह मार्गमे जा लगे। आढ्यकाशी गणिकाने सुना—मार्गमें वदमाश लगे हैं। उसने भगवान्‌के पास दूत भेजा—'मै उपसम्पदा लेना चाहती हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

तव भगवान्‌ने इसी सवधमें इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दूत द्वारा उपसम्पदा देनेकी ।" 90

२—भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिये, ०दुक्कट०।" 91

३—शिक्षमाणा-दूत भेजकर०।

४—श्रामणेर-दूत भेजकर०।

५—श्रामणेरी-दूत भेजकर०।

६—मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ! मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा नही करनी चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर समर्थ भिक्षुणीको दूत (वना) भेजकर उपसम्पदा देनेकी। 92

"उस भिक्षुणी-दूतको सघके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग कर भिक्षुओके चरणोमें वन्दना कर उकळूँ वैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—"(१) आर्यो! इस नामवाली (भिक्षुणी)की इस नाम-वाली उपसम्पदा चाहनेवाली है। एक ओरसे उपसम्पदा पा चुकी, भिक्षुणी-सघमे (दोषोंसे) शुद्ध है। वह किसी अन्तराय (=विघ्न)से नही आ सकती। (वह) इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है। आर्यो! कृपा करके सघ उसका उद्धार करे।

"(२) आर्यो! इस नामवाली०। दूसरी बार भी इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है।

"(३) आर्यो! इस नामवाली०। तीसरी वार भी०।

"तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति०। ख अनुश्रावण०। ग धारणा०।

"उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये०[1]। ०—इसे तीन निश्रय और आठ अ-करणीय वतलाओ।"

§६—अरण्यवास निषेध, भिक्षुणी-विहारका निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दण्डिताको साथिनी देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान

(१) अरण्यवासका निषेध

उस समय भिक्षुणियाँ अरण्य (=जगल)मे वास करती थी! वदमाश वलात्कार करते थे।०—

[1]देखो पृष्ठ ५३४।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है। जिस आर्याको पसंद हो वह चुप रहे, जिस आर्याको पसंद न हो वह बोले।

(२) दूसरी बार भी आर्या संघ! मेरी सुने—०।

(३) तीसरी बार भी आर्या संघ! मेरी सुने—०।

ग धा र णा—संघने भिक्षुणी-संघकी ओरसे भिक्षु-संघमें प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-संघको (साथ) ले भिक्षु संघके पास जा, उत्तरासंगको एक कंधेपर कर भिक्षुओंके चरणोंमें वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) 'आर्यो! भिक्षुणी-संघ देखे सुने और शंका किये (सभी दोषोंके लिये) भिक्षु-संघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो! कृपा करके भिक्षु-संघ भिक्षुणी-संघको (उसके दोष) कहे, देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा।

(२) दूसरी बार भी आर्यो! भिक्षुणी-संघ०।

(३) तीसरी बार भी आर्यो! भिक्षुणी-संघ०।

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओंके उपोसथको स्थगित करती थीं, प्रवारणा स्थगित करती थीं, बात मारती (=वचनीय करती) थीं, अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थीं, अवकाश करवाती थीं, दोषारोप करती थीं, स्मरण दिलाती थीं।—

भिक्षुणियोंको भिक्षुओंका उपोसथ स्थगित नहीं करना चाहिये, (उसका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा, स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोष होगा। प्रवारणा स्थगित नहीं करनी चाहिये, बात नहीं मारनी चाहिये, अनुवाद प्रस्थापित नहीं करना चाहिये, अवकाश नहीं करवाना चाहिये, दोषारोप नहीं करना चाहिये, स्मरण नहीं दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाया भी न-स्मरण दिलाया होगा, स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोष होगा। 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करते थे, ० स्मरण दिलाते थे।—

अनुमति देता हूँ भिक्षुओंको भिक्षुणियोंके उपोसथको स्थगित करनेकी, स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा और स्थगित करनेवालेको दोष नहीं होगा, ० स्मरण दिलानेकी, स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा और स्मरण दिलानेवालेको दोष नहीं होगा। 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त दूसरे पुरुषवाले, पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाले यान (=सवारी)से जाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे गंगाका मेला (=गंगामहिमा)। भगवान्से यह बात कही—

भिक्षुणीको यानसे नहीं जाना चाहिये, जो जाये उसे धर्मानुसार (दंड) करना चाहिये। 86

२—० एक भिक्षुणी बीमार थी, पैरसे नहीं चल सकती थी।—

अनुमति देता हूँ बीमारको यानकी। 87

तब भिक्षुणियोंको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुष-युक्त (यान)की? भगवान्से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ, स्त्री-युक्त पुरुष-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथसे खींचे)की। 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानके उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ।०—

स नामवाली भिक्षुणीको

न गई। वह फिर आकर

सने वेष छोळा, उसी समय

ळ तीर्थायतन (=दूसरे मत-
रा माँगी।०—
फिर आनेपर उसे उपसम्पदा

आदि

ा, नख-च्छेदन, घावकी दवा

)के स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—
ा लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105
ना उसे आराम न मिलता था।०—
की।" 106

प

ा भिक्षुणियाँ वही गर्भ गिराती थी।०—
े, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे
।" 107

यम

ोंसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—

ट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108
न) मिट्टीसे नहाती थी। लोग हैरान०

ाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक

ने वक्त कोलाहल किया।०—
ाहिये, ०दुक्कट०।" 110
ा थी, और धारके स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

" भिक्षुणियोंको अरण्यमें नहीं वास करना चाहिये ० दुक्कट । 93

(२) भिक्षुणी-विहार बनवाना

१—उस समय एक उपासकने भिक्षुणी-संघको उद्दोसित (=छप्पर) दिया। भगवान्‌ने यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उद्दोसितकी।" 94

२—उद्दोसित ठीक नहीं होता था।०—

अनुमति देता हूँ उपश्रय (=भिक्षुणी-आश्रम)की।" 95

३—उपश्रय ठीक नहीं होता था।०—

अनुमति देता हूँ नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)की। 96

४—नवकर्म ठीक नहीं होता था।०—

अनुमति देता हूँ व्यक्तिगत भी करनेकी।" 97

(३) गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन

१—उस समय एक आपन्नसत्त्वा (=गर्भिणी) स्त्री भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी। प्रव्रजित होनेपर उसे गर्भोत्थान (=प्रसव काल) हुआ। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसा करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ जब तक यह बच्चा सयाना हो जाये तब तक पोसनेकी। 98

२—तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली रह नहीं सकती और दूसरी भिक्षुणी बच्चेके साथ नहीं रह सकती कैसे मुझे करना चाहिये? ०—

अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 99

'और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना (=सम्मत करना) चाहिये—

क. ज्ञ प्ति—'आर्या संघ मेरी सुने यदि संघ उचित समझे तो संघ इस नामवाली भिक्षुणीका साथी होनेके लिये इस नामकी भिक्षुणीको चुने।—यह सूचना है।

ख. अ नु श्रा व ण ।

ग. धा र णा—'संघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारणा करती हूँ।

३—तब उस साथिन भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसे करना चाहिये। —

" एक घरमें रहना छोड़ अनुमति देता हूँ जैसे दूसरे पुरुषके साथ बर्तना चाहिये वैसे उस बच्चेके साथ बर्तनेकी। 100

(४) मानत्वचारिणीको साथिन देना

उस समय एक भिक्षुणी गुरु धर्म[1]का दोष करके मानत्वचारिणी हुई थी। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली नहीं रह सकती और दूसरी भिक्षुणी मेरे साथ नहीं वास कर सकती मुझे कैसे करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

" अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 101

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—०[2]।

---

[1] देखो आठ गुरु धर्म चुल्ल० १० §१।२ पृष्ठ ५२०-२१। [2] ऊपर जैसे ही।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।"

(५) दुबारा उपसम्पदा

१—उस समय एक भिक्षुणी (भिक्षुणीकी) शिक्षाको त्याग गृहस्थ बन गई। वह फिर आकर भिक्षुणियोंसे उपसपदा मांगने लगी। भगवान्से यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोका (कोई दूसरा) शिक्षाका परित्याग नही, जभी उसने वेप छोळा, उसी समय वह अ-भिक्षुणी हो गई।" 102

२—उस समय एक भिक्षुणी अपने आवास (=आश्रम)को छोळ तीर्थायतन (=दूसरे मत-वालोंके स्थानपर) चली गई। उसने फिर लौट आ भिक्षुणियोंसे उपसपदा मांगी।०—

"० जो भिक्षुणी अपने आवासको छोड तीर्थायतनमे चली गई, फिर आनेपर उसे उपसम्पदा न देनी चाहिये।" 103

(६) पुरुषो द्वारा अभिवादन केशच्छेदन आदि

उस समय भिक्षुणियां पुरुषो द्वारा अभिवादन, केशच्छेदन, नख-च्छेदन, घावकी दवा करानेमें सकोच कर नही सेवन करती थी।०—

"० अनुमति देता हूँ, सेवन करनेकी।" 104

(७) बैठनेके नियम

उस समय भिक्षुणियां पलथी मारकर बैठे पार्ष्णि (=एळी)के स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पलथी मारकर बैठे पार्ष्णिके स्पर्शका स्वाद नही लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105

उस समय एक भिक्षणी बीमार थी, पलथी मारकर बैठे विना उसे आराम न मिलता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमार भिक्षुणीको आधी पलथीकी।" 106

(८) पाखानेके नियम

उस समय भिक्षुणियां पाखानेमें शौच जाती थी, षड्वर्गीया भिक्षुणियां वही गर्भ गिराती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पाखानेमें शौच नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे (भूमिपर) खुले और ऊपरसे छाये (स्थानमे) शौच जानेकी।" 107

(९) स्नानके नियम

१—उस समय भिक्षुणियां (स्नानके सुगधित) चूर्णसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी स्त्रियां।०—

"० भिक्षुणीको चूर्णसे नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108

२—उस समय भिक्षुणियां वासित (=सुगधित) मिट्टीसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियां।०—

"० भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नही नहाना चाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक मिट्टीकी।" 109

३—उस समय भिक्षुणियोने जन्ताघरमे नहाते वक्त कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको जन्ताघरमें नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 110

४—उस समय भिक्षुणियां उलटी धार नहाती थी, और धाराके स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

" भिक्षुणियोंको अरण्यमें नहीं वास करना चाहिये दुक्कट । 93

(२) भिक्षुणी-विहार बनवाना

१—उस समय एक उपासकने भिक्षुणी-संघको उद्दोसित (=छप्पर) दिया। भगवान्‌ने यह बात कही।—

" अनुमति देता हूँ उद्दोसितकी।" 94

२—उद्दोसित ठीक नहीं होता था। —

अनुमति देता हूँ उपश्रय (=भिक्षुणी-आश्रम)की। 95

३—उपश्रय ठीक नहीं होता था। —

अनुमति देता हूँ नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)की। 96

४—नवकर्म ठीक नहीं होता था।—

अनुमति देता हूँ व्यक्तिगत भी करनेकी। 97

(३) गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन

१—उस समय एक आसन्नगर्भा स्त्री भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी। प्रव्रजित होनेपर उसे गर्भोत्थान (=प्रसव काल) हुआ। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसा करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ जब तक वह बच्चा सयाना हो जाये तब तक पोसनेकी। 98

२—तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली रह नहीं सकती और दूसरी भिक्षुणी बच्चेके साथ नहीं रह सकती। कैसे मुझे करना चाहिये? —

अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 99

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना (=सम्मत करना) चाहिये—

क ज्ञ प्ति— 'आर्या संघ मेरी सुने यदि संघ उचित समझे तो संघ इस नामवाली भिक्षुणीका साथी होनेके लिये इस नामकी भिक्षुणीको चुने।—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण ।

ग धा र णा—"संघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारणा करती हूँ।

३—तब उस साथिन भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसे करना चाहिये। —

एक घरमें रहना छोड़ अनुमति देता हूँ, जैसे दूसरे पुरुषके साथ बर्तना चाहिये वैसे उस बच्चेके साथ बर्तनेकी। 100

(४) मानत्वचारिणीको साथिन देना

उस समय एक भिक्षुणी गु रु ध र्म[1]का दोष करके मानत्वचारिणी हुई थी। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—'मैं अकेली नहीं रह सकती और दूसरी भिक्षुणी मेरे साथ नहीं वास कर सकती मुझे कैसे करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 101

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—०[2]।

---

[1]देखो पाठ गुरु-धर्म चुल्ल १०।१।२ पृष्ठ ५२०-२१। [2]ऊपर जैसे ही।

धारणा—"संघने इस गर्भवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस गर्भवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।"

(५) दुबारा उपसम्पदा

१—उस समय एक भिक्षुणी (भिक्षुणी) शिक्षाको त्याग गृहस्थ बन गई। उसने फिर आकर भिक्षुणियोंसे उपसम्पदा माँगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोंका (कोई) शिक्षा प्रत्याख्यान नहीं, जभी उसने वेष छोड़ा, उसी समय वह अ-भिक्षुणी हो गई।" 102

२—उस समय एक भिक्षुणी अपने आवास (=आश्रम)को छोड़ तीर्थायतन (=दूसरे मत-वालोंके स्थानपर) चली गई। उसने फिर आकर भिक्षुणियोंसे उपसम्पदा माँगी।०—

"० जो भिक्षुणी अपने आवासको छोड़ तीर्थायतनमें चली गई, फिर आनेपर उसे उपसम्पदा न देनी चाहिये।" 103

(६) पुरुषों द्वारा अभिवादन केशच्छेदन आदि

उस समय भिक्षुणियाँ पुरुषों द्वारा अभिवादन, केशच्छेदन, नख-च्छेदन, घावकी दवा करानेमें सन्देह कर नहीं सेवन करती थीं।०—

"० अनुमति देता हूँ, सेवन करनेकी।" 104

(७) बैठनेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पल्थी मारकर बैठे पार्ष्णि (=एळी)के स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

"० भिक्षुणियोंको पल्थी मारकर बैठे पार्ष्णिके स्पर्शका स्वाद नहीं लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी, पल्थी मारकर बैठे बिना उसे आराम न मिलता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमार भिक्षुणीको आधी पलथीकी।" 106

(८) पाखानेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पाखानेमें शौच जाती थी, षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ वही गर्भ गिराती थी।०—

"० भिक्षुणियोंको पाखानेमें शौच नहीं जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे (भूमिपर) खुले और ऊपरसे छाये (स्थानमें) शौच जानेकी।" 107

(९) स्नानके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ (स्नानके सुगंधित) चूर्णसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी स्त्रियाँ।०—

"० भिक्षुणीको चूर्णसे नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108

२—उस समय भिक्षुणियाँ वासित (=सुगंधित) मिट्टीसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ। ०—

"० भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नही नहाना चाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक मिट्टीकी।" 109

३—उस समय भिक्षुणियोने जन्ताघरमे नहाते वक्त कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको जन्ताघरमें नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 110

४—उस समय भिक्षुणियाँ उलटी धार नहाती थी, और धाराके स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

भिक्षुणियोंको अरण्यमें नहीं वास करना चाहिये   दुक्कट । 93

(२) भिक्षुणी-विहार बनवाना

१—उस समय एक उपासकने भिक्षुणी-संघको उद्दोसित (=छप्पर) दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ उद्दोसितकी। 94

२—उद्दोसित ठीक नहीं होता था। —

अनुमति देता हूँ उपश्रय (=भिक्षुणी-आश्रम)की।" 95

३—उपश्रय ठीक नहीं होता था।०—

अनुमति देता हूँ नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)की। 96

४—नवकर्म ठीक नहीं होता था।०—

" अनुमति देता हूँ, व्यक्तिगत भी करनेकी।" 97

(३) गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन

१—*उस समय एक आसन्नगर्भा स्त्री भिक्षुणियोंमें प्रव्रजित हुई थी प्रव्रजित होनेपर उसे गर्भोत्थान* (=प्रसव काल) हुआ। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसा करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

अनुमति देता हूँ जब तक यह बच्चा सयाना हो जाये तब तक पोसनेकी। 98

२—तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली रह नहीं सकती और दूसरी भिक्षुणी बच्चेके साथ नहीं रह सकती कैसे मुझे करना चाहिये? ०—

अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 99

'और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना (=सम्मत करना) चाहिये—

क. ज्ञ प्ति—"आर्या संघ मेरी सुने यदि संघ उचित समझे तो अब इस नामवाली भिक्षुणीका साथी होनेके लिये इस नामकी भिक्षुणीको चुने।—यह सूचना है।

ख. अनु श्रा व ण ।

ग. धा र णा—"संघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारणा करती हूँ।

३—तब उस साथिन भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसे करना चाहिये।०—

एक घरमें रहना छोड़ अनुमति देता हूँ जैसे दूसरे पुरुषके साथ बर्तना चाहिये वैसे उस बच्चेके साथ बर्तनेकी। 100

(४) *मानत्वचारिणीको साथिन देना*

उस समय एक भिक्षुणी गु रु ध र्म¹का दोष करके मानत्वचारिणी हुई थी। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मैं अकेली नहीं रह सकती और दूसरी भिक्षुणी मेरे साथ नहीं वास कर सकती मुझे कैसे करना चाहिये? भगवान्‌से यह बात कही।—

" अनुमति देता हूँ उस भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 101

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—०²।

---

¹देखो आठ गुरु-धर्म चुल्ल १ §१।१ पृष्ठ ५२०–२१।   ²ऊपर जैसे ही।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।"

(५) दुवारा उपसम्पदा

१—उस समय एक भिक्षुणी (भिक्षुणीकी) शिक्षाको त्याग गृहस्थ बन गई। वह फिर आकर भिक्षुणियोंसे उपसपदा मांगने लगी। भगवान्‌ने यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोका (कोई दूसरा) शिक्षाका परित्याग नही, जभी उसने वेष छोळा, उसी समय वह अ-भिक्षुणी हो गई।" 102

२—उस समय एक भिक्षुणी अपने आवास (=आश्रम)को छोळ तीर्थायतन (=दूसरे मत-वालोंके स्थानपर) चली गई। उसने फिर लौट आ भिक्षुणियोसे उपसपदा मांगी।०—

"० जो भिक्षुणी अपने आवासको छोड तीर्थायतनमे चली गई, फिर आनेपर उसे उपसम्पदा न देनी चाहिये।" 103

(६) पुरुषो द्वारा अभिवादन केशच्छेदन आदि

उस समय भिक्षुणियां पुरुषो द्वारा अभिवादन, केशच्छेदन, नख-च्छेदन, घावकी दवा करानेमें सकोच कर नही सेवन करती थी।०—

"० अनुमति देता हूँ, सेवन करनेकी।" 104

(७) बैठनेके नियम

उस समय भिक्षुणियां पलथी मारकर बैठे पार्ष्णि (=एळी)के स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पलथी मारकर बैठे पार्ष्णिके स्पर्शका स्वाद नही लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी, पलथी मारकर बैठे बिना उसे आराम न मिलता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमार भिक्षुणीको आधी पलथीकी।" 106

(८) पाखानेके नियम

उस समय भिक्षुणियां पाखानेमें शौच जाती थी, षड्वर्गीया भिक्षुणियां वही गर्भ गिराती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पाखानेमें शौच नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे (भूमिपर) खुले और ऊपरसे छाये (स्थानमे) शौच जानेकी।" 107

(९) स्नानके नियम

१—उस समय भिक्षुणियां (स्नानके सुगधित) चूर्णसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी स्त्रियां।०—

"० भिक्षुणीको चूर्णसे नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108

२—उस समय भिक्षुणियां वासित (=सुगधित) मिट्टीसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियां।०—

"० भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नही नहाना चाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक मिट्टीकी।" 109

३—उस समय भिक्षुणियोने जन्ताघरमे नहाते वक्त कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको जन्ताघरमें नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 110

४—उस समय भिक्षुणियां उलटी धार नहाती थी, और धाराके स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

" भिक्षुणियोंको उल्टी धार नहीं नहाना चाहिये ० दुक्कट ०।" 111

५—उस समय भिक्षुणियाँ बेघाट नहाती थीं बदमाश बलात्कार करते थे। —

" भिक्षुणियोंको बेघाट नहीं नहाना चाहिये ० दुक्कट ०।" 112

६—उस समय भिक्षुणियाँ मर्दाने घाटपर नहाती थीं लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! —

भिक्षुणियोंको मर्दाने घाटपर नहीं नहाना चाहिये जो नहाये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ महिलातीर्थ (=जनाने घाट)पर नहानेकी। 113

तृतीय भाणवार समाप्त ॥ ३ ॥

दशम भिक्खुनी-क्खन्धक समाप्त ॥१०॥

११—पंचशतिका-स्कंधक

१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही। २—निर्वाणके समय आनंदकी भूल। ३—आयुष्मान् पुराणका संगीति पाठकी पाबंदीसे इन्कार। ४—छन्नको ब्रह्मदंड और उदयनको उपदेश।

§१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही

१—राजगृह

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने भिक्षुओंको संबोधित किया। आवुसो! एक समय मैं पाँच सौ भिक्षुओंके साथ पावा और कुसीनाराके बीच रास्तेमें था। तब आवुसो! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बैठा। उस समय एक आजीवक कुसीनारासे मन्दारका पुष्प लेकर पावाके रास्तेमें आ रहा था। आवुसो! मैंने दूरसे ही आजीवकको आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा—"आवुस! हमारे शास्ताको जानते हो?"

"हाँ आवुस! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौतम परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ। मैंने यह मन्दारपुष्प ग्रहण किया है।" आवुसो! वहाँ जो भिक्षु अवीत-राग (=वैराग्य वाले नहीं) थे, (उनमें) कोई-कोई बाँह पकड़कर रोते थे, 'कटे पेड़के सदृश गिरते थे, लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वाणको प्राप्त हो गये'। किन्तु जो वीतराग भिक्षु थे, वह स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—संस्कार (=कृत वस्तुयें) अनित्य हैं, वह कहाँ मिलेगा ०।'

'उस समय आवुसो! सुभद्र नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उस परिषद्में बैठा था। तब वृद्ध प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओंको यह कहा—'मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुयुक्त हो गये उस महाश्रमणसे पीड़ित रहा करते थे। यह तुम्हें विहित नहीं है। अब हम जो चाहेंगे सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे उसे न करेंगे'। "अच्छा हो आवुसो! हम धर्म और विनय का संगान (=साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं,० धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, ० विनय-वादी हीन हो रहे हैं।"

"तो भन्ते! (आप) स्थविर भिक्षुओंको चुनें।" तब आयुष्मान् महाकाश्यपने एक कम पाँचसौ अर्हत् चुने। भिक्षुओंने आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह कहा—

"भन्ते! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) है, (तो भी) छंद (=राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग) पर जानेके अयोग्य है। इन्होंने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है, इसलिये भन्ते! स्थविर आयुष्मान्‌को भी चुन लें।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया। तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'कहाँ हम धर्म और विनयका संगायन करें?' तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाणसुत्त (दीघनिकाय) भी।

भिक्षुणियोंको उबटनी मार नहीं नहाना चाहिये दुक्कट । 111

५—उस समय भिक्षुणियाँ बेघाट नहाती थीं बदमाश बलात्कार करते थे। —

भिक्षुणियोंको बेघाट नहीं नहाना चाहिये दुक्कट ।" 112

६—उस समय भिक्षुणियाँ मर्दाने घाटपर नहाती थीं लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)।—

भिक्षुणियोंको मर्दाने घाटपर नहीं नहाना चाहिये जो नहाये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ महिलातीर्थ(=जनाने घाट)पर नहानेकी। 113

तृतीय भाणवार समाप्त ॥ ३ ॥

दशम भिक्खुनी-क्खन्धक समाप्त ॥१०॥

११—पंचशतिका-स्कंधक

१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही। २—निर्वाणके समय आनदकी भूल। ३—आयुष्मान् पुराण-का संगीति पाठकी पाबदीसे इन्कार। ४—छन्नको ब्रह्मदंड और उदयनको उपदेश।

§१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही

१—राजगृह

तब आयुष्मान् म हा का श्य प ने भिक्षुओको संबोधित किया। आवुसो! एक समय मै पाँच सौ भिक्षुओके साथ पा वा और कु सी ना रा के बीच रास्तेमे था। तब आवुसो! मार्गसे हटकर मै एक वृक्षके नीचे बैठा। उस समय एक आ जी व क कुसीनारासे मंदारका पुष्प लेकर पावाके रास्ते मे जारहा था। आवुसो! मैने दूरसे ही आजीवकको आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा —"आवुस! हमारे शास्ताको जानते हो?"

"हाँ आवुसो! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौ त म परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ। मैने यह मन्दारपुष्प वहींसे लिया है।" आवुसो! वहाँ जो भिक्षु अवीत-राग (=वैराग्य वाले नही) थे, (उनमें) कोई-कोई बाँह पकळकर रोते थे 'कटे पेळके सदृश गिरते थे, लोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वाणको प्राप्त हो गये'। किन्तु जो वीतराग भिक्षु थे, वह स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन)करते थे—संस्कार (=कृत वस्तुये) अनित्य है, वह कहाँ मिलेगा ०।'

'उस समय आवुसो! सुभद्र नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उस परिषद्मे बैठा था। तब वृद्ध प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओको यह कहा—'मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुयुक्त हो गये उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे। यह तुम्हे विहित नही है। अब हम जो चाहेगे सो करेंगे, जो नही चाहेगे उसे न करेंगे'। "अच्छा हो आवुसो! हम धर्म और विनय का संगान (=साथ पाठ) करें, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे है,० धर्मवादी दुर्बल हो रहे है, ० विनय-वादी हीन हो रहे है।"

"तो भन्ते! (आप) स्थविर भिक्षुओको चुनें।" तब आयुष्मान् महा का श्य प ने एक कम पाँचसौ अर्हत् चुने। भिक्षुओने आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह कहा—

"भन्ते! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) है, (तो भी) छंद (=राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग) पर जानेके अयोग्य हैं। इन्होने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है, इसलिये भन्ते! स्थविर आयुष्मान्को भी चुन लें।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया। तब स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—'कहाँ हम धर्म और विनयका संगायन करें?' तब स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—

---

[1] मिलाओ महापरिनिब्बाणसुत्त (दीघनिकाय) भी।

" भिक्षुणियोंको उसमें भार नहीं नहाना चाहिये दुक्कट । 111

५—उस समय भिक्षुणियाँ बेघाट नहाती थीं बदमाश बलात्कार करते थे। —

भिक्षुणियोंको बेघाट नहीं नहाना चाहिये दुक्कट । 112

६—उस समय भिक्षुणियाँ मर्दाने घाटपर नहाती थीं लोग हैरान होते थे—जैसे काममोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! —

भिक्षुणियोंको मर्दाने घाटपर नहीं नहाना चाहिये जो नहाये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ महिलातीर्थ(=जनाने घाट)पर नहानेकी। 113

तृतीय भाणवार समाप्त ॥ ३ ॥

दशम भिक्खुनी-क्खन्धक समाप्त ॥१०॥

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उ पा लि को प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान (=कारण) भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान) भी पूछी, अनुप्रज्ञप्ति (=सवोधन) भी पूछी, आपत्ति (=दोष-दड) भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी।

"आवुस उपालि ! [1]द्वितीय-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "राजगृहमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "धनिय कुभकार-पुत्रको।"

"किस वस्तुमें ?" "अदत्तादान (=चोरी)मे।"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको द्वितीय पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी।—

"आवुस उपाली ! [2]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालिमे, भन्ते।"

"किसको लेकर ?" "वहुतसे भिक्षुओको लेकर।"

"किस वस्तुमें ?"

"मनुष्य-विग्रह (=नर-हत्या) के विषयमें।"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने०।—

"आवुस उपालि ! चतुर्थ पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालीमें भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "वग्गु-मुदा-तीरवासी भिक्षुओको लेकर।"

"किस वस्तुमें ?" "उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य-शक्ति)में।"

तव आयुष्मान् काश्यपने०। इसी प्रकारसे दोनो (भिक्षु, भिक्षुणी)के विनयोको पूछा। आयुष्मान् उपालि पूछेका उत्तर देते थे।

(३) आनन्दसे सूत्र पूछना

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको ज्ञापित किया—

"आवुसो ! सघ मुझे सुने। यदि सघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दको धर्म (=सूत्र) पूछूँ ?"

तव आयुष्मान् आ न न्द ने सघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! सघ मुझे सुने। पदि सघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आवुस आनन्द ! 'ब्र ह्म जा ल'[3] (सूत्र)को कहाँ भाषित किया ?"

"रा ज गृ ह और ना ल न्दा के वीचमें, अ म्ब ल ट्ठि का के राजागारमें।"

"किसको लेकर ?"

"सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर।"

तव आयुष्मान् महाकाश्यपने 'ब्रह्मजाल'के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा।

"आवुस आनन्द ! '[4]सा म ञ्ञ (=श्रामण्य) फल'को कहाँ भाषित किया ?"

"भन्ते ! राजगृहमे जी व क म्ब-वनमें।"

"किसके साथ ?"

---

[1]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३०८।
[2]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३१२।
[3]दीघनिकायका प्रथम सूत्र।
[4]देखो दीघनिकायका द्वितीय सूत्र।

(१) राजगृहमें संगीति करनेका ठहराव

'राजगृह महागोचर (=समीपमें बहुत बस्तीवाला) बहुत शयनासन (=वास-स्थान) वाला है, क्यों न राजगृहमें वर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें। (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जावें"। तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति— आवुसो! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंको राजगृहमें वर्षावास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी सम्मति दे। और दूसरे भिक्षुओंको राजगृहमें नहीं बसने दे। यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

अ नु श्रा व ण— 'भन्ते! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है....। जिस आयुष्मान्को इन पाँचसौ भिक्षुओंका.... संगायन करना और दूसरे भिक्षुओंका राजगृहमें वर्षावास न करना पसन्द हो, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो, वह बोले।

"दूसरी बार भी....।

'तीसरी बार भी....।

धा र णा— 'संघ इन पाँचसौ भिक्षुओंके.... तथा दूसरे भिक्षुओंके राजगृहमें वास न करनेसे सहमत है, संघको पसंद है, इसलिये चुप है'—यह धारण करता हूँ।

तब स्थविर भिक्षु.... धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गये। तब स्थविर भिक्षुओंको हुआ—

'आवुसो! भगवान्ने टूटे फूटेकी मरम्मत करनेको कहा है। अच्छा आवुसो! हम प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत करें, दूसरे मासमें एकत्रित हो धर्म और विनयका संगायन करें।

तब स्थविर भिक्षुओंने प्रथम मासमें टूटे फूटेकी मरम्मत की।

आयुष्मान् आ न न्द ने—'बैठक (=सन्निपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नहीं, कि मैं शैक्ष्य रहते ही बैठकमें जाऊँ (सोच) बहुत रात तक काय-स्मृतिमें बिताकर, रातके भिनसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको फैलाया, भूमिसे पैर उठ गये और शिर तकियापर न पहुँच सका। इसी बीचमें चित्त आस्रवों (=चित्तमलों)से अलग हो मुक्त होगया। तब आयुष्मान् आनन्द अर्हत् होकर ही बैठकमें गये।

(२) उपालिसे विनय पूछना

आयुष्मान् म हा का श्य प ने संघको ज्ञापित किया—

आवुसो! संघ सुने, यदि संघको पसन्द है, तो मैं उपालिसे विनय पूछूँ?"

आयुष्मान् उपालिने भी संघको ज्ञापित किया—

'भन्ते[1]! संघ सुने, यदि संघको पसद है, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनयका उत्तर दूँ?'

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको कहा—

"आवुस[1]! उपालि! 'प्रथम-पाराजिका कहाँ प्रज्ञप्त की गई?' 'राजगृहमें भन्ते!'

'किसको लेकर?' 'सुदिन्न कलन्द-पुत्रको लेकर।'

'किस बातमें?' 'मैथुन-धर्ममें।'

[1]उस संघमें सभी महाकाश्यपसे पीछेके बने भिक्षु थे; इसलिये 'आवुस' कहा। यहाँ उस संघमें महाकाश्यप उपालिसे बड़े थे, इसलिये 'भन्ते' कहा।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान (=कारण) भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति) भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान) भी पूछी, अनुप्रज्ञप्ति (=संशोधन) भी पूछी, आपत्ति (=दोष-दंड) भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी।

"आवुस उपालि! [1]द्वितीय-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई?" "राजगृहमें भन्ते!"

"किसको लेकर?" "धनिय कुम्भकार-पुत्रको।"

"किस वस्तुमें?" "अदत्तादान (=चोरी) में।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको द्वितीय पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी।—

"आवुस उपाली! [2]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई?" "वैशालीमे, भन्ते।"

"किसको लेकर?" "बहुतसे भिक्षुओंको लेकर।"

"किस वस्तुमें?"

"मनुष्य-विग्रह (=नर-हत्या) के विषयमे।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने०।—

"आवुस उपालि! चतुर्थ पाराजिका कहा प्रज्ञापित हुई?" "वैशालीमे भन्ते!"

"किसको लेकर?" "वग्गु-मुदा-तीरवासी भिक्षुओंको लेकर।"

"किस वस्तुमें?" "उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य-शक्ति) मे।"

तब आयुष्मान् काश्यपने०। इसी प्रकारसे दोनों (भिक्षु, भिक्षुणी) के विनयोंको पूछा। आयुष्मान् उपालि पूछेका उत्तर देते थे।

(३) आनन्दसे सूत्र पूछना

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् आनन्दको धर्म (=सूत्र) पूछूँ?"

तब आयुष्मान् आनन्दने संघको ज्ञापित किया—

"भन्ते! संघ मुझे सुने। यदि संघको पसन्द हो, तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आवुस आनन्द! 'ब्रह्मजाल'[3] (सूत्र) को कहाँ भाषित किया?"

"राजगृह और नालन्दाके बीचमें, अम्बलट्ठिकाके राजागारमे।"

"किसको लेकर?"

"सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'ब्रह्मजाल'के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा।

"आवुस आनन्द! '[4]सामञ्ञ (=श्रामण्य) फल'को कहाँ भाषित किया?"

"भन्ते! राजगृहमें जीवकम्ब-वनमें।"

"किसके साथ?"

---

[1]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३०८।
[2]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३१२।
[3]दीघनिकायका प्रथम सूत्र।
[4]देखो दीघनिकायका द्वितीय सूत्र।

'अ था त-श त्रु वैदेहिपुत्रके साथ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने सामञ्ञ-फल'-सुत्तके निदानको भी पूछा पुद्गलको भी पूछा। इसी प्रकारसे पाँचों निकायोंको पूछा पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया।

§२—निर्वाणके समय आनन्दकी भूल

(१) छोटे छोटे भिक्षु-नियमोंका नाम न पूछना

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे कहा—

भन्ते! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा—'आनन्द! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे।

'आवुस आनन्द! तूने भगवान्‌को पूछा?—'भन्ते! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदों को?

'भन्ते! मैंने भगवान्‌से नहीं पूछा।

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं। किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें और तेरह संघादिसेसोंको छोड़कर, बाकी। चार पाराजिकायें और तेरह संघादिसेसों और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी। पाराजिका संघादिसेस अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर। पाराजिका संघादिसेस अनियत नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानबे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर। और चार प्रतिदेस-नीयोंको छोड़कर[1]।

(२) किसी भी भिक्षु-नियमको न छोड़ना

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति— 'आवुसो! संघ मुझे सुने। हमारे शिक्षापद गृही-गत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—'यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है यह नहीं विहित है।' यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे तो कहनेवाले होंगे— श्रमण गौतमने धूमकें कालिक जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया जबतक इनका शास्ता रहा तब तक यह शिक्षापद पालते रहे जब इनका शास्ता परिनिर्वृत हो गया तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते। यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करे प्रज्ञप्तका न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—

अ नु श्रा व ण— 'आवुसो! संघ सुने प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते। जिस आयुष्मान्‌को अ-प्रज्ञप्तका न प्रज्ञापन प्रज्ञप्तका न छेदन प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तना पसन्द हो वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले।

धा र ण — 'संघ न अप्रज्ञप्तका प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है। प्रज्ञप्तिके अनुसार ही शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तता है—(यह) संघको पसन्द है इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ।

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आ न न्द से कहा—

---

[1] देखो भिक्खुपातिमोक्ख (पृष्ठ ८२६)।

"आवुस आनन्द! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे हैं वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद'। अतः अब तू दुक्कटकी देशनाकर'।"

"भन्ते! मैंने याद न होनेसे भगवान्को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे हैं०'। उसे मैं दुक्कट नहीं समझता। किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(३) आनन्दकी कुछ और भूलें

(१) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवानकी वर्षाशाटी (=वर्षाऋतुमें नहानेके कपळे) को (पैरसे) दाबकर सिया, इस दुष्कृतकी देशनाकर।'

"भन्ते! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्की वर्षाकी लुंगीको आक्रमणकर नहीं सिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(२) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्के शरीरको स्त्रीसे[1] वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आँसुओंसे भगवान्का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! वि(=अति)-कालमें न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नहीं समझता०।"

(३) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्के उल्लसित होते समय भगवान्के उदार (=ओळारिक) अवभास करनेपर, भगवान्से नहीं प्रार्थना की—'भन्ते! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान्-कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरें।' इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"मैंने भन्ते! मारसे परि-उत्थित-चित्त (भ्रमसे) होनेसे, भगवान्से प्रार्थना नहीं की०। इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता०।"

(४) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्की मौसी, आपादिका=पोषिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। मैं इसे दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु०।"

§३—आयुष्मान् पुराणका संगीति-पाठकी पाबन्दीसे इन्कार

उस समय पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ आयुष्माम् पुराण दक्षिणागिरि[2]में चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओंके धर्म और विनयके संगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहरकर, जहाँ राजगृहमें कलंदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसमोदनकर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

"आवुस पुराण! स्थविरोंने धर्म और विनयका संगायन किया है। आओ तुम (भी) संगीतिको (मानो)।"

---

[1] निर्वाणके समय (देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५३९)। [2] राजगिरके दक्खिनवाला पहाळी प्रदेश।

अजातशत्रु वैदेहिपुत्रके साथ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'सामञ्ञ-फल'-सुत्तके निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा। इसी प्रकारसे पाँचो निकायोंको पूछा। पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया।

§२—निर्वाणके समय आनन्दकी भूल

(१) छोटे छोटे भिक्षु-नियमोंका नाम न पूछना

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे कहा—

भन्ते! भगवान्ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा—'आनन्द! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे।

'आवुस आनन्द! तूने भगवान्को पूछा?—'भन्ते! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको?

'भन्ते! मैंने भगवान्से नहीं पूछा०।

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं। किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें और तेरह संघादिसेसोंको छोड़कर बाकी। चार पाराजिकायें और तेरह संघादिसेसों और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी। पाराजिका संघादिसेस अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर। पाराजिका संघादिसेस अनियत नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानबे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर। और चार प्रातिदेशनीयोंको छोड़कर[1]।

(२) किसी भी भिक्षु-नियमको न छोड़ना

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति— 'आवुसो! संघ मुझे सुने। हमारे शिक्षापद गृही-गत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—'यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहीं विहित है।' यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे, तो कहनेवाले होंगे— श्रमण गौतमने धुएँके कालिक जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत हो गया, तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते। यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करे, प्रज्ञप्तका न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—

अ नु श्रा व ण— 'आवुसो! संघ सुने, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते। जिस आयुष्मान्को अ-प्रज्ञप्तका न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्तका न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तना पसन्द हो, वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले।

धा र णा — संघ न अप्रज्ञप्तका प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है। प्रज्ञप्तिके अनुसार ही शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ।

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

---

[1]देखो भिक्खुपातिमोक्ख (पृष्ठ ८-२६)।

"आवुस आनन्द! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्‌को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे हैं वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद'। अतः अब तू दुक्कटकी देशना कर।'

"भन्ते! मैने याद न होनेसे भगवान्‌को नहीं पूछा—'भन्ते! कौनसे है०'। इसे मैं दुक्कट नहीं समझता। किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(३) आनन्दकी कुछ और भूलें

(१) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌की वर्षाशाटी (=वर्षाऋतुमें नहानेके कपळे) को (पैरसे) दाबकर सिया, इस दुष्कृतकी देशना कर।'

"भन्ते! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्‌की वर्षाकी लुंगीको आक्रमणकर नहीं सिया, इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु आयुष्मानोंके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(२) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्‌के शरीरको स्त्रीसे[1] वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोंके आँसुओंसे भगवान्‌का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! वि(=अति)-कालमें न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्‌के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नहीं समझता०।'

(३) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌के उत्स्मित होते समय भगवान्‌के उदार (=औलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्‌से नहीं प्रार्थना की—'भन्ते! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकंपार्थ, देव-मनुष्योंके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान्-कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरें।' इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"मैंने भन्ते! मारसे परि-उत्थित-चित्त (भ्रममें) होनेसे, भगवान्‌से प्रार्थना नहीं की०। इसे मैं दुष्कृत नहीं समझता०।"

(४) "यह भी आवुस आनन्द! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्‌की मौसी, आपादिका=पोपिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियोंकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। मैं इस दुष्कृत नहीं समझता, किन्तु०।"

§३—आयुष्मान् पुराणका संगीति-पाठकी पाबन्दीसे इन्कार

उस समय पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षु-संघके साथ आयुष्मान् पुराण दक्षिणागिरि[2]में चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओंके धर्म और विनयके सगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छानुसार विहरकर, जहाँ राजगृहमें कलदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर स्थविर भिक्षुओंके साथ प्रतिसमोदनकर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओंने कहा—

"आवुस पुराण! स्थविरोंने धर्म और विनयका सगायन किया है। आओ तुम (भी) सगीतिको (मानो)।"

---

[1]निर्वाणके समय (देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५३९)। [2]राजगिरके दक्खिनवाला पहाळी प्रदेश।

'अ जा त-श त्रु वैदेहिपुत्रके साथ।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'सामञ्ञ-फल'-सुत्तके निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा। इसी प्रकारसे पाँचों निकायोंको पूछा, पूछे पूछेका आयुष्मान् आनन्दने उत्तर दिया।

§२—निर्वाणके समय आनन्दकी भूल

(१) छोटे छोटे भिक्षु-नियमोंका नाम न पूछना

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे कहा—

'भन्ते! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा—'आनन्द! इच्छा होनेपर संघ मेरे न रहनेके बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों)को हटा दे।

'आवुस आनन्द! तूने भगवान्‌को पूछा?—'भन्ते! किन क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको?

'भन्ते! मैंने भगवान्‌से नहीं पूछा...।"

किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद क्षुद्र-अनुक्षुद्र हैं। किन्हीं किन्हीं स्थविरोंने कहा—चार पाराजिकायें और तेरह संघादिशेषोंको छोड़कर, बाकी ...। ...चार पाराजिकायें और तेरह संघादिशेष और दो अनियतोंको छोड़कर बाकी ...। ...पाराजिका संघादिशेष अनियत और तीस नैसर्गिक-प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर ...। पाराजिका संघादिशेष अनियत नैसर्गिक प्रायश्चित्तिक और बानबे प्रायश्चित्तिकोंको छोड़कर ...। ...और चार प्रातिदेशनीयोंको छोड़कर[1]।

(२) किसी भी भिक्षु-नियमको न छोड़ा जाय

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति— 'आवुसो! संघ मुझे सुने। हमारे शिक्षापद गृही-गत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—'यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहीं विहित है।' यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे तो कहनेवाले होंगे— श्रमण गौतमने धूमके काल जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा तब तक यह शिक्षापद पालन करते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत हो गया तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते। यदि संघको पसंद हो तो संघ न अप्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करे, प्रज्ञप्तका न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—

अ नु श्रा व ण— 'आवुसो! संघ मुझे ... प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते। जिस आयुष्मान्‌को अ-प्रज्ञप्तका न प्रज्ञापन प्रज्ञप्तका न छेदन प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले।

धा र णा — 'संघ न अप्रज्ञप्तका प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है ...। प्रज्ञप्तिके अनुसार ही शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ।

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आ न न्द से कहा—

---

[1]देखो भिक्खुपातिमोक्ख (पृष्ठ ८-२६)।

"आवुस आनन्द ! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्को नही पूछा—'भन्ते ! कौनसे है वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद । अत अब तू दुक्कटकी देशनाकर' ।"

"भन्ते ! मैंने याद न होनेसे भगवान्को नही पूछा—'भन्ते ! कौनसे है०। इसे मैं दुक्कट नही समझता। किन्तु आयुष्मानोके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(३) आनन्दकी कुछ और भूलें

(१) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्की वर्षाशाटी (=वर्षाऋतुमे नहानेके कपळे) को (पैरसे) दाबकर सिया, इस दुष्कृतकी देशनाकर।"

"भन्ते ! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्की वर्षाकी लुगीको आक्रमणकर नही सिया, इसे मैं दुष्कृत नही समझता, किन्तु आयुष्मानोके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ।"

(२) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्के शरीरको स्त्रीसे[1] वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोके आँसुओसे भगवान्का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते ! वि(=अति)-कालमे न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मैं उसे दुष्कृत नही समझता०।"

(३) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्के उल्लसित होते समय भगवान्के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्से नही प्रार्थना की—'भन्ते ! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकपार्थ, देव-मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान्-कल्पभर ठहरें, सुगत कल्पभर ठहरे।' इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"मैंने भन्ते ! मारसे परि-उत्थित-चित्त (भ्रमसे) होनेसे, भगवान्से प्रार्थना नही की०। इसे मैं दुष्कृत नही समझता०।"

(४) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)में स्त्रियोकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। इस दुष्कृतकी देशना कर।"

"भन्ते ! मैंने—'यह महाप्रजापती गौतमी भगवान्की मौसी, आपादिका=पोषिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममें स्त्रियोकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की। मै इसे दुष्कृत नही समझता, किन्तु०।"

§३—आयुष्मान् पुराणका संगीति-पाठकी पाबन्दीसे इन्कार

उस समय पाँच सौ भिक्षुओके महाभिक्षु-सघके साथ आयुष्माम् पुराण दक्षिणागिरि[2]में चारिका कर रहे थे। आयुष्मान् पुराण स्थविर-भिक्षुओके धर्म और विनयके सगायन समाप्त होजानेपर, दक्षिणागिरिमे इच्छानुसार विहरकर, जहाँ राजगृहमें कलदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर स्थविर भिक्षुओके साथ प्रतिसमोदनकर, एक ओर बैठे। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओने कहा—

"आवुस पुराण ! स्थविरोने धर्म और विनयका सगायन किया है। आओ तुम 'पञ्च सगीतिको (मानो)।"

---

[1] निर्वाणके समय (देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५३९)। [2] राजगिरके दक्षिण, [illegible]

'आवुस ! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुन्दर तौरसे संगायन किया है। तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुँहसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।

६४—उदयनको उपदेश और छन्नको ब्रह्मदंड

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे यह कहा—

'भन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद संघ छन्न (=छंदक) को ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।'

'आवुस ! पूछा तुमने ब्रह्मदंड क्या है ?'

'भन्ते ! मैंने पूछा।—आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले, भिक्षु छन्नको न बोलें, न उपदेश करें, न अनुशासन करें।'

'तो आवुस आनन्द ! तू ही छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।'

'भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदंडकी आज्ञा करूँगा, लेकिन वह भिक्षु चंड परुष (=कटुभाषी) है।'

'तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।'

'अच्छा भन्ते !'—कहकर आयुष्मान् आनन्द पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ नाव पर कौशाम्बी गये।

(१) उदयन और उसके रनिवासको उपदेश

२—*कौशाम्बी*

नावसे उतरकर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उदयन रनिवास (=अवरोध)के साथ बागकी सैर कर रहा था। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनसे कहा—

'देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं। देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।'

'तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।'

तब अवरोध जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे संदर्शित—प्रेरित—समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पाँच सौ चादरें (=उत्तरासंग) प्रदान कीं। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दित कर अनुमोदित कर, आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ राजा उदयन था वहाँ चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा। देखकर अवरोधसे कहा—

'क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?' 'दर्शन किया देव ! हमने आनन्दका।'

'क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?' 'देव ! हमने पाँच सौ चादरें दीं।'

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था—विपाचित होता था—'क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोंको लिया। क्या श्रमण आनन्द कपड़ेका व्यापार (=दुस्सवणिज्ज) करेगा या दूकान खोलेगा।'

तब राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

'हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहाँ आया था ?' 'आया था महाराज ! यहाँ तेरा अवरोध।'

"क्या आपने आनन्दको कुछ दिया ?" "महाराज ! पाँच सौ चादरें दी ।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु है, उन्हें बाँटेंगे ।"

"और जो वह पुराने चीवर हैं उन्हें क्या करेंगे ?" "महाराज ! बिछौनेकी चादर बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने बिछौनेकी चादर है, उन्हें क्या करेंगे ?" " उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने गद्देके गिलाफ है, उन्हें क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने फर्श है, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! पायदाज बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने पायदाज है, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! झाळन बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने झाळन है० ?" " उनको कूटकर, कीचळके साथ मर्दनकर पलस्तर करेंगे ।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारण देखकर काम करते है, व्यर्थ नहीं जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाँच-सौ और चादरें प्रदान की । यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई ।

(७) छन्नको ब्रह्मदण्ड

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ घोषिताराम था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठ । आयुष्मान् छन्न जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् छन्नसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! सघने तुम्हे, ब्रह्मदडकी आज्ञा दी है ।"

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदड ?"

"तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओको जो चाहना सो बोलना, किन्तु भिक्षुओको तुमसे नही बोलना होगा, नही अनुशासन करना होगा ।"

"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओको मुझसे नही बोलना होगा०।" —(कह) वही मूर्छित होकर गिर पळे । तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे वेधित, पीळित, जुगुप्सित हो, एकाकी, निस्सग, अ-प्रमत्त, उद्योगी, आत्मसयमी हो, विहार करते, जल्दी ही जिसके लिये कुल-पुत्र प्रव्रजित होते है, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममे स्वय जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहरने लगे । और आयुष्मान् छन्न अर्हतोमे एक हुए ।

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत्-पदको प्राप्तहो जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदण्ड हटा लें ।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्वका साक्षात्कार किया, उसी समय ब्रह्म-दण्ड हट गया ।"

इस विनय-सगतिमें पाँचसौ भिक्षु—न कम न वेशी थे । इसलिये यह विनय-सगीति 'पचशतिका' कही जाती है ।

ग्यारहवाँ पंचसतिकाक्खन्धक समाप्त ॥११॥

'आवुस ! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुन्दर ढंगसे संगायन किया है। तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुँहसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।

§४—उदयनको उपदेश और छन्नको ब्रह्मदंड

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर भिक्षुओंसे यह कहा—

'भन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद संघ छन्न (=छंदक) को ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।

'आवुस ! पूछा तुमने ब्रह्मदंड क्या है ?

'भन्ते ! मैंने पूछा।—आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले, भिक्षु छन्नको न बोलें, न उपदेश करें, न अनुशासन करें।

'तो आवुस आनन्द ! तू ही छन्न भिक्षुको ब्रह्मदंडकी आज्ञा दे।

'भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदंडकी आज्ञा करूँगा, लेकिन वह भिक्षु चंड परुष (=कटुभाषी) है।

'तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।

'अच्छा भन्ते !'—कहकर आयुष्मान् आनन्द पाँचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ नाव पर कौशाम्बी गये।

(१) उदयन और उसके रनिवासको उपदेश

२—कौशाम्बी

नावसे उतरकर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उदयन रनिवास (=अवरोध) के साथ बागकी सैर कर रहा था। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनसे कहा—

'देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।

'तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।

तब अवरोध जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे संदर्शित=प्रेरित=समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पाँच सौ चादरें (=उत्तरासंग) प्रदान कीं। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दित कर अनुमोदित कर आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ राजा उदयन था वहाँ चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा, देखकर अवरोधसे कहा—

'क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?' "दर्शन किया देव ! हमने आनन्दका।

'क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?' 'देव ! हमने पाँच सौ चादरें दीं।

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था=विपाचित होता था—'क्यों श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोंको लिया, क्या श्रमण आनन्द कपड़ेका व्यापार (=दुस्सवणिज्य) करेगा या दूकान खोलेगा।

तब राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

'हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहाँ आया था ?' 'आया था महाराज ! यहाँ तेरा अवरोध।

"क्या आपने आनन्दको कुछ दिया ।" "महाराज ! पाँच सौ चादरें दी ।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु हैं, उन्हें बाँटेंगे ।"

"और जो वह पुराने चीवर हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" "महाराज ! बिछौनेकी चादर बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने बिछौनेकी चादरें हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" " उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हैं, उन्हें क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! फर्श बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! पायदाज बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने पायदाज हैं, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! झाळन बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने झाळन हैं० ?" " उनको कूटकर, मिलाकर गारा बनाकर पलस्तर करेंगे ।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारण [illegible] नहीं जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाँच-सौ और चादरें प्रदान कीं । यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोंकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई ।

(७) छन्नको ब्रह्मदण्ड

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ घोषिताराम था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे । आयुष्मान् छन्न जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् छन्नसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! संघने तुम्हें, ब्रह्मदंडकी आज्ञा दी है ।"

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदंड ?"

"तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओंको जो चाहना सो बोलना, किन्तु भिक्षुओंको तुम्हें [illegible] होगा, नहीं अनुशासन करना होगा ।"

"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओंको मुझे नहीं [illegible] —(कह) वहीं मूर्छित होकर गिर पळे । तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे वेधित, [illegible] हो, एकाकी, निस्संग, अ-प्रमत्त, उद्योगी, आत्मसंयमी हो, विहार करते, जल्दी ही [illegible] प्रव्रजित होते हैं, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममें स्वयं [illegible] जानकर विहरने लगे । और आयुष्मान् छन्न अर्हतोंमें एक हुए ।

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत्-पदको प्राप्त हो जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे [illegible] आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदण्ड हटा दें ।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्वका साक्षात्कार किया, [illegible]"

इस विनय-संगतिमें पाँचसौ भिक्षु—न कम न बेशी थे । [illegible] संगीति' कही जाती है ।

ग्यारहवाँ पंचसतिकास्कन्धक [illegible]

१२—सप्तशतिका-स्कंधक

१—वैशालीमें विनय विरुद्ध आचार। २—यशको ओरसे पक्ष-संग्रह। ३—द्वितीय संगीतिकी कार्यवाही।

§१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार

१—वैशाली

(१) वैशालीमें पैसे रुपयेका चढ़ावा

उस समय भगवान्‌के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दस वस्तुओंका प्रचार करते थे—

भिक्षुओ! (१) शृङ्गि-लवण-कल्प विहित है। (२) द्वि-अंगुल-कल्प। (३) ग्रामान्तर कल्प। (४) आवास-कल्प। (५) अनुमति-कल्प। (६) आचीर्ण-कल्प। (७) अमथित कल्प। (८) जलोगीपान। (९) अ-दशक। (१०) जातरूप-रजत।

उस समय आयुष्मान् यश काकण्डक-पुत्र वज्जीमें चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् यश वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन काँसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोंको कहते थे—

'आवुसो! संघको कार्षापण¹ दो अधेला=अर्द्ध-कार्षापण दो पाद (=पाद-कार्षापण) दो मासा (=मासक रूप) भी दो। संघको परिष्कार (=सामान) का काम होगा।'

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यशने वैशालीके उपासकोंसे कहा— 'मत आवुसो! संघको कार्षापण (=पैसा) दो। शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप (=सोना) रजत (=चाँदी) विहित नहीं है। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत उपभोग नहीं कर सकते, जातरूप रजत स्वीकार नहीं कर सकते। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत त्यागे हुये हैं।' आयुष्मान् यशके ऐसा कहनेपर भी उपासकोंने संघको कार्षापण दिया ही। तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने उस रातके बीतनेपर, भाजनके समय हिस्सा लगाकर बाँट दिया। तब वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्डकपुत्रसे कहा—

'आवुस यश! यह हिरण्य (=अशर्फी) का हिस्सा तुम्हारा है।'

'आवुसो! मेरा हिरण्यका हिस्सा नहीं, मैं हिरण्यको उपभोग नहीं कर सकता।'

(२) पैसा न लेनेसे यशका प्रतिसारणीय कर्म

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने— 'यह यश काकण्डक पुत्र श्रद्धालु=प्रसन्न उपासकोंको

¹कार्षापण अर्ध कार्षापण पाद कार्षापण मासक रूप—यह उस समयके ताँबेके सिक्के थे।

निन्दता है, फटकारता है, अ-प्रसन्न करता है, अच्छा हम उसका प्रतिसारणीय[1] कर्म करें।' उन्होंने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया। तब आयुष्मान् यश०ने वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये। आवुसो! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सलाहकर ० यशको एक अनुदूत (=साथ जानेवाला) दिया। तब आयुष्मान् यश ० ने अनुदूत भिक्षुके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हो, वैशालिक उपासकोंसे कहा—

"आयुष्मानो! मैं अश्रद्धालु=अप्रसन्न, उपासकोंको निन्दता हूँ, फटकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो कि मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूँ? आवुसो! एक समय भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ-पि डि क के आराम जे त व न में विहार करते थे। वहाँ आवुसो! भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—'भिक्षुओ! चंद्र-सूर्यको चार उपक्लेश (=मल) है, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं=न भासते हैं, न प्रकाशते हैं। कौनसे चार? भिक्षुओ! बादल, चंद्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिस उपक्लेशसे ०। भिक्षुओ! महिका (=कुहरा) ०। धूमरज (=धूमकण) ०। राहु असुरेन्द्र (=ग्रहण) ०। इसी प्रकार भिक्षुओ! श्रमण ब्राह्मणके भी चार उपक्लेश हैं, जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते ०। कौनसे चार? भिक्षुओ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं, मेरय (=कच्ची शराब) पीते हैं, सुरा-मेरय-पानसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ! यह प्रथम ० उपक्लेश है ०। (२) भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म सेवन करते हैं, मैथुन-धर्मसे विरत नहीं होते। ० यह दूसरा०। (३) ०जातरूप-रजत उपभोग करते हैं, जातरूप-रजतके ग्रहणसे विरत नहीं होते०। (४) ०मिथ्या-जीविका करते हैं, मिथ्या-आजीवसे विरत नहीं होते। भिक्षुओ! यह चार श्रमणोंके उपक्लेश हैं०। जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नहीं तपते ०।'

"आवुसो! भगवान्ने यह कहा। यह कहकर सुगतने फिर यह और कहा—
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण राग-द्वेषसे लिप्त हो,
अविद्यासे ढँके पुरुष, प्रिय (वस्तुओं)को पसन्द करनेवाले॥ (१)॥
सुरा और कच्ची शराब पीते हैं, मैथुनका सेवन करते हैं।
(वह) अज्ञानी चाँदी और सोनेको सेवन करते हैं॥ (२)॥
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण झूठी आजीविकासे जीवन बिताते हैं।
आदित्य-बंधु[2] मुनिने इन्हें उपक्लेश कहे हैं॥ (३)॥
जिन उपक्लेशोंसे उपक्लिष्ट हो यह श्रमण ब्राह्मण,
अशुद्ध और मलिन हो न तपते न भासते न विरोचते हैं"॥ (४)॥
अन्धकारसे घिरे तृष्णाके दास बंधनमें बँधे,
घोर करसी[3] को बढाते हैं (और) आवागमनमें पळते हैं"॥(५)॥

(३) यशका अपना पक्ष मजबूत करना

"ऐसा कहनेवाला मैं श्रद्धालु, प्रसन्न आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ०? सो मैं अधर्मको अधर्म कहता हूँ०। एक समय आवुसो! भगवान् रा ज गृ ह में कलन्दक-निवापके वेणुवनमें विहार करते

---

[1] देखो महावग्ग ९§४।४ (पृष्ठ ३१४)। [2] सूर्य-वंशी।
[3] श्मशानमें बार बार जलना गळना।

१२—सप्तशतिका-स्कंधक

१—वैशालीमें विनय विरुद्ध आचार। २—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह। ३—द्वितीय संगीतिकी कार्यवाही।

§१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार

१—वैशाली

(१) वैशालीमें पैसे रुपयेका चढ़ावा

उस समय भगवान्‌के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दस वस्तुओंका प्रचार करते थे—

भिक्षुओ! (१) शृंगि-लवण-कल्प विहित है। (२) द्वि-अंगुल-कल्प। (३) ग्रामान्तर कल्प। (४) आवास-कल्प। (५) अनुमति-कल्प। (६) आचीर्ण-कल्प। (७) अमथित कल्प। (८) जलोगीपान। (९) अ-दशक (१०) जातरूप-रजत।

उस समय आयुष्मान् यश काकण्डक-पुत्त वज्जीमें चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे। आयुष्मान् यश वैशालीमें महावनकी कूटागार-शालामें विहार करते थे। उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन काँसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-संघके बीचमें रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोंको कहते थे—

'आवुसो! संघको कार्षापण[1] दो अधेला—अर्द्ध-कार्षापण दो पाई (=पाद-कार्षापण) दो मासा (=माषक रूप) भी दो। संघके परिष्कार (=सामान)का काम होगा।

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यशने वैशालीके उपासकोंसे कहा—'मत आवुसो! संघको कार्षापण (=पैसा) दो। शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप (=सोना) रजत (=चाँदी) विहित नहीं है। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत उपभोग नहीं कर सकते। जातरूप रजत स्वीकार नहीं कर सकते। शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत त्यागे हुये हैं।' आयुष्मान् यशके ऐसा कहनेपर भी उपासकोंने संघको कार्षापण दिया ही। तब वैशालिक वज्जि पुत्तक भिक्षुओंने उस रातके बीतनेपर, भोजनके समय हिस्सा लगाकर बाँट दिया। तब वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षुओंने आयुष्मान् यश काकण्डपुत्तसे कहा—

आवुस यश! यह हिरण्य (=अशर्फी)का हिस्सा तुम्हारा है।

आवुसो! मेरा हिरण्यका हिस्सा नहीं मैं हिरण्यका उपभोग नहीं कर सकता।

(२) पैसा न लेनेसे यशका प्रतिसारणीय कर्म

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने—'यह यश काकण्डकपुत्त श्रद्धालु—प्रसन्न उपासकोंको

[1] कार्षापण अर्ध कार्षापण पाद कार्षापण माषक रूप—यह उस समयके ताँबेके सिक्के थे।

§२—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह

२—कौशाम्बी

(१) यशका अवन्ती-दक्षिणापथके भिक्षुओं और सभूत साणवासीको अपने पक्षमें करना

तब आयुष्मान् यश काण्डक-पुत्तने पा वा वासी और अ व न्ती-द क्षि णा प थ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो ! आओ, इस झगळेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ० अविनय प्रकट होरहा है ०,०[1] ।

उस समय आयुष्मान् स भू त सा ण वा सी अ हो ग ग-प र्व त पर वास करते थे । तब आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगग-पर्वत था, जहाँ आ० सभूत थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् सभूत साणवासीको अभिवादनकर एक ओर बैठ आयुष्मान् सभूत साणवासीसे बोले—

"भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमे दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे है ० । अच्छा हो भन्ते ! हम इस झगळे (=अधिकरण)को मिटावे ० ।"

"अच्छा आवुस !"

तब साठ पा वे य क भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वत[2] पर एकत्रित हुए । अ व न्ती-द क्षि णा प थ के अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पाँसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वतपर एकत्रित हुये । तब मत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगळा (=अधिकरण) कठिन और भारी है, हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें ।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=सकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रे व त सो रे य्य[3] में वास करते थे,—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमे पावे, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होगे ।'

आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मत्रणा सुन ली । सुनकर उन्हे ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नही कि मै ऐसे अधिकरण (=विवाद)में न फसूँ, अब वह भिक्षु आवेंगे उनसे घिरा मै सुखसे नही जा सकूँगा, क्यो न मे आगे ही जाऊँ ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे सकाश्य[4] गये । स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा— 'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होने कहा—'आयुष्मान् रेवत स का श्य गये ।' तब आयुष्मान् रेवत सकाश्यसे क न्न कु ज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये । स्थविर भिक्षुओंने सकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये ।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उ दु म्ब र गये ।०।०उदुम्बरसे अग्गलपुर गए ।०। अग्गलपुरसे स ह जा ति[5] गये ।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमे जा मिले ।

३—सहजाति

(२) रेवतको पक्षमें करना

आयुष्मान् सभूत सा ण वा सी ने आयुष्मान् यश०से कहा—"आवुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत०शिक्षाकामी है । यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछे, तो आयुष्मान् रेवत एक

---

[1] चुल्ल ११§१।१ (पृष्ठ ५४२) । [2] हरद्वारके पास कोई पर्वत (?)। [3] सोरो (जिला, एटा) । [4] संकिसा (मोटा स्टेशन E I R के पास) । [5] भीटा, जि० इलाहाबाद ।

थे। उस समय आवुसो! राजान्तःपुर (=राज-दर्बार)में राज-सभामें एकत्रित लोगोंमें यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना चाँदी (=जातरूप रजत) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं।' उस समय मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्में बैठा था। तब मणिचूळक ग्रामणीने उस परिषद्से कहा—'मत आर्यो! ऐसा कहो। शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत नहीं कल्पित (=विहित हलाल) है। वह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए हैं शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप रजत छोड़े हुये हैं।' आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका। तब आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से यह बोला—

'भन्ते! राजान्तःपुरमें राजसभामें बात उठी…। मैं उस परिषद्को समझा सका। क्या भन्ते! ऐसा कहते हुये मैं भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ? असत्यसे भगवान्का अभ्याख्यान (=निन्दा) तो नहीं करता? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नहीं होता?'

'निश्चय ग्रामणी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है… कोई धर्मवाद निन्दित नहीं होता। ग्रामणी! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप रजत विहित नहीं है…। ग्रामणी! जिसको जात-रूप रजत कल्पित है उसे पाँच काम-गुण भी कल्पित हैं जिसको पाँच काम-गुण (=काम-भोग) कल्पित हैं ग्रामणी! तुम उसको बिल्कुल ही अ-श्रमण-धर्मी अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मैं ग्रामणी! ऐसा कहता हूँ तिन-का चाहनेवाले (=तृणार्थी)को तृण खोजना होता है शकटार्थीको शकट… पुरुषार्थीको पुरुष… किन्तु ग्रामणी! किसी प्रकार भी मैं जातरूप-रजतको स्वादितव्य पर्येषितव्य (=अन्वेषणीय) नहीं मानता।' ऐसा कहनेवाला मैं… आयुष्मान् उपासकोंको निन्दता हूँ…।

'आवुसो! एक समय उसी राजगृहमें भगवान्ने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रको लेकर जातरूप रजतका निषेध किया और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मैं…।'

ऐसा कहनेपर वैशालीके उपासकोंने आयुष्मान् यश काकण्डकपुत्रसे कहा—

'भन्ते! एक आर्य यश ही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं, यह सभी अश्रमण हैं अ-शाक्यपुत्रीय हैं। आर्य यश वैशालीमें वास करें। हम आर्य यशके लिये चीवर पिंडपात शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैषज्य परिष्कारोंका प्रबन्ध करेंगे।'

तब आयुष्मान् यश वैशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आराममें गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुसे पूछा—

आवुस! क्या यश काकण्डक-पुत्तने वैशालिक उपासकोंसे क्षमा माँगी?'

'आवुसो! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश ही श्रमण हैं शाक्य-पुत्रीय हैं हम सभी अश्रमण अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।'

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)—'आवुसो! यह यश काकण्डक-पुत्त हमारी असम्मत (बात)को गृहस्थोंको प्रकाशित करता है अच्छा तो हम इसका उत्क्षेपणीय[1] कर्म करें।' वह उसका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुए। तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर कौशाम्बीमें जा खड़े हुए।

—

[1]देखो महावग्ग ९§४।५ (पृष्ठ ३१४)।

§२—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह

२—कौशाम्बी

(१) यशका अवन्ती-दक्षिणापथके भिक्षुओं और सम्भूत साणवासीको अपने पक्षमें करना

तब आयुष्मान् यश काण्टक-पुत्तने पा वा वासी और अ व न्ती-द क्षि णा प थ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो ! आओ, इस झगळेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ० अविनय प्रकट हो रहा है ०,०[1] ।

उस समय आयुष्मान् स म्भू त सा ण वा सी अ हो ग ग-प र्व त पर वास करते थे। तब आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगग-पर्वत था, जहाँ आ० सम्भूत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सम्भूत साणवासीको अभिवादनकर एक ओर बैठ आयुष्मान् सम्भूत साणवासीसे बोले—

"भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं ०। अच्छा हो भन्ते ! हम इस झगळे (=अधिकरण)को मिटावें ०।"

"अच्छा आवुस !"

तब साठ पा वे य क भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वत[2] पर एकत्रित हुए। अ व न्ती-द क्षि णा प थ के अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पाँसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वतपर एकत्रित हुये। तब मन्त्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगळा (=अधिकरण) कठिन और भारी है, हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिसमें कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=संकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रे व त सो रे य्य[3] में वास करते थे,—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होंगे।'

आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मन्त्रणा सुन ली। सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिकरण (=विवाद)में न फसूँ, अब वह भिक्षु आवेंगे उनसे घिरा मैं सुखसे नहीं जा सकूँगा, क्यों न मैं आगे ही जाऊँ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे संकाश्य[4] गये। स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा— 'आयुष्मान् रेवत कहाँ हैं ?' उन्होंने कहा—आयुष्मान् रेवत स का श्य गये।' तब आयुष्मान् रेवत संकाश्यसे क न्न कु ज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये। स्थविर भिक्षुओंने संकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ हैं ?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उ दु म्ब र गये।०।०उदुम्बरसे अग्गलपुर गए।०। अग्गलपुरसे स ह जा ति[5] गये।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले।

३—सहजाति

(२) रेवतको पक्षमें करना

आयुष्मान् सम्भूत सा ण वा सी ने आयुष्मान् यश०से कहा—"आवुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत०शिक्षाकामी हैं। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एक

---

[1] चुल्ल ११§१।१ (पृष्ठ ५४२)। [2] हरद्वारके पास कोई पर्वत (?)। [3] सोरो (जिला, एटा)। [4] संकिसा (मोटा स्टेशन E I R के पास)। [5] भीटा, जि० इलाहाबाद ।

थे। उस समय आवुसो! राजान्तःपुर (=राज-दर्बार)मे राज-सभामें एकत्रित लोगोंमें यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चाँदी (=जातरूप-रजत) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं। उस समय म णि चू ळ क ग्रामणी उस परिषद्मे बैठा था। तब मणिचूळक ग्रामणीने उस परिषद्से कहा—मत आर्यो! ऐसा कहो शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप रजत नहीं कल्पित (=विहित हलाल) है। वह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए हैं शाक्यपुत्रीय श्रमण जातरूप रजत छोळे हुये हैं। आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका। तब आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से यह बोला—

भन्ते! राजान्तःपुरमे राजसभामें बात उठी। मै उस परिषद्को समझा सका। क्या भन्ते! ऐसा कहते हुये मै भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ? असत्यसे भगवान्का अभ्याख्यान (=निन्दा) तो नहीं करता? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नहीं होता?

निश्चय ग्रामणी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है कोई धर्मवाद निन्दित नहीं होता। ग्रामणी! शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको जातरूप-रजत विहित नहीं है। ग्रामणी! जिसको जात-रूप रजत कल्पित है उसे पाँच काम-गुण भी कल्पित हैं जिसको पाँच काम-गुण (काम-भोग) कल्पित है ग्रामणी! तुम उसको बिल्कुल ही अ-श्रमण-धर्मी अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मै ग्रामणी! ऐसा कहता हूँ तिन-का चाहनेवाले (=तृणार्थी)को तृण खोजना होता है काष्ठार्थीको काष्ठ पुरुषार्थीका पुरुष किन्तु ग्रामणी! किसी प्रकार भी मै जातरूप-रजतको स्वादितव्य पर्येषितव्य (=अन्वेषणीय) नहीं मानता। ऐसा कहनेवाला मै आयुष्मान् उपासकोंका निन्दता हूँ।

'आवुसो! एक समय उसी रा ज गृ ह में भगवान्ने आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रको लेकर जातरूप रजतका निषेध किया और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मै।

ऐसा कहनेपर वै शा ली क उपासकोंने आयुष्मान् य श काकण्डकपुत्रसे कहा—

'भन्ते! एक आर्य यश ही शाक्यपुत्रीय श्रमण हैं यह सभी अश्रमण हैं अ-शाक्यपुत्रीय हैं। आर्य यश वैशालीमें वास करें। हम आर्य यशके लिये चीवर पिंडपात शयनासन ग्लान प्रत्यय भैषज्य परिष्कारोंका प्रबन्ध करेंगे।

तब आयुष्मान् यश वैशालीके उपासकोंको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आराममें गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने अनुदूत भिक्षुसे पूछा—

'आवुस! क्या यश काकण्डक-पुत्रने वैशालिक उपासकोंसे क्षमा माँगी?

'आवुसो! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश ही श्रमण हैं शाक्य-पुत्रीय हैं हम सभी अश्रमण अ-शाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने (विचारा)— आवुसो! यह यश काकण्डक-पुत्त हमारी अगम्मता (बात)को गृहस्थोंसे प्रकाशित करता है अच्छा तो हम इसका उत्क्षेपणीय[1] कर्म करें। वह उनका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुए। तब आयुष्मान् यश आकाशमें होकर कौशाम्बी जा खड़े हुए।

[1] देखो महावग्ग ९§४।५ (पृष्ठ २१८)।

§२—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह

२—कौशाम्बी

(१) यशका अवन्ती-दक्षिणापथके भिक्षुओं और सभूत साणवासीको अपने पक्षमें करना

तब आयुष्मान् यश काण्डक-पुत्तने पा वा वासी और अ व न्ती-द क्षि णा प थ-वासी भिक्षुओंके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो ! आओ, इस झगळेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ० अविनय प्रकट होरहा है ०,०[1] ।

उस समय आयुष्मान् स भू त सा ण वा सी अ हो ग ग-प र्व त पर वास करते थे। तब आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगग-पर्वत था, जहाँ आ० सभूत थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सभूत साण-वासीको अभिवादनकर एक ओर बैठ आयुष्मान् सभूत साणवासीसे बोले—

"भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं ०। अच्छा हो भन्ते ! हम इस झगळे (=अधिकरण)को मिटावें ०।"

"अच्छा आवुस !"

तब साठ पा वे य क भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वत[2] पर एकत्रित हुए। अ व न्ती-द क्षि णा प थ के अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पाँसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वतपर एकत्रित हुये। तब मंत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह झगळा (=अधिकरण) कठिन और भारी है, हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावें, जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होवें।

उस समय बहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पंडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=सकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रे व त सो रे य्य[3] में वास करते थे,—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमें पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् होंगे।'

आयुष्मान् रेवतने अमानुष, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओंकी मंत्रणा सुन ली। सुनकर उन्हें ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन और भारी है, मेरे लिये अच्छा नहीं कि मैं ऐसे अधिकरण (=विवाद)में न फसूँ, अब वह भिक्षु आवेंगे उनसे घिरा मैं सुखसे नहीं जा सकूँगा, क्यों न मैं आगे ही जाऊँ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे सकाश्य[4] गये। स्थविर भिक्षुओंने सोरेय्य जाकर पूछा— 'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होंने कहा—आयुष्मान् रेवत स का श्य गये।' तब आयुष्मान् रेवत सकाश्यसे क न्न कु ज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये। स्थविर भिक्षुओंने सकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ हैं ?' उन्होंने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उ दु म्ब र गये।०।०उदुम्बरसे अग्गलपुर गए।०। अग्गलपुरसे स ह जा ति[5] गये।०। तब स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमें जा मिले।

३—सहजाति

(२) रेवतको पक्षमें करना

आयुष्मान् सभूत सा ण वा सी ने आयुष्मान् यश०से कहा—"आवुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत०शिक्षाकामी है। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एक

---

[1] चुल्ल ११§१।१ (पृष्ठ ५४२)। [2] हरद्वारके पास कोई पर्वत (?)। [3] सोरो (जिला, एटा)। [4] सकिसा (मोटा स्टेशन E I R के पास)। [5] भीटा, जि० इलाहाबाद ।

हैं। धम्मसे सारी बात किया सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (=स्वरसहित सूत्रका पढ़नेवाला) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहा। स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दस वस्तुओंको पूछो।

अच्छा भन्ते !

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् यश ने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) 'भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?'

'क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण-कल्प ?'

'भन्ते ! सींगमें नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है कि जहाँ अलोना होगा लेकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित है।'

(२) 'भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! द्वयंगुल कल्प ?'

'भन्ते ! (मध्याह्नकी) दो अंगुल छायाके बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?' 'आवुस नहीं विहित है।'

(३) 'भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?'

'भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर, इस समय गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?' 'आवुस ! नहीं (विहित) है।'

(४) 'भन्ते ! क्या आवास कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?'

'भन्ते ! एक सीमावाले बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है ?

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(५) 'भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?'

'भन्ते ! (एक) वर्गके सघका (विनय)कर्म करना यह ख्याल करके कि जो भिक्षु (पीछे) आयेंगे उनकी स्वीकृति ले लेंगे क्या यह विहित है ?'

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(६) 'भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?'

'भन्ते ! यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है यह मेरे आचार्यने आचरण किया है (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना क्या विहित है ?'

'आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई अविहित है।'

(७) 'भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! अमथित कल्प ?'

'भन्ते ! जो दूध दूधपनेको छोड़ चुका है, दहीपनेको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर एक ओर अतिरिक्त पीना क्या विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित।'

(८) 'भन्ते ! जलोगी पान विहित है ?' 'क्या है आवुस ! जलोगी ?'

'भन्ते ! जो सुरा अभी सुरा नहीं हुई है, जो सुरापनेको अभी प्राप्त नहीं हुई है, उसको पीना क्या विहित है ?' 'आवुस ! विहित नहीं है।'

(९) 'भन्ते ! अदशक निषीदन (बिना मगजीका आसन) विहित है ?'

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(१०) 'भन्ते ! जातरूप-रजत (=सोना चाँदी) विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित है।'

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें इन दश वस्तुओका प्रचार कर रहे हैं। अच्छा हो भन्ते! हम इस अधिकरणको मिटावें०।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश० को उत्तर दिया।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(३) वैशालीके भिक्षुओंका भी प्रयत्न

वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओंने सुना, यश काकण्डकपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है। तव वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है, कैसा पक्ष पावे कि इस अधिकरणमें हम अधिक वलवान् हो।'

तव वैशालिकवज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत वहुश्रुत० है, यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमे अधिक वलवान् हो सकेंगे। तव वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओने श्रमणोके योग्य वहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, विछौना) भी, सूचीघर (=सूईकी फोफी) भी, कायवधन (=कमर-वद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गळुवा) भी। तव ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोको लेकर नावसे सहजातीको दौळे। नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजन करने लगे।

तव एकान्तमें स्थित, ध्यानमें वैठे आयुष्मान् साढके चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी है? पावेयक (=पश्चिमवाले)या प्राचीनके (=पूर्ववाले)?' तव धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढको ऐसा कहा—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं।" ।

तव वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ जाकर आयुष्मान् रेवतसे वोले—

"भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नही आवुसो! मेरे पात्र-चीवर पूरे हैं।" ।

(४) उत्तरका वैशालीवालोंके पक्षमें होजाना

उस समय वीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रेवत का उपस्थाक (=सेवक) था। तव ०वज्जिपुत्तक भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् उत्तर थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको वोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नहीं आवुसो! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं।"

"आवुस उत्तर! लोग भगवान्के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे, यदि भगवान् नही ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा।"

तव आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओंमे दवाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो! क्या काम है, कहो?"

ही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (–स्वरसहित सूत्रों को पढ़नेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर भणन समाप्त होनेपर आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछो।

'अच्छा भन्ते !'

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (–अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् यशने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) 'भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?'

'क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण-कल्प ?'

'भन्ते ! सींगमें नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है कि जहाँ अलोना होगा मिलाकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित है।'

(२) 'भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! द्वयंगुल-कल्प ?'

'भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाके बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?' 'आवुस नहीं विहित है।'

(३) 'भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?'

'भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर छक लेनेपर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?' 'आवुस ! नहीं है।'

(४) 'भन्ते ! क्या आवास-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?'

'भन्ते ! 'एक सीमाके बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है ?'

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(५) 'भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?'

'भन्ते ! (एक) वर्गके संघका (विनय) कर्म करना यह ख्याल करके कि जो भिक्षु (पीछे) आयेंगे उनको स्वीकृति दे देंगे क्या यह विहित है ?'

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(६) 'भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?'

'भन्ते ! 'यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना क्या विहित है ?'

'आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है कोई कोई अविहित है।'

(७) 'भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! अमथित-कल्प ?'

'भन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोड़ चुका है दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है उस भोजन कर चुकनेपर छक लेनेपर अधिक पीना क्या विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित।'

(८) 'भन्ते ! जलोगी पान विहित है ?' 'क्या है आवुस ! जलोगी ?'

'भन्ते ! जो सुरा अभी खमीर नहीं उठी है जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है उसका पीना क्या विहित है ?' 'आवुस ! विहित नहीं है।'

(९) 'भन्ते ! अदशक निषीदन (=बिना मगजीका आसन) विहित है ?'

'आवुस ! नहीं विहित है।'

(१०) 'भन्ते ! जातरूप रजत (=सोना चाँदी) विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित है।'

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमे इन दश वस्तुओका प्रचार कर रहे हैं। अच्छा हो भन्ते ! हम इस अधिकरणको मिटावें० ।"

"अच्छा आवुस !" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश० को उत्तर दिया ।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(३) वैशालीके भिक्षुओंका भी प्रयत्न

वै शा ली के व ज्जि पु त्त क भिक्षुओने सुना, यश काकण्डकपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है। तव वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है, कैसा पक्ष पावें कि इस अधिकरणमें हम अधिक वलवान् हो।'

तव वैशालिकवज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत वहुश्रुत० है, यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमे अधिक वलवान् हो सकेंगे। तव वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओने श्रमणोंके योग्य वहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, विछौना) भी, सूचीघर (=सूईकी फोफी) भी, कायवधन (=कमर-वद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गळुवा) भी। तव ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोको लेकर नावसे सहजातीको दौळे। नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजन करने लगे।

तव एकान्तमे स्थित, ध्यानमें वैठे आयुष्मान् साढके चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी है ? पावेयक (=पश्चिमवाले) या प्राचीनके (=पूर्ववाले) ?' तव धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढको ऐसा कहा—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक भिक्षु धर्मवादी हैं।" ।

तव वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ जाकर आयुष्मान् रेवतसे वोले—

"भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नही आवुसो ! मेरे पात्र-चीवर पूरे है ।" ।

(४) उत्तरका वैशालीवालोंके पक्षमे होजाना

उस समय वीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रे व त का उपस्थाक (=सेवक) था। तव ०व ज्जि पु त्त क भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् उ त्त र थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको वोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी० ।"

"नही आवुसो ! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं।"

"आवुस उत्तर ! लोग भगवान्के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे, यदि भगवान् नही ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा।"

तव आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे दवाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो ! क्या काम है, कहो ?"

ही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (स्वरसहित सूत्रों का पढ़नेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर भणन समाप्त होनेपर आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओंको पूछो।

'अच्छा भन्ते !'

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् यश ने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) 'भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?

'क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण-कल्प ?

'भन्ते ! सींगमें नमक रखकर पास रखना जा सकता है कि जहाँ अलोना होगा लेकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित है।

(२) भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! द्वयंगुल-कल्प ?

'भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाके बिताकर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ?' आवुस नहीं विहित है।

(३) भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ?' 'क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?'

'भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर फिर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ?' आवुस ! नहीं है।

(४) 'भन्ते ! क्या आवास-कल्प विहित है ?' क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?

'भन्ते ! 'एक सीमाके बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना' क्या विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है॥

(५) भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ?' क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?

'भन्ते ! (एक) वर्गके सघका (विनय)कर्म करना 'यह ख्याल करके कि जो भिक्षु (पीछे) आयेंगे उनको स्वीकृति दे देंगे' क्या यह विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है।

(६) भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ?' क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?

'भन्ते ! 'यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना क्या विहित है ?

आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई अविहित है।

(७) 'भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ?' क्या है आवुस ! अमथित कल्प ?

भन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोड़ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर फिर आसनसे उठ जानेपर अधिक पीना क्या विहित है ?' 'आवुस ! नहीं विहित।

(८) 'भन्ते ! जलोगी-पान विहित है ?' 'क्या है आवुस ! जलोगी ?

'भन्ते ! जो सुरा अभी चुआई नहीं गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है, उसका पीना क्या विहित है ?' आवुस ! विहित नहीं है।

( ) 'भन्ते ! अदसक निषीदन (=बिना मगजीका आसन) विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है।"

(१)"भन्ते ! जातरूप रजत (=सोना चाँदी) विहित है ?' आवुस ! नहीं विहित है।

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमे इन दश वस्तुओका प्रचार कर रहे है। अच्छा हो भन्ते! हम इस अधिकरणको मिटावें०।"

"अच्छा आवुस!" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश० को उत्तर दिया।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(३) वैशालीके भिक्षुओंका भी प्रयत्न

वैशालीके वज्जिपुत्तक भिक्षुओने सुना, यश काकण्डकपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है, कैसा पक्ष पावें कि इस अधिकरणमें हम अधिक बलवान् हो।'

तब वैशालिकवज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० है, यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (में) पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बलवान् हो सकेंगे। तब वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओने श्रमणोके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, बिछौना) भी, सूचीघर (=सूईकी फोफी) भी, कायबधन (=कमर-बद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गळुवा) भी। तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोको लेकर नावसे सहजातीको दौळे। नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजन करने लगे।

तब एकान्तमें स्थित, ध्यानमें बैठे आयुष्मान् साढके चित्तमें इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी हैं? पावेयक (=पश्चिमवाले)या प्राचीनके (=पूर्ववाले)?' तब धर्म और विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढको ऐसा कहा—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी हैं, पावेयक भिक्षु धर्मवादी है।" ।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

"भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नही आवुसो! मेरे पात्र-चीवर पूरे है।" ।

(४) उत्तरका वैशालीवालोंके पक्षमे होजाना

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रेवतका उपस्थाक (=सेवक) था। तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु, जहाँ आयुष्मान् उत्तर थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको बोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र भी०।"

"नही आवुसो! मेरे पात्रचीवर पूरे हैं।"

"आवुस उत्तर! लोग भगवान्के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे, यदि भगवान् नही ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, जैसे भगवान्ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करें, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा।"

तब आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओंसे दबाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो! क्या काम है, कहो?"

ही प्रथम सारी रात बिता सकते हैं। तब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (स्वरसहित सूत्रोंका पढ़नेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेंगे। स्वर भणन समाप्त होनेपर आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दस वस्तुओंको पूछो।

अच्छा भन्ते !

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् यशने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?

क्या है आवुस ! यह शृंगि-लवण-कल्प ?

भन्ते ! सींगमें नमक रखकर पास रखना क्या सकता है कि जहाँ अलोना होगा लेकर खायेंगे ? क्या यह विहित है ? आवुस ! नहीं विहित है।

(२) भन्ते ! द्व्यंगुल-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! द्व्यंगुल-कल्प ?

भन्ते ! (दोपहरको) दो अंगुल छायाके बितानेपर भी विकालमें भोजन करना क्या विहित है ? आवुस नहीं विहित है।

(३) भन्ते ! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! ग्रामान्तर-कल्प ?

भन्ते ! भोजन कर चुकनेपर छूट मिलनेपर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है ? आवुस ! नहीं है।

(४) भन्ते ! क्या आवास-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! आवास-कल्प ?

भन्ते ! एक सीमाके बहुतसे आवासोंमें उपोसथको करना क्या विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है॥

(५) भन्ते ! क्या अनुमति-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! अनुमति-कल्प ?

भन्ते ! (एक) वर्गके संघका (विनय) कर्म करना यह ख्याल करके कि जो भिक्षु (पीछे) आयेंगे उनकी स्वीकृति ले लेंगे, क्या यह विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है।

(६) भन्ते ! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! आचीर्ण-कल्प ?

भन्ते ! यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना क्या विहित है ?

आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई अविहित है।

(७) भन्ते ! अमथित-कल्प विहित है ? क्या है आवुस ! अमथित-कल्प ?

भन्ते ! जो दूध दूधपनेको छोड़ चुका है, दहीपनेको नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर छूट मिलनेपर अतिरिक्त पीना क्या विहित है ? आवुस ! नहीं विहित।

(८) भन्ते ! जलोगी पान विहित है ? क्या है आवुस ! जलोगी ?

भन्ते ! जो सुरा अभी सुरा नहीं बनी है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नहीं हुई है, उसका पीना क्या विहित है ? आवुस ! विहित नहीं है।

( ) भन्ते ! अदशक निषीदन (=बिना मगजीका आसन) विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है।

(१०) भन्ते ! जातरूप-रजत (=सोना चाँदी) विहित है ? आवुस ! नहीं विहित है।

में अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ। भन्ते! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं। ?"

"भुम्म! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ।"

"भन्ते! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं। भन्ते! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है।"

"भुम्म! पहिले गृही होनेके समय मैं शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ।"

(जब) इस प्रकार स्थविरोकी आपसमे बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये। तब आयुष्मान् सभूत साणवासी जहाँ आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुका प्रचार कर रहे हैं०। स्थविरने (अपने) उपाध्याय (=आनन्द)के चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक?"

"तूने भी आवुस! उपाध्यायके चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। तुझे आवुस! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक?"

"भन्ते! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक[1] भिक्षु धर्मवादी है। ।"

"मुझे भी आवुस!० ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक धर्मवादी।" ।

§३—सङ्गीतिकी-कार्यवाही

(१) उद्वाहिकाका चुनाव

तब उस विवादके निर्णय करनेके लिये संघ एकत्रित हुआ। उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नही पड़ता था। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (=सेलेक्ट कमीटी)से शान्त करे।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये। प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ, आयुष्मान् क्षुद्रशोभित (=खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वार्षभगामिक (=वासभगामिक)। पावेयक[1] भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् संभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकण्डपुत्र और आयुष्मान् सुमन। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि संघको पसन्द हो, तो संघ चार प्राचीनक (और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका द्वारा विवादको शमन करनेके लिये चुने—यह ज्ञप्ति है।

---

[1] पच्छिमी युक्तप्रान्तवाले।

आयुष्मान् उत्तर स्थविरको इतनाही कहें—'भन्ते ! स्थविर (आप) संघके बीचमें इतनाही कह दें—प्राचीन (=पूर्वीय) देशो (जनपदो)में बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं प्राचीनक (=पूर्वीय) भिक्षु धर्मवादी हैं पावयक भिक्षु अधर्मवादी हैं।

'अच्छा आवुस !' कह आयुष्मान् उत्तर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

भन्ते ! (आप) स्थविर संघके बीचमें इतनाही कह दें—प्राचीन देशमें बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी हैं और पावेयक भिक्षु अधर्म-वादी।

भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है' (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटा दिया। तब वज्जिपुत्तकोंने आयुष्मान् उत्तरसे कहा—

'आवुस उत्तर ! स्थविरने क्या कहा ?

आवुस ! हमने बुरा किया। भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममें नियोजित कर रहा है —(कह कर) स्थविरने मुझे हटा दिया।

आवुस ! क्या तुम वृद्ध बीस-वर्ष (के भिक्षु) नहीं हो ? 'हूँ आवुस !'

'तो हम (तुम्हें) बड़ा मानकर ग्रहण करते हैं।

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे संघ एकत्रित हुआ। तब आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

'आवुस ! संघ मुझे सुने—यदि हम इस विवाद (=अधिकरण)को यहाँ शमन करेंगे तो शायद प्रतिवादी (=मूलदायक) भिक्षु कर्म(=न्याय)के लिये अमान्य (=उत्कोटन) करेंगे। यदि संघको पसन्द हो तो जहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है संघ वहीं इस विवादको शांत करे।

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये वैशाली चले।

४—वैशाली

(५) सर्वकामीका धर्मके पक्षमें होना

उस समय पृथिवीपर आयुष्मान् आनन्दके शिष्य सर्वकामी नामक संघ-स्थविर, उपसंपदा (=भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ बीस वर्षके वैशालीमें वास करते थे। तब आयुष्मान् रेवतने आ सम्भूत साणवासी (=श्मशान वासी या सन-वस्त्र-धारी) से कहा—

आवुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते हैं मैं वहाँ जाऊँगा सो तुम समयपर आयुष्मान् सर्वकामीके पास जाकर इन दस वस्तुओंको पूछना। अच्छा भन्ते !

तब आयुष्मान् रेवत जिस विहारमें आयुष्मान् सर्वकामी थे उस विहारमें गये। कोठरी (=गर्भ)के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आसन बिछा हुआ था कोठरीके बाहर आयुष्मान् रेवतका। तब आयुष्मान् रेवत— यह स्थविर वृद्ध (होकर भी) नहीं लेट रहे हैं —(सोचकर) नहीं लेटे। आयुष्मान् सर्वकामी भी—यह नवागत भिक्षु थका (होनेपरभी) नहीं लेट रहा है—(सोच कर) नहीं लेटे। तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्यूष (=भिनसार)के समय आयुष्मान् रेवतसे यह कहा—

'तुम आजकल किस विहारसे (=ध्यान) अधिक विहरते हो ?

'भन्ते ! मैत्री विहारसे मैं इस समय अधिक विहरता हूँ।

'कुल्लक (=छोटा) विहारसे तुम इस समय अधिक विहरते हो यह जो मैत्री है यही कुल्लक विहार है।

'भन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मै मैत्री (भावना) करता था इसलिये अब भी

में अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ। भन्ते! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं। ?"

"भुम्म! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ।"

"भन्ते! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं। भन्ते! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है।"

"भुम्म! पहिले गृही होनेके समय मैं शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ।"

(जब) इस प्रकार स्थविरोकी आपसमे बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये। तब आयुष्मान् सभूत साणवासी जहाँ आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुका प्रचार कर रहे हैं०। स्थविरने (अपने) उपाध्याय (=आनन्द)के चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक?"

"तूने भी आवुस! उपाध्यायके चरणमें बहुत धर्म और विनय सीखा है। तुझे आवुस! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक?"

"भन्ते! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक[1] भिक्षु धर्मवादी हैं। ।"

"मुझे भी आवुस!० ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक धर्मवादी।" ।

§३—सङ्गीतिकी-कार्यवाही

(१) उद्वाहिकाका चुनाव

तब उस विवादके निर्णय करनेके लिये सघ एकत्रित हुआ। उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नही पळता था। तब आयुष्मान् रेवतने सघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! सघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि सघको पसन्द हो, तो सघ इस अधिकरणको उद्वाहिका (=सेलेक्ट कमीटी)से शान्त करे।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये। प्राचीनक भिक्षुओंमें आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ, आयुष्मान् क्षुद्रशोभित (=खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वार्षभग्रामिक (=वासभगामिक)। पावेयक[1] भिक्षुओंमें आयुष्मान् रेवत, आयुष्मान् सभूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकडपुत्त और आयुष्मान् सुमन। तब आयुष्मान् रेवतने सघको ज्ञापित किया—

ज्ञप्ति "भन्ते! सघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते हैं०। यदि सघको पसन्द हो, तो सघ चार प्राचीनक (और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये चुने—यह ज्ञप्ति है।

---

[1]पश्चिमी युक्तप्रान्तवाले।

अनुश्रावण— 'भन्ते ! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय । संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका से इस विवादको शान्त करनेके लिये चुनता है। जिस आयुष्मान्‌को चार प्राचीनक चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादका शान्त करना पसन्द है वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द है वह बोले।

धारणा— 'संघने मान लिया संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।

(२) अजित आसन-विज्ञापक हुये

उस समय अजित नामक दसवर्षीय¹ भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) था। संघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओंका आसन-विज्ञापक (=आसन बिछानेवाला) स्वीकार किया। तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ—'यह वालुकाराम रमणीय शब्दरहित=घोष-रहित है क्यों न हम वालुकाराममें (ही) इस अधिकरणको शान्त करें।

(३) सप्तशतिकी कार्यवाही

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेके लिये वालुकाराम गये। आयुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूँ?

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया—

'आवुस संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् रेवत द्वारा पूछे विनयको कहूँ।

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीसे कहा—

(१) 'भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है?"

'आवुस ! शृंगि-लवण-कल्प क्या है? 'भन्ते ! सींगमें।

'आवुस ! विहित नहीं है।

कहाँ निषेध किया है?

श्रावस्तीमें सुत्त 'विभंग'²में।

क्या आपत्ति (=दोष) होती है?

'सन्निधिकारक (=संग्रहीत वस्तु)के भोजन करनेमें 'प्रायश्चित्तिक' (=पाचित्तिय)³।

"भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु संघने निर्णय किया। इस प्रकार यह वस्तु धर्म विरुद्ध विनय-विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है। यह प्रथम शलाकाको छोड़ता हूँ।"

(२) 'भन्ते ! द्वयंगुल-कल्प विहित है? । ।

'आवुस ! नहीं विहित है।

'कहाँ निषिद्ध किया?

'राजगृहमें 'सुत्त विभंग'¹में।

"क्या आपत्ति होती है?

¹उपसम्पदा होकर दस वर्षका। ²पातिमोक्ख-सुत्तकी प्राचीन व्याख्या भिक्षु-भिक्षुणी विभंग ही सुत्त विभंग कहा जाता है। ³भिक्खुपातिमोक्ख §५।३८ (पृष्ठ २६)।

"विकाल भोजन-विषयक 'पाचित्तिय'[१]की ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह द्वितीय वस्तु सघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी शलाका छोळता हूँ ।"

(३) "भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ?०।०।

"आवुस नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?"

"श्रा व स्ती मे 'सुत्तविभग'[२]मे ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"अतिरिक्त भोजन विषयक 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—० ।"

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्व किया ?" "राजगृहमें 'उपोसथ-सयुत्त'[३]में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय (=भिक्षु-नियम)के अतिक्रमणसे दुक्कट (=दुष्कृत) ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"० ।०। "आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"चा म्पे य क वि न य-व स्तु में[४] ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय-अतिक्रमणसे 'दुक्कट' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(६) "भन्ते ! 'आचीर्ण-कल्प' विहित है ?"०।०।

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नही ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(७) "भन्ते 'अमथित-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"श्रा व स्ती में 'सु त्त-वि भ ग[५] में' ।"

"क्या आपत्ति है ?"

"अतिरिक्त भोजन करनेमें 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

---

[१]वहीं §५।३७(पृष्ठ २६) । [२]वहीं §५।३५ (पृष्ठ २५) ।

[३]महावग्ग उपोसथ-स्कन्धक (पृष्ठ १३८) ।

[४]चाम्पेय्यस्कन्धक (महावग्ग ९) चम्पेयविनयवस्तु है । सर्वास्तिवादी विनय-पिटकमें महा वग्ग और चुल्लवग्गको विनयमहावस्तु और विनयक्षुद्रकवस्तु कहा है ।

[५]भिक्खु-पातिमोक्ख §५।३७ (पृष्ठ २६) ।

अ नु श्रा व ण— 'भन्ते ! संघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय । संघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओंकी उ द्वा हि का से इस विवादको शान्त करनेके लिये चुनता है । जिस आयुष्मान्‌को चार प्राचीनक चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिकासे इस विवादका शान्त करना पसन्द है वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द है वह बोले ।

धा र णा— 'संघने मान लिया संघको पसन्द है इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ ।

(२) अजित आसन-विज्ञापक चुने

उस समय अजित नामक दसवर्षीय[1] भिक्षु-संघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोंकी आवृत्ति करनेवाला) था । संघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओंका आसन-विज्ञापक (=आसन बिछानेवाला) स्वीकार किया । तब स्थविर भिक्षुओंको यह हुआ— 'यह वा लु का रा म रमणीय शब्दरहित=घोष-रहित है क्यों न हम वालुकाराममें (ही) इस अधिकरणको शान्त करें ।

(३) सप्तशतिकी कार्यवाही

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेके लिये वालुकाराम गये । आयुष्मान् रे व त ने संघको ज्ञापित किया—

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूँ ?

आयुष्मान् सर्वकामीने संघको ज्ञापित किया—

'आवुस संघ ! मुझे सुने—यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् रेवत द्वारा पूछे विनयको कहूँ ।

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीसे कहा—

(१) 'भन्ते ! शृंगि-लवण-कल्प विहित है ?

'आवुस ! शृंगि-लवण-कल्प क्या है ? 'भन्ते ! सींगमें ।

'आवुस ! विहित नहीं है ।

'कहाँ निषेध किया है ?

श्रावस्तीमें सुत्त 'विभंग'[2]में ।

'क्या आपत्ति (=दोष) होती है ?

'सन्निधिकारक (=संग्रहीत वस्तु)के भोजन करनेसे 'प्रायश्चित्तिक' (=पाचित्तिय)[3] ।

'भन्ते ! संघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु संघने निर्णय किया । इस प्रकार यह वस्तु धर्म विरुद्ध विनय-विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है । यह प्रथम शलाकाको छोड़ता हूँ ।

(२) 'भन्ते ! द्व्यंगुल-कल्प विहित है ? । ।

'आवुस ! नहीं विहित है ।

'कहाँ निषिद्ध किया ?

'राजगृहमें 'सु त्त वि भं ग'[4]में ।

'क्या आपत्ति होती है ?

---

[1]उपसम्पदा होकर दस वर्षका ।

[2]पातिमोक्ख-सुत्तकी प्राचीन व्याख्या भिक्षु-भिक्षुणी-विभंग ही सुत्त विभंग कहा जाता है ।

[3]भिक्षुपातिमोक्ख §५।३८ (पृष्ठ २९) ।

"विकाल भोजन-विषयक 'पाचित्तिय'[1]की ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह द्वितीय वस्तु सघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी शलाका छोळता हूँ ।"

(३) "भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ?०।०।

"आवुस नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?"

"श्रा व स्ती में 'सुत्तविभग'[2]मे ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"अतिरिक्त भोजन विषयक 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—० ।"

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?" "राजगृहमें 'उपोसथ-सयुत्त'[3]में ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय (=भिक्षु-नियम)के अतिक्रमणसे दुक्कट (=दुष्कृत) ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"० ।०। "आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"चा म्पे य क वि न य-व स्तु में[4] ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय-अतिक्रमणसे 'दुक्कट' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(६) "भन्ते ! 'आचीर्ण-कल्प' विहित है ?"०।०।

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नही ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(७) "भन्ते 'अमथित-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"श्रा व स्ती में 'सु त्त-वि भ ग[5] में' ।"

"क्या आपत्ति है ?"

"अतिरिक्त भोजन करनेमें 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

---

[1]वहीं §५।३७(पृष्ठ २६) । [2]वहीं §५।३५ (पृष्ठ २५) ।

[3]महावग्ग उपोसथ-क्खन्धक (पृष्ठ १३८) ।

[4]चाम्पेय्यस्कन्धक (महावग्ग ९) चम्पेयविनयवस्तु है । सर्वास्तिवादी विनय-पिटकमें महावग्ग और चुल्लवग्गको विनयमहावस्तु और विनयक्षुद्रकवस्तु कहा है ।

[5]भिक्खु-पातिमोक्ख §५।३७ (पृष्ठ २६) ।

(८) भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ? १० ।

आवुस ! नहीं विहित है ।

'कहाँ निषेध किया ?

कौशाम्बी में 'सुत्त-विभंग'[1] में ।

'क्या आपत्ति होती है ?

'सुरा-मेरय पानमें 'पाचित्तिय' ।

'भन्ते ! सब मुझे सुने ।

(९) भन्ते ! अदसक-निषीदन' (-बिना मगजीका बिछौना) विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है ।

'कहाँ निषेध किया ?

'श्रावस्तीमें 'सुत्त-विभंग'में ।

'क्या आपत्ति होता है ?

'काट डालनेका पाचित्तिय'[2] ।

भन्ते ! सब मुझे सुने ।

(१) 'भन्ते ! 'जातरूप-रजत' (=सोना चाँदी) विहित है ?

आवुस ! नहीं विहित है ।

'कहाँ निषेध किया ?

'राजगृहमें 'सुत्त-विभंग' में[3] ।

'क्या आपत्ति है ?

'जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'पाचित्तिय' ।

'भन्ते ! सब मुझे सुने—यह दसवी वस्तु सबने निर्णय की । इस प्रकार यह वस्तु (=बात) धर्म-विरुद्ध विनय-विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है । यह दसवी शलाका छोळता हूँ ।

'भन्ते ! सब मुझे सुने—यह दश वस्तु, सबने निर्णयकी' । इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध विनय विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है ।

(सर्वकामी)— 'आवुस ! यह विवाद निहत हो गया शान्त उपशान्त सु-उपशान्त हो गया । आवुस ! उन भिक्षुओंकी जानकारीके लिये (महा)संघके बीचमें भी मुझे इन दश वस्तुओंको पूछना ।

तब आयुष्मान् रेवतने संघके बीचमें भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तुयें पूछीं । पूछनेपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया ।

इस विनय-संगीतिमें न कम न बेशी सात सौ भिक्षु थे । इसलिये यह विनय-संगीति 'सप्त शतिका' कही जाती है ।

बारहवाँ सप्तसतिका क्खन्धक समाप्त ॥१२॥

चुल्लवग्ग समाप्त

---

[1] भिक्खुपातिमोक्ख §५।५१ (पृष्ठ २७) ।
[2] वहीं §५।८९ (पृष्ठ ३१) ।
[3] वहीं §४।१८ (पृष्ठ १९) ।

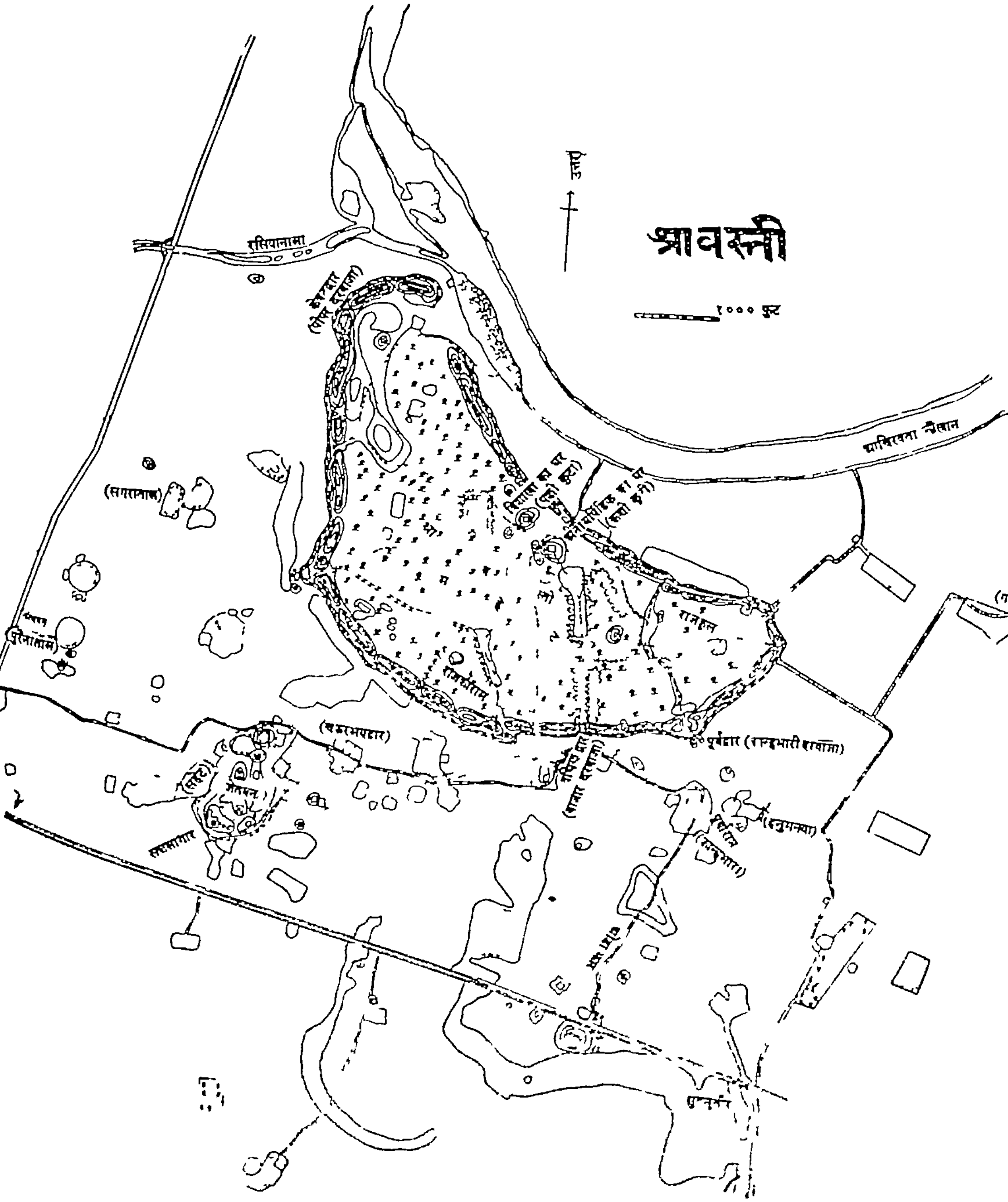

श्रावस्ती
उत्तर
१००० फुट
रसियानाला
पूर्वद्वार
जेतवन

(८) 'भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ? । ।

आवुस ! नही विहित है।

'कहाँ निषेध किया ?

'कौशाम्बी में 'सुत्त-विभग'[1] में।

'क्या आपत्ति होती है ?

'सुरा-मेरय पानमें 'पाचित्तिय'।

भन्ते ! सघ मुझे सुने ।

( ) 'भन्ते ! अदसक-निषीदन' (=बिना मगजीका बिछौना) विहित है ?

आवुस ! नही विहित है।

कहाँ निषेध किया ?

'श्रावस्तीमें 'सुत्त-विभग में।

'क्या आपत्ति होता है ?

'काट डालनेका 'पाचित्तिय'[2]।

'भन्ते ! सघ मुझे सुने ।

(?) 'भन्ते ! 'जातरूप रजत' (=सोना-चाँदी) विहित है ?

आवुस ! नही विहित है।

'कहाँ निषेध किया ?

'राजगृहमे सुत्त-विभग' मे[3]।

'क्या आपत्ति है ?

'जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'पाचित्तिय'।

'भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह दसवी वस्तु सघने निर्णय की। इस प्रकार यह वस्तु (=बात) धर्म-विरुद्ध विनय-विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है। यह दसवी शलाका छोळता हूँ।

'भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह दस वस्तु, सघने निर्णयकी'। इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध विनय-विरुद्ध शास्ताके शासनसे बाहरकी है।

(सर्वकामी)— 'आवुस ! यह विवाद निहत हो गया शात उपशात सु उपशात हो गया। आवुस ! उन भिक्षुओकी जानकारीके लिये (महा)सघके बीचमें भी मुझे इन दश वस्तुओको पूछना।

तब आयुष्मान् रेवतने सघके बीचमें भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तुए पूछी। पूछनेपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया।

इस विनय-सगीतिमें न कम न बेशी सात सौ भिक्षु थे। इसलिये यह विनय-सगीति 'सप्तशतिका' कही जाती है।

ग्यारहवाँ सप्तशतिका स्कन्धक समाप्त ॥१२॥

चुल्लवग्ग समाप्त

[1] भिक्खुपातिमोक्ख §५।५१ (पृष्ठ ४७)। [2] वही §५।८९ (पृष्ठ ५१)।
[3] वही §४।१८ (पृष्ठ १९)।